स्वामी सहजानन्द सरस्वती रचनावली

4

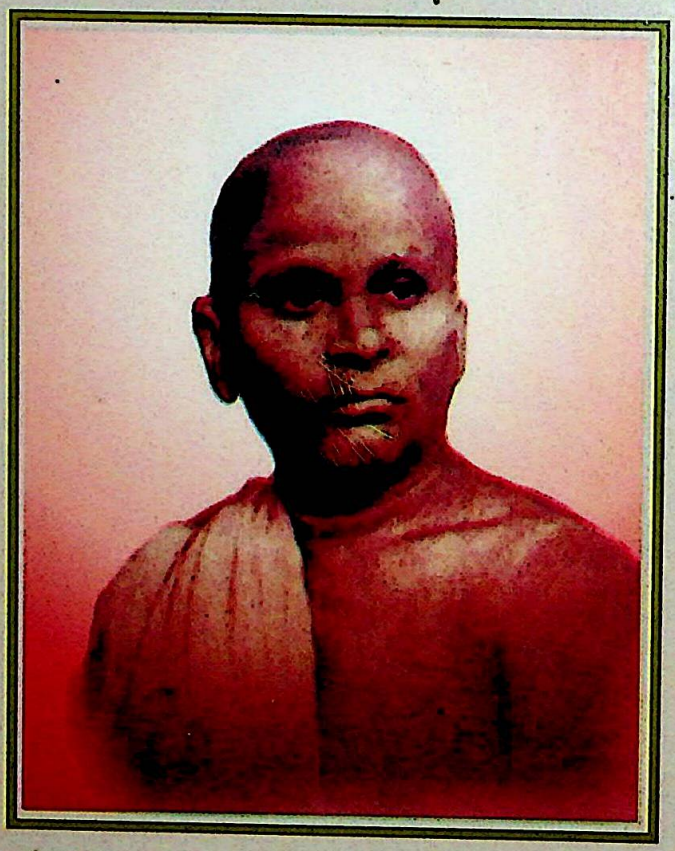

सम्पादक

राघव शरण शर्मा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

X.3

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्वामी सहजानन्द सरस्वती रचनावली-4

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्वामी सहजानन्द सरस्वती रचनावली

4

सम्पादक

राघव शरण शर्मा

प्रकाशन संस्थान

नयी दिल्ली-110002

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रकाशक
प्रकाशन संस्थान
4268-B/3, अंसारी रोड, दरियागंज
नयी दिल्ली-110002

मूल्य : 5600.00 रुपये (छह खंड)
प्रथम संस्करण : सन् 2003
द्वितीय संस्करण : सन् 2010
ISBN : 81-7714-097-3
आवरण : जगमोहन सिंह रावत

शब्द-संयोजन : कम्प्यूटेक सिस्टम, दिल्ली-110032
मुद्रक : बी.के. ऑफसेट, दिल्ली-110032

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अनुक्रम

किसान क्या करें

किसान क्या करें! / 3
इसकी जरूरत / 5
पहला भाग
1. खाना-पीना सीखें / 7
2. आदमी की जिन्दगी सीखें / 15
3. हिसाब करें और हिसाब माँगें / 21
दूसरा भाग
4. डरना छोड़ दें / 38
5. लड़ना सीखें और लड़ें / 58
6. भाग्य और भगवान पर न भूलें / 83
तीसरा भाग
7. वर्ग चेतना प्राप्त करें / 107
8. नेताओं पर कड़ी नजर रखें / 142
चौथा भाग
9. किसान सभा को अपनाएँ / 171
पाँचवाँ भाग
10. अक्ल का अजीर्ण मिटाएँ / 214
छठा भाग
11. किसान सेवक और किसान कोष तैयार करें / 242
12. यह क्या? लोक संग्रह / 259

किसान कैसे लड़ते हैं?

बात क्या है? / 269

खेत-मजदूर

प्रवेशिका / 345
1. खेत-मजदूर...तब और अब / 350

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

2. मजदूर या किसान / 363
3. उनकी समस्याएँ / 378
4. उनका समाधान / 387
5. यह हो कैसे? / 400

झारखंड के किसान

यह काम किसलिए / 409
1. झारखंड की भूमि / 413
2. जनसंख्या, भाषा आदि / 420
3. शिक्षा का सवाल / 429
4. किसान और जमींदार / 436
5. किसानों की जमीनें और उनकी तकलीफें / 447
6. जंगल की तकलीफें / 460
7. कमिया के कष्ट और सूदखोरी की लूट / 475
8. काश्तकारी कानून की दिक्कतें / 480
9. किसानों की दूसरी तकलीफें / 489
10. सहयोग समितियों का रवैया / 492
11. झारखण्ड की अनुकरणीय बातें / 496
12. ताता और होमी / 499
13. किसानों की मुख्य माँगें / 504

किसानों को फँसाने की तैयारियाँ

प्रवेशिका / 511
किसानों को फँसाने की तैयारियाँ / 513

किसानों के दोस्त और दुश्मन

किसानों के दोस्त और दुश्मन / 535

राजनीति और गाँधीवाद

राजनीति और गाँधीवाद / 557

परिशिष्ट

1. The Other Side of the Shield / 567
2. The Rent Reduction in Bihar / 586

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्वामी सहजानन्द सरस्वती रचनावली-4

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

किसान क्या करें!

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

किसान क्या करें!

" He discovered the simple fact here to fore hidden beneath ideological excrescences, that human beings must have food and drink, clothing and shelter, first of all, before they can interest themselves in politics, science, art, religion and the like." (Frederick Engles).

स्वामी सहजानन्द सरस्वती

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इसकी जरूरत?

किसान आन्दोलन बहुत कुछ आगे बढ़ चुका है। किसानों ने स्वयं अपनी सीधी लड़ाइयाँ भी बहुत कुछ लड़ी हैं। मगर यह चीज नाकाफी है यदि हम उनके और अन्य शोषितों के हाथ में शासन-सूत्र लाना चाहते हैं। यह बात क्रान्ति और भीषण उलटफेर के बिना नहीं हो सकती है और यह उलटफेर किसानों के दिल और दिमाग में मौलिक परिवर्तन चाहती है। उन्हें क्या करना है और कैसे करना है यह समझ लेना निहायत जरूरी है। अभी तक वे लोग प्रायः दकियानूसी दशा में ही पड़े हैं। उन्होंने आने वाली लड़ाई एवं उससे सम्बन्ध रखने वाले प्रश्नों को बखूबी समझा नहीं है। वे अपने कर्तव्य को, जो उनका उद्धार करेगा, समझते ही नहीं। उन्हें यह बात समझाने की कोशिश की जाती भी नहीं।

अब सिर्फ ऊपरी मुलम्मा और मरहम पट्टी से काम चलने का नहीं। हमें मर्ज के मूल में पहुँच के उसके असली कारणों का पता लगाना और उन्हें दूर करना है। तभी आगे बढ़ सकते हैं। इसी दृष्टि से यह पुस्तिका लिखी गई है। यह किसानों को कुछ बुनियादी बातें बताएगी। जिसके फलस्वरूप वे अपना लक्ष्य प्राप्त कर सकें।

हमारे कार्यकर्ता भी ज्यादातर कोरे हैं। वे इन बातों को जानते तक नहीं। फिर किसानों को क्या सिखाएँ? इसके लिखने में हमारा यह भी मतलब है कि कार्यकर्ताओं का यथार्थ पथ प्रदर्शन हो।

सेण्ट्रल जेल
हजारीबाग
श्रावण कृष्ण षष्ठी, गुरुवार 25-7-40

स्वामी सहजानन्द सरस्वती

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पहला भाग

(1)
खाना-पीना सीखें

हमने देखा है कि किसानों को दिन-रात इस बात की फिक्र रहती है कि मालिक (जमींदार) का हक नहीं दिया गया, दिया जाना चाहिए, साहू-महाजन का पावना पड़ा हुआ है उसे किसी प्रकार चुकाना होगा, चौकीदारी टैक्स बाकी ही है, उसे चुकता करना है, बनिये का बकिऔता अदा करना है आदि-आदि। उन्हें यह भी चिन्ता बनी रहती है कि तीर्थ-व्रत नहीं किया, गंगा स्नान न हो सका, कथा वार्ता न करवा सके, पितरों का श्राद्ध तर्पण पड़ा ही है, साधु-फकीरों को कुछ देना ही होगा, देवताओं और भगवान को पत्र-पुष्प यथाशक्ति समर्पण करना ही पड़ेगा। वे मन्दिर-मस्जिद बनाने और अनेक प्रकार के धर्म दिखाने में भी कुछ न कुछ देना जरूरी समझते हैं। यहाँ तक कि ओझा-सोखा और डीह-डाबर की पूजा में भी उनके पैसे खामख्वाह खर्च हो ही जाते हैं। चूहे, पंछी, पशु, चोर बदमाश और राह चलते लोग भी उनकी कमाई का कुछ न कुछ अंश खा जाते हैं। सो भी प्रायः अच्छी चीजें ही। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि बहुत ही हिफाजत से रखने पर भी बिल्ली उनका दूध-दही उड़ा जाती है। कौवों का दाँव भी लग ही जाता है। कीड़े-मकोड़े और घुन भी नहीं चूकते वे भी कुछ लेई जाते हैं।

सारांश यह कि संसार के सभी अच्छे-बुरे जीव उनकी कमाई की चीजों के हिस्सेदार बनते हैं। किसान भी खुद यही मानते हैं कि उन सबों का भी हक उनकी कमाई में है।

लेकिन क्या वे कभी यह भी सोचते हैं कि हमें और हमारे बाल-बच्चों को भी खाने का हक है? जरा इस प्रश्न की तह में जाकर देखना चाहिए। यह सही है कि वे और उनके परिवार के लोग खाते-पीते हैं। नहीं तो जिन्दा कैसे रहते! यह भी ठीक है कि किसान बराबर ही जीविका-जीविका चिल्लाते रहते हैं। मैं मानता हूँ कि हर किसान यही कहता है कि क्या करें गुजर-बसर के लिए खेती-बारी कर लेते हैं और दूसरा भी उपाय ढूँढ़ते हैं। वह पेट के ही नाम पर नौकरी चाकरी और दूसरे काम भी करता है। खेती मारी गई या रोटी का और जरिया गया तो बाल-बच्चे मर ही जाएँगे, यह भी सोचता रहता है इससे हमें इनकार नहीं। मगर इन सब बातों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

से जो निष्कर्ष निकाला जाता है उस पर जरा गौर करना होगा। केवल ऊपरी बातों से असलियत का पता नहीं लगता जब तक डूब के भीतर देखा न जाए।

यह माना जाता है कि पेट के लिए ही सबकुछ किया जाता है। लेकिन क्या सचमुच यही बात है? यदि हाँ तो फिर किसान अपनी गाय-भैंस का दूध दुह के स्वयं पी क्यों नहीं लेता और बाल-बच्चों को पिला क्यों नहीं देता! उसे रोकता कौन है, यदि पेट के ही लिए सभी काम सचमुच करता है? पीने से जो बचे उसका दही बना के क्यों खा-खिला नहीं डालता? दही के बाद भी बच जाए तो घी निकाल के खाने में क्या रुकावटें हैं? दुहने के बाद फौरन खा-पी जाने में तो खैरियत है। घर जाने पर तो न जाने कौन-कौन से दावेदार खड़े हो जाएँ

मगर क्यों यह बात नहीं की जाती यही तो विचारणीय है। यदि कहा जाए कि सरकारी कर, जमींदारी लगान और साहूकार के पावने का खयाल और भय उसे ऐसा नहीं करने देता तो फिर पेट के ही लिए सब कुछ करते हैं यह कहाँ रहा? दिमाग में तो दूसरा भूत बैठा है। पेट की बात तो यों ही बकी जाती है। पुरानी पोथियों में मिलता है कि भूखे होने से विश्वामित्र ने कुत्ते का जंघा खा डाला। अजीगर्त वगैरह ने भी ऐसा ही निन्दित और धर्मवर्जित मांस खा लिया! हालाँकि वे लोग पक्के ऋषि और धर्मभीरु थे। मगर पेट के सामने धर्म की भावना कुछ न कर सकी तो क्या सरकारी और जमींदारी पावने की भावना और धारणा धर्म भावना से भी ज्यादा बलवती है? जो लोग ऐसा समझते हैं वह भूलते हैं। हो सकता है, समाज का रूप बदले और भविष्य में इस धार्मिक भावना का स्थान भौतिक भावना ले ले। मगर आज तो धर्म भावना सौभाग्य या दुर्भाग्य से सर्वोपरि है। धर्म के नाम पर किसान सबकुछ गवाँ देने को तैयार हो जाते हैं।

जरा और सोचें। कल्पना करें कि एक आदमी बहुत ही ज्यादा भगवान का भक्त है। भगवान का उसे दर्शन भी हो जाता है। वह नरसी मेहता या सूरदास के टक्कर का है। उसने भोजन बनाया और कई दिनों का भूखा होने के कारण जल्द खाना भी चाहता है। पेट में आग जो लगी है। मगर भगवान का भोग तो लगाएगा ही। भक्त जो ठहरा। अब अगर उसके साक्षात भगवान या गुरु महाराज उसकी परोसी-परोसाई समूची थाली उठा ले जाएँ, तो क्या होगा! दोबारा बनाने की कोशिश करेगा। लेकिन यदि थाल छीनने की यही प्रतिक्रिया बराबर जारी रही, तो क्या यों ही बर्दाश्त करता जाएगा? खुद छेड़खानी न करेगा? वह तो असम्भव है। दो-चार बार शायद बर्दाश्त करे। मगर अन्त में तो अपने भगवान या गुरु महाराज से भी उठा-पटक कुश्तम-कुश्ती करेगा ही। पकड़ के थाल भी छीन लेगा जरूर। आखिर कचहरियों में वेद, कुरान, बाइबिल और शालग्राम की झूठी कसमें खाने का मतलब क्या है? क्या वह जर और जमीन के लिए ही भगवान का पछाड़ा जाना नहीं है? क्या कचहरियों में ऐसे ही मौकों पर बराबर यह भगवान इस प्रकार प्रत्यक्ष पछाड़ पर पछाड़ नहीं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

खाते हैं?

शायद कहा जाए कि जमींदार लूट लेंगे, सरकार छीन लेगी और उसे खाने न देगी। नहीं तो वह जरूर खा जाता। तो इसका सीधा उत्तर यही है कि जब छीना जाएगा तब देखा जाएगा। मगर जब तक छीनने वाले नहीं हैं तभी तक क्यों नहीं खा लेता? यदि छीनने का भय खाने नहीं देता तो क्या नर्क का भी ऐसा ही भय खाने से और चोरी-बदमाशी से रोक देता है? सभी जानते हैं, चोरी करने पर पकड़े जाएँगे और दुराचार-व्यभिचार करने पर थू-थू होगी। मगर क्या छोड़ देते हैं? और अगर सिर्फ खयाली और दिमागी भय ही उनके हाथ और मुँह को रोक देता है। तब तो मानना ही होगा कि असली चीज खाना नहीं। किन्तु पावना चुकाना ही है।

एक बात और कंजूसी के मारे जो न खाता और खिलाता है उसका क्या मतलब है? अगर वह मानता रहता कि असली काम खाना ही है और सबसे पहला है, तो ऐसा काम वह कभी नहीं करता। मगर उसके माथे में असली काम कुछ और ही है। फिर क्यों खाये-पीये? आखिर लक्ष्य से क्यों हटे?

यह भी तो पक्का है कि जो चीजें खा-पी ली जाएँगी उन्हें कोई छीन नहीं सकता, ले नहीं सकता। पेट से तो निकालेगा नहीं। हाँ जो बचा रखी जाती हैं उन्हीं के दावेदार होते हैं, हो सकते हैं। ऐसी हालत में किसान अगर पैदा की हुई चीजें खाता-पीता जाए तो कोई क्या करेगा? आखिर पागल आदमी भी तो आदमी ही होता है। वह पशु या पत्थर तो हो जाता नहीं। मगर उसके ऊपर कोई कानून लागू क्यों नहीं होता? यही न, कि लोग ऐसा करना बेकार समझते हैं और मानते हैं कि नतीजा कुछ नहीं होगा? ठीक उसी प्रकार यदि कानूनों और कानूनी माँगों की परवाह न करके किसान भी अच्छी-अच्छी चीजें खा-पी जाया करे, तो क्या होगा? आखिर पागल को भी तो कानून की फिक्र नहीं होती। इसीलिए कानून भी उसकी फिक्र नहीं करता। फिर वही काम किसान क्यों न करे और कानून भी उसी प्रकार उसका पिण्ड क्यों न छोड़ देगा?

स्मरण रहे कि कानून सदा बनते-बिगड़ते रहते हैं। बहुमत ही उनके बदलने का कारण भी है। ऐसी दशा में तो किसान का यह काम अस्सी प्रतिशत का काम होगा। यह तो 'कह सुनाऊँ या कर दिखाऊँ' वाली बात होगी। वह तो कहने के बजाय कर डालेगा और उसका यह मत बड़ा ही पक्का होगा भी। इसे टालने की हिम्मत कोई भी सरकार या शक्ति कर नहीं सकती। फिर तो कानून खामख्वाह ऐसा ही बनेगा कि सबसे पहले किसान को ही खाना-पीना चाहिए। कानून का काम तो सिर्फ यही है कि जिसे हम सामूहिक रूप से करने लगें उसी पर मुहर लगा दे। कानून हमारे लिए हैं, न कि हमीं कानून के लिए हैं। यही सबसे पक्की बात है।

किसान के पास बैल होता है, गाय, भैंसें होती हैं। उनकी क्या हालत है! बैल का पेट जब खाली होता है, खूब भरा नहीं होता, तो न तो 'भूखे हैं, रोटी दो' के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नारे लगाता, न क्रान्ति और रेवोल्यूशन की बात ही करता और न भीख ही माँगता है। वह तो सत्याग्रह करता, हल और गाड़ी खींचने से साफ इनकार करता और चारों पाँव बैठ जाता है। वह तो अपने अमल से बता देता है कि हमारी जो खुराक है वही, न कि ऊलजलूल रद्दी चीजें, लाओ और पहले हमारा पेट भरो। उसके बाद ही हम हल या गाड़ी में जुतेंगे। वह तो दलील भी नहीं करता और वोट भी नहीं देता। मगर ऐसा करता है कि उसकी माँग उसकी इच्छा पूर्ण करनी ही होती है। तो क्या किसान अपने बैल से भी गया गुजरा है? जिसे अक्ल नहीं होती उसे बैल कहते हैं। मगर वह बैल तो अक्लवाले किसान से सौ दर्जे अच्छा है। यदि किसान को और कहीं अक्ल नहीं मिलती, तो अपने बैल से ही क्यों नहीं सीखता? बैल तो एक ही कानून जानता है और वह है पेट भरने का कानून। क्योंकि उसके बिना हल या गाड़ी खींचना गैर-मुमकिन है। यदि किसान भी वही एक कानून सीख ले तो क्या हो? आखिर उसे भी तो देह से कठिन श्रम करके खून को पानी करके ठीक बैल ही की तरह खटना तथा सभी पदार्थ पैदा करना पड़ता है जो अमीर और कानून बनाने वाले ही खाते-पीते हैं। कानून बनाने वालों को तो उस तरह खटना पड़ता नहीं। फिर वे क्या जानने गए कि पेट भरने पर काम हो सकता है या उसके बिना भी? और जब वे देखते हैं कि किसान तो काम किए चला जाता है—खेत जोतता, बोता और गेहूँ, बासमती, घी, दूध पैदा किये जा रहा है, तो फिर उसके पेट भरने की फिक्र क्यों करने लगे? उन्हें क्या गर्ज? यदि बैल बिना खाये-पीये ही गाड़ी और हल खींचे—खींचता रहे तो कौन किसान ऐसा बेवकूफ है कि उसे खिलाने की फिक्र करेगा?

गाय-भैंसों को लीजिए। यदि उन्हें खूब दाना, घास, खल्ली, भूसा न खिलाइए, पानी न पिलाइए, फिर भी दुहने का बर्तन लेकर जाइए तो क्या होगा? दूध मिलेगा? वे दुहने देंगी? दूध तो नहीं, उसकी जगह उनकी लत्ती (लात की चोट) मिलेगी और बर्तन भी फूटेगा। यदि थोड़ा-बहुत उसमें दूध रहा तो वह भी जाएगा। इतना ही नहीं। उन्हें खूब खिला-पिला कर रखिये। मगर रात में उनके बैठने-लोटने की जगह ठीक न हो, उसमें कीचड़ और पानी हो तो क्या होगा? अगर यह भी ठीक हो, मगर मच्छरों ने रात-भर काट खाया और आपने उनसे बचने का कोई यत्न नहीं किया, तो भी क्या वे दूध देंगी? वही उछलकूद और वही लात दूध की जगह। अगर आपने यह सब भी किया। मगर दूहने के पहले एक लाठी कसके जमा दी तो? ऐसी दशा में दूध की आशा आप कर ही नहीं सकते। आपको उनकी सींगों की चोट का सामना करना और जखमी होना भले ही पड़े।

मगर किसान को तो जरा देखिए! खाने बिना मर रहा है! तन पर न मांस है, न चमड़ा। हड्डियाँ भी नहीं हैं! मालूम होता है कमाते-कमाते घिस गईं! जठरानल ने, प्रचण्ड क्षुधा ज्वाला ने सबको जला दिया है! फिर भी लगान दिए चला जा रहा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है, चौकीदारी समय पर अदा करता ही है, साहूजी का पावना सूद दर सूद के साथ एक का दस पैसे-पैसे चुकता करता ही है। वह तो सरकार की, जमींदार की और साहूकार की दुनिया की—कामधेनु है। वही घी, दूध, गेहूँ, चावल सबके लिए मुहय्या करता है। मगर कभी इस कामधेनु की चिन्ता सरकार ने, जमींदार ने, या दुनिया ने—मतवाली और अन्धी दुनिया ने—की है, कि क्या खाया-पिया इसने, या कतई खाया-पिया भी कि नहीं?

फिक्र करें भी क्यों, जब इस कामधेनु को खुद इसकी—अपने खाने-पीने की परवाह नहीं? जब कि यह बिना खाये-पिये ही दूध देने को बराबर तैयार है, तो कौन नादान इसकी परवाह करे और इसे खिलाये-पिलाये। यदि ये शोषक—ये जमींदार वगैरह—कभी पूछने तक नहीं आया तुमने खाया-पिया भी है या क्या खाया है, तो इसमें उनका दोष ही क्या? इतना ही नहीं इसे खूब पीटते और मारते-मारते दम निकाल लेते हैं—जैसा कि बराबर ही होता है—और जेल में भी डाल देते हैं। फिर भी यह तो ऐसी बेहूदी कामधेनु है कि पूरा दूध दिये चली जाती है। नहीं-नहीं, पीटने से और पीटने के डर से तो और भी देती है। फिर वे क्यों न मौज करें और इसकी परवाह क्यों न छोड़ दें? वह इसके जैसे नादान और नालायक-पागल थोड़े ही हैं कि इस बला में फँसें। उनने तो अच्छा बेवकूफ फाँसा है।

एक बात और। जब फसल खेतों में लगती है, तैयार होकर खलिहान में जमा की जाती है, या घर लायी जाती है तो चूहे, पक्षी, कीड़े-मकोड़े और राह चलते या चोर वगैरह उसे जरूर ही खाते हैं। आप हजारों कोशिश करें। मगर उन्हें रोक नहीं सकते। वह अपना हिस्सा ले ही जाते हैं। यही नहीं कि केवल पेट-भर लेते हैं। आगे के लिए जमा भी करते हैं। चूहों की तो खास बात है जमा करने की। ताकि जब फसल के दिन न हों तब खाएँ-पिएँ। ऐसा क्यों होता है। क्यों चूहे और दूसरे जानवरों को रोका नहीं जा सकता? क्यों घूमने-फिरने वाले जानवर भी खा जाते हैं? इसीलिए न कि वह खेत के मालिक से, किसान से पूछने नहीं जाते, आज्ञा लेने नहीं जाते कि खाएँ? वे आरजू-मिन्नत भी नहीं करते कि दया करके खाने दीजिए। वे कोई भी नियम-कानून या अपना-पराया वाला सवाल नहीं जानते। वह तो एक ही मन्त्र और एक ही सिद्धान्त जानते हैं कि पेट भर लो। जो सामने आए वही हमारा है। उदर में रख लो और उसी में से आगे लिए भी प्रबन्ध कर लो। अगर वे पूछने जाते या आरजू करते तो क्या कोई खेत वाला उन्हें खाने देता। वे खाने में आगा-पीछा करते, मेरा हक है या नहीं, यह मेरा है या और का आदि बातें भी यदि सोचते तो भी भूखे ही मरते। क्योंकि इतने ही में खेतिहर आकर रोक देता। इसलिए पेट के सवाल में वे उसे जैसे हो भर लेने के अलावे कुछ भी नहीं जानते। इसलिए मौज भी करते हैं।

मगर किसान? इसे तो हजार फिक्र पड़ी है। यह तो लाख बार आगा-पीछा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करता है। सामने आया घी, दूध और गेहूँ, चावल पेट में रखने के बजाय जमा करता है कि मालिक को देना है, साहूकार को देना है। मेरा हक नहीं है कि खाऊँ, यही मानता है। कानून और व्यवस्था के वाहियात पचड़े में पड़ जाता है। सैकड़ों तरह के खयाल और भय उसकी हाथ-मुँह और उसकी जबान रोक देते हैं। वह जमा करने में लग जाता है। फलतः जैसे मधुमक्षिका की जमा की हुई शहद गैरों के हाथ लगती है, न कि उसके या उसके बाल-बच्चों के; ठीक वही हालत किसान की भी होती है। पैदा करता और जमा करता है वह। खाते हैं दूसरे लोग। अगर चूहों और पशु-पक्षियों से भी खाने-पीने की यह अक्ल वह सीख लेता तो उसकी यह दुर्दशा नहीं होती। उसका उद्धार हो जाता।

जो खाने-पीने के सामान स्वयं किसान पैदा करता है उसे ही मुफ्तखोर जमींदार, धनी और अधिकारी वर्ग खाते हैं। उनके लिए कहीं आसमान से कोई दूसरी चीज नहीं आती और न दूसरा कोई उनके लिए ये वस्तुएँ पैदा ही करता है। ताज्जुब है कि हजार इच्छा और प्रचण्ड भूख के रहते हुए भी ये नालायक किसान उनके लिए रख छोड़ता है उनके पास पहुँचाता है और खुद परिवार के साथ भूखों मरता है। यदि कहा जाए कि गंगा की धारा में एक प्यासा हुआ आदमी है, तो लोग आश्चर्य करेंगे। बात पर विश्वास न करेंगे। मगर अपार दूध, घी और गेहूँ, चावल पैदा करने वाले किसान का भूखों मरना और क्या है यदि गंगा के बीच प्यासे मरना नहीं है? घास खाने वाले जानवर के बच्चे के सामने घास रख दीजिए और उस जानवर को कहीं भूखा छोड़ दीजिए। आप देखेंगे कि अपने बच्चे के सामने की सब घास खा जाएगा और यह परवाह कतई न करेगा कि बच्चा भूखा है, वह बच्चा जिसकी रक्षा के लिए वह परेशान रहता और बड़े प्रेम से जिसे चाटता है। जिसे अपना दूध पिलाता है और शत्रुओं के आक्रमण से बचाता है। उसकी यह हरकत यदि किसान को इतना भी सिखा सकती कि अपने भूखे रह के गैरों के पेट भरने की कोशिश ठीक नहीं तो उसका निस्तार हो जाता। अपना पेट भर लेना सबसे प्रधान और पहला काम है। अगर वह इतना ही समझ जाता तो उसका कल्याण हो जाता। दुनिया में अनायास ही क्रान्ति हो जाती।

अमीर और जमींदार लोग, कानून की पाबन्दी और उस पर अमल कराने वाले लोग और जो लोग कानून बनाते हैं उनसे—सभी से यदि कहा जाए कि भूखे रहकर यह काम कीजिए तो धीरे से सलाम करके चट हट जाएँगे। साफ कहेंगे कि बाबा, यह काम हमसे न होगा। लीजिए हमारा इस्तीफा। नहीं-नहीं, भूखे रहना तो दूर रहे। जरा चाय न मिले, एक समय नाश्ता और जलपान न मिले तो भी उनके माथे में चक्कर आता है और बीमार पड़ जाते हैं। फलतः उनकी सारी ऐंठ और सारा कारोबार ही रुक जाता है। लेकिन वही लोग उम्मीद करते हैं कि भूखों रहकर और दिन-रात खप-मर के किसान लगान और टैक्स चुकता करे सलामी और नजराना दे और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सुन्दर-सुन्दर पदार्थ उन्हें भोग लगाने को मुहय्या करे? किसान उनके पूछता क्यों नहीं कि 'खुदरा फजीहत, दीगरे रा नसीहत?' आप लोग स्वयं तो जरा सी नाश्ते में देर बर्दाश्त नहीं कर सकते और घी-दूध के बिना काम ही नहीं कर सकते। तो फिर हमीं से वैसी आशा क्यों करते हैं? हम भूखों रहके सब-कुछ गैरों के लिए उपजावें ऐसा क्यों सोचते हैं? क्या आपका शरीर एवं दिल दिमाग खून मांस वगैरह से बना है और हमारा पत्थर और मिट्टी से कि हमारा काम यों ही चल जाएगा? हमारे साथ आप भी भूखों रह के काम कीजिए। तब तो पता चलेगा कि लेक्चर और हुक्म देना कितना आसान है और भूख कितनी बुरी है। ऊँट को तभी पता चलेगा कि जितना आसान बलबलाना है, उतना पहाड़ पर चढ़ना नहीं है!

किसान का काम है कि वह कानूनी ढिंढोरा पीटने वालों से और उसका खून चूसने वालों से सीधा कह दे कि बिना कोयला-पानी के निर्जीव और लोहे का बना इंजिन भी काम नहीं करता और आगे नहीं बढ़ता, चाहे ड्राइवर मर जाए। यदि घोड़े को दाना और घास न दें और पानी न पिलाएँ। मगर पीठ पर सवार होकर कोड़े मारकर ही उसे चलाना और दौड़ाना चाहें तो यह असम्भव है। वह तो सिर्फ आगे बढ़ने से इनकार ही नहीं करता, किन्तु अगले पाँवों को उठाकर खड़ा हो जाता और अपना शरीर बुरी तरह झकझोर के सवार को नीचे गिरा देता है। तब सवार को अक्ल आती है। फलस्वरूप चाहे घोड़े को और कोड़े भले ही लगें! मगर सवार की हड्डियाँ तो चूर हो ही जाती हैं। हम भी अब यही करेंगे यदि हमें दिक किया गया! हम तो पहले खाएँ-पिएँगे। पीछे और कुछ करेंगे।

एक आखिरी बात और भी इस सम्बन्ध में विचारणीय है। दुनिया में जीवन कायम रखने के लिए तीन पदार्थ सबसे जरूरी हैं और उनका भी क्रम है। वे हैं हवा, पानी और खाना। हवा बिना एक क्षण भी जिन्दा रहना गैर-मुमकिन है। इसलिए प्रकृति ने उसे सब जगह इफरात से बनाया है। बिना विशेष यत्न के ही वह सर्वत्र सुलभ है। सो भी जितनी चाहें उतनी। इस कदर-सुलभ और ज्यादा है कि हम उसे यों ही गन्दा और खराब बनाते रहते हैं, बिना कारण के ही और प्रकृति को उसे शुद्ध बनाने के लिए न जाने कितने उपाय करने पड़ते हैं। मगर इतने से रंज हो के उसने हमारी जरूरत-भर हवा नहीं दी है और न जरूरत में कमी ही की है। जो जितना ही जरूरी है वह यदि उतना ही सुलभ और पर्याप्त हो, तभी काम चल सकता है। यही नियम इस बात से सिद्ध होता है।

हवा के बाद स्थान है पानी का। यह हवा जितना जरूरी है नहीं। मगर भोजन से तो कहीं ज्यादा जरूरी है। पानी पीके कुछ दिन जिन्दा रह सकते हैं बिना खाये भी। इसीलिए पुराने लोगों ने पानी का नाम जीवन भी रखा है। यह पानी भी हवा जैसा सुलभ, सर्वत्र प्राप्य न होने पर भी जरूरत के लिए मिल ही जाता हैं। जहाँ ऊपर नहीं है वहाँ थोड़ी सी जमीन खोदने पर जितना चाहे पा सकते हैं। यों तो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नदियाँ, तालाब, झरने और मेघ उसे पहुँचाते ही रहते हैं। सहारा के रेगिस्तान और बीकानेर के तालुकामय मरुस्थली में भी ऊँटों और जंगली लोगों के लिंए प्रकृति ने ऐसा सुन्दर प्रबन्ध कर दिया है कि आश्चर्यचकित होना पड़ता है। जहाँ पानी का पता नहीं। मेघ भी शायद ही कभी भूल-चूक से थोड़ा कभी बरस जाए। दिन-रात लू चलती रहती है। वहीं पर जमीन के थोड़ा ही नीचे मनों वजन के तरबूजे (मतीरे) होते हैं जो बारह महीने पाए जाते हैं। उनमें खाना और पानी दोनों हैं। वह इतने मीठे होते हैं कि कहिए मत। उनकी खेती कोई नहीं करता जमीन के भीतर ही उनकी लताएँ फैलती और फलती हैं। वहाँ के निवासियों के लिए यह प्रकृति का खास (special-arrengement) है!

तीसरा नम्बर भोजन का आता है। रोशनी, मकान, कपड़े आदि के बिना भी हम जिन्दा रह सकते हैं। मगर भोजन के बिना कितने दिन टिक सकते हैं! जैसे-तैसे मर-जी के कुछ ही दिन के बाद जीना असम्भव है यदि खाना न मिले। इसीलिए सहारा और राजपूताने में जहाँ पेड़ नहीं हैं, प्रकृति का खास इन्तजाम खाने-पीने के बारे में बताया है। यह भी तो देखिए कि जब किसान या दूसरा आदमी नन्हा-सा बच्चा था और माता के पेट से अभी-अभी बाहर आया था, तो उसके खाने-पीने का प्रबन्ध पहले से ही था। माता के स्तनों में इतना मीठा दूध बिना कोशिश के ही मौजूद था कि खाने और पीने दोनों ही—का काम करता था। पशुओं के लिए भी यही बात है। बच्चे कमा नहीं सकते और न हाथ-पाँव चला सकते हैं। इसलिए भगवान या प्रकृति ने खुद पहले से सुन्दर इन्तजाम कर दिया! जंगलों और पहाड़ों और सारी जमीन पर घास-पात और फल-फूल की, जड़ और मूल की इतनी बहुतायत है कि सभी पशु-पक्षी खा-पी सकते हैं। यहाँ तक कि किसान जब निरा बच्चा है तब तक वह अमृत जैसा माँ का दूध पीने को पाता है।

मगर सयाना होने पर ? हाथ-पाँव चलाने और दिन-रात एड़ी-चोटी का पसीना एक करने पर? उसका पेट नहीं भरता और भूखों मरता है! क्या यह बात समझ में आने की है? लोग कहते हैं कबीर ने उलटी बातें बहुत कही हैं, जैसे 'नैया बीच नदिया डूबी जाए' मगर क्या यह नैया बीच नदिया का डूबना नहीं है? वर्तमान सामाजिक व्यवस्था ने अमन और कानून ने जो यह भूखों मरने की व्यवस्था कमाने वालों के लिए—किसानों के लिए—बना रखी है और जिसका समर्थन सारी शक्ति लगा कर किया जाता है, क्या वह प्रकृति को पसन्द है? प्रकृति ने तो हवा, पानी, दूध आदि प्रचुर मात्रा में प्रस्तुत करके बता दिया है कि भोजन जैसी जरूरी चीज जरूरत-भर पाने का हर किसान को नैतिक अधिकार है, कुदरती हक है। मगर अभागा किसान समझे तब न?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(2)
आदमी की जिन्दगी सीखें

लेकिन केवल इतने से काम पूरा नहीं हो जाता कि किसान खाना-पीना सीखें और अपना यह सर्वप्रथम अधिकार मानें कि पहले खाना-पीना, पीछे और कुछ। 'पहले आत्मा तो पीछे परमात्मा' यह बात तो उनमें प्रचलित जरूर है, खास इसी मानी में। मगर इसका ठीक-ठीक प्रयोग नहीं होता, वे लोग नहीं करते। अब ऐसा अक्षरशः करना सीखें, सो भी बिना विलम्ब से। बेशक उनके उद्धार की पहली सीढ़ी है। मगर उन्हें उससे भी आगे जाना होगा। खाते-पीते तो पशु-पक्षी भी हैं। खुद किसान भी अपने गाय-बैलों के खिलाने-पिलाने का प्रबन्ध करता है। यहाँ तक कि बहुत से परोपकारी और धर्मात्मा कहे जानेवाले लोग चींटियों की माँदों पर आटा या चीनी छिड़क देते हैं, ताकि वे खाएँ। मछलियों के लिए भी पानी में खाने की चीजें फेंक देते हैं। जब बकरा पालते हैं तो उसे खूब दाना और घास खिला के मोटा ताजा कर देते हैं ताकि काटकर खाने के समय खूब तृप्ति हो, मजा आए। देवी-देवताओं को भी खिलाने के नाम पर भोग लगाते हैं फिर खुद खा जाते हैं। सवारी और शिकार के भी जानवरों को खिलाया-पिलाया जाता है। इस प्रकार हाथी, घोड़े, कुत्ते मोटे ताजे होते हैं—बनाए जाते हैं।

तो क्या किसान गाय-बैल है? बलिदान का बकरा है? सवारी का जानवर या शिकारी कुत्ता है? क्या चींटी और मछली है जो धर्म खाते खाता है? क्या देवी-देवता और भगवान है कि खिलाने और भोग लगाने के नाम पर घी, दूध, मलाई, हलवा, पूरी उसे दिखा के पुजारी कहे जाने वाले गैर लोग—जमींदार आदि—चट कर जाएँ और ठाकुरजी की तरह वह सपरिवार टुकुर-टुकुर देखता रह जाए! क्या उसे किसी जमींदार या सरकार की दया और साहूकार की कृपा से खाना-पीना है, कि अपने बाहुबल से, अपने गाढ़े पसीने की कमाई से? यह प्रश्न मामूली नहीं हैं जैसा कि ऊपर से देखने से प्रतीत होते हैं। ये तो मौलिक और बुनियादी हैं। अतः इनके ठीक-ठीक उत्तर पर ही किसानों का बहुत कुछ भविष्य निर्भर करता है।

हमने व्यथित और फूटे दिल से—जीर्ण और विदीर्ण हृदय से—देखा और सुना है अनेक को, बड़े-बड़े किसान नेताओं को यह कहते हुए कि सरकार और जमींदार किसानों पर कृपा करें और लगान में कमी करें—उसकी माफी दें। क्योंकि किसानों को भूखों मरने की नौबत है! उससे तो साफ मालूम होता है कि किसानों को भूखों रख के भी उन्हें अपना 'कानूनी-पावना' वसूलने का हक है। इस बात को—उनके इस हक को—हम लोग—नेता लोग—इस प्रकार कबूल कर लेते हैं। इसीलिए तो उन्हें माफी देने के लिए प्रार्थना करते हैं! मगर क्या यह ठीक है? सही है?

किसानों को यह बखूबी समझ लेना चाहिए यह बात अपने दिल और दिमाग

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में अच्छी तरह रख लेना चाहिए—कि वह मनुष्य हैं, आदमी हैं, इनसान हैं। इसीलिए उन्हें न सिर्फ जिन्दा रहने का हक है। किन्तु मनुष्य की जिन्दगी गुजारने का पूरा अधिकार है। आखिर यह कहने की हिम्मत तो कोई भी नहीं करता कि वे पशु हैं, हैवान हैं। आदमी तो उन्हें सभी मानते हैं, यहाँ तक कि उनके शत्रु और शोषक भी कबूल करते हैं। आखिर काश्तकारी कानून या दूसरे कानून जो उन पर लागू होते हैं, जो उन्हीं के लिए बने, ऐसा बताया जाता है, उन्हें पशु समझ के तो बने नहीं। पशुओं के लिए तो कोई कानून नहीं। पशुओं के मालिकों के लिए भले ही हैं। पशुओं को तो न चोरी की सजा होती है, न व्यभिचार की और न हत्या करने पर फाँसी की। उनसे किसी प्रकार का पावना भी तो सरकार, जमींदार या साहूकार वसूल नहीं कर पाते! मगर किसान के लिए तो ये सब बातें लागू हैं।

तो क्या इन्हीं सब आफतों और तकलीफों को भोगने के ही लिए वह आदमी है या और चीजों के लिए भी? मनुष्य होने के नाते यदि ये बातें उस पर लागू होती हैं तो आखिर अच्छी बातें भी लागू होनी चाहिए। उसके कुछ अधिकार भी तो होने चाहिए। या कि वह सपने की कहानी होगी कि सोने के समय किसी ने स्वप्न देखा कि अशर्फियों से भरा एक बड़ा सा ताँबे का बर्तन कहीं गड़ा हुआ है और उसे वह खूब जोर से उखाड़ रहा है। उसने सोये-सोये बड़ा जोर लगाया तो पाखाना हो गया और नींद खुली तो देखता है कि जोर लगाने से उसे पाखाना तो ठीक हो ही गया है जो खाट पर पड़ा है। मगर अशर्फियाँ या उनसे भरा हंडा न तो उखड़ा ही है और न कहीं पास में गड़ा ही है। उसने उठ के बिस्तर साफ किया और अफसोस में कहा कि धत्तेरे सपने की! पाखाने के लिए तो सच्चा साबित हुआ, मगर अशर्फियों के लिए झूठा!

लेकिन उसे कोई इनसान माने या न माने, आदमी समझे या न समझे। वह खुद तो अपने को आदमी समझे और माने। वह स्वयं तो अपने प्रति आदमी जैसा सलूक करे। पीछे तो गैरों को मजबूरन उसे ऐसा मानना और उसके प्रति ऐसा व्यवहार करना ही होगा। जब हम अपने लड़के का नाम खुद बखुद बसावन रखेंगे तो हमारे शत्रु भी उसे बसावन ही कहने को बाध्य होंगे। बसावन के बजाय उजारन हर्गिज कहने की हिम्मत न करेंगे। किसान अपने आपको इनसान माने और वैसा ही अमल करे। कहने की अपेक्षा करना ही ठीक है। रोज-रोज हम डंका बजाते फिरें, लेक्चर दें या दाँत निपोरें कि हमें आदमी मानो तो कोई सुनेगा भी नहीं। कहते हैं कि कमजोर की बेटी सभी की जोरू बन जाती है। बात सुन के लोग उपेक्षा से हँस देते और कह डालते हैं यह देखो, आदमी बनने चला है।

मगर जब हम अपने कामों और तरीकों से उन्हें मजबूर करेंगे तो उनके लिए कोई चारा ही न रहेगा। सिंह न तो लेक्चर देता और न किसी को हाथ जोड़ता कि हमें सिंह कहो। वह तो अपने से सैकड़ों गुना वजनदार और पहाड़ जैसे ऊँचे हाथी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पर बेखटके हमला करता है। यहाँ तक कि उसका चार दिन का बच्चा भी यही करता है। फलतः हाथी उसे देखते ही थर्रा उठता है। बस, इसी से लोग खामख्वाह सिंह कहते हैं। किसान तो न जाने युगों से अपने को आदमी समझना भूल गए हैं। वे अपने को इतना नाचीज तथा तुच्छ समझते हैं कि ताज्जुब होता है। हिम्मत नहीं, दबी जबान और झुका हुआ सिर! मालूम होता है, कभी के मरे हुए हैं।

इस घृणित और पतनकारी मनोवृत्ति को तिलांजलि देनी होगी। उसे सदा के लिए निकाल फेंकना होगा। जो दुनिया को अमृत जैसे पदार्थ दे और सारा सामान मुहय्या करे वह छोटा क्यों? नीच और तुच्छ क्यों? जिसके हाथ में संसार का गला हो और जिसकी एक करवट में संसार में प्रलय मचे वही अपने को गया-गुजरा और गैरों का—समाज के कोटियों का—कृपा पात्र मानने में धन्य समझे, यह निराली बात है! असल में मानसिक पतन ही भौतिक अधोगति का मूल कारण है और किसान के दिमाग में ही घुन लग गया है। इसे ही अंग्रेजी में अपने में छोटेपन की भावना (inferiority complex) कहते हैं। यह बहुत बुरा मर्ज है। जितना जल्द इससे किसान का पिण्ड छूटे उतना ही अच्छा। इसी तुच्छत्व की भावना ने 'हम तो हुजूर की जूती हैं,' की भ्रान्त धारणा ने जमींदारों और उनके मामूली अमलों तक में यह हिम्मत ला दी है कि मनमाने अत्याचार करे। आखिर बकरी का ही गला काटने सभी दौड़ते हैं। बाघ पर तो किसी की हिम्मत नहीं होती।

चाहे हम कुछ कहें, लेकिन किसान जब तक झटकार के उठ खड़ा न होगा और कड़क के मनुष्य की तरह भोजन, वस्त्र, ओषधि, मकान, पढ़ने-लिखने और सुन्दर सलूक का दावा ठोंक न देगा, तब तक वह यों ही कराहता रहेगा। केवल दावा ही नहीं, किन्तु ललकार करने की जरूरत है। साफ-साफ यह कह देने की जरूरत है कि वह दिन लद गए जब हमें पशुवत समझ वैसा ही व्यवहार हमारे साथ किया जाता था। अब ऐसी हिम्मत करने वालों को लेने के देने पड़ेंगे और परिणाम सूद सहित भोगना पड़ेगा।

और जहाँ तक कपड़े-लत्ते, मकान, दवादारू आदि का सवाल है उसे खुद ही हल कर लेना होगा। क्योंकि कमाता तो आखिर वही है। उसी की कमाई से बाकी लोग 'अन्य के धन पर लक्ष्मीनारायण' बनते हैं। फिर वही उसका मुँह इस मामले में क्यों ताके! हाँ, केवल इतना ही कह दे कि लूटने और छीनने की पहली आदत अब छोड़नी होगी, यदि भला चाहते हैं।

लेकिन जो सलूक गैरों की ओर से होता है उसके बारे में तो साफ-साफ कह ही देना होगा। जो लोग गाली-गलौज और मारपीट के अभ्यस्त हैं और जिनके हाथ और जबान में कोई लगाम या बन्धन नहीं है उन्हें बेलगाम सुना देना होगा कि खबरदार! अब रास्ते पर आइए। नहीं तो याद रहे हमारी जबान गिर नहीं गई है और न हमारे हाथ-पाँव ही गल गए, या आपसे कमजोर हैं। कहीं ऐसा न हो कि आपको अस्पताल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जाने और डॉक्टर वैद्य बुलाने की जरूरत हो जाए। लाठियाँ हैं और कहीं अगर वे उठ गईं तो बला होगी।

जरा सोचिए तो सही। आखिर ये मालदार, जमींदार और कानून के ठेकेदार किसानों को पशु नहीं समझते तो और क्या मानते हैं? बैल से ही किसान खेती करता और गेहूँ, बासमती, चना वगैरह सुन्दर खाद्य पदार्थ पैदा करता है। घी, दूध, खोआ, मलाई भी गाय-भैंसों से वही पैदा करता है। मगर क्या उन्हें गेहूँ, बासमती, घी, दूध खिलाता है? यह बात तो भूलकर भी नहीं सोचता। यह तो सनातन धर्म नहीं है। सनातन बात तो यह है कि उन्हें पुआल, भूसा और घास खिलाए—ऐसी चीजें जो किसान के किसी काम की नहीं। वह पुआल या भूसा खाता थोड़े ही है। यहाँ तक कि जलाने में भी वह ज्यादा काम का नहीं। उसकी आग रद्दी और फौरन बुझने वाली होती है! पुआल का और खासकर भूसे का धुआँ—तो इतना कड़वा होता है कि बर्दाश्त भी नहीं होता। इसलिए जैसा 'उड़ा हुआ सत्तू पितरों को' ठीक इसी प्रकार ये चीजें अपने पशुओं के लिए रख छोड़ता है और उन्हें खिलाता है।

और जमींदार या धनी ऐसे मामले में उसके साथ कैसे पेश आते हैं? ठीक उसी तरह। किसानों को वे लोग भी अपने पशु समझते हैं। फलतः अपने लिए जिस चीज को घास-भूसे से भी बदतर या रद्दी समझते हैं उसे ही किसान के लिए छोड़ शेष पैदावार को अपने लिए ले लेना चाहते हैं, ले लेते हैं! खेसारी, सावाँ, मंडुआ, कुर्थी, साठी वगैरह अन्न ऐसे हैं जिन्हें जमींदार छू नहीं सकते? उन्हें देखकर भी वे बीमार हो जाएँ। उनके कुत्ते तक भी जिन्हें सूँघते नहीं। फलतः उनके लिए ये बेकार और घास-भूसे जैसी ही हैं। यही किसानों के हिस्से में रहती है। कभी-कभी तो इन पर भी हमला हो जाता है यदि अच्छे गल्ले न मिलें। जिस प्रकार किसान पशुओं के हिस्से के पुआल, भूसे और घास को बेच भी देता है और पैसा न लेता है। पीछे तो पशुओं को चरने के लिए हाँक देता है। जमींदार भी खेसारी आदि को बेच के पैसा बना डालते और किसान को बिना मारे भूखों मरने को छोड़ देते हैं। यह आये दिन का व्यवहार है और दुनिया को इसमें कोई विचित्रता नहीं मालूम होती? लेकिन क्या यह बर्दाश्त के काबिल है?

अगर सरकार और जमींदार वगैरह इन किसानों को पालतू पशु भी समझते तो भी एक बात थी। मगर वे तो उन्हें जंगली जानवर समझते हैं! हालाँकि यह भी कहना उतना सही नहीं है। आखिर जंगली जानवरों की भी तो फिक्र इसलिए की जाती है कि कहीं फसल को खा न जाएँ, या उसका नुकसान न कर दें। मगर ये लोग तो किसानों की कतई फिक्र नहीं करते! धोबी गधे को पालता है तो गो उसे घास-भूसा नहीं देता, फिर उसे ढूँढ़-ढाँढ़ कर लाता है और झोंपड़े में ही सही, उसे खूँटे में बाँधता तो है। उसके लिए कम से कम एक झोंपड़े, रस्सी और खूँटे का प्रबन्ध तो करता है। इतना ही नहीं बीमार हो जाए तो उस गधे की दवा भी करता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है। क्योंकि मर जाने पर उसका काम बिगड़ेगा और दूसरे गधे के लिए खर्च करना होगा! यही बात किसान भी अपने पशु के लिए करता है। खुद भले ही न खाए। मगर उसे खिलाने और हट्टा-कट्टा रखने की कोशिश तो करता ही है।

परन्तु किसान तो ऐसा पशु या गधा है कि उसके धोबी को न तो इसके लिए झोंपड़े, खूँटे और रस्सी की ही फिक्र है और न बीमार होने पर दवा की ही! उसे तो उलटे इस बात से खुशी होगी कि यदि किसान और उसका सारा परिवार मर जाए तो उसका खेत उसके जमींदार, साहूकार आदि को अनायास ही मिल जाएगा। फिर तो उसी खेत का बन्दोबस्त दूसरों के हाथ करके भरपूर नजराना और सलामी लेगा! काफी लगान भी वसूल करेगा! पुश्त दर पुश्त से ये लोग किसान की कमाई पर ही गुलछर्रे उड़ाते हैं। मगर भूलकर भी कभी उससे नहीं पूछते कि खाना, कपड़ा, दवा या मकान है या नहीं। अतएव जब तक मजबूर न किए जाएँ वे कभी वैसा न करेंगे और उन्हें मजबूर कर सकता है किसान ही।

जमींदार न सिर्फ अपनी चिन्ता और अपने परिवार के लिए गेहूँ तथा मलाई की फिक्र करता, महल और मखमल चाहता और फर्स्ट क्लास में चलने का प्रबन्ध करता, किन्तु अपने कुत्ते और पालतू जानवरों के लिए भी! वे भी घी मलाई खाते, मखमली गद्दे पर बैठते और फर्स्ट क्लास में चलते हैं। जिस मोटर पर जमींदार या मालदार चलते हैं उसी पर उनका कुत्ता भी चलता है। उनकी गोद में बैठता है। मगर किसान को गोद में बैठना तो दूर रहे! वह उनकी मोटर के पास फटकने तक नहीं पाता। फिर ठेठ धनियों के पास पहुँचने की क्या बात? हमने एक बार देखा कि महाराजा नेपाल के कोई बड़े अफसर मुजफ्फरपुर में रेल के फर्स्ट क्लास में बैठे हैं। उनके दो बड़े कुत्ते भी वहीं हैं। उनके सामने सुनहले कटोरे में पिसा पिसाया बादाम और दूध पड़ा है। मगर वे उसे छूकर-सूँघकर छोड़ देते हैं! सरकार जब अपना लेखा और बजट बनाती है तो जेल में रहने वाले डाकुओं और बदमाशों के लिए भी खाना, कपड़ा, मकान और दवा का प्रबन्ध करती है और उसके लिए पैसे रखती है। मगर एक से एक सुन्दर पदार्थ पैदा करके उन्हें और दूसरों को खिलाने वालों का पुर्साहाल कोई नहीं! सचमुच ही दुनिया दीवानी है!

किसान अच्छे पदार्थों को पैदा करके अपने और अपने बाल-बच्चों का मुँह बाँध लेता है। उनका एक टुकड़ा भी मुँह में जाने नहीं देता। सिर पर लाद के धनियों के घर तक पहुँचा आता है! ऐसा गधा और नालायक तो वह है! गाय के बच्चों को बिना पिलाए आप चाहें कि उसका दूध दुह लें, तो असम्भव है। पीछे भी कुछ न कुछ दूध रह ही जाता है जो बच्चा पीता है। जो लोग फूका या प्रकारान्तर से यों ही दुह लेना चाहते हैं वह गाय-भैंसों से सदा के लिए हाथ भी धो बैठते हैं! मगर किसान ऐसी गाय है कि इसका सारा दूध—सारा गेहूँ, घी, दूध—दुहा चला जाता है और इसके बच्चे देख भी नहीं सकते! खूबी तो यह है कि यह ऐसा फूका है कि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यह गौ कभी खराब भी नहीं होती। यह तो वंश परम्परा से बराबर यों ही दुही जा रही है।

इसका दूसरा उपाय है नहीं, सिवाय इस प्रकार दुहे जाने से साफ इनकार करने के। जिस बात को पशु भी स्वीकार नहीं कर सकते उसे हम इनसान होके स्वीकार करें, इससे तो डूब मरना अच्छा है। जो गाय-भैंस बहुत सीधी होती और जब भी मर्जी हो दुही जा सकती है, उसके बच्चे दूध नहीं पाते और भूखों मरते हैं। दुहने वाले चाहते हैं कि उसका रत्ती-रत्ती दूध निकाल लें। मगर जो पाँव और सींग चलाने वाली होती है और कूद-फाँद करती है, न सिर्फ उसके बच्चे दूध पीते हैं, किन्तु उसे दुहने के समय का संकट भी कम ही भोगना पड़ता है। एक तो दुहने वाले बहुत सजग होके ही उसके पास जाते हैं, दूसरे बहुत चुचकार-पुचकार के जैसे-तैसे थोड़ा दुह-दाह के चटपट हट जाते हैं। क्योंकि देर करने में उछाल मारने, इससे दुहे दूध के भी गिर जाने और चोट खाने का भी खतरा रहता है। क्या सीधी गाय-भैंसों को भी कोई चुचकारता है?

यही दुनिया का तरीका है। जब तक किसान सीधा बना रहेगा और सींग-पाँव चलाना न सीखेगा इसका दोहन रुक नहीं सकता। दोहन से साफ इनकार करने के सिवाय और कोई उपाय है नहीं । गाय को सभी दुह लेते हैं, दुहना चाहते हैं, मगर कुतिया-बिल्ली या चुहिया को नहीं। क्यों? इसलिए न कि वह दुहने वाले को फौरन काट लेंगी? यदि उनमें यह बात न होती तो उनका भी पिण्ड गाय की ही तरह नहीं छूटता। यह याद रहे।

यदि हम खुद सत्तू खाएँ, खेसारी और मंडुआ खाएँ, तो हमें मलाई खिलाने की गर्ज किसे होगी? जब पशु घास खाने से इनकार करता है तो हजार कोशिश करके उसे अन्न, गुड़ आदि की मदद से खिलाया जाता है। मगर किसान ऐसा न करके जोई पाए उसे ही खा-पी लेता है। फिर कौन नादान उसे अच्छी चीजें देगा? जब चिथड़ा पहनना ही पसन्द है, तो मखमल क्यों मिलेगा? जब फूस की झोंपड़ी ही से सन्तोष है तो महल को क्या गर्ज पड़ी है कि किसान के पास आए? जब 'लिख लोढ़ा पढ़ पत्थर' ही बनने की मर्जी है, तो फिर उसे पढ़ाने-लिखाने की चिन्ता नाहक कोई क्यों करेगा? अगर बीमारी की दशा में भी कराहते रहने ही की आदत है और ओझा-सोखा या खाक-भभूत से ही सब्र है तो डॉक्टर-वैद्य को क्या कुत्ता काटे है कि उसके पास आएगा?

जब लड़का रोता है तो लाख काम छोड़ के माँ उसे पिलाती है। नहीं तो उसे यों ही छोड़ के काम करती रहती है। जब गाय का बच्चा चिल्लाता है तो लोग समझते हैं कि गाय दुह लीजिए, बच्चा भूखा है। जब किसान ही अपनी जरूरी चीजों के लिए पुकार मचाएगा, चिल्लाएगा तभी दुनिया फिक्रमन्द होगी और उसे वे चीजें मिल के रहेंगी। पेट में दर्द हो सही। मगर चुपचाप पड़े रहिए तो आपका परम प्रेमी भी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दवा न करेगा। मगर यदि एक अजनबी भी कहीं दूर से आह भरे तो खामख्वाह लोग उसके पास पहुँचते और उसके लिए कुछ न कुछ करते ही हैं।

किसान खुद अपने दुःख-दर्द की पुकार नहीं मचाता है। इसीलिए उसे चूसनेवाले निश्चिन्त हैं। यदि वह एक बार सँभल के चिल्लाए तो उनके पेट में ऊँट कूदेगा।

इसीलिए किसान का यह फर्ज है कि मनुष्योचित अधिकारों के अनुसार आदमी की जिन्दगी गुजारने के लिए जितनी चीजें जरूरी हैं उनके लिए दावेदार बने। मगर जरा जम के और मुस्तैदी से। दबी जबान से आवाज उठाने से काम नहीं चलेगा। अपमान सूचक कामों और व्यवहारों के सामने सिर झुकाने से वह साफ इनकार कर दे। अच्छा खाना खाने के लिए कमर बाँध ले। सुन्दर कपड़ा पर्याप्त परिमाण में पहनने का संकल्प कर ले। अच्छे मकान में रहने का पक्का इरादा कर ले। कीड़े-मकोड़े की तरह मरने से साफ नहीं कर दे और स्वास्थ्य के सामान तथा ओषधि के लिए फिक्र करे। पढ़ने-पढ़ाने और मनोविनोद के पूरे सामान मिलें इसका दावा ठोंक दे। इस प्रकार उसके पूर्ण विकास तथा सम्मानपूर्वक जीवनयापन का पूरा अवसर जरूर चाहिए। इसका निश्चय कर ले। साथ ही, यह अवसर अविलम्ब मिले यह दावा करे और उससे हरगिज न डिगे।

(3)
हिसाब करें और हिसाब माँगें

अच्छा माना कि किसानों ने यह तय कर लिया कि वे खाएँगे-पिएँगे और मनुष्य की जिन्दगी गुजारेंगे। लेकिन इससे क्या? क्या चाहने और तय कर लेने मात्र से ही सारा सामान और सभी उपयोगी पदार्थ उन्हें मिल जाएँगे? छोटे-छोटे बच्चे मिट्टी का घरौंदा बनाते और उसमें बैठकर मनोराज्य के लड्डू खाते हैं। इनके निश्चय में कोई त्रुटि नहीं और उनकी तैयारी में भी कोई नुक्स नहीं होता। मगर इससे असली स्थिति बदल थोड़े ही जाती है। जब किसानों के पास चीजें हैं ही नहीं, तो लाख यत्न करें, गर्जें, पुकारें, संकल्प करें। मगर कुछ होने जाने का नहीं।

यह ठीक है कि अपमानपूर्ण परिस्थिति में जिन्दगी बिताने के लिए जो कारनामे औरों के द्वारा होते हैं वह उनके इस जागरण और अध्यवसाय से मिट जाएँगे जरूर। मिट गए हैं भी, बहुत अंशों में! किसी बड़े से बड़े की भी अब हिम्मत आसानी से नहीं होगी कि उन्हें मारें-पीटें या गालियाँ दें। जुर्माने और गैरकानूनी वसूलियाँ भी जरूर खत्म हो जाएँगी। उनसे हरी लेने और बेगार करवाने का खयाल भी जमींदारों तथा औरों के दिमाग से जाता रहेगा। साधारणतया जो उनके प्रति छोटेपन की धारणा कुछ लोगों में पाई जाती है वह भी खत्म हो जाएगी। वे मुर्गी और बकरी की तरह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आसानी से जिबह किए जाने योग्य जो अब तक माने जाते रहे हैं वह बात भी नहीं रहेगी!

मगर इतने से ही तो काम चलने का नहीं। यह तो एक प्रकार से नकारात्मक या निषेधात्मक (Negative) पक्ष हुआ। विधानात्मक (Positive) पक्ष ही तो असल चीज है। वह इससे कैसे पूरा हो जाएगा? जीवन को सुखमय और समुन्नत बनाने की सामग्री तो बहुत है। वह कुछ थोड़ी बहुत है नहीं कि मामूली उछल-कूद या कोशिश से हासिल हो जाए। आखिर 'बिलाई बाघ थोड़े ही जनेगी'। ऐसी दशा में तो अब तक की बताई सारी बातें 'मनमोदक नहिं भूख बुताई' को ही चरितार्थ करेंगी। जब तक असली कठिनाई का समाधान नहीं हो जाता इस कोरी शेखचिल्ली की गप्प से कुछ होने जाने का नहीं।

बात तो ऊपर से देखने से सही मालूम पड़ती है। यही दशा आज है इसे कौन इनकार करेगा? आज का किसान तो सचमुच फटाहाल अपने करम को कोसता है। मगर इसे ही तो मिटाना है। और यह मिटाने की बात जितनी कठिन मालूम होती है, असल में उतनी है नहीं। इसीलिए सभी दिक्कतें अधिक अंशों में ऊपरी और दिखावटी ही हैं। बात असल यह है कि न तो हमने—ऐसे सवाल उठानेवालों ने—और न किसानों ने ही इस समस्या का विचार भीतर से किया है। इसीलिए मुश्किल का पहाड़ सहसा सामने खड़ा नजर आता है जिसे पार करना आसान नहीं। कुछ महज खयाली बातें हैं जिनके करते सारी बला आई है। वह महज खयाली है और खयाल के बदलते ही सारा नक्शा ही पलट जाएगा। जैसे सोनेवाले को सपने में उसका सिर कटता नजर आता है, या उसको पीछे कोई खूँखार जानवर आता दीखता है और उससे बचने के लिए वह बेतहाशा दौड़ता-हाँफता है। मगर नींद खुलते ही यह सारी आफत लापता हो जाती है। ठीक वही हालत किसान की है।

अच्छा तो आइए जरा तह में घुसें और देखें कि बात असल में है क्या? यह तो निर्विवाद है कि कानून के ठेकेदारों, जमींदारों व साहूकारों के घर वह चीजें पैदा नहीं होती हैं जो मानवीय जीवन के लिए जरूरी हैं। वह तो किसान के ही खेत और खलिहान में—घर में—पैदा होती हैं। उन्हें पैदा करने की ताकत भी उसी में है। अमीर और शासन की ऐंठवाले उन्हें पैदा कर नहीं सकते। इतना ही नहीं, वह तो इतना भी बल नहीं रखते कि उठाकर किसान के घर से वह चीजें अपने यहाँ ले जाएँ। यह तो उसी किसान का काम है कि सिर पर लाद के उनके घर, गेहूँ, चावल, दूध, घी आदि पहुँचा देता है। यह ऐसा जादू है—यह ऐसा मेस्मैरिज्म है—कि हैरत में आ जाना पड़ता है। लोग कहते हैं कि वह जादू क्या जो सिर पर चढ़के न बोले? मगर यहाँ तो प्रत्यक्ष ही सिर पर चढ़ा जादू है। कमाते-कमाते पस्त है, भूखा है, बीमार है, कमजोर है, फिर भी सभी चीजें मालदारों के यहाँ पहुँचाने में परेशान है! तो क्या यह जादू उसके सिर से उतर नहीं सकता? यही तो असली सवाल है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हम तो मानते हैं कि उतर सकता है और बहुत आसानी से उतर सकता है। रूस के मजदूरों तथा किसानों पर तो इससे भी बड़ा जादू सवार था। वह तो अपने शोषकों के सरदार जार बादशाह को छोटे भगवान (Little god) मानते थे। वह पस्त इतने थे कि न तो उनमें किसानों का लाल झण्डा उठाने की हिम्मत थी, न स्वतन्त्र सभा करके उस भयंकर शोषण का विरोध करने की जुर्रत थी और न किसानों के असली नेताओं के साथ चलने की शक्ति ही थी। वे तो सिवाय हाथ जोड़ने और दाँत निपोरने के—आरजू मिन्नत करने के और कुछ जानते भी न थे। जिस प्रकार यहाँ पहले कभी-कभी देखते और सुनते थे कि जमींदार जूते से किसानों को पिटवा रहा है और जल्लाद का दबदबा बना है। फिर भी किसान कहता जाता है 'दोहाई सरकार के आप तो माँ-बाप हैं, आपका जूता सिर पर है, क्षमा करें' आदि-आदि। ठीक वही दशा उनकी थी। वह खूजीजार और उसके मुसाहबों की, संगी-साथियों की जय-जयकार के सिवाय दूसरा कुछ भी बोलना जानते ही न थे।

इसीलिए तो जब कष्टों के ऊब कर फरियाद भी करनी हुई तो अपने पुरोहित नेता श्री पादरी गेपन, जिसे खुफिया पुलिस से सम्बद्ध भी बताया जाता है, के साथ जार का ही झण्डा लेकर और उसी की जय पुकारते हुए सन् 1905 ई. की 22 वीं जनवरी रविवार को महाराज के निवास स्थान, विण्टर पैलेस के पास गए। फिर भी परिणाम उलटा ही हुआ और गोलियों की वर्षा से जार ने उन्हें वहीं कई हजार की तादाद में—स्त्री, पुरुष, बच्चे सभी को सुला दिया! सचमुच खून की धारा बह निकली। फलतः उसी दिन से 22 वीं जनवरी का रविवार वहाँ के इतिहास में 'खूनी रविवार' (Red Sunday) पुकारा जाने लगा! रोटी और कपड़ा माँगने गए थे। मगर मिलीं गोलियाँ!

फिर भी बारह वर्ष बीतते न बीतते 1917 ई. की फरवरी के अन्त के साथ न सिर्फ उस खूनी जारशाही का खात्मा हुआ। किन्तु उसके आधार और दोस्त मालदारों, जमींदारों और अत्याचारियों की भी अन्तिम घड़ियाँ आ गईं। बारह वर्ष का दिन कोई लम्बी मियाद किसी भी देश के इतिहास में नहीं मानी जाती। मगर इसी के बीच हालत यह हो गई कि वहाँ किसान-मजदूर राज्य कायम होने का पूरा सामान तैयार हो गया। सन् 1917 के बीतने के पहले ही सचमुच किसान-मजदूर राज्य कायम भी हो गया।

क्या हमारे मुल्क में भी वही बात नहीं हो सकती है? यदि उनके सिर से वह भीषण जादू छोटी सी मुद्दत में ही सोलहों आने उतर सकता है और वही मजदूर और किसान 'छोटे भगवान' की प्रार्थना के बजाय उनके खून के प्यासे बन सकते हैं तो क्या हमारे किसानों का जादू बना ही रहेगा? ये किसान तो आज रूसी किसानों से हर बात में कहीं आगे हैं। शायद इनमें कमी एक ही चीज की है और वह है वैसा ऊँचे दर्जे का नेतृत्व—ऐसे नेताओं की कमी जो उन्हीं के लिए दिन-रात मरते-जीते

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हों। मगर यह तो पूरी हो सकती है और होगी यदि किसानों को जिन्दा रहना है, यदि उन्हें आदमी की जिन्दगी गुजारनी है।

बात असल यह है कि किसान सभी पदार्थ पैदा करता है सही। लेकिन न तो स्वयं उसका हिसाब करता है और न औरों से माँगता ही है। नतीजा यह होता है कि अमानत में खयानत हो जाती है। जब खुद हिसाब न करेगा और पता लगाएगा कि कौन सी चीज कितनी और किस काम की कहाँ जा रही है, तो फिर औरों से उसका हिसाब माँगेगा कैसे? हिसाब लगाने पर ही उसे पता चलेगा कि किसकी कितनी कीमत है। क्योंकि तभी जान सकेगा कि उसके पैदा करने में कितनी मेहनत लगी है, कितना खून पानी बना है। फिर तो हिसाब माँगने को मजबूर होगा। आखिर कीमती चीजें यों ही किसी को कोई देता है क्या?

रूस के और अन्य देशों के किसानों की भी तो पहले यही हालत थी। जैसे यहाँ का किसान अपने को मशीन की तरह पदार्थों के उत्पादन का साधन मात्र मानता है। उसका हिसाब करने की न तो अपने आप में योग्यता मानता है और न जरूरत ही समझता है। असल में वह तो स्वार्थियों के द्वारा तरह-तरह के उपायों से मशीन बनाया गया है। ठीक यही दशा गैर-मुल्कों के किसानों की भी थी। जब भूख से तड़पते फ्रांस के किसानों ने शासकों और शोषकों से रोटियाँ माँगीं, तो उत्तर मिला घास चर लो! अधिकारारूढ़ मतवाले समझते थे कि यह तो मशीन है। स्वयं कुछ कर सकते नहीं। इसी से खून में आग लगाने वाला वैसा दर्पपूर्ण तथा घृणासूचक उत्तर दिया। मगर जिस प्रकार उस अन्धे उत्तर ने तथा जार की गोलियों ने मजदूरों एवं किसानों को बदल दिया और उनके दिलों में युगान्तर ला दिया—क्रान्ति ला दी। फलतः वे उनसे हिसाब माँगने लगे जिसके फलस्वरूप बाहरी क्रान्ति हुई। जिससे जालिम खत्म हुए। ठीक वही बात यहाँ क्यों नहीं होगी? यहाँ भी मशीन बने ये किसान भी क्यों न जाग्रत होके हिसाब माँगेंगे। उन्हें माँगना ही होगा। इस नारकीय जीवन से त्राण पाने का दूसरा रास्ता भी नहीं। संसार का इतिहास एक ही रास्ता इसके लिए बताता है और वह यह है कि कमाने वाले हिसाब करें और हिसाब माँगें।

जब सरकार का लेखा (बजट) तैयार होता है तो बड़ी दौड़-धूप और उछल-कूद होती है। अच्छे से अच्छे दिमाग खर्च होते हैं, ताकि आमद और खर्च की पूर्ति हो। चाहे नए टैक्स लगें या पुराने ही बढ़ाएँ जाएँ, या और ही कोई उपाय सोचा जाए। मगर आमदनी पूरी हो ताकि पहले से ही बँधे बँधाए खर्च चल सकें। आमतौर पर ऐसा कभी नहीं होता कि आमदनी के ही अनुसार खर्च की मदें और उनकी मात्रा ठीक की जाती है। किन्तु खर्च की सारी बातें पहले तय कर ली जाती हैं। कहाँ कितना खर्च होगा यह पक्का कर लिया जाता है। उसके बाद आमदनी की फिक्र होती है और मौजूदा आय खर्च का काम नहीं चला सके तो उनके नए रास्ते ढूँढ़ निकाले जाते हैं!

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यही बात धनिमों और जमींदारों के यहाँ भी होती है। उनके कुत्ते, खरगोश, चूहे, पालतू बाघ, हाथी, घोड़े और रण्डी, वेश्या तक के खर्च तय होते हैं। फिर उनकी पूर्ति की फिक्र की जाती है। मगर किसान की तो उलटी हालत है। वह तो आमदनी के ही अनुसार खर्च ठीक करता है। इसीलिए उसे अपना पेट काटने की नौबत आती है और चिथड़े लपेटने तथा बीमारियों में कीड़े-मकोड़े की तरह मरने की भी। हिसाब न रखने और बजट न बनाने से यही होता ही है। कहा जाता है कि जरूरत आविष्कारों की जननी है। इसका तो साफ अर्थ है कि जब हमने अपनी जरूरतों को निश्चय कर लिया तो उनकी पूर्ति का रास्ता तो खामख्वाह निकल ही आएगा।

एक बात और भी है। सरकार अपना बजट पूरा करती है खामख्वाह। हालाँकि उसमें व्यय की कितनी ही ऐसी बातें रहती हैं जो उतनी जरूरी हैं नहीं जितनी कि किसान के द्वारा तैयार किए गए बजट की। उसमें तो जिन्दगी के लिए, अनिवार्य चीजें कपड़ा-लत्ता, खाना, दवा, मकान, पढ़ना-लिखना और आकस्मिक घटनाओं का प्रतिकार आदि ही मदें होती हैं। अब यदि किसी से भी पूछा जाए कि उनमें कौन सी मद हटाई जाए या किसमें कमी की जाए, तो क्या उत्तर देगा? क्या यही कहेगा कि जहाँ कुनाइन की चार गोलियाँ चाहिए, वहाँ दो ही रहें? तब तो उसके मानी कुछ भी नहीं। यदि आधा सेर की जगह पाव भर खाने की बात कहे तो यह कैसी होगी? रोज-रोज के भोजन का सवाल है न? वह घटेगा तो किसान परिवार मर ही जाएगा। धोती कपड़े या मकान में कमी करना भी असम्भव है। पढ़ने-लिखने का भी वही हाल है। आकस्मिक विपत्तियों के बारे में तो कुछ कह ही नहीं सकते। तो फिर कमी कहाँ होगी और किस मुँह से वही नेता कमी की बातें करेंगे जो अपनी बजट में वाहियात खर्च की गुंजाइश रखते हैं? जिनके कुत्ते, बिल्लियों के लिए भी दूध, घी का प्रबन्ध है?

किसान की आय और उसके व्यय का पक्का हिसाब न रहने के कारण ही हजार अटकल लगाए जाते हैं और उनके रक्त से मोटे बनने वाले लोग बेहूदी दलीलें पेश करते हैं कि किसान की यह आमदनी है। उसके पास बहुत पैसे हैं। उसका परिवार यों आराम करता है क्यों करता है। वह खूब धनी और सुखिया है, आदि-आदि। इसीलिए उस पर यह इलजाम भी अकसर लगाया जाता है कि जानबूझकर कर और लगान या महाजन का पावना देना नहीं चाहता है। उसे कुछ बिगड़े दिमागवालों ने बहका दिया है। ये अटकलबाजियाँ और यह खयाली उड़ान तब तक रुक सकती है नहीं; ये बिना सिर-पैर वाले और बेबुनियाद आरोप और चार्ज तब तक बन्द होने के नहीं, जब तक किसान की असली माली हालत का आय-व्यय का कच्चा चिट्ठा सबके सामने रख नहीं दिया जाता। जवानी लड़ने और कठहुज्जत करने से काम नहीं चलेगा। हमें तो पहाड़ की चट्टान जैसी वास्तविक हकीकत को आईने में दिखा देना चाहिए। किसान सभा भी इस चिट्ठा और लेखा (बजट) के अभाव में केवल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अटकलपच्चू बातें ही कर सकती है। फलतः उसका असर नहीं हो सकता है। किसान का बजट विस्तृत रूप में देखें तो दुनिया का माथा घूमने लगे और युगान्तर हो जाए। फिर तो सारी बतकही बन्द हो जाए।

जो लोग दलील करने की हिम्मत करें कि गेहूँ की जगह जौ और खेसारी से भी तो किसान का काम चल सकता है और घी, दूध न भी हो तो कोई हर्ज नहीं, उनका तो मुँहतोड़ उत्तर उनकी बेहयाई को रोकने के लिए यही है कि यदि किसान जौ और खेसारी खा के जिन्दा रह सकता है तो राजे-महाराजों और साहूकारों के कुत्ते क्या उसे नहीं खा सकते। क्या वे बिना गेहूँ, बासमती और घी, मलाई के जिन्दा नहीं रह सकते? यदि नहीं, तो क्या किसान उन कुत्तों से भी गया गुजरा है? यदि हाँ, कहने की धृष्टता वे लोग करें तो उन्हें पागलखाने में भेजने का उपाय करना होगा। यह भी तो है कि यदि उनके कुत्ते और घोड़े आदि नहीं ही जिन्दा रहें या नहीं ही खाएँ तो हर्ज क्या होगा, न तो उन्हें हल ही खींचना है और न दूध-घी पैदा करना है जिससे दुनिया का काम चलता है और खामख्वाह उन्हें रहना ही है तो किसान के मत्थे क्यों रहें? क्या वे कुत्ते वगैरह किसान के खुदाया पूर्वज हैं? या कि उसने उनका कर्ज खाया है कि उन्हें घी, मलाई खिला के उस कर्ज का चुकता करे?

सबसे बड़ी बात तो यह है कि जब बच्चे पैदा होते हैं तो उनमें कोई विशेषता नहीं होती कि जमींदार के बच्चे घी, मलाई खाएँ और किसान के बच्चे सत्तू चाटें। वे तो समान ही होते हैं जो ही खिलाया जाए वही खा सकते हैं। मगर होता यह है कि किसान तो जन्म के बाद से ही केवल सत्तू वगैरह या सूखी रोटी भात ही पाता है। फलतः उसे ही खाने की आदत उसे हो जाती है। विपरीत इसके धनी लोग बचपन से ही हलवा, मलाई उड़ाते रहते हैं। इसीलिए उनका स्वभाव वैसा हो जाता है और उसके बिना उनका काम नहीं चलता ऐसा माना जाता है। जब यही बात है तो किसान को भी बचपन से ही क्यों न वही आदत डाली जाए, जिससे घी-हलवे के बिना उनका भी काम न चले? जब वह अच्छे पदार्थ खाने लगेगा तो खामख्वाह उसे उसकी जरूरत महसूस होगी और दुनिया भी कहेगी कि इसे तो यही पदार्थ मिलने चाहिए। वह खुद हजार कोशिश करेगा कि वही चीजें उसे प्राप्त हों। इसीलिए तो खाना-पीना सीखने की बात शुरू ही में कही गई है। इसीलिए भी वह जब अपने आय व्यय का स्वाभाविक चिट्ठा तैयार करेगा तो दुनिया को मजबूरन उसकी जरूरतों के सामने सिर झुकाना ही होगा।

कहने वाले कहने की हिम्मत फिर भी कर सकते हैं कि किसान की गुजर तो दूध मलाई के बिना भी हो सकती है। वह तो मट्ठे तथा सत्तू से भी जिन्दा रह सकता है। इसी प्रकार और पदार्थों की भी उतनी जरूरत उसे नहीं है। किसान की संख्या भी बहुत है। फलतः यदि दुबले या कमजोर होके, बीमार और रोगी होके उनमें कुछ मरते भी हैं तो काम नहीं रुकता। मगर श्रीमान और राजेबाबू तो हलवा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और पूड़ी के बिना मर ही जाएँगे। यदि उन्हें प्रतिदिन दूध-घी न मिले तो रोगी और आसक्त होके चल बसेंगे। यह भी नहीं कि वे अधिक हैं। वे तो केवल मुट्ठी-भर हैं। इसीलिए उनकी और किसानों की मौत बराबर नहीं है। इसलिए उनकी जरूरतों की फिक्र पहले की जाती है—पहले की जानी चाहिए और उसी के बाद किसान की खबर ली जानी चाहिए, न कि पहले ही। हाँ, यदि उन्हें खामख्वाह मार ही डालना हो तो बात ही दूसरी है। मगर तब तो यही बात साफ-साफ कह देना चाहिए। यों डूबके पानी पीना ठीक नहीं है।

बात तो सुनने में अच्छी लगती है और मालूम होता है वकालत अच्छी की गई है। लेकिन यहाँ तो बुनियादी सवाल है कि किसान भी वैसा ही क्यों न बने कि बिना सुन्दर से सुन्दर पदार्थों के वह जिन्दा ही न रह सके? हम तो उसे भी वैसा ही बनाना चाहते हैं और इसमें छिपाने की कोई बात नहीं है। जो लोग उसी की कमाई के बल पर पैसे बनाना चाहते हैं उनके रास्ते में तो रुकावट भी हो सकती है। क्योंकि उन पदार्थों को वे पैदा नहीं कर सकते। फलतः दूसरों के आश्रित होके ही उन्हें रहना पड़ेगा। मगर किसान तो खुद बढ़िया से बढ़िया चीजें पैदा करता है। इसलिए उसका जीवन राजे-महाराजों जैसा बनने में कोई भी बाधा और हिचक नहीं है। अगर कोई बाधा है तो यही कि उसने सामूहिक रूप से ऐसा बनने का निश्चय नहीं किया है। और वही निश्चय हम करना चाहते हैं।

लेकिन यह बात छोड़ भी दें तो भी एक और बात इसी सम्बन्ध में विचारणीय है। कहा जाता है कि पूरे आराम और विलास की सामग्री न होने से जमींदार और मालदार लोग जीवित न रह सकेंगे रोगी तथा आसक्त हो जाएँगे। बात तो सही है और न हमीं चाहते हैं कि उनकी यह हालत हो और न किसान ही चाहता है। फिर भी हम तो हिसाब करने और माँगने की बात बोल रहे हैं। तो क्या किसान के लिए यह जरूरी है कि वही उन धनियों के जिन्दा रहने की भी फिक्र करे? बल्कि क्या वह अपने आप जीवित रहने की चिन्ता छोड़ के भी उनकी चिन्ता करे? यदि हाँ, तो क्यों? यदि वे लोग किसान की जरा भी फिक्र नहीं करते, प्रत्युत उसके मर जाने से जैसा कि कह ही चुके हैं, उन्हें तो फिर खुशी ही होती है, किसान को ही क्या पड़ी है कि उनकी परवाह करता फिरे और इस प्रकार न केवल स्वयं मरे किन्तु सारे परिवार को भी घुल-घुल के मरने को विवश करे! इतना ही नहीं क्या वह इस प्रकार आनेवाली पीढ़ी के लिए भी यह मार्ग दिखा दे कि राजे-महाराजों की फिक्र करके मरते रहना? उचित तो यही है कि वह अपनी फिक्र करे और मालदार लोग अपनी।

और अगर राजे-महाराजे मर ही जाएँ तो इसकी चिन्ता किसान को क्यों? उससे उसका या दुनिया का हर्ज ही क्या होता है? संसार में छोटे-बड़े, धनी-गरीब हजारों मरा करते हैं। मगर इसकी चिन्ता किसे होती है? जिसकी उससे हानि हो उसे यदि फिक्र हो तो यह बात समझ में आने की है। मगर यहाँ तो यह बात है नहीं। असल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में तो उलटी बात होनी चाहिए। यहाँ तो किसान और हल चलाने वाले के मरने पर ही दुनिया को तथा राजे-महाराजों को भी फिक्र करनी चाहिए और उपाय ऐसा करना चाहिए कि वे मरने न पाएँ। क्यों? इसीलिए कि गेहूँ, चावल, घी, दूध वगैरह चीजें ऐसी हैं कि इनके बिना संसार का काम चल नहीं सकता, खासकर धनियों और श्रीमानों का, हाकिम-हुक्कामों का और इन चीजों को पैदा करता है किसान ही। इससे तो स्पष्ट है कि एक किसान मरा तो सैकड़ों और हजारों का अन्नदाता मरा, घी, दूध देनेवाला मरा, आराम पहुँचानेवाला मरा। अब यदि उसके लिए शोक न करें, चिन्ता और परवाह न करें, तो करें किसके लिए? पत्थर के लिए? यही तो अक्ल का तकाजा है कि हम उसके फिक्रमन्द हों, उसके लिए गम मनाएँ और ऐसी कोशिश करें कि वह मरने न पाए! यदि किसान ज्यादा हैं तो गेहूँ, घी, मलाई भी तो ज्यादा चाहिए। फलतः यदि एक भी मरा तो उसमें कमी तो होगी ही।

लेकिन यदि कोई धनी मरा, जमींदार मरा, शासक और शोषक मरा तो क्या हुआ? यही न कि हजारों किसान की कमाई का गेहूँ, घी, दूध आदि हजम कर जाने वाला मर गया? यदि इसे और भी साफ शब्दों में कहें तो कह सकते हैं कि वर्तमान समय का कुम्भकर्ण मरा। हम किसी और अर्थ में यह बात नहीं बोल रहे हैं जिससे लोग बुरा मान जाएँ। हम तो दलील करने वालों की दलीलों की उधेड़बुन करके उनकी असलियत को सबों के सामने स्पष्ट रूप से रख रहे हैं। ताकि निष्पक्ष विचार किया जा सके।

हाँ, तो यदि इस दृष्टि से देखें तो क्या पाते हैं? आखिर माल चखने वाले लोग ऐसी चीजें तो पैदा करते नहीं, जिनके बिना संसार का काम रुक जाए। यदि वे कोई ओषधि का या वैज्ञानिक आविष्कार करते होते जिससे संसार का कल्याण होता तो एक बात भी थी। मगर सो तो होता नहीं। सभी पदार्थों को खा-पी के अपने शरीर से जो वस्तुएँ वे पैदा करते हैं, वह केवल बुरी ही बुरी हैं, हानिकारक ही हैं। एक भी काम की चीज वे पैदा करते तो कहा जाता कि उनकी बुनियादी उपयोगिता इस दुनिया में है। ऐसे लोग यदि कम हैं तो बुरा क्या? यह तो और अच्छा ही है। निरुपयोगी ही नहीं, प्रत्युत हानिकारक पदार्थ ज्यादा न रहें, सोई अच्छा। साँप और बाघ ज्यादा हों तो किसे खुशी हो और अगर वे खत्म हो जाएँ तो रंज करने वाला कौन होगा?

जब हम बुनियादी और मौलिक बातों पर विचार करते हैं हमें स्पष्ट कहने के लिए माफी चाहिए। हम तो आगे बढ़कर यहाँ तक कह देना चाहते हैं कि वैज्ञानिक आविष्कार के द्वारा संसार की भलाई करने वाले और दवा-दारू आदि तैयार करने वालों की भी उतनी उपयोगिता नहीं है, जितनी गेहूँ, चावल, घी, दूध आदि पदार्थ पैदा करने वालों की। ये चीजें सबसे जरूरी और बुनियादी हैं। इनके होने के बाद ही दवा-दारू आदि की जरूरत पड़ती है, न कि पहले। भूखों मरनेवाले को तो कुछ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नहीं चाहिए। यहाँ तक कि वह स्वर्ग और भगवान को भी नहीं चाहता। वह तो सिर्फ भोजन चाहता है। भोजन के बाद ही दिल, दिमाग और शरीर अपने-अपने काम करते हैं और आविष्कार या दवा आदि की ओर झुकते हैं। पेट खाली रहने और घी, दूध न मिलने पर ये सभी चीजें भूल जाती हैं। इसीलिए यदि ऐसा मौका आए कि ऐसे दिमागदारों और ऐसे शारीरिक श्रम करनेवाले किसान-मजदूरों में केवल एक ही दल को चुनना हो, तो हारकर किसान-मजदूरों को ही चुनना पड़ेगा। इसलिए इस संसार के लिए उनकी उपयोगिता असली, बुनियादी और इसीलिए सबसे ज्यादा है। यही कारण है कि उनकी हर प्रकार की फिक्र करना हम सभी का पहला और जरूरी फर्ज है और अगर आज यह बात नहीं हो रही है तो मानना होगा कि समाज का दिमाग ही बिगड़ा है।

कहा जाता है कि हाकिम-हुक्काम और पुलिस वाले तो जनता को और इसीलिए किसानों को भी अमन और शान्ति पहुँचाने वाले हैं। वे कानून की पाबन्दी के ठेकेदार हैं। वकील, बैरिस्टर भी यही करते हैं। वे उनकी ही मदद करते हैं। कानून बनाने वाले अच्छे से अच्छे कानूनों को तैयार करते और न्यायाधीश निर्णय करते तथा फैसले लिखते हैं। ये सभी बातें किसानों के लिए जरूरी हैं। इसीलिए किसान की कमाई का गेहूँ, घी उन्हें लेने का हक है। नहीं तो वे सभी बातें रुक जाएँगी और अन्धेर मच जाएगी।

बात तो ठीक है और अन्धेर मचेगी यह भी हम मानते हैं। पर प्रश्न यह है कि जो अन्धेर आज मची है उसकी अपेक्षा वह अन्धेर ज्यादा होगी, भयंकर होगी, या कम और हलकी? अगर इसका उत्तर ठीक-ठीक मिल जाए तो उस बात का भी समाधान हो जाए। आज तो यह दशा है कि कलेजा फाड़ के कमाने वाले दाने-दाने के लिए मर रहे हैं। लाखों मन गेहूँ, दूध, घी पैदा करनेवाले गेहूँ की एक टुकड़े रोटी और एक बूँद दूध के लिए तरसते हैं। उनके कलेजे के टुकड़े ये नन्हे-नन्हे बच्चे एक बूँद दूध के बिना अकाल ही कालग्रस्त हो जाते हैं! दवा के बिना सारा किसान संसार तेजी से मौत के मुँह में चला जा रहा है! न बदन पर वस्त्र हैं, न रहने के लिए शरण!

जमीन पैदा की प्रकृति ने, या भगवान ने। मगर बीच में ही कुछ लोग उसके इकलौते पुत्र और उत्तराधिकारी बन के कहने लगे हैं कि जमीन किसान की नहीं है। वह उससे निकल जाए! नहीं तो कानून और लाठी के बल से निकाल दिया जाएगा! गोया उसे खुदा या प्रकृति ने नहीं पैदा किया ताकि जमींदार और सरकार की ही तरह वह भी माता-पिता की पैदा की हुई चीजों का उत्तराधिकारी बने! वह तो यों ही न जाने कहाँ से टपक पड़ा! दीनबन्धु और गरीब-परवर कहा जाने वाला भगवान भी आज बदल गया! वह तो अमीर परवर तथा अमीर बन्धु बन गया! छाती चीर के खून को पसीना बनाने और इस प्रकार अमीरों के लिए न्यायाधीशों और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पुलिस के लिए, कमानेवालों के ही रक्तशोषकों के लिए अमूल्य पदार्थ पैदा करनेवालों का आज तो पुर्सा हाल नहीं!

हम पूछना चाहते हैं कि यदि यह महान अन्धेर नहीं, यह सामाजिक और नैतिक अराजकता नहीं, यह राजनीतिक दिवाला नहीं तो और है क्या? यह तो निराले दर्जे की नादिरशाही और लूट है। इस चीज को कानूनी जामा पहना देने मात्र से ही इसकी असलियत तथा इसकी बीभत्सता मिट नहीं सकती, कम नहीं हो सकती। यों तो एक जबर्दस्त डाकू भी हमारे घर और हमारी सम्पत्ति पर, हमारे शरीर पर भी, बलात अधिकार करके हमारी ही भलाई के नाम पर ही विपरीत नियम-कायदे बना सकता है और आज्ञाएँ जारी कर सकता है। उसके लिए वही कानून है। मगर इससे क्या उस डकैती का रूप बदल जाएगा और वह अच्छी चीज हो जाएगी?

हम जानते हैं कि ठीक उसी प्रकार किसनों और कमाने वाली असंख्य जनता की भलाई के नाम पर ही कानून बना के उसी की ओट में यह अनवरत चलने वाली लूट जारी है। मगर इससे उस लूट को रक्षा और उस शोषण को पोषण कदापि कह नहीं सकते! उन्हीं को लूटा जाए और सो भी उन्हीं के हित के नाम पर! और इस लूट के आधार या सहायक जो कानून हों वह भी ऐसे हों कि लूटी जाने वाली जनता की राय से ही बनाए गए बताए जाएँ! यही तो जले पर नमक डालना है!

तो क्या इस अन्धेरखाते से भी कोई बुरी चीज हो सकती है? क्या वर्तमान आईनों और कानूनों की व्यवस्था न रहने और उनकी पाबन्दी कराने वालों के अभाव में जो अन्धेर और गड़बड़ी होगी वह इससे भी बढ़कर होगी? वह इसकी बराबर की भी होगी क्या? नहीं, नहीं वह इसके सामने गिनती के लायक भी होगी या नहीं, असली प्रश्न यह है।

जरा हम सोचें भी तो कि यदि ये कचहरियाँ, ये हाकिम, यह पुलिस और सारी की सारी यह व्यवस्था न रहे, या मिट जाए तो क्या होगा? चोरी और डकैती होगी और जबर्दस्त लोग कमजोरों को लूट लेंगे, कोई भला आदमी राह चलने न पाएगा और न किसी की इज्जत बचेगी, चारों ओर अशान्ति मच जाएगी। मगर क्या मौजूदा अशान्ति से भी वह बुरी होगी? आखिर कौन लोग लुट जाएँगे? क्या भुखमरे किसान और मजदूर जिनके पास कुछ है ही नहीं? क्या इनकी और इनके स्त्री-बच्चों की इज्जत आज बची है कि वह तब मिटेगी? क्या जमींदार और उनके अमले आज भी मनमानी घर जानी नहीं करते? क्या कोई कानून उनके भी लिए सचमुच है? आखिर नब्बे प्रतिशत लोगों के पास घर बार, धन, इज्जत कुछ भी ऐसी चीज बची भी हो, जो लुट जाने के योग्य हो या कि यों ही खयाली पुलाव पकता ही है।

जिस शान्ति का ढोल बराबर पीटा जाता है वह क्या श्मशान की शान्ति से दूसरी है जो कि सन्न-सन्न करती है, जो अत्यन्त डराऊ है? इस कानून तथाकथित शान्ति से तो सिर्फ अमीरों ने ही फायदा उठाया है और अपने को मजबूत किया

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है। गरीबों के लिए तो यह मौत से भी खतरनाक साबित हुई है! यदि ये कचहरियाँ, ये कानून और यह पुलिस न होती तो क्या जमींदार लोग किसानों से एक पैसा भी वसूलने की हिम्मत करते? क्या उन्हें एक गाली देने या एक तमाचा लगाने की भी जुर्रत उनमें होती है? आखिर किस बूते पर वे लोग ऐसा करते यदि किसान एक बार डाँट दे तो जिनका सर चकराने लगे और जिन्हें हैजा हो जाए, जिनके दोनों ही निचले रास्ते चलने लगें क्या वही बल प्रयोग करेंगे? इस अमन ने तो असली बलवानों को निर्बल और अत्यन्त अशक्तों को सबल बना दिया है! यही तो इसकी खूबी है!

हम यह भी पूछना चाहते हैं कि किसानों को कानून और व्यवस्था, रेल और तार, डाक और कचहरियाँ आदि देने की जो बात कही जाती है, और इसीलिए वर्तमान शासन प्रणाली और उसके पोषकों की उपयोगिता सिद्ध की जाती है उसका क्या मतलब है? मोटरें हैं, रेलें हैं और सुन्दर सड़के भी हैं माना, चोर बदमाश अब पहले की तरह लूटपाट नहीं करते और इसका यद्यपि असली कारण यह है कि अब लोगों के पास है ही क्या कि लूटें? तथापि वर्तमान व्यवस्था के फलस्वरूप ही यह भी है, हमें यह भी कबूल है। लेकिन क्या खाने-पीने की अपेक्षा से ये सभी चीजें बढ़कर हैं! यदि हाँ, तो किसान की कमाई का गेहूँ चावल आदि किसान के पास ही छोड़ कर सरकार तथा वर्तमान प्रणाली के हामी लोग क्या उन चीजों से ही सन्तोष करेंगे? वे अपनी चीजें अपने पास रखें और किसान अपनी अपने पास। फिर देखिए कि प्रलय मचती है या नहीं, हाहाकार होता है या नहीं। यदि अमन कानून बड़ी सुन्दर चीज है तो क्यों नहीं उसी से सन्तोष करते? जब किसान हाथ जोड़ के माँगने जाए तो भी मत देना हम कहे देते हैं। देखें कि वे लोग इस कानून-कचहरी और रेल-तार से कितने दिनों तक जिन्दा रहते हैं; अगर किसान असहयोग कर ले और अपनी कमाई का गेहूँ, घी आदि उन्हें न दें।

किसान का कर्तव्य है कि सामूहिक रूप से खूब डटके उनसे पूछे और अपने गेहूँ, चावल का हिसाब उनसे जरूर माँगे। उसी की कमाई वे लोग खाते-पीते और मौज करते हैं। फिर हिसाब क्यों न माँगेगा? जब एक पैसे का बैंगन या साग खरीदने के लिए किसान जाता है तो यह सूखा है, उसमें पील्लू हैं, फलां तो सड़ा-गला है, आदि दलीलें करता है। इस प्रकार उस पैसे का पूरा हिसाब चुकाना चाहता है। यदि एक पैसे का हड़िया या घड़ा खरीदता है तो पाँच बार ठोंक-बजा कर लेता है, ताकि ठगा न जाए। एक सेर दूध के चार पैसे मिलें और उनमें एकाध भी घिसे, या खराब हों तो खूब गौर से देख के उन्हें वापस करता है, ताकि उस दूध के बदले में पूरी रकम ठीक-ठीक काम के लायक मिले! एक पैसा चन्दा देने में सौ बार पूछता है कि क्यों दें? किसलिए दें? किसे दें? लेने वाला कैसा है? कौन है? ऐसी दशा में लाखों-करोड़ों मन गेहूँ, बासमती, दूध, घी, मलाई आदि उसी के गाढ़े पसीने की कमाई

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की चीजें ये अमीर और जमींदार, ये हाकिम-हुक्काम और ये सेठ-साहूकार गटक जाएँ, मगर उसका परिवार कराह के रह जाए, फिर भी उनसे पूरा-पूरा हिसाब भी उन चीजों का वह न माँगे, यह कैसी बात? उनसे वह जवाब क्यों नहीं तलब करे कि खा के क्या करते हैं?

जब अपनी गाय को किसान हरी या सूखी घास-भूसा-पुआल वगैरह खिलाता है और पानी पिलाता है, तो किसी मतलब से ही। घास वगैरह तो उसके खाने-पीने की चीजें हैं नहीं। ये तो एक प्रकार से उसके लिए बेकार-सी हैं। मगर उन्हें लाने, काटने और पशुओं को खिलाने में परिश्रम जरूर होता है। पैदा करने में भी होता है। कभी-कभी पैसे देकर भी खरीदना पड़ता है। इसीलिए उसका फायदा पहले से ही सोच लेता है। गाय या तो दूध देती रहती है, या देने वाली होती है। इसीलिए सेवा करता और उसे खिलाता-पिलाता है। वह दूसरी गाय और खेती के बैल भी अपने पेट से पैदा करती है। इसलिए भी उसकी सेवा करता है। बैलों को भी इसीलिए खिलाता है कि ये हल और गाड़ी खींचते हैं। वे खेती का असली काम चलाते हैं।

लेकिन यदि गाय न तो दूध ही देती हो और न गाभिन ही हो, यदि वह बन्ध्या हो और उससे कोई आशा न हो तो? क्या तब भी उसे खिलाता-पिलाता ही रहेगा? हजार-लाख में कितने किसान ऐसा करेंगे? शायद ही कोई ऐसा निकले। अधिकांश, या सभी उसे मेले में किसी और के हाथ या हुआ तो कसाई के ही हाथ बेच के छुट्टी पाते हैं। यही दशा बैलों की भी है। यदि वह गरिया हो और हल या गाड़ी में बिलकुल ही न चलते हों तो उसके साथ भी वही सलूक होता है। यदि सब कुछ होने पर भी यदि हल-गाड़ी खींचने पर भी खूँखार हों, बहुत ज्यादा हमला करें और सींग चलावें तो उन्हें भी जैसे-तैसे हटा ही देते और अपना पिण्ड उनसे छुड़ा ही लेते हैं। चाहे और कुछ करें या न करें। मगर ऐसे गाय-बैलों को अपने खूँटे से खदेड़ जरूर देते हैं। फिर तो वह दूसरे के खेतों में जाकर चरने के कारण लाठी-डण्डे खाते रहते हैं। सारांश किसान उनसे कोई ताल्लुक नहीं रखते उन्हें देखना नहीं चाहते! जल्द से जल्द उनसे अपना पीछा छुड़ा लेते हैं।

मगर अमीर, जमींदार और अधिकारी लोग तो किसान की गाढ़ी कमाई के घी, दूध, मिश्री, गेहूँ, बासमती आदि सभी चीजें खा जाते हैं। तो फिर उनसे भी वह सीधा सवाल क्यों नहीं करें, और हिसाब क्यों न माँगें कि इन सभी चीजों के बदले में आप क्या देते हैं? आखिर वही किसान जो गौ को घास खिलाके दूध लेता है तो दूध पिलाके उससे कहीं सुन्दर चीज लेने का हक जरूर है। नहीं तो फिर दूध वगैरह का देना ही बन्द करेगा। आखिर सीधे-सादे निर्दोष पशुओं ने ही क्या बिगाड़ा है कि उनके साथ उस शक्ति के साथ पेश आए, मगर सब ऐबों के केन्द्र इन मालदारों को यों ही छोड़ दें, जो उसकी जड़ खोदते फिरते हैं? जो जिस पत्तल में खाते हैं उसी में सूराख कर देते हैं; उन्हीं पर रहम करने का कोई कारण तो चाहिए। आखिर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ये लोग देवता, गुरु और पण्डे-पुजारी भी तो नहीं हैं कि भोग लगा के उसे स्वर्ग भेजेंगे, मुक्ति देंगे या श्राद्ध तर्पण वगैरह के समय उसके काम आएँगे। उसे कथा वार्ता भी तो नहीं सुनाएँगे। यदि तीर्थ के पण्डे होते तो कदाचित यह भी माना जाता कि भगवान के मुसाहिब हैं। फलतः खुश हो के किसान के लिए अच्छी सिफारिश उनके पास कर देंगे। जैसे गाय का बच्चा माँ का दूध पी के मोटा ताजा होने पर पीछे उसी पर चढ़ता है, ठीक वही हालत इनकी है। ये तो किसान की छाती पर ही बैठते हैं!

अपनी कमाई की रोटी का एक टुकड़ा वही किसान अपने कुत्ते को खिलाता है। उसका परिणाम यह होता है कि वह कुत्ता दिन-रात उसके घर-द्वार माल-असबाब की हिफाजत करता है। क्या मजाल है कि कोई उसके घर पर फटके या उसकी चीजें छुए। उस मामूली टुकड़े के बदले में वह जानवर उसकी कितनी परवाह करता है। मगर यहाँ तो अजीब हालत है। किसान तो अमीर, हाकिम, जमींदार, साहूकार, साधु, फकीर, पण्डे, पुजारी, भगवान, देवता सभी की परवाह करे, सभी को भोग लगाने के लिए सुन्दर पदार्थ जुटाए और आराम की सामग्री मुहैया करे; मकान, महल, मन्दिर, मठ उनके लिए बनवा दें! मगर ये लोग उसकी रत्ती-भर भी फिक्र न करें! उसे याद तक न करें और बिलकुल ही भूल जाएँ! गोया उससे कोई भी वास्ता इनका नहीं! भूलना इस मानी में कि वह क्या खाता, पीता, पहनता और कैसे गुजर करता है इसकी खोज करेंई न। भला यह उलटी गंगा कब तक बहेगी? दुनिया के नियमों और कायदों के खिलाफ चलने वाला यह व्यवहार कब तक रहेगा? किसी ने किसी से पूछा कि भई, यह अन्धेर कब तक? उसने उत्तर दिया कि जब तक निभे तभी तक। ठीक यही बात यहाँ भी है। यह नाव तो डूबेगी। यह अब टिकने वाली नहीं। देखना सिर्फ यही है कि कब डूबती है।

जरा भीषण हृदयहीनता तो देखिए। एक जमींदार या अमीर बीसियों प्रकार के जूते पहनने के लिए रखता है। आखिर पहनेगा तो कोई एक ही। मगर रखता है बीसियों। कोट, कमीज, धोती, अचकन आदि की भी यही हालत है। बक्स के बक्स भरे रहते हैं। उनमें कीड़े लग जाने का भी डर रहता है, खास कर बरसात में। इसलिए उनसे बचाने की फिक्र भी की जाती है! उनके लिए खास नौकर होते हैं, जो उन्हें सुखाया करें और दवाइयाँ देकर उसकी हिफाजत करें। फिर भी कीड़े खा ही जाते हैं। जैसे तीर्थ के कुण्डों में अलग-अलग पाँव और शरीर डालने तथा स्नान करने से स्वर्ग मिलता है, उसी तरह ये जूते और कपड़े, तीर्थ-कुण्ड भी तो नहीं हैं कि कभी इनमें और कभी उनमें पाँव और देह डाल कर स्वर्ग में सीढ़ी लगाएँगे। फिर इतने जूतों और कपड़ों की क्या जरूरत? उन पर व्यर्थ नौकर आदि के खर्च का क्या काम? व्यर्थ में ही जो पैसे उनमें खर्च होते हैं यदि वही किसानों के पास छोड़ दिए जाते तो कुछ बुरा हो जाता क्या? आखिर यदि कीड़े ही खा जाते हैं तो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

क्या किसान और उसके बाल-बच्चे उन कीड़ों से भी गए बीते हैं? उन्हें उन कीड़ों के जितना भी हक नहीं है?

कोठियों में और खत्तियों में भरे गेहूँ और रखी बासमती में पुराना हो जाने पर घुन और दूसरे कीड़े लग जाते और सफाचट कर जाते हैं, जमींदार और धनी यह बात खुशी-खुशी बर्दाश्त कर लेते हैं। मगर उतने ही गल्ले की कीमत यदि किसान के पास छोड़ देने की बात उठे तो उन्हें मिर्गी आ जाती है। यह बात वे लोग सोच भी नहीं सकते। यह अन्धेर अभी तक चलती है इसी में आश्चर्य है! मगर मिटेगी और जल्द मिटेगी, यह ध्रुव सत्य है।

कहा जाता है यदि कानून और अमन नहीं रहता तो किसानों के पास जो भी है वह भी नहीं रहने पाता! सरकार ने उन्हें बचा रखा है और इस काम में जमींदार वगैरह उसकी मदद करते हैं। पुलिस का काम ही है किसान परिवार की रक्षा करना। गाँव के चौकीदार और दफेदार आखिर और कौन सा काम करते हैं? फिर भी इस बात को न मानना कितनी बड़ी कृतघ्नता है!

ठीक है। बकरे को भी तो आखिर पालते ही हैं। उसे दाना घास भी खूब ही खिलाते हैं। यदि कोई उसे मारने आए तो उसे रोकते भी हैं और मारनेवाले से लड़ाई भी करते हैं। बकरे को चुचकारते-पुचकारते भी हैं और उसकी देह भी कभी अपने हाथों पोंछते हैं। क्या किसान की उससे ज्यादा रक्षा और हिफाजत कानून के द्वारा की जाती है? क्या पुलिस उससे अधिक फिक्र किसान की करती है? मगर आखिर बकरे पर यह सारी ममता किसलिए है? इसीलिए न, कि एक दिन जब उसे काटेंगे और खाएँगे तो ज्यादा और अच्छा मांस मिलेगा?

लेकिन हम यह बर्दाश्त ही नहीं कर सकते कि किसान की भी हिफाजत बकरे की तरह की जाए। यदि कोई दावा करे कि यह बात नहीं है, तो हम अदब से कहेंगे कि अभी तक तो यही होता है और आगे भी यही होगा, जब तक किसान खुद तैयार नहीं हो जाता और डट के हिसाब नहीं माँगता। वह तो चरी और घास है जिसे सींचते और बचाते सिर्फ इसीलिए हैं कि गाय-भैंस को खिलाके दूध दुहें, घोड़े को खिलाके सवारी करें और बैल को खिलाके हल खिंचवावें। घास और चरी का दूसरा प्रयोजन है ही नहीं।

कानून-कानून चिल्लाने और अमन-अमन पुकारनेवाले इतने बेहया होते हैं कि दुनिया को बेवकूफ बनाना चाहते हैं। वह समझते हैं कि संसार में सबसे बड़ी और असल चीज कानून और अमन ही हैं। हालाँकि उनसे भी बड़ी चीजें हैं और वही बुनियादी हैं। कानून और शान्ति के ठेकेदारों का भी काम उन बुनियादी और मौलिक चीजों के बिना चल नहीं सकता है—कभी नहीं चलता है। आखिर कानून और शान्ति को न खाएँगे, न पिएँगे और न पहनेंगे! क्या इनसे भूख-प्यास मिटेगी? जाड़ा दूर होगा? क्या कभी किसी ने देखा है कि इनसे लोगों की लज्जा बचती है? जाड़े, बरसात

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और गर्मियों में ये कानून और ये अमन न तो आदमी को ही बचा सकते और न उसके सामान और गल्ले आदि को ही। मवेशियों को भी न तो उनकी छाया में ही रखते हैं और न उनमें बाँधते ही हैं। उन्हें ही खिला के हैजा, प्लेग और ज्वर भी दूर नहीं करते। यहाँ तक कि मरने के बाद न तो वे कफन का काम देते, न अरथी का और न श्मशान, चिता या कब्रिस्तान का ही! उनसे किसी का श्राद्ध, तर्पण और चेहलुम भी नहीं होता। लेकिन ये गेहूँ आदि सब चीजें तो जरूरी और बुनियादी हैं। इनका होना आवश्यक है। इस प्रकार जो शान्ति और जो कानून इतने बेकार और नाचीज हैं उन्हीं पर इतना नाज और इतनी उछल-कूद! जो न जीने में काम आएँ और न मरने पर ही, उन्हीं की इतनी तारीफ! आश्चर्य!

यह कानून और न्याय भी इतना कमजोर है कि रोटी के बिना वह खुद अपने को बचा नहीं सकता। लोग समझते हैं कि पुलिस की बन्दूक और लाठी, फौज की गोली और तोप, सर के मशीनगन और हवाईजहाज, जेल, फाँसी, कचहरियाँ, न्यायाधीश और हाकिम यही कानून और शान्ति की रक्षा करते हैं। यही अमनचैन कायम रखते हैं। मोटर चलाने वाले और रेल के इंजिन के ड्राइवर दंगे-फसाद की जगह फौरन ही पुलिस और फौज को पहुँचा के शान्ति रक्षा करते हैं।

मगर यह खयाल सिर्फ मोटा और ऊपरी है। इसीलिए जैसा सही और पक्का इसे समझते हैं दरअसल वैसी बात है नहीं। यदि रोटी, भात, दूध, घी न मिले तो भी क्या पुलिस और फौज की लाठी, बन्दूक, तोप चलेंगी? तब क्या जेल चालू रहेंगे? क्या न्यायाधीश फैसले लिखेंगे? भोजन न मिलने पर न तो हाथ ही काम करेगा, न दिमाग ही। फिर गोली कैसे चलेगी? किस हाथ से चलाई जाएगी? ड्राइवर मोटर और रेलगाड़ी कैसे चलाएगा? कागज अलग, स्याही जुदा और कलम फर्क है! जज साहब का हाथ उठता नहीं! दिमाग ने जबाव दे दिया है! जेल वाले मुर्झाए पड़े हैं! जल्लाद की आँखें बन्द हैं! अब पता चला कि खास अमन कानून की भी रक्षा कौन करता है? वही रोटी, वही भात, वही घी, दूध। न कि उनकी रक्षा कानून और अमन करते हैं!

कहने को तो न्याय और आईन कहते हैं। मगर जरा देखिए तो सही कि वहाँ भी क्या उलटी दुनिया है? सरकार ने जेलखाने बनवाए हैं, जिनके मकान पक्के और साफ-सुथरे हैं। वहाँ पहरेदारों के सिवाय बीमारों की दवा के लिए डाक्टर रहते हैं। दवाइयाँ भी हो सकती हैं। कैदियों के ओढ़ने-पहनने के लिए और बिछाने के लिए भी कई-कई कम्बल, चटाइयाँ और काफी कपड़े होते हैं। भोजन भी चावल, गेहूँ मिलता है। दाल और साग भी। चटनी, मांस और कभी-कभी दही भी। और उन जेलों में जाते हैं कौन लोग? आमतौर से वह जेल बने ही हैं ऐसे लोगों के लिए जो कानून और अमन के दुश्मन हैं। जो चोर, बदमाश, डकैत हैं! देखा न? जो कानून और शान्ति की जड़ खोदने वाले चोर बदमाश हैं। उनके लिए सरकार और उसके कानून

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

को, उसके न्याय को इतनी फिक्र है कि पहले से ही उनके आराम की तैयारी कर रखी जाती है ! भला यह परस्पर विरोधी बात दिमाग में कैसे समाये !

मगर यह तो कुछ नहीं। खूबी तो यह है कि एक ओर कानून की जड़ खोदनेवालों और समाज के शत्रुओं के आराम की यह फिक्र! दूसरी ओर जो किसान कानून और न्याय की जड़ पैदा करता है, समाज का रक्षक है। सबको घी, गेहूँ देता है वही भूखों मरता है! मकान और कपड़े के बिना तबाह है! दवा के बिना अकाल ही काल कवलित होता है! उसको पूछनेवाला कोई नहीं! न तो सरकार ही पूछती और न उसका न्याय या कानून ही! तो क्या वह भी गेहूँ, चावल, घी, दूध पैदा करना छोड़ के चोरी, डकैती आदि ही करे, तभी उसकी खबर ली जाएगी? प्रत्यक्ष रूप से न सही, मगर अप्रत्यक्ष रूप से उस व्यवस्था का तो यही अर्थ है। फिर भी कहते हैं कि यहाँ अन्धेर नहीं है। यहाँ तो न्याय है! वह व्यवस्था डूबेगी यह यकीन रहे।

कहते हैं कि किसी साध्वी और पतिव्रता स्त्री का पति उसके ठीक उलटा—पूरा लम्पट था। वह बराबर ही रण्डी के कोठे पर पहुँचा करता था। साध्वी को मालूम हो जाने पर उसने बहुत प्रयत्न किए। हर तरह के उसे आराम पहुँचा के, उसकी सेवा करके उसे उस कुकर्म से रोकना चाहा। मगर सब बेकार। वह नहीं ही रुका। तब उसने सोचा कि शायद वेश्या के यहाँ इसे कोई खास आराम है, जो यहाँ नहीं मिलता है। इसीलिए इसका वहाँ जाना रुकता नहीं। वह सीधी तो थी ही। फिर और सोचती ही क्या? तब उसने विचारा कि यदि किसी प्रकार उस खास तरह के आराम या सलूक का पता लगा के वह भी स्वयं पूरा कर दूँ, तो शायद उसका वहाँ जाना रुक जाए।

इसी खयाल से एक दिन जब वह हजरत उधर चले तो पीछे-पीछे वह खुद भी चली और वेश्या के कोठे के पास जब वह सीढ़ी पर चढ़ने लगे तो नीचे ही रुक के गौर से देखने लगी। अन्धेरा तो था ही। किसे पता था कि नीचे कौन है? जब वह आखिरी सीढ़ी पर पहुँचके कोठे पर वह पाँव देना ही चाहते थे कि वेश्या ने कड़क के पूछा कि क्या वह जेवर लाया है, जिसके लिए वचन दे गया था, हजरत ने ज्यों ही उत्तर दिया कि कल लाऊँगा, कि उसने अपने पाँव का जूता निकाल के उनके सिर पर तड़ाक से जमाया और कहा कि बिना जेवर के यहाँ क्या माँ-बहन के पास चला है? हजरत ने गिड़गिड़ा के कह दिया कि हुजूर के ये जूते तो फूल हैं और मैं धन्य हूँ। फिर कोठे पर चले गए।

वह स्त्री यह दृश्य देख के लौट आई। और रात में जगी रही। बगल में एक जूता भी रखे रही। ज्यों ही वेश्या के पास से वह घर आए त्यों ही साध्वी ने उनकी खोपड़ी पर तड़ातड़ कई जूते लगाए। बोले हाँ, हाँ यह क्या? उसने उत्तर दिया कि और चीजें तो मेरे पास वेश्या की अपेक्षा ज्यादा और सुन्दर हैं ही। फिर भी आपका वहाँ जाना जो बन्द नहीं हुआ तो मैंने पता लगाया कि बात क्या है? अब मालूम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हुआ कि वही जूते वहाँ मिलते थे जो यहाँ अप्राप्य थे। इसलिए मैंने सोचा कि वह भी आपको यहीं लगा दूँ ताकि आपका धर्म तो किसी प्रकार बचे और वहाँ न जाएँ।

जैसे पति का धर्म और आचरण बचाने के लिए मजबूरन साध्वी पत्नी को उसे जूते लगाने पड़े, क्योंकि परिस्थिति ही वैसी थी, ठीक उसी प्रकार वर्तमान समाज और सरकार की परिस्थिति और उसका रवैया देख के यदि किसान भी चोरी, डकैती पर उतारू हो जाएँ और उनकी आँखें खुल जाएँ, तो उसका जवाबदेह कौन होगा? आखिर पेट का सवाल जो ठहरा और 'पाँचों कुतिया राम की करे भजन में भंग। इनको टुकड़ा देई के, तब जिय होय उमंग।' सब उपाय करके जब किसान थक गए और उन्होंने देखा कि कोई खबर नहीं लेता, तो क्या करें? बिना वैसा किए लोगों की आँखें भी तो शायद ही खुलें।

देखिए न सही। क्या थोड़ी आफत और कम मजबूरी है? जिस कानून की पुकार इतनी मचाई जाती है वह आखिर क्या करता है यह देखें तो पता चले। किसान की पैदावार मारी गई। वह सपरिवार भूखों मरता है। पैदावार तो पैदावार गई। उसका बीज, परिश्रम और दूसरे खर्च भी डूबे। साहूकार का जो कर्ज उनके करते सर पर लदा वह तो जुदा ही है। पेट का ठिकाना नहीं। कपड़े लत्ते नदारद। महाजन भी कर्ज देने को तैयार नहीं! वह भी तो फसल देखकर ही देते हैं। किसान के पास फसल के अलावे और रहता ही क्या है?

अब जले पर नमक छिड़कने के लिए जमींदार ने लगान माँगा। मगर वह दे कहाँ से? फलतः बाकी लगान की नालिस हो गई और पेशी की तारीख पड़ी। किसान मर-जी के वहाँ पहुँचा कि न्यायाधीश से सारी कहानी सुना के लगान से छुटकारा पा जाऊँगा। उसने वहाँ सब बातें साफ-साफ सुना भी दीं और हाकिम को विश्वास भी हो गया! मगर वह कहता है कि लगान तो देना ही होगा। क्योंकि कानून जो ठहरा! फसल मारी पड़ी यह बात न सुनी जाएगी। क्या गजब है! कानून है कि गधा है, जिसे कोई भी तमीज नहीं! यहाँ तक कि उसने हाकिम को भी वैसा बना डाला। क्या इसी कानून पर नाज है? क्या इसी कानून के लिए किसान अपना गेहूँ, दूध लुटाए? उसके बदले उसे यही मिला है? अच्छा, तो कानून अपने घर रहे!

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दूसरा भाग

(4)
डरना छोड़ दें

किसानों की दुर्दशा से सम्बन्ध रखनेवाली सभी बातों को सुनके यह कहा जाएगा कि बातें तो सही हैं और जो चित्र सामने रखा गया है उसमें कोई बढ़ावा या अतिशय नहीं है, रोचकता नहीं है। वस्तुस्थिति ही ऐसी है और बेशक, यह शर्मनाक बात भी है। मगर किसान के कलेजे में भय का भूत इस कदर घर कर गया है और उसने उसे इतना दबा लिया है कि इन बातों के बारे में तो क्या, मामूली शिकायतों तक के सम्बन्ध में वे अपनी जबान खोल नहीं सकते! वे समझते हैं, उनकी जबान ही काट ली जाएगी! या यों कहिए कि उनकी जबान पर ताले हैं! किसानों की बात तो छोड़ ही दीजिए। क्या उनके नेता नामधारी भी ये प्रश्न छेड़ते हैं—छेड़ सकते हैं?

यह तो ऐसा हिसाब माँगना है कि शोषकों की अंतड़ी ही ढीली कर दे। इससे तो उनके हवास ही उड़ जाएँ यदि व्यापक रूप से ये प्रश्न उठने लगें। मगर जब किसान नेता तक इनसे दूर हैं, तो किसान बेचारों की क्या हस्ती? इन बुनियादी बातों को उठाना और जारी रखना बड़ी निर्भयता और निराली हिम्मत का काम है, न नेताओं में है और न किसान समाज में ही। जो जमींदारों से, उनके अमलों से, उनके गुण्डे और लठधरों से, पुलिस से और न जाने किससे थर्राते रहते हैं; जमींदार के गुमाश्ते और चपरासी को, सिपाही को देख के जिनकी रूह काँपती हैं; जो पैदावार का बारह आना हिस्सा तक और कभी-कभी सोलह आने भी जमींदार के हवाले इसी डर के मारे करने को तैयार हो जाते हैं और जबान भी हिला नहीं सकते, क्या वही यह थर्रानेवाले उन्हीं शोषकों से हिसाब की माँग पेश करेंगे? इसलिए असली चीज तो है यह भय का भूत। जब तक इसकी दवा नहीं होती, कुछ होने-जाने का नहीं।

बात तो अक्षरशः सही है। इसीलिए तो हिसाब माँगना सीखें या हिसाब माँगें यह बात कही जा रही है। अगर वे पहले से ही निर्भय और निडर होते तो यह हिसाब कब का न माँगा गया होता और सारा मामला ही खत्म हो गया रहता! हमें तो इसी माँग के सिलसिले में उनको निडर बनाना है, उनके भय को भगाना है। जब असली हालत का चित्र उनकी आँखों के सामने उसी प्रकार नाचने लगे, जैसा कि बताया गया है, तो अपने आप हिम्मत भी आएगी ही और वे निडर बनेंगे ही। इसलिए वह हिसाब ही उन्हें निडर बनाने का भी एक साधन है।

मुल्क में आजादी की सीधी लड़ाई को शुरू करने के पहले अंग्रेजी सल्तनत से भी इसी प्रकार का हिसाब माँगा गया था और उसका कच्चा चिट्ठा जनता के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सामने पेश किया था, जिसने जादू का काम किया। जनता तो मतवाली होके अपार शक्ति रखनेवाली सरकार से भिड़ी और पीछे न हटी उसका प्रधान कारण वही कच्चा चिट्ठा था। जनता तो ज्यादा दलील और वकालत करना जानती नहीं। वह सीधी बात समझती है और उत्तेजित हो जाती है। सो भी जब कि भावनात्मक और खयाली राजनीतिक बातों को, जो निराकार हैं, सुन के ही वह गर्म हो सकती, तो यहाँ तो साकार और ठोस बातें हैं, जो प्रतिक्षण और हर कदम पर किसान को चुभती हैं। इनकी याद तो उसके कलेजे में हूक पैदा कर देती है और वह सुध-बुध खो बैठता है, कम से कम कुछ समय के लिए तो अवश्य ही।

मगर केवल इतना ही नहीं है। हमें तो किसान की भूलें उसे सुझानी हैं। उसे सजग भी करना है कि आइन्दा ऐसी भूलें न करें। उन्हीं भूलों में यह भय भी है, जो नाहक ही उसे पामाल किए बैठा है। इसलिए आइए जरा उस डर का और उसके कारणों का विश्लेषण करें और देखें कि असलियत क्या है। पता लगाएँ कि आया कोई वजह भी इस भारी भय का है, या यों ही सिर्फ खयाली और दिमागी मर्ज है।

आखिर किसान, जमींदार, साहूकार या सरकार से डरता क्यों है? आखिर वह क्यों डरे? उसने चोरी की है? डाका मारा है? जना और व्यभिचार किया है? आग लगाई है? खून किया है? मारपीट की है? कोई भी कानूनी अपराध किया है? ये बातें तो उसमें हैं नहीं। यदि अपराध करे भी, तो इनसान या मनुष्य की हैसियत से कोई किसान भले ही करे, जैसा कि गैर किसान लोग भी करते हैं। फिर चाहे वह जमींदार या सरकारी अफसर ही क्यों न हों। और उसके करते यदि सभी डरते हैं और सजा पाते हैं तो किसान भी डरे और सजा पाए—डरता और दण्ड पाता है भी। मगर यह तो बात ही जुदा है। सवाल तो यह है कि किसान की हैसियत से तो वह अपराधी है नहीं। नहीं तो आसानी से किसान को सरकार जरायम पेशा कौमों में शुमार कर डालती। मगर ऐसा तो है नहीं। किसान का अर्थ भी है खेतिहर या खेती करनेवाला। इसका दूसरा मतलब है ही नहीं।

तब यह बात समझ में आती ही नहीं कि खेती करनेवाला किसी से भी क्यों डरने लगा। उसका तो काम उलटे छाती तान के और सिर ऊँचा करके चलना होना चाहिए। क्योंकि संसार का गला उसी के हाथ में है। वह जब चाहे उस गले को खत्म कर दे। मगर वह तो अपनी जान पर खेल के अपना गला दे के भी दुनिया के गले को यहाँ तक कि अपने शत्रुओं और लूटनेवालों के गले को भी बचाता है। जो संसार की जिन्दगी के लिए सबसे जरूरी और बुनियादी चीजें पैदा करे वही दुनिया से जमींदार वगैरह से डरे! यह अजीब बात है। डरना तो हर घड़ी औरों को चाहिए कि कहीं किसान पैदा करना बन्द कर दे तो आफत होगी। आखिर, जमींदार, मालदार आदि के हाथ या सीने में यह ताकत तो है नहीं कि खुद अपने लिए गेहूँ, बासमती, घी, दूध प्रभृति वस्तुएँ पैदा कर लें। उन्हें तो जैसे लकवा मार गया हो जो अपनी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

धोती धो नहीं सकते, जो अपने लिए एक लोटा जल भी कुएँ से निकाल नहीं सकते और जो अपना भोजन तक खुद पका नहीं सकते, यदि कहा जाए कि उनके प्रत्येक अंग को लकवा मार गया है और वह कुष्ठी (कोढ़ी) बन गए हैं, तो इसमें अत्युक्ति क्या है? और अगर ऐसे लोग किसानों से न डरें तो और डरेगा कौन? ऐसे लोग तो अपनी जरूरतों को पैदा करने का स्वप्न भी नहीं देख सकते!

दुनिया के गले की बात ही लीजिए और देखिए कि वह किसान के हाथ में है या नहीं। गेहूँ, बासमती, दूध, मलाई, घी तो किसान को शायद ही मिलता है। यही कहना ठीक है कि नहीं मिलता है। छठे-छह मास यदि किसी पर्व-त्योहार पर, या शादी-गमी में मिल ही जाए तो उसे मिलना नहीं कहते। यह चीजें तो अमीर ही खाते हैं और हाकिम हुक्काम ही। अब यदि किसान सामूहिक रूप से सिर्फ यही तय कर लें कि गेहूँ की खेती न करेंगे चाहे कुछ हो जाए तो नतीजा क्या होगा? यदि अमीरों और वैसी दुनिया के भोग की सभी चीजें, जो उन्हें खुद नहीं मिलती हैं, जिन्हें वह स्वयं खा-पी नहीं सकते हैं, वह पैदा करना बन्द कर दें तब तो कहना ही क्या? तब तो और भी कुहराम मचे। मगर यदि सिर्फ गेहूँ की खेती ही बन्द करने का निश्चय कर लें तो भी बला आ जाए और सब लोग सीधे हो जाएँ। किसान को तो खाना है नहीं कि उसका हर्ज होगा। उसके लिए तो मटर, मंडुवा और खेसारी रखी ही हैं। मगर अमीर तो मर ही जाएँगे एक-एक करके।

यदि कोई ऐसा सोचे कि उससे जबर्दस्ती गेहूँ की खेती कराई जाएगी तो यह सिर्फ खयाली पुलाव होगा। अस्सी और नब्बे फीसदी लोगों से बल प्रयोग के द्वारा दस-बीस फीसदी लोग कुछ भी करवा लें यह असम्भव है, यदि उन 80-90 फीसदी लोगों ने निश्चय कर लिया है कि न करेंगे, यदि अमीरों से निपट लेने का उन्होंने आखिरी फैसला कर लिया है। यह भी नहीं कि यह फैसला हो ही नहीं सकता। दुनिया में इस प्रकार के सामूहिक निर्णय भी आखिर हुए ही हैं और उन्हीं के करते क्रान्तियाँ भी हुई हैं। ऊब जाने पर क्या नहीं होता? 'मरता क्या न करता?' भी तो है।

जबर्दस्ती का तो कोई कानून भी नहीं है और अगर कोई कानून या आर्डिनेंस बने भी तो वह अमल में लाया जाएगा कैसे? कितने लोगों के हाथ पकड़ के गेहूँ बोने को विवश किया जा सकेगा और कैसे? गोली और मार्शल लॉ (फौजी कानून) ने यदि और भी उत्तेजित नहीं किया है तो किस दृढ़संकल्प समूह को—जनता को—विवश किया है? याद रहे कि पढ़े-लिखों की बात हम नहीं कर रहे हैं। हम तो अपढ़ों की बात करते हैं, जिनकी पकड़ ऊँट की पकड़ होती है, जो कभी आसानी से छूटती ही नहीं! यह वही जनता है जिसने राम-कृष्ण तक को भी नहीं छोड़ा और वेमुरव्वती से समालोचना की खराद पर कस दिया। नहीं तो कहाँ धोबी और कहाँ राम की शिकायत! सो भी कड़क के और बड़े गर्व से!

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वेदान्ती लोग कहते हैं कि 'अपने को आप भूल के, हैरान हो गया' यह बात किसान के बारे में अक्षरशः घटती है। वह अपनी पूर्वोक्त अपार शक्ति और अपार संख्या के बल को भूल कर ही आज परेशान है। हनुमान को जैसे अपने असीम पौरुष की विस्मृति बराबर ही रहा करती थी। जब कभी कोई याद दिलाता था तभी वह उसे याद कर पाते थे ठीक वही बात किसान की भी है। वह भी केवल याद कराने वाला चाहता है। वह भी मौके की ताक में है कि कोई कहे कि 'का चुप साधि रहे बलवाना?' फिर तो 'जो राउर अनुशासन पाऊँ कंदुक इव ब्रह्माण्ड उठाऊँ' की पुनरावृत्ति करके ही छोड़ेगा?

हाथी आखिर कितना बड़ा और मोटा कितना शक्तिशाली जानवर है, यह सभी जानते हैं। वह हजारों को अपने पाँवों के तले बात की बात में रौंद दे इतना बल रखता है। उतना बड़ा जानवर दुनिया में और कोई है ही नहीं। मगर यह सब होते हुए भी उसकी क्या दशा है? उसकी असली लम्बाई-चौड़ाई आदि, उसका असली वजन और उसकी असली ताकत बेकार ही है। वह तो एक मामूली से पीलवान के सामने, एक पीलवान लड़के की डपट से थर्र-थर्र काँपता और उसी के इशारे पर चलता, रुकता, घूमता, उठता और बैठता है। उसकी शारीरिक शक्ति और जिस्मानी ताकत सब की सब बेकार है! उसे तो एक मामूली आदमी नचाता है! बाघ और भालू को भी नचाते हैं सही। मगर, उसके हाथ-पाँव और जबड़े को बाँध कर, उसके नाखून और पंजों को काट-छाँटकर और उसे जबर्दस्त साँकल या रस्सी में बाँधकर ही। इस प्रकार उसकी शारीरिक शक्ति पर सख्त से सख्त भौतिक और स्थूल बन्धन लगा कर ही उसे नचाया जाता है।

मगर हाथी पर तो वैसा कोई बन्धन है नहीं। उसके हाथ, पाँव वगैरह भी ज्यों के त्यों दुरुस्त और खुले हैं। वह उनका इस्तेमाल बखूबी कर सकता है करता भी है जब चाहता है। बाघ और भालू तो अपने हाथ, पाँव, जबड़ों या नाखूनों का प्रयोग कर ही नहीं सकते। वह बेकार कर दिए गए होते हैं। फिर भी वह हाथी बेकार और मुर्दा-सा बना, पस्तहिम्मत और डरपोक होके जिन्दगी गुजारता है! क्या यह ताज्जुब की बात नहीं है? क्या ठीक यही दशा किसान की भी नहीं है? क्या हाथी की सारी बातें और उसकी सारी की सारी दशाएँ किसान से नहीं मिलती हैं? उसमें भी अपार शक्ति, अपार जनसंख्या, अपार अन्नादि के उत्पादन की ताकत है और उस पर कोई बन्धन भी नहीं लगा है जिनसे बेकार हो गई हो, वह तो खुली है और उससे शोषकों और उत्पीड़कों की मर्जी के अनुसार ही काम भी होता है, जैसा कि हाथी शक्ति से पीलवान की इच्छा के अनुसार काम होता है। जिस प्रकार हाथी की पीठ पर वह बैठता है ठीक उसी प्रकार शासक और शोषक किसान के ऊपर बैठते हैं—बैठे हुए हैं, फर्क इतना ही है कि वह उसकी पीठ पर बैठता है और यह लोग किसान की छाती पर बैठे हुए हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जिस तरह उसी हाथी को बहुत ही अच्छा, सीधा और शान्त कहते हैं, जो झटपट महावत (पीलवान) के इशारे पर चलता रहता है। ठीक उसी तरह शासकों एवं शोषकों की मर्जी पर नाचने और चूँ न करने वाले किसानों को भी शान्त, कानून पसन्द (Law abiding) और भले आदमी कहके पुकारा जाता है! ठीक ही है। इसी में तो महावत का, हाथी पर सवारी करने वालों का और शासकों तथा शोषकों का भी फायदा है। इसीलिए तो उन्होंने ऐसा नाम रखा है। बाकी दुनिया भी बिना सोचे विचारे ही उन्हीं की हाँ में हाँ मिलाती है और 'ऊँट बिलाई ले गई, तो हाँ जी हाँ जी कहना' को चरितार्थ करती है।

मगर कभी-कभी ऐसा होता है कि हाथी और जनता दोनों ही मस्ती पर आ जाते हैं और महावत (पीलवान) या शासकों की बात अनसुनी कर देते हैं! उनकी पीठ या छाती पर बैठे हुए टर्र-टर्र चिल्लाते रह जाते हैं। मगर न तो हाथी ही सुनता है और न कमाने वाली जनता ही किसान और मजदूर ही सुनते हैं। इतना ही नहीं। हाथी की पीठ पर चढ़ने की हिम्मत न तो महावत को ही होती है और न सवारों को, बाबुओं और राजे-महाराजाओं को। वे पस्तहिम्मत हो जाते हैं। शासक और शोषक भी पस्तहिम्मत हो जाते हैं ठीक वैसे ही। वे भी किसानों की छाती पर ठहर नहीं सकते!

हाथी वास्तव में अपनी अपार शक्ति को और पीठ पर चढ़ने वालों की तुच्छता को जभी समझता है तभी यह दशा होती है। तभी उसकी भूल और उस पर चलने वाला जादू हट जाता है। तभी वह अपने को सँभाल लेता है। फिर तो चढ़ने वाले यदि हिम्मत करें तो सूँड़ और पाँवों से ही उन्हें रौंद देता या घुमा के दूर फेंक देता है कि हड्डियों का भी पता न चले। कदाचित किसी प्रकार कोई चढ़ गया भी तो देह को हिला के उसे ठीक वैसे ही गिरा देता है, बेलाग पटक देता है, जैसे पेड़ को झकझोर के पके आम नीचे गिरा देते हैं। वही हाथी जो एक मामूली आदमी से थर्राता था, अब हजारों को थर्राता है। वह जिधर ही चलता है, भगदड़ मच जाती है। उस समय हाथी को 'पागल और मतवाला' कहते हैं।

ठीक ही है उसे भाले और बर्छे से भोंकने का बहाना भी तो चाहिए। यदि पागल न हो, तो उस पर भाले कैसे चलेंगे और उसे 'सर' करने की कोशिश क्यों कर होगी? पागल कहने में ही उसकी छाती पर चढ़नेवालों का मतलब निकलता है। क्योंकि अब वह चढ़ पाते नहीं। हाथी चढ़ाने से कतई इनकार करता है। लेकिन जबान से नहीं, अपने कामों से। वह तो 'कह सुनाऊँ' को अक्ल की ठेकेदारी और समझ की बदहजमी वाले हम मनुष्यों के लिए ही घृणा के साथ छोड़ के खुद 'कर दिखाऊँ' को चरितार्थ करता है। यही क्रान्ति है। फिर पागल न कहा जाए तो और क्या? यह बेहूदी दुनिया तो काम को न देख के बातों को ही ज्यादा पसन्द करती और उसी में भूल जाती है!

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कमाने वाली जनता भी कभी-कभी अपनी अपार शक्ति को महसूस करती है, याद करती है। उस समय उसके ऊपर से उन लोगों का जादू उतर जाता है, या यों कहिए कि वह उन लोगों का जादू उतार फेंकती है जो धर्म तथा विवेक के नाम पर, भाग्य और भगवान के नाम पर 'कर्म में वदा' और पूर्व जन्म की कमाई के नाम पर, सन्तोष के नाम पर, 'गरीबी से रहोगे तो बैकुण्ठ और स्वर्ग मिलेगा' इस प्रकार की स्वर्ग की मोहनी के नाम पर, 'जो इस जन्म में तकलीफ भोगेगा उसे अगले जन्म में आराम मिलेगा' इस प्रकार के खयाली और दिमागी भविष्य के नाम पर, उसे आगे बढ़ाने से रोकते और भ्रम में डाल रखते हैं। किसान-मजदूर अपने आप को सँभाल लेते हैं और 'आपन तेज सँभारो आपै। तीनों लोक हाँक से काँपै,'' को सोलहों आना चरितार्थ करते हैं। वह उनकी छाती पर चढ़कर खून पीने वालों को न सिर्फ चढ़ाने से इनकार करते हैं, प्रत्युत यदि वे चढ़ना चाहें तो दूर से ही बेलाग झटकार देते हैं। यदि पहले से ही चढ़े हों तो हाथी की ही तरह या पकी जामुन की तरह झोरझार के नीचे पड़पड़ा देते हैं।

तब संसार में आतंक छा जाता है और चारों ओर थर्राहट मच जाती है। शेष भगवान ने करवट जो बदली! फिर किसकी खैरियत? महारुद्र का तांडव नृत्य जो शुरू हो गया! फिर तो 'मही पादाघाताद्रव्रजति सहसासंशय पद्म' कहीं जमीन पीपल के पत्ते की तरह काँपती है, तो कहीं आसमान के तारे टूट-टूट के पके फल की तरह गिरने लगते हैं। कहीं चाँद और सूरज गेंद की तरह कहाँ से कहाँ जा पड़ते हैं, तो कहीं समुद्र में उत्ताल तरंगें उठने लगती हैं। कहीं आकाश अब गिरा तब गिरा मालूम पड़ता है। फिर तो शासक, शोषक और उनके दलाल कहने लगते हैं, बदअमनी हो गई! लोग पगला गए! अराजकता और अशान्ति फैल गई! बड़ी-बड़ी पोथियाँ इस समूचे वर्णन में तैयार की जाती हैं, और उनमें किसान मजदूरों को पागल 'मतवाला' की उपाधि दी जाती है। इसे ही प्रचलित भाषा में क्रान्ति के नाम से पुकारा जाता है।

असल में कमाने वालों—किसानों और मजदूरों ने भी हाथी से ही सबक सीखा और अन्त में थक-थका के माना कि 'कह सुनाऊँ' बेकार है। 'कर दिखाऊँ' ही ठीक है! उन्होंने अपनी समझ और अक्ल की बदहजमी विवेक का अजीर्ण मिटा दिया और खून पीनेवालों को छाती पर से उठा पटका। सैकड़ों, हजारों वर्षों तक प्रार्थना और अर्जी भेजते रहे। हम सरकार के फर्माबरदार और आज्ञापालक हैं, आपके चरणों की धूलि हैं, हम पर दया दृष्टि हो, हम दीन-हीन हैं, हुजूर की जय हो आदि आदि कहते जब जबान थक गई। गर्म स्पीच देते-देते और प्रस्ताव पास करते-करते जब बेहया हो गए! तब कहीं उन्हें सूझा कि 'भोंदू भाव न जानें, पेट भरे से काम' ही ठीक है। यही मन्त्र जपना चाहिए।

उन्होंने यह भी बखूबी जान लिया कि सभी देवता एक-से नहीं होते कि सभी पर पुष्प, अक्षत आदि ही चढ़ाया जाए, सभी को झुक के प्रणाम ही किया जाए।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कुछ ऐसे भी होते हैं। जिन्हें ढेले और ईंटों से मारें, तभी मतलब सिद्ध होता है, मनोकामना पूरी होती है। उनका स्वभाव ही ऐसा होता है कि प्रणाम और फूल माला से—झुकने से—नाखुश होते हैं और काम बिगड़ जाता है। जब उन पर सख्त चोटें पड़ती हैं तभी चोट करने वाले का काम बनता है! सारांश कुछ देवता, कुछ लोग तो इस दुनिया में सिर्फ लत्ती होते हैं। जो लात से सीधे होते और मानते हैं। हाँ कुछ बत्ती भी होते हैं, जो बात से मानते हैं इसलिए 'सब धान सोलहे पसेरी' के भाव से तौलना ठीक नहीं!

कहते हैं कि फकीर बुल्लाशाह के गुरु ने उन्हें चलते चलाते यह उपदेश दिया कि अक्ल छाँटने और बहुत बनने से ही—भला कहाने का खयाल होने से ही—सारी तकलीफें होती हैं। अगर समझदारी का अजीर्ण मिटाके हम कुछ भी बनना छोड़ दें तो आराम होता है। बुल्लाशाह चले गए और एक मस्जिद में जा बैठे। जब मुसलमान नमाज पढ़ने आए तो उन्हें चुपचाप बैठा देख पूछने लगे कि तुम कौन हो? उन्होंने कहा 'मैं मुसलमान हूँ' मुसलमानों ने सोचा कि यह भी नमाज पढ़ेगा। मगर जब वक्त बीत गया और वह बैठे ही रहे तो मारपीट के उस मस्जिद से निकाल दिया कि यह तो कोई काफिर है।

बुल्ला ने गुरुजी के पास पहुँच के शिकायत की कि मैं तो आज पिट गया, हालाँकि कुछ बना-वना नहीं! जब उन्होंने सारी घटना पूछी और बात जान ली, तो कह दिया कि आखिर मुसलमान तो बना ही अक्लमन्दी तो दिखाई ही। फिर पिट गया तो ठीक ही हुआ। बुल्ला को अब अक्ल आई और फिर उसी मस्जिद में ठीक वैसे ही जा बैठे। जब फिर नमाजी लोग आए और उन्हें देखा तो कहने लगे यह वही आदमी फिर आया! कइयों ने पूछा कि आखिर तू है कौन जो बराबर आता है और मार खाता है। मगर बुल्ला चुपचाप रहे। हजार पूछताछ हुई। मगर ऊँ-ऊँ के सिवाय कुछ न कहा। अन्त में मुसलमान लोगों ने कहा कि कोई पागल है, जाने दीजिए। इसे छेड़िए मत। किसी-किसी ने चलते-चलाते कुछ खिला-पिला भी दिया। जब बुल्ला पुनरपि गुरुजी के पास गए और उन्होंने अब की बार खैरियत पूछी, तो सब सुना के बोले कि आपका ही कहना ठीक है। कभी-कभी अक्ल और समझ को कतई भूल जाना ही सबसे बड़ी बुद्धिमानी होती है!

ठीक इसी सिद्धान्त के अनुसार कभी-कभी जब विवेक, समझ और अक्ल को सोलहों आना ताक पर रख देने की सबसे बड़ी बुद्धिमानी किसान और मजदूर करते हैं तभी उनका उद्धार होता है, उनका सनातन शोषण बन्द होता है; उनकी निर्दयतापूर्ण लूट खत्म होती है। उनका हृदयहीन उत्पीड़न नेस्तनाबूद हो जाता है, वास्तविक आजादी की दुनिया में—सच्ची स्वतन्त्रता की हवा में—वे खुल के साँस लेते हैं और उनकी छाती हलकी हो जाती है। इसे ही इनकिलाब और क्रान्ति कहते हैं।

मगर जिनका स्वार्थ इसमें सधता नहीं, वरन चौपट होता है वह और उनके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

साथी इसे अशान्ति, खून खतरा वगैरह न जाने क्या-क्या नाम दे डालते हैं! अपना-अपना स्वार्थ ही तो ठहरा। वह तो जरूर उन किसानों को मतवाला और पागल कहेंगे। विवेक भ्रष्ट कहेंगे। मगर आइए जरा सोचें कि बात असल में है क्या? हमने हाथी से ही शुरू किया था। इसलिए पहले उसी का विचार करें। वह भी तो कभी सीधा और भला, तो कभी मतवाला और पागल कहा जाता है।

मेरी समझ में तो यह उलटी दुनिया की विपरीत बात है। मैं तो मानता हूँ कि जिस हाथी को सीधा और भला कहते हैं वही पागल है, मतवाला है और जिसे मतवाला और पागल कहते हैं, वही सीधा और भला है, अक्लवाला और समझदार है। इसका कारण भी सुनिए।

पागल उसे कहते हैं जो समझदारी से काम न करे, जो ऐसा काम करे जिसे सभी विचारशील उलटा समझें। मान लीजिए कि एक आदमी खूब जबर्दस्त पहलवान है, जैसा कि गुलाम नामक पहलवान को कहा जाता है। जो उस गुलाम पहलवान की छाती पर चढ़े या उसे पटकना चाहे उसे यदि वह पास फटकने भी न दे तभी तो कहेंगे कि वह ठीक है और अपना काम ठीक करता है। मगर अगर मामूली लोग भी ताल ठोंक के उसकी मर्जी के खिलाफ उस पर चढ़ जाएँ, या उसे पछाड़ दें उसे क्या कहेंगे? यही न कि उसे सारी कुश्ती भूल गई, उसकी सारी दाँव-पेंच विस्मृत हो गई, उसका दिमाग ठीक नहीं है? और आखिर पागल कहते हैं और किसे? यदि कोई बड़ा सा प्रखर विद्वान किसी मामूली पढ़े-लिखे विद्यार्थी के सामने पाण्डित्य में बराबर हार जाए तो सभी उसे नालायक, सनकी और बेवकूफ कहेंगे और आश्चर्य करेंगे कि यह क्या हो गया? इसकी सारी बुद्धि कहाँ चली गई? यही पागल का लक्षण है।

अब जरा हाथी को देखिए। उसके आकार और बल के बारे में तो कह ही चुके हैं कि दुनिया में उसका मुकाबला करने वाला कोई है ही नहीं। मगर वही हाथी पीलवान के छोटे से लड़के की डाँट-डपट पर थरथर काँपता है और जैसा वह चाहता है वैसा ही रुकता, चलता, घूमता और बैठता है! यह तो हुआ ऐसा ही कि राई की हाँक से पहाड़ काँपे। मच्छर की आवाज से बाघ की थर्राहट में और इसमें क्या फर्क है? ऐसी दशा में क्या वह बात अक्ल में आने की है कि हाथी का होश हवास दुरुस्त है? उसके दिल दिमाग पर कोई गड़बड़ी नहीं है? उसमें कोई फितूर नहीं पैदा हुआ है?

यह तो रोज की आँखों देखी बात है। इसी से हम मान लेते हैं और ऐसा समझते हैं कि गोया कोई नायाब और आश्चर्यजनक बात होती ही नहीं! मगर हमारी नजरों के सामने से अगर कभी हाथी गुजरता नहीं या अगर गुजरता भी तो उस पर किसी को सवार नहीं देखते फिर कोई कितना ही विश्वास वाला आदमी आ के हमसे कहता कि महज एक लड़का हाथी पर सवार था और वह जिधर जैसे चाहता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

था उसे घुमाता था, तो या तो हम इस बात को असम्भव मिथ्या मानते या बहुत होता तो यही कह के सन्तोष करते कि वह आदमी न होगा। उसी के आकार का कोई देवता या शैतान होगा! इसीलिए मान लेना ही होगा कि जिसे हम सीधा और समझदार हाथी कहते हैं, वह असल में पागल और नासमझ है। मगर जिसे पागल कहते हैं वही असल में समझदार है। क्योंकि उसने अपनी ताकत को समझा और याद किया है, ठीक गुलाम पहलवान की तरह। अतएव मजाल नहीं कि कोई उसके पास में फटके भी।

इसी प्रकार जब नब्बे और पचानबे प्रतिशत कमानेवाले किसान लोग—किसान और मजदूर—जिनकी अप्रतिम शक्ति का वर्णन पहले ही कर चुके हैं, हिजड़ों और नपुंसकों से, दस कदम भी पैदल चलने पर हाँफने वालों से, किसान की कड़ी आवाज पर ही जिनका माथा चकराने लगे ऐसे लोगों से, जिनके हाथ जैसे लकवा वाले हों ऐसों से, जो अपने लिए पैसे-भर दूध या छटाँक-भर गेहूँ न पैदा कर सकें ऐसे अमीरों से—मुफ्तखोरों से पनाह माँगते और काँपते हैं, जब उनके सामने दाँत निपोरते हैं, हालाँकि उनके दाँत और जबानें खींच लेने की शक्ति अपनी भुजाओं में रखते हैं, जब उनके तमाचे और लात-जूते भी बर्दाश्त करते और माँ-बाप कह के दोहाई देते हैं, हालाँकि उनके हाथों और पाँवों को जड़ से ही उखाड़ फेंकने का सामर्थ्य रखते हैं तो उन्हें मतवाला और पागल न मानें तो और मानें क्या? कौन ऐसा दुरुस्त दिमाग वाला होगा जो उन्हें समझदार और अक्ल वाला कहने की हिम्मत इतने विचार के बाद भी करेगा? आखिर पागलों को सींग-पूँछें तो जम जाती नहीं है। वह कहीं आसमान से तो आ टपकते नहीं हैं। विचार कर देखें तो दूसरे पागलों से ये किसान कहीं ज्यादा पागल हैं।

मगर जब अपनी वह अपार शक्ति याद कर के तांडव नृत्य करने लगते हैं ठीक महारुद्र की तरह तब? जब उनके भय से ब्रह्माण्ड काँपता है और शोषकों की अँतड़ी ढीली हो जाती है तब? तभी तो वह ठीक समझदार बनते हैं! तब वह जो काम करते हैं वह किसी को अच्छा भले ही न लगे। मगर वही तो समझ में आता है। वही तो स्वाभाविक और उचित जान पड़ता है, यदि खूब गौर करके देखें।

इससे हम इसी निष्कर्ष पर खामख्वाह पहुँच जाते हैं कि जैसे हाथी का डरना गलत और बेबुनियाद है केवल उसकी नासमझी और पागलपन के कारण ही है। सिर्फ उसकी आत्म विस्मृति के चलते ही वैसा होता है। ठीक वैसे ही किसान का डर बेबुनियाद है। वह इसकी भारी भूल है। वह अपने आप को और अपनी सामूहिक शक्ति को, अपनी अपार महिमा को भूलकर ही ऐसा करता है। यह उसका पागलपन है। दूसरा कुछ नहीं। जिस प्रकार हाथी अपनी ताकत और अपना स्वरूप कभी-कभी पहचान के आजाद होता है और डरना छोड़ता है। ठीक किसान को भी वैसा ही करना चाहिए—वैसा करना होगा—करना पड़ता है। अन्तर सिर्फ इतना ही है कि हाथी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

को उसकी शक्ति की याद दिलाने वाला कोई सामान तो है नहीं। कभी-कभी दैवात उसे अपनी ताकत याद आ जाती है। मगर किसान को तो अब ऐसे सामान मिल गए हैं और जमाना ऐसा बदल गया है कि एक बार याद करके फिर अपने उस महान प्रभाव को न कभी भूलना होगा और न किसी से डरना होगा।

चोरी से, बदमाशी से, डकैती से, गुनाह से, पाप से डरें तो समझ में आता है। उनसे डरना चाहिए भी। साँप, बिच्छू, कुत्ते, चीते, शेरादि से डरें तो भी यह एक बात है। क्योंकि उनके पास फौरन डँसने, काटने या मार डालने की ताकत है। मगर जमींदार, साहूकार, हाकिम हुक्काम से क्यों डरें? क्या वे भी खूँखार जानवर हैं कि उनके लिए कोई नियम और कानून नहीं है? साँप वगैरह पर न तो जाब्ता फौजदारी लागू है और न दण्ड विधान की और धाराएँ ही। मगर जमींदार वगैरह पर तो वही नियम कानून लागू हैं जो किसानों पर। फिर डरने की क्या बात? यह ठीक है कि वे लोग बन्दर घुड़की जरूर दिखाते हैं। अगर उसी में किसान आ गए तो चलो ठीक। मगर उस घुड़की की परवाह न की तो सारी आई बाई हजम ही समझिए।

आखिर जमींदारों, उनके मददगारों को और पूँजीवालों को भी अपना कुकर्म और जोर जुल्म—अपना अत्याचार तो बराबर याद रखता ही है। वह तो बखूबी समझते हैं कि उनकी खैरियत तभी तक है जब तक किसान जग जाते नहीं, जब तक अपनी शक्ति को भलीभाँति समझ पूर्ण संगठन के द्वारा उसे काम में लाना सीख लेते नहीं। उन्होंने गत डेढ़ वर्षों के भीतर जो धाँधली और जुल्म किए हैं, जो मनमानी घरजानी की है और जिसका साक्षी इतिहास है, सर्वे के कागजात हैं जो अंग्रेज अफसरों के हाथों बहुत छानबीन के बाद लिखे गए हैं—उन्हीं अंग्रेजों के हाथों जो पहले और आज भी अच्छे से-अच्छे पदों पर रह चुके हैं, उन्हीं पापों से उनकी तो आत्मा ही काँपती है। क्योंकि वे पद पद पर याद आते रहते हैं! फिर उन्हीं से डरना! एक तो बकरी, दूसरे जुलाहे की। फिर वह भी डरवायें। उससे भी हम डरें। किमाश्चर्यतः परम्।

जिस प्रकार आत्मविस्मृति किसानों के अकारण भयभीत होने का एक जबर्दस्त कारण हमने अभी-अभी बताया है ठीक उसी प्रकार आत्मरक्षा की विस्मृति, या यों कहिए कि आत्मरक्षा के लिए जो हरेक को प्राकृतिक, नैतिक और कानूनी हक है उसके न जानने या भूल जाने से भी किसान सभी से डरने लगा है। प्रकृति ने जो हाथ-पाँव, नाखून, कान, आँखें सब को दी हैं उनका तो प्रयोजन ही यही है कि ठीक-ठीक चीज को समझें, खतरे को देखें-सुनें तथा पहचानें और उससे भाग कर बचें या उसका मुकाबला करें। साँप, बिच्छू या दूसरे जानवरों के सम्बन्ध में हम सदा ऐसा करते हैं। चोर-बदमाश या इस तरह के लोगों से भी अपनी जान और अपने माल को बचाते हैं।

यदि नीति को देखें तो भी 'शठे शाठ्यं समाचरेत' 'जैसे को तैसे मिले' के अनुसार लाठी का जवाब लाठी से ही देना चाहिए। जो जिस प्रकार पेश आए उसके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

साथ वैसा ही सलूक करें। यह नहीं कि लाठी और जूते से यों ही बिना वजह के कोई पीटने लगे। मगर हम या तो उसके सामने हाथ जोड़ें या भाग के जैसे-तैसे जान बचावें। खतरे के सामने से भाग जाना तो हिजड़े और नामर्द का काम है। जब तक खतरा न आए और उसका सामना न हो तभी तक उससे बचने की कोशिश होनी चाहिए। मगर जब आ गया तब तो डट के मुकाबला ही करना चाहिए। यही बात पुराने लोगों ने इस तरह कह डाली है—

तावद्भयस्य भेतव्यं यावद्भय मनागतम्।
आगतं तु भयं वीक्ष्य प्रतिकुर्याद्यथोचितम्।।

भागने से भी तो जान छूटेगी नहीं, जब तक सतानेवाले से बहुत दूर न चले जाएँ। बाघ के सामने से भागें तो आसानी से पकड़कर लाद तो निकाल लेगा। लेकिन यदि आमने-सामने डट जाएँ तो उसकी हिम्मत नहीं होती कि हमला करे। ऐसा ही देखा गया है।

कानून भी ऐसा ही कहता है! यदि दण्ड विधान और जब्ता फौजदारी की 99 से लेकर 105, 106 धाराओं तक को देखें तो उनमें बहुत बातें मिलती हैं। वहाँ यह लिखा गया है कि किन-किन हालतों में हम हथियार उठा सकते हैं और शत्रु पर वार कर सकते हैं। अपने शरीर, अपने माल-असबाव, अपनी घर-गिरस्ती और अपने बालबच्चों की हिफाजत के लिए और माताओं-बहनों तथा स्त्रियों की इज्जत बचाने के लिए हमें बल प्रयोग करने का पूरा हक कानून में बताया गया है। स्त्री के साथ कोई बलात्कार करता हो या करने पर तुला हो और किसी प्रकार न माने तो वह स्त्री खुद या उसके रक्षक उस आततायी की जितनी भी बने खिदमत कर सकते हैं, अगर कोई और रास्ता उससे बचने का न हो। यदि ऐसा अधिकार नहीं होता तो क्या जालिमों और लुटेरों से कोई भी बच सकता? पुलिस कहाँ-कहाँ जाएगी और किसे बचाएगी यदि सभी नपुंसक और नामर्द बनें और अपनी रक्षा खुद करने को तैयार न हों।

प्रायः दो-तीन साल पहले चोरी की शक में एक चौकीदार को रावलपिण्डी में पुलिस ने पकड़ा। फिर उससे अपराध स्वीकार करवाने के लिए उसे हद से ज्यादा मारा पीटा और नाकोंदम कर दी। फलतः ऊबकर मौका देख के एक चाकू से एक पुलिसवाले का तो पेट ही फाड़ डाला जो सौभाग्य से ही बच गया। मगर दूसरा तो, जहाँ तक याद है, मर ही गया। बाद में उस पर खून का केस चला और नीचे की अदालत ने फाँसी की सजा भी दे दी। मगर लाहौर हाईकोर्ट ने यही कहके उसे छोड़ दिया कि उसके पास कोई चारा न था। उस पर इतनी ज्यादती की गई थी कि उसने आत्मरक्षार्थ ही—चाकू चलाया था। ऐसे ही और भी केस हुए हैं।

हमें सख्त अफसोस यह है कि किसान अपने इस कानूनी हक को जानता ही नहीं। लेकिन वह चौकीदार भी तो नहीं जानता था। मगर जब ऊबकर उसने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वैसा किया तो उसी कानून ने उसकी जान बचाई। आप लोगों को यह बात मालूम नहीं है। देहातों में कानून की इन बातों का प्रचार किया गया है नहीं। सरकार ने ही यह कानून बनाया है उसी का काम था इसका खूब प्रचार करना। मगर उसने तो किया नहीं! शायद उसे गर्ज भी नहीं। वह अपनी हो तब न? वह तो विदेशी है। अगर स्वदेशी भी हो, तो पराये की—जमींदार-मालदारों की—होने पर वह भी क्यों प्रचार करेगी? यह तो काम असल में उस सरकार का है और वही ठीक-ठीक कर भी सकती है, जो किसानों और मजदूरों की—आम जनता की—सरकार हो। जमींदार वगैरह भी क्यों इसका प्रचार करके अपने लिए बला पैदा करें? यदि किसान जानकार हो जाएगा, तो मारपीट रुक जाएगी। वह तो फौरन उठेगा। फिर किसकी हिम्मत कि ज्यादती करे!

अब बचे नेता और कार्यकर्ता लोग, जो आजादी के लिए लड़ते हैं और कहते हैं कि किसानों को स्वराज्य दिलाएँगे, मुक्ति दिलाएँगे। उनका काम है कि गुलामी से और विदेशी शासन से तो पीछे मुक्ति दिलाते। पहले इस आएदिन के जुल्मों से तो मुक्ति दिलाते—इन मारपीटों और बेइज्जतियों से तो बचाते। मगर वह लोग तो शान्ति और अहिंसा की बला में फँस गए हैं उन्हें तो इस बात में बिलकुल हिंसा और अशान्ति दीखती हैं कि किसान बिगड़े दिल-दिमाग वाले जमींदारों, उनके बिगड़ैल अमलों और गुण्डों से अपनी और बाल बच्चों की रक्षा में लाठी और डण्डे से हड़कम्प मचाते रहें। मगर उसमें तो हिंसा उन्हें नजर आती नहीं। सारी की सारी हिंसा तो किसान के द्वारा चलाई गई आत्मरक्षार्थ लाठी में ही है! फोड़े और भीतरी घाव से घुल-घुल के मरीज मर जाए, तो हिंसा नहीं! मगर जर्राह और सर्जन—डॉक्टर और वैद्य—यदि नस्तर लगा के फोड़ों को अच्छा करना और मरीज को बचाना चाहें, तो इसमें भारी हिंसा है। क्योंकि खून जो बहता है! इस अहिंसा से खुदा ही खैर करे! न जाने यह बला हमारे सिर क्यों लगी?

मगर किसान का तो फर्ज है और पवित्र कर्तव्य है—सबसे पहला काम है कि आत्मरक्षा का यह पाठ पढ़े और अपने बाल-बच्चों, सगे-सम्बन्धियों, पड़ोसियों और दूसरे किसान को भी अच्छी तरह पढ़ाए। इसके बिना कार्य चलने का नहीं। यही पाठ न पढ़ने और यही बात न जानने का आज यह नतीजा है कि सबकुछ होते हुए भी और अपनी बखूबी हिफाजत करने की सब ताकत के रखते हुए भी वह भीगी बिल्ली बन गया है। इस प्रकार बदमाशों के सामने काँप कर जुल्म के लिए उनकी हिम्मत और भी बढ़ती है! अपनी और अपनों की रक्षा कर सकता ही नहीं। असल में इस मन्त्र के और पाठ के पढ़ने की ही देर है। ज्यों ही किसान समुदाय ने इसे अच्छी तरह कंठस्थ कर जपना और इस पर अमल करना शुरू किया कि मनचले जमींदारों और उनके लाड़लों की आई बाई ही हजम हो जाएगी। वे लोग तकुवे की तरह सीधे हो जाएँगे जो आज बिना ऐंठे चल ही नहीं सकते। फिर तो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

डर का कारण ही खत्म हो जाएगा!

मुझे हजारों ऐसे मौके मिले हैं जब किसानों का; जिनमें हलवाहे-चरवाहे आदि भी शामिल हैं, बड़ा सा दल काँपता हुआ मिला है और बेहोशी की-सी हालत में मारपीट और लूटपाट की दर्दनाक दास्तान उन्होंने मुझे सुनाई है। जमींदार के एक या दो, मुश्चण्ड नौकर लाठी लेकर गाँव में घुसे कि किसानों में, खासकर तथाकथित 'रैयान' और 'छोटी कौमों' में हड़कम्प मच गई, और या तो दरवाजा बन्द करके घर में जा घुसे या अगर दरवाजे में किवाड़ नहीं है, और कितने घरों में यह होता ही है, तो जान लेकर भाग निकले! फिर तो उन लठैतों की बन आई और जो चाहा किया। किसी की लोटा-थाली उठा ली, किसी का बकरी-बकरा ले लिया, किसी के छप्पर से कद्दू-कोहड़ा तोड़ लिया, यहाँ तक कि कभी-कभी कोई जवान स्त्री भी मिल गई तो उसकी इज्जत भी उतार ली और बेखटके चलते बने! यदि किसी ने रोक-टोक की तो उसकी मरम्मत भी बखूबी कर दी।

यह नाटक या कहानी नहीं है! यह तो बिहार में और दूसरी जगह भी बराबर होता रहा है और अभी-अभी किसान सभा के चलते बन्द हो गया है। फिर भी कहीं-कहीं कभी-कभी चलता ही है। आखिर इस गुण्डाराज और नादिरशाही का जवाब सिवा किसान के संगठित डंडे और लाठी के और हो ही क्या सकता है? देहात में डंडे को दुखहरन कहते हैं और उसका नाम उसी प्रकार सार्थक हो सकता है। हमने ऐसा ही किया-करवाया है उसका एक दृष्टान्त भी दिए देते हैं।

गया जिले के बेला थाने में एक घटना कुछ दिन पहले खास बेला में ही हुई। नयामतपुर में किसान सभा का आफिस तथा आश्रम है। और श्री यदुनन्दन शर्मा का केन्द्र है। वह बेला से निकट ही है। जब वहाँ के कोइरी लोगों ने मुफ्त में शाक, तरकारी वगैरह अमावां, टेकारी राज्य के अमलों को देना बन्द कर दिया तो उनमें बेचैनी हुई। जमींदार की कचहरी भी वहीं ठहरी। बराबर मुफ्त शाक-तरकारी उनके अमले खाते थे। उनका एक खास दल ही वहाँ प्लेग के कीटाणुओं की तरह रहता है। कुछ लठैत भी समय-समय पर किसानों की 'सेवा' के लिए रखे जाते हैं। सभी के सभी गुस्से से लाल थे। फिर धमकी दी गई कि अच्छा तो हम तुम्हारी किसान सभा की गर्मी उतारेंगे। कल इसका पता चलेगा। बेचारे कोइरी शर्मा जी के पास दौड़े गए। सब बातें उन्हें सुना दीं। उन्होंने राय दी कि घबड़ाने की बात नहीं। डरने से ही तो काम खराब होता है, हिम्मत से डटे रहो। साथ ही, कल घर से बाहर कोई न जाए। सभी घर में बन्द रहें, दरवाजे की किवाड़ भी मजबूत रहें। वे कुछ-कुछ खुले-से रहें। एकाध मजबूत रस्सी भी पास में रहे। दरवाजे के पास ही सभी बैठे भी रहें। ज्यों ही लठैत पहले की तरह घर में घुसने, मारपीट करने तथा स्त्रियों को बेइज्जत करने की कोशिश करें त्यों ही सब सजग हो जाएँ और ज्यों ही उनमें एक घर में घुसे तो फौरन कई आदमी एक ओर से कस के पकड़ें और दूसरी ओर भीतर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

से किवाड़ कस के बन्द कर दिया जाए, जिसमें दूसरे घुस न सकें। इसके बाद उसी मजबूत रस्सी से उसे बाँध के खूब पीटना और दुरुस्त करना, पीछे बँधा ही छोड़ के अलग हो जाना और थाने में खबर देना कि ऐसी बात है।

किसानों ने हूबहू ऐसा ही किया। वे पूरी तैयारी के साथ बराबर बैठे रहे। जब गाली-गलौज करते मस्ती के साथ एकके बाद दीगरे वे गुण्डे उधर चले तो उन्होंने खबर देने वालों के द्वारा पहले ही यह जान लिया। फिर तो कमर बन्द होके डँट गए। ज्यों ही घर में एक हजरत घुसे कि एक ने चट किवाड़ खूब कस के भीतर से बन्द कर दिया और बाकियों ने उन्हें पछाड़ा। फिर कस के मुसुक चढ़ा दी और हाथ-पाँव मजबूती से बाँध दिया। उधर बाहर से और गुण्डे दरवाजे का किवाड़ पीटते थे। इधर ये लोग आगत अतिथि महाशय की भरपूर खिदमत कर रहे थे। इधर इनका काम पूरा हुआ। उधर पीटने वाले डर से भाग गए। क्योंकि दाल में काला मालूम हुआ। अतिथि महाराज तो अशक्त आँख मूँदे पड़े थे।

बाद में उन किसानों की एक औरत थाने में गई। वहाँ उसने पुलिस को सारी दास्तान सुनाई। यह भी कहा कि उसे बाँध रखा है। नहीं तो बेइज्जत भी करता। पुलिस दौड़ी गई और उसी रस्सी में बँधे-बँधाये हजरत को थाने लाया गया। उसके बाद कानून के अनुसार सारी कार्यवाही की गई और अन्त में शायद कुछ समय के लिए वह सरकार के भी अतिथि बनके श्रीकृष्ण जन्मस्थान को अलंकृत करते रहे। तब कहीं उन्हें छुट्टी मिली। लेकिन उसका यह फल तो हो ही गया कि आगे के लिए उस जमींदार और जमींदारों के लाड़ले ने यह हरकत बन्द ही कर दी, जिन्हें इसका पता लग सका। इस प्रकार दो ही चार किसानों की हिम्मत और निर्भयता ने उन्हें और दूसरों को सदा के लिए इस जुल्म से बचा दिया!

किसानों के दिल-दिमाग पर भय और आतंक का जो राज्य छाया रहता है और अपनी रक्षा का यह अधिकार जो वह नहीं जानते उसी से यह सबकुछ होता है। फलतः जरा एक बार दबे कि फिर बराबर दबते ही चले जाते हैं। उनकी यह दशा मेरी आँखों के सामने नाचती है। क्योंकि इस ढंग से उन्होंने उस भय का समय-समय पर वर्णन किया है कि वह भूलता नहीं। डर से चेहरा उड़ा हुआ और कोई सुध-बुध नहीं, ऐसे किसानों ने आके बड़ी बेचैनी और घबराहट में, जैसे किसी बाघ ने उनका पीछा किया हो। मुझसे हाथ जोड़ कर प्रायः कहा है कि 'सरकार, लुट गए, मिट गए, हाय, हाय, मालिक के अमलों ने नाश कर दिया। भाग के जान बचाई, किसी प्रकार। वह बड़ा जबरदस्त है, बड़ा जबरदस्त है' आदि। मैंने जब पूछा कि आखिर बात भी तो कहो कि क्या है, तो फिर वही अन्तवाला वाक्य दुहरा दिया कि 'बड़ा जबरदस्त है'। मैंने पूछा के बाघ है? सिंह है? भालू है? हाथी है? कुत्ता है? अजगर है? आखिर वह क्या है कि यह बेचैनी? मगर फिर भी वही रट, कि बड़ा जबरदस्त है, बड़ा जबरदस्त है। इसे ही आतंक राज्य कहते हैं और जिस अमन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और कानून का इतना ढिंढोरा आज पीटा जा रहा है उसी की आँखों के नीचे यह आतंक राज्य!

असल में सन् 1793 ई. की 22 वीं मार्च को लार्ड कार्नवालिश ने जब जमींदारी को जन्म दिया तो उसके बाद ही यह आतंक राज्य कानून के ही रूप में शुरू हुआ। सन् 1805 ई. जो खासतौर से 5 वाँ फतवा या रेगुलेशन सरकार ने जारी किया और जिसे हाईकोर्ट के न्यायाधीश श्री फिल्ड महोदय ने 'खूँखार पंजुम' (Notorius Panjum) नाम दिया है, उसी ने तो जमींदारों को यह अधिकार दे दिया था कि उनके मामूली अमले भी लगान बाकी रहने पर बिना अदालत गए ही या कोई सरकारी हुक्मनामा हासिल किए ही किसानों के जनाने घरों तक वे भीतर घुस सकते हैं। उस सिलसिले में वे आसानी से आतंक पैदा कर सकते थे। सिर्फ गल्ला और सामान का पता लगाने के बहाने! किसी पड़ोसी के द्वार पर अन्न या पशु हो और यदि कोई कह दे कि यह उसी किसान की चीजें हैं जिसका लगान बाकी है, तो वे चीजें बेखटके जब्त कर लेने का भी उन अमलों को अधिकार दिया गया था। फिर तो वे खूब ही खुल के खेलते रहे। वही होली आज तक जारी है। हाँ, अब किसान सभा ने उसे बहुत कुछ खत्म किया है। आज तो कानून बदला है सही अब वैसा करने का हक भी किसी को नहीं है, यहाँ तक कि हाकिम भी अपने मन से वैसा नहीं कर सकता। मगर बहुत दिनों तक चालू रहने के बाद वह बन्द थोड़े ही हो सकता था! इसलिए तो सूरदास ने कहा है 'जाकी जैसी टेव परीरी। सो तो टेरे जीव के पीछे'।

मगर, आखिर में जब मैंने उन्हें ढाढस दिया और समझाया कि जैसा कानून तुम्हारे लिए है वैसा ही उनके लिए भी है। हाँ, यदि वे बाघ, हाथी वगैरह होते तो बात दूसरी थी। मगर सो तो है नहीं। इसलिए तुम भी उनका मुकाबला लाठी और डण्डे आदि से डट के कर सकते हो। तब कहीं उनकी आँखें खुलीं। फिर तो उनने पूछा कि ऐं हम भी लाठी और डण्डे से उनका सामना कर सकते हैं? सच? मैंने कहा कि जरूर-जरूर। ऐसा करने का तुम्हें कानूनी हक है। किसी को भी किसी दूसरे के घर में घुसने, उसका सामान, या शरीर छूने और मार-पीट वगैरह का हक नहीं है। कानून ही ऐसा कहता है। अगर उसे कुछ भी करना है और वह जायज है, तो कचहरी और पुलिस के पास सिर्फ कानूनी कार्यवाही करने का उसे हक है। घर में घुसने या ऐसा काम करने पर उसे कानून ही दण्ड देता है। कानून को अपने हाथ में लेने का अधिकार किसी को भी नहीं है। ऐसा करनेवाले चोर, बदमाश, डाकू हैं। बल्कि उनसे भी खराब हैं। क्योंकि वे लोग जानबूझकर शरारत से ही कानून को तोड़ते हैं। इसलिए उनके साथ वैसा ही सलूक करना चाहिए जैसा चोर-बदमाशों के साथ।

मैंने उनसे पूछा, अगर चोर घर में घुसें या मारें, पीटें तो पहले मेरे पास आओगे? पुलिस के पास जाओगे? या कि पहले यथाशक्ति लाठी-डण्डे आदि से उनके साथ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

निपट के पीछे पुलिस के पास जाओगे? उन्होंने उत्तर दिया कि नहीं पहले तो सारी शक्ति लगा के उनसे खूब निपटेंगे। पीछे पुलिस के पास जाएँगे। यदि जरूरत समझी तो। 'लाठी-डण्डे वगैरह लेकर उनसे निपटने पर क्या कोई आदमी या पुलिस वाला तुम्हें अपराधी बताएगा, या बुरा कहेगा क्या?' मैंने फिर पूछा। उत्तर मिला कि हरगिज नहीं। सभी तारीफ करेंगे। बल्कि कभी-कभी इनाम भी मिलेगा। यदि चोरों को पकड़ लिया तो। हाँ ऐसा न करने पर ही और डर से भाग जाने पर ही सभी लोग, पुलिस भी, धिक्कारते और बुरा कहते हैं। मैंने कहा कि बस, इन गुण्डों और लठैतों या अमलों के सम्बन्ध में भी ठीक यही समझो। जरा भी उसमें फर्क नहीं है।

इस बातचीत ने उनके दिल और दिमाग पर का पर्दा हटा दिया। पहले जहाँ वे लोग घोर अन्धकार में पड़े थे वहाँ अब उन्हें पूरा प्रकाश मिल गया। उनमें अपार बल आ गया। कहने लगे कि अब तो हम उन्हें दुरुस्त ही कर देंगे और सदा के लिए उनकी आदत ही छुड़ा देंगे। हम तो जानते थे कि हमें उनसे भिड़ने और उन्हें पछाड़ने का कोई कानूनी हक है नहीं। हम तो समझ बैठे थे कि वे तो हमारे घरों में घुस के सबकुछ कर सकते हैं। मगर हम चूँ भी नहीं कर सकते असल में हम अन्धेरे में थे इसी से अपने को असहाय और कमजोर समझते थे। अब तो हमने देख लिया और हम में बल आ गया। बल तो पहले भी था। पर भूल के चलते बेकार हो गया था। अब भूल मिट गई। अब वह बल मौके पर पूरा काम आएगा।

इस प्रकार इधर हमारी बातचीत हो रही थी। उधर जमींदारों के खुफिया भी सुनते थे। उन्होंने जा के सभी बातों की रिपोर्ट की। फिर तो जिन-जिन ने सुना उनके होश फाख्ता हो गए और उनने कसम खा ली कि अब ऐसा कभी न करेंगे। नहीं तो खैरियत नहीं। इस तरह किसानों को कुछ करना ही न पड़ा। सिर्फ निश्चय करते ही वे इतने सबल बन गए कि शत्रु लोग काँप उठे और शैतानियत को तिलांजलि दे दी। यह है, हमारा 'डण्डावाद' और यह है महाराज दुःखहरण जी की अपार महिमा कि उनके स्मरण मात्र से ही संकट दूर हो जाते हैं, 'यस्यस्मरण मात्रेण मुच्यते भव बन्धनात्'।

एक बार ऐसा हुआ कि जमींदार और उनके अमलों के द्वारा बुरी तरह सताए, अतएव संत्रस्त, किसान एक सभा में आए और मेरी बात सुन के कहने लगे कि सबकुछ तो सही है। मगर जब वह मारपीट शुरू करते हैं और लूटने लगते हैं तब क्या करें? मैंने कहा कि यदि शरीर और जीविका को बचाना है, तो अच्छी तरह भिड़ना ही होगा। दूसरा उपाय है नहीं। मगर ऐसा करने की उनकी हिम्मत न हुई। बोले कि बाप रे, बाप! वह तो हड्डियाँ तोड़ डालें। वे तो जान से ही मार डालेंगे, यदि भिड़ने का नाम भी लिया। यों तो थोड़ा-बहुत पीट-पाट के छोड़ भी देते हैं। और जब हम मर ही जाएँगे, या बेकार ही हो जाएँगे, तो चीज-वस्तु बच के ही क्या करेगी? इससे तो अच्छा है कि यदि हाथ-वाथ जोड़ने और गिड़गिड़ाने पर भी वे न

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मानें तो जान बचा कर भाग ही जाएँ और उन्हें लूटने दें। और क्या करेंगे? जीवित रहेंगे तो भीख माँग के गुजर करेंगे या कहीं मजदूरी करके। हम तो आए थे आपका नाम सुन के कि कोई आसान रास्ता बताइएगा।

मैं उनकी पस्ती पर तरस खा गया! फिर कहा कि अच्छा, शरीर और चीज वस्तु की बात छोड़ दो। क्योंकि उसके बचाने में अपने को कमजोर और असमर्थ समझते हो। मगर अगर वही लोग तुम्हारी जवान स्त्री या लड़की या माँ के ऊपर हमला करें तब क्या करोगे? क्या जान लेकर भाग जाओगे? या कि उनका हाथ-पाँव जोड़ के ही काम खत्म करोगे और आँखों के सामने ही माँ-बहनों की इज्जत उतरती देखोगे? या अपनी आँखें फोड़ लोगे? बस, इतना सुनना था कि उनका चेहरा तमतमा गया और कहने लगे कि आपने हमें क्या समझ लिया महाराज? हम आदमी हैं, मर्द हैं, या हिजड़े? हम तो दूसरा कुछ न करेंगे। किन्तु जान पर खेल के उन बदमाशों से भिड़ेंगे और चाहे खुद मरेंगे या उनका खून पीएँगे। मगर जीते जी ऐसा होने न देंगे! खबरदार, ऐसा बोलिए मत।

इस पर मैंने हँस के कहा कि इस बार कमजोरी और असमर्थता कहाँ चली गई? आप तो वही हैं न, जो अभी पहले बोलते थे! फिर यह क्या हो गया कि एक बार निडर और बलवान हो गए और दूसरी बार डरपोक और कमजोर? आप अपना होश सम्भालिए, असल में आप कमजोर और डरपोक नहीं हैं। आपका खयाल और दिमाग ही ऐसा है जो और मौकों पर आपको जबर्दस्ती कमजोर बना देता है। मगर जब माँ, बहनों की इज्जत का मौका आता है तो दिमाग की यह कमजोरी और दिल की यह दुर्बलता भाग जाती है। लेकिन याद रहे जीविका और शरीर ही इज्जत के आधार हैं। जब आपको खाना मिलेगा और जिन्दा रहेंगे तभी इज्जत बचा सकेंगे। फलतः कमजोरी हटते ही आपका स्वाभाविक बल काम करता है, आप आततायियों से भिड़ते हैं और नतीजा क्या होगा इसकी परवाह नहीं करते हैं। अन्त में जीतते भी हैं क्योंकि 'मरता क्या न करता ?' मैं आपकी इस दिल और दिमाग की—विचार की—कमजोरी को जानता हूँ। मैं आपका वैद्य हूँ, यकीन रखें मैं दिल से चाहता हूँ कि वह कमजोरी आपसे हटे और आपका दिल और दिमाग सबल बने, निडर बने, हिम्मतवर बने। फिर तो आप शत्रुओं और शोषकों को पछाड़ के ही दम लेंगे, यह मेरा पक्का विश्वास है!

इसके बाद तो वे किसान समझ गए और उनके साथ दूसरे भी। फिर सबने जोर से 'इन्कलाब जिन्दाबाद' का नारा लगाया! मानो, बहुत दिनों की खोई कोई कीमती चीज उन्हें मिल गई! सचमुच ही इन्कलाब हो गया! क्रान्ति हो गई! असल क्रान्ति तो किसानों और मजदूरों के—कमानेवालों के—दिलों और दिमागों में ही होगी। उसी के बाद बाहरी क्रान्ति होगी और बहुत आसानी से होगी।

कुछ समझदार किसानों और किसान कार्यकर्ताओं ने एक बार बहुत ही मुस्तैदी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और लगन के साथ मुझसे प्रश्न किया कि जमींदारों तथा उनके अमलों के द्वारा बहुत ज्यादा और कभी-कभी पुलिस के भी द्वारा मगर बहुत ही कम—मारपीट, लूटपाट, घर में घुस जाने, चीजें लूट लेने और हुआ तो माँ-बहनों की इज्जत उतारने तक की नौबत आती ही रहती है। हम तो किसानों को डट के मुकाबला करने को कहते हैं और कहीं-कहीं वे लोग ऐसा करते भी हैं। मगर यह बीमारी तो पुरानी है! साथ ही, किसानों में पस्ती भी बेहद है। इसलिए उतनी सफलता नहीं मिलती दीखती और मिलेगी भी तो समय लगेगा। इसलिए कोई आसान रास्ता बताइए।

मैंने उत्तर दिया कि आसान रास्ते में खतरा है। क्योंकि यदि वे खुद न डटेंगे तो कमजोर के कमजोर ही रह जाएँगे, और हो सकता है, आगे चल के यह मारपीट वगैरह फिर जारी हो जाए, यद्यपि आज बन्द हो सकती है। हमें तो किसानों में बल लाना है और वह उन्हीं के लड़ने और भिड़ने से ही होगा। यही उनके लिए शक्तिवर्धक, चूर्ण और वटी है। दवा तो उसे ही खाना चाहिए जो बीमार हो, कमजोर हो। दूसरों को दवा खाने से औरों को कैसे लाभ होगा?

मगर आप लोगों को घबराहट है और जल्दी में यह मरहला खत्म करके आगे बढ़ना चाहते हैं। इसलिए दूसरा नुस्खा बताता हूँ।

किसानों के भीतर से ही कुछ ऐसे जवानों को चुन-चुन के तैयार कीजिए जो धुनी और लगनवाले हों; जिनका काम ही हो किसानों का उद्धार करना; इसलिए जो निर्भीक और निडर हों चाहे जो हो जाए, मगर जो अपने मार्ग से डिगें नहीं; जो तय कर लें, संकल्प कर लें कि जमींदारों और दूसरों का यह आतंकवाद और उनकी यह मनमानी घरजानी—उनका अपने ही हाथ में कानून ले लेने का यह पुराना चस्का दूर किए बिना चैन न लेंगे। ऐसे युवक बहुत ज्यादा न चाहिए। मगर फिर भी यदि उनकी एक अच्छी संख्या हो तो काम जल्दी हो जाए। यों तो यदि दस-बीस या दस पाँच भी हों और लगन के पक्के हों तो भी काम हो ही सकता है। वे हिम्मतवर हों, धमकियों में न पड़ें और बड़े से बड़ा भी प्रलोभन उन्हें डिगा न सके। या तो हम ही खत्म होंगे या यह गुण्डेबाजी और शैतानियत ही मिटा छोड़ेंगे, यही संकल्प उनका होना चाहिए।

उसके बाद कुछ खास जमींदारियों को या कुछ ऐसी जगहों को चुन लिया जाए जहाँ सबसे ज्यादा ऐसे जुल्म और ऐसी मारपीट होती हो, जहाँ के लोगों पर ज्यादा आतंक हो। वहाँ जाकर साफ घोषणा कर दें, या हो सके तो एक छोटी सी नोटिस भी बाँट दें। नहीं तो जालिमों से ही साफ-साफ कह दें कि अब तक तुमने कानून को हाथ में खूब ही लिया और काफी होली खेली। मगर यह बात हो चुकी। अब उसे खत्म करो और उसका नाम मत लो। नहीं तो खैरियत नहीं। उसे बन्द करवाने की प्रतिज्ञा हमने कर ली है। हमारा नाम दुष्टदलन है। हम बदमाशी करनेवालों को सीधा करते हैं। यदि हमें पता लगा कि किसी किसान या गरीब के साथ आपने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वैसी हरकत भविष्य में की तो आप जानें और आपका काम जाने। हम तो घूमकर खबर लेते ही रहेंगे। और पता लगते ही आप पर चढ़ बैठेंगे। जो भी ऐसा करेगा उसे मजा चखाएँगे। हमारा यही काम है, दूसरा नहीं।

आप लोग यह न समझें कि जिस प्रकार जमींदारी और महल मकान आपके पास हैं, धन-सम्पत्ति आप रखते हैं, मगर किसान के पास ये सब चीजें नहीं हैं, वैसे ही लाठी, जूते और हाथ, पाँव भी आप ही के पास हैं, किसान के पास नहीं। यह गलत समझ है। हमारे पास भी डण्डे, लाठियाँ, जूते और हाथ-पाँव हैं। उन्हें लकवा का मर्ज या कुष्ठ रोग भी नहीं है। इसीलिए हम 'सेर के बाप सवा सेर' जरूर ही बनेंगे और अब इसमें हमारा कसूर नहीं। भला इसी में है कि अब आप इसे रोक दें। दूसरों को भी समझा दें। यदि चाहें तो हफ्ते-दो हफ्ते की मीयाद भी दे सकते हैं, जिसके अन्दर वह लोग अपने आप को और अपने मनचलों को भी सँभाल लें। किसानों में भी मुनादी करवा देनी होगी कि जिस पर मारपीट पड़े, जिसके घर में वे लोग घुसें, जिसकी चीजें छीनने की कोशिश वे करें, या जिसकी माँ-बहनों की इज्जत पर धावा बोला जाए वह हमें या तो पहले से ही, या फौरन ही खबर दे। देर न करे। यदि इस बात का काफी प्रचार हो जाए और हाकिम-हुक्काम भी जान जाएँ तो और भी अच्छा।

हमें यकीन है कि इतने से ही ये बातें सदा के लिए बन्द हो जाएँगी। लेकिन यदि दुर्भाग्य से ऐसा नहीं हुआ और किसी हजरत ने फिर शरारत की, तो उनकी खूब खिदमत वही जवान ऐन मौके पर ही करें। भरसक देर न होने दें। हर हालत में उन्हें खूब दुरुस्त करें और जरूर करें। जहाँ एक बार उनकी खासी मरम्मत हुई और उन्हें अपनी देह में सेंक करवाने या हल्दी-गुड़ पीने की नौबत आई कि फिर वे तो उस हरकत का नाम भी न लेंगे। औरों में भी उन्हीं को देख के हड़कम्प पड़ जाएगी।

लेकिन ऐसा भी हो सकता है कि कुछ लोग हिम्मत करें और उन जवानों तथा किसानों को उसके बाद किसी बनावटी मुकदमे में फँसा के हैरान करना चाहें ताकि डर जाएँ, तो भी ठीक ही है। मुकदमे की तारीख पर जा के वे जवान लोग हाकिम से साफ कह दें कि यह मुकदमा तो निरा जाली और झूठा है, असल में मुकदमा चलानेवाले या उनके मददगार अमुक-अमुक आदमी यों ही किसानों को पीटते और उनकी बहू-बेटियों की इज्जत उतारते रहना चाहते हैं। हम से रहा न गया तब उन्हें चेतावनी दी कि अब यह हरकत कतई बन्द कर दें नहीं तो हम बिना पीटे न छोड़ेंगे। मगर उन्होंने नहीं माना और फिर वही बदमाशी की थी। फलतः हमने उनकी खूब ही खबर ली। उसी का बदला लेने के लिए यह जाली केस चला रहे हैं! अब आपकी मर्जी जो करें।

मगर अगर हमें कोई सजा हुई तो परवाह नहीं। हमने तो तय कर लिया है

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कि ये बातें बन्द करके ही छोड़ेंगे यदि आपकी पुलिस कानून और अमन की रक्षा नहीं कर सकती, तो मत करे। मगर हमने तो तय कर ही लिया कि हमीं करेंगे। इसलिए सजा भुगतने के बाद भी हम यही करेंगे और यदि हमने किसी को ऐसा करते पाया, तो उसकी देह का दर्द जरूर छुड़ाएँगे!

इतना बयान देना ही काफी होगा! सारी कचहरी में और उसके बाहर भी सनसनी फैल जाएगी! लोग आश्चर्य में आ जाएँगे कि यह क्या बात है? हाकिम भी भरसक बात समझ के कुछ न करेगा! शरारती लोगों और उनके मददगारों के कलेजे भी काँप उठेंगे। कुछ ही ऐसे केसों की नौबत भी शायद ही आए। फिर तो यह धाँधली सदा के लिए बन्द हो के ही रहेगी। ऐसे बयानों से कमजोर और डरपोक लोगों को भी हिचक होगी। फलतः उन जवानों के साथी एवं मददगार बहुत हो जाएँगे।

हमने अनुभव किया है कि धनिकों और सत्ताधारियों की तड़क-भड़क और साज सामान को देख दिखाकर ही उनका रोब किसानों पर जमाया जाता है। लोग कहते हैं कि वह बड़े जबर्दस्त हैं। देखिए न, उनका प्रभाव, उनका चेहरा, उनकी सकल सूरत, उनके महल, उनकी मोटरें और दूसरे सामान? इससे गरीब और चिथड़े में लिपटा किसान सचमुच धोखे में पड़ के डरने लगता है। वह उन्हें अच्छा, बड़ा और आदरणीय समझ बैठता है। गुरु, पण्डित, पीर और मौलवी भी अमीरों की ही वकालत करते और कहते हैं कि उनसे दबना चाहिए, डरना चाहिए। उन्हें भगवान ने बड़ा और तुम्हें छोटा बनाया है।

यही पुराना दकियानूसी सिलसिला सब खुराफातों की जड़ है। इसे बन्द ही कर देना होगा। बेवकूफी भरी इन बातों को सुनना भी न होगा। यदि कोई वेश्या देखी जाए तो वह अमीरों से भी चिकनी-चुपड़ी, ठाटबाट वाली और शानदार मालूम होती है। मगर सिवाय घृणा के और वह किसी भी चीज का पात्र नहीं समझी जाती। एक चिथड़ेवाला किसान उसकी तरफ ऐसा ही खयाल करता है। एक साध्वी किसान औरत फटे-पुराने कपड़े पहने हुए भी हो, तो भी उस वेश्या से अपने को कितनी भली और ऊँची मानती है। उसके दिल में वेश्या के लिए सिवाय घोरतम घृणा के और कोई चीज रहती नहीं! फिर तड़क-भड़क और शानवान देखकर किसी को बड़ा और भला क्यों समझें और उससे डरें क्यों? यह तो पहले दर्जे की नादानी है।

यह भी तो सोचें कि जब आज तक जमींदारों और सत्तावालों से बराबर डरते रहे, तो नतीजा क्या हुआ। यही न कि लात-जूते खाने पड़े, लुटे, बेइज्जत हुए और अन्त में भीख माँगने की नौबत तक आई? सारांश एक भी दुर्दशा बाकी नहीं रही। फलतः जितना ही डरेंगे उतनी ही दुर्दशा होगी। इसलिए अब कम से कम कुछ समय के ही लिए सही, जरा निर्भीक और निडर होकर भी तो देख लें। आखिर इससे बुरी हालत और होगी क्या? अब नीलाम से नीलाम तो होंगे नहीं। प्रत्युत शत्रु और सतानेवाले

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

डरेंगे और कदर करेंगे। जब तक डरते रहे तब तक दुर्दशा रही। इसलिए जब निडर होंगे, तभी सँभलेंगे। यह तो मोटा हिसाब है।

(5)
लड़ना सीखें और लड़ें

निडर बनने के लिए जिस प्रकार अनेक बातें बताई गई हैं और दिखाया गया है कि दिल तथा दिमाग पर से जमींदारों, प्रभावशाली लोगों का जादू उतरने से ही काम चल जाएगा। ठीक उसी प्रकार मुकाबला करने और लड़ने से भी लोग निर्भीक बनते हैं। यों तो बिना लड़ाई के अपने हक मिलते ही नहीं और अगर मिलते भी दैवात् कदाचित हैं, तो टिक नहीं सकते; कारण बिना लड़े बल आता है नहीं और जो सबल न हो वह अधिकारों की रक्षा कर ही कैसे सकता है ? लड़ के प्राप्त की हुई चीज में मजा भी मिलती है; क्योंकि मेहनत की कमाई मीठी होती है। जिससे भिड़ें उससे कम से कम डर तो जाता ही रहता है, यह पक्की बात है। पानी से लोग बहुत डरते हैं कि कहीं डूब न जाएँ। मगर जो उसमें पड़ के पाँव पीटता और तैरना सीख जाता है, जो पानी के साथ लड़ता है वह करारी धारा से भी नहीं डरता। जो अखाड़े में नहीं पड़ता और कुश्ती करना नहीं जानता, वह तो डरपोक होता ही है। वह तो मामूली आदमी से भी डरता है। मगर अखाड़े में पड़ने के बाद बड़े पहलवानों से भी भिड़ जाने की हिम्मत उसमें आ ही जाती है। अपने आपको कमजोर समझ के लोग डरते हैं। मगर लड़ने पर, अपने बल का अन्दाजा हो जाने पर हिम्मत होती है और डर छूटता है।

यों तो शान्ति और नम्रता की बातें बहुत की जाती हैं। कहा जाता है कि जो एक गाल में थप्पड़ लगने पर दूसरे को भी थप्पड़ के लिए फेर देते हैं उन्हें भगवान मिलते हैं और स्वर्ग मिलता है। मगर हम तो साफ ही देखते हैं कि शान्त रहनेवालों के पास की चीजें भी छिन जाती हैं, तो स्वर्ग और भगवान के मिलने की बात समझ में ही नहीं आती। डाकू-लुटेरे नम्रता की परवाह थोड़े ही करते हैं। यदि उन्हें नम्र और शान्त लोगों से ही काम पड़े तो उनकी पौ बारह ही हो जाए। फिर तो वे खुल के ही खेलें। वे तो परवाह करते हैं सिर्फ लाठी और डण्डे की, भाले और गोली की, छाती पर चढ़ने तथा उनकी बाँहें मरोड़ने और तोड़ने वाले की। और जो दूसरों की कमाई का भोग लगाते तथा स्वयं कुछ नहीं करते, जिनकी कमाई दूसरों की कमाई की लूट ही मानी जाती है वह क्या डाकुओं और लुटेरों से कम हैं? किसान भूखों मरें और उसी की कमाई से जमींदार और उनके कुत्ते तक गुलछर्रे उड़ावें यह लूट नहीं तो और क्या है ? और बिना लड़े, बिना भिड़े यह रुकने की नहीं, बन्द होने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की नहीं। याद रहे, किसानों की लड़ाई निराली ही होगी। इसीलिए उसे वे जरूर सीखें।

हम मानते हैं कि किसानों की कमाई बिना उसकी मर्जी के ही और उनके हजार न चाहने पर भी जमींदार, साहूकार और सरकार सभी ले लेते हैं। वे तो यह भी कहते हैं कि यह तो कानून के जरिए लिया जा रहा है! इसे वह अपना कानूनी हक कहते हैं। ठीक है, रहे यह कानूनी ही। हम भी इसे गैर-कानूनी नहीं कहते। हम तो इस पचड़े में पड़ने जाते ही नहीं कि यह काम कानूनी है या गैर-कानूनी, हम तो सिर्फ असलियत को देखना चाहते हैं।

आखिर लूट, चोरी या डकैती का मतलब है क्या? यही न कि हमारी मर्जी के बिना जबर्दस्ती हमारी चीज हमसे कोई छीन ले? यदि हम न देना चाहें तो वह बलप्रयोग भी करता है और हमारी आँखों के सामने ही ले जाता है। क्या जमींदारों की या सरकार की वसूली इससे भिन्न है? किसान भूखा है, नंगा है। उसका बच्चा बीमार है। मगर भोजन कपड़ा या दवा का प्रबन्ध नहीं कर सकता है। पास में जो है वह जमींदार या साहूकार ले जाता है! तो क्या यह रजामन्दी से होता है? क्या वह सनकी और पागल है कि पेट और दवा की परवाह न करेगा और खुशी-खुशी अपनी कमाई गैरों को देगा? यह तो निराली दलील है। रजामन्दी कैसी? बलप्रयोग तो होता ही है। फर्क इतना ही है कि डाकू की अपनी लाठी रहती है। मगर जमींदार की अपनी लाठी के अलावे पुलिस की भी लाठी और गोली के बल से किसान की कमाई छीन ली जाती है। डाकू तो पुलिस की मदद पा नहीं सकता।

दूसरा फर्क यह है कि जहाँ मामूली डाकू और चोर के पीछे पुलिस हैरान रहती है कि कहाँ कैसे पकड़ा जाए, तहाँ जमींदार और साहूकार पुलिस और सरकार के बड़े खैरखाह माने जाते हैं! लाट साहब तक उनसे हाथ मिलाते और उनका आदर करते हैं! इसलिए जमींदार वगैरह के जरिये जो किसानों की लूट होती है उसे कानूनी लूट (Legalized loot) भले ही कहिए। मगर है, वह असल में लूट ही। बल्कि वह लाख दर्जे बुरी लूट है। वहाँ तो कोयले पर कोलतार पोत दिया गया है, ताकि और भी काला हो जाए! लूटनाम भी न हो और उसके करने वालों की बड़ी प्रतिष्ठा हो, तो इसे क्या कहें? इसका दूसरा प्रचलित नाम शोषण है। यह शोषण जरा सभ्यता से पर्दे में रख के इसी लूट को कहता है। मगर हमें तो साफ बोलना चाहिए। और सिवा भिड़न्त के यह बन्द भी कैसे होगी? यह ठीक है कि मामूली लूट से भयंकर होने के कारण इसके मिटाने के लिए जो भिड़न्त होगी वह भी गैर मामूली होगी जो लड़ाई होगी वह असाधारण होगी किसानों को वह लड़ाई सीखनी होगी। किसान सभा ही उन्हें उसकी शिक्षा देगी। नहीं तो खतरा होगा?

सब जगह सभी मौकों पर शान्ति और नम्रता की बातें बकनेवालों की समझ पर तरस भी आता है और हँसी भी आती है। जिस नम्रता से भगवान और बैकुण्ठ मिलें उसे दुनिया के कामों में नाहक घसीटने में कौन सी बुद्धिमानी है? दोनों दुनिया

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जुदी हैं फिर दोनों को एक करने का मतलब क्या? भगवान और बैकुण्ठ तो खयाली दुनिया की चीजें हैं और यह शान्ति तथा नम्रता भी खयाल की चीजें हैं, न कि ठोस! इसलिए खयाली चीजों से वैसी ही चीजें मिलें तो मिलें। मगर रोटी और भात वगैरह तो ठोस पदार्थ हैं इसलिए इनके रास्ते में नम्रता क्यों टाँग अड़ाने आती है? कहा जाता है कि भक्त लोग भगवान के ध्यान और विचार से ही खुश हो जाते और भगवान के निकट पहुँचाते हैं। उनकी तृप्ति हो जाती है। मगर पेट तो रोटी से ध्यान से कभी नहीं भरता और न नंगे बदन पर कपड़े चले आते हैं, महज ध्यान और खयाल करने से। फिर हम क्यों इन वाहियात बातों के पीछे मरें? जब अपनी रक्षा के लिए कानून ने भी हमें पशुबल और अस्त्र प्रयोग करने की इजाजत दे रखी है तब रोटी और कपड़े को बचाने के लिए भी क्यों न लड़ाई का प्रयोग करें?

उस लड़ाई का रूप क्या हो यह तो परिस्थिति के अनुसार बताया जा सकता है। इसीलिए उसमें खामख्वाह हर हालत में बल प्रयोग जरूरी नहीं है। हाँ, लड़ाई जरूरी है। शान्ति की लड़ाई का जो अर्थ लगाया जाता है उसे हम कदापि स्वीकार नहीं करते, जैसा कि आत्मरक्षा के प्रसंग में बताया है। हमें तो लड़ना है, यह पक्की बात है। यह लड़ना कैसा हो यह तो मौके पर ही तय होगा। उसकी चिन्ता यहाँ करना ठीक नहीं।

जो लोग शान्ति-शान्ति चिल्लाते हैं उनसे हम पूछें कि साँप-बिच्छू आदि शान्ति से भागते हैं, या डण्डे से? पगले कुत्ते को लाठी का डर न हो तो काटे बिना न रहे? शान्ति का पाठ पढ़िए तो आसानी से काट के निकल जाए। मतवाले हाथी के सामने भाला-बर्छा न ले जाएँ, तो पाँवों तले रौंद डाले! जो लोग शोषक हैं और कमानेवाले के रक्त पिया करते हैं वे खूँखार जानवर, मतवाले हाथी, पगले कुत्ते या साँप-बिच्छू से कम भयंकर और जहरीले नहीं हैं। स्मरण रहे कि उसके पीछे कानून की सारी ताकत लगी हुई है। साँप, बिच्छू या खूँखार जानवरों से निपटने में तो पुलिस भी हमारा साथ देती है। मगर शोषकों से काम पड़ने पर वह उन्हीं के साथ रहती है! इसीलिए यह समस्या और भीषण है।

बहुत परिश्रम से हमने नीबू और आम के पेड़ लगाए और उनकी हिफाजत की। उन्हें प्रेम से सींचा और हरा-भरा रखा! कीड़े-मकोड़ों और आँधी-पानी से भी बचाया। ओलों और पाले से भी उन्हें सुरक्षित रख के बड़ा किया। हरा-भरा देख के खुश भी होते रहे। समय पा के उनमें फल लगे। वह पके भी। हमने बहुत ही मुहब्बत से नीबू और आम तोड़ लिये और धो धा के थाली में रखा। मगर क्या वे हमें यों ही रस देते हैं? हमने इतनी मेहनत की, इतना प्रेम दिखाया कि जितना शोषकों के प्रति गाँधी जी भी नहीं कर सकते। हमारी सेवा पहले दर्जे की थी। पर वे नहीं पिघले। हमने काटा और सोचा कि अब पिघले और रस दें। मगर कुछ नहीं। आखिर कस के दबाना और निचोड़ना पड़ा। तब कहीं रस मिला! मगर यदि नीबू

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के कलेजे से होकर काटनेवाला चाकू नहीं गुजरे तो निचोड़ने पर भी रस या तो आता ही नहीं, या बहुत ही कम आता है। इसीलिए बीचोबीच काट के पहले दो टुकड़े करने पड़ते हैं!

गाय-भैंसों को कितने ही स्नेह से दाना, घास, भूसा खिलाइए, पानी पिलाइए, मच्छर, मक्खियों से हिफाजत कीजिए और बहुत अच्छी जगह आराम से रखिए। फिर भी दूध नहीं मिलता हाथ जोड़ें, अर्जी भेजें, रोएँ, गिड़गिड़ायें! मगर कोई नहीं सुनता है! हाँ जब दोनों जाँघों को रस्सी से बाँध कर उनके स्तनों को खूब जोर से दबाइए और खींचिये तभी गो माता और महिषी महारानी दूध देंगी! फिर तो जितना चाहिए दुह लीजिए।

हाँडी, घड़ा, दीया वगैरह जिस चाक (चक्र) पर कुम्हार बनाता है उस पर मिट्टी रख कर यदि हाथ जोड़ें और प्रार्थना करें—माँगें—तो एक भी दीया नहीं मिलता। एक हँडिया नहीं बनती। एक फूटा घड़ा भी तैयार नहीं होता। मगर छिद्र में डण्डा घुसेड़ के खूब जोर से घुमाइए और हाथ लगाइए। फिर जो चाहिए बना लीजिए! यही दुनिया का तरीका है, यही संसार का नियम है। किसान इसे ही भूलकर दुःख पाता है और मुसीबतें झेलता है! अब भी तो यह बात वह समझ ले।

यदि शान्ति और नम्रता से ही सब बातें बन जाएँ, तो फिर किसान हल क्यों जोते? वह बीज क्यों बोए? खेतों को सींचे क्यों! यह तो सभी काम संघर्ष ही है न? जमीन का कलेजा चीरता है क्यों? बीजों को गाड़ना और दफनाना कोई पूजा तो है नहीं। एड़ी का पसीना चोटी पहुँचा के कुएँ वगैरह से पानी निकालें और वैशाख-जेठ की दहकती दुपहरिये में ऊख को सींचे तो क्या हरिनाम जप और समाधि है? कड़कड़ाते जाड़े और मूसलाधार वृष्टि में खेतों की देख-रेख करना क्या शान्ति पाठ है, यदि प्रकृति के साथ कुश्ती नहीं है? फसल तैयार भी हो जाए तो हाथ जोड़ने से न तो ऊख का रस निकलता है और न गुड़ बनता है। धान, गेहूँ भी घर खुद नहीं पहुँच जाते, चाहे दिन-रात जप-तप करते हों। ऊख के तो अंग-अंग को पीसना पड़ता है और रस को सख्त आँच में तपाना पड़ता है! तब कहीं गुड़ बनता है। जड़ से काटने पर ही धान, गेहूँ खेत से अलग होते हैं और रस्सी से इसके बाँधने पर ही बोझा बनकर खलिहान या घर में पहुँचाए जाते हैं!

यदि फसल में कीड़े लग जाएँ तो शान्ति और अहिंसा काम नहीं देती। उन्हें तो दवा से जलाना और मारना ही पड़ता है। यह बातें तो रोज ही किसान को करनी पड़ती हैं। मगर वह इन्हें वहीं की वहीं छोड़ देता है! इनसे शिक्षा ग्रहण कर सर्वत्र संघर्ष और लड़ाई का पाठ नहीं पढ़ता। बिना संघर्ष के कुछ नहीं हो सकता है; इसलिए लड़ना ही चाहिए, आइए लड़ें, लड़ें, लड़ें, यह अखण्ड निश्चय नहीं करता। संघर्ष ही जीवन और उसका न होना—शान्ति—ही मरण है यह पक्की धारणा वह नहीं कर पाता। उसमें यही एक कमी है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आश्चर्य तो यह है कि जो लोग दिन-रात दुनिया को शान्ति और प्रेम का पाठ पढ़ाते रहते हैं, हिंसा नहीं करते और हरिकीर्तन में ही लगे रहते हैं उनका न तो पेट ही उन चीजों से भरता है और न उन्हें वस्त्र ही मिलता है न उनकी बीमारियाँ ही खत्म होती हैं और न दूसरे ही काम चल सकते हैं। आखिर उन्हें भी किसानों के ही पास आना, या उन्हीं की कमाई का सहारा लेना पड़ता है। जब उनकी ये चीजें इतनी गई-बीती हैं कि उनकी भूख, सर्दी, गर्मी और बीमारी हटा नहीं सकती हैं, तो फिर उन्हें गरीब किसानों के माथे लादने की कोशिश क्यों करते हैं? किसानों ने उनका क्या बिगाड़ा है कि उन्हें गुमराह करते हैं? उपकार के बदले यह अपकार! इन शान्ति और प्रेमादि पदार्थों से मुक्ति मिलती हो, स्वर्ग में सीढ़ी लगती हो या वैतरणी में पुल बँध जाता हो, हमें उससे झगड़ा नहीं करना है। मगर यहाँ तो रोटी और भात का सवाल है और यह निश्चय है कि यह सवाल प्रेम और शान्ति से कदापि हल होने का नहीं।

हाथ जोड़ने और भीख माँगने में तथा अपनी शक्ति का प्रयोग करके छीनने की तैयारी कर लेने एवं छीन लेने में कितना फर्क है—माँगने और लड़ने में कितना जमीन-आसमान का अन्तर है—यह बात एक घटना से हम स्पष्ट कर देना चाहते हैं। असल में किसानों में माँगने और हाथ जोड़ने का मर्ज इतना जबर्दस्त है कि वह गुरु, देवता, भगवान से माँगते-माँगते सरकार और जमींदारों से भी माँगने ही लग गए हैं। वह इससे ही अपने निस्तार का साधन समझते हैं। यहाँ तक कि नेताओं और कार्यकर्ताओं से भी हाथ जोड़ के माँगने में ही और अपना दुखड़ा यों ही सुनाने में ही फख्र समझते हैं! यह बड़ी ही खतरनाक चीज है। इसलिए हम इसे सदा के लिए दूर कर देना चाहते हैं। नहीं तो उनका त्राण कभी हो नहीं सकता!

एक जवान और हाथ-पाँव का खूब तगड़ा आदमी कई धनियों के पास एक के बाद दीगरे गया और बड़ी अदब और नम्रता से हाथ जोड़ के उसने माँगा कि सरकार, आधा सेर आटा, आधा सेर घी, और आधा सेर चीनी देते, तो हम हलवा बना के खा लेते! क्योंकि आज तबीयत कुछ ऐसी ही हो आई है और हजार समझाने पर भी नहीं मानती। मैं लाचार हूँ, यकीन रखिए। नहीं तो ऐसा काम कभी न करता। मगर नतीजा क्या हुआ? सभी जगह से उसे निराश होना पड़ा। कई जगह तो उलटे उससे मखौल की गई और लोगों ने मुँह बनाया कि वाह हलवा खाने चला है! जरा अपना मुँह को आईने में देख ले। किसी-किसी ने रंज होके यह भी कह मारा कि भिखमंगा होके हलवा की बात गुस्ताखी से कर रहा है। यदि कोई है तो इसे जरा तमाचे तो लगाए और कान पकड़ के हटा तो दे। कहीं-कहीं तमाचे लग भी गए। शायद एकाध ने बड़ी दया की और एकाध पैसा दे दिया! उसे बड़ी ग्लानि हुई। उसने अपने आपको धिक्कारा! दिन-भर दौड़ता-दौड़ता मरा भी और फल भी हुआ विपरीत ही। इससे उसे गुस्सा आया और उसमें आत्म सम्मान जगा। उसने तय कर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लिया कि हलवा खा के ही दम लूँगा सो भी जिनसे माँगा है उन्हीं के पैसे के।

उसने सब उपाय सोच लिया। एक दिन जब खूब अन्धेरी रात थी और अपना हाथ भी न सूझता था, उसने तैयारी की। हवा भी थी और पानी भी टिपटिपा रहा था। उसने लंगोटा कसा और हाथ में एकाध रस्सी ली। बगल में एक तमंचा और एक कटार बाँधी। और भी कुछ जरूरी सामान ले लिया और चल पड़ा, ठेठ उस मालदार के महल की ओर जहाँ उसने तमाचे खाए थे। पहुँच के धीरे-धीरे भीतर घुसा और दो मंजिले पर, जहाँ वह हजरत खर्राटे ले रहे थे, जा धमका। वहाँ अच्छी तरह पहचान के तैयारी की और रिवाल्वर हाथ में लिया। फिर भुक से दियासलाई जला के उनके मुँह पर ले गया और तमंचा कलेजे पर भिड़ा के उन्हें जगाने लगा। अकचका के जो वह उठे तो शैतान की तरह उसे खड़ा देख उनके देवता ही कूच कर गए! मगर हिम्मत करके बोले, कौन है? उसने कहा कि मैं वही हूँ जो हलवे के लिए घी वगैरह माँगता था। पर जिसे उन चीजों के बजाय आपने तमाचे दिलवाए! फिर तो मैंने, तय कर लिया कि हलवा खा के ही छोड़ूँगा। देखो यह तमंचा। अभी खजाने की कुंजी धीरे से दे दो और चुप रहो ताकि रुपए लेकर मैं चला जाऊँ। नहीं तो गोली दाग दूँगा, या कटार से धीरे से गला उतार लूँगा, ताकि कोई जाने भी न और पीछे रुपए भी ढूँढ़ लूँ। अब तो वह हजरत हें हें करने लगे और हाथ जोड़ के बोले कि लो भाई, यह चाभी-कुंजी और जान बख्शो! वह भी कुछ माल लेके चम्पत हो गया। फिर तो उसने खूब डँट के हलवा खाया। औरों को भी खिलाया!

इससे साफ हो गया कि माँगने और शक्ति दिखाकर दावा ठोंक देने में कितना फर्क है। ज्यों ही माँगने का रास्ता छोड़ के हमने स्वावलम्बन तथा स्वकीय शक्ति आजमाने की पूरी तैयारी कर ली कि हमारी कीमत बढ़ गई, हमारी कद्र ही दूसरी हो गई! जो हम पर हँसते और हमें गाली देते थे, तमाचे लगाते थे, वही पाँवों पर पड़ने और हाथ जोड़ने लगे। हमारा हाथ जोड़ना उनके पास चला गया। क्योंकि उसे तो कहीं रहना ही है और जब हमने उसका अनादर किया तो चट हमारे शत्रुओं के माथे पर ही वह जा चढ़ा! वह तो हमेशा दो प्रतिद्वन्द्वी दलों में किसी एक पर ही रहता है! यह कितनी बड़ी बात है कि झुकाने वाला ही फौरन झुक जाए। तमंचे ने तमाचे को बदल दिया और दोनों हाथों को जोड़ने को मजबूर कर दिया। हालाँकि उसकी जरूरत भी न पड़ी। हमें तो सिर्फ तैयार होने की जरूरत थी! जो एक पैसा भी देने को रवादार नहीं उसने खजाने की कुंजी तक हाथ जोड़कर सौंप दी! इन्कलाब हो गया! क्रान्ति हो गई! रेवोल्यूशन हो गया! सो भी शान्तिपूर्ण! पीसफुल! सारी हवा ही बदल गई! ऊँचा सिर नीचा और नीचा ऊँचा हुआ! दलित का सीना तन गया और शोषक की गर्दन झुक गई! यही है संघर्ष के संकल्प और भिड़न्त की तैयारी का सीधा अर्थ! इतने से ही खास संघर्ष का अर्थ भी समझा जा सकता है।

जब हम किसान से कहते हैं कि बैल की तरह गैरों को तो कमा-कमा के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गेहूँ, बासमती, दूध देता है। मगर खुद क्यों नहीं खाता? जरा अपने आप भी तो खाता और पसीने की कमाई सफल करता। तो उत्तर मिलता है कि बाप रे बाप! जमींदार उजाड़ ही डालेगा! गोया अभी तक उसने कुछ बाकी छोड़ा है! कुछ भी तो पास में रहने न दिया। सारी कमाई तो लूट ली! केवल शरीर, हाथ, पाँव, मुँह, जबान तो बची है! अक्ल भी तो उसने ले ही ली है। शरीर वगैरह तो सिर्फ इसलिए छोड़ा है कि एक तो उसे ही कमाने की जरूरत है। कारण, जमींदार तो खुद कमा नहीं सकता। दूसरे जब बुद्धि ले ही है तब शरीर भी लिया ही दाखिल है। क्योंकि आत्मा और दिमाग की गुलामी ही देह की गुलामी का कारण है।

अब यदि हम उसकी उस गुलामी को हटाना चाहते हैं, जो घबराता और डर का भूत यह खड़ा कर देता है। क्या घड़ियाल को खतरा नहीं है कि मौका पाते ही आदमी उस पर हमला करेगा? इसीलिए तो पानी में डूबा और भागा फिरता है, हालाँकि फिर भी नहीं बच पाता। मगर अगर संयोग से उसके मुँह कहीं आदमी का खून एक बार लगा फिर तो मानता ही नहीं, चाहे हजार खतरा क्यों न हों। फिर तो आदमी पर वार करता ही है। चसका ऐसी ही चीज है।

ठीक वैसे ही यदि किसान को गेहूँ, घी, दूध खाने का चसका लग जाए—बाघ या घड़ियाल की तरह मुँह में खून लग जाएँ—तो फिर हजार डरवाइए, पर वह न मानेगा।

लेकिन जब डण्डे और हाँ हाँ की परवाह न करके पशु भी गैर के खेत में दो-चार गफ्फे मार ही लेता है, यहाँ तक कि जब तक विवश नहीं हो जाता हटता नहीं, तो किसान उससे तो गया-बीता नहीं है। और इसे तो अपना ही खाना है, गैर का नहीं। क्योंकि कमाया है उसी ने और गेहूँ, दूधादि पर जमींदार वगैरह का न तो नाम ही लिखा है और न उनके नाम से गिन-गिन के रजिस्टरी ही है कि फलां-फलां दाने और बूँद उसके हैं। किसान का मुँह भी सिया हुआ है नहीं। गले के भीतर भी कोई रुकावट नहीं है! हाथ-पाँव भी दुरुस्त ही हैं! धनिकों की तरह उनमें लकवे का मर्ज भी नहीं है! कानून तो कोई तलवार, गोली या बम नहीं है कि दूध का घूँट मुँह में जाते ही सिर पर गिरेगा। यह भी नहीं कि गेहूँ, चावल भी इस तरह पेट में जा ही न सकेगा। वह तो बखूबी पेट में जाएगा। उसके बाद ही कानून आएगा। सो भी धीरे-धीरे चींटी की चाल से। यह असली बात है और इसे जान लेना ही लड़ाई का पहला कदम है।

और माना कि कानून आएगा। आए। जमींदार तो नहीं आएगा। वह आता तो शायद जरा गड़बड़ी होती। खयाल होता कि कुम्भकर्ण की तरह सारा घी, दूध, खा के यदि कहीं तगड़ा हुआ तो मुश्किल करेगा। वह देह पर भी यदि गिर जाए तो भी किसान का काम ही तमाम। मगर वह और उसका दावा तो इतना कमजोर है कि पहले ही धक्के में वह खत्म। अब सीधे आने की हिम्मत न करके कानून

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

का वार करता है। मगर आखिर वह भी क्या है और उसका भी परिणाम क्या होगा यही तो देखना है। यही दूसरा कदम है। नालिश करेगा, डिग्री कराएगा और अन्त में जमीन नीलाम करा लेगा। करा ले; फसल नीलाम होती तो एक बात थी। मगर वह तो पेट में चली गई, यही खैरियत हुई। यह ठीक है कि एकाध बार के बाद फसल भी छेकी जाती और नीलाम हो जाती है। मगर याद रहे कि हम सामूहिक रूप से सभी किसानों की लड़ाई और यह दूसरा कदम उठाने की बात करते हैं। इक्के-दुक्के की नहीं। ऐसी दशा में फसल ले लेना आसान नहीं है। कौन लेगा, यदि किसान ने तय कर लिया है कि हम लेने न देंगे? गया के रेवड़ा, मुहम्मदपुर वगैरह गाँवों में किसानों ने ऐसा करके दिखला दिया है। वहाँ जमींदार को भागना पड़ा है। उसका भी आखिरी नतीजा तो जेल ही है, यदि किसान फसल जब्ती की परवाह न करें और खाता चला जाए। यदि थोड़े ही किसान ऐसा करें तो भी जब्ती गैरमुमकिन हो जाएगी। यदि जमींदार खूब रुपए खर्च करके ज्यादा पुलिस रखे तो 'नौ की लकड़ी और नब्बे खर्च' होगा। और लेने के देने पड़ेंगे। कितनी बार ऐसा करेगा? इसीलिए तो अन्त में वही कागजी कार्यवाही करनी ही होगी या जेल ले चलना होगा।

हाँ, नालिश, डिग्री और नीलाम सभी कुछ हुआ। मगर इतने ही में जमींदार का खून निकल आया। सिर्फ भविष्य की आशा पर ही अब आगे बढ़ेगा। लेकिन यदि किसान डटा रहे और उसे मालूम हो जाए कि किसान का दिमाग फिर गया है, तो जल्दी ही हिम्मत हारेगा। असल में जमींदार का कारबार तो कागज की नाव है; उसे डूबते देर नहीं लगती। जल्द न भी डूबे तो भी देखें कि क्या होता है। नीलाम होने के बाद भी तो कानूनन जमीन पर किसान का ही दखल रहता है। इतना करने पर भी अभी जमींदार उसके निकट फटक नहीं सकता। तब दखल दिहानी होती है। आखिर वह है क्या? यही न कि ज्यादातर तो घर में या कचहरी में बैठ के रस्म अदाई हो जाती है और दो-चार रुपए में सब कागजी मशाला तैयार हो जाता है? याद रहे, शुरू से लेकर दखल दिहानी तक सिर्फ कागजी ही घोड़ा दौड़ता है। बहुत हुआ तो खेत पर जाके मुनादी करवा दी कि दखल हो गया! फिर कागज में गवाहों के हस्ताक्षर बनवा लिये।

मगर जमीन तो गल्ला, घी, दूध या रुपया पैसा नहीं है कि जमींदार उठा कर अपने घर में रख लेगा। वह तो कागजी दखल दिहानी के बाद भी जहीं की तहीं जैसी की तैसी ही रहती है। वह किसान की जो ठहरी। इसलिए हजार नीलामी और दखल दिहानी हो। मगर वह टस से मस नहीं होती यही तो खूबी है। किसान इसे नहीं समझता यही उसकी नादानी हैं। यह भी नहीं कि उस दखल दिहानी के चलते जमीन की शक्ल बदली और उसमें कटीला तार लग गया, उसकी किलेबन्दी हो गई, या किसी और तरह भी उसमें किसान का हल चलाना असम्भव हो गया! उसमें तो पूर्ववत ही हल चल सकता है, चलता है और किसान की फसल भी होती है!

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

किसान के पाँवों और हाथों में भी कोई रुकावट नहीं होती। असल में दखल दिहानी तो हुई कागज पर और जोती जाती तो है जमीन। फिर हर्ज क्या? जमींदार दखलवाला कागज घर के भीतर सात ताले में बन्द कर रखे। जमीन को तो रख नहीं सकता! यदि फसल की जब्ती की तरह जमीन के कब्जे के लिए भी पुलिस की सेना लाकर जमीन पर हल चलाना, हल चलवाना चाहे, तो वही नौ की लकड़ी पर नब्बे का खर्च होगा। यह कब तक चलेगा?

तब हारकर दफा 144 की नोटिस खेत या किसानों पर या दोनों ही पर करता है। मगर यह भी क्या तमाशा है! नोटिस तो न तोप है, न तलवार और न आदमी ही, कि किसान को खेत पर जाने से रोक दे। उसके बाद उसके हाथ-पाँव हथकड़ी और बेड़ी से बँध तो जाते नहीं। वह तो पूरा आजाद है और साफ कह देना है कि किसान सभा ने हमें इन सबों का रहस्य बता दिया है। फलतः हम निर्भीक हो गए हैं! यह छिपी बात नहीं है—सभी जानते हैं—'संतन संग बैठि बैठि लोकलाज खोई! अब तो बात फैल गई जाने सब कोई' ऐसी दशा में पीछे हटने का क्या सवाल? अन्त तक हम चलेंगे और देखेंगे कि क्या होता है। क्योंकि नाचने लगे तो घूँघट क्या? फलतः पूर्ववत ही उसकी खेती उसी जमीन पर चलती है। पैदावार वही खाता-पीता भी है। अब तो नालिश का भी डर नहीं रहा। क्योंकि कानून ने खेत उसके नाम से उतार के उसका बोझा ही हलका कर दिया! चलो नालिश की बला भी अब टल ही गई।

उसके बाद धर-पकड़ होती है और मुकदमे तथा जेल की नौबत आती है। जब खुल के खेलना ही है तो किसान किसी के लिए आसानी क्यों पैदा करे! पुलिस आती है पहले ही की तरह उसे पकड़ने! मगर यहाँ तो जमाना बदल गया! वह तो सीधे जाने से इनकार करता है। वह तो साफ सुना देता है कि हम लोग बाल बच्चे के साथ ही चलेंगे। उन्हें यहाँ छोड़ दें, तो उनकी खबर कौन लेगा? जब सरकार को जेल में ही रखना है, तो सभी को रख के देख ले। यों तो न जाएँगे। और यदि जोर-जुल्म होगा तो देखेंगे। याद रहे सभी को सिर पर लाद कर ले चलना होगा। फिर भी मौका लगते ही जमीन पर जा पड़ेंगे और उठाने में दिक्कत करेंगे! हम दिखा देना चाहते हैं कि जाग्रत और प्रबुद्ध किसानों से लड़ने का मजा क्या है? हम यह भी दिखा देना चाहते हैं कि किसानों की मर्जी के खिलाफ उनसे कुछ भी वसूल लेने की हिम्मत का क्या नतीजा होता है। बिना एक बूँद खून बहाए या एक लाठी चलाए ही हम शासकों और शोषकों को उनकी छठी का दूध याद दिला देना चाहते हैं। यदि टिड्डी दल और कीड़े चाहते हैं तो लाख यत्न करने पर भी नाकोंदम कर देते और फसल मिटियामेट कर देते हैं। क्या हम उनसे भी गए गुजरे हैं? आखिर तो हम इनसान हैं, आदमी हैं।

असल में यह केवल जबानी जमाखर्च है नहीं। गया वगैरह में कई जगह ऐसा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करके उन्होंने दिखा दिया है और पुलिस तथा अधिकारियों को लाचार कर दिया है। टेकारी थाने के गौरी बीघा में श्रीकेश्वर सिंह आदि ने यही किया है अभी-अभी। फलतः पुलिस लाचार हो गई! यदि वह जिद करे भी तो केवल दस किसानों को थानों या कचहरी तक पहुँचाने में न सिर्फ हजारों रुपए खर्च भी हो जाए, बल्कि पहले दर्जे की परेशानी हो और बाकी सभी काम बन्द कर देने पड़ें! आखिर किसान भेड़ तो हैं नहीं कि एक गड़ेरिया सैकड़ों को चराएगा! यदि वे भेड़ बनना इनकार कर दें तो पता चल जाए कि शासन कैसे होता है। यह इनकार तो करना ही होगा, सो भी जल्द से जल्द।

माना कि पुलिस बे-मरजी के उन्हें जेल में पहुँचाया भी तो उससे क्या? वहाँ तो खाना, कपड़ा, मकान और दवा सभी चीजें काफी मिलती हैं। किसान को आमतौर से इतना आराम घर पर कहाँ मिलता है जितना जेल में मिलता है? क्या सर्वसाधारण किसान के घर भोजन, वस्त्र, दवा-दारू आदि के प्रबन्ध की जानकारी हमें नहीं है? फिर जेल से डरना क्यों? उसका तो उलटे स्वागत करना चाहिए। यदि जेल में काम करना पड़ता है तो घर पर कौन सी गद्दी लगी रहती है, जहाँ बैठते और आराम करते हैं। घर पर तो बैल और गधे से भी ज्यादा काम करना पड़ता है। फिर भी शाम को थके-माँदे और पस्ती की हालत में जब घर आते हैं, तो खाने को नहीं, नमक नहीं, तेल नहीं, कपड़ा नहीं, बच्चा या घरवाले बीमार हैं, पर दवा नहीं, जमींदार का तकाजा और साहूकार की डाँट डपट! ऐसी दशा में किसान पागल क्यों नहीं हो जाता इसी में आश्चर्य है! रोज-रोज की तो यही दशा है। शायद ही कभी नागा जाता हो। न कोई दिल बहलाव का सामान और न मुर्दे दिल को खिलाने या हँसाने वाला भी कोई। ऐसी हालत में पागल न हो जाने में ही ताज्जुब है। यदि नींद न आती और कुछ समय के लिए न सिर्फ उसे सब चिन्ताओं से मुक्त कर देती प्रत्युत उसकी दिन-भर की थकावट परेशानी भी दूर कर देती तो वह जरूर ही पागल बन जाता। मगर क्या जेल में इनमें एक भी बात है?

वहाँ तो औरों को ही हर बात की फिक्र है कि समय पर भोजन आदि जरूर मिले। वहाँ महाजन या जमींदार की तो पहुँच ही नहीं। काम भी घर जितना थोड़े ही करना पड़ता है। उसका चतुर्थांश भी शायद ही हो। हालाँकि लोगों की धारणा है कि जेल का काम बहुत ही ज्यादा और शक्त है। मगर यह धारणा गलत है! कितना भी कड़ा काम हो, लेकिन सात-आठ घण्टे से ज्यादा नहीं करना पड़ता। सो भी दो बार मिला के न कि लगातार। बीच में तीन घण्टे का विश्राम और भोजनादि के लिए छुट्टी मिलती ही है।

मगर घर का काम जरा देखें तो पता चले। किसानों को खामख्वाह दो तीन घण्टे रात रहते ही जगना और गाय-भैंसों तथा बैलों को खिलाना पड़ता है। ताकि सुबह होने के पहले ही वह तैयार हो जाए। यदि खेती के दिन हैं और हल चलाना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है तब तो अन्धेरे में ही खेतों के लिए बैल रवाना भी हो जाने चाहिए और उससे पहले ही उन्हें खा-पी लेना चाहिए। फिर उन्हीं के साथ दिन-भर या तो खेतों में ही काटना पड़ता है या घर पर उनके लिए चारा घास जुटाना और दूसरा काम करना पड़ता है। शाम को लौटे तो उन्हें खिलाते-पिलाते एक पहर रात तो यों ही बीती। फिर अपने खाने-पीने और अगले दिनों के इन्तजाम में कुछ समय लगा। तब कहीं सोने गए। इस तरह दिन-रात के आठ पहर में शायद ही डेढ़ पहर की फुर्सत मिली। सो भी यदि फसल के दिन हैं या खलिहान में गल्ला पड़ा है तो सारी रात जगिए और रखवाली भी कीजिए। इस तरह वह भी डेढ़ पहर गायब और नींद भी हराम। यह आमतौर से अठारह-बीस घण्टे का प्रतिदिन का काम! कभी-कभी तो चौबीसों घण्टे का। यह चौबीस घण्टेवाला सिलसिला साल में कई महीने चलता है—करीब-करीब आधा साल तो जरूर। दो फसलें होती हैं और अगर ऊख हुई तो वह अलग ही है। क्या अब भी कोई कह सकता है कि जेल का काम ज्यादा और कड़ा है बनिस्वत घर के? फिर जेल की परवाह क्यों?

एक बात और है। जो जरायमपेशा और चोरी-डकैती करने वाले लोग हैं उनमें और इस प्रकार जानबूझ के अपने हकों के लिए लड़ने तथा जेल जानेवालों में जमीन-आसमान का अन्तर है। पहले प्रकार के लोगों की आत्मा दबी होती है। मगर इनकी खूब मजबूत और तैयार। ऐसी दशा में यदि ये काम न करना चाहें तो कोई भी शक्ति इनसे काम करवा ही नहीं सकती! राजनीतिक आन्दोलनों में ऐसा बराबर होता रहा है। जेल अधिकारियों की हिम्मत ही नहीं होती कि उन पर ज्यादा दबाव डालें। खासकर ऐसी हालत में जब कि सामूहिक रूप से किसान इस रूप में जेल जाएँ। जहाँ हजारों की तायदाद में एक ही खयाल और भाव के लोग युद्ध की भावना से जेल गए हों वहाँ की परिस्थिति ही और होगी और दुनिया ही पलट जाएगी। वे तो चाहें तो काम करानेवालों से ही काम करवाएँ। जो उनसे चक्की चलवाना चाहे उसे ही पकड़ के उसी के हाथों से शान्ति के साथ चक्की चलवा सकते हैं! इस प्रकार नाव में नदी के ही डूब जाने की बात हो सकती है।

जेल की यह बात भी तो खयाल ही है क्योंकि हजारों आदमियों को किस जेल में रखा जा सकता है? जब लाखों किसान एक साथ करवट बदलें तो उनके लिए मकान बनवाना और कहीं रोक रखना किसी के लिए भी असम्भव काम है। जेल की बातें ही मुट्ठी-भर लोगों के ही लिए हैं—कुछ हजार के ही लिए हैं। लाखों के लिए नहीं। नहीं तो ये लाखों खा-पी के ही सरकार और उसके दोस्तों का दिवाला आसानी से निकाल सकते हैं। वह हालत आ जाने पर तो खामख्वाह इन्कलाब हो ही जाएगा और दूसरी दुनिया बन ही जाएगी।

और जब जेल से किसान वापस आवें तो फिर वही खेत जोतें और खाएँ। फिर केस चले, जेल जाएँ और इसी प्रकार चक्र चालू हो। इसमें किसानों की तो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कोई हानि नहीं। वे तो जहाँ रहें मौज से रहें। यदि बाल-बच्चों के साथ न भी जेल गए तो भी उनके बाल-बच्चों की फिक्र सबसे पहले की जाएगी। यह काम वह लोग करेंगे जो जेल के बाहर हैं। क्योंकि आखिर किसान की ही तो यह लड़ाई है। वह किसी व्यक्ति विशेष की तो है नहीं। यदि इसमें हार हो तो भी सभी दबेंगे और नीचे जाएँगे। सभी की दुर्दशा होगी, लेकिन विजय होने पर तो जमींदार नाम की चीज ही नहीं रहेगी, साहूकार कहा जानेवाला ही कोई न रहेगा और सरकार उनकी मर्जी के ही अनुसार चलेगी। फलतः हरेक किसान सुखी होगा और इज्जत से जिन्दगी गुजर करेगा। इसीलिए इस लड़ाई को तो सभी मिल के ही लड़ेंगे। इसमें दस-बीस घर, गाँव या एकाध जिले का सवाल होगा ही नहीं।

एक किसान ऐसा चालाक था कि गाय और भैंस को दुहने के समय युक्ति से दूध की धार मुँह में ही डालता था। इस तरह गर्मागर्म दूध पीता था। न बर्तन की फिक्र और न गर्म करने की। ताजे से ताजा दूध सीधे पेट में चला जाता था। किसी बर्तन में दुह के पीने में तो खतरा रहता है कि शायद कोई दूसरा हकदार या छीनने वाला आ जाए और जमा किया हुआ दूध आसानी से उठा ले जाए। इसीलिए उसने ऐसा रास्ता निकाला कि 'न नौ मन तेल होगा और न राधा नाचेंगी'। उसके इस काम में किसान की जो भोग-भावना काम कर रही थी, मैं उसका हृदय से समर्थन करता हूँ और चाहता हूँ कि वही भावना हर किसानों में आए। वह विराट भगवान की अनन्त टाँगों, बाँहों, मुँहों आदि की मदद से अधिकार मदमत्त अत्याचारियों का होश दुरुस्त करें। वह क्यों लाठी चलाएँ, क्यों मारपीट करें और क्यों किसी जमींदार या सत्ताधारी को बदजबान भी बोलें, वह तो धीरे से खा ही लें।

अच्छा हो कि उक्त किसान की ही तरह गाय-भैंस का दूध मुँह में ही दुह के पी डालें स्वयं बाल-बच्चों के साथ। सभी के मुँह में ही दुहा जा सकता है। नहीं तो बर्तन में ही दुह के सभी वही पी लें। न जाने घर जाने पर क्या हो और कौन-कौन से दावेदार आ जाएँ। उससे यदि बचे तो दही बना के सब परिवार भोग लगायें। दही से बचने पर घी निकाल के दाल-साग में खा जाएँ या हलवा ही बना के। सारांश जमा होने न दें। नहीं तो मधुमक्खी की मधु की तरह गैरों को खामख्वाह मौका लगेगा हड़पने और छीनने का। और खुद उन्हीं मक्खियों की तरह मरना पड़ेगा, जलना होगा, अन्धा बनना होगा। जब काम से ही फाजिल नहीं तो जमा करने का मतलब भी आखिर क्या हो सकता है?

इसी प्रकार अच्छे से अच्छा धान बोएँ और जब धान चिउड़े के लायक बने तभी से खाना शुरू करें। खेत में खाएँ, खलिहान में खाएँ और बचा बचाया जो घर जाए उसे भी खाएँ। मगर ऐसी हालत में घर जाने के लिए तो शायद ही बचे। चाहे जो हो हर हालत में खाना जारी रहे। गेहूँ खेत में ही, हरा रहते ही भून के खाएँ, खलिहान से और खेत से, सूखने पर लाकर पीस-पास के रोटी बनाएँ और खाएँ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अगर दूध शेष हो तो उसी के साथ और अगर घी हो तो कहना ही क्या! पूड़ी भी बना के खाएँ और दूसरी चीजें भी। इसी प्रकार और और पैदावार के साथ भी उसका व्यवहार होना चाहिए।

सारांश यह कि खाना उसका प्रधान और सर्वप्रथम मन्त्र हो। यह ऐसा मन्त्र है कि शोषकों का कलेजा फट जाए और बिना मौत ही वे मर जाएँ। यह ऐसी शान्ति की लड़ाई है कि कहिए मत। हाहाकार ही मच जाए। विराट आकार प्रकट हो गया और सारी दुनिया गायब हो गई! गीता के भगवान के विराट स्वरूप से भी भीषण रूप किसान ने धारण कर लिया। अब तो दुनिया का संहार हुए बिना रह ही नहीं सकता! पापी लोग बच नहीं सकते! उससे कौन लेगा? क्या लेगा? कैसे लेगा? पेट में से निकालेगा क्या? पेट में जाने न पाए इसका क्या कोई उपाय है यदि किसान, यदि यह 'सहस्र शीर्षा पुरुषः सहस्रक्षः सहस्रपात्' संकल्प कर ले कि खाएँगे और जरूर खाएँगे? हमें तो ऐसी शक्ति नजर नहीं आती, जो यह काम कर सके। यही तो आज की ब्रह्मास्त्र वाली असली लड़ाई है, जिसका उल्लेख पुरानी पोथियों में बार-बार आता है।

एक बात जरा और भी तो देखिए। जमींदार कहता है, सत्ताधारी कहते हैं और उनके पुछल्ले भी उसे ही दुहराते हैं कि जमीन के पास मत जाओ! वह तो नीलाम हो गई! उन्हें तमीज ही नहीं कि वे यह झगड़े की बात क्यों बोलते हैं, यह उलटी बात क्यों कहते हैं। जमीन क्यों नीलाम हो गई? क्या किसान ने ऐश में उसकी कमाई खर्च कर दी? नाच और मुजरे में लगा दी? सैर-सपाटे में चौपट कर दी? महल बनाए? मोटर खरीदी? चुनाव लड़े? आखिर पैदावार गई कहाँ? सत्तू भी तो भर पेट नहीं खा सका। और जिस पेट में उसकी कमाई चली गई, वह तो मौजूद ही है। जमीन तो ठीक नीलाम हुई और दखल दिहानी भी हुई। मगर जब किसान की भूख, उसका जाड़ा, उसकी लज्जा, उसकी बीमारी वगैरह तो नीलाम नहीं हुई और न इन पर जमींदार की दखल दिहानी ही हुई। अच्छा तो था कि इन चीजों को भी नीलाम करा के अपने कब्जे में जमींदार रख लेता। फिर तो झगड़ा ही न होता। न बकास्त की लड़ाई होती और न कर बन्दी। तब तो जरूरत ही नहीं रह जाती। हाँ, जमींदार को जरूर मालूम पड़ता कि भूख-प्यास, बीमारी वगैरह को रखने में क्या दिक्कतें हैं! तब उसे किसानों की परेशानियों का अन्दाज लग जाता और वह खामख्वाह कह बैठता कि बाबा, लो यह तुम्हारी जमीन! ताकि इन आफतों से पिण्ड तो छूटे। हम बिना दखल दिहानी के ही, बिना जमीन के ही अच्छे!

कानून बनाने वाले को होश ही नहीं और न उस पर अमल करनेवालों को ही कि ऐसा करें कि जमीन की नीलामी के कानून के साथ ही भूख, बीमारी आदि की नीलामी भी जरूरी हो और किसान इनसे छुटकारा पा जाए। नहीं तो जमीन जमींदार के पास, पूँजी धनिकों के पास और भूख, बीमारी आदि किसानों के पास! यह कैसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चलेगा? यह तो असम्भव है। किसान तो कानून के आगे सिर झुकाने को तैयार है। मगर ये तो मानने वाले नहीं। ये भूख, रोग आदि तो जन्म के बागी और क्रान्तिकारी हैं! किसान तो कानून पढ़ता है, पढ़ सकता है। और नहीं तो उसे जबर्दस्ती पढ़ाया जा सकता है। मगर इन्हें कौन पढ़ाए! म्याऊँ का ठौर कौन पकड़े? ये तो पढ़ानेवालों को ही उलटे पढ़ा दें। जो इन्हें कानून पढ़ाने चले वह सियार की तरह उलटे पढ़ जाए और उनकी जान पर आ बने!

कहते हैं एक सियार को घूमते-फिरते कहीं छपे-छपाये कागज का टुकड़ा मिल गया। वह खुश हो गया। एक दिन फूलकर अपनी सियारिन को उसे दिखाते हुए उसने कहा कि लो अब तो सदा के लिए हमारी बला टली। अब हमें कोई छेड़ न सकेगा; अब यह सरकारी हुक्मनामा जो मिल गया, हम जहाँ चाहें, न रोके जा सकते हैं। सियारिन ने 'अच्छा' कहा और हिफाजत से पास में रखने की राय दी। कुछ दिन गुजर गए और कोई घटना नहीं हुई किसी ने भी संयोगवश उस सियार को नहीं छेड़ा। फिर तो खूब हिम्मत बढ़ी और एक दिन हजरत गाँव की ओर बढ़े। पास पहुँचते न पहुँचते कई मस्ताने कुत्तों की जो उन पर नजर पड़ी तो उनने उनका पीछा चटपट किया। हजरत भाग चले। जब तेजी से अपनी मांद पर आ के भीतर घुसना चाहा तो उसका द्वार बन्द पाया। घबराहट में सियारिन से बोले कि जल्दी खोल, दुश्मनों ने पीछा किया है। उसने कहा कि हुक्मनामा तो पास में ही है। दिखला क्यों नहीं देते? सियार ने कहा कि दिखलायें क्या खाक? वे तो अनपढ़ हैं। तब कहीं झटपट माँद का द्वार खुला और जैसे-तैसे उनकी जान बच पाई।

यही बात इन भूख आदि की है। वे तो वज्र अपढ़ हैं। वे कानून क्या जानने गए? किसानों की सिधाई और तन मूलक अपनी सफलता देख के जमींदार जो चसक गए हैं और नीलामी तथा बेदखली कराते रहते हैं उसका नतीजा किसान उन्हें तभी पढ़ाएँगे जब उक्त रीति से वे भी डट जाएँगे। तब तो उन्हें मनाना गैर-मुमकिन होगा। दलीलें तो कुछ पढ़े-लिखों तक ही काम करती हैं, न कि गँवार किसानों में। वे तो अपढ़ हैं। सिर्फ आतंक और मिथ्या धारणा के करते ही वे मानते थे। अब जब ये दोनों बातें जाती रहीं तब दलील और कानून उन पर ठीक वैसे ही असर नहीं करेंगे, जैसे कुत्तों पर सियार का हुक्मनामा बेकार साबित हुआ!

देखिए न, कितनी हृदयहीनता और जल्लादाना हरकत है? न जमींदार या उनके अमले ही सोचें, न कानून ही विचारे, न हाकिम ही खयाल करे और न सरकार ही जरा भी फिक्र करे कि आखिर किसान भी तो आदमी ही हैं, उनके बाल-बच्चे भी तो इनसान हैं वे भी शरीर रखते हैं, पेट रखते हैं। इसलिए उन्हें भी तो खाना-पीना वगैरह चाहिए ही। कोई भी इसकी चिन्ता नहीं करता! हरेक को यही फिक्र है कि किसान से कैसे कौड़ी-कौड़ी चुकता कर लें। इसके लिए ही सारी शक्ति लगा दी जाती है। वह हाथ जोड़ता, प्रार्थनाएँ करता कि फसल मारी गई। मगर कोई सुनने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अगर दूध शेष हो तो उसी के साथ और अगर घी हो तो कहना ही क्या! पूड़ी भी बना के खाएँ और दूसरी चीजें भी। इसी प्रकार और और पैदावार के साथ भी उसका व्यवहार होना चाहिए।

सारांश यह कि खाना उसका प्रधान और सर्वप्रथम मन्त्र हो। यह ऐसा मन्त्र है कि शोषकों का कलेजा फट जाए और बिना मौत ही वे मर जाएँ। यह ऐसी शान्ति की लड़ाई है कि कहिए मत। हाहाकार ही मच जाए। विराट आकार प्रकट हो गया और सारी दुनिया गायब हो गई! गीता के भगवान के विराट स्वरूप से भी भीषण रूप किसान ने धारण कर लिया। अब तो दुनिया का संहार हुए बिना रह ही नहीं सकता! पापी लोग बच नहीं सकते! उससे कौन लेगा? क्या लेगा? कैसे लेगा? पेट में से निकालेगा क्या? पेट में जाने न पाए इसका क्या कोई उपाय है यदि किसान, यदि यह 'सहस्र शीर्षा पुरुषः सहस्रक्षः सहस्रपात्' संकल्प कर ले कि खाएँगे और जरूर खाएँगे? हमें तो ऐसी शक्ति नजर नहीं आती, जो यह काम कर सके। यही तो आज की ब्रह्मास्त्र वाली असली लड़ाई है, जिसका उल्लेख पुरानी पोथियों में बार-बार आता है।

एक बात जरा और भी तो देखिए। जमींदार कहता है, सत्ताधारी कहते हैं और उनके पुछल्ले भी उसे ही दुहराते हैं कि जमीन के पास मत जाओ! वह तो नीलाम हो गई! उन्हें तमीज ही नहीं कि वे यह झगड़े की बात क्यों बोलते हैं, यह उलटी बात क्यों कहते हैं। जमीन क्यों नीलाम हो गई? क्या किसान ने ऐश में उसकी कमाई खर्च कर दी? नाच और मुजरे में लगा दी? सैर-सपाटे में चौपट कर दी? महल बनाए? मोटर खरीदी? चुनाव लड़े? आखिर पैदावार गई कहाँ? सत्तू भी तो भर पेट नहीं खा सका। और जिस पेट में उसकी कमाई चली गई, वह तो मौजूद ही है। जमीन तो ठीक नीलाम हुई और दखल दिहानी भी हुई। मगर जब किसान की भूख, उसका जाड़ा, उसकी लज्जा, उसकी बीमारी वगैरह तो नीलाम नहीं हुई और न इन पर जमींदार की दखल दिहानी ही हुई। अच्छा तो था कि इन चीजों को भी नीलाम करा के अपने कब्जे में जमींदार रख लेता। फिर तो झगड़ा ही न होता। न बकास्त की लड़ाई होती और न कर बन्दी। तब तो जरूरत ही नहीं रह जाती। हाँ, जमींदार को जरूर मालूम पड़ता कि भूख-प्यास, बीमारी वगैरह को रखने में क्या दिक्कतें हैं! तब उसे किसानों की परेशानियों का अन्दाज लग जाता और वह खामख्वाह कह बैठता कि बाबा, लो यह तुम्हारी जमीन! ताकि इन आफतों से पिण्ड तो छूटे। हम बिना दखल दिहानी के ही, बिना जमीन के ही अच्छे!

कानून बनाने वाले को होश ही नहीं और न उस पर अमल करनेवालों को ही कि ऐसा करें कि जमीन की नीलामी के कानून के साथ ही भूख, बीमारी आदि की नीलामी भी जरूरी हो और किसान इनसे छुटकारा पा जाए। नहीं तो जमीन जमींदार के पास, पूँजी धनिकों के पास और भूख, बीमारी आदि किसानों के पास! यह कैसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चलेगा? यह तो असम्भव है। किसान तो कानून के आगे सिर झुकाने को तैयार है। मगर ये तो मानने वाले नहीं। ये भूख, रोग आदि तो जन्म के बागी और क्रान्तिकारी हैं! किसान तो कानून पढ़ता है, पढ़ सकता है। और नहीं तो उसे जबर्दस्ती पढ़ाया जा सकता है। मगर इन्हें कौन पढ़ाए! म्याऊँ का ठौर कौन पकड़े? ये तो पढ़ानेवालों को ही उलटे पढ़ा दें। जो इन्हें कानून पढ़ाने चले वह सियार की तरह उलटे पढ़ जाए और उनकी जान पर आ बने!

कहते हैं एक सियार को घूमते-फिरते कहीं छपे-छपाये कागज का टुकड़ा मिल गया। वह खुश हो गया। एक दिन फूलकर अपनी सियारिन को उसे दिखाते हुए उसने कहा कि लो अब तो सदा के लिए हमारी बला टली। अब हमें कोई छेड़ न सकेगा; अब यह सरकारी हुक्मनामा जो मिल गया, हम जहाँ चाहें, न रोके जा सकते हैं। सियारिन ने 'अच्छा' कहा और हिफाजत से पास में रखने की राय दी। कुछ दिन गुजर गए और कोई घटना नहीं हुई किसी ने भी संयोगवश उस सियार को नहीं छेड़ा। फिर तो खूब हिम्मत बढ़ी और एक दिन हजरत गाँव की ओर बढ़े। पास पहुँचते न पहुँचते कई मस्ताने कुत्तों की जो उन पर नजर पड़ी तो उनने उनका पीछा चटपट किया। हजरत भाग चले। जब तेजी से अपनी मांद पर आ के भीतर घुसना चाहा तो उसका द्वार बन्द पाया। घबराहट में सियारिन से बोले कि जल्दी खोल, दुश्मनों ने पीछा किया है। उसने कहा कि हुक्मनामा तो पास में ही है। दिखला क्यों नहीं देते? सियार ने कहा कि दिखलायें क्या खाक? वे तो अनपढ़ हैं। तब कहीं झटपट माँद का द्वार खुला और जैसे-तैसे उनकी जान बच पाई।

यही बात इन भूख आदि की है। वे तो वज्र अपढ़ हैं। वे कानून क्या जानने गए? किसानों की सिधाई और तन मूलक अपनी सफलता देख के जमींदार जो चसक गए हैं और नीलामी तथा बेदखली कराते रहते हैं उसका नतीजा किसान उन्हें तभी पढ़ाएँगे जब उक्त रीति से वे भी डट जाएँगे। तब तो उन्हें मनाना गैर-मुमकिन होगा। दलीलें तो कुछ पढ़े-लिखों तक ही काम करती हैं, न कि गँवार किसानों में। वे तो अपढ़ हैं। सिर्फ आतंक और मिथ्या धारणा के करते ही वे मानते थे। अब जब ये दोनों बातें जाती रहीं तब दलील और कानून उन पर ठीक वैसे ही असर नहीं करेंगे, जैसे कुत्तों पर सियार का हुक्मनामा बेकार साबित हुआ!

देखिए न, कितनी हृदयहीनता और जल्लादाना हरकत है? न जमींदार या उनके अमले ही सोचें, न कानून ही विचारे, न हाकिम ही खयाल करे और न सरकार ही जरा भी फिक्र करे कि आखिर किसान भी तो आदमी ही हैं, उनके बाल-बच्चे भी तो इनसान हैं वे भी शरीर रखते हैं, पेट रखते हैं। इसलिए उन्हें भी तो खाना-पीना वगैरह चाहिए ही। कोई भी इसकी चिन्ता नहीं करता! हरेक को यही फिक्र है कि किसान से कैसे कौड़ी-कौड़ी चुकता कर लें। इसके लिए ही सारी शक्ति लगा दी जाती है। वह हाथ जोड़ता, प्रार्थनाएँ करता कि फसल मारी गई। मगर कोई सुनने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

को रवादार नहीं! जब पढ़े-लिखे और सभ्य कहे जाने वाले जमींदार तथा हाकिम-हुक्काम तक यों इनसानियत को ताक पर रख देते हैं और जरा भी समझदारी से काम नहीं लेते, तो क्या किसानों ने ही सारी भलमनसी, सारी समझ और सारी इनसानियत का अकेले ठेका ले लिया है कि मरते रहें और चुकता करते जाएँ? यदि यों न हो सके तो बहनों और लड़कियों तक को बेच डालें, ईमान का बंधक रखें, लाख कुकर्म करें—चोरी तक करें और जमींदार तथा अन्य पावनेदारों की भरपाई कर दें? यह तो कुएँ में भाँग पड़ने की बात हो गई कि जोई उसका पानी पीता वही सनक जाता! समस्त समाज सनक-सा गया है। फिर किसान भी उसी तरह क्यों न सनक जाएँ?

इसलिए वह कमर बाँध ले और साफ कह दे कि जब बचता ही नहीं, खुद हमारा पेट ही नहीं भरता, तो दें क्या खाक? अन्न, वस्त्र और दवा के बिना परिवार को मार के देने की बात तो समझ में आती नहीं। हम ऐसा क्यों करने जाएँ? हाँ, पहले कानून के ठेकेदार या सत्ताधारी लोग सरकार की ओर से साफ-साफ यह घोषणा तो कर दें, चारों ओर लक्ष-लक्ष विज्ञप्तियाँ बाँटकर प्रचार तो कर दें कि सरकार की यही मर्जी है कि भूखे मरते रहो, कपड़े के बिना जाड़े में काँपते रहो, माँ-बहने नंगी हो जाएँ, दवा के बिना सपरिवार काल के गाल में जाने की नौबत तक हो और मकान भी बेपर्द हो, जीर्ण-शीर्ण हो, तो भी कोई परवाह नहीं। उन सब कामों में कौड़ी भी खर्च न करके सबसे पहले पावनेदारों का पावना चुकता कर दो। पीछे बचे तो खाना-पीना, दवा करना, कपड़ा लाना और मकान बनाना। नहीं, तो मरने दो और नग्न ही रहने दो! उस समय हम सोचेंगे कि हमें क्या करना चाहिए। तब कम से कम यह बात समझ में तो आ सकेगी कि पावनेदारों का यह दावा कि हर हालत में उनकी भरपाई होनी ही चाहिए, सरकार की मर्जी के मुताबिक ही है; वह कानूनी है।

मगर क्या यह हिम्मत सरकार को है? क्या वह ऐसी विज्ञप्तियाँ निकाल सकती है? असल में ऐसा करने पर तो सरकार के लिए मुँह दिखाना ही मुश्किल हो जाएगा और दुनिया थू थू करेगी इसीलिए वह साफ-साफ कहती कुछ नहीं। मगर काम ऐसा करती है कि उसका मतलब यही हो जाता है कि किसान परिवार अन्न, वस्त्र, दवा, मकान के बिना मरे तो मरे, मगर पाई-पाई पावना चुकता कर दे, जरूर ही! लेकिन अब हम नहीं चाहते कि इतने दिनों तक चलनेवाला यह टट्टी की ओट में शिकार जारी रहने दिया जाए। हम चाहते हैं कि किसान ऐसा ही करें जिससे या तो सरकार अपनी नकाब उतार फेंके और अपनी नीयत साफ जाहिर कर दे, या किसानों के साथ यह घोर अन्याय का होना रुके।

यदि शासक और शोषक लोग इतने पर भी न मानें और वाहियात दलीलें करते जाएँ कि किसान परिवार को भूखों मरने, नंगे रहने या दवा के बिना मौत के शिकार होने की बात सरासर झूठी है। उसे तो काफी बचता है। इसीलिए तो शराब, ताड़ी या शादी, गमी में फिजूलखर्ची करता है। तो इसका जवाब दूसरा ही

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दिया जाना चाहिए और ऐसा कि जैसे लट्ठमार हो। असल में शोषक लोग बहुत बेहयाई करते हैं, जब वे ऊपर लिखी दलीलें देते हैं। समझते हैं कि दलीलें बड़ी पक्की हैं। एक बार गुजरात के खेड़ा जिले में डाकोर के पास एक साहूकार ने एक किसान के बारे में कहा कि देखिए न यह तो सैलून (शहर में खास ढंग से सजी दुकान) में एक दिन अपने बाल कटवाता था! हालाँकि साहूकार बराबर ही वैसा करता था! मगर उसका कतई खयाल न करके किसान के एक दिन का खयाल कर लिया! क्योंकि किसानों को तो वे लोग आदमी ही नहीं समझते!

आखिर आदमी के भीतर इच्छाएँ हैं, प्रवृत्तियाँ हैं, लालसाएँ हैं। वह तो चाहेगा कि हम भी अच्छी तरह बाल कटवाते, अच्छा खाना खाते। वह पत्थर या पशु तो है नहीं। मगर शोषक लोग तो उसे ऐसा ही समझते या समझने की कोशिश करते हैं।

इसी प्रकार ताड़ी, शराब या विवाह-शादी के खर्च की बात करने वाले भी हैं। आखिर किसान भी तो इनसान है। कमाते-कमाते मरता है। मगर न तो जरा सा दिल बहलाव का सामान उसे मिलता और न मुर्झाई भावनाओं को प्रफुल्लित करने का कोई साधन ही। प्रत्युत हजार चिन्ताएँ उसे मारे डालती हैं। ऐसी दशा में या तो नींद की बेहोशी या ताड़ी-शराब का नशा ही उसे कुछ समय के लिए चिन्ताओं से अलग कर देता है। चिन्ता में नींद बेहूदी भी तो नहीं आती। इसीलिए ताड़ी-शराब की शरण बरबस लेनी ही पड़ती है। विवाह-शादी में भी कुछ बाजा गाजा या दिल-बहलाव का सामान करना ही पड़ता है। क्योंकि रोज तो मिलता नहीं। फिर साल-दो साल में भी न करे? आखिर लड़के-लड़कियों की शादी ही तो है और वे ठहरे कलेजे के टुकड़े। सो भी मनुष्य के कलेजे के। वह कोई गमी या मुहर्रम तो हैं नहीं। हालाँकि मुहर्रम में भी तो बाजे गाजे रहते ही हैं। फिर यदि कुछ खर्च करता है, तो क्या करे? बेबसी है। यदि पत्थर होता तो उसे न तो लालसा, अनुराग और अन्य मानवी मनोविकार ही सताते और न वह काम करता ही। योगी या यती भी होता तो शायद न करता। मगर वह तो ठहरा साधारण आदमी। फिर क्योंकर माने? मगर उसे पत्थर या महात्मा माननेवाले ये शोषक अपने मतलब के लिए चाहे जो न करें या कहें।

लेकिन उनका भी करारा जवाब यही है कि यदि वह ऐसा समझते हैं तो वह या उनकी सरकार दोनों ही मिल के दो में एक काम करें और झंझट मिटे, या तो किसान के पास सभी पैदावार छोड़ दें और सभी खर्च के बाद जो साल में बच जाए उसे ही अपने पावने में वसूल करें। या शुरू में ही उसकी सारी की सारी पैदावार रत्ती-रत्ती ले लें और उसके परिवार के लिए साल-भर के खाने, कपड़े, मकान, दवा, पढ़ने-लिखने और शादी-गमी आदि के खर्चों का बजट (चिट्ठा) तैयार करके उसका प्रबन्ध करें। नाहक कठ हुज्जत करने की तो कोई जरूरत नहीं। दोनों रास्ते तो साफ हैं। किसान दोनों में कोई भी मानने को तैयार है। तीसरा रास्ता वह हर्गिज न मानेगा। यदि बचत के बारे में शक हो कि गड़बड़ी होगी और किसान फिजूल खर्च कर डालेगा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तो उस पर नियन्त्रण रखा जा सकता है।

लेकिन यदि यह करने के लिए सरकार तैयार न हो तो दूसरा रास्ता तो साफ ही है। तब तो वह पैदावार ले ही लेगी और बजट के अनुसार खर्च मिलने पर वाहियात खर्च की बात उठेगी ही नहीं। अगर उठे भी तो उसका नतीजा किसान के ही माथे होगा। सरकार को क्या? आखिर वह बजट के अनुसार ही तो खर्च की बात उठेगी फिर चाहे जहाँ जैसे खर्चे। कमाने के समय भी उस पर निगरानी रखी जाए। ताकि लापरवाही से न कमाए। हाँ, बजट बनाने में खयाल रखना ही होगा कि आदमियों के लिए ही वह बनेगा, न कि पशुओं के लिए। इसलिए स्वास्थ्योपयोगी खाने, कपड़े, मकान, दवा-दारू और पढ़ने-लिखने की व्यवस्था होनी चाहिए। सत्तू, मंडुआ, खेसारी वह न खाएगा और न चिथड़ा पहनेगा ही। कुछ घी, दूध भी चाहिए ही। जरा मनोरंजन भी जरूरी है। बस, झंझट ही खत्म!

यदि ये दोनों बातें पसन्द न हों तो एक तीसरी बात भी की जा सकती है और किसान उसके लिए भी किसी प्रकार तब तक राजी किया जा सकता है। जमीन की पैदावार खूब बढ़े, कई गुनी हो, जैसी कि रूस, जापान, इटली आदि में पाई जाती है। अच्छे बीज, अच्छी खाद, अच्छी और गहरी जुताई और आवपाशी वगैरह का प्रबन्ध सरकार और जमींदार मिल के करें। कीड़े, रोग और पाले वगैरह से भी रक्षा का प्रबन्ध वही करें, और अन्त में फसल की अच्छी कीमत मिलने का भी इन्तजाम करें जैसा कि और मुल्कों में होता है। इससे किसान को काफी पैसे मिलेंगे और सभी का पावना खुशी से वह चुकता करेगा। अगर न करे तभी उसे कानूनन अपराधी कहा जा सकता है।

इस प्रकार तीन रास्ते साफ-साफ हैं। उनमें कोई भी गोल मोल नहीं है। उनमें कोई भी स्वीकार करके सफाई के साथ निपटने में ही ईमानदारी है। अगर वे लोग ऐसा नहीं करते, तो किसान का रास्ता साफ है। फिर तो न देने पर वह दोषी कदापि नहीं हो सकता।

लोग कहते हैं और किसान भी दिल से मानते हैं कि हजार कोशिश करें, मगर कुछ होने जाने का नहीं। न तो जमींदारी ही मिटेगी, न यह सरकार ही और न यह लूट ही रुकेगी। यह इतनी पुरानी बीमारी है कि असाध्य है। कितने ही मिट गए। मगर ये चीजें नहीं मिटीं।

असल में यही निराशा तो जान मारती है। जब तक किसानों को अपने में और अपने लक्ष्य में पूरा, अमिट, अडिग विश्वास नहीं होगा, काम न चलेगा। अपने ध्येय और मकसद में यह जीता-जागता विश्वास होना ही कि अब लिया तब लिया, सफलता की कुंजी है। इसलिए जितना जल्द यह निराशा मिटे और यह विश्वास उनमें जमे उतना ही अच्छा। आखिर सन्ध्या, पूजा, नमाज, तीर्थ, हज वगैरह के द्वारा स्वर्ग, बिहिश्त और भगवान के मिलने का विश्वास है या नहीं 1 यह तो प्रायः सभी स्वीकार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करते हैं कि विश्वास पक्का है और ये चीजें हासिल भी होंगी। मगर क्या आज तक किसी ने देखा है कि अमुक आदमी धर्म-कर्म का अनुष्ठान करके, या दूसरी ही तरह से भगवान से मिला है, या स्वर्ग गया है? यह तो सिर्फ जवानी या पोथियों की ही बातें है। मगर फिर भी सारी शक्ति लगा के की जाती हैं। कोई भी किसान या और भी आदमी इन बातों में पूरी लगन से लगा हुआ प्रायः मिलता है।

लेकिन यहाँ एक प्रश्न है। स्वर्ग, बैकुण्ठ, भगवान या खुदा को क्या किसी ने देखा है? न तो अब तक वहाँ जाते ही कोई दिखा है और न उनको ही हमने देखा है। काले, गोरे, छोटे, बड़े हैं; सोने, पत्थर या संगमरमर के हैं, यह भी नहीं मालूम। उत्तर, दक्षिण, पूरब, पश्चिम, नीचे, ऊपर कहाँ हैं यह भी पता ज्ञात नहीं। उनकी कोई पहचान भी नहीं है। फिर भी वहाँ पहुँच जाएँगे, यह अटल विश्वास है! लेकिन गेहूँ, चावल, घी, दूध वगैरह तो ऐसी चीजें नहीं हैं। यह तो ठोस हैं, अत्यन्त ठोस, न कि स्वर्गादि की तरह महज खयाली और भावुकतामय! इनकी पहचान भी पक्की है। किसान तो इन्हें रोज ही देखते, सुनते, पैदा करते, सिर पर लाद के गैरों के पास पहुँचाते और कभी-कभी छठे-छमास स्वयं भी प्राप्त करते खाते-पीते हैं। ये तो उन्हीं के खेत और पशुओं से पैदा होती, खलिहान और बर्तनों में रखी जाती और घर में पहुँचती हैं। उनकी सूरत शक्ल और रूपरेखा भी पूर्णरूपेण विदित ही हैं। न तो किसी पोथी पत्रे में ढूँढ़ना है और न पण्डित या मौलवी से ही पूछना है कि कैसी हैं और उनकी प्राप्ति कैसे होती है। ये तो प्राप्त ही हैं। सिर्फ भ्रम का फन्दा और पर्दा बीच में पड़ा रुकावट डाल रहा है। किसान अपने आपको और अपने हकों को भूल कर ही इनसे अलग हो रहा है—'अपने को आप भूल के हैरान हो गया।'

उसकी हालत तो उस बढ़ई की-सी है जो दिन-भर तो अपने वसूले से बीसियों जगह घूम-घूम के काम करता रहा और शाम को घर चला। जाड़े के दिन थे। इसलिए सिर पर कम्बल को इस प्रकार डाल लिया कि सारा शरीर ढँक गया। वसूला भी कन्धे पर रख लिया, जैसा कि वे लोग बराबर करते हैं। रास्ते में एकाएक खयाल आया कि वसूला तो गायब हो गया। कन्धे की बात भूल गई! सोचा काम करने की जगह पर ही छूट गया! लौट पड़ा! एक के बाद दीगरे सभी जगह उसकी तलाश में दौड़ता फिरा! रात हो गई! दौड़ते-दौड़ते पस्त हो गया। मगर वसूला न मिला! लाचार खिन्न हो के घर लौटा। निराश था! घरवाले आग ताप रहे थे। वहीं पहुँचा और सबसे पहले यही रोना सुनाया कि वसूला ही गायब! इस प्रकार सभी को दुखी करने के बाद ज्यों ही सिर से कम्बल उतारने लगा कि वसूले पर हाथ गया और बोला धत्तेरे की, यह तो पास में ही था! और इसी के लिए मैं इतना हैरान हुआ!

किसान की भी यही दशा है। भगवान से लेकर साधु, फकीर, देवी, देवता, लीडर, पेशवा, धनी, हाकिम, जमींदार, उनके अमले, सभी के पास गेहूँ, चावल, आदि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ढूँढ़ता और माँगता है 'भूख लगी है, रोटी दो।' मगर मिलता जुलता कुछ भी नहीं। वह और कहीं हो तब न? जिनसे माँगता है उनके पास हो तब न? वह तो उसी के पास है। उसी के खेत, खलिहान, घर में है। वसूला पास ही है, व्यर्थ की परेशानी है! यदि सन्ध्या, पूजा, नमाज, तीर्थ करने से वह घी, दूध, गेहूँ, चावल नहीं मिल सकता, तो भगवान मिलेगा यह अक्ल से बाहर की बात है और अगर भगवान और बैकुण्ठ जरूर ही मिलेगा, तो निश्चय ही उससे पहले गेहूँ, चावल, दूध भी मिलेगा ही और किसान खा-पी के मस्त होगा ही, यह बात बखूबी समझ में आती है। यदि हजार पूजापाठ के बाद भी हम इतने कमजोर हैं कि गेहूँ आदि की यह दिन दहाड़े लूट रोक नहीं सकते और जमींदारों या उनके अमलों से थर-थर काँपते हैं, तो जमदूतों और नर्क को कैसे रोकेंगे? कैसे हटावेंगे?

और क्या भगवान नपुंसक और हिजड़ा है कि हमारे जैसे नामर्दों से मिलेगा? शक्तिमान तो शक्तिवालों से ही मिलना पसन्द करता है। वह तो कमजोरों को देख नहीं सकता। यदि वह सर्वशक्तिमान है, तो हममें इतनी भी तो शक्ति हो कि अपने गेहूँ, चावल की लूट बन्द कर सकें। तभी तो हमारा उससे मेल हो सकता है। तभी तो स्वर्ग में हमें स्थान मिल सकता है। स्वर्ग और बैकुण्ठ क्या नामर्दों के ही लिए हैं? तब तो हम उन्हें दूर से ही सलाम करते हैं। हम तो मानते हैं कि यदि वह कोई रहने योग्य स्थान है और यदि भगवान कोई है, तो वह शक्तिमानों के ही मिलने और प्राप्त होने योग्य है, 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः।' यदि पूजापाठ में हमारे पास का ही गेहूँ हमारे ही पेट में पहुँचाने-भर की भी ताकत नहीं है, तो यह दावा सरासर झूठा है, कि उससे राम, रहीम और स्वर्ग, बिहिश्त मिलेंगे।

इस प्रकार दिखाने से विदित होता है कि किसान की सबसे बड़ी और पहली लड़ाई अपने आप से ही है। अपनी भूलों और कमजोरियों से ही है, अपनी अन्ध परम्परा से ही है। उसी के बाद शोषकों और शासकों से है, लूटनेवालों से है। यह लड़ाई है भी निराली जिसमें शुरू में लाठी-डण्डे और गोली-बारूद की शायद ही जरूरत पड़ती है—बहुत ही कम पड़ती है। यह तो पूर्ण शान्तिमय लड़ाई है। मगर इसमें खतरे हैं और बहुत बुरे खतरे हैं। इस लड़ाई को बेमुरव्वती के साथ अन्त तक लड़ना होगा। तभी निस्तार होगा। इसमें 'तवार्द्धं च ममार्द्धं च' के अनुसार 'आइए कुछ आप लें कुछ हम लें' हरगिज न करना होगा। समझौता और सुलह सपाटे की बात कतई छोड़ देनी होगी। वह तो जाल के फन्दे हैं। उनमें फँस के मरना ही होगा। हमने यही अनुभव किया है।

ज्यों ही रिआयत की बात किसान ने सोची, या दया को उसने दिल में स्थान दिया, कि मामला सरासर बिगड़ा। बाघ और गाय से समझौता कैसा? घास और बकरी से सुलह कैसी? जब तक बाघ और बकरी मर जाने का निश्चय न कर लें, सुलह क्यों करेंगे? सुलह करने पर वे खाएँगे क्या? बाघ तो भक्त हो सकता नहीं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और बकरी घास के बिना जी सकती नहीं। उसी प्रकार जिन्हें किसान की कमाई पर ही जीना है। जो आकाशलता की तरह किसान के ऊपर ही पैदा होते हैं और उसे सुखा कर पीछे खुद भी सूख जाते हैं, जैसी कि आकाशलता की हालत है, उनके साथ समझौते के क्या मानी हैं? वे कुछ समय चाहते हैं और इतने ही में किसान को सुखा डालेंगे! इसलिए उनके साथ तो एक ही नाता हो सकता है, एक ही बात हो सकती है और वह है अविश्रान्त लड़ाई की बात, जिसके फलस्वरूप दो में एक को खत्म होना पड़ेगा। समझौते के फलस्वरूप बीच में ही लड़ाई बन्द करके किसानों को पछताना होगा।

मुझे एक किसान कार्यकर्ता की बात सुन के हँसी आई और क्रोध भी! उसने कहा कि बीस वर्ष पहले एक छोटे जमींदार ने नाहक ही हमारे पिता को दिक करना शुरू किया। उन्होंने लाख कोशिश की आरजू-मिन्नत की कि अपना मुनासिब हक ले लीजिए और हमें तबाह मत कीजिए। आप भी बसें और हम भी रहें ऐसा कीजिए। मगर वह जमींदार कब सुननेवाला था? उसने अपनी हरकत जारी रखी। किसान को बीसों प्रकार की उलझनों में फँसा के उसकी जमीन वह जमींदार किसी प्रकार छीनने पर तुला बैठा था। जमीन भी काफी थी। किसान भी आखिर करता क्या? जान पर खेल गया। नतीजा हुआ कि जमींदार अन्त में थक के बैठ गया और कुछ कर न सका। उसे अब तो यह भी हिम्मत न थी कि उस किसान से लगान भी माँगने जाए। उसका मुँह रहा ही नहीं। फलतः पन्द्रह-सोलह वर्षों से किसान यों ही खाता-पीता है ठीक लाखराज की तरह।

इस साल वह कार्यकर्ता बोला कि जमींदार के बाल-बच्चों की तकलीफ देख के बाबूजी को दया आई है और चाहते हैं कि लगान दे के रसीद ले लें। ताकि उसकी भी गुजर हो! मगर मेरे जानते इसमें लगान देने या न देने का सवाल असल में नहीं है। असली सवाल तो है किसान की गई गुजरी मनोवृत्ति का, जिससे जमींदार अनुचित लाभ उठाना चाहते हैं। यदि वही जमींदार सफल हो जाता और खेत छीन लेता तो किसान के बच्चे भूखों मरते या नहीं? मगर क्या इसका कुछ भी खयाल लाख कहने पर भी किया? क्या पीछे भी करता? क्या कोई जमींदार कभी ऐसा करता है? शायद पहले कोई करता भी हो। मगर अब तो नहीं। अब तो जमींदारों का रुख दूसरा ही है और वह है पूर्ण निर्दयता का। फिर किसान को ही क्या पड़ी है कि उसमें दया का पनाला फूटे? यह तो निरी नादानी है, निरा धोखा है। किसान इससे बचें।

हमने, किसान सभा ने गत दस-बारह वर्षों के भीतर जमींदारों को काफी समझाया है कि वह भी रहें और किसानों को भी बसने दें। सोने के अण्डे देनेवाली मुर्गी का पेट, एक साथ ही बहुत अण्डों के लोभ से मत फाड़ें। मगर उनने एक न सुना! वे आज भी सुनने को रबादार नहीं। किसान ने क्या-क्या नहीं किया कि वह उस पर जरा सी भी नजरें इनायत रखें और उजाड़ें नहीं। मगर सुनता है कौन? इसलिए

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हमारा तो पक्का निश्चय है कि उन्हें समझाना-बुझाना बेकार है। अब तो एकमात्र लड़ लेना ही दवा है। मगर यदि किसान चाहे तो और भी समझा-बुझा के देख ले। मगर होशियारी के साथ। नहीं तो उसमें भी धोखा हो सकता है। और जब एक बार लड़ने का निश्चय कर ले तो फिर कभी न रुके। एक बार दो बार कई बार जमींदारों से मुकाबला हो और पीछे न हटे। बराबर डटा रहे! यदि एक-दो बार के बाद वह हार मानें और समझौता करना चाहें, तो भी फेर में न पड़े और कह दे साफ-साफ, कि नहीं-नहीं लड़िए। अभी आप का मन भरा नहीं है। जरूर लड़िए। हम तो माननेवाले नहीं। बिना इस मनोवृत्ति के गुजर नहीं। बिना इसके जमींदार लोग भी अन्तिम बार परास्त हो के बैठ न जाएँगे। जब किसान डटा रहेगा तो संन्यासी की कढ़ी की दशा होगी और वह लोग अवश्य ही सदा के लिए हार के बैठ जाएँगे।

कहते हैं कि एक जंगल में एक संन्यासी बाबा रहते और ध्यान समाधि किया करते थे। वहाँ जो कंद, मूल, फल, पत्र मिलते थे। उन्हीं से गुजर करते थे। संन्यासी को और चाहिए ही क्या? पुराना जमाना था। न तो कोई दुनिया का काम करता था और न शोषितों एवं पीड़ितों का उद्धार। बाल बच्चों का तो प्रश्न था ही नहीं कि घी-मलाई खा के मोटे-ताजे बनें और सन्तान वृद्धि करें। वृद्ध भी थे। समय काट रहे थे। एक दिन अचानक उनके मन में आया कि कढ़ी खाते। ताज्जुब में पड़े कि यह क्या वाहियात खयाल हो आया! मुद्दतों से कढ़ी देखी भी नहीं। फिर यहाँ घोर जंगल जहाँ वह मिल भी नहीं सकती। संन्यासी भी ठहरे। हमारी जबान और हमारे मन पर तो काबू चाहिए, नहीं तो पतन होगा। और दुनिया भी क्या कहेगी कि बूढ़ा हो के कढ़ी खाने चला है सो भी संन्यासी? उन्होंने दिल को बार-बार समझाया कि यह गलत बात है। इसमें पड़ना ठीक नहीं। यह इच्छा ही अनुचित है। इससे अलग हो। अपना काम देखो, मगर सुने कौन? हैरान हो गए। बड़ी ग्लानि हुई। पर करते क्या? विवश थे। 'मन मतंग माने नहीं'? उनकी आत्मा पर मन ने कस के सवारी की और अपनी मर्जी से ले चला। अंकुश भी उसी के पास!

खैर अछता-पछता के गाँव की ओर चले। लुघड़ते-पुघड़ते बड़ी दिक्कत के बाद एक गाँव मिला। एक अच्छा घर देख के गए। घरवालों ने वृद्ध महात्मा को देख के आदर किया और पूछा कि 'महाराज, सेवा?' उत्तर मिला कि 'कढ़ी खाने चले हैं।' 'बहुत अच्छा' कह के घरवाला तैयारी करने चला तो रोक के बोले कि 'भर कड़ाही कढ़ी तैयार करना, खबरदार!' उसे आश्चर्य हुआ कि ये बूढ़े बाबा उतनी क्या करेंगे। मगर महात्मा की इच्छा ही तो ठहरी। अतः कड़ाही भर के कढ़ी तैयार हुई और उनके सामने आई। अब खाने बैठे। खाते-खाते पेट भर गया? मगर खाना नहीं छोड़ा! अन्त में कै हो गई। पर न हटे और उसी कड़ाही में ही कै किया। उसके बाद फिर उसे ही खाना शुरू। फिर कै हुई! सारांश, फिर खाना, फिर कै यह झमेला चलता रहा। बीच-बीच में बोलते जाते थे 'साले खूब ले कढ़ी, सन्तुष्ट हो जा, नहीं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तो जंगल में जाने पर फिर माँगेगा।' अन्त में घण्टों यह काम करने के बाद ही खाना उनने बन्द किया और जंगल में वापस गए। फलतः मरण पर्यन्त कढ़ी की इच्छा फिर उन्हें न हुई। यही बात जमींदार चाहते हैं। बिना इसके माननेवाले नहीं, यह ध्रुव सत्य है।

इस अविश्राम युद्ध के लिए और बातें तो जरूरी हुईं। मगर एक बात जो किसान के लिए निहायत जरूरी और कभी भूलने की नहीं है, वह यह है कि मर्द और औरतें दोनों पूरी तरह से तैयार हो और दोनों ही जम के लड़ें। कोई भी जरा भी आगे-पीछे न रहें या ढिलाई न करें। दुर्भाग्य से अभी तक हम समझते रहे हैं कि औरतों का काम केवल घर-गिरस्ती सम्भालना और भोजन बनाना ही है, सिवाय सन्तानोत्पत्ति के। मगर यह गलत खयाल है। वह मर्द की अर्धांगिनी हैं—शरीर का आधा है। अंग्रेजी में तो स्त्री को उत्तमार्द्ध (better half) कहते हैं। यदि वह शरीर का श्रेष्ठ आधा भाग है, तो ज्यादा नहीं, तो कम से कम आधी जवाबदेही तो हर जरूरी काम में उसकी होनी ही चाहिए।

आखिर गरीबी से मर्दों को ही तकलीफ तो होती नहीं। उनसे कहीं ज्यादा तो औरतों को होती है। मर्द की धोती जरा साफ भी हो और फटी न भी हो तो औरतों के कपड़े तो हजार चिथड़ों से जुटे और मैले-कुचैले होते हैं! वह भी दो नहीं, एक ही साड़ी होती है। फिर फीचें कैसे कि साफ हो? उधर बच्चों की भी फिक्र उसे ही करनी होती है। फलतः जो भी आधा पेट भोजन मिलता है उसी में से बचा के बच्चों के लिए रखती है। क्योंकि बार-बार भूख लगने से जब वे रोते हैं तो उसी के सिर पड़ते हैं। यदि उन्हें न मनाए तो कोई काम ही न कर सके। इसलिए खाना बचा के रखना ही पड़ता है। लड़कियों की कभी-कभी खबर लेना और उनकी ससुराल में कुछ न कुछ भेजना भी उसी का काम है। फलतः उसके लिए भी पेट काट के ही पहले से ही प्रबन्ध करना उसे ही पड़ता है। इसीलिए कहते हैं कि वह मर्दों से कहीं ज्यादा दुखिनी हैं।

फलतः इस लड़ाई में भी उन्हें ज्यादा भाग लेना उचित है। बिना मातृशक्ति और दुर्गाशक्ति के महिषासुर और रक्तबीज का संहार असम्भव है। हमने देखा है कि उनके पड़े बिना किसानों को कहीं भी विजय नहीं मिली है। सैकड़ों जगह बकास्त की लड़ाइयाँ लड़ी गई हैं। मगर एक जगह भी उनके बिना काम नहीं चला है। कई जगह तो मर्दों के हार जाने, या अलग हो जाने पर—कुछ पस्ती दिखाने पर उन्होंने ही आगे बढ़ के काम सम्भाला है और अन्त में विजय ले के ही हटी हैं। उनके इस संघर्ष में पड़ते ही जो समा होती है, जो वायुमण्डल पैदा हो जाता है वह तो निराला ही होता है। वह तो 'समुझत परै न जाई बखानी'। मर्दों की मनहूसी और पस्ती की हालत में भी जैसा कि लड़ाइयों में प्रायः होता है. वही उन्हें हिम्मत देती हैं, यदि समझदार हों। अगर वे नासमझ हुईं तो जीती लड़ाई भी हारी जाती है। तब

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तो वह पद-पद पर टाँग पकड़ के हर तरह से खींचने लग जाती है। मर्द लड़ाई में गया और उसकी स्त्री, माँ या बहन, घर में रोना धोना पसारे का नतीजा क्या होगा? उस दशा में कितने लोग हिम्मत करेंगे? जब चारों ओर पाँव फिसलने वाली ही जमीन है तो खुदा ही खैर करे। तब कितनी बार कितने लोग बच सकेंगे। अन्त में तो आगे-पीछे सभी को धड़ाम-धड़ाम लोटना ही पड़ेगा। इसीलिए औरतों को इस लड़ाई के पहले अच्छी तरह तैयार कर लेना ही होगा?

यह भी बात है कि यदि अकेले मर्द जीतेंगे तो औरतों पर वे और भी शासन करना चाहेंगे और रह-रह के ताना मारते फिरेंगे। वे ऐसा क्यों होने दें? वे स्वयं भी क्यों न इसमें पड़ें और अपने पर कलंक न आने दें? आज तक तो बदनाम थीं कि स्त्री हैं। भला आज तो वह कलंक धो डालें। खुली त्रिवेणी बह रही है! फिर ऐसा मौका मिलने का नहीं। याद रहे। खबरदार, चूकीं, कि पछताएँगी।

आज तो गंगा की निर्मल धारा बह रही है। उसमें स्नान करके जन्मजन्मान्तर का अपना कलंक स्त्री समाज क्यों न धो ले? यह मौका तो फिर आने का नहीं। आज तो उनकी इस मर्दानगी का सभी स्वागत करते हैं। आज उसकी मर्दानगी की शत मुख प्रशंसा भी हो रही है।

बहुतेरे कह बैठते हैं कि जब जमींदार भी जान पर खेल के लड़ेंगे, तो मामला बेढब हो जाएगा और यदि कहीं संयोगवश किसान हारे तब तो कहीं के न रहेंगे। लड़ाई में हार भी होती ही है। सदा जीत ही नहीं होती। तब यदि हार जाएँ तो नतीजा बुरा न होगा और किसानों की तकलीफें बढ़ नहीं जाएँगी? जहाँ कहीं किसान बकाश्त की लड़ाई में दबे हैं वहाँ उनके कष्ट जरूर बढ़ गए हैं, ऐसा कहा जाता है। ठीक है लड़ाई में हार-जीत दोनों ही का मौका रहता है। मगर किसान की लड़ाई में यही तो खूबी है कि जब वह जीतता है तब तो जीतता ही है। मगर जब हारता है तब भी जीतता है! अतः आइए जरा उस लड़ाई और हार-जीत का विश्लेषण करें। तभी असलियत का पता लगेगा और मालूम हो जाएगा कि किसान के दोनों हाथ में लड्डू हैं या नहीं।

जमींदारों की हालत यह रही है कि उन्होंने आतंक राज्य फैला रखा था, जो अभी कहीं-कहीं है। जैसा कि बताया गया है, उसके बिना उनका काम चल ही नहीं सकता। उनकी जमींदारी ही बिना इसके टिक नहीं सकती। इसीलिए कानून-वानून को ताक पर रख के वह लोग खुलकर खेलते रहे हैं। इसमें सरकार का भी फायदा है। इतने बड़े मुल्क के चालीस करोड़ लोगों पर मुट्ठी-भर अंग्रेजों का शासन असम्भव हो जाए, यदि जनता में हिम्मत और मर्दानगी रहे, यदि वह सिर उठा के चलनेवाली हो जाए। इसीलिए जमींदारों के द्वारा उसे दबा रखना और पस्त बना देना जरूरी था। यही कारण है कि सरकार की लाड़ली और सर्वशक्तिमती पुलिस की आँखों के सामने ही और अधिकांश में उसके प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष अनुमोदन से ही यह होली

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जमींदार बराबर खेलते रहे हैं। जहाँ मामूली सी राजनीतिक बातों का पता लगाने में पुलिस हैरान रहती है, तहाँ उसे ही इस धाँधली का पता न हो, यह कौन मानेगा? इसलिए यह आतंक राज्य सरकार और जमींदारी प्रथा का—दोनों का ही मूलाधार है। जमींदार किसानों से लड़कर कथमपि पार नहीं पा सकते। इससे तो उलटे उनकी जमींदारी ही बिक जाएगी।

अब जब किसान बकाश्त के संघर्ष में या किसी इसी प्रकार की लड़ाई में पड़े तो इसका सीधा अर्थ है कि वह आतंक राज्य खत्म हो गया—जमींदारों का वह रोबदाब जाता रहा! जिसके करते उनके इशारे पर ही किसान नाचते तथा हाथ जोड़ के सभी बेगार वगैरह करते थे। अमले की जरा सी आज्ञा हुई और सभी चीजें हाजिर हैं, काम पूरा है। जब तक यह रोब मिट्टी में न मिल जाए, किसान लड़ाई के लिए तैयार क्या खाक होगा? जो पाँव तले था वही जब भिड़ता है तो रोब कहाँ रहा? फलतः इस लड़ाई की तैयारी में ही सबसे असली चीज, जो जमींदार के लिए जरूरी थी, गायब हो गई। यह तो मानी हुई बात है कि जब तक एक बार किसान भिड़ नहीं जाता तभी तक यह गैरकानूनी और शैतानियतवाली बातें चलती रहती हैं। भिड़ने पर तो खामख्वाह वह लापता हो ही जाती हैं फिर तो जमींदार की हिम्मत ही नहीं होती कि पुनरपि नाम लें, चाहे वह हारे या जीते।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस संघर्ष के फलस्वरूप जमींदारी की नींव ही गायब हो जाती है, जो पुनः बन नहीं सकती। अब तो हालत यह हो जाती है कि जमींदार एकमात्र दमन से और रुपया खर्च करके ही अपना वही काम निकालने को मजबूर होता है जो रोब से इशारे पर ही होता था! इस प्रकार चाहे किसान को जमीन मिले या न मिले और उसके दूसरे हकों की प्राप्ति हो या न हो। लेकिन यह चीज—यह बला—तो खत्म हुई। इसीलिए कहते हैं कि वह हार के भी जीतता है।

दमन की भी जो बात कही जाती है, हम देखते हैं कि वह जमींदार और सत्ताधारियों के बल और उनकी शक्ति की निशानी नहीं हो के उनकी कमजोरी की ही पहचान है। कहते भी हैं कि दमन दुर्बलता का सूचक है, न कि शक्ति का। इच्छापूर्वक साथ देने और आज्ञा मानने से ही जनसमूह पर किसी का भी अधिकार, या शासन चल सकता है। व्यक्तियों को चाहे आप जैसे भी रख सकते हैं और उनसे अपना काम निकाल सकते हैं। उन्हें कुछ दे दिला देना या दबा देना आसान है। मगर जनसमूह को कुछ देना दिलाना या दबाना नामुमकिन है। किसे-किसे दीजिएगा? किसे-किसे दबाइएगा? एक-दो या दस-बीस हों तब न। यहाँ तो असंख्य हैं। इसलिए जब एक बार उन्होंने सर उठा लिया, तो फिर जल्द या देर से वह आपके कब्जे से बाहर तो जरूर ही चले जाएँगे। रुपए खर्च के कब तक उनसे काम लीजिएगा, या उन्हें दबाइएगा? रुपए भी तो उन्हीं से मिलते थे और अब वही बागी हैं! फिर रुपए आएँगे कहाँ से! दूध देनेवाली गाय तो सनासन लात चलाने लगी! फिर दूध मिलेगा कहाँ से?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इसलिए दमन के जरिए या रुपए के बल से भले ही कुछ समय किसानों को दबा लें। मगर यह दबाव ज्यादा दिन चलने वलने का नहीं। हम अच्छी तरह जानते हैं कि जो जमींदार दमन पर उतारू हो गए हैं उन्हें यदि कभी सफलता मिली भी है तो वह बड़ी ही मँहगी साबित हुई है। या तो जमा किया हुआ ही रुपया खत्म हो गया है, या तमस्सुक लिख के और जमींदारी बेच के यह दमन चलाना पड़ा है! जमींदारी की रक्षा के लिए उसी की बिक्री! यह तो अच्छी रक्षा हुई! उधर किसानों को लड़ने की आदत हो गई है और वह ढीठ हो गए हैं! इस तरह यह एक दूसरी ही आफत जमींदार के लिए खड़ी हो गई है!

लड़ाई के तीन ही नतीजे हो सकते हैं फिर चाहे वे तत्काल में हों या आगे चलकर ही सही। या तो किसान लाठी, गोली खा के जख्मी हों और मर जाएँ, या जेल जाएँ। और अगर इन दोनों के करते पीछे पाँव न दें तो विजयी हों, इस प्रकार जमीन के मालिक बन के मौज करें। चौथी बात तो हो सकती नहीं। विजयी होने में तो ठीक ही है। तब तो कुछ कहना ही नहीं। रह गईं दो बातें। यदि जेल गए तो कही चुके हैं कि घर की अपेक्षा वहाँ सभी तरह से आराम है। शान है सो अलग ही, सत्याग्रही या हक के लिए लड़नेवाले किसान का सिर कितना ऊँचा होता है! इसलिए उसके बारे में भी कुछ कहना बेकार है। किसान को तो खुद-बखुद उस जेल का स्वागत करना होगा, यदि वह अपने संकटों का अन्त चाहता है।

यदि चोट लगी और वह या तो जख्मी हुआ या मारा गया, तो भी क्या बुरा है? आखिर मरना तो एक न एक दिन हई। लेकिन यदि 'समर मरनु पुनि सुरसरि तीरा। राम काजु छन भंगु सरीरा' का सौभाग्य हो तो सोने में सुगन्ध हुई। यों तो कीड़े-मकोड़े की तरह कहीं मरी जाते। कोई पूछने वाला भी नहीं होता। मगर अपनी लड़ाई में मरने पर बड़े-बड़े नेता याद करेंगे, फोटो बनाएँगे, समाधि बनाएँगे और उन पर मालाएँ चढ़ाएँगे, उनके सामने सिर झुकाएँगे! अब और क्या चाहिए? याद में गीत बनी, व्याख्यान हुए, लेख लिखे गए और पुस्तकें तैयार हो गईं! कल जो कल्लू चमार, बुद्ध मियां, चमरू सिंह, या देवी पाण्डे कहे जाते थे आज वही देवता से भी बढ़ गए! आखिर मनुष्य तो सम्मान ही चाहते हैं न? इज्जत ही चाहते हैं न? और इससे ज्यादा इज्जत क्या होगी? यदि जख्मी हुए तो सभी लोग दवा-दारू और आराम की फिक्र करेंगे—नेता लोग ही चिन्ता करेंगे! राह चलते ठोकरें लगती हैं, झगड़े होते हैं। मगर कौन पूछता है? यहाँ तो सभी पूछते हैं। फिर अधिक क्या चाहिए?

एक बात और। इस मौत के डर ने ही किसानों को पस्त और जमींदारों को हिम्मतवर बना दिया है। इसीलिए बराबर धमकियाँ चलती हैं। यदि कुछ ही किसान मरने के लिए तैयार हो जाएँ, तो सतानेवाले ठंडे ही पड़ जाएँ और दुःख ही दूर हो जाएँ। आखिर देश में 30 करोड़ से ज्यादा ही किसान हैं! यदि हजार या लाख लोग

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मर ही जाएँ, तो कम थोड़े ही हो जाएँगे? इसी से कहते हैं कि 'यदि जीना है तो मरना सीखो।'

(6)
भाग्य और भगवान पर न भूलें

किसानों के लिए और जनसाधारण के लिए भी अपने हकों के वास्ते सीधी लड़ाई लड़ने में सबसे बड़ी बाधा है भाग्य की और भगवान की! वंशपरम्परा से उन्हें यह सिखाया गया है, यह बात उनकी रगों में प्रविष्ट है कि कर्म, तकदीर, भाग्य और पूर्वजन्म की कमाई जैसी होगी उसी के अनुसार सुख-दुःख मिलेगा, चाहे हजार कोशिश की जाए! वह मानते हैं कि यदि भगवान की मर्जी तथा कृपा होगी, तभी हमारे संकट टलेंगे। हमारे प्रयत्नों से कुछ होने जाने का नहीं। यह भाग्य और भगवान की फिलासफी और कबीर कथनी ने उन्हें इस कदर अकर्मण्य बना दिया है कि सारी दलीलें और सब समझाना-बुझाना बेकार है। इस तरह शासकों और शोषकों ने—धनियों और अधिकारियों ने एक ऐसा जादू उन पर चलाया है कि कुछ पूछिए मत। वे लोग मौज करते, हलवा पूड़ी उड़ाते हैं। मोटरों पर चलते और महल सजाते हैं। हालाँकि खुद कमाते-धमाते कुछ भी नहीं! खूबी तो यह है कि यह सब भगवान की ही मर्जी है! वह ऐसा भगवान है जो हाथ पर हाथ धरे कोढ़ियों की तरह बैठनेवाले मुफ्तखोरों को माल चखाता है! मगर दिन-रात कमाते-कमाते पस्त किसानों तथा मजदूरों को भूखों मारता है!

पता नहीं, वह सबों का भगवान है, या कि केवल अमीरों का ही! यदि सबों का होता, तो यह अन्याय और पक्षपात क्यों करता! यह अन्धेर क्यों पसन्द करता? या कि, वह भी किसानों की ही तरह डरपोक है? जमींदारों और सत्ताधारियों की लाठियों एवं गोलियों से डरता है? अगर डरता नहीं, तो क्या उनने उसे घूस खिलाया है, जिससे उनका पक्षपाती बन गया? कहते हैं, वह पक्षपात रहित और न्यायशील है। तो क्या यही पक्षपात शून्यता तथा न्यायशीलता है कि कमानेवाले घुल-घुल कर मरें और निठल्ले खा-खा के अकड़ें? और अगर यह बात है नहीं, तो फिर बेचारे भगवान और भाग्य के मत्थे यह बला क्यों मढ़ी जाती है, जब कि हम अपनी ही अकर्मण्यता और नादानी से कष्ट भोगते हैं? उसे इन सब वाहियात बातों से क्या काम? उसे नाहक क्यों इस कीचड़ में घसीटा जाता है?

एक बात और भी। अगर भाग्य या भगवान ही सब बुरे-भले के लिए जवाब देह हैं और उनके खिलाफ तो कुछ हो ही नहीं सकता, तो फिर मनुष्य पापी और धर्मात्मा क्यों माना जाता है? तब ऐसा क्यों कहते हैं कि अपने कर्मों का फल भोगना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पड़ता है—'जो जस करै सो तस फल चाखा।' आदमी का तो कोई वश नहीं है। वह तो भाग्य के या भगवान के अधीन है। इसलिए आदमी को दोषी या पुण्यात्मा न मान के भगवान के ही माथे सबकुछ मढ़ा जाना चाहिए। दण्ड आदि भी उसे ही मिलना चाहिए। या नहीं तो प्रारब्ध को—तकदीर को। यह तो अच्छी बात हुई। जब कोई चोरी, डकैती या हत्या करे तो पुलिस उसे क्यों पकड़ेगी? उसका तो कोई दोष नहीं है? वह तो मशीन की तरह भगवान और भाग्य के हाथ में है और वह जो चाहते हैं वही करता है। जब मशीन को कोई अपराधी नहीं बनाता है। किन्तु उसके चलानेवाले को ही। तलवार या लाठी से किसी को मारिए तो धर पकड़ और सजा आपकी होगी न कि लाठी या तलवार की। इंजिन से कोई आदमी कट जाए या मोटर के नीचे दब जाए, तो ड्राइवर को सजा होती है, न कि इंजिन और मोटर को। उसी तरह यहाँ भी होना चाहिए।

मगर क्या यह दलील और भगवानवाद तथा भाग्यवाद पुलिस सुनती है? तो क्या वह भगवान या भाग्य से जबर्दस्त है? यदि नहीं, तो इस भगवान और भाग्य की मर्जी का मतलब क्या है? इस प्रकार समझदार और चैतन्यता युक्त—विवेकी—मनुष्य को बेजान मशीन बना डालने का मतलब क्या है? इसमें अक्ल की गुंजाइश भी कहाँ है? आखिर मशीन और आदमी में कुछ फर्क तो होना ही चाहिए। लेकिन यह तो तभी हो सकता है कि जब इनसान बुरे-भले कामों के करने और उनके फलों को भोगने में स्वतन्त्र हो, आजाद हो। उसके ऊपर कोई न हो जो रोक-टोक करे।

जरा और भी देखिए। भाग्य में होगा वही होगा, भगवान करेगा वही होगा, यदि यही बात सही हो तो अपने घर या खलिहान में आग लगने पर बुझाने की कोशिश क्यों करते हैं? भगवान या प्रारब्ध का जरा भी खयाल न करके फौरन पानी लाने की कोशिश क्यों करते हैं? जरा सा रुक भी तो जाते और सोचते भी तो कि आखिर भगवान की क्या मर्जी है! मगर ऐसा तो करते नहीं। प्रत्युत जो ऐसा करे वह गाली सुनता है। चारों ओर से उसे लोग छिः-छिः करते हैं। कहने लगते हैं कि कैसा नालायक है कि आग लगी है और भगवान को सोच रहा है! इतनी ही नहीं। जो लोग उस समय भगवान के ध्यान और पूजा पाठ में मग्न हो, फलतः उसे छोड़छोड़ के आग बुझाने के लिए दौड़ न पड़ें, उन्हें भी फटकार सुननी ही पड़ती है। लोग यहाँ तक कह डालते हैं कि क्या तुम्हारे भगवान को ही खाएँ-पिएँगे और ओढ़ें-पहनेंगे कि उन्हीं में लपटे हो और आग बुझाते नहीं? क्या, भगवान ही खिला-पिला देंगे? बड़े पुजारी बने हो, तो क्या तुम्हारी पूजा ले के हम चाटेंगे यदि सब जल ही गया?

और अगर किसी का लड़का या भाई बीमार हो और बीमारी भी ऐसी सख्त हो कि तड़ाक-फड़ाक में खत्म कर दे तो वह क्या करेगा? उसे क्या करना चाहिए? कर्म और भगवान के भरोसे बैठ रहे क्या? डॉक्टर, वैद्य, हकीम और ओझा सोखा तक के यहाँ क्या उसका दौड़ना रुक जाएगा, सिर्फ इसीलिए कि भगवान जो करेंगे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सो ही होगा, यदि उनकी कृपा होगी तो अच्छा होई जाएगा? यदि ऐसा करेगा और करम को ठोंक के बैठ जाएगा तो क्या घर में ही स्त्रियों तथा और लोगों से लड़ाई नहीं होगी ? क्या उस पर यह इल्जाम नहीं लगेगा कि यह लड़के भाई को मार डालना चाहता है? पास पड़ोस के लोग भी क्या कहेंगे? वे उसे नालायक और पगाल की पदवी न देंगे क्या? वे उसे पिशाच और राक्षस न कहेंगे क्या? इतना ही नहीं। मान लीजिए कि उसने हठ करके दवा वगैरह कुछ न की और भगवान के भरोसे ही बैठा रहा। यह भी कल्पना कीजिए कि लड़का मर गया। तब क्या होगा? क्या उसका दिल खुद मसोसेगा नहीं कि, हाय रे, बड़ी भूल की, यदि दवा करते तो शायद अच्छा हो जाता? क्या वह जिन्दगी भर रो-रो के मरेगा नहीं, इस एक भूल के ही करते? तो फ़िर भगवान और भाग्य के पंवारे से क्या मतलब?

किसान खेती करता है, पशु पालता है, घर-द्वार बनाता है, चोर चाइयों से उसकी हिफाजत करता है, जमीदार वगैरह का पावना समय पर चुकाता है, कोई आफत आई तो उससे बचने का उपाय करता है, कोई केस हुआ तो तारीख पर हाजिर होकर कचहरी में उसकी पैरवी करता है, विवाह-शादी की कोशिश और तैयारी करता है, मौका पाकर दुश्मनों से बदला भी लेता है, तीर्थ-व्रत और पूजापाठ भी करता है। इस प्रकार सारा कारबार परिश्रमपूर्वक सँभालता है। अब वही किसान भगवान और भाग्य के भरोसे क्या करे? क्या हाथ पर हाथ धरके बैठा रहे? तब क्या खेती होगी और फसल पैदा होगी? क्या चोर चाइयों से वह बचेगी? क्या लगान आदि बाकी पड़ने पर नालिश, डिग्री और नीलामी रुक जाएगी? तारीख पर न जाने और पैरवी न करने पर क्या विरोधी की एकतरफा डिग्री न हो जाएगी? आफतें क्या खुद-बखुद भाग जाएँगी? क्या भगवान हल जोतेगा? और काम सँभालेगा? क्या वही पैरवी करेगा? नहीं तो पागलों की तरह भाग्यवादी बनने के आखिर क्या मानी हैं?

यदि कुछ नादान इतने पर भी कह बैठें, जैसा कि प्रायः सुनने का मौका लगा है, कि अगर भगवान पर विश्वास हो तो जरूर सबकुछ हो ही जाएगा, तो उससे साफ पूछना है कि यह 'अगर' और 'मगर' क्या है? विश्वास करते क्यों नहीं, जब उसी की कथनी कथते हो? और अगर विश्वास ही नहीं है यही बात मानते हो और यह भी समझते हो कि आमतौर से सब कोई ऐसा नहीं कर सकते, ऐसे पक्के विश्वासी तो लाखों में शायद ही कोई होते हैं। तब तो बात ही खत्म हो गई। जब जनसाधारण ऐसा विश्वास नहीं ही करते, तो उनका काम तो भगवान या भाग्य से नहीं ही निकलता है और उन्हें सभी उपाय करने ही पड़ते हैं। ऐसी दशा में जमींदारों और शोषकों के अत्याचारों से पिण्ड छुड़ाने के लिए भी वे लोग क्यों न लड़ें और वहाँ भाग्य का पचड़ा तथा भगवान का चरखा क्यों चलाएँ? यदि यह नादानी नहीं तो और क्या है? इस 'आधा तीतर, आधी बटेर' से काम नहीं चलेगा। अपने दिमाग को ठीक करना होगा। ठीक-ठीक समझना-बूझना होगा। इसीलिए तो तुलसीदास ने स्पष्ट ही

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कह दिया है कि 'कादर मन कहुँ एक अधारा। दैव दैव आलसी पुकारा।'

जो लोग विश्वास की बात करते हैं वह भी गलती करते हैं। वह तो साफ झलका देते हैं कि वे व्यावहारिक आदमी नहीं हैं। वह इस दुनिया की बातें नहीं करते। शायद और ही किसी दुनिया की करते हैं। क्योंकि यदि पानी पर विश्वास करें कि वह आग हो जाएगा तो यह भारी भूल होगी। विश्वास से ही वह आग का काम नहीं देगा यह याद रहे। आग का तो अलग प्रबन्ध करना ही होगा। भूखे हों और लाख विश्वास करें कि खाया है, तो भी पेट नहीं भर जाएगा। चोरी हो रही हो और विश्वास करें कि कुछ नहीं हो रहा है, तो चोरी छोड़ के चोर कहीं भाग नहीं जाएँगे। जिस चीज का जो स्वभाव है, जो काम है, खामख्वाही वह काम वह चीज करेगी ही, चाहे आप विश्वास करें या न करें। आप अगर आग पर कपड़ा रख के विश्वास करें या न करें तो भी वह कपड़े को जलाई देगी। भगवान और भाग्य भी यदि सबकुछ करनेवाले हों तो फिर विश्वास का सवाल ही कहाँ रह जाता है। वह तो हर हालत में सबकुछ करी देंगे। चाहे आप विश्वास कीजिए या मत कीजिए।

विश्वास कोई कीमिया नहीं है कि चीज को, उसके स्वभाव को बदल देगा, जैसे लोहे को सोना बना देते हैं कीमिया के ही बल से। और अगर उसे आप कीमिया मानते हैं, तो यह समझ में आने की और सांसारिक आदमियों के काम की चीज नहीं है, यह तो मान ही लीजिएगा। वह तो किसी निराली दुनिया की लासानी चीज होगी, जहाँ निराले लोग ही ऐसा ही करते होंगे। हमें तो इस संसार में रोज-रोज का काम चलाना है और यह काम उस विश्वास से चलने का नहीं यह पक्की बात है। आखिर जिन बड़े-बड़े भक्तों, ऋषि-मुनियों, औलिया लोगों और पहुँचे हुए पुरुषों की बातें सुनते आते हैं वह भी तो अपना काम खुद करते थे, नहाते-धोते थे, खाते-पीते थे। उनके सभी काम भगवान तो करते न थे। भगवान उनकी ओर से भोजन करें और पाखाना-पेशाब भी उनके बदले में भगवान ही करें यह तो कभी सुनने में नहीं आया है!

यह भी तो सोचिए कि संसार के सभी काम यदि भगवान ही करेंगे तो बाकी लोग क्या करें? फिर बाकियों के पैदा होने की जरूरत ही क्या थी? कहते हैं कि भगवान ने ही सबको बनाया है। मगर जब आदमी किसी चीज को बनाता, या किसी को पैदा करता है तो किसी मतलब से, किसी फायदे के लिए। जब उन चीजों से वह काम नहीं सधता तो पछताता है कि नाहक ही इसे बनाया। जब लड़का नालायक हो जाता और अपने काम का नहीं रहता, तो उसे गाली देते हैं कि क्यों पैदा हुआ—'गर्भ न गए वृथा तुम जाए।' और भगवान को तो सर्वज्ञ बताते हैं। कहते हैं कि वह तो बुद्धि का भण्डार है। फिर उसने हम सबों को बेकार ही क्यों पैदा किया? जब हम उसके किसी काम के ही नहीं हैं तो हमारी जरूरत ही क्या वह सनकी है कि यों ही पैदा करता रहता है?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और अगर सब काम वही करेगा तो मर नहीं जाएगा? उसे तो साँस लेने की भी फुर्सत नहीं रहेगी। तो क्या यह सम्भव है? यह बात तो समझ में आ सकती थी कि स्वर्ग, बैकुण्ठ, नर्क आदि नाम की कोई जगहें हैं जहाँ लोग जाते हैं और भगवान उनका प्रबन्ध करता है, उनकी देख-रेख करता है। पापियों को नर्क में भेजता है और धर्मात्माओं को, भक्तों को स्वर्ग या बैकुण्ठ भेजता है, मुक्ति देता है। यदि उसका इतना ही काम हो, तो भी बहुत बड़ा है। उसे तो इसी से फुर्सत मिलना कठिन है। क्योंकि संसार में लोग बहुत हैं और रोज ही यह झमेला जारी रहता होगा। यदि भगवान के जिम्मे यह काम रहे तो हमें कोई एतराज भी नहीं। स्वर्ग या नर्क वाले अपने भगवान से निपट लेंगे। इसमें हमें नाहक क्या पड़ी है?

मगर रोटी और भात के मामले में उसे जब जबर्दस्ती घुसेड़ा जाता है तभी हमें घबराहट होती है। अदृश्य भगवान अदृश्य स्वर्गादि का प्रबन्ध करें। मगर रोटी, भात वगैरह तो इस दृश्य और भौतिक दुनिया की स्थूल चीजें हैं। इनके मिलने और न मिलने के रास्ते भी ऐसे ही हैं, जो सभी को मालूम हैं। फिर इनके सम्बन्ध में भगवान को दखल देने की क्या जरूरत है? अगर हम एक दिन भी देख लें कि भगवान अपने हाथों आटा पीस के, चावल कूट के भोजन बनाते और सभी किसानों को खिलाते हैं; यह गेहूँ और धान भी उनकी ही लक्ष्मी जी के खजाने से (भण्डार से) आता है; यदि हमें यह भी अनुभव हो जाए कि हमारे बैल-गायों की खबर एक दिन भी वह लेते हैं और उन्हें खिलाते-पिलाते हैं, हमारा हल भी कभी-कभी वही जोतते हैं, तभी यह विश्वास किया जा सकता है कि भगवान सबकुछ करते हैं, कर सकते हैं। जब तक अपनी आँखों किसान सभी बातें भगवान के द्वारा या भाग्य के बल से होती न देख लें तब तक उन बातों में पड़ना महज नादानी और बेवकूफी है। पहले दर्जे का धोखा है।

साधू, फकीर, पण्डित, मौलवी वगैरह आते हैं, सीधे-सादे किसानों के कान फूँकते हैं और उन्हें चेला बनाते हैं किसानों को विश्वास रहता है कि ये लोग बड़े ही सधे और उनके शुभेच्छु हैं। जब वह देखते हैं कि वे लोग आँखें मूँदकर भगवान का ध्यान करते हैं, तो खामख्वाह किसान समझने लगते हैं कि ये लोग तो साक्षात् भगवान से ही प्रतिदिन मिला करते और बातें करते हैं! इसीलिए उन्हें यकीन हो जाता है कि जो बातें वे लोग करते हैं वह भगवान के ही हुक्म से और उसकी ही राय से करते हैं! यही कारण है कि किसानों को पद-पद पर धोखा होता है और धक्के लगते हैं। वह सच्चे दिल से उन लोगों को खूब खिलाते-पिलाते हैं, उनकी भरपूर सेवा करते हैं। यदि पास में घी, दूध, गेहूँ, चीनी न भी हो तो कहीं से या तो माँग लाते, उधार लाते या कर्ज ही लाते हैं और जैसे-तैसे उन्हें सन्तुष्ट करने में अपना अहोभाग्य समझते हैं।

जब खा-पी के वे सन्तुष्ट होते और आराम करने लगते हैं तो बड़ी ही नम्रता और श्रद्धा से हाथ जोड़ के किसान उनसे पूछते हैं कि महाराज, हम अत्यन्त गरीब

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हैं, कमाते-कमाते मर गए। मगर न तो सुन्दर वस्त्र ही मिला कि पहनें और न सुन्दर भोजन ही मिला कि खाएँ। क्या बात है? क्यों ऐसा होता है? कृपया बताइए कि हमारे ये कष्ट दूर होंगे या नहीं और अगर होंगे भी तो कब और कैसे? वह तो इस प्रकार विश्वासपूर्वक अपने कष्टों के अन्त होने का रास्ता जानना चाहते हैं। वह उन लोगों को कुशल वैद्य समझ के अपने विकट मर्ज की दवा पूछते हैं। वह निठल्ले जमींदारों के भोग-विलास पर आश्चर्य भी करते हैं कि ऐसा क्यों होता है? हम तो कमाते-कमाते मर गए, पस्त हो गए। फिर भी नंगे-भूखे ही हैं। मगर ये बैठे-ठाले जमींदार और मालदार तो बराबर माल ही काटते हैं! यह कैसा अन्धेर है!

अब जरा उत्तर सुनिए और देखिए कि ये चतुर वैद्य और डॉक्टर उन्हें क्या रास्ता सुझाते और कौन सी दवा बताते हैं! वह कहते हैं, बच्चा सन्तोष करो, घबराओ मत, परमात्मा अच्छा करेंगे। क्या करोगे, परमात्मा की मर्जी ही जो ऐसी ठहरी। न जाने क्यों तुम्हारे ऊपर वह रंज है। तुम्हारे पूर्वजन्म की कमाई ही ऐसी है। तुम्हारा भाग्य ही ऐसा है। तुम्हारी तकदीर ही फूटी है। कर्म विपाक में हमने देखा है। तुम्हारे बारे में कष्ट ही कष्ट लिखा है। तुम्हारे ललाट की रेखा ही कुछ ऐसी है। कुछ भी करो। मगर उसे कौन बदलेगा? 'रेख में मेख' कौन मार सकता है? तकदीर को कौन काट सकता है? भगवान की मर्जी को कौन मिटाने वाला है? इसलिए सन्तोष करना चाहिए। क्योंकि 'सन्तोषः परमं सुखम्'। अच्छा कर्म और दानपुण्य करो कि आगे चल के तो आराम मिले, अगले जन्म में तो सुखी बनो, पूर्वजन्म में न जाने क्या कर डाला था कि इस जन्म में दुखिया बने हो। अब भी तो सँभलो और आगे के लिए तो सजग हो जाओ ताकि सुखी बन सको। एक बार चूके तो चूके। खबरदार, इस बार मत चूको। अगले जन्म की खबर लो। उसी की तैयारी करो!

अमीरों के बारे में तो वह लोग कहते हैं कि उन पर तो भगवान खुश हैं! उसकी मर्जी से ही वे लोग मजा करते हैं! उनकी पूर्वजन्म की कमाई ही ऐसी है जिससे सुख भोग रहे हैं। आज भी दान पुण्य और पूजा पाठ खूब ही करते हैं। इसलिए आगे के लिए भी उनका ठीक ही है। न तो पहले चूके और न इस बार चूकते हैं। उनके भाग्य का भी क्या कहना? वह तो चन्दन से लिखा है। तुम लोगों की तरह कोयले से थोड़े ही लिखा है। उनके कपाल में जो कुछ लिखा है उससे वे सुखी ही रहेंगे, चाहे कोई हजार कोशिश करे और उन्हें गिराना चाहे, दुःखी बनाना चाहे। उनका कोई कुछ भी बिगाड़ नहीं सकता। जो लोग जमींदारों और राजे-महाराजों के विपरीत तथा साहू महाजनों के खिलाफ बोलते और आन्दोलन करते हैं उनके बहकाने में कभी नहीं पड़ना चाहिए। वे तो नास्तिक और शास्त्र-पुराण के न मानने वाले हैं। भला भगवान और भाग्य की बात को कोई मिटा सकता है? जो उनकी बात में पड़े वह चौपट हुए। खबरदार!

ऊपर लिखा संक्षिप्त वर्णन उनकी बातों का दिग्दर्शन कराता है। इससे कोई

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भी समझदार, जिस पर कोई जादू न हो और जिसकी बुद्धि ठिकाने हो, इस बात को आसानी से समझ सकता है कि ऐसे साधु, फकीर, पण्डित, गुरु लोग तो सिर्फ जमींदारों और धनियों के पक्के वकील और दलाल ही हैं! देखिए तो, गरीब ने बड़े परिश्रम से उन्हें माल चखाया, न जाने कौन-कौन कोशिश करके। और कायदा यह है कि कुत्ता भी जिसका टुकड़ा खाता है उसकी ओर से भूँकता है। मगर ये ऐसे काइयाँ, कृतघ्न और ठग हैं, पक्के दलाल हैं और छँटे बेहया-बेदर्द हैं कि गरीब किसान का ही खा के और उसी की सेवा-शुश्रूषा से मजा उड़ा के भी जमींदारों और धनियों की ही वकालत करते हैं। उन्हीं का रास्ता साफ करते हैं। किसानों को ऐसी शिक्षा देते हैं कि जन्म-जन्मान्तर में भी उन्हीं के गुलाम बने रहें और उनके विरुद्ध चूँ भी न करें। वह कष्टों एवं अत्याचारों के खिलाफ कोई आवाज तक उठा न सकें, आवाज उठाने वालों की बात भी सुन न सकें इसकी पूरी बन्दिश और पूरा षड्यन्त्र करते हैं! तो भला जब वे लोग साहूकारों और जमींदारों का अन्न खाते होंगे, या उनके घर जाते होंगे, तब कैसा जहर किसानों के खिलाफ उगलते होंगे? तब कैसे-कैसे अनोखे उपाय गरीबों के विरुद्ध उन्हें सुझाते होंगे?

वकील भी जिसका पैसा खाता है उसी की वकालत करता है। यह दूसरी बात है कि पूरे दिल से करे या आधे मन से। मगर विरोधी के पक्ष में तो एक अक्षर भी नहीं बोल सकता। नहीं तो उसकी वकालत ही चली जाए। मगर ये धर्म और भगवान के ठेकेदार ऐसे निर्लज्ज हैं, अपने को इन्होंने इतना ज्यादा मजबूत कर लिया है कि किसानों के ही रक्त को पीते हैं, उन्हीं के घर बैठते हैं। मगर उनके शत्रुओं की ही तारीफ करते हैं, उनकी ही वकालत करते हैं फिर भी निर्भय विचरते हैं। ये तो समझते हैं कि उन्हें कोई इस जगत से हटा ही नहीं सकता!

खूबी तो यह है कि मौलवी, पण्डित और पादरी बात-बात में रोज लड़ते हैं और धर्म के नाम पर आपस में ही खून की नदी बहाते हैं। मगर इस तकदीर, भगवान और कर्म के मामले में सभी एक राय; जरा भी फर्क नहीं! जरा भी मतभेद नहीं! अपने भक्तों और चेलों को जो बातें पण्डित और साधु बताते हैं। ठीक वही बातें मौलवी, फकीर तथा पादरी भी कहते हैं! हूबहू मेल खा जाता है।

इसका सीधा मतलब यह है कि धर्म के मामले में उन लोगों के आचार्य, और पैगम्बर और मसीहा भले ही जुदे-जुदे हों, मगर तकदीर और भगवान की मर्जी वाले मामले में सबों के गुरु, उनके आचार्य, उनके पैगम्बर और उनके मसीहा कोई एक ही प्रकार के हैं और दूसरे ही हैं, जिनने सभी को एक ही पाठ पढ़ाया है।

वह कौन हैं यह तो अब साफ ही है। जिनकी वकालत हर हालत में लोग करते रहते हैं, यहाँ तक 'जागत सोवत शरण तुम्हारी' के अनुसार सोने के समय भी वही बातें बकते हैं और वही स्वप्न देखते हैं, उन जमींदारों और अमीरों, उन सत्ताधारियों और प्रभुओं, उन शासकों और शोषकों—उन स्थिर स्वार्थवालों—के सिवाय

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उनके गुरु इस मामले में और कोई हो ही नहीं सकते! इसलिए यह ठीक ही कहा जाता है कि ये पण्डित और पुजारी, ये मौलवी और फकीर—ये धर्म के ठेकेदार—असल में अमीरों के दलाल हैं और रूप बदलकर कमाने वालों को किसानों और मजदूरों को ठगते रहते हैं! "नाना रूप धराःकौला विचरन्ति मही तले"! जैसे नादान बच्चों को गुड़ के साथ कड़वी दवा का घूँट पिलाया जाता है, कि वैसे ही धर्म के साथी यह जहर ये लोग किसानों और मजदूरों के गले के नीचे उतारते रहते हैं! अतः इनका जबर्दस्त बहिष्कार जरूरी है!

यह तो मोटी बात है कि वकील वही किया जाता है जो अपनी ओर से बहस करे और खूब लड़े। जिसके बारे में जरा भी शक हो कि कमजोर है, ठीक बहस नहीं करता या विरोधी से मिला हुआ है उसके तो पास भी कोई नहीं जाता। अगर वैद्य और डॉक्टर बड़े ही नामी गरामी हों, तो भी जब तक मर्ज को मिटाते नहीं और आराम नहीं करते, उनके पास कोई होशियार आदमी नहीं जाता। वे बदनाम हो जाते हैं। लोग कहने लगते हैं कि पढ़े-लिखे तो अच्छे हैं। अनुभवी भी खूब हैं। मगर उनके हाथ में यश नहीं है इसी से उनकी दवा से मरीज अच्छे नहीं होते। जब अच्छे ही नहीं होते तो स्वर्ग पहुँचाने वाले थोड़े ही हैं कि उनके पास कोई उसी मतलब से जाए?

मगर जो वैद्य यहाँ तक कहने लगे कि यह मरीज तो इस जन्म में अच्छा हो ही नहीं सकता, उसके पास भला कौन नादान जाएगा? लोग तो इस जन्म में तो क्या, फौरन ही मरीज को निरोग करने के लिए ही डॉक्टर और वैद्य के पास जाते हैं। मगर जो फीस तो पूरी ले, फिर भी हरेक मरीज को यही कहता फिरे कि इस जन्म में इसका दुःख दूर न होगा, इसका मर्ज न मिटेगा, वह जहन्नुम में जाए। किसान की भी तो यही बात है। उसका मर्ज और उसकी बीमारी उसकी यह भयंकर दरिद्रता ही तो है। वह इसी से छुटकारा पाने के लिए वैद्य, हकीम और डॉक्टर समझ के गुरु, पण्डित, साधु, मौलवी के पास जाता है उसे खिलाता-पिलाता और पूरी फीस चुकाता है—अपना शरीर तक नाप देता है। मगर उनका जवाब क्या है? वह तो कहते हैं कि इस जन्म में तुम्हारी गरीबी मिट नहीं सकती और दुःख दूर हो नहीं सकता! वह यही एक जबाव सबों को देते हैं! फिर कौन ऐसा नादान किसान होगा जो उन्हें पूछेंगे भी? खैर, अब तक पूछा तो पूछा। मगर आगे के लिए सजग! 'अबलौं नसानी अब ना नसैहों।'

उनके इस छल-प्रपंच की परीक्षा तो आसानी से हो सकती है, साफ मालूम किया ज़ा सकता है कि आया वे ठगते हैं, या सच्ची बात कहते हैं। असल में गलती यही होती है कि भोला भाला किसान उन्हें पहले खूब हलवा-पूड़ी खिला-पिला के और आराम पहुँचा के पीछे यह प्रश्न करता है। इसीलिए असलियत का पता नहीं चलता और न वे ठीक-ठीक पहचाने जाते! लेकिन यदि आते ही सबसे पहले उनसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यही प्रश्न करे, तो पहले तो वे रंज होंगे और कहेंगे कि न खिलाया और न पिलाया। पहले सवाल ही ठोंक दिया। लीजिए, अब देखिए न? खुद तो खा-पी के ही भगवान की बात कर सकते हैं, पहले हरगिज नहीं। मगर किसान को चाहते हैं कि वह भूखे मरके ही भगवान को याद करे! यदि उनमें सामर्थ्य ज्यादा है तो भूखे रह के भी क्यों नहीं भगवान की चर्चा करते और वही बातें कहते? इससे पता चला कि दाल में जरूर कुछ काला है। नहीं तो 'खुदरा फजीहत दीगरे नसीहत'? आप बहे जाएँ और दूसरों को अक्ल सिखाएँ?

मगर अगर वे लोग सम्भल जाएँ और वही भाग्य और भगवान की बात कहने लगें, तो सबकुछ सुन लेने के बाद उनसे साफ कह देना चाहिए कि 'मम पुर बसि तपसिन्ह प्रीती। सठ मिल जाइ तिन्हहि कहु नीती' उन्हें साफ-साफ सुना देना चाहिए कि सदा तो हमारा ही खाते रहे हैं, आज भी खाने वाले हैं और आगे भी खाएँगे। मगर वकालत और पक्षपात करते हैं धनियों और जमींदारों की ओर से? यह क्या बात है? तो फिर उन्हीं के पास जाइए, खाइए-पीजिए और उन्हीं से पुजवाइए। यहाँ क्या कर्ज दिया था कि वसूलने चले हैं? या कि जमींदारी है कि लगान लेंगे? और अगर भगवान पर ही भरोसा करने की शिक्षा देते हैं, तो खुद भी वैसा ही क्यों नहीं करते? क्या हमारे भगवान जिन्दा हैं और आपके मर गए कि आपकी खबर न लेंगे? हमें यदि भगवान की आशा करनी है, तो आप हमारी आशा क्यों करते हैं? आपको तो और भी ज्यादा भगवान पर भरोसा करना चाहिए। आप लोग तो सामर्थ्य वाले हैं। बड़े भक्त हैं। फिर भी इधर क्या चले? यहाँ क्या ससुराल है, या ननिहाल? यदि हमारी तकदीर ही हमारी खबर लेगी, तो आपकी तकदीर कहीं बिक गई है, या बन्धक हो गई है कि उसे छोड़ के हमारे पास चले हैं? क्या हम भगवान और भाग्य से बड़े हैं कि उन्हें छोड़ हमारा सहारा लेने चले हैं? क्या आपके भगवान और भाग्य का दिवाला निकल गया? क्या 'पण्डित और मसालची, इनकी कही न जाए। अन्यहिं ज्योति दिखावहीं, आप अन्धेरे जाहि।' को ही चरितार्थ करने चले हैं?

इतना कह के हो सके तो उन्हें दो तमाचे भी लगा दें और कान पकड़ के घर या दरवाजे से बाहर कर दें। फिर देखिए न, क्या नतीजा होता है। वह लोग खामख्वाही किसी और किसान या गरीब का दरवाजा ढूँढ़ेंगे। मगर खबरदार वहाँ भी पहुँचते ही यही सवाल पेश हो जाए। यहाँ भी वही जवाब दे तो किसान वहाँ भी उन्हें ठीक उसी तरह फटकारे और निकाल बाहर करे, बेमुरव्वती के साथ। इसी प्रकार दो-चार या दस-बीस घर देखेंगे और सर्वत्र एक ही सलूक हो तो उनकी अक्ल ही दुरुस्त हो जाएगी। फिर तो खामख्वाह सोचेंगे कि जमाना बदल गया! अब इस ढोंग से काम चलनेवाला नहीं। नहीं तो सभी जगह से टिक्की ही उखड़ जाएगी। अब सजग हो जाना चाहिए आदि-आदि। उसके बाद यदि कभी फिर मौका आए और फिर उनसे कोई कमाने वाला गरीब वही सवाल करे, तो हरगिज पुराना उत्तर न देंगे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कि भाग्य के भरोसे रहो, भगवान की मर्जी है इत्यादि। क्योंकि इसमें उन्हें घाटा साफ ही दिखेगा। अब तो वे लोग उत्तर देंगे जो किसान को न सिर्फ रुचेगा, प्रत्युत ठीक और बुद्धि में समाने योग्य होगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि आसानी से ही उनकी परीक्षा हो जाती है और भंडाफोड़ हो जाता है। सीधा बनकर विश्वास के लेना भूल है। इसी से तो किसान ठगे जाते हैं।

यदि इतनी परीक्षा के बाद भी भाग्य और भगवान की बात चलानेवाले कोई निकलें, तो हम उन्हें माई के लाल ही समझें। वे तो साफ समझते हैं कि हमें तो पुजवाना है और माल चखना है। वही असल चीज है। भोला-भाला किसान नादानी से ही समझता है कि वे लोग आँख मूँद के भगवान से रोज-रोज बातें और सलाह-मशविरा करते हैं। वह तो असल में शैतान से ही सलाह करते हैं। इसीलिए तो कहते हैं कि माल मारना ही उनका असली ध्येय है। अब अगर मालदारों की दलाली भी कर सकें और किसानों से भी 'पूजा' करवाएँ, तो वह बेवकूफ थोड़े ही हैं कि ऐसा काम न करेंगे? लेकिन ज्यों ही उसने देखा कि मामला बेढंगा है, किसान की आँखें खुल गईं और भाग्य की बात चलाने या भगवान की मर्जी मनाने से हमारा माल हाथ न लगेगा, तो फिर चेत जाएँगे और ठीक बात बकने लगेंगे। फिर तो खुद-बखुद कहेंगे कि सभा करो, मीटिंग करो, यत्न करो। तभी सब कष्ट दूर होंगे! क्योंकि बिना यत्न के कुछ नहीं मिलता। सोये सिंह के मुँह में खुद-बखुद हिरण घुस नहीं जाते—'उद्यमेनहिसिद्ध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः। नहि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखेमृगाः'! देखिये, इन्कलाब हो गया न?

मनुस्मृति में एक स्थान पर गृहस्थ की प्रशंसा करते हुए मनु ने एक बड़े मार्के की बात कही है। वह अक्षरशः सत्य है। उन्होंने कहा है कि चारों आश्रमों में गृहस्थ बड़ा है, श्रेष्ठ है। शेष तीन उससे हीन और उसके अधीन हैं, कारण सबों को खाना-पीना तो वही देता है और समय-समय पर अक्ल भी देता ही है। अम्बरीष गृहस्थ ही था, जिसने दुर्वासा जैसे योगी और ऋषि को अक्ल सुझाई। हालाँकि पहले उन्हें अपनी अक्ल का बड़ा गर्व था। मनु का वचन यों है—'यस्मात्रयोऽप्याश्रमिणो ज्ञानेनान्नेन चान्वहम्। गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही।' मैं तो आज मनु के उस आदेश की चरितार्थता इसी बात में मानता हूँ कि पूर्वोक्त तरीके से इन धर्म के ठेकेदारों को रास्ता सुझाए यह किसान ही थे। पहले तो वह जरूरी सुझाता था भी। इसीलिए गड़बड़ी नहीं होती थी। मगर आज तो वह भूल गया और अपने को छोटा मानने लगा। इसीलिए वे लोग भी पथभ्रष्ट और स्वार्थी बन के उसे और संसार को ठगने लगे हैं! उनकी आँखों में इस प्रकार बेमुरव्वती और सख्ती के साथ अंजन लगाना किसान का पवित्रतम कर्तव्य है। उसे इसे पूरा करना ही होगा। सो भी शीघ्र ही।

जो साधु, गुरु, मौलवी और कथा बाँचने वाले हैं वह गरीबी की बड़ाई करते हैं और कहते फिरते हैं कि गरीबों को ही बैकुण्ठ और स्वर्ग मिलता है। भगवान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मिलते हैं, मुक्ति मिलती है। जो सन्तोष करता है उसे परलोक में परमानन्द मिलता है। सुई के छिद्र से ऊँट भले ही पार कर जाए। मगर अमीर लोग स्वर्ग में जा नहीं सकते! भगवान के पास उनके लिए स्थान ही नहीं है! सन्तोषी और गरीब दुखिया लोग जो यहाँ दुःख भोगते हैं उसका फल उन्हें मरने पर मिलेगा। उन्हें भगवान का साक्षात् दर्शन होगा आदि-आदि।

मगर किसानों और अन्य कमानेवालों को उनके माया जाल में हरगिज नहीं फँसना चाहिए। यह निरी और कोरी ठगी है। शासकों और शोषकों ने घूस देकर वंश परम्परा से उन्हें इस तरह कर रखा है कि भोले-भाले लोगों को भगवान की प्राप्ति, मुक्ति, बैकुण्ठ, स्वर्ग, कैलाश, गोलोक और बिहिश्त का प्रलोभन देकर इन सभी का सब्जबाग दिखा के उन्हें ठगें और उनमें असन्तोष की आग भड़कने न दें। नहीं तो क्रान्ति हो जाएगी। फिर तो सब शोषण खत्म ही हो जाएगा।

कहा जाता है कि धर्म का जन्म ही इसीलिए हुआ कि आत्मा की भूख मिटे। जिस प्रकार शरीर की भूख के लिए अन्नादि पैदा किए गए उसी प्रकार आत्मा की भूख के लिए धर्म की उत्पत्ति मानी जाती है। हम क्या हैं, यह संसार क्या है और इस संसार के साथ हमारा सम्बन्ध क्या है, इन्हीं तीन प्रश्नों से आत्मा की भूख का पता लगता है और इन्हीं के उत्तर देने की कोशिश में दर्शनों की रचना हुई। पीछे उन्हीं दार्शनिक बातों (ज्ञान) का व्यावहारिक और अमली रूप यह धर्म बताया जाता है। यदि ऐसा है तो इसमें किसका व्यर्थ का झगड़ा है? इस गहरी दुनिया में घुसने और डुबकी लगाने की किसे फुर्सत है, किसे जरूरत पड़ी है कि वह इस बात का विरोध करे।

मगर आज तो बात ही दूसरी है। आज तो जिस रूप में धर्म को पाते हैं वह ठीक उसके विपरीत है। इसे ही उसका विकृत रूप भले ही कहिए। मगर आज तो यही नजर आ रहा है। आज से हमारा मतलब है सहस्रों वर्षों से। जहाँ तक मनुष्य की जानकारी है धर्म को ऐसा ही पाते हैं। उसका काम अब केवल यही रह गया है कि उसके नाम से शोषकों की जड़ मजबूत की जाए, मुफ्तखोरों को खूब माल चखने को मिले और आत्मा की भूख को शान्त करने के बजाय किसानों और मजदूरों में बढ़ते हुए असन्तोष तथा क्रान्ति की भावना को खत्म कर दिया जाए! जब असन्तोष की आग बढ़ती है तो ज्वालामुखी फूटता है। इसी का नाम क्रान्ति है और उसे ही धर्म के ठेकेदार खत्म कर देते हैं। वह सन्तोष की ही शिक्षा बार-बार देते हैं और असन्तोष को बुरा बताते हैं। जब भीतर सुलगनेवाली आग रही ही नहीं तो फिर ज्वालामुखी का विस्फोट होगा कैसे? धर्म के इस अनुचित रूप, बीभत्स आकार और अनधिकार चेष्टा को मिटाना होगा, यदि वे लोग धर्म की खैरियत चाहते हैं। नहीं तो वह खुद ही मिट जाएगा! वह केवल अपना काम करे जो उसका बताया जाता है। वह रोटी के सवाल में नाहक ही क्यों टाँग अड़ाता है? आत्मा की भूख शान्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करने के बजाय यदि वह कमानेवाले गरीबों को भूखों मारने की कोशिश करता है, तो उसका मिटना जरूरी है। नहीं तो अब भी सँभल जाए। जब हम यही मानेंगे कि हमारे यत्नों से कुछ नहीं होता जाता। वह तो ईश्वरीय शक्ति और प्रारब्ध का ही खेल है, जिससे हमें सुख और दुःख होता है, तो फिर क्रान्ति के लिए अथक परिश्रम हम क्यों करेंगे? तब उसकी गुंजाइश भी कहाँ रह जाएगी?

हाँ, तो उन कथक्कड़ों और पण्डितों से, साधु-फकीरों से जरा यह साफ पूछना चाहिए कि हमने क्या परमात्मा का घर-बार लूट लिया है, जो हमारे ऊपर इतनी रंजिश है? हमने उनका क्या बिगाड़ किया है और धनियों ने क्या बनाया है, जिससे हम पर रंज और उन पर खुश है? क्या धनी उनके सगे-सम्बन्धी और नातेदार हैं और हम किसान मजदूर नहीं हैं? क्या किसानों ने उन्हें मारा-पीटा है? आखिर बात क्या है? किसान की ही कमाई से तो भगवान के मन्दिर बनते हैं, वे सजाए जाते हैं, उनमें पूजा-पाठ होता है तथा भोग लगता है। कहने के लिए भले ही अमीरों के मन्दिर हों। मगर उनमें जो एक-एक पैसा लगता है वह तो गरीबों की गाढ़ी कमाई ही का है। अमीर लोग तो खुद कमाते नहीं—कमा सकते भी नहीं। जब वे अपना ही पेट भर नहीं सकते और न मकान बना सकते तो भगवान के लिए क्या कर सकते हैं? यह तो 'आप मियाँ मँगनी, द्वारे दरवेश' वाली बात हुई।

और अगर सन्तोष तथा गरीबी से ही हमें भगवान मिलेंगे, बैकुण्ठ मिलेगा, मुक्ति मिलेगी, तो ये पण्डित भी गरीबी से ही गुजर क्यों नहीं करते, सन्तोष क्यों नहीं करते? क्या उन्हें स्वर्ग, बैकुण्ठ, मुक्ति और भगवान की जरूरत नहीं है? तो क्या केवल गरीबों को ही इन सब चीजों की जरूरत है? यदि ये सभी पदार्थ सुन्दर और वांछनीय हैं, तो पण्डित, मौलवी, साधु वगैरह तो सबसे पहले इन्हें चाहेंगे। लेकिन अगर ये अच्छी चीजें नहीं हैं तो फिर किसान ही इनके लिए क्यों मरें और इन्हें नाहक क्यों चाहें? क्या दुनिया में बेवकूफ यही लोग हैं? गरीबी, भूख, प्यास, बीमारी, अपमान, अत्याचार वगैरह तो इनके मत्थे पड़े ही हैं। अब फिर भी स्वर्ग और बैकुण्ठ भी इन्हीं के माथे? भला, एकाध चीजें भी तो पण्डितों, साधुओं और अमीरों के लिए रहें। सभी का ठेका क्या किसानों ने ही लिया है? यह 'सोल एजेन्सी' कैसी?

अगर यह कहा जाए कि स्वर्गादि की जरूरत पण्डितों, साधु-फकीरों और अमीरों को भी है, तो वे भी सन्तोष क्यों नहीं करते और गरीब क्यों नहीं बनते? क्या किसान को भगवान मिलेंगे चिथड़े पहनने और आधा पेट सत्तू खाने से, और अमीरों तथा पण्डितों वगैरह को हलवा-पूड़ी खाने एवं मखमली गद्दा लगाने से? क्या भगवान भी दोमानिया हैं—दो तरह के हैं? वे गरीबों के लिए दूसरे और अमीरों तथा उनके दलालों के लिए और ही हैं? क्या उनके पास पहुँचने के भी दो रास्ते हैं? अमीरों और उनके पुछल्लों के लिए एक खास और बाकी लोगों के लिए दूसरा? क्या वहाँ भी तरफदारी चलती है और मुँह देखी बात होती है? यदि नहीं तो इसका मतलब

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

क्या कि वे न तो सन्तोष ही करें और न गरीब रहें। फिर भी उन्हें भगवान और उनका बैकुण्ठ मिले। मगर किसान को सन्तोष तथा गरीबी से ही मिले? और अगर यही बात है, तब तो इस पक्षपाती भगवान और स्वर्ग, बैकुण्ठ से किसानों को कोई मतलब नहीं। वह तो इस संसार और यहाँ के लोगों से भी खराब होंगे। आखिर यह दुनिया बुरी इसीलिए है न, कि यहाँ तरफदारी और पक्षपात है? अगर वहाँ भी यही रहा, तो फिर फर्क क्या हुआ? और फिर इस 'नर्क में ठेलमठेला' से किसानों और मजदूरों का क्या सरोकार? साधु और पण्डित हलवा मलाई खाते और 'पूजा' के नाम पर रुपए वसूल करते हैं, घर-घर तुलसीदल घुमवा के जबर्दस्ती रुपए वसूलते हैं। फिर इन्हें शर्म क्यों नहीं आती कि किसानों को सन्तोष करने और भूखे रहने का उपदेश देते हैं! इनकी जबान गिर क्यों नहीं जाती—सड़ क्यों नहीं जाती? 'गिरि हैं रसना संशय नाहीं!'

एक सवाल और। सन्तोष और गरीबी का जो उपदेश ये लोग किसानों को देते हैं क्या वही अमीरों और राजे-महाराजों को भी देते हैं? क्या वही उपदेश उन्हें देने की हिम्मत भी ये लोग कर सकते हैं? यदि वहाँ इसका नाम भी लें तो कान पकड़ के वहाँ से फौरन निकाल दिए जाएँ और लात खा जाएँ—पिट जाएँ। भला, इनकी यह बेवकूफी की बातें कौन अमीर सुनेगा? वह तो घृणा के साथ हँस देगा। इसीलिए वहाँ तो दूसरा ही उपदेश चलता है और ठीक इसका उलटा। वहाँ तो दूसरी ही पोथी निकलती है, जिससे निराली तान और विचित्र ही स्वर निकलता है, ताकि अमीरों को पसन्द आए और वह खुश हो सकें। ये पण्डित और धर्म के दुकानदार लोग सभी ढंग के सौदे रखते हैं और ग्राहक एवं अवसर देखके उन्हें निकाला करते हैं जिससे अपनी दुकान चले और अपना काम बने। इनकी चाल दोमुँही है। आखिर दुकानदारी ही तो ठहरी!

कहते हैं कि एक बड़े भारी पण्डित जी के पास एक गृहस्थ गया। उसने हाथ जोड़ के पूछा के महाराज, हमने एक पाप किया है और उसी का प्रायश्चित्त करना चाहते हैं। आप रास्ता बताइए। हमारे एकमात्र लड़के ने भूल की और एक गधे को मार डाला। उसी पाप का निवारण—प्रायश्चित्त—बताइए। पण्डितजी ने एक लम्बी पोथी निकाली और बड़ी उधेड़बुन के बाद बोले कि यह तो पाप बहुत ही भारी है। इसमें तो हजारों रुपयों के बिना काम न चलेगा। मैंने बड़ी कोशिश की कि कोई आसान मार्ग निकले। मगर सब परिश्रम बेकार रहा। आपने देखा न, कि घण्टों से मैं पन्ने उलट-पुलट रहा हूँ? गृहस्थ ने हजार आरजू मिन्नत की और रोया-गाया—हजारों रुपए खर्चने में तो बिक ही जाऊँगा। कोई सुलभ निस्तार बताइए। मगर पण्डित जी टस से मस न हुए और ऊहूँ, ऊहूँ करते ही रहे। आखिरकार वह चलने को तैयार हुआ। चल पड़ा भी। करता भी क्या?

इतने में उसे एक बात याद आई और रास्ते से लौट के पण्डित जी महाराज

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

से बोला कि सरकार एक बात पूछना भूल ही गया था। असल में आपके प्रियपुत्र श्री सन्तोष शर्मा भी हमारे लड़के के साथ ही थे और गधे के मारने में दोनों का बराबर ही हाथ था। सो कहिए कि हम आप दोनों ही मिल के एक ही जगह यह प्रायश्चित्त करेंगे, या अलग-अलग? अब तो पण्डित जी की अक्ल ही गुम! उनका चेहरा फक हो गया और बोले कि रहिए, रहिए, खयाल आया। एक और बड़ी पोथी है। जरा उसे तो निकालूँ और देखूँ। पोथी निकली और बहुत देर तक देख सुन के पण्डित् जी ने फर्माया कि जाइए, आप निर्दोष हैं। क्योंकि 'सात-पाँच लड़के एक 'सन्तोष' गदहा मारे कुछ नहिं दोष'! इस प्रकार जैसे तैसे उस गरीब गृहस्थ के गले की बला टली। इससे सिद्ध है कि ये धर्म और परलोक के 'सर्वाधिकार संरक्षित' वाले कैसे दोमुँहिए होते हैं और अपना उल्लू कैसे सीधा करते हैं! यदि उसी किसान जैसे होशियार सभी हो जाएँ तभी इनकी लकड़ी नहीं लग सकेगी। दूसरा रास्ता हई नहीं।

किसानों को तो उनसे बेलाग कह देना चाहिए कि जाइए, बैकुण्ठ और परमात्मा का ठेका श्रीमन्तों तथा राजे-महाराजों को ही दीजिए। ये वहाँ बड़े हैं। हम चाहते है कि परलोक में भी वही बड़े रहें। फलतः अपनी जमींदारी और अपना राजपाट छोड़ के वे जंगल का रास्ता लें। सो भी सपरिवार और हमें वह सुख का सभी सामान सौंप दें। यदि वह सपरिवार और सबन्धु-बान्धव वहाँ न जाएँगे, तो उदासी काटेगी और विवाह शादी या महफिल में भी गड़बड़ी होगी—अड़चन होगी। इसीलिए हमारी हार्दिक इच्छा है कि वे सभी संगी साथियों को ले के ही जंगल जाएँ और सन्तोषपूर्वक क्षुधा-तृषा को सहें। ताकि उन्हें भरपूर स्वर्ग मिले और वहाँ भी सपरिवार ही मौज करें। हम इस महान एवं पवित्र काम में उनकी हर तरह से सहायता करने को तैयार हैं। उनके लिए न एक पैसा छोड़ेंगे, न एक इंच वस्त्र और न एक रत्ती-भर घी, दूध वगैरह, नहीं तो उनकी तपस्या भंग हो जाएगी! भला हम ऐसा पाप कैसे होने देंगे! उनका पूरा-पूरा उपकार हम करके ही रहेंगे। उन्हें आप लोग निश्चिन्त कर दीजिए। स्वर्ग उनके बिना सूना ही रहेगा! परमात्मा के ये लाड़ले उनके पास पहुँच जाएँ हमारी यही तमन्ना है, यही अभिलाषा है। जाइए, हम उन लोगों के लिए बैकुण्ठ का छत्र राज्य छोड़े देते हैं। यहीं का राज्य करके हम अपने को किसी प्रकार सन्तुष्ट कर लेंगे! जब हमारा और जमींदारों का, धनियों का इतना पुराना ताल्लुक है, तो हमें उसे मजबूरन निभाना ही होगा!

यह ऐसी कसौटी है कि इन धर्म ध्वजियों की कलई खुल ही जाएगी और वे अपने असली रूप में दिखेंगे। खुद तो यहीं स्वर्ग का सुख भोगना चाहते हैं, भोगते हैं और अपने मालिकों को, इष्ट देवों को—मालदारों को—भी उसका सारा सामान प्रस्तुत करने में लगे रहते हैं। हजार कुकर्म और जाल फरेब करके रुपए जमा करते करवाते हैं, अनेक दुराचार-व्यभिचार करते है, मौके-बेमौके गंगा, तुलसी और शालग्राम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की झूठी कसमें, जोरू, जर और जमीन के लिए खाते रहते हैं। मगर औरों के लिए इस स्वर्ग की तरह बात मरने के बाद के लिए करते रहते हैं। मगर किसान भी इसी जीवन में उन्हीं की स्वर्ग सुख क्यों न चाहें? यहाँ नरक की यंत्रणा भोगने के बाद उस स्वर्ग की परवाह करें जिसे किसी ने देखा नहीं! जिसके बारे में निश्चित रूप से कहने को कोई तैयार भी नहीं। यह तो परले दर्जे की नादानी होगी। यह तो मेघ को देख के घड़ा फोड़ देने से भी खराब है। नीतिकारों ने कहा भी है कि जो निश्चित और पक्की चीजों को छोड़ के अनिश्चित और खयाली पदार्थों की चिन्ता करता है उसके दोनों ही गायब हो जाते हैं, 'यो ध्रुवाणि परित्यज्य ह्यध्रुवं परिसेवते। ध्रुवाणि तस्य नश्यति ह्यध्रुवं नष्टमेवहि'। सूद के लिए मूल गँवाना इसे ही कहते हैं! किसान ऐसी गलती अब हरगिज न करेंगे।

भाग्यवादी लोग इन बातों को सुनके घबराते जरूर हैं। मगर फिर भी अपनी जिद से हटना नहीं चाहते। उनकी कठदलील होती है कि 'करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फलु चाखा' के अनुसार हर आदमी को अपने पूर्व जन्म की कमाई का फल भोगना ही पड़ता है। इसे ही तकदीर कहिए, भाग्य कहिए या प्रारब्ध कहिए। इससे किसी का पिण्ड कैसे छूटेगा? हमने जो कुछ किया है उसे हम न भोगें तो दूसरा कौन भोगेगा? 'जैसी करनी तैसी भरनी' का भी यही मतलब है। यदि चोरी-डकैती हम करें, तो परिणाम हमारे ही माथे आएगा। किसी डूबते को हमने बचाया तो इनाम और प्रशंसा के पात्र हम ही बनेंगे, न कि और कोई।

बात तो सही है। मगर इससे पूर्वजन्म में जो किया उसे भोगेंगे यह कहाँ सिद्ध होता है? 'कर्म प्रधान विश्व' का सीधा अर्थ तो यही है कि जो कुछ करेंगे उसका फल भुगतेंगे। हमने हल चलाया, खेत बोया और फसल तैयार की तो परिणाम स्वरूप गेहूँ, चावल खाएँगे। खेती का तो वही फल है। यदि गाय, भैंस पाली उन्हें खूब खिलाया-पिलाया तो दूध, दही, घी हम ही खाएँगे। उसका फल दूसरा है नहीं। कभी ऐसा नहीं देखा-सुना कि गाय-भैंस इसलिए पालते हैं कि मरने पर परलोक में या दूसरे जन्म में घी, दूध आदि खाएँगे। खेती भी इसलिए कदापि नहीं करते कि अगले जन्म या परलोक में चावल, गेहूँ आदि खाएँगे। यदि इसमें परलोक की बात मालूम हो जाए तो कोई भी यह काम न करेगा। चोरी करते हैं तो फौरन ही इसी जन्म में जेल जाते हैं। यदि किसी को मारते-पीटते हैं तो बदले में पिट जाते हैं। अगर कत्ल करते हैं, फाँसी या कालेपानी का दण्ड यहीं भोगना होता है। इसमें अगले जन्म का सवाल कहाँ आता है?

इसीलिए तो किसान को फौरन ही दावा करना चाहिए कि जब हमने खेती की और गाय-भैंस पाली, तो दूसरे लोग—राजे, बाबू धनी और सत्ताधारी लोग—क्यों गेहूँ, चावल और घी, मलाई खाएँगे? हम क्यों न खाएँगे? अपने कर्म का फल तो हमें ही भोगना है। यदि दूसरे लोग खाते हैं, या तो चोरी करते हैं या सीनाजोरी और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यह दोनों ही नाजायज हैं, दण्डनीय हैं। इसलिए उन्हें फौरन इसका दण्ड मिलना चाहिए। उनकी चोरी या सीनाजोरी चटपट बन्द हो जाना ही उचित है।

और अगर फिर भी हठ हो और कहा जाए कि इस जन्म के कर्मों का फल हमें इस शरीर में नहीं मिल सकता। फलतः घी, दूध, गेहूँ वही लोग खाएँगे, हमारे इन कामों का फल वही लोग भोगेंगे और हमें—किसानों को—भूखों ही मरना होगा तो अच्छी बात है। यह भी यदि पूरा-पूरा माना जाए तो एक बात हो। यदि लोग कहें कि हाँ, पूरा-पूरा माना ही जाएगा तो फौरन किसान कहीं जा के चोरी या डकैती कर सकता है और खूब हलवा-पूड़ी उड़ा सकता है। यदि पुलिस पकड़े तो वह कह दे सकता है कि हमारे कर्म का फल पण्डितजी, मौलवी साहब, या राजा बाबुओं को ही दीजिए और उन्हें ही जेल भेजिए। क्योंकि उनका यही कहना है कि यदि काम करें हम तो उसका फल इस जन्म में वही भोगेंगे। इसलिए हमें तो इस जन्म में इस चोरी या डकैती के करते जेल जाना नहीं है। मगर क्या इस बात को पुलिस मानेगी? क्या पण्डित, साधु, फकीर और धनी लोग भी इसे मानेंगे? यदि नहीं, तो क्यों? अगर हमारी चोरी का नतीजा जेल या दण्ड उन्हें नहीं भोगना है, तो फिर हमारी ही खेती तथा गोपालन का फल गेहूँ, चावल, घी, दूध वे किस मुँह से भोगेंगे? यदि मानना है, तो सीधे रास्ते पर चलें और सभी कामों के नतीजे के लिए तैयार रहें। यह 'मीठा मीठा गप्प, कड़वा कड़वा थू' कैसा? यह 'आधा तीतर, आधी बटेर' की क्या बात?

एक बात और। पूर्वजन्म की कमाई का फल इस जन्म में और इस जन्म का अगले में भोगेंगे, ऐसा क्यों? इस जन्म का यहीं क्यों न भोगेंगे? इससे शोषकों का मजा किरकिरा हो जाएगा क्या इसीलिए ऐसा नहीं माना जाए? तो जिसका मजा किरकिरा होता हो वही उसकी परवाह करे। किसान क्यों करने लगा? उसका मजा तो उलटे इसमें ही बनने वाला है।

और यह बासी कर्म-फल भोगने का क्या मतलब है? ताजा कर्म फल क्यों न भोगा जाए? रोटी, भात वगैरह बना के तो ताजा ही खाना पसन्द करते हैं। बासी तो कोई भी नहीं चाहता। मगर कर्म के बासी ही फल भोगे जाएँगे, ताजे नहीं, यह तो उलटी बात हो रही है। इसलिए पहले तो समझ में आती ही नहीं। इसीलिए तो इस पर विश्वास नहीं होता, क्या परमात्मा के दरबार में उलटा ही हुआ करता है? यदि हाँ, तो बड़ी गड़बड़ होगी और कोई ठिकाना न होगा। अच्छे काम का तब तो बुरा और बुरे का अच्छा नतीजा भी हो सकता है। और यदि वहाँ उलटा नहीं होता, तो कम के फलों के बारे में यह लोकानुभव से विपरीत ही बात क्यों कही जाती है? पुराने लोगों ने तो माना भी ऐसा ही है कि जितने ही बड़े या महत्त्वपूर्ण काम होते हैं उतना ही जल्द इसी जन्म में उनका नतीजा तीन साल, तीन मास, तीन पक्ष या तीन दिन में ही मिल जाता है—'त्रिभिर्वर्षैस्त्रिभिर्मासैस्त्रिभिः पक्षैस्त्रिभिर्दिनैः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अत्युत्कटैः पुण्यपापैरिहैव फलमश्नुते'। और गेहूँ आदि उपजाने से बढ़कर महत्त्वपूर्ण काम इस दुनिया में हो भी क्या सकता है?

जो लोग कर्मरेख, ललाटरेखा और कर्म विपाक की पोथी की बातें करके श्रमजीवियों को—किसानों और मजदूरों को—धोखा देते हैं उनसे भी कुछ पूछताछ कर लेना जरूरी है! वे कहते हैं कि उनकी पोथी—कर्म विपाक—में सभी लोगों के कर्मों का फल लिखा हुआ है। स्वभाव से ही प्रश्न होता है कि इस समय संसार में प्रायः दो अरब मनुष्य रहते हैं। यदि सभी के कर्मों का हिसाब लिखने के लिए पोथी बने तो वह कितनी लम्बी, चौड़ी और मोटी होगी? छोटे बड़े साहूकारों, कारखानों और बैंकों में जो थोड़े से आदमियों के साथ लेन-देन होता है, उसी के लिए न जानें कितनी बड़ी-बड़ी बहियाँ और रजिस्टर रहते हैं। यदि पचीस-पचास वर्षों के उन्हीं रजिस्टरों और बहियों को जमा करें तो पहाड़ जैसी चीज खड़ी हो जाए। ऐसी दशा में दो अरब मनुष्यों के जन्म से मरण तक के हिसाब को ब्योरेवार लिखने के लिए तो ऐसे रजिस्टर और ऐसी पोथियाँ दरकार होंगी जो हिमालय से भी ऊँची हो जाएँ तब भी शायद ही काम चले।

पुष्पदन्त ने महिम्नस्तोत्र में एक स्थान पर लिखा है कि शिवजी के गुणों के वर्णन में यदि पृथ्वी कागज का काम दे और समुद्र स्याही का तो भी वह वर्णन अधूरा ही रहेगा—अँट नहीं सकता—'कज्जलं सिन्धु पात्रे, पत्र मुर्वी।' वह तो कहा जा सकता है, कवि की कोरी कल्पना है। मगर यहाँ तो सो बात नहीं है। यदि सारी जमीन को कागज और समुद्रों की स्याही सचमुच ही बना डालें, तो भी यह कर्मों और फलों का हिसाब पूरा-पूरा लिखा जा सकता नहीं। आदमियों के सिवाय असंख्य अन्य प्राणियों का भी तो हिसाब लिखा जाना ही चाहिए। क्योंकि कर्म का सवाल तो सभी जगह एक समान नहीं है। सभी जीव-जन्तु भाग्य के अनुसार ही सुख-दुःख भोगते और काम करते हैं न?

ऐसी दशा में नन्ही सी पोथी—कर्म विपाक में ही दुनिया-भर का हिसाब कैसे समा गया कि उसे ही खोल कर पण्डित जी लोग सब लोगों के भाग्य की बात अक्षरशः ब्योरे के साथ बता देते हैं? यह तो 'गागर में सागर' भरने की अनोखी बात हो गई! लंका में कुम्भकर्ण के लिए, सुनते हैं, बड़ा सा मकान बना था, क्योंकि उसकी देह चार सौ कोस जमीन को घेर लेती थी। मगर कर्म विपाक की पोथी के लिए तो उससे हजार गुणा बड़ा मकान चाहिए। सो भी बराबर बढ़ता रहेगा, क्योंकि नए-नए लोग पैदा होते रहते हैं। अतः वह सभी पण्डितों की झोपड़ियों में कैसे अँट सकेगा? वह कुम्भकर्ण की दादी जो ठहरी, खासकर विस्तार में!

इतना ही नहीं। प्रति दिन लाखों बच्चे पैदा होते हैं। उनका हिसाब उस पोथी में पहले से ही कैसे लिखा रहता है? और अगर पोथी वाले कहें कि लिखा रहता है, तो हर आदमी उनसे पूछ सकता है कि हमारे बच्चों की संख्या कितनी है, उनके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नाम धाम क्या हैं? आदि आदि। जिसके बच्चे न हों वह भी पूछ सकता है कि हमें कौन-कौन से बच्चे होंगे और उनकी क्या हालत होगी? तभी तो कर्म विपाक वालों के ढोंग का पर्दाफाश होगा। इसलिए पहले से लिखा जाना तो गैरमुमकिन है।

तब तो अब सीधा प्रश्न है कि किस बेतार के तार के जरिए जन्म के साथ ही हर पण्डित के पास बच्चों की खबर आती है और कैसे? उसे पोथी में लिखता भी कौन है? और अगर सचमुच यह बात हो, तो वह पोथी बराबर बढ़ती ही जानी चाहिए। मगर ऐसा देखा तो जाता नहीं कि पण्डितजी की पोथी कर्म विपाक की तोंद बराबर फूलती जाए! वह तो जैसी की तैसी एक बेठन में बँधी बराबर पड़ी रहती है। कितनों के घरों में तो संयोगवश बाप-दादों की ही पोथियाँ हैं। मगर वह मूर्ख हैं। फिर वहाँ कौन देवता या फरिश्ता आकर लिख जाया करता है?

वे मूर्ख दुनिया-भर के कर्मों का तो हिसाब बताते फिरते हैं। मगर खुद फजीती भोगते हैं, दर-दर मारे फिरते हैं और भिखारी बनते हैं। ये धनियों के सामने दुम हिलाते, चापलूसी करते और 'जय' मनाते रहते हैं, ताकि दो-चार पैसे मिल जाएँ। मगर वे अपना हिसाब-किताब उसी पोथी से कर क्यों नहीं लेते और निश्चिन्त क्यों नहीं हो जाते? रोज-रोज जो उन्हें चिन्ता बनी रहती है कि आज कहाँ जाएँ, क्या करें कि कुछ कमा लें और घर की खर्ची चलाएँ। सो क्यों होता है? यह तो वही हुआ कि 'आप मियाँ मँगनी, द्वारे दरवेश'!

ललाट और खोपड़ी की बात भी विचित्र और बेबुनियाद है। कहते हैं कि जीवन-भर का सुख-दुःख और बुरा-भला उसी में लिखा रहता है! यह तो छिपने की बात नहीं। हजारों खोपड़ियाँ गंगा आदि नदियों के किनारे मिलती हैं। उन पर कहाँ वह हिसाब रहता है। सामने की ओर टुकड़ों के जोड़ का जो चिह्न रहता है उसे ही नादान लोग कर्म की रेखा कह डालते हैं! यदि यह बात मान भी लें तो वह किस भाषा में, या किस संकेत से लिखा रहता है, यह कौन बताएगा? वह कैसा शार्टहैंड (संक्षिप्त लेख) है कि एक छोटी सी लाइन में सैकड़ों वर्ष की जिन्दगी का हिसाब पूरा हो गया? खूबी तो यह कि जो सौ वर्ष जिया, या जो साठ, पचास, चालीस, तीस, बीस या कम, सबों की खोपड़ियों पर बराबर ही लिखा रहता है! यह क्या? जब हिसाब ही ठहरा, तो जीवन की दीर्घता और संक्षेप के हिसाब से वह लेख भी छोटा-बड़ा होना ही चाहिए। क्या जितने आदमी हैं उतने ही शार्टहैंड जुदा जुदा हैं? यह भी विचित्र तथा वाहियात बात है। इसकी जरूरत क्या है? कोई खुफिया पुलिस की रिपोर्ट थोड़े ही है कि एक को दूसरा न पहचाने। और जिन कीड़े-मकोड़े या पक्षियों की खोपड़ियाँ नहीं हैं उनका हिसाब कहाँ लिखा जाता है? क्या साधुओं, मौलवियों और पण्डितों की ही खोपड़ियों पर? कैसी बेहूदी बात है?

हिसाब लिखने का तो अर्थ होता है कि पढ़ा जा सके। तो क्या खोपड़ियों पर लिखा हिसाब कोई पढ़ सकता है? यदि कोई धोखा देने के लिए 'हाँ' कह दे,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तो एक ही खोपड़ी को दो-चार 'हाँ' कहनेवालों से जुदा-जुदा पढ़वाने से ही पोल खुल जाएगी। यदि फरेब करके कुछ लोग यों ही पढ़ने की कोशिश करें भी, तो सबों का पढ़ना मिल तो नहीं सकता और इस तरह जाल पकड़ा जाएगा। और अगर आदमी पढ़ नहीं सकते, ऐसा कहें तो फिर लिखने का सवाल ही कहाँ रहा? क्या ब्रह्मा या चित्रगुप्त के पास कागज नहीं रहता कि खोपड़ियों पर ही लिखते हैं? जब बिना खोपड़ी वाले जीवों के लिए कागज उन्हें जुटाना ही पड़ता है, तो आदमियों के लिए भी जुटा क्यों नहीं लेते? वह तो हर आदमी के साथ-साथ रहते भी नहीं। फलतः समय-समय पर दौड़ के आने में तो उनकी मौत ही है। और यदि एक ही साथ लाखों का हिसाब करना हो तो कैसे करेंगे? उनका दफ्तर और सेक्रेटेरियट कितना लम्बा-चौड़ा है?

इस प्रकार स्पष्ट है कि ललाट और कर्म रेखा का प्रश्न जनता को फँसाने तथा धोखा देने के लिए ही गढ़ा गया है, जिसमें उसे ठगने में आसानी हो सके। आखिर किसानों और मजदूरों की गाढ़ी कमाई का गेहूँ, दूध, मोटर, वस्त्र आदि उनसे छीनने के लिए कोई उपाय भी तो चाहिए। बल प्रयोग तो असम्भव है। क्योंकि अमीर लोग तो मुट्ठी-भर ही ठहरे। वे होते भी हैं अशक्त। फिर जनता से—किसान मजदूरों से—बल प्रयोग करके वे छीनेंगे कैसे? किसान यदि एक बार कस के डाँट दे तो जिनका दिमाग ही फट जाए! क्या वही लोग बल प्रयोग करेंगे? इसीलिए तो खूब सोच-विचार के ऐसा उपाय ढूँढ़ निकाला गया कि शान्ति के साथ बिना यत्न के ही अपार भोग-विलास की सामग्री उनके पास पहुँच जाया करे! इस प्रकार की बातें बहुत ही चालाकी से किस प्रकार की जाती हैं इस सम्बन्ध में एक सुन्दर कहानी है।

कहते हैं कि पुराने समय में एक सीधा-सादा किसान अपनी नातेदारी से बहुत ही अच्छी जाति की बकरी का बच्चा ले के पैदल ही घर चला कि इसे पालेंगे, तो खूब बड़ी बकरी होगी, काफी दूध देगी और इसके बच्चे भी ऐसे ही होंगे। उस गरीब ने अपनी जीविका का एक आसान साधन समझ उसे लिया था। सड़क पकड़े और बच्चे को कन्धे पर रखे जा ही रहा था कि पाँच ठगों की उस पर एकाएक नजर पड़ गई। उनने देखा कि बकरी तो बहुत ही अच्छी किस्म की है। इसे किसी प्रकार लेना ही चाहिए। मगर छीनने का मौका न था। दिन का समय और इधर-उधर गाँव। पकड़े जाने का खतरा था। अतएव उनने राय की और तय कर लिया कि किस प्रकार का काम करने से अनायास ही यह हाथ लगेगी। फिर हट के ओझल हो गए और अपने में एक को भेजा कि कहाँ जाएगा यह पूछ आओ। उसने जा के पूछा तो पता लगा कि इसी सड़क पर उसे आठ-दस मील जाना है।

बस, ठगों का हिसाब बैठ गया। वे तेजी से आगे बढ़े और आधा मील आगे जा के सड़क की बगल में एक ठग खड़ा हो के यों ही कुछ करने लगा, जैसे कोई अजनबी हो। उससे एक मील पर दूसरा दूसरे से पौन मील पर तीसरा, तीसरे से एक मील पर चौथा और चौथे से आधे मील पर पाँचवाँ जा डटा। सभी अजनबी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की तरह सड़क पर, उसके पास ही या इधर-उधर किसी न किसी बहाने से डटे रहे।

ज्यों ही पहले ठग के पास वह किसान पहुँचा कि उसने एकाएक आँख फेरी और हँस के पूछा कि तुम कौन हो जी? कहाँ जाओगे? यह कन्धे पर क्या ले रखा है? उस गरीब ने अपना पता बताया और कहा कि बकरी का बच्चा पालने के लिए जा रहा हूँ। ठग ने फौरन कहा कि यह तो बकरी का नहीं, किन्तु गधी का बच्चा है। वह गरीब किसान हँस पड़ा और ठग की नादानी पर तर्स खाता हुआ आगे बढ़ा।

जब दूसरा मिला तो वह पहले ही से बकरीवाले की ओर किसी मुसाफिर के रूप में आता हुआ दीखा और बोला कि क्या तुम धोबी हो जी, कि गधी के बच्चे का कन्धे पर लिये जा रहे हो? उसने जबाव दिया कि अपनी अक्ल तो सँभालो। यह गधी का बच्चा थोड़े ही है। यह तो बकरी का है। फिर आगे चल पड़ा।

इतने में तीसरा मिला और दूर से ही हँसता हुआ बोला कि ओ धोबी, ओ धोबी, यह गधी का बच्चा कहाँ लिया? किसान घबराया सही। क्योंकि लगातार तीन ने ऐसा ही कहा। मगर बोला कि यह तो बकरी का बच्चा है या गधी का? उसने फिर कहा कि गधी का? गरीब ने कहा कि क्या हमारे नातेदार ही हमें ठगेंगे और तुम्हीं चालाक हो? और आगे बढ़ा।

चलते-चलते चौथे से भेंट हो गई। वह पास के खेत में ही था। वहीं से चिल्लाया कि यह कौन सा पगला है? कहीं गधी का बच्चा भी कन्धे पर ले चलते हैं? अब तो किसान बड़ी दिक्कत में पड़ा। बैठ गया और बच्चे के लम्बे कान वगैरह को दिखाकर बोला कि भई, यह तो साफ ही बकरी का बच्चा है। तुम इसे गधी का कैसे कहते हो ? मैं तो अपने सगे-सम्बन्धियों के यहाँ से लिये आ रहा हूँ। ठग ने कहा कि सो तो घर जाने पर ही पता चलेगा कि हम सही कहते हैं, या गलत। कुछ देर रुकने और पछताने के बाद उसने फिर भी हिम्मत की और बच्चे को ले के आगे बढ़ा।

अब पाँचवाँ मिला। उसके पास में ही कुछ लड़के खेलते थे। उसने पुकारा कि देखो लड़के, यह तमाशा! कोई सनकी आदमी कन्धे पर गधी का बच्चा लिये जा रहा है! लड़के तो खेल में मस्त थे। उन्हें दूसरी बात की परवाह कहाँ? मगर उस किसान ने न सोचा, न विचारा और बच्चे को फेंक के आगे बढ़ गया। उसने सोचा कि जो ही मिलते हैं वही इसे गधी का ही बच्चा कहते हैं, तो क्या मैं ही होशियार और सारी दुनिया बेवकूफ ही है? हो न, हो मुझे और मेरे नातेदारों को धोखा हो गया!

इस प्रकार आसानी से वह बकरी का लासानी बच्चा उस पाँचवें ठग को मिल गया और खुशी-खुशी वह अपने चार साथियों से जा मिला। आखिर ठगों का मतलब इस प्रकार युक्ति से पूरा हो ही गया!

हम तो साफ ही देखते हैं कि यदि सिर्फ पाँच ही आदमी एक राय और षड्यन्त्र

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करके किसी को ठगने के लिए एक जाल बनाते हैं और थोड़ी-थोड़ी देर के बाद एक ही बात दुहराते हैं, तो उतने से ही उस आदमी का दिमाग पलट जाता है और पहले से पूर्णतया निश्चित चीज को भी उलटी समझ के फेंक देता है। बस, इतने से ही हमारा मतलब स्पष्ट हो जाता है। वहाँ तो केवल पाँच आदमी एक ही बात बार-बार जुदा-जुदा कहके बकरी छीन लेते हैं। और यहाँ? यहाँ का क्या पूछना है? छप्पन लाख साधू नामधारी, लाखों पण्डे और पुजारी, कितने ही लाख पुरोहित और कथा बाँचने वाले लक्ष-लक्ष मौलवी और फकीर और असंख्य पादरी—ये सभी के सभी रह-रह के भिन्न-भिन्न मौकों पर हूबहू एक ही बात दुहराते हैं। किसानों और मजदूरों से सभी यही कहते हैं कि यह गेहूँ, घी, दूध तुमने पैदा जरूर किया है। मगर तुम्हारे कर्म में, तुम्हारी किस्मत और तकदीर में यह लिखा है नहीं! भगवान की मर्जी है नहीं कि तुम या तुम्हारा परिवार इसे भोगे! वह तो जमींदारों, साहूकारों और पूँजीपतियों को ही किस्मत में बदा है! वही इसे खाएँ-पिएँगे! इस जन्म में तो तुम्हें यह मिल सकता नहीं। इस जिन्दगी में तो हम इसके हकदार नहीं! शायद अगले जन्म में पा सको?

किसान सुनता है और विश्वास कर लेता है। वह सोचता है कि इन साधु, पण्डित आदि बेचारों को क्या पड़ी है कि हमें धोखा देंगे? ये तो घण्टों पूजापाठ करते और परमात्मा का ध्यान करते हैं। उपवास कर, व्रत कर और तीर्थों में घूम-घूमकर पाप धो डालते हैं! दिन-रात ये तो परोपकार और धर्म की ही चर्चा करते रहते हैं! हमारे जैसे बाल बच्चों में लिपटे भी नहीं हैं कि झूठ-साँच कर सकें। गलत कहने की तो इनमें कोई गुंजाइश ही नहीं। और फिर देखिए न, अनेक शैव, शाक्त, वैष्णव आदि सम्प्रदाय के लोग रोज आपस में मतभेद रखते और झगड़ते रहते हैं। लेकिन इस मामले में सबों की एक ही राय है—कोई मतभेद नहीं है! और भी, पण्डित, मौलवी, पादरी आदि अपने-अपने धर्म को लेकर आपस में कितना झगड़ा करते हैं? कोई कुछ कहता है और कोई कुछ। मगर किस्मत और भाग्य के मामले सभी एक ही राय के हैं! इसलिए हो न हो, यह बात जरूर ही सही है और हम लोगों के भाग्य में गेहूँ, बासमती, मलाई, घी आदि खाना नहीं ही लिखा है। यह तो जमींदारों और मालदारों के ही लिए है! बस चलो सन्तोष करो!

नतीजा यही होता है कि दिन प्रतिदिन बाल्यावस्था से ही यह धारणा दृढ़ होने लगती है। क्योंकि चाहे और उपदेश मिले, या न मिले। मगर यह तो जरूर ही मिलने लगता है। जिसे सुनो वही कहता फिरता है, कर्म में जो लिखा होगा वह टर नहीं सकता। हमारे माथे में तो गरीबी लिखी ही है। जिसे बात करने का भी शऊर नहीं, वह भी भाग्य और भगवान की मर्जी की लम्बी-लम्बी बातें छाँटता है। गोया उसने भाग्य और भगवान को और उनकी मर्जी को आँखों देखा है! फलतः हजारों वर्षों से सुनते-सुनते पीछे यह एक प्रकार का स्वभाव हो जाता है। जैसे बत्तख को पानी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में तैरना कोई सिखलाता नहीं। उसका तो वह स्वभाव ही है। ठीक उसी प्रकार भाग्यवाद और भगवानवाद किसान का एक प्रकार का स्वभाव ही बन गया है। वह धारणा उसके दिलदिमाग में वज्रलीक हो गई है!

जब खुद गेहूँ, दूध को पैदा करनेवाला ही समझता है कि वह उसके पेट में और उसके परिवार के पेट में जाने के लिए हई नहीं, तो आखिर कोई जबर्दस्ती उसके पेट में ठूँसेगा थोड़े ही। यहाँ तो छीनने वाले ठग ताक लगाए बैठे हैं। उन्हें क्या पड़ी है कि उसके मुँह में बलात ठूँसे? वह तो मुँह में से उलटे निकाल लेना चाहते हैं! उन्हें तो इसके लिए कोई मौका या बहाना मात्र चाहिए। और आखिर यह पदार्थ तो पेट में जाने के ही लिए हैं, न कि देखने के लिए। जब किसानों ने तय कर लिया कि उनके लिए तो ये हई नहीं, इन्हें वह तो खा ही नहीं सकते, तो लाचार हो के ये पदार्थ अमीरों और उनके कुत्तों के पास—पेट में—चले गए, चले जाते हैं! वह बेकार सड़ेंगे तो नहीं ही। फिर कहाँ जाएँ सिवाय अमीरों के पेट के!

जिस प्रकार पागल आदमी अपने घर का गेहूँ, दूध, धन, वस्त्र आदि उठा-उठा के बाहर फेंके और गैरों को लुटा दे, ठीक उसी प्रकार किसान अपने गेहूँ आदि को उठा-उठा के बाहर फेंकता और गैरों को लुटाता है! इसका दिमाग ही उलटा हो गया है। इसका विचार ही विपरीत हो गया है! इसकी समझ सोलहों आना खराब हो गई है! वह तो बकरी के बच्चे को गधी का बच्चा माने बैठा है! हजारों वर्षों के संगठित षड्यन्त्र का दूसरा नतीजा हो भी नहीं सकता था! इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है? यदि वह ऐसा न करता तभी अचम्भा होता। क्योंकि 'नवद्वारे का पींजरा, तामें पंछी पौन। रहने का आश्चर्य है गए अचम्भा कौन?' इसीलिए असली जरूरत इस बात की है उसके दिमाग की ही दवा की जाए। उसकी समझ ही ठीक की जाए। किसानों के लिए सबसे बड़ा रचनात्मक काम—कार्यक्रम—यही है कि उन्हें इस नादानी का रहस्य बताया जाए, इसका खासा भंडाफोड़ किया जाए और समझाया जाए कि ये सब बातें गलत हैं और गेहूँ, चावल, घी, मलाई पर सबसे पहले उन्हीं का हक है! उन्हें धोखा होने के लिए ही ये बातें खूब चालाकी से सोच-विचार के गढ़ी गई हैं।

एक बात का और विचार करके इस प्रसंग को पूरा कर देना है। परमात्मा की मर्जी की पुकार बहुत मचती है। मगर वह परमात्मा कौन सा है? वही, जिसके दर्शनों के लिए लोग मन्दिरों में जाते, गंगा स्नान करते, प्रयाग, काशी आदि तीर्थों में पहुँचते और जंगलों में भटकते हैं? या कि दूसरा कोई? यदि दूसरा कोई हो, तब तो बात ही दूसरी है। तब तो पहले उसका पता ही जानना है। अभी उसका परिचय प्राप्त करना बाकी ही है, लेकिन यदि मन्दिरों और तीर्थों वाला ही है, तब तो बात कुछ मजेदार है। कहते हैं कि वह सब काम पलक मारते कर देता है और जिसे नहीं चाहता है उसे कदापि होने नहीं देता। लेकिन दूसरों का काम सँभालने और भक्तों का हुक्म बजाने के पहले वह अपना काम तो सँभाले। तभी हम मानेंगे कि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वह बड़ा शक्तिमान या सब कुछ कर सकने वाला है—सब कुछ करता है। एक दिन किसान के घी से भगवान के मन्दिर में दीप मत जलाइए और भगवान से कह दीजिए कि आपकी सामर्थ्य की परीक्षा आज ही है। देखें, आपके घर में—मन्दिर में—मस्जिद में—अन्धेरा ही रहता है, या उजाला भी होता है। रात-भर देखते रहिए। मन्दिर का फाटक बन्द करके छोटे से सूराख से रह-रह के देखिए कि कब चिराग जलता है! आप देखेंगे कि जलेगा ही नहीं, रात-भर अन्धेरा ही रहेगा!

इसी प्रकार एक दिन न घण्टी बजे, न आरती हो और न भोग लगे! किसान का गेहूँ, दूध और उसके पैसे से खरीदी घण्टी, आचमनी आदि हटा लीजिए। फिर देखिए कि दिन-रात ठाकुर जी भूखे ही रहते हैं और प्यासे ही मरते हैं, या उन्हें भोजन उनकी लक्ष्मी पहुँचाती हैं। दिन-रात मन्दिर सुनसान ही और मातमी शक्ल बनाए ही रह जाता है या कभी घण्टी वगैरह बजती भी है। पता लगेगा कि सब मामला सूना ही रहा और ठाकुरजी या महादेव बाबा को 'सोलहों दण्ड एकादशी' करनी पड़ी! एक बूँद जल तक नदारद आरती, चन्दन, फूल आदि का तो कहना ही क्या? सभी गायब! वे बेचारे जानें किस बला में पड़ गए कि यह फाकामस्ती करनी पड़ी।

और ये मन्दिर बनते भी हैं किसके पैसे और किसके परिश्रम से? जब मन्दिर का कोना टूट जाए तो ललकार दीजिए ठेठ भगवान को ही कि जरा खुद-बखुद मरम्मत तो करवा लें। नए मन्दिर बनाने की तो बात ही दूर रही! वह कोना तब तक टूटा का टूटा ही रहेगा जब तक किसान का पैसा और उसका हाथ उसमें न लगे! यदि कोई मन्दिर भूकम्प से, या यों ही अकस्मात गिर गया हो और भगवान उसी के नीचे दब गए हों तो उनसे कह दीजिए कि बाहर निकल आएँ, अगर शक्तिमान हैं। पता लगेगा कि जब तक गरीब लोग हाथ न लगायें तब तक भगवान उसी के नीचे दबे कराहते रहेंगे। चाहे मरम्मत हो, या नए-नए मन्दिर बनें। सभी केवल कमाने वालों के ही पैसे या परिश्रम से तैयार होते हैं।

आगे बढ़िए! गंगा को तीर्थ, मन्दिर को मन्दिर, जगन्नाथ धाम को धाम किसने बनाया है? किसके चरणों की धूल की यह महिमा है कि तीर्थों, मन्दिरों और धामों का महत्त्व हो गया? किसने गोबर को गणेश और पत्थर को विष्णु या शिव बना डाला? क्या अमीरों और पूँजीपतियों ने? सत्ताधारियों ने? यदि नंगे पाँव और धूल लिपटे किसान-मजदूर गंगा में स्नान न करें, उन्हें गंगा माई न मानें, मन्दिरों में न जाएँ, जगन्नाथ और रामेश्वर धाम न जाएँ तो क्या सिर्फ मालदारों के नहाने, दर्शन करने या तीर्थ यात्रा से गंगा आदि तीर्थों, मन्दिरों और धामों का महत्त्व रह सकता है? उनका काम चल सकता है? गरीबों ने यदि बहिष्कार कर दिया, तो यह ध्रुव सत्य है कि राजे, महाराजों और सत्ताधारियों की लाख कोशिश करने पर भी गंगा और तलैया में कोई अन्तर न रह जाएगा, मन्दिर और दूसरे मकान में फर्क न होगा और धामों या तीर्थों की महत्ता खत्म हो जाएगी। उन लोगों के दान-पुण्य से ही

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मन्दिरों और धामों का काम और खर्च भी नहीं चल सकता, यदि गरीबों के पैसे-धेले न मिले। जल्द ही दिवाला बोल जाएगा और पण्डे पुजारी, मन्दिरों, तीर्थों और धामों को छोड़ के भाग ही जाएँगे!

यह तो करोड़ों गरीबों के नंगे पाँवों में लगी धूल—चरण रज की ही महिमा है। यह उसी का प्रताप है कि वह जब गंगा में पहुँच के धुल जाती है तो वह गंगा माई कहाती है, जब मन्दिरों में वही धूल पहुँच जाती है, तो वहाँ भगवान का वास, पत्थर को भगवान और गोबर को गणेश कहते हैं, जब वही धूल जगन्नाथ और रामेश्वर के मन्दिरों में जा पहुँचती है, तो उनकी सत्ता कायम रहती है और उनकी महिमा अपरम्पार हो जाती है। गरीबों के तो जूते भी नहीं होते। इसीलिए तो उनके पाँवों की धूल ही वहाँ पहुँच के सबों को महान बनाती है।

कहते हैं कि महादेव बाबा खुद तो दरिद्र और नंग-धड़ंगा श्मशान में पड़े रहते हैं। मगर भक्तों को सब सम्पदाएँ देते हैं, उन्हें बड़े बनाते हैं! पता नहीं, बात क्या है किसी ने आँखों देखा नहीं। मगर ये किसान और कमाने वाले तो साफ ही ऐसे महादेव बाबा हैं कि स्वयं दिवालिये होते हुए भी ईश्वर तक को ईश्वर बनाते और खिलाते-पिलाते हैं।

ईश्वर सबको खिलाता-पिलाता है ऐसा माना जाता है सही। मगर किसने उसे हल चलाते, गेहूँ, बासमती उपजाते, गाय-भैंस पाल के दूध, घी पैदा करते, हलवा-मलाई बनाते तथा किसी को भी खिलाते देखा है? लेकिन किसान तो बराबर ही यही काम करता है। वह तो हमेशा ही दुनिया को खिलाता-पिलाता है। इतना ही नहीं कहते हैं कि ईश्वर तो केवल भक्तों को ही खिलाता और पापियों को भूखों मारता है। वह अपनों को ही खिलाता है। इसलिए वह एक प्रकार की तरफदारी करता है। मगर किसान की तो उलटी बात है! यह तो जालिमों और सतानेवाले जमींदारों, साहूकारों और सत्ताधारियों को ही हलवा, मलाई खिलाता है और खुद बाल बच्चों के साथ या तो भूखों रहता, या आधा पेट सत्तू, सूखी रोटी खाकर गुजर करता है! ऐसी दशा में असली भगवान तो यही किसान ही है।

चाहे और दुनिया माने, या न माने। मगर मेरा तो भगवान वही है और मैं उसका पुजारी हूँ। खेद है, मैं अपने भगवान को अभी तक हलवा, मलाई का भोग न लगा सका, रेशम और मखमल पहना न सका, सुन्दर सजे-सजाए मन्दिर में पधरा न सका, मोटर पर चढ़ा न सका, सुन्दर गाने बजाने के द्वारा रिझा न सका और न पालने पर झुला सका। मगर उसी कोशिश में दिन-रात लगा हूँ, इसी विश्वास और अटल धारणा के साथ कि, एक न एक दिन यह करके ही दम लूँगा, सो भी जल्द।

जिसे अपना जीवन सफल बनाना हो वह सब काम छोड़ के इस महान एवं पवित्रतम कार्य में मेरा साथ दे। मुझे अपने जैसे पुजारियों की जरूरत है। मैं ऐसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पुजारी नहीं चाहता जो सुन्दर-सुन्दर पदार्थों को केवल भगवान को दिखला के खुद गटक जाते हैं और भगवान ताकते ही रह जाते हैं। वह पुजारी बने ही सिर्फ इसलिए हैं कि भगवान के बहाने उन्हीं के नाम से स्वयं सुख भोगें और गैरों से प्रणाम करवाएँ। इसीलिए मैं अपने भगवान को इतना तैयार कर देना चाहता हूँ कि वे ऐसे पुजारियों के और दूसरों के हाथों से भी जबर्दस्ती छीनकर खुद खा जाए। तभी पुजारी नामधारियों को और अन्य धोखेबाजों को भी होश होगा। मैं असली पूजा करना कराना और और देखना चाहता हूँ, न कि नकली। नकल से ऊब चुका हूँ।

ऐसी दशा में यह कहना कि भगवान इन किसानों के कष्टों को दूर करेगा और आराम देगा, यदि उसकी इच्छा हुई, कैसे उचित और सही माना जाए? जो अपनी ही खैरियत नहीं मना सकता और जिसका काम किसानों के बिना चल नहीं सकता, वही भला, किसानों का बेड़ा पार उतारेगा। इसलिए उन्हें भाग्य और भगवान के भरोसे न रह के उसका खयाल तक भी मन में नहीं लाना होगा। उन्हें तो अपनी ही शक्ति और अपने ही बल से अपनी रोटी हासिल करनी होगी। भाग्य और भगवान का भरोसा तो धोखा है और उससे बचना जरूरी है।

तीसरा भाग

(7)
वर्ग चेतना प्राप्त करें

किसानों की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि वह सदा व्यक्तिगत स्वार्थ की ही ओर अपनी दृष्टि रखते हैं। असल में हजारों वर्षों से समाज में उनकी रहन-सहन ही कुछ ऐसी है कि खामख्वाह उनमें व्यक्तिगत भावना तथा दृढ़ संस्कार का हो जाना अनिवार्य हो गया। एक तो छोटे-बड़े गाँवों में अलग-अलग बसते आते हैं। बिना किसी खास मौके के उन गाँवों का आपस में सामूहिक रूप से मिलना या मिल के कोई भी काम करना होता ही नहीं। इसकी न तो जरूरत ही अब तक पड़ती रही है और न उन्होंने यह बात महसूस ही की है। गाँव में भी अलग-अलग घर और जुदा-जुदा खेत, खलिहान आदि होते हैं। यदि खेत और खलिहान भी एक जगह रहते, तो भी शायद सामूहिक संगठन और मिलकर प्रायः काम करने की भावना जाग्रत होती। मगर समाज की वर्तमान रचना ही जो व्यक्तिगत सम्पत्ति के आधार पर हुई है, इसीलिए खेतों को मिलाने के बजाय पृथक् रखना ही उचित एवं जरूरी माना गया। मिलना-मिलाना तो दूर रहा। ज्यों ही एक परिवार और एक घर में मतभेद या पारस्परिक वैमनस्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हुआ कि उन खेतों के और भी टुकड़े होते गए। आज तो यहाँ तक नौबत पहुँची है कि बहुत से खेतों की लम्बाई-चौड़ाई भोजन की थाली जैसी ही व्यवहार दृष्टि से हो गई है। उनमें खेती करना बेकार-सा है। खर्च और परेशानी बहुत होती है और उपज कुछ ऐसी ही तैसी होती है।

जब तक उत्पादन के साधन सम्मिलित न हों तब तक परस्पर लोगों में असली ऐक्य भावना या संघ शक्ति उत्पन्न हो सकती नहीं। दुनिया में खाना-पीना और वस्त्रादि सबसे जरूरी चीजें हैं। इनके लिए मनुष्य धर्म और भगवान को भी तिलांजलि देता तथा कोई भी कुकर्म कर डालता है। हाड़-मांस की देह रखने वाले जनसाधारण से दूसरी आशा करना न सिर्फ अव्यावहारिकता है, किन्तु परले दर्जे की नादानी भी है। ऋषि-मुनियों और पैगम्बरों का दृष्टान्त देकर हम मनुष्य को उसकी भौतिक परिस्थिति से अलग नहीं कर सकते। उसे माया-ममता रागद्वेष और भूख-प्यास वगैरह वैसे ही सताते रहेंगे और उसके मन के विकार कहीं भाग न जाएँगे।

जब भगवान के जपने से भी नहीं भागते तो ऋषि और पैगम्बर क्या करेंगे? और ये ऋषि या पैगम्बर आखिर हुए भी कितने? लाख या करोड़ मनुष्यों में शायद ही कोई ऐसा निकला हो। खूबी तो यह कि वे भी मौके-बेमौके अपने जीवन में चूके जरूर, भौतिक प्रवृत्तियों ने उन्हें भी पथभ्रष्ट किया जरूर। उन्हें इस चूक का ज्ञान फौरन हो गया और साफ-साफ उनने स्वीकार भी कर लिया जरूर। मगर इससे असलियत बदल नहीं गई। प्रत्युत भौतिक परिस्थितियाँ मनुष्य को जरूर ही मजबूर करती हैं यह सिद्धान्त और भी पक्का हो गया। मालूम होता है कि काम, क्रोध, भूख, प्यास वगैरह प्रवृत्तियाँ बड़े जबर्दस्त घोड़े हैं, जो तभी तक दबे रहते हैं जब तक समाधि या ध्यान की सख्त लगाम इन पर लगी रहती है। मगर ज्यों ही वह ढीली हुई कि घोड़े राह से बेराह हुए। मामूली लगाम तो ये कुछ समझते ही नहीं और सख्त लगाम तो करोड़ों में शायद ही किसी के पास हो। वह अकसर ढीली हो ही जाती है। इसीलिए तो युधिष्ठिर भी झूठ बोल गए, राम ने भी छिप के बाली को मारा जिसके लिए फटकार सुननी पड़ी और पराशर, विश्वामित्र, ब्रह्मा प्रभृति भी एक न एक दिन चूक ही गए!

इसलिए हमें तो व्यावहारिक मनुष्य बन के वैसी ही बातें करनी और वैसा ही रास्ता सोचना है, जो दुनियावी लोगों के काम का हो। आदर्शवाद के पीछे भूलना और उसे ठीक रास्ता मान लेना परले दर्जे की नादानी होगी। यह वैसा ही करना होगा जैसा कि सधवा के सिर में सिन्दूर देख के विधवा का अपना सिर फोड़ लेना। पाँचवाँ सवार बनना कभी भी बुद्धिमानी की बात नहीं समझी जा सकती है। और व्यवहार दृष्टि से तो हम देखते हैं कि शरीर की रक्षा के लिए जो चीजें जरूरी हैं वे हमारे लिए सबसे बड़ी और ऊँचे दर्जे की हैं। उनके उत्पादन के जो साधन हैं उनका महत्त्व भी इसीलिए सर्वोपरि हो जाता है। देहात में कहावत है कि 'जान जाए

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तो जाए, मगर जीविका जाने न पाए।" जमीन और जायदाद के लिए गंगा तुलसी उठा के प्रायः झूठी कसमें खाते हैं। खून खराबा तक भी इसलिए कर डालते हैं!

इसीलिए जीवनोपयोगी जरूरी चीजों के उत्पादन के साधन यदि सम्मिलित हों और उत्पादन के लिए उनमें सभी किसानों को सम्मिलित रूप से काम करना पड़े, तो उनमें आसानी से वर्ग चेतना, संघशक्ति की भावना और एकता की बुद्धि केवल उत्पन्न ही न हो, प्रत्युत खूब दृढ़ भी हो जाए। व्यक्तिगत स्वार्थ और व्यक्तित्व की भावना प्रबल होने न पाए और उसका स्थान सामूहिक परिवार की भावना ग्रहण कर ले। देखा जाता है कि एक ही परिवार या पिता के दो लड़के जब जुदा हो के अपनी-अपनी जीविका का उपार्जन करते हैं, तो धीरे-धीरे थोड़े ही समय के बाद वे एक-दूसरे से कतई अलग हो जाते हैं। कभी-कभी आपस में ही कट्टर दुश्मनों की तरह लड़ते भी हैं। विपरीत इसके जो लोग पहले पीढ़ियों से जुदा थे वही यदि सम्मिलित हो के खेतीबारी करने लगते हैं, तो उनमें पारिवारिक भाव, स्नेह और ऐक्य भावना प्रबल हो उठती है। शत्रुता तो कभी साधारणतया वैसी होती नहीं जैसी कि विभक्त लोगों में देखी जाती है।

परन्तु अफसोस यह है कि इस अमूल्य सिद्धान्त को पुराने लोगों ने ठीक-ठीक नहीं देखा। पुराने जमाने से सम्मिलित परिवार की बात चली आती है जरूर और इसका महत्त्व भी मानते हैं अवश्य ही। मगर व्यवहार में यह बात नहीं के बराबर ही है। अगर कहीं है भी, तो संकुचित तथा अत्यन्त सीमित है। वर्ण और आश्रम के सिद्धान्त के साथ इस सामूहिक या वर्ग की भावना का पूरा-पूरा सामंजस्य हो सकना सम्भव भी न था। किसान तो सभी जातियों, धर्मों और वर्णों के हो सकते हैं। मगर अगर उनकी एकता हो तो वर्ण और जाति का वह रूप नहीं हो सकता है जो आज पाया जाता है। आज वाला रूप विकृत है यदि ऐसा मान लें और यह कबूल कर लें कि ये विभाग कर्मों (कामों) के ही अनुसार हुए हैं जैसा कि 'गुण कर्म विभागशः' कहा भी है, तब बात कुछ दूसरी हो जाती है। मगर फिर भी वह निर्बाध तथा असीमित वर्ग चेतना के साथ मेल खा नहीं सकती।

साधनों की एकता होने पर उनसे काम लेने वाले हरेक आदमी उन्हें अपना ही समझते हैं और उन्हें बचाने की प्राणपन से चेष्टा भी करते हैं, यदि उन पर उनका स्वामित्व हो और वे उनके वश की चीजें हों। व्यक्तिगत सम्पत्ति और व्यक्तिगत खेती-बारी की दशा में जैसे सम्मिलित परिवार के हर व्यक्ति की समान रूप से उन पर ममता होती है और सभी लोग उन्हें समान रूप से अपना समझ उनकी रक्षा की पूर्ण कोशिश करते हैं, ठीक वैसे ही समस्त गाँव या अनेक गाँवों की सम्मिलित सम्पत्ति होने पर उन खेतों पर सभी की पूर्णरूपेण ममता रहती और इस प्रकार सभी एक सूत्र में अनायास बँध जाते। एक साथ काम करने और समान रूप से निजी चीज समझने से, इन कारणों से, खामख्वाह संघ-शक्ति तथा वर्ग चेतना पैदा हो जाती

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और वह निरूढ़ हो जाती।

दुर्भाग्य से किसानों के लिए ये दोनों ही बातें नहीं हैं। खेतों और पशुओं से जो पैदावार, या आमदनी हो और बाग वगैरह से जो फल-फूल आएँ उन्हें भले ही व्यक्तियों तथा परिश्रम के हिसाब से बाँट लिया जाए और व्यक्तिगत सम्पत्ति भी उन असली जरूरी चीजों को भले ही मान लिया जाए। क्योंकि यहाँ व्यक्तिगत सम्पत्ति मिटाने का प्रश्न नहीं है। यहाँ तो प्रसंग ही दूसरा है। मगर खेत, बाग, पशु, आदि उपज के साधनों पर सम्मिलित अधिकार क्यों न रखा जाए, यही प्रश्न है। उससे तो ज्यादा लाभ होता है। खर्च या परेशानी भी घट जाती है जरूर ही।

एक तीसरी बात और है जिससे वर्ग चेतना तथा संघशक्ति का प्रादुर्भाव होता है। वह है एक ही घर में या एक ही स्थान पर निरन्तर साथ-साथ रहना। फौज के सिपाही जैसे एक ही साथ रहते और खाते-पीते हैं। या मीलों में काम करने वाले मजदूर एक ही साथ दल के दल रहते हैं। निरन्तर साथ रहने के एक-दूसरे के कष्टों को बराबर देखते और समझते हैं। सभी की पूरी दशा का रत्ती-रत्ती ज्ञान सबों को रहता है। कोई बात किसी से छिपी नहीं रह जाती। जंगल में रहने वाली गायों और दूसरे मवेशियों के बारे में यही अनुभव है कि उनमें एक प्रकार की संघ भावना जाग्रत हो जाती है। फलतः खूँखार जानवरों का हमला होने पर सभी मिल के सामना करते या कम से कम करने की कोशिश करते हैं। चरवाहों के साथ भी उनका खास प्रेम देखा जाता है। क्योंकि वे निरन्तर साथ रहते हैं और शीत, आतप, वर्षा के साथी भी होते हैं। साथ में रहने वाले पशु एक-दूसरे को प्रेम से चाटते भी देखे जाते हैं। इसलिए एक साथ काम करने के अलावे साथ में रहना वर्ग चेतना की उत्पत्ति का जरिया जरूर है। काम करने के समय के बाद ही तो परस्पर सुख-दुःख की बातें कर सकते हैं। काम के समय फुर्सत ही कहाँ रहती है? मगर यह बात भी किसानों में पाई नहीं जाती। अलग-अलग मकानों में एक-एक परिवार रहते हैं। एक परिवार में भी रहने और सोने के जुदे-जुदे मकान होते हैं। बैरकों की तरह रहने का मौका ही नहीं लगता।

पंचायती या सम्मिलित खेती की जो बात कभी-कभी सुनाई पड़ती है वह यदि किसानों के दिमाग में घुसे, तो कम से कम उत्पादन के साधन तो एक बन जाएँ—सम्मिलित बन जाएँ। फलतः पहले बताए दो कारण वर्ग चेतना के लिए अनायास ही प्रस्तुत हो जाएँ। जब रेवड़ा का सत्याग्रह चल रहा था तभी यह बात अकस्मात् सूझी। वहाँ कुछ मजबूरी भी थी। सभी परिवारों के लोग जेल में थे और खेती सभी के लिए जरूरी थी। अलग-अलग करने में दिक्कतें ज्यादा थीं। खेत भी तो न बँटे थे। पहले का बँटवारा तो खत्म ही था। अभी तो लड़कर उन पर अपना अधिकार जमींदार के द्वारा कबूल करवाना बाकी ही था। चन्दे के पैसे से ही काम भी करना था। फिर तो एक ही साथ क्यों न सब के लिए ऊख वगैरह की खेती कर दी जाए,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यह प्रश्न खामख्वाह आया था। जरा-सा खयाल करने और समझा देने पर सत्याग्रह के बाद भी किसानों ने पंचायती खेती का महत्त्व समझ लिया और वे राजी भी हो गए। मगर उसमें पूँजी की जरूरत पड़ी। कानूनी अड़चनें भी थीं। इस प्रकार देखा गया कि एकता होने से सम्मिलित खेती और उस खेती से उस एकता तथा वर्ग-भावना की दृढ़ता यह दोनों बातें एक-दूसरे के अधीन हैं।

अब तक जो विवेचन किया गया है और कारण बताते गए हैं उन्हीं के चलते आज तो किसानों में इस वर्ग-भावना तथा श्रेणी के ज्ञान (class cousciousness) का इतना अभाव है कि कहा नहीं जा सकता। साधारण आदमी तो इस दशा का अनुभव करके ही घबरा जाता है—जा सकता है। एक ही जमींदार गाँव के सौ किसानों को पामाल किए हुए है और सभी उससे पनाह माँगते हैं सही। मगर मिल के उसके खिलाफ खुद कोई उपाय नहीं करते हैं! यहाँ तक कि यदि किसान सभा, या उसके नेताओं के पास भी जाना और अपना दुःखड़ा सुनाना हो तो भी अकेले ही जाएँगे! एक-एक करके आगे-पीछे सभी पहुँचेंगे। मगर एक साथ नहीं! एक घर के लोगों को यदि किसी ने मारा-पीटा और किसी के सामने फरियाद करना हुआ तो एक ही साथ सभी बोलेंगे, चिल्लाएँगे। मगर गाँव-भर की फरियाद एक साथ हरगिज न करेंगे!

इतना ही नहीं। वह तो यह भी समझते हैं कि यद्यपि बीमारी उनकी एक ही है—क्योंकि एक ही जमींदार और उसके अमले उन्हें तबाह करते हैं—फिर भी उसकी दवा अलग-अलग होगी और भिन्न-भिन्न प्रकार की होगी! हमने दर्द के साथ देखा है कि यदि दो चार किसान संयोगवश एक ही साथ हमारे पास पहुँच गए और उन्हें अपना दुःख सुनाना पड़ा तो आतुर हो जाते हैं कि पहले हमीं सुनाएँ, हमीं सुनाएँ! आखिर कोई बुखार, या दूसरी बीमारी तो है नहीं कि अलग-अलग सुनाने की जरूरत हो। वहाँ तो एक ही बात है, एक ही तकलीफ सबको है। असल में उनके भीतर व्यक्तिगत भावना और स्वार्थ इस कदर घर कर गए हैं कि दूसरे की बात—पड़ोसी की उसी बात को भी अपनी बात मान नहीं सकते! वह अत्यन्त संकुचित दृष्टि के बन गए हैं! यदि कहें कि वह 'अपनी नाक के आगे देख नहीं सकते' तो ठीक होगा।

यह तो सभी को मालूम है कि और किसान भी रोज ही इसका अनुभव करते हैं कि बीमारी की दवा खुद ही खानी पड़ती है। तभी वह रोग हटता है। दूसरे के दवा खाने से और की बीमारी नहीं हटती। जिसे भूख लगी हो उसे ही खाना चाहिए। जिसे प्यास हो वही पानी पिए। तभी भूख और प्यास मिटेगी। दूसरे के खाने-पीने से औरों की क्षुधातृषा नहीं मिटती। औरों के लेक्चर और उपदेश से भी न तो भूख ही जाती है और न रोग ही हटता है। ऐसी हालत में जमींदारों, या साहूकारों के जुल्मों से जब सभी तबाह हैं, परेशान हैं तो उपाय भी सभी को ही करना पड़ेगा—उन्हीं को जो पामाल और परेशान हैं और लूटे जा रहे हैं। किसान नेताओं और किसान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सभा के उपाय करने से वे सुखी न होंगे। उपाय बताना सभा का काम है, नेताओं का फर्ज है। जैसे वैद्य और डॉक्टर का काम है सिर्फ दवा बता देना। मगर रोगी को जैसे दवा खानी होती है, ठीक उसी प्रकार जुल्मों से बचने का उपाय जान के उसे करना किसान ही का काम है।

यह भी पक्की बात है कि मौका पड़ने पर किसान सब कुछ कर भी डालता है। फिर भी जाने क्यों ऐसा विश्वास किए आता है कि नेता या किसान सभा कोई उपाय कर देगी कि जमीन मिल जाएगी, या तकलीफें भाग जाएँगी। अजीब मनोवृत्ति है! जीवन-भर ही नहीं। वंश परम्परा से महादेव बाबा और ठाकुरजी की पूजा करते रहे, देवी माई और गौरैया बाबा का सेवन करते रहे। फिर भी नतीजा कुछ न हुआ—उलटा ही हुआ। गरीबी और दरिद्रता बढ़ती ही गई, जमींदारों तथा अधिकारियों की नादिरशाही तरक्की ही करती गई और जमीन भी छिन गई। तो क्या किसान सभा और नेता ठाकुर जी, शिवजी और दुर्गा माई से भी बड़े या प्रभावशाली हैं, कि फौरन कष्टों को हटा देंगे? किसान को यही सोचना चाहिए। मगर इस ओर तो उसका ध्यान ही नहीं। असल में 'आरत के चित रहत न चेतू' वाली बात है। मगर यह मनोवृत्ति घातक है और इसे दूर करना ही होगा। जब तक यह रहेगी वर्ग चेतना या संघशक्ति का प्रश्न ही उठ नहीं सकता।

जब सरकार या जमींदार से अपना हक लेना है, या स्वीकार करवाना है, तो यह मानी हुई बात है कि उन्हें मजबूर किए बिना काम नहीं ही चलेगा। जब तक वे लोग विवश न होंगे, यह न समझेंगे कि किसान का हक हड़पने से अब काम न चलेगा प्रत्युत बाधा होगी तब तक वे क्यों मानेंगे? हक कोई हलवा, मलाई नहीं है जो यों ही रखा है और ले के धीरे से गले के नीचे उतार लिया जाएगा। वह तो लोहे का चना है जिसे चबाना और हजम करना टेढ़ी खीर है। 'वीर भोग्या वसुंन्धरा' के अनुसार तो जमीन उन्हीं लोगों के पास रहती है जो बहादुर हैं। जान हथेली पर ले के सिर पर कफनी बाँधे फिरते हैं और हक के लिए सब कुछ करने को हर घड़ी तैयार रहते हैं। तभी तो उनसे जालिम लोग थर्राते हैं। मगर फिर भी आसानी से नहीं झुकते जब तक दो-दो हाथ हो न जाए—जब तक किसान एक-दो बार उनसे जम के भिड़ न ले और अपनी शक्ति का परिचय उन्हें दे न दे। यही संसार का नियम है।

शोषक तो समझे बैठे हैं कि किसान मुर्दा है, वह शक्तिहीन है, वह कुछ भी कर नहीं सकता है। सैकड़ों वर्षों तक बराबर उनके सामने झुकता जो आया और एक बार भी तन के खड़ा जो न हुआ। इसलिए उनकी यह घोषणा बलवती हो गई है। जमींदार या साहूकार के एक अमले या लठधर को देखकर बराबर गाँवों में जो भगदड़ मचती रही है उसी ने इन शोषकों में हिम्मत ला दी है। फलतः वे खामख्वाह जुल्म करना चाहते हैं—ऐसा करने में उन्हें मजा आता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आखिर पाँव से दबने पर चींटी भी काटती है। मारिए तो मामूली कुत्ता भी गुर्राता है। धूल बहुत ही तुच्छ है सही। मगर पाँव से उसे मारिए तो ठेठ सिर पर जा चढ़ती है। मगर किसान तो उस धूल से भी गया गुजरा बन गया है। लात-जूते खाता और अपमान पर अपमान की कड़वी घूँटें पी जाता है। फिर भी चूँ तक नहीं करता। फिर मुर्दा नहीं तो जानदार इसे कौन कहेगा? और मुर्दे के साथ सलूक भी कैसा करते हैं? नीचे और ऊपर सूखी लकड़ी रख के बीच में उसे रखते और जला देते हैं! बीच-बीच में बाँस से ठोंकते जाते हैं! या कब्र में गाड़ देते हैं! किसान के साथ भी ठीक वैसा ही किया जा रहा है। अगर वह चाहता है कि यह व्यवहार बदले, तो उसे अपने जिन्दा रहने का सबूत देना ही होगा। एतदर्थ उसे सबसे पहला काम तो यही करना होगा कि सर झुकाने, या जुल्मों को बर्दाश्त करने से साफ इनकार दे। जब तक उसमें चेतना ही नहीं है, तब तक वर्गचेतना का सवाल ही कहाँ? कहते हैं, पुराने जमाने में जब रेलें न थीं और न कोई सुरक्षित सवारी सफर के लिए मिल सकती थी उसी समय एक घटना हुई। कहीं सुदूर विदेश में रहके किसी ने कुछ धन कमाया। जब घर चलने का विचार किया तो सोचने लगा कि यह धन कैसे ले चलूँ। चोर चाईं छीन ही लेंगे! डाकखाने वगैरह का प्रबन्ध भी नहीं कि उसी के जरिए भेज के खाली हाथ ही रवाना हो जाऊँ। बड़ी दिक्कत थी। अन्त में अब पैसे का कोई कीमती पत्थर—हीरा वगैरह—भुना लिया और एक चिथड़े में बाँध कर फटे पुराने वस्त्र पहने हुए रवाना हो गया। भिक्षावृत्ति से गुजर करता चला जाई रहा था कि किसी काइयाँ ठग का खयाल उस पर चला गया। वह उसके पीछे लगा। कई दिनों के बाद न जानें कैसे उसने पता पा लिया ठीक-ठीक कि इसके पास हीरा जवाहर जरूर है। अब किसी प्रकार उसे छीनने की फिक्र उसे पड़ी। इधर उस आदमी की हालत यह थी कि जब कहीं तालाब वगैरह पर स्नान आदि करता था तो सुनसान घाट पर ही, जहाँ कोई भी नहाता-धोता न था। क्योंकि आदमियों की भीड़ में शायद किसी की नजर पड़ जाए और हीरे को हड़प ले! ठग ने भी उसकी यह दिनचर्या जान ली थी।

एक दिन सवेरे रास्ते के पास ही एक तालाब के सुनसान घाट पर ही मुर्दा बन के वह ठग पड़ गया। सिर्फ इस आशा से कि वह आदमी जरूर ही यहीं आ के नित्यकर्म करेगा। हुआ भी ऐसा ही। वह वहीं आया और मुर्दे को पड़ा देख समझ गया कि यहाँ कोई और आएगा ही क्यों? फिर यह सोच के कि यदि कोई आया भी तो मुर्दे के पास न जाएगा, उससे उसी मुर्दा बने ठग की छाती पर ही हीरे वाला फटा कपड़ा रख दिया और स्वयं पाखाने चला गया। फिर भी उठ-उठ के देखता रहा कि उधर कोई आता तो नहीं है। पाखाने से आया भी न था कि धीरे से ठग ने हीरा खोल के मुँह में डाल लिया और मुर्दे की तरह पड़ा ही रहा। पाखाने से लौट के उसने हाथ धोया। जब कपड़ा उठाया तो उसमें हीरा नदारद! अब तो उसे चीरो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तो खून नहीं! सर्वस्व गायब! उसने सोचा कि आखिर ले कौन गया? कोई आया तो नहीं ही। मैं तो बराबर देखता ही था, हो न हो इसी मुर्दे ने लिया है—यह मुर्दा है नहीं।

फिर उस मुर्दे को उसने इधर-उधर खूब ही उलटा पलटा और घसीटा। मजबूत जवान था। इसलिए उठा-पटक भी की। मगर वह तो पक्का ठग था। उसने साँस भी न ली। जब उस आदमी ने पास का बड़ा चाकू निकाल के उस मुर्दे का अंग-अंग काटना शुरू किया। फिर भी मुर्दा नहीं बोला। हाथों और टाँगों के खंड-खंड हो गए! फिर भी कुछ असर नहीं! ठग सोचता रहा कि यदि जिन्दा रहा तो लड़कों को तो कही आया हूँ। वे तो यहाँ आएँगे ही। उन्हें हीरा दूँगा और कहूँगा कि मुझे उठा ले चलो और मेरी सेवा करो। इसीलिए सटका पड़ा रहा। अब तो वह आदमी भी ऊब गया। अन्त में सोचा कि अब इसका गला काट के पेट चीरूँ तो शायद उसमें हीरा हो। फलतः ज्यों ही गले पर चाकू चलाने लगा कि मुर्दा हिला और उसने हीरा थूक दिया, यह कहते हुए कि छिः छिः, मैंने तो सिर्फ हँसी की थी और तुम इतने बिगड़ गए! हजरत ने जो हँसी की थी वह तो उस परदेशी को खूब ही मालूम थी! खैर, हीरा ले के वह चलता बना! उस बला की हँसी से वह बचा तो!

ठीक यही दशा किसानों और मजदूरों के शोषण एवं उत्पीड़न पर मोटे होने वालों की है! ये लोग उनकी सारी कमाई गटक जाते हैं—घोंट जाते हैं और आखिर जमीन वगैरह भी छीन लेते हैं। ये लोग उस ठग के भी दादा हैं। मगर अफसोस कि किसान ऐसा नहीं समझता है। वह तो उलटे मानता है कि प्रार्थना करने, कहने सुनने, या समझाने-बुझाने से उसकी कमाई का गटकना कुछ तो ये लोग जरूर ही बन्द कर देंगे! कम से कम जमीन तो जरूर ही वापस कर देंगे, या उसे जोतने देंगे! कैसी नासमझी है? कैसा सीधापन है! किसान का सारा परिवार, उसके नन्हे-नन्हे बच्चे एक बूँद दूध, कुनाइन की एक गोली और कपड़े के बिना तड़प के मर गए, मरते हैं! आज ही नहीं हजारों वर्षों से! और उसी की कमाई का दूध धनियों का कुत्ता पी के जूठा छोड़ देता है, जो फेंका जाता है! उसे मखमली गद्दे पर सुलाया जाता है। उस कुत्ते की बीमारी में झुण्ड के झुण्ड डॉक्टर आ के दवा करते हैं! मगर कभी यह सोचा गया कि किसान के परिवार का—उसके नन्हे बच्चों का—भी तो आखिर कुछ हक है। उन्हीं की तो आखिर यह कमाई है!

इस प्रकार की जल्लादाना हरकत आएदिन होती ही रहती है और किसान अपनी ही आँखों देखता रहता है। फिर भी उन्हीं लोगों पर यह विश्वास कि दया करेंगे और समझाने से मान जाएँगे? यह गलत तरीका है—यह गलत धारणा है। इसे जड़ से धोना-बहाना पड़ेगा दिल और दिमाग में यह अच्छी तरह बिठा लेना होगा, कि जैसा उस ठग के साथ मुसाफिर ने किया तब कहीं उसे शेरा मिला, उससे भी ज्यादा सख्त सलूक जब तक न किया जाएगा—वैसा सख्त सलूक करने के लिए जब तक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

किसान कमर न बाँध लेंगे तब तक न तो ये शोषक सुनेंगे ही और न जमीन ही मिलेगी। उसके पहले शोषण और उत्पीड़न बन्द होने की आशा महज नादानी है। यही धारणा—यही चेतना—वर्ग चेतना की जननी है। इसके बिना किसानों में वर्गचेतना आ सकती नहीं और इस धारणा के बाद उसे कोई रोक भी नहीं सकता। उसे भी खामख्वाह किसानों में आना ही पड़ेगा। दूसरा रास्ता है भी नहीं।

किसी एकाध पर ही छुरी नहीं चलानी है कि इक्के-दुक्के किसान कर लेंगे। यहाँ तो जबर्दस्त ठगों की टोली है उनका दल है, जो सर्वत्र फैला है। यह भी नहीं कि इनका गला सीधे काट लें तो हीरा मिलेगा। ऐसा होगा! इनके लड़के, बच्चे, सम्बन्धी और अन्त में इन्हें पैदा करने वाली सरकार जब तक रहेगी तब तक वह हीरा नहीं मिलने का—जमीन नहीं मिलने की और न गेहूँ, बासमती, घी, दूध ही। इसलिए हमें यह सारी प्रणाली ही बदलनी होगी। यह जमींदारी प्रथा, यह पूँजी प्रथा और यह सरकार—इन सबों को ही—जड़मूल से खत्म करके नई दुनिया, नया समाज और नया संसार गढ़ना होगा। यह तो ठेठ समुद्र बाँधने का काम है—उसमें पुल बनाना है। फिर लंका में रावण को जीत कर सीता को वापस लाना है। वह पुल अकेले नल और नील से न बनेगा। वह उनके बूते का नहीं है। उसके लिए कोटि-कोटि वानर-भालुओं की सेना की एकता, एक मन हो के पड़ जाना पड़ेगा।

कहते हैं किसी महाराजाधिराज के पास एक बहुत ही सुन्दर और कीमती कुत्ता था। उसे वह बहुत ही प्यार करते थे। सोने की साँकल में वह बँधा रहता और उसी को पकड़ के नौकर उसे टहलाया करते थे। रेशमी और मखमली गद्दों पर वह सोता-बैठता, जरी के कपड़े से उसका शरीर ढँका रहता, साबुन और सुगन्धित जल से उसे नहलाया करते और मिश्री, मलाई आदि पदार्थ उसे खाने को दिए जाते, अलावे तरह-तरह के मांसों के। उन्हें वह कभी खाता और कभी सूँघ के उन्हें छोड़ देता। ताजा और गर्मागर्म चीजें भोजनार्थ उसे दी जातीं। नौकरों पर करारी डाँट पड़ती जब कभी महाराज को पता लग जाता कि कुत्ता महाराज के भोग विलास में नौकरों की लापरवाही से बाधा पहुँचती है! सख्त ताकीद रखी जाती कि कुत्ते की रुचि को देखकर ही नौकर चलें और उसकी पूर्ति ठीक-ठीक की जाए। इसीलिए नौकरों के ऊपर निरीक्षक भी बहाल हुआ था। यदि एक दिन कुत्ते ने एक बार चाय न पीया, खाना न खाया तो दर्जनों डॉक्टर दौड़ पड़ते और बहुमूल्य दवाइयाँ मँगाई जातीं। कुत्ते के सोने-बैठने का मकान तो इतना सुन्दर और सजा सजाया था कि कुछ पूछिए न। लोग कहते हैं कि मरने पर स्वर्ग मिलता है! मगर कुत्ता तो स्वर्ग का सुख यहीं भोग रहा था।

एक दिन उस कुत्ते को बाहर ले जाकर कोई नौकर टहला रहा था। इतने में एक मस्तराम आ गए। नौकर ने साधु को देखा स्वभावतः दण्ड प्रणाम किया। उसके बाद महात्मा ने उनके सुख-दुःख पूछे और उसकी कैसे कटती है यह जानना चाहा। उस गरीब ने सब हाल सुना कर कहा कि महाराज, जैसे-तैसे कटी जाती है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मगर यह भी क्या कोई जीवन है? इस पर मस्तराम ने पूछा कि भई, तुम्हारे दिल में अभिलाषा तो होगी ही। भला, तुम क्या चाहते हो यह सुनाओगे? उसने उत्तर दिया कि महात्मन्, मेरी एकमात्र यही अभिलाषा है कि मरने के बाद किसी महाराजाधिराज का ऐसा ही कुत्ता बनूँ! यह पूछने पर कि मनुष्य के जीवन से कुत्ते का जीवन पसन्द करते हो, उसने सुना दिया कि मनुष्य का जन्म पाकर मैंने क्या किया और क्या पाया? यही न इस कुत्ते की सेवा टहल में दिन-रात लगा रहता हूँ? मेरे जैसे और भी अनेक आदमी यही काम करते हैं! जब छुट्टी मिली तो साग सत्तू खाकर जैसे तैसे-दिन काटता हूँ। रहने के लिए टूटा-सा झोंपड़ा है। कपड़े की हालत तो आप देख ही रहे हैं। मेरा शरीर ही यह भी बता दे रहा है कि क्या खाता-पीता हूँ। बाल बच्चों की चिन्ता अलग ही रहती है। महाजन का कर्ज दिन-रात चट्टान की तरह छाती पर बैठा है। उसका तो कहना ही क्या? सारांश, मैं इसी जीवन में नर्क की यन्त्रणा भोग रहा हूँ।

मगर इस कुत्ते को तो भला देखिए। यह तो साक्षात् स्वर्ग का सुख ही भोग रहा है। मेरे जैसे कितने ही आदमी नामधारी इसकी सेवा में बराबर हाजिर रहते हैं। खाने-पीने, मकान, वस्त्र का तो पूछना ही नहीं। हमारी और हमारे भाइयों की ही कमाई के सभी पदार्थ इसे पहुँचाए जाते हैं जब कि कमाने वाले उनके लिए तरसते ही रह जाते हैं! चिन्ता फिक्र की तो कुछ बात ही मत कहिए। इसे न बाल-बच्चों की फिक्र है और न साहू महाजनों की चिन्ता। जमींदारी और टैक्स उगाहने वालों को भी यह क्या जाने कि कौन बला है। हम तो महाराजाधिराज के पास फटकने भी नहीं पाते। मगर यह तो न सिर्फ उनकी गोद में जा बैठता है, बल्कि उसका मुख वे बराबर चूमा करते हैं। हालाँकि उन्हें और इसे भी हलवा, मलाई हमीं गरीब मर करके पहुँचाया करते हैं! ऐसी दशा में आदमी की जिन्दगी से इस कुत्ते की जिन्दगी लाख गुनी अच्छी एवं वांछनीय है।

जब इस दुनिया में यही अन्धेर है कि कौवे पूजे जाएँ और हंस का कोई नाम भी न ले; जब यहाँ बारहों महीने और तीसों दिन पितृपक्ष ही रहता है तो फिर आदमी का जन्म किस काम का? आप तो अक्ल की बात बोलते हैं और न्याय का खयाल रखते हैं। मगर क्या इस अन्धी और पगली दुनिया में अक्ल और न्याय की गुंजाइश है? यदि गुंजाइश ही होती, तो क्या यही होता कि हमारे जैसे घी, मलाई पैदा करने वाले इस कुत्ते की सेवा करते, ताकि सत्तू भरपेट खाने को मिले? हमने जन्म भर भगवान की पूजा की। मगर मिला क्या? हमें पूछता कौन है कि किसकी पूजा करते हो? उस पूजा से तो कुत्ते की यह नौकरी, यह पूजा लाख दर्जे अच्छी है कि किसी प्रकार भरपेट, या आधा पेट भोजन तो मिल जाता है। यदि हम साक्षात् यह कुत्ता ही हो जाते, तब तो कहना ही क्या?

मस्तराम तो काफी होशियार था। वे तो दुनिया की खबर लेते फिरते थे। मगर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उन्होंने भी उस आदमी से बहुत कुछ सीखा। इस बातचीत से उन्हें तमाँचे लगे। उन्होंने सचमुच ही इस उलटी दुनिया की औंधी खोपड़ी का रहस्य वहीं जाना! उन्हें यह बात साफ-साफ झलक गई कि जहाँ इस दुनिया में दिन-रात न्याय और हक की दोहाई दी जाती है वहीं न्याय का नाम भी नहीं! वहीं यह ज्वलन्त अन्याय! वहीं मानवता का यह घोर अपमान! उन्होंने उस गरीब को अपना गुरु माना और संकल्प कर लिया कि अब से केवल इसी बात का प्रचार करूँगा और यही नंगा चित्र किसानों और अन्य कमाने वालों के सामने निरन्तर रखूँगा, जिसे मेरे इस 'गुरु' ने सुझाया है। जिस प्रकार दत्तात्रेय ने अपने अनेक गुरु इसी ढंग के बनाए थे, ठीक वैसा ही उन्होंने भी किया। यदि हम किसानों के भीतर सामूहिक तथा व्यापक रूप से वर्गचेतना और संघशक्ति लाना चाहते हैं तो यह ऊपर दिखाया चित्र हरेक स्त्री, पुरुष, बच्चे के सामने रखना ही होगा। ताकि उनके मन में वर्तमान व्यवस्था और न्याय के ढोंग के प्रति प्रचण्ड असन्तोष एवं घोर घृणा पैदा हो। ताकि उनका खून इसे याद करके उबल पड़े और रह-रह के इसके वे लोग दाँत पीसें।

कहते हैं कि आवश्यकता सभी चीजों की जननी है। हजार लेक्चर दीजिए कि संगठन करो, संघशक्ति लाओ, वर्गचेतना और श्रेणी की भावना अपने आप में—सभी किसानों में—पैदा करो। मगर कौन पूछता है? कौन सुनता है? जब तक किसान को उसकी जरूरत नहीं मालूम होगी वह क्यों उसके लिए फिक्रमन्द होगा? भूख लगे बिना भोजन की चिन्ता किसे होती है? और जब भूख लगती है, तो खामख्वाह खाना ढूँढ़ लेते ही हैं। इसीलिए जब वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के प्रति उसे क्रोध होगा और फलस्वरूप इसे मिटाने को तुल जाएगा तो बिना बुलाए आपको-हमको ढूँढ़ेगा। खुद-ब-खुद ही, और सवाल करेगा कि इस अनर्थ का, इस दिन दहाड़े की लूट और कानूनी डकैती को, इस अन्धेर खाते को कैसे दूर किया जाए? वह तो बेचैन हो के पथप्रदर्शक ढूँढ़ता फिरेगा। रास्ते का पता लगाता फिरेगा। तभी आपको, हम को, किसान सभा को और नेताओं को असली मौका मिलेगा। उसे संगठित होने का उपदेश देने के लिए और यह कहने के लिए कि श्रेणीबद्ध हो जाओ। बिना इसके काम चलने का नहीं।

यह तो मानी हुई बात है कि हमें न तो जमींदार नामधारी जीव को मिटाना है और न उसके अमलों और नौकरों को। यह ठीक है कि कष्ट वही देते हैं जो जमींदार, या उसके अमले हैं। आदमी का जी भी सहसा यही चाहता है कि उन्हें मिटा दें। मगर विचार करना तो होगा। ऐसा काम कर लेना निरी नादानी होगी। हमें इस बीमारी के तह के भीतर पहुँचना होगा और रोग का ठीक निदान करके उसके मूल पर आघात करना होगा। पिलही होती है पेट में और रह-रह के ज्वर आता है उसकी के चलते। ज्वर की दवा की जाती है यह हम जानते हैं। मगर वह तो अच्छा हो-हो के फिर चला आता है। इसीलिए कुशल वैद्य और डॉक्टर उसकी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जड़ का पता लगा के उसे ही खत्म करना चाहते हैं! पुलिस के दारोगा और अफसर के जुल्म को देख के उसे ही मिटाने में कोई बुद्धिमानी नहीं है। वह तो मर जाएगा। मगर उसकी जगह दूसरा आदमी बहाल होगा। जो सम्भव है, उससे भी बढ़ के शैतान हो, और फिर वही जुल्म! आखिर कितने आदमियों को हम मिटाएँगे और खुद मिटेंगे? क्योंकि एक को मिटा के हम बच नहीं सकते। खुद भी हमको मिट जाना ही होगा। यह तो बेवफा की होगी। हमारे जैसे ज्यादा लोग तो हैं नहीं। और जब हमीं मिटे तो फिर जुल्म तो रही गया—रही जाएगा।

अतएव उस जुल्म की जड़ को ही क्यों न देखें। पता लगेगा कि वह शासन व्यवस्था और सरकार ही ऐसी है जिसका काम जालिम दारोगा के बिना चली नहीं सकता। इसीलिए तो जोई अफसर आता है उसे ही मजबूरन जुल्म करना ही पड़ता है। क्योंकि वह तो समझता है कि 'वह हुजूर का नौकर है, न कि बैंगन।' वह न्याय का नौकर नहीं है, किन्तु सरकार का। अतः सरकार की खैरियत के लिए जो जरूरी है उसे वही काम करना ही पड़ता है। वह खुद भला से भला हो तो भी कोई बात नहीं है। 'लंका में जो जनमता है वह राक्षस होता ही है।' इसलिए तो शासन व्यवस्था को ही बदलना लाजिमी है। क्योंकि 'एक ही साधे सब सधैं।' फिर देखेंगे कि वही अफसर अच्छा हो जाएगा और जुल्म का नाम भी न लेगा।

ठीक उसी प्रकार यदि जमींदार या उसके अमले मर मिटें तो वे खत्म न होंगे। नए-नए पैदा होते ही रहेंगे—पुरानों की जगह पर आते ही रहेंगे, जब तक जमींदारी रहेगी, या जमींदारी पैदा करनेवाले रहेंगे। सन् 1793 ई. की 22वीं मार्च को जिस सरकार ने इस जमींदार को विधिवत जन्म दिया वह मौजूद ही है—जमींदारी की जननी मौजूद है। इसलिए जमींदारी मिट के भी पुनः पैदा हो सकती है। जब तक जननी में जननशक्ति मौजूद है। अतएव जमींदारी को तो मिटाना ही होगा। मगर उसी के साथ वर्तमान शासन प्रणाली को भी मिटा के ऐसी प्रणाली कायम करनी होगी। जो भीतर, बाहर, सर्वत्र किसानों के ही अनुकूल हो—किसानों और मजदूरों (श्रमजीवियों) की ही फिक्र करती हो। उसे चाहे किसान मजदूर राज्य कहिए, या जनता का राज्य। उसे ही आगे चलकर समाजवाद कहिए या साम्यवाद। हर हालत में कमानेवालों के हाथ में शासन सूत्र लाना ही होगा। तभी ये कष्ट दूर होंगे। न कि जमींदारों, उनके अमलों या सरकारी अफसरों के मार डालने मात्र से।

इस प्रकार जिनसे हमें लड़ना है और हक छीनना है। उनकी एक श्रेणी है, एक जाति है, एक धर्म है, जिसे जमींदारी कहते हैं। यह जमींदारी ही जमींदारों और उनके अमलों की श्रेणी है। उनका वर्ग है, उनका क्लास है। आदमी की तो वहाँ असल में कोई अपनी हस्ती नहीं है। वह तो उसी जमींदारी की मशीन का एक पुर्जा मात्र हो जाता है फिर चाहे वह जमींदार हो, उसके बाल बच्चे हों, या अमले फैले। पुर्जे का तो काम ही होता है मशीन को ठीक रखना और उसके निर्बाध चलने में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मदद करना। जो पुर्जा ऐसा न हो वह उसमें लगाया ही नहीं जा सकता, उसमें लग सकता ही नहीं, उसमें फिर हो सकता नहीं और जो फिर हो जाता है उसके हजार चाहने पर भी वह मशीन रुक नहीं सकती। किन्तु चलती ही रहती है। ज्यादा से ज्यादा इतना ही किया जा सकता है कि वह उस मशीन से निकाल दिया जाए और उसकी जगह दूसरा लगा दिया जाए।

जमींदार का यदि विश्लेषण करें तो मालूम हो जाएगा कि मनुष्य और जमींदारी को मिला देने से वह बनता है—वह दोनों का सम्मिलित रूप है। इनमें मनुष्य का रूप तो वही है जो किसान में या औरों में पाया जाता है। हजार गौर करने और विचारने के बाद भी उसमें कोई विशेषता नजर आती नहीं है; वही भूख, प्यास, वही त्रास और डर, वही लज्जा, वही बीमारियाँ वगैरह उसमें भी हैं, जो किसान में। इसलिए मनुष्य की हैसियत से किसान की अपेक्षा न तो उसका कोई जुदा वर्ग है और न किसी विशेष प्रकार के सलूक का अधिकारी ही वह माना जा सकता है। यदि किसान को जान से मार डालना हम उचित नहीं समझते और न भूखों रखना, तो उसको कैसे समझेंगे, बहैसियत मनुष्य के? यदि मानवता के प्रति होनेवाले ज्वलन्त अपमान को मिटाना हमारा ध्येय है, यदि सचमुच ही मानव समाज को हम सुखी बनाना चाहते हैं, तो उसका अपमान कैसे करें, या उसे दुःखी क्यों बनाएँ जब कि मानव होने के नाते उसमें भी मानवता उतनी ही है जितनी किसान में, या दूसरों में? उसके बाल बच्चों को भूखों मारने की बात हम कैसे सोचें जब कि किसानों के बाल बच्चों को भर पेट अच्छा खाना खिलाना चाहते हैं? उन्हें भिखमंगे बनाकर भिक्षुकों की एक नई सेना खड़ी करने की बात हमारे दिमाग में क्यों आए जब हम पहले से ही मौजूद गरीबों और भिक्षुकों का नाम नहीं रहने देकर उन्हें सुखी-सम्पन्न बनाना चाहते हैं? असल में इस बात पर अच्छी तरह विचार कर लेना और बात को खूब समझ लेना जरूरी है।

सवाल हो सकता है कि यदि वे आदमी हैं तो राक्षस और पिशाच की तरह व्यवहार क्यों करते हैं? भरी सभा में जिस प्रकार द्रौपदी को नंगी करने की चेष्टा हुई ठीक उसी प्रकार मानवता को नग्न करके उस पर ऐसी दशा में वे कोड़े क्यों लगाते हैं? यदि उनमें मानवता होती तो ऐसा क्यों करते? क्या अपनी चीज के साथ भी कभी किसी की ओर से ऐसी बदसलूकी और हृदयहीनता का व्यवहार होता है? बात तो सही है और क्रोध भी तो उन पर इसीलिए होता है। बात यह है कि जमींदार में मनुष्य के अलावा जो दूसरा भाग जमींदारी वाला है उसी के करते ऐसा कुकर्म, ऐसा अनाचार और ऐसी हृदयहीनता का काम वे कर डालते हैं। जब आदमी शराब पी के मतवाला होता है तो अपनी बहू-बेटी के सामने भी नंगा होकर नाचता और उसकी इज्जत उतारने में नहीं हिचकता। पागल हो जाने पर तो हरेक आदमी कुछ भी कर सकता है। रावण भी तो आखिर वेद-वेदांग पढ़ा-लिखा ब्राह्मण ही था! सो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भी बहुत बड़े ऋषि का पोता। मगर कौन सा कुकर्म उससे बचा था? नशे की हालत में मनुष्य अपने आपको भूल जाता है—अपने भीतर निवास करनेवाली मानवता देवी को देख नहीं सकता, पहचान नहीं सकता। फिर औरों में रहनेवाली को क्यों कर पहचाने और देखे? यह जमींदारी पिशाची, यह मदिरा उसे मनुष्य से पशु और इनसान से हैवान बना डालती है! खूबी तो यह है कि इस चीज को वह समझ भी सकता नहीं। जैसे शराबी शराब को पसन्द करता, जी जान से और उससे लिपटता है, ठीक वही दशा जमींदार की है। वह इस पिशाची को, इस मदिरा को छोड़ना नहीं चाहता। किन्तु सारी ताकत लगा के इससे लिपटना चाहता है। आखिर वह मदिरा ही क्या जो बेहोश और विवेक भ्रष्ट न करे? इसी से तो उसकी अलग श्रेणी, उसका पृथक् वर्ग और जुदा दल बन गया, और इस प्रकार मानवता के दो विभाग हो गए!

यह जमींदारी विशुद्ध बुराई है! इसमें जरा भी शकशुबहा नहीं। यह स्वयं बुराई ही है, न कि इसमें बुराई रहती है। यह बुराई से जुदा कोई चीज ही नहीं है कि कोशिश करके सुधारी जा सके। जैसे चोरी, व्यभिचार आदि बुराइयों को सुधार नहीं सकते, किन्तु उन्हें एकमात्र मिटा देना ही चाहिए! सुधार तो चोर, व्यभिचारी आदि आदमियों का भले ही कर सकते हैं, यदि उनसे चोरी आदि छुड़ा सकें। ठीक उसी प्रकार जमींदारी को जड़-मूल से नष्ट करके ही जमींदार को सुधारने की कोशिश कर सकते हैं। चोर में चोरी के रहते जैसे वह सुधर नहीं सकता, वैसे ही जमींदारी के रहते जमींदार को सुधारने का खयाल जगे हुए ही स्वप्न देखने के बराबर ही है। यह ठीक है, जमींदारी मिटाने के बाद जमींदार तो भीगे कुत्ते से भी बदतर हो जाता है! यही कारण है कि यदि यह जमींदारी बड़े से बड़े महात्मा को भी सौंपी जाए, तो या तो वही रही नहीं सकती और खत्म हो जाएगी, या महात्मा को ही खत्म करके पापात्मा बना छोड़ेगी। यह सम्भव नहीं कि वह भी रहे और महात्मा भी बने रहें। यदि ईश्वर को जमींदार बना दें, तो वह सबसे ज्यादा जालिम हो जाएगा। आदमी को तो कुछ डर रहता है, समाज का, कानून का और नर्क या परलोक का भी! इसीलिए वह कभी-कभी जुल्म करने में हिचकता भी है और फूँक-फूँक के पाँव भी देता है। मगर ईश्वर को तो किसी का डर, भय या लज्जा नहीं। इसलिए वह तो खुल के होली खेलेगा। वह तो किसानों में आतंक राज्य कायम कर देगा यदि कहीं वही जमींदार बन जाए!

इस प्रकार इस जमींदारी पिशाची की भीषणता तथा बीभत्सता का चित्र सामने आ जाता है और इसने जिस जमींदार वर्ग को जन्म दिया है उसकी भी क्रूरतम करनी और नृशंसता प्रकट हो जाती है। मगर किसानों का जो क्रोध जमींदारी के ऊपर न हो के जमींदार पर ही होता है और उस क्रोध का कभी-कभी शिकार जो वह जमींदार ही हो जाता है वह तर्क और दलील के आधार पर उचित न होने पर भी स्वाभाविक ही है और उसे सर्वथा बन्द किया जा सकता भी नहीं। जन साधारण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

का कुछ ऐसा स्वभाव ही होता है कि वे बुराई को उसके करने वाले से अलग नहीं कर सकते। खासकर जब वह बुराई ऐसी घृणित और बीभत्स हो कि उसके स्मरण से ही रोमांच हो जाए, तब तो अलग करना और भी असम्भव हो जाता है। फलतः सारा क्रोध उस बुराई के माथे उतारने के बजाय बुराई करने वाले के ही सर उतरता है। एक तो बुराई होती ही है यों खटकने वाली और अगर वह बीभत्स हो, तब तो कहना ही क्या? तब तो गोया काले को कम्बल ही ओढ़ा दिया गया! यह भी बात है कि उस बुराई को करने वाले से अलग कहीं पाते नहीं कि उसे जुदा समझें। वह तो उसी में लिपटी हुई मिलती है। इसलिए भी वह आदमी ही क्रोध का शिकार बनता है। इसे कतई रोका भी कैसे जा सकता है? यत्न करके इसमें कमी की जा सकती है। जब तक सूक्ष्म विवेक की दृष्टि सभी मनुष्यों में न आए यह विभाग वह कर कैसे सकते हैं? दूध में का पानी अलग करना सबका काम नहीं है। वह तो केवल हंस का ही बताया जाता है और सभी पक्षी तो हंस होते ही नहीं। उसी प्रकार सभी आदमियों को, या सभी किसानों को सूक्ष्म विवेकी बना सकना कम से कम आज तो असम्भव है। इसीलिए हजार कोशिश करें तो भी जमींदारों के माथे उनका क्रोध कुछ न कुछ जरूर ही उतरेगा, यह मानना ही होगा। हमें व्यावहारिक बनना होगा, न कि हवा में उड़ान मारना कथमपि उचित है। उसमें खामख्वाह प्रोत्साहन नहीं देना चाहिए यह बात दूहैरी है और इस पर जोर भी दिया जा सकता है।

इस समूचे विवेचन से यह बात साफ हो गई कि जमींदारों की एक अलग श्रेणी और कैसे और क्यों बनी है वे क्यों जुल्म और अत्याचार करते हैं—अनवरत शोषण करते हैं। असल में यही उनका रूप ही है। हमने यह भी देख लिया कि यह श्रेणी कितनी भयंकर, नृशंस और हृदयहीन है यह कितनी खतरनाक और खूँखार है, तथा किस दर्जे तक विवेक भ्रष्ट एवं मतवाली है। किसानों को उसी श्रेणी से, उसी दल से निपटना है, न कि व्यक्तिगत जमींदार से, यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। व्यक्तिगत जमींदार तो केवल निमित्त मात्र हैं। क्योंकि व्यक्तियों को छोड़ के श्रेणी का स्वतन्त्र पैता तो कहीं मिलता नहीं कि उससे लड़ें। साथ ही, जमींदार वर्ग की यह नीति भी है कि एक ही साथ सबके सब न लड़ें। नहीं तो किसान भी मिल जाएँगे और एक ही साथ हो के भिड़ेंगे। वे किसानों में वर्ग चेतना और श्रेणी का भाव आने देना नहीं चाहते। इसीलिए एक साथ प्रत्यक्ष हमला नहीं करते। किन्तु व्यक्तिगत रूप से कभी यहाँ और कभी वहाँ। कभी एक जमींदार का हमला होता है, तो कभी दूसरे का।

जमींदारों की अपनी हालत यह है कि ऊपर से चाहे उनमें जाति, धर्म, सम्प्रदाय, प्रान्त आदि का भेद हो, लेकिन भीतर से वे एक हैं और उनका एक सुसंगठित दल है। उस दल में काफी वर्गचेतना और श्रेणी की भावना है—संघ शक्ति है। एक जमींदार सुदूर दक्षिण का और दूसरा नेपाल की तराई का, या काश्मीर के पहाड़ों का ही क्यों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

न हो, दोनों का स्वार्थ एक ही है, ऐसा वे मानते हैं। गो कि प्रान्तों के कानून तो जमीन के बारे में भिन्न-भिन्न हैं। जमीन के बन्दोबस्त की प्रणाली (land tenure) भी जुदी-जुदी है। एक जगह दवामी बन्दोबस्त है, दूसरी जगह नहीं। फिर भी उनके पारस्परिक स्वार्थ एक हैं ऐसा सभी मानते हैं और यदि किसान कहीं भी सिर उठावे तो सभी बेचैन हो के उसे दबाने की आवाज एक ही साथ उठाते हैं। एक जमींदार ने यदि सीमाप्रान्त में किसानों के खिलाफ आवाज उठाई, तो आसाम के जमींदार उसकी हुआँ में हुआँ खामख्वाह मिलाएँगे। बात यहाँ तक कि यदि उन्हें मालूम भी न हो कि असल बात क्या है, तो भी आखिर जमींदार ही तो बोलता है और हम भी जमींदार ही हैं। इसलिए हमें भी उनकी आवाज में अपनी आवाज मिलाना ही होगा। वे यह पता भी नहीं लगाना चाहते, पता लगाने के लिए रुकना भी नहीं चाहते कि किसान की ज्यादती है, या जमींदार की। पता उनकी बला लगाए। उनके लिए तो इतना ही काफी है कि एक जमींदार ने चीख-पुकार मचाई है और किसान के खिलाफ उसकी यह शिकायत है! इसी का नाम है वर्गचेतना!

भैंसे और घोड़े की आपस में अदावत होती है और वे लड़ते हैं। यह शत्रुता श्रेणी या वर्ग की है। वहाँ कोई भैंसा पूछने थोड़े ही जाता है कि घोड़े ने आया कोई जोर जुल्म किया है, या नहीं। वह तो स्वभावतः ही उस लड़ाई में पड़ जाता है। यही बात जमींदारों और शोषकों की है। उनका विरोध किसानों के साथ वैसा ही स्वाभाविक है। जिस तरह बकरी को देखते ही बाघ उछल पड़ता है और उस पर धावा बोल देता है! ठीक वैसा ही जमींदार भी करते हैं। यदि विचार करें तो बकरी, या गाय का कोई भी दोष नहीं वह तो घास खाने वाले पशु हैं और बाघ खाता है मांस। वे पशु गाँवों में रहते हैं और बाघ जंगल में। इसलिए अदावत और हमले का कोई कारण है नहीं सिवाय इसके कि बकरी कमजोर होती है। वह बाघ का खाद्य भी है। यही बात किसान के बारे में भी है। वह कमजोर है और जमींदार का खाद्य है। इससे ज्यादा आक्रमण के लिए और कारण चाहिए ही क्या?

परन्तु किसानों की हालत ठीक उलटी है। वे जाति, पाँति, धर्म, सम्प्रदाय, गाँव, जिला, प्रान्त आदि अनेक बन्धनों से जकड़े हुए हैं। फलतः उनमें वर्ग चेतना आती ही नहीं। जिस प्रकार नारंगी के भीतर कितने ही टुकड़े होते हैं। फिर भी ऊपर से पता नहीं चलता कि वे अलग-अलग हैं, यहाँ तक कि छिलका हटाने पर भी नहीं मालूम होता। मगर वस्तुतः वे पृथक्-पृथक् होते ही हैं। वही हालत किसानों की है। पास पड़ोस में रहने और एक जाति, यो धर्म का सम्बन्ध होने पर भी वे जुदा-जुदा ही रहते हैं। वह तो महज ऊपरी एकता और निकटता है। उस काम चलने का नहीं। चन्द्रमा और चकोर एक-दूसरे से बहुत दूर रहते हैं। कभी-कभी तो बादल के पर्दे में चाँद छिप भी जाता है। फिर भी भीतर से दोनों अत्यन्त निकट हैं, दिल से मिले हुए हैं। इसे ही मिलना कहते हैं कि एक के प्रति दूसरे की भावना सदा बनी रहे,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चाहे दोनों पास हों या दूर। जिस प्रकार जमींदारों की एकता में और उनकी वर्ग भावना में उनका एक-दूसरे से फासला या धर्म, सम्प्रदाय आदि बाधक नहीं हैं, ठीक वही बात यदि किसानों में भी हो, तो काम चले। वही होना जरूरी है।

हम तो जाति और धर्म की एकता को खतरनाक एवं धोखे की चीज भी मानते हैं। ऐन मौके पर से इनसे किसानों को धोखा हो सकता है—धोखा होता है। हम तो आर्थिक बातों और स्वार्थों की एकता चाहते हैं, जैसे जमींदारों की है। हर किसान यह समझे कि किसान मात्र का आर्थिक स्वार्थ एक है। कोई कानून ऐसा नहीं बन सकता, जो हिन्दू के लिए और हो और मुस्लिम के लिए दूसरा हो। वह तो धर्म और जाति का खयाल कतई नहीं करता। जमीन, लगान वगैरह का कानून भी सभी के लिए एक है चाहे हम भले ही आपस में कोई तीर घाट जाएँ और कोई मीर घाट। इसलिए हम किसानों को भी उसी आर्थिक एकता के आधार पर श्रेणीबद्ध होना चाहिए और परस्पर में वर्गचेतना लानी चाहिए कि हमारे लिए कानून एक है, व्यवस्था एक है। इसीलिए हम सभी एक हैं। हमारे स्वार्थों में कोई भी अन्तर नहीं। उन्हें हृदय से यही समझना तथा यही मन्त्र जपना पड़ेगा।

जमींदारों से लड़ने में भी यही बात है। जैसे वे लोग श्रेणीबद्ध और वर्गचेतना वाले हैं, यदि किसान उनसे हजार गुना ज्यादा श्रेणीबद्ध एवं वर्गचेतना वाले न हों, तो उनका मुकाबला करेंगे कैसे? अगर मुकाबला जैसे-तैसे कर भी लें, तो पछाड़ेंगे उन्हें कैसे? जमींदारों में पूर्ण जागृति, संगठन और वर्गभावना के साथ ही उनका बाहरी प्रभाव भी ज्यादा है। उनके पास धन-सम्पत्ति भी अपार है। सरकार भी उनकी ही सुनती है। समाज भी उन्हीं की बात पर विश्वास करता है! दुनिया ही ऐसी अन्धी है कि धन, प्रभुत्व और व्यवहार कुशलता जहीं हो वहीं वह ईमानदारी और सच्चाई भी मानती है! वह धनियों को ही धर्मरक्षक और सच्चे समझती है ! हालाँकि बात ठीक उलटी है सरकार तो मालदारों और स्थिर स्वार्थवालों (Visted interests) की ही है। इसलिए वह भी उन्हीं की ओर आसानी से झुक जाती है। वह भी उनकी ही मदद करती है।

इसका जवाब गरीब, सीधे, प्रभुत्वहीन, प्रभावरहित किसान कैसे देंगे? वे सफलता के साथ जमींदारों और शोषकों को पछाड़ेंगे कैसे? उनके पास आखिर लड़ाई का सामान हई क्या यदि उनमें जीती जागती एकता और वर्गचेतना न हो? जब तक किसान मात्र यह न समझ ले और अपने दिल दिमाग में यह बात बिठा न ले, कि हम सभी एक हैं और हमारा स्वार्थ इसी में है कि हम मिलकर रहें, तब तक कैसे काम चलेगा? जब तक किसान का मर्द, उसकी स्त्री और उसके बच्चे—हरेक यह न मानेंगे और उनके भीतर यह तड़पन होगी कि यदि एक किसान हारा तो हम सभी हारे, यदि एक का खेत गया या वह लुटा तो निश्चय ही हम सबों का खात्मा हो जाएगा, क्योंकि 'बुढ़िया के मरने का डर नहीं है, असल डर है यम का रास्ता खुल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जाने का," तब तक उनका निस्तार नहीं हो सकता। हजार कोस दूर रहने वाले किसान के बच्चे ने ज्योंही सुना कि जमींदारों के साथ किसी किसान की मुठभेड़ है, त्यों ही उसने दौड़ के फौरन यदि अपने बड़े-बूढ़ों को यह बात सुना दी और वे तैयार न हो गए कि हमें उस किसान की धन, या जन से जैसे हो मदद फौरन करनी ही होगी, और जब तक उनकी उस तैयारी में उनकी स्त्रियों का भी हार्दिक अनुमोदन न हो, तब तक किसानों की वर्ग चेतना कैसी? तब तक उनकी विजय की आशा कहाँ? हम भूखे रहेंगे, हमारा पूजापाठ छूटेगा तो छूटेगा, हम कपड़ा न पहनेंगे, हमारे पितरों का पिण्डा पानी भले ही रुके। मगर सुदूरवर्ती किसान जो युद्ध यज्ञ कर रहा है वह हमारे ही लिए है, हमारा ही है। इसलिए उसमें हमारी तरफ से 'पत्रं पुष्पं' की आहुति सबसे पहले पड़ ले, पीछे और कुछ होगा। यह बेचैनी और यह लगन जब तक किसान मात्र के दिल में न हो, उसके बच्चे-बच्चे तक में न पाई जाए, तब तक न तो उनका उद्धार होगा और न उनमें असली चेतना और न जागृति ही मानी जाएगी।

जैसे जब तीर्थ करने के लिए चलते हैं तो वहाँ अपना परिचित कोई नहीं होता। परिचय बुद्धि से तो हम उस काम में पड़ते ही नहीं! किन्तु कर्तव्य बुद्धि से ही। ठीक उसी तरह यदि कहीं भी किसानों की लड़ाई जमींदार या सरकार से चलती हो और यह खबर मिल जाए कि वे शेषकों से भिड़ें हैं, तो हर गाँव और हर परिवार से किसान लोग उसे तीर्थ समझ वहाँ के लिए चल पड़े फौरन। हजार बाधा पड़ने पर भी न रुकें। तब तो निश्चय ही किसानों का त्राण हो जाएगा। यदि बीमारी या किसी और बाधा के करते न जा सकें तो डाक से कुछ धन ही भेज दें, लोगों से संग्रह करके ही पहुँचाएँ और यदि यह करने में भी असमर्थ हों तो बराबर विजय की प्रार्थना ही करें, तो बेशक किसान राज्य जल्दी ही कायम हो जाए। लोग पूछें कि कहाँ चलें तो उत्तर मिले कि तीर्थ यात्रा है। किसान फलां जगह लड़ते हैं, हम वहीं जा रहे हैं उसमें सम्मिलित होने के लिए ही। यह नया तीर्थ बना है, जो पुराने तीर्थों का भी उद्धार करेगा।

यदि कोई कहे कि वह किसान क्या तुम्हारे सम्बन्धी हैं जो जा रहे हो दौड़े दौड़ाए? तो चटपट उत्तर मिले कि सम्बन्धी की बात क्या? सम्बन्धी तो हमारे किसान मात्र ही हैं। वह किसान तो हमारे लिए ही लड़ रहे हैं। इसलिए हम अपनी निजी लड़ाई में जा रहे हैं! तभी किसानों के दुःख भागेंगे और वे विजयी होंगे।

यदि कोई जमींदारों और शोषकों का दलाल खामख्वाह सवाल उठाए कि तुम हिन्दू हो और वह किसान मुसलमान हैं, या यों कहें कि तुम्हीं मुसलमान हो और वह हिन्दू; या यह कि तुम ब्राह्मण, क्षत्रियादि हो और वह अस्पृश्य, हरिजन, अहीर, कुर्मी आदि; या तुम्हीं हरिजन आदि हो और वही ब्राह्मणादि; फिर तुम्हें क्या पड़ी है कि बेतहाशा घर बार का काम छोड़ के दौड़े जा रहे हो? तो फौरन मुँह तोड़ उत्तर मिले, जैसा कि पाँच वर्ष के अबोध बालक ध्रुव ने नारद आदि को दिया था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जब विमाता के द्वारा किए गए प्रचण्ड अपमान से दग्ध हृदय ध्रुव अपनी माँ की राय से उस अपमान का परिशोध करने के लिए जंगल की ओर तप के वास्ते चला, तो रास्ते में नारद ने उसे समझाया-बुझाया और डराया कि नादान बच्चे हो, मत जाओ, जंगल में खूँखार जानवर खा जाएँगे! इस पर ध्रुव ने उनकी ओर एक बार घृणापूर्ण दृष्टि से देखा और हँस दिया। फिर कहा कि चलो, चलो, तुम्हारे जैसे ऋषि-मुनि हमने बहुत देखे हैं। मुझे तो अपना संकल्प पूरा करना है। मैं तुम्हारी बातों में पड़ने का नहीं।

किसान भी ठीक-ठीक वैसा ही कह दे और हँस दे घृणापूर्ण हँसी। साथ ही कड़क के सुना दे कि जब विवाह, शादी, गमी या भोज की बात होगी तो जाति और धर्म का पता पूछेंगे, या जब पूजापाठ का प्रश्न आएगा तो मन्दिर और मस्जिद, या हिन्दू-मुसलमान की बात छेड़ेंगे। आज तो यह बात छेड़ना तो मोहन भोग में कंकड़ी डालना है। छिः छिः। आज तो हम शादी, गमी और पूजापाठ, या स्वर्ग-नरक सभी की जड़ को ठीक करने जा रहे हैं! क्योंकि यदि जमीन ही न रही, तो खाना-पीना गया और 'भूखे भजन न होय गोपाला'! फिर यह असमय की तान तो आप छेड़ रहे हैं और हमें समझाने चले हैं उसके लिए धन्यवाद! जाइए, अब ज्यादा न छेड़िए। नहीं तो दबी आग उमड़ जाएगी! जब ऐसा उत्तर किसानों की ओर से मिलने लगे तो आधी लड़ाई खत्म हो गई ऐसा समझिए!

हमारी बदकिस्मती ऐसी है कि किसान अभी तक जमींदारों पर और उनके अमलों पर भी विश्वास करता है। वह दिल से मानता है कि यदि वे खुश हो जाएँ तो उसकी जमीन वापस देंगे और उस पर होने वाले जुल्म कम हो जाएँगे—खत्म हो जाएँगे। उनके आगे बढ़ने में यही सबसे बड़ी अड़चन है। उनमें अपनी नासमझी के करते कुछ ऐसा परस्पर विरोध है कि हैरत में आना पड़ता है। एक ओर तो निश्चय ही उन्हीं को लूट कर जमींदार मोटे होते हैं और वह लूट बन्द करने के लिए लड़ना ही होगा। बिना लड़े-भिड़े सिर्फ हाथ जोड़ने से ही कहीं लूट भी बन्द होती है? वह तो इस तरह और भी आसान हो जाती है। क्योंकि तब तो लुटेरे को कोई भी खटका रही नहीं जाता। और अगर दया की बात ही होती तो वह लूटने आता ही क्यों? यदि किसानों पर जमींदार दया करें, तो रहेंगे कहाँ और खाएँ, पीएँगे क्या? तब तो धीरे-धीरे किसान देना ही बन्द कर देगा। जब उसे नहीं अंटता तो उन्हें दे कैसे?

कहते हैं कि वर्षा की मूसलाधार में एक साधु किसी अमीर के बैठ के में आया और हाथ जोड़ के छाये में खड़ा हो गया कि पानी छूटने पर चला जाऊँगा। वर्षा देर तक होती रही। अतः बैठ गया। फिर टाँग भी उसने फैलाई और अन्त में सो गया। पीछे तो उसका हटाना कठिन हो गया। उसने उस जगह पर दावा ठोंक दिया। ठीक यही दशा किसान क्यों न करेंगे? आखिर देंगे क्यों? कानून और रूढ़ि के करते जब तक ऐसा करते हैं, तभी तक। ज्यों ही वसूली में ढिलाई हुई कि सब

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कमाई उनके पेट में चली जाएगी। और न बचेगा और न देंगे! इसीलिए यहाँ दया का प्रश्न हई नहीं। किन्तु लड़ाई का ही सवाल है। फिर भी यह समझते हुए भी वे समझाने-बुझाने पर विश्वास रखते हैं और चाहते हैं कि किसान सभा वाले जमींदारों को कह-सुन कर ठीक के दें और जमीन वगैरह दिला दें। दिल से वे ऐसा मानते और चाहते हैं! यही तो बुरी बात है।

अजीब हालत है! बकरी से कहिए कि वह सिंह की दया पर विश्वास करे, तो क्या वह ऐसा करेगी? उसे तो कुछ बताना पड़ेगा ही नहीं! बाघ को ज्यों ही उसने देखा कि भड़की। उसके पास फटकेगी भी नहीं, चाहे हजार कोशिश कीजिए। वह तो जान लेकर उससे बहुत दूर भागेगी। बाघ के हाथ में एक माला दे दीजिए और गले में भी हजारिया माला पहना दीजिए; उसके अंग-अंग में चन्दन और भभूत पोत दीजिए, गाँधी टोपी और खादी से भी उसे ढँक दीजिए और कह दीजिए कि खूब आँसू बहाए, बकरियों की असहाय अवस्था पर तर्स खाए, लम्बे लेक्चर दे और उनके उद्धार की बातें करे, मगर बकरी तो सुनेगी भी नहीं। यदि धोखे से कहीं उस घर में आ जाए जहाँ बाघ मौसा हों, तो देखते ही बेतहाशा भाग निकलेगी! बिल्ली के सम्बन्ध में चूहों की भी ठीक यही मनोवृत्ति है। कुत्तों को जो लोग शहरों में मारते फिरते हैं उन्हें दूर से देख के ही वे भूकना और भागना शुरू करते हैं। हालाँकि सूरत शक्ल से हमें (इन्सानों को) पता भी नहीं लगता कि ये बधिक महाराज हैं! मगर कुत्तों को उनसे कोई गन्ध सी मालूम हो जाती है सो भी दूर से ही।

यही नैसर्गिक वर्ग-भावना और यही वर्ग-शत्रु के प्रति स्वाभाविक प्रवृत्ति है। इसे कभी सिखाना नहीं पड़ता! यह तो खुद-ब-खुद होती है! मगर मनुष्य तो बहुत गिर गया है। उसकी अनेक स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ विलुप्त हो गई हैं! इसीलिए उसे सिखाने की जरूरत पड़ती है। इसीलिए किसान को भी सिखा के तैयार करना होगा। पीछे तो उसके वंश में यह बात स्वाभाविक-सी हो जाएगी!

लोग श्रेणी सामंजस्य (Class-Collaboration) की बातें बका करते हैं। क्या बकरी और बाघ तथा चूहे और बिल्ली में श्रेणी-सामंजस्य सम्भव है? क्यों? इसीलिए न कि इनमें एक-दूसरे को खा जाने वाला है? इसीलिए जिस मकान में बाघ या बिल्ली को रखिए उसमें बकरी या चूहा न घुसेगा। आप बाघ या बिल्ली के पंजे और नाखून भले ही काट दें, जबड़ों को भी तोड़ दें और अंग-अंग में मजबूत साँकल से जकड़ के उन्हें बाँध भी दें। फिर भी बकरी और चूहे की हिम्मत ही न होगी की वहाँ जाएँ। उनका स्वाभाविक भय कौन हटाएगा? क्या वह जकड़ने वाली साँकल? कदापि नहीं। वह अक्ल के ठेकेदार इनसान को भले ही धोखे में डाल दे। मगर उन पशुओं को नहीं डाल सकती। यदि आप बकरी और चूहे को उनके पास ले जाएँगे तो वे मर जाएँगे तो मर जाएँगे, पर टिकेंगे नहीं। क्योंकि और नहीं, तो बाघ यदि बकरी पर और बिल्ली चूहे पर कहीं गिर ही जाए, तो भी उन गरीबों का तो खात्मा ही समझिए।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इसलिए उनकी स्वभावसिद्ध प्रवृत्ति उन्हें ऐसा सिखाती है कि पास में फटके ही न।

तो फिर शोषकों के पास किसान क्यों जाए? क्या बाघ से उनमें कोई विशेषता है? क्या उसी प्रकार किसान उनके खाद्य माने जाते नहीं हैं? तो क्या कोई दैवी अधिकार जमींदारों को मिला है कि कमाएँ किसान और खाएँ वे और उनके कुत्ते? क्या इसका सबूत है कहीं? उलटा क्यों न हो कि वही लोग कमाएँ और किसान खाएँ? लोग कहते हैं कि दूसरे की कमाई खाने पर अगले जन्म में बैल या गधा बनकर भरना पड़ता है। कहीं ऐसा न हो कि अगले जन्म में जमींदारों, साहूकारों और सत्ताधारियों को गधा और बैल, तथा किसान को पुनः किसान और धोबी बनना पड़े! इसलिए तो उचित यही है कि अब तक उनने किसानों की कमाई खाई। अब उनकी कमाई किसान खाएँ और इस प्रकार यहीं पर ऋण चुकता हो जाए! क्या तुम्हें पसन्द होगा? यदि न भी हो तो किसान आखिर करेंगे ही क्या? जमींदारों आदि से पुराना सम्बन्ध होने के कारण अगले जन्म में होनेवाले उनके कष्टों को मिटा देने के लिए इसी जन्म में वे उन्हें विवश करेंगे ही कि वे लोग कमाएँ और किसान खाएँ! अब तक भूल से जो विश्वास उन पर करते थे वह अब न करेंगे!

यदि कहा जाए कि यदि बकरी बाघ को और चूहा बिल्ली को विवश नहीं कर सकता तो किसान भला कैसे जमींदार आदि को मजबूर कर सकेंगे? यह तो केवल मनोमोदक और सपने का स्वराज्य होगा। एक ओर तो उन्हें इस प्रकार नाचीज और कमजोर बताना और दूसरी ओर बलवान का काम करने की आशा करना, यह अजीब घपला है! अगर वे ऐसा कर लें, तो फिर किसान बकरी या चूहे कैसे हुए?

बात तो ठीक ही है। मगर दलील करनेवाले भूल जाते हैं कि हम संघशक्ति, वर्ग चेतना और श्रेणी संगठन की बात कर रहे हैं। जो बात एक, दो या दस, बीस के लिए असम्भव है वही संघबद्ध होने पर अत्यन्त आसान हो जाती है। एक-दो, या सौ-दो सौ पुआलों से हाथी को हरगिज बाँध नहीं सकते हैं। वह तो सभी को बात की बात में तोड़े देता है। मगर उन्हें ऐंठ के एक-दूसरे में अच्छी तरह मिलाइए और उनकी रस्सी बना दीजिए। फिर देखिए कि हाथी बँध जाता है, या नहीं! पहले पुआल या तो अलग-अलग थे, या यदि मिले भी तो नाम मात्र को ही। वे एक-दूसरे के साथ परस्पर चिपके और बँधे न थे, जिसे संघबद्ध होना कहते हैं! और जब आप ही परस्पर न बँधे, तो गैर को, हाथी को कैसे बाँधेंगे? दूसरों को बाँधने के पहले खुद-ब-खुद आपस में बँध जाना और चिमट जाना होगा ताकि उन्हें कोई पृथक् न कर सके। यही वर्ग चेतना का असली रहस्य है।

बाघ और बकरी, या बिल्ली और चूहों की ही बात लीजिए। ठीक ही है, लाखों बकरियों को एकेवाद दीगरे बाघ मौसा और करोड़ों चूहों को बिलाई मौसी भोग लगा जाती है! यह रोज की बात है। लेकिन यदि केवल सौ-दो सौ बकरियाँ, या चूहे एक राय और एक बुद्धि से तय कर लें कि रोज-रोज की आएदिन की बला को हमें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जैसे हो खत्म करना ही है, तो फल क्या होगा? वे एक ही साथ संघबद्ध हो के मौसा जी और मौसी जी पर जा पड़ेंगे। फिर तो दोनों की हड्डियों का भी पता न चलेगा। हो सकता है, मौसा-मौसी उन पर झपटें और दो-चार की जानें भी जाएँ। मगर सैकड़ों और हजारों के मार और नोच-खसोट से ही उन दोनों की आँतें तक पिस जाएँगी और सब बखेड़ा ही खत्म हो जाएगा।

ठीक इसी प्रकार श्रेणीबद्ध और सुसंगठित हो जाने पर जमींदारों या और शोषकों को चें में बुलाना और उन्हें विवश करना—पछाड़ना किसानों के लिए आसान है। दूसरे उपाय से यह असम्भव है। असल में इसका दूसरा उपाय हई नहीं। इसी चीज से तो जमींदार बचना चाहते हैं। यही खतरा तो वह देखते हैं और इसीलिए तो एक साथ सभी किसानों पर हमला करते नहीं। बगुला भगत की तरह एक-एक करके सभी मछलियाँ खा जाते हैं, न कि एक ही बार सबको खाने की कोशिश करते! लेकिन किसानों को तो उनकी यह चाल समझनी ही होगी। हमारा यह फर्ज है कि उन्हें यह चीज बखूबी समझा दें।

इस वर्गचेतना के मामले में जरा और भी तह में घुस के देखना और तदनुसार ही अमल करना होगा। असल में तो दुनिया में दो ही पक्की और असली जातियाँ हैं। बाकी सभी जातियों और धर्मों के भेद या तो पेट भरने के बाद की चीजें हैं, या धोखे की टट्टियाँ हैं, जिन्हें शोषकों ने जानबूझ के पैदा किया है। यदि पैदा न भी किया हो, तो उनका उपयोग तो अपने लिए खूब ही किया है और उन्हें ऐसे साँचे में ढाला है कि जिससे किसान और कमानेवाले कभी श्रेणीबद्ध एवं संगठित न हो सकें। वे दो असली जातियाँ हैं कमानेवालों की और खानेवालों की। दो ही प्रकार के लोग संसार में हैं भी! एक तो कमानेवाले किसान और मजदूर और दूसरे इन दोनों की कमाई को हड़पने और खानेवाले जमींदार और पूँजीपति। तीसरी जाति, तीसरी श्रेणी, या तीसरा दल वस्तुतः हई नहीं। असल में खानेवालों की हमेशा कोशिश रहती है कि कमानेवाले कभी एक राय तथा संघबद्ध होने न पाएँ। नहीं तो गजब हो जाएगा और सारा मजा ही किरकिरा हो जाएगा! हिन्दू किसान सभा, हिन्दू मजदूर सभा और मुस्लिम किसान सभा, मुस्लिम मजदूर सभा आदि जितनी चालें हैं वह शोषकों और उनके एजेण्टों की ही हैं।

पहले तो उन लोगों ने सीधे ही धर्म और जाति के नाम पर कमाने वालों को आपस में मिलने देना नहीं चाहा और इस प्रकार भेदनीति के सहारे अपनी ओर अपने अन्नदाताओं की लूट जारी रखना चाहा। मगर जब उन्हें उसमें पूर्ण सफलता नहीं मिली और इधर जमाने की गड़बड़ी तथा परिस्थिति के करते किसान और मजदूर अपनी-अपनी सभाएँ करने लगे, तो शोषक और उनके दलाल घबराए। फिर खूब सोच साच के यह दूसरा रास्ता निकाला। पता नहीं कि इसमें भी विफल होने पर क्योंकि विफल तो अवश्य ही होना है—वे कौन सा तीसरा रास्ता निकालेंगे। खुदा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और भगवान का तो बँटवारा कर ही डाला है। हिन्दू रोटी, हिन्दू पानी, हिन्दू शर्बत और मुसलिम रोटी, मुसलिम पानी और मुसलिम शर्बत भी कर ही चुके हैं। जहाँ नहीं भी कर पाए थे, वहाँ भी सरकार ने और उसकी रेलवे आदि ने कर ही दिया है! अब तो हवा का बँटवारा बाकी है! इन भलेमानुसों को यह नहीं सूझता कि हिन्दू का धान, गेहूँ, दूध, घी, दूसरा और मुसलमान का दूसरा नहीं होता। यह भी नहीं होता कि रोटी या भात बना दिया जाए, तो जिससे मुसलमान का पेट भरेगा उससे हिन्दू का न भरेगा! ऐसा भी नहीं देखा कि हिन्दू को बुखार और हैजा कुछ और ही तथा उसकी दवा दूसरी ही होती है और मुसलमान की बीमारियाँ एवं उनकी दवाइयाँ भी निराली ही होती हैं। मलेरिया से पीड़ित मुसलमान क्या किसी और तरह की कुनाइन की गोली से अच्छा होता है और हिन्दू दूसरी ही तरह की गोली से? क्या हिन्दुओं के लिए कपड़े बनाने की मशीनें जुदा ही होती हैं और मुसलमानों के लिए अलग ही बनती हैं? आखिर पागलपन की भी कोई हद होनी चाहिए।

यह सब तो निरी वंचकता और ठगी है। भोले भाले किसानों और मजदूरों को—कमानेवालों को—ठगने के लिए ही ये सब जाल बनाए गए हैं। ताकि वे एक सूत्र में बँध न सकें। कहते हैं कि 'चतुर दुश्मन उपाय से नाशै।' यही बात यहाँ हो रही है। पण्डित और मौलवी सीधे लोगों को बहका के स्वयं अलग सुरक्षित स्थान में जा घुसते हैं और उन्हें आपस में मारने काटने और मरने कटने देते हैं! पण्डित कहता है कि म्लेच्छ से बचो, सजग रहो, देखो वह गौमाता का वध करता है। यदि उसका वध करो तो सीधे स्वर्ग चले जाओगे और अगर एक साथ कइयों का वध कर दिया तो स्वर्ग से भी दस कदम आगे पहुँचने में कोई शक नहीं! इसी प्रकार मौलवी कहता है कि काफिरों से बचो, वह मस्जिद के सामने बाजा बजा के खुदामियाँ को भगा देते और नाखुश कर देते हैं! वह इस्लाम के दुश्मन हैं। उन्हें मारो तो बेरोक-टोक बहिश्त में जा बैठोगे! इसके बाद दोनों ही अलग जा बैठते हैं और बेचारे गरीब हिन्दू-मुसलमान किसान और मजदूर आपस में कट मरते हैं।

कोई भी उन पण्डितों और मौलवियों से नहीं पूछता है कि क्या तुम लोगों को स्वर्ग और बहिश्त नहीं जाना है? क्या तुम्हें वहाँ का टिकट नहीं कटाना है? क्या हम गरीबों ने ही ठेका लिया है? यदि जाना है, तो आगे-आगे चलो और लड़कर रास्ता दिखाओ। पीछे हम जैसा देखेंगे करेंगे। मगर तुम लोग तो अलग बैठ के हलवा मलाई और कबाब बोलाव उड़ाओ और हमीं लोग मरें-मारें यह अब न होने का। यदि स्वर्ग और बहिश्त के बिना तुम्हारा कुछ नहीं बिगड़ता है, तो हमारी कौन सी खर्ची उनके बिना घटी जाती है कि हमीं फिक्रमन्द हों तुम्हारे लिए भी और तुम्हारे स्वर्ग तथा बहिश्त के लिए भी? यदि तुम्हें पहले फिक्र अपनी जान की और हलवा, कबाब की है, तो हमें भी अपनी जान और रोटी की चिन्ता पहले है। पीछे स्वर्ग और बहिश्त को देखेंगे। यही एक मात्र राजमार्ग है किसानों और मजदूरों के श्रेणी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बद्ध और वर्गचेतनायुक्त होने के लिए, न कि और कोई। इसे ही शीघ्र पकड़ना होगा।

किसानों और अन्य श्रमजीवियों को यह समझ लेना होगा कि रोटी और भात, जमीन और जायदाद, वस्त्र और मकान, यही और इसी प्रकार की जीवनोपयोगी दूसरी चीजें ही हमारे लिए ध्रुवतारा हैं—मनुष्यमात्र के लिए ध्रुवतारा हैं। जैसे समुद्र के मध्य में पड़े हुए जहाज का, दिग्भ्रम हो जाने पर, ध्रुवतारा मार्गदर्शक बनता है, यदि पास में कुतुबनुमा न हो। फिर तो उसी को देख के जहाज अपने घाट लगता है। ठीक वैसे ही जब दैनिक जीवन में धर्म-मजहब और जाति-पाँति के नाम पर उन्हें दिग्भ्रम हो, अर्थात् बुद्धि उनकी ठिकाने न रहे, और चकराए, तो रोटी का खयाल करके ही उसे दुरुस्त कर लें। सभी लोग—यहाँ तक कि धर्म-मजहब भी—उन्हें धोखा दे सकते हैं। मगर यह रोटी कभी भी धोखा नहीं देगी। वह सीधा रास्ता बताएगी। जिस काम का नतीजा यह नजर आए कि उनकी और उनके बाल-बच्चों की रोटी छिन जाएगी, उससे हजार कोस दूर भागें चाहे वह धर्म हो, जाति हो, या साक्षात् भगवान ही क्यों न हों? वह बात हरगिज न मानें, चाहे गुरु और पीर, या ऋषि और पैगम्बर ही क्यों न कहें, जिसके चलते यह रोटी, यह भात, यह कपड़ा, यह मकान, यह जमीन छिन जाए।

जब हम धर्म के नाम पर एक-दूसरे का सिर फोड़ेंगे तो खामख्वाही हैरानी होगी, पुलिस के डर से भागते फिरेंगे, जिससे खेतीबारी और रोजी-रोजगार चौपट होगा ही, मुकदमे में घर का आटा गीला करना होगा ही और वकील-मुख्तार को पैसे दे के बाल-बच्चों को भूखों मारना ही होगा। यदि जेल में गए तो कमाना छूटेगा और रोटी के बिना मरने की नौबत भी पीछे पहुँचेगी ही। उस मारपीट से न जानें स्वर्ग और भगवान मिलेंगे या नहीं। बैकुण्ठ में सीढ़ी लगेगी या नहीं और बैतरणी में पुल बनेगा या नहीं। मगर भूखों तो मरे ही, रोटी तो छीनी गई! बस, उस काम से सम्भल जाना होगा और साफ कहना होगा कि क्षमा कीजिए। आज रोटी का सवाल है। उसे हल करने और रोटी बचाने दीजिए। पीछे हाथ-पाँव पड़के धर्म और भगवान को, स्वर्ग को मनां लेंगे! अभी उसका मौका नहीं हैं। अभी हमें फुर्सत नहीं कि धर्म और भगवान को देखें।

एक पण्डित जी के पास दुर्गामाई की एक वजनदार मूर्ति थी। बड़े ही प्रेम से प्रतिदिन उसकी पूजा किया करते थे। एक दिन कहीं परदेश में चले जा रहे थे और रास्ते में ही खाने-पीने का समय हो गया! एक कुआँ मिला। उससे थोड़े ही दूर पर एक झोंपड़ी भी थी। सोचा कि यहाँ भोजन बना खा लूँ तो आगे बढ़ूँ। झोंपड़ी में देवी जी (दुर्गामाई) को और वस्त्रादि चीजों को रख दिया। फिर सोचा कि कुएँ के पास ही खाना पका लूँ। क्योंकि झोंपड़ी में पकाने पर बार-बार पानी दूर से लाना होगा। भोजन भी बन गया। खाने की तैयारी करनी शेष थी। इतने में खयाल आया कि देवी जी की पूजा तो की नहीं। फिर उनका भोग कैसे लगेगा और बिना भोग

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लगाए खाऊँगा क्यों कर? इसलिए भोजन को वहीं ढँक के झोपड़ी में देवीजी की पूजा करने लगे। संयोगवश भोजन से खयाल उतर गया पूजा ही तो आखिर ठहरी!

इतने में ही एकाएक देखते हैं कि एक कुत्ता भोजन पर हमला करना ही चाहता है। पास में लाठी भी न थी और न ढेला ही। यदि एक-दो सेकण्ड की भी देर हुई कि कुत्ता रोटी ही ले भागेगा! बस, चटपट देवीजी को ही कुत्ते पर चला दिया। वह तो वजनी थी हीं। कुत्ते को कस के चोट लगी और कांय-कांय करता भागा। फिर दौड़ के पण्डितजी जी ने देवी जी को उठा लिया और पोंछा पाछा। हाथ जोड़ के प्रार्थना भी करने लगे कि महारानी जी क्षमा कीजिए। कोई उपाय न था। यदि आप को कुत्ते पर न चलाता तो रोटी ले भागता। नतीजा यह होता है कि मैं भी भूखे मरता और आप भी मरतीं। आखिर आपकी इतने दिनों तक की पूजा की, इसलिए न कि संकट में काम आईं? और इससे बड़ा संकट और क्या होगा कि आप और मैं—दोनों ही—भूखों मरते? यदि यह संकट आपसे न टलता, तो परलोक का कैसे टलेगा?

जिस प्रकार पण्डितजी व्यावहारिक थे। फलतः उनने देवीजी तथा धर्म की मदद से रोटी बचाई, न कि उनके लिए रोटी ही खोई, हमें भी ठीक वैसा ही होना चाहिए और स्पष्ट ही कह देना चाहिए कि यदि हम भूखों मर गए, या हमारी जायदाद ही बिक गई, तो फिर काम कैसे चलेगा? आखिर रोटी और पैसे बिना तो धर्म और भगवान का भी काम नहीं चलता। भोग कैसे लगेगा यदि रोटी न हो? मन्दिर और मस्जिद कैसे बनेंगे यदि पैसे न हों? मुल्ला और पण्डित को क्या खिलाएँगे, यदि लड़-भिड़ कर नाहक ही सब कुछ गँवा दिया? यदि रोटी के लिए, जमीन के लिए लड़ते, तो एक बात थी। मगर यह तो बैकुण्ठ के लिए लड़ना है न? इसलिए आज तो हमें रोटी बचाने दीजिए, जायदाद की रक्षा करने दीजिए। जब भूखों रह के पण्डित और मौलवी ही धर्म की रक्षा नहीं कर सकते, तो हमारी क्या बिसात है कि भूखों मरके धर्म के बचाने की धृष्टता और नादानी करें! हमने तो उन्हीं से यह भी सीखा है कि पहले रोटी, पीछे धर्म—पहले आत्मा, पीछे परमात्मा!

और धर्म के नाम पर भाई का गला काटे यह भी क्या अजीब सी बात है! सैकड़ों वर्ष के पड़ोसी आज धर्म के नाम पर एक-दूसरे के शत्रु क्यों बनें? रोटी के नाम पर हो, तो समझ भी सकते हैं। हम पहले आदमी हैं, पीछे हिन्दू, या मुसलमान। बच्चों के संस्कार और उनकी सुन्नत पेट में नहीं होती है। किन्तु जनमने के बहुत दिनों बाद। तब तक तो हम सिर्फ मनुष्य या किसान और मजदूर ही रहते हैं। पीछे संस्कार और सुन्नत हो जाने पर ही हिन्दू और मुसलमान कहे जाते हैं। मगर मनुष्य तो बने ही रहते हैं। मनुष्य ही तो धर्म का आधार है। जैसे जब दीवार या कागज पर चित्र बनाते हैं और रंग भरते हैं, तो उसमें दीवार या कागज आधार हैं। फलतः उन्हें मिटाकर चित्र बना नहीं सकते। ठीक वही बात यहाँ भी है! यदि आदमी ही नहीं रहा, तो किसे हिन्दू या मुसलमान बनाएँगे? हैवानों को, पशुओं को तो ऐसा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करते नहीं। उनका तो न तो संस्कार ही होता है और न उन्हें कलमा ही पढ़ाया जा सकता। जब उन पर जाब्ता फौजदारी भी लागू ही नहीं, तो यह तथाकथित ईश्वरीय या खुदाई कानून, जिसे धर्म कहते हैं, कैसे लागू होगा? इसलिए यह तो मानना ही होगा कि धर्म की दीक्षा होने पर भी पहले वाली मनुष्यता और पूर्व का किसान रही जाता है। भला यदि इनसानियत नहीं, तो धर्म कैसा?

अब देखना यह है कि यदि धर्म से भी पहले की इनसानियत और किसानी हमें परस्पर मिला नहीं सकती, तो क्या धर्म मिलाएगा? हिन्दू के नाते परस्पर एका और मुसलमान के नाते आपस में मेल होने के पहले ही मनुष्य के नाते हम जरूर मिलेंगे। वही तो असल चीज है। वही तो पुरानी वस्तु है। और अगर धर्म या मजहब उसमें गड़बड़ी करेंगे तो हम उन्हें बेलाग छोड़ देंगे। धर्म हमारे लिए है, न कि हमीं धर्म के लिए हैं। आदमी के ही लिए धर्म है। धर्म के लिए आदमी हरगिज नहीं है। अगर घास पशु के लिए है, तो उसकी रक्षा करेंगे सही मगर जरूरत होने से पशु के वास्ते उसे खत्म भी करेंगे। ऐसा नहीं होगा कि पशु को ही घास के बचाने के लिए खत्म कर दें। यदि बकरा देवी के लिए है तो उसे दाना, घास खिला-पिला के मोटा करेंगे। उसकी सेवा भी करेंगे और यदि किसी ने उस पर हमला किया, तो उसकी रक्षा भी करेंगे। मगर एक न एक दिन देवी जी पर वह बलिदान हो ही जाएगा, न कि कभी भी उस बकरे के लिए देवीजी को ही तोड़-फोड़ देंगे। इसी तरह आदमी के लिए धर्म भी, मौका आने पर मिट सकता है, मिटाया जा सकता है। न कि धर्म की बेदी पर आदमी ही मिटे!

मगर धर्मवाले तो उलटा ही करना चाहते हैं। वह तो धर्म के लिए इनसान को ही मिटा देना चाहते हैं! यह तो कतई बन्द होना चाहिए। इसे बन्द करना ही होगा। किसने देखा कि स्वर्ग की सीढ़ी मन्दिर से ही होके और बहिश्त की मस्जिद से ही होके है और पण्डित तथा मौलवी के हाथों में ही उस सीढ़ी के द्वार वाले फाटक की कुंजी है? धर्म यदि दिल की चीज है, वह यदि आत्मा या रूह से ताल्लुक रखता है तो दिल तो केवल हिन्दू, या मुसलमान में ही नहीं है। किन्तु वह तो नास्तिक में भी है। आत्मा या रूह भी सभी में है। फिर कोई एक—हिन्दू या मुसलिम—या सिर्फ दो ही स्वर्ग की ठेकेदारी का दावा क्यों करें? वह दावा दुरुस्त भी कैसे मान जाए? भगवान यदि दिल को देखते और इंसाफ करते हैं, तो क्या सचमुच केवल हिन्दू या मुसलमान कह के उन्हें धोखा देने की बात लोग सोचते हैं? या कि दिल की पवित्रता की कोशिश करते हैं?

यदि भगवान की यादगार और स्मरण की बात ही ठीक है, तब तो नास्तिक को ही भगवान से नजदीक समझना होगा। क्योंकि वह उनका शत्रु होने के नाते ज्यादा और ठीक-ठीक उन्हें याद करता है। मित्र तो मौके-मौके, या कम से कम सोने में भूल भी जाते हैं। मगर शत्रु तो सोते-जागते बराबर याद करता है—स्वयं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भी देखता रहता है। फिर हिन्दू या मुसलमान का साइनबोर्ड लगाने से क्या मतलब? धर्म के नाम पर पड़ोसी भाई का गला भाई काटे यह इनसानियत है, या शैतानियत? क्या गाय या मस्जिद से ज्यादा कीमत आदमी की जान की नहीं है। यदि है, तो फिर इन दोनों के लिए आपस में गला क्यों कटाया जाए? यह तो निरा पागलपन है और किसानों को इससे बखूबी बचना होगा। उन्हें धर्म के साइनबोर्ड के नीचे सबसे पहले आदमी को देखना और किसान किसान सब एक हैं ऐसा मानना होगा—दिन-रात जपना होगा।

क्या धर्म के नाते और जाति के सम्बन्ध से हिन्दू और ब्राह्मण जमींदार ब्राह्मण, या हिन्दू किसान के साथ सपने में भी कोई खास रिआयत करता है? उसी तरह क्या मुसलिम और सैयद जमींदार मुसलमान, या सैयद किसान के लगान में एक पैसा भी छोड़ता, या जुल्मों में जरा भी कमी करता है? महाराजा दरभंगा की जमींदारी में मैथिल ब्राह्मण और राजा अमावां के जमींदारी में भूमिहार ब्राह्मण सबसे ज्यादा दुखिया और पीड़ित हैं। शेरघाटी के पहाड़ी इलाके (गया) में बाराचट्टी थाने के कुछ मुसलमान किसानों ने मेरे पास इस बात की शिकायत रो-रो के की कि मुसलमान जमींदार रमजान के दिनों में भी हमसे जबर्दस्ती काम करवाता है, यहाँ तक नमाज पढ़ने की भी छुट्टी नहीं देता! कहता है कि उसमें समय खर्च हो जाता है और काम में हर्ज होता है!

यह भी तो देखें कि असली चीज क्या है और नकली या, बनावटी क्या। जब तक शिखा, सूत्र (जनेऊ), कंठी, चन्दन, या दाढ़ी न रखें, तब तक सूरत शक्ल से कैसे पहचाना जा सकता है कि कौन हिन्दू है और कौन मुसलिम, कौन ब्राह्मण है और कौन चमार? शरीर देख के तो जान सकते हैं नहीं। इसीलिए बाहरी और बनावटी चीजें धर्म के नाम पर पीछे से जोड़ी गई हैं। क्योंकि माता के पेट से बाहर आने के समय तो इनमें एक भी चीज बच्चों के शरीर पर पाई नहीं जाती है! न शिखा, न सूत्र, न चन्दन, न कंठी और न दाढ़ी! फिर ये बनावटी और नकली चीजें जन्म के साथी और साथ ही खेलने वाले हिन्दू और मुसलिम किसानों के बच्चों को क्यों जुदा करेंगी? ये क्यों एक को दूसरे का शत्रु बनाएँगी?

कहते हैं कि धर्म के नाम पर ही एकता चाहिए और वही ठीक है। मगर वह तो वस्तुतः नकली चीज है, असल नहीं है और नकली कृत्रिम या बनावटी चीज के आधार पर जो एकता होगी वह क्या टिकाऊ होगी? एक स्थान पर शेख, सैयद, ब्राह्मण, चमार, पारसी, जैन, बौद्ध और ईसाई के बच्चों को, जो दस-बीस ही दिन या महीने दो महीने के हों एक ही साथ जमा कीजिए वहीं धर्म के ठेकेदार लाल बुझक्कड़ों को, पण्डितों और मौलवियों को भी जमा कीजिए और जाति-पांति का ढोल पीटनेवालों को भी बुलाइए। फिर उनसे कहिए कि जरा पहचानें तो सही, उन बच्चों में कौन शेख, कौन सैयद, कौन ब्राह्मण, कौन चमार हैं—कौन किस जाति के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हैं, किस धर्म के हैं। मगर सबों की अक्ल ही गुम। जिस धर्म और जाति का दमामा रोज बजाते फिरते हैं और जिसे बन्दरिया के बच्चे की तरह गले में चिपकाए फिरते हैं वही जाति और वही धर्म वहाँ उनका साथ न देगा। वह तो उन्हें छोड़ के भाग गया? उन बच्चों में वे हजार टटोलें, मगर उसका पता नहीं! ऐसा छिपा कि जैसे खुफिया पुलिस को देख के कोई फरार या भगोड़ा छिपे! ओह, वह धर्म और वह जाति इस कदर कमजोर और लापता हो जाने की चीजें हैं! फिर भी उन्हीं पर इतना गुमान! उन्हीं के लिए इतना तूफान! उन्हीं के करते भाई-भाई की जुदाई और किसानों में भी दलबन्दी! भला इससे बढ़ के नादानी और क्या हो सकती है?

अच्छा, अब जरा भूख, बीमारी, जाड़ा वगैरह को तो देखें, जिनके सहारे किसानों में एका होना चाहिए—जिनके ही करते और जिन्हें ही दूर करने के लिए हम उनमें एकता लाना चाहते तथा उन्हें संघबद्ध करना चाहते हैं। जो वर्ग चेतना की बुनियाद हैं। क्या उन बच्चों में भूख वगैरह को भी कोशिश करके ढूँढ़ना होगा? और फिर भी वे लापता? नहीं-नहीं ऐसा नहीं होगा? वह तो ऐसी कमजोर चीजें नहीं हैं। जिसे ही भूख लगेगी, जाड़ा सताएगा, या सरदर्द होगा वही बच्चा फौरन रो बैठेगा और हम अनायास ही पहचान लेंगे कि भूख कहाँ है, दर्द कहाँ है और जाड़ा कहाँ है। हमें पता लग जाएगा कि अन्न किसे चाहिए, वस्त्र किसे चाहिए और दवा किसे दरकार है। भूख तो खुद चिल्ला-चिल्ला के कहती है कि मैं यहाँ हूँ, मुझे देखो, मुझे पहचानो। जाड़ा स्वयं चिल्लाता है कि मेरा खयाल करो। बीमारी खुद जोर की आवाज देती है कि मुझे देखो और मेरी फिक्र करो, मैं असल चीज हूँ! ऐसी हालत में यदि यह भूख, यह प्यास, यह बीमारी और यह दर्द हममें—किसानों और श्रमजीवियों में—एका और संघबद्धता नहीं ला सकते, तो दूसरा कोई भी ला सकता नहीं। फिर तो उनके उद्धार की आशा भी हो सकती नहीं। इसलिए जितने लोग भूखे-प्यासे, रोग से परेशान और वस्त्र के बिना जाड़े से हैरान हैं उन्हें फौरन ही एक हो जाना चाहिए—उन्हें मान लेना ही होगा कि उनकी एक जाति, एक धर्म, एक श्रेणी, एक दल और एक वर्ग है! यही असली रास्ता है! यही एक उपाय उनके उद्धार का है।

एक बात और। माना की धर्माचार्यों ने, ऋषि-मुनियों ने और पैगम्बरों ने स्वर्ग तक सीढ़ियाँ लगा दीं, नर्कों के रास्ते बन्द कर दिए, उनके मुँह पर ढक्कन लगा दिए और भगवान को भी पकड़ लिया! हमें इसमें विवाद नहीं करना है। न तो हम इसकी जरूरत समझते हैं और न हमारे पास इतना अवकाश ही है कि यह व्यर्थ की माथापच्ची करें। उन धर्माचार्यों और मजहबी पेशवाओं के पास बड़ी शक्ति थी, बड़ी सामर्थ्य थी हमें इसमें कुछ भी कहना नहीं है। फिर यह तो मानना ही होगा कि सबकुछ होते हुए भी उनकी ताकत के बाहर की यह चीज है कि वह बीमारियों को भी सर कर लेते, भूख-प्यास को भी खत्म कर देते और जाड़ा, गर्मी आदि की तकलीफों को मिटा ही देते। यह बातें उनकी पहुँच के बाहर की हैं। इन तक किसी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भी धर्म या मजहब की पहुँच नहीं है। नहीं तो जोई पहुँच जाता उसी धर्म के माननेवाले हिन्दू, मुसलिम या ईसाई आदि को ये भूख, प्यास, बीमारियाँ, या जाड़ा-गर्मी वगैरह नहीं सताते। वे इन आफतों से बरी रहते! आखिर ये चीजें कोई अच्छी तो हैं नहीं कि जानबूझ के छोड़ दी गईं! ये तो पूजा और इबादत में, ध्यान और समाधि में जो धर्म और मजहब की असल चीजें हैं, बराबर ही बाधक होती हैं। फलतः यदि धर्मार्यों की सामर्थ्य होती तो इन्हें मिटा ही डालते! इसलिए कबूल करना ही पड़ेगा कि धर्म और मजहब के दायरे के बिलकुल ही बाहर की ये चीजें हैं और इनका मुकाबला करने का रास्ता कोई और ही है, न कि धर्म या मजहब!

ऐसी हालत में क्या यह पहले दर्जे की नादानी और धोखेबाजी नहीं है कि जब रोटी, कपड़े, दवा, मकान वगैरह का सवाल हल करने के लिए—ताकि भूख, बीमारी आदि से लोगों का पिण्ड छूटे और ये सताएँ नहीं—हम किसानों और मजदूरों का और नवजवानों का संगठन करते हैं तथा उन्हें संघबद्ध बनाते हैं, तो धर्म, मजहब या जाति-पाँति के नाम पर पण्डित, मौलवी और धर्म के ठेकेदार गड़बड़ियाँ करते और रोड़े अटकाते हैं? ऐसा करना अगर बेईमानी और शैतानियत नहीं है, तो आखिर और हुई क्या? ऐसी खुराफातें करने का उन्हें क्या हक है? धर्म के नाम पर हिन्दू किसान सभा, मुसलिम किसान सभा, हिन्दू मजदूर यूनियन, मुसलिम मजदूर यूनियन, हिन्दू विद्यार्थी संघ, मुसलिम विद्यार्थी संघ आदि खड़ा करना या खड़ा करने की कोशिश भी करना क्या किसानों और मजदूरों को, नौजवानों और छात्रों को गुमराह करना नहीं है? हम चाहते हैं कि किसान, मजदूर, विद्यार्थी और जवान इस बात को बखूबी समझें और इन धर्म के दुकानदारों के चकमों में हरगिज न पड़ें! असल में शोषितों की आज जो शोषकों के विरुद्ध यह बगावत फैल रही है, ताकत बढ़ रही है, उसे रोकने के ही लिए शोषकों और शासकों के दलाल ये धर्म के ठेकेदार ऐसी वाहियात बातें करते हैं! जब और ढंग से न चला तो धर्म के नाम पर ही उन्हें फोड़ने और संघबद्ध न होने देने की यह बेहूदा कोशिश है। यह तो शूर्पणखा का नकली रूप है! हम चाहते हैं कि किसान और श्रमजीवी लक्ष्मण की तरह उसकी नाक काट लें। ताकि उसका असली भयंकर रूप प्रकट हो जाए और दुनिया धोखे से बचे।

वर्ग चेतना और वर्ग विश्लेषण के सम्बन्ध में हमें एक बात और जान लेनी होगी। कमाने और खानेवालों—गरीबों और अमीरों के ये दो वर्ग हमने बताए हैं। इनमें किसान हैं कमानेवाले। पूँजीपतियों तथा जमींदारों को, जो दूसरों की कमाई हड़प जाते हैं, खानेवालों में रखा है। पहला वर्ग कमाते-कमाते मरता है बिना खाए-पिए ही दूसरा भी बिना कमाए ही खाते-खाते ही अकड़ के मरता है! यही है वर्तमान समाज की भीषण और दर्दनाक विषमता। इसे ही दूर करना और समता—साम्यवाद—लाना हमारा ध्येय है, ध्येय होना चाहिए। बिना साम्यवाद लाए यह भयंकर विषमता मिटेगी ही नहीं और उसके मिटे बिना कमानेवाले मरते ही रहेंगे। इस प्रकार हम देखते हैं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कि वर्तमान व्यवस्था को जड़-मूल से उलटना पड़ेगा। दूसरा रास्ता है भी नहीं। इसे उलटने का ही नाम क्रान्ति, इन्कलाब या रेवोल्यूशन है। यह तो नवीन सृष्टि बनाने के पूर्व का प्रलय है।

जो लोग सुधार के द्वारा धीरे-धीरे वही काम करना चाहते हैं और सोचते हैं कि विषमता मिटाकर समता लाएँगे वह या तो खुद ही धोखे में हैं, या धोखा देते हैं। सुधार का तो अर्थ कहा जाता है कि वर्तमान शोषक या खाने वाला दल यह मान लेने को तैयार है कि उसे मिट जाना होगा। इसीलिए तो क्रमिक सुधार के द्वारा अपनी मौत की तरफ एक-एक कदम वह खुद ही बढ़ाता है ऐसा कहते हैं! लेकिन यदि उससे एकान्त में विश्वासपूर्वक पूछा जाए तो वह स्वीकार करेगा कि असल में यह बात नहीं है। ठीक ही है। अपनी मौत कौन चाहता है? सुधारक लोग भी तो चाहते हैं कि खानेवाले भी रहें। तब इसका तो सीधा यही अर्थ है कि बीमारी रहे जरूर। हाँ, बीभत्स रूप में नहीं, नरम स्वरूप में। मगर जिस हद तक वह रहेगी उस हद तक दिक्कत तो रहेगी ही। दूसरों की कमाई हड़पने वाले जितने भी अंश में रहेंगे उतने अंश में कमाने वालों को दुःख तो रहेगा ही!

असल में तो शोषक लोग क्रमिक सुधार और रिआयतें देकर कमाने वालों का भीषण असन्तोष, जिससे ज्वालामुखी फूटने वाला है, कम और शान्त करना चाहते हैं। इस प्रकार यदि असन्तोष बढ़ने के बजाए ठण्डा पड़ेगा, तो विस्फोट होगा कैसे? यही उनकी चालाकी है। इस बीच में उसी सुधार की ओट में अपने को वे लोग काफी मजबूत बना लेना चाहते हैं, ताकि समय पर कमाने वालों का मुकाबला वे कर सकें। सुधारों में ही तो भेदनीति को पूर्ण सफलता मिलती है और किसानों तथा मजदूरों की भीतरी कमजोरियों से शोषक दल लाभ उठाता है। सुधार तो उन कमजोरियों को और भी बढ़ाता जाता है। इस खतरे को हमें खूब समझना होगा। सुधारों से इनकार तो हम कर नहीं सकते गृध्रदृष्टि से उन्हें देखते ही रहेंगे कि शोषक दल भेदनीति से काम लेने न पाएँ और अपने को मजबूत न कर सकें। सुधार असल चीज नहीं है। किन्तु हमारी उनके प्रति दृष्टि ही असल चीज है। क्रान्तिकारी और सुधारवादी की दृष्टि में ही मौलिक भेद होता है और वही सब कुछ है असली चीज है। सुधारवादी भेद नीति को सफल होने देता है और शोषकों की मजबूती का स्वागत करता है। मगर क्रान्तिकारी यही बात होने नहीं देता।

इन दो शोषक एवं शोषित वर्गों के बीच में त्रिशंकु की तरह लटकने वाला एक तीसरा वर्ग भी बताया जाता है। स्थान के ही अनुसार उसका नाम भी मध्यम वर्ग रखा गया है। उसकी अजीब हालत है। न इधर का और न उधर का! जब कमाने वालों शोषितों का दबाव पड़ा, तो उनकी तरफ झुक जाता है और उनकी ही जय पुकारता है। उनका ही काम करता हुआ मालूम भी पड़ता है, करता भी है। मगर ज्यों ही यह दबाव हटा कि खानेवालों (शोषकों) की तरफ झुक जाता है!

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

असल में उसका दल तो शोषकों का ही है। उसकी मनोवृत्ति भी उनकी ही है। वह जाना भी इसीलिए स्वभावतः उधर ही चाहता है। मगर गरीबी के कारण वे लोग इसे अपनी पंक्ति में बिठाना नहीं चाहते! इसे अछूत मानते है! इसीलिए चिमगादड़ की-सी हालत में रहता है। मगर नजर सदा उधर ही रहती है। इसी वर्ग में से धीरे-धीरे कुछ लोग सम्पन्न हो के पूरे शोषक बनते और बाकायदा शोषकों में दाखिल हो जाते हैं। मगर अधिकांश लोग धीरे-धीरे और भी गरीब होते-होते श्रमजीवी या कमानेवाले बन के शोषितों में मिल जाते हैं! मगर जब तक मध्यम वर्ग में ये लोग रहते हैं बराबर ही दुविधा ही दुविधा में आगे-पीछे रहा करते हैं! कछुए की तरह रह-रह के सिर निकालना और छिपाना यही उनकी दुविधा है—कभी शोषकों की ओर देखते हैं, तो कभी शोषितों की ओर! इनका स्वार्थ ही उन्हें ऐसा करने को विवश करता है। इसीलिए शोषितों की लड़ाई में भी सदा आगा-पीछा ही करते रहते हैं। नाजुक परिस्थिति आ जाने तथा उस लड़ाई का आशाजनक रूप होने के समय तो खामख्वाह ऐसा करते और बाधा डाल देते हैं! इस तरह ऐन मौके पर धोखा दे के घात करते हैं।

इस दुविधा के अलावे उनकी और भी विशेषताएँ हैं, जिन्हें जाने बिना ऐन मौके पर धोखा हो सकता है। इसलिए उन्हें जान लेना जरूरी है। धर्म का जो रूप आज देखा जाता है और जिसमें विचार स्वातन्त्र्य, विवेकबुद्धि, ननुनच, या नाहीं करने की गुंजाइश जरा भी नहीं रहती, जिसमें केवल फतवे से काम चला करता है, उसमें पूरा-पूरा विश्वास करना मध्यम वर्ग का दूसरा लक्षण है। वह तो धर्म की दोहाई रह-रह के देता है और उसके खतरे की घण्टी बजाता है। वह उस धर्म को छोड़ के कभी सोच भी नहीं सकता। उसकी हस्ती का वह धर्म अभिन्न भाग है।

मध्यम श्रेणी की तीसरी पहचान यह है कि वह किसी एक आदमी की आवाज को—फिर चाहे वह धार्मिक, राजनीतिक या आर्थिक पेशवा और अगुवा हो, या इसी ढंग का और कुछ, सारांश, वह चलता पुर्जा हो, लाखों-करोड़ों की—मूक जनता की—आवाज मानता है! किसी बड़े नेता ने कह दिया। बस, समाज के विभिन्न काल्पनिक टुकड़ों—हिन्दू, मुस्लिम या किसान, मजदूर आदि—की आवाज हो गई! बस, उसी का ध्यान करके कुछ भी करना होगा। नेता ने जो फैसला कर दिया वही खामख्वाह जनता का फैसला हो गया!

चौथा लक्षण मध्यम वर्ग का यह है कि वह विभिन्न श्रेणियों का, शोषकों एवं शोषितों का मेल और स्वार्थ सामंजस्य देखता, सोचता और करना चाहता है। दोनों के बीच में रहने के कारण कुछ उसकी स्थिति ही ऐसी है कि वह अनजान में भी ऐसी बातें सोचता और करता है, जिससे साफ हो जाता है कि किसान और जमींदार या पूँजीपति और मजदूर के स्वार्थों का परस्पर संघर्ष नहीं है! वे परस्पर विरोधी नहीं हैं! किन्तु उनका मेल है, सामंजस्य है, हो सकता है! हालाँकि यह सरासर गलत और बेबुनियाद बात है। घास और गाय, या बकरी और बाघ के स्वार्थों का जब मेल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नहीं है और न उनमें परस्पर समझौता ही सम्भव है, तो किसान और जमींदार आदि का कैसे होगा?

इससे स्पष्ट है कि मध्यम वर्ग के पूर्वोक्त चार लक्षणों में आखिरी तीन तो शोषकों के ही फायदे के लिए हैं। पहले और चौथे में शोषकों का विश्वास नहीं है और उनमें वे पाए भी नहीं जाते। मगर दूसरे और तीसरे लक्षण तो शोषकों में खूब ही मिलते हैं। ये उनकी खास चीजें हैं! पहला लक्षण ही मध्यम वर्ग का अपना है, निजी है। यह न तो शोषकों का है और न शोषितों का! इससे दोनों की हानि होती है। हालाँकि...ज्यादा होती है शोषितों की ही! मगर कभी-कभी शोषकों की भी होई जाती है। मगर चौथे से तो शोषकों का फायदा ही होता है। यही तो समझौते की बुनियाद है। इस प्रकार मध्यम श्रेणी की एक भी बात ऐसी नहीं जो शोषकों के लिए ठीक हो! सभी हानिकारक ही हैं। हाँ, शोषितों के फायदे की तो सभी हैं। इसीलिए तो हमने पहले ही कह दिया है कि मध्यम वर्ग ज्यादातर शोषकों की ही तरफ झुकता है। उसकी आँख शोषकों की और पीठ शोषितों की तरह सदा रहती हैं। हाँ, जब शोषित लोग उसकी पीठ पर कसके ठोंकते, खूब जाग्रत और क्रियाशील होते हैं, जब उनमें बेचैनी और असन्तोष की आग खूब भड़कती है, तब विवश हो के मध्यम वर्ग उनकी ओर आँखें फेरता है। मगर जहाँ वह आग दबी, कि फिर लौटा और पीठ फेर दी! यही क्रिया बराबर चालू रहती है।

प्रश्न होता है कि तो फिर उससे किसानों या शोषितों का ताल्लुक ही क्या? वह तो एक प्रकार का शत्रु ही है, जैसे कि शोषक। बात तो कुछ विचित्र ही है और यह प्रश्न स्वाभाविक एवं उचित भी है। असल में परिस्थिति के करते किसानों और मजदूरों के पास न तो जागृति के सामान होते हैं, न वर्ग चेतना के ही और न पढ़ने-लिखने के ही। उनकी गरीबी और बेबसी के करते ये चीजें उन्हें दुर्लभ हैं। इसीलिए उनकी आँखें मुँदी रहती हैं। इसीलिए जमींदार वगैरह तेली के बैल की तरह उनकी आँखें बन्द करके एक निश्चित घेरे के अन्दर आसानी से उन्हें घुमाते रहते हैं और जो चाहते हैं उनसे करवाते हैं! आँखें खुली रहने पर वे भड़क जाएँ तो?

इसी से बन्द रखना ही ठीक है, मगर मध्यम श्रेणी के पास तो पढ़ने-लिखने और जानकारी के भी सामान रहते ही हैं। जब जनता बिगड़ेगी तो उसी वर्ग के द्वारा उसे दबावेंगे और धोखा देंगे। यह समझ के अमीर लोग उस वर्ग को पढ़ा-लिखा के ठीक रखते हैं। पढ़ाया-लिखाया हाथी ही तो आखिर और हाथियों को फँसाता है! इसके सिवाय मध्यम वर्ग के बिना अमीर और मालदारों का काम भी तो नहीं चल सकता। उनकी जमींदारी, उनका कारबार कौन देखेगा, कौन सम्भालेगा? उनका प्रबन्ध दूसरा कौन करेगा? इसीलिए मजबूरन उन्हें पढ़ा-लिखा के मालदार लोग तैयार करते ही हैं!

और मौका पड़ने पर प्रारम्भ में यही मध्यम वर्ग किसानों तथा मजदूरों का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

साथ देता है। इससे उसका अपना मतलब जो निकलता है। उसकी प्रतिष्ठा होती है। वह नेता बनता है। नाम कमाता है। समय-समय पर धन और पद भी कमाता ही है। जब अधिकार मिलते हैं, या मिलने लगते हैं, तो वही मेम्बर, मिनिस्टर, प्रेसिडेण्ट, चेयरमैन, सेक्रेटरी बनता है। कोई किसान, या मजदूर तो बन सकते हैं नहीं। इसी नेतृत्व के बल से ही वह जमींदारों और पूँजीपतियों से भी घात देख के गुपचुप पैसे ले लेता है! कभी-कभी ऐसा भी होता है कि मध्यम श्रेणी के इक्के-दुक्के लोग शोषित श्रेणी में मिल जाते हैं और अन्त तक उनकी लड़ाई चलाते रहते हैं। मगर अधिकांश तो समय-समय पर खिसकते चले जाते हैं, जैसे-जैसे उनका अपना मतलब पूरा होता जाता है। यदि मालदारों से कहीं खासा माल हाथ लग गया या कोई अच्छा काम मिल गया, तो नेतृत्व की परवाह कौन करे?

मन्त्री आदि बनने पर भी यही होता है। फर्क यही होता है कि अमीरों से साफ मिल जाने में गरीबों को धोखा देना असम्भव होता है। मगर मन्त्री आदि बनने पर तो 'एक पंथ दो काज' होता है। पद, प्रतिष्ठा और माल भी मिलता है और नेता बनने का मौका भी रहता है। इसीलिए मन्त्री आदि ज्यादा खतरनाक हैं, बनिस्वत उनके जो साफ ही शोषक दल में जा मिलें। इसीलिए किसानों और शोषितों को चाहिए कि मन्त्री आदि से बहुत ही सजग रहें। वे लोग किसानों की भलाई करने के नाम पर ही उनका गला काटते हैं! मछली को फँसाने के लिए थोड़ा सा आटा तो पहले खर्च करना ही होता है। यही हालत उनकी है। लड़के का कान छेदना हो, तो गुड़ खिला के उसे फुसलाते और पीछे छेद देते हैं! इसीलिए हमें उन पर बराबर ही कड़ी नजर रखनी होगी—उनका विश्वास ही नहीं करना होगा। जब किसानों और मजदूरों को आराम देने के लिए पूरा अधिकार नहीं मिल जाता कि जो चाहें कर सकें, तब तक मन्त्री आदि बनने का मतलब यदि कोरा और प्रच्छन्न स्वार्थ नहीं तो और है क्या?

शहरों और ऑफिस आदि में रहने के कारण मध्यम श्रेणीवालों को समाचार-पत्र, किताबें और सामयिक साहित्य पढ़ने, मीटिंगों में जाने और सभी तरह के लोगों से मिलने के मौके बहुत मिला करते हैं। इसीलिए उनकी जानकारी भी सामयिक (up to date) होती है। मगर उनका अपना वर्ग तो विचित्र ही होता है। वह तो अजीब खिचड़ी जैसा है। इसीलिए पूरे-पूरे वर्ग के आधार पर किसी बात का स्पष्ट निश्चय वे नहीं कर सकते। किरानी, अध्यापक, वकील, डॉक्टर, छोटे-मोटे दुकानदार, दस्तकार और तरह-तरह के कारीगर यही लोग उस मध्यमश्रेणी में आ जाते हैं। यों तो जिनमें वर्ग चेतना नहीं है और जो जमींदारों की तरह ही सोचते हैं, और धनी हैं या यों कहिए कि जिनमें पूर्वोक्त चार लक्षण पाए जाएँ ऐसे किसान भी उसी श्रेणी में आ जाते हैं। फलतः किसानों तथा मजदूरों को उनसे भी खतरा है। फिर भी किसानों की तो अलग श्रेणी ही मानी जाती है और वह है शोषितों की श्रेणी के एक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भाग—मजदूरों—की ही तरह।

मध्यम वर्ग के जो लोग अन्त तक किसानों और मजदूरों की लड़ाई का नेतृत्व करते हैं और उन्हीं में मिल जाते हैं वह ऐसे ही लोग हैं जिनमें पूर्वोक्त चार लक्षणों में एकाध ही पाए जाते हैं। सो भी नाम मात्र के ही होते हैं। अतः ऐसे गिने गुँथे मध्यवर्गीय लोग बराबर ही शोषितों के ही दृष्टिकोण से विचारा करते हैं। इसलिए परिस्थिति के वश मध्यश्रेणी में होते हुए भी वह वस्तुगत्या दलित और शोषित श्रेणी के ही हैं—उसी श्रेणी में उनका स्थान है। यह कभी नहीं हो सकता कि जिनमें पूर्वोक्त चारों या अधिकांश बातें दृढ़ता के साथ पाई जाती हों, ऐसे लोग भी पीड़ितों के नेता बन सकते हैं, या उनकी लड़ाई अन्त तक चला सकते हैं! यह तो परस्पर विरोधी बातें हैं और इसीलिए बहुत गौर से विचार करने की हैं। किसानों का काम है कि मध्यम श्रेणी के जो लोग उनका नेतृत्व करने आए उनमें उनके लक्षणों को बराबर गौर से देखें और पता लगाएँ। तभी उन्हें धोखा नहीं होगा। यह तो समझी लेना होगा कि अन्त में तो शोषक और शोषित यही दो दल रह जाएँगे और इन्हीं की आपस में आखिरी लड़ाई होगी, जिसमें शोषित अवश्य ही विजयी होंगे। इसलिए वास्तविक वर्ग तो वही दो हैं। इसमें कोई शक नहीं है।

वर्ग का विचार करने के समय किसानों को यह भी देखना होगा कि उनके वर्ग में कौन-कौन से लोग आ जाते हैं। दुर्भाग्य से जाति और धर्म तथा नीच और ऊँच की अत्यन्त कुत्सित धारणा और रूढ़ि के करते हमारा समाज एक प्रकार से जर्जर हो गया है। इस भयंकर और मारक रोग को तो जितना जल्द मिटा डालें उतना ही ठीक। जाति तथा धर्म का विवेचन तो पहले ही किया जा चुका है। रह गई ऊँच और नीच की बात! शरीर में तो सभी प्रकार के अंग हैं। ऐसे भी अंग हैं जिनसे मल-मूत्रादि निकलते हैं या मल-मूत्रादि जिनसे साफ कराते हैं। पाँव में गन्दी से गन्दी चीज कभी-कभी लग ही जाती है। मगर क्या कभी इन अंगों में ऊँच-नीच का विभेद माना जाता है। मल-मूत्र साफ करने के कारण क्या हाथ नीच अंग हो गया? प्रत्युत उसे तो बड़ा मानना चाहिए, यदि खामख्वाह छोटा बड़ा मानना ही हो। यदि ऐसे अंग न हों, या वे अपना काम न करें, तो शरीर रही नहीं सकता। वह तो खत्म ही हो जाएगा। इस दृष्टि से उन अंगों की कितनी उपयोगिता है! क्या यह बात हमने कभी ठण्डे दिल से सोची है।

ठीक उसी तरह मेहतर, धोबी, चमार, वगैरह जितने अंग समाज के हैं वह निहायत ही जरूरी हैं। उनके बिना एक दिन भी समाज टिकना असम्भव है। भयंकर बीमारियों का केन्द्र बात की बात में वह बन जाए और सड़ जाए, यदि ये लोग न हों। हिन्दू लोगों ने सूअर के मुख को पवित्र माना है। वह उस मुख से जिस मिट्टी को खोद देता है वह पूजा के काम में आती है। हालाँकि उसी मुख से अत्यन्त गन्दी चीज वह खा जाता है। जिस पाखाने के साफ करने से मेहतर अस्पृश्य और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नीच माना जाए वही पाखाना जिस मुँह से सूअर खा जाए वह मुँह पवित्र! असल में यदि सूअर न हो, तो दस ही दिनों में हर गाँव हैजा, प्लेगादि का अड्डा बन जाए। इसीलिए हमारी रक्षा के लिए प्रकृति, या भगवान ने सूअर को मेहतर बना के भेज दिया है! वह कुदरती मेहतर है। इस बात को पुराने धार्मिक लोगों ने बखूबी समझा था। इसी से सूअर के मुँह को पवित्र माना! हमें भी हर मामले में ऐसा ही समझना होगा और ऊँच-नीच का खाम खयाल अपने दिल से निकालना होगा। यह तो वर्ग चेतना का शत्रु, संघबद्धता का बाधक और किसानों को अत्यन्त असमर्थ बनाने वाला है।

जिस हलवाहे के बिना खेत जोता ही न जाए और न रोपा-बोया जाए वही छोटा! बीज बोना, उखारना, रोपना, काटना, ढोना वगैरह काम जो खेत मजदूर करते हैं वही छोटे और हमीं बड़े, यह कैसी दुर्बुद्धि है! जैसे बैलों की उपयोगिता है और उन्हें हम नीच नहीं मानते। ठीक वैसी ही, या ज्यादा उपयोगिता इन खेत मजदूरों की है! फिर ये छोटे कैसे हो गए? यह भ्रान्त धारणा कहाँ से किसानों में आ घुसी?

एक बात और। बैल की हिफाजत और उसे खिलाने-पिलाने की पूरी कोशिश किसान करते हैं! अपने आप भूखे रह जाएँ तो रह जाएँ। मगर बैलों को भूखा रहने हरगिज न देंगे। उन्हें कोई एक लाठी मार दे तो कदापि बर्दाश्त न करेंगे। यहाँ तक की मारपीट की नौबत भी आ जाएगी! अब उन्हें खुद ही कलेजे पर हाथ धर के सोचना चाहिए कि क्या उतनी ही फिक्र और चिन्ता वे अपने खेत मजदूरों की करते हैं, जितनी कि बैलों की? चाहिए तो ज्यादा फिक्र करनी। मगर उतनी भी क्या होती है? यदि उन्हें कोई जमींदार, या पुलिसवाला मारे-पीटे तो क्या किसान टुकटुक देखते ही रह जाते नहीं? क्या 'नान्ह जात लतियाए राजी' वे लोग अकसर कहते नहीं? क्या इस चीज की फिक्र करते हैं कि उनके पास खाना, कपड़ा, मकान और दवा है या नहीं? यदि कुछ किसान करते भी हों तो इससे क्या? हम तो किसान समाज की बात करते हैं। फिर कुछ ही किसान करें और बाकी न करें और हम इस चीज को बर्दाश्त कर लें यह कैसी बात? हरेक किसान को पहले उनकी हर तरह की फिक्र करके पीछे अपनी करनी होगी। यही मन्त्र है, यही सिद्धान्त है, यही उसूल है। अब तक जो हुआ सो हुआ। मगर आगे तो ठीक-ठीक इसका पालन होना ही चाहिए। किसान के परिवार में दस आदमी स्त्री, बच्चों आदि को मिलाकर, यदि हों और हलवाहे के भी तीन-चार हों, तो किसान को अपना परिवार तेरह-चौदह आदमियों का ही मानकर सभी के लिए हर चीज का समान रूप से प्रबन्ध करना ही होगा, यह याद रहे। नहीं तो किसानों की नाव जरूर ही डूबेगी। पुराना जमाना लद गया! फूले रहने की नादानी डुबाएगी।

किसानों और उनके हलवाहों के सिवाय भी गाँव में अनेक लोग रहते हैं, जैसे कहार, धोबी आदि। इनके भी आराम की फिक्र किसानों को करनी ही होगी। आज तो यह हालत है कि किसान खुद खा-पी लेते हैं। मगर गाँव में कितने लोग भूखे-नंगे हैं इसका उन्हें पता भी नहीं होता। जरूरत होगी तो कहार, नाई आदि सभी को

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ढूँढ़ेगे! मगर यों उनकी खबर तक नहीं लेते! यह तो पागलपन है! ऐसी दशा में भला ही किसानों के प्रति उनके दिलों में क्या खयाल होगा? उनका दिल तो जला जाता है यह सोच-सोच के कि ये किसान खुद तो भर पेट, या आधा पेट साग-सत्तू खाते हैं, मगर हमें पूछते भी नहीं, उनकी यह धारणा और यही भूख किसानों की असली कमजोरी है, हम यह हरगिज न भूलें! यदि जमींदार के दिमाग में यह बात घुस जाए और बहुत जगह घुस चुकी है भी—कि इन भुक्खड़ों की ही सेना किसानों के विरुद्ध खड़ी की जाए, तो क्या होगा? किसान तो तबाह हो जाएँगे, लुट जाएँगे! क्योंकि एक ही दो बीघे जमीन उन्हें देकर जमींदार खड़ा कर देगा और मारपीट वगैरह उन्हीं से करवा के या जैसे-तैसे भिड़ा के किसानों को उजाड़ ही देगा। इस प्रकार उसे जो जमीन हाथ लगेगी उसी में से दो-चार बीघा उन भुक्खड़ों को देगा। बाकी में उन्हीं के हाथों अपनी खेती—खुदकाश्त—करेगा! यदि किसान फौरन नहीं चेते तो यह हो के ही रहेगा! पानी के बाँध में जरा सा सूराख कर देने से ही धीरे-धीरे वह बड़ा हो जाता है और सारा पानी खत्म हो जाता है। ये भूखे लोग किसानों की शक्ति के बह जाने के लिए नन्हे-नन्हे सूराख हैं। इन्हें बन्द कर के ही जबर्दस्त संघ शक्ति लानी होगी। एक भी आदमी गाँव में ऐसा न हो जो जमींदार से मिल सके, भरसक जमींदार से मिलना चाहे। ज्यों ही हमने पड़ोसी का आँसू पोंछना शुरू किया कि उसका दिल ही हम जीत लेंगे। फिर तो हमारे लिए वह अपना सिर हमसे पहले ही देगा, यह पक्की बात है!

इस प्रकार किसानों को संघबद्ध होने में जो-जो बाधाएँ हैं उन्हें खोज-खोज के हटाना और गाँव-देहात के सभी पीड़ितों का एक जबर्दस्त दल बनाना हर किसान का कर्तव्य होना चाहिए, यही उसकी सन्ध्या पूजा होनी चाहिए। गाँवों के सभी शोषितों, पीड़ितो और दुःखियों को जब तक हम अपना अभिन्न अंग और अपने दल का नहीं समझते, हमारी वर्ग चेतना कौड़ी काम की भी नहीं है। हमारी इन्हीं कमजोरियों और भूलों से ही हमारे शत्रुओं ने अब तक लाभ उठाया है। अब हमें उन्हें ही दूर करना है। यही किसानों की वर्ग चेतना और संघबद्धता का रहस्य है और इसी से वे अजेय बनेंगे!

(8)
नेताओं पर कड़ी नजर रखें

कमानेवालों की, जिनमें किसानों की संख्या प्रायः तीन-चौथाई है, कुछ ऐसी बेढब हालत है कि करते तो हैं सबकुछ वही मगर उनके कान और नाक को पकड़ के उन्हें मनमाने ढंग से चलाते हैं दूसरे ही। चाहे जीवन के लिए जरूरी चीजों को लीजिए, फौज और पुलिस को लीजिए, जेल और कचहरियों को लीजिए और अन्त में चाहे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आजादी तथा हक की लड़ाई ही लीजिए। सर्वत्र खटते-मरते हैं वे लोग ही। मगर उनके ऊपर बैठते हैं दूसरे। आजादी और अधिकार की लड़ाई में नेता और लीडर की हैसियत से और बाकी जगहों में शासक, शोषक, अधिकारी, जमींदार और पूँजीपति के रूप में! सिर्फ दर्जे का, रूप का—नाम का ही फर्क है। लेकिन सर्वत्र उनके सिर पर बैठते वही लोग जो उनमें से नहीं हैं, किन्तु उनके बाहर के! या यों कह सकते हैं कि यदि उनमें के भी हैं तो भी दूसरों के मुड़िया और चेले बन गए हैं और इस प्रकार अपनी श्रेणी तथा अपना दल बदल कर अज्ञात और विधर्मी बन गए हैं! यही असली परिस्थिति है और यही कारण है कि संसार के सभी मुल्कों में क्रान्तियों पर क्रान्तियाँ होती रहीं। मगर नतीजा क्या हुआ? यही न कि केवल शासन और शोषण का बाहरी रूप और नाम बदल गया! मगर वह जारी है ज्यों का त्यों, बल्कि और भी भीषण रूप में!

रूस के सिवाय और जगह भी क्रान्तियाँ हुईं, इन्कलाब हुए—फ्रांस में, जर्मनी में, इंग्लैण्ड में, अमेरिका में और अन्य मुल्कों में भी—मगर क्या वहाँ के किसानों और मजदूरों के कष्ट दूर हुए? क्या उनका शोषण बन्द हुआ? पहले यदि असभ्य ढंग और मनाने रूप में शोषण होता था तो अब वही सभ्य और कानूनी ढंग से होता है। पहले यदि किसी शासक के नाम में होता था, फलतः उसे ही गालियाँ देते और बदनाम करते थे, तो अब शोषितों के ही नाम में उन्हीं की राय से होता है। फिर गाली किसे दें? असल में कमाने वाले अपनी तकलीफों से ऊबकर बाहर निकलने की कोशिश तो करते हैं और कभी-कभी जानों की बाजी तक भी लगा देते हैं! मगर उनके ऊपर—उनकी आत्मा, दिल और दिमाग पर—बैठने वाले गैर लोगों के करते ही, जिन पर वे विश्वास करते और अपना अगुवा मानते हैं, उनकी ये सारी कोशिशें अन्त में बेकार हो जाती हैं। उनका सब किया-कराया गजस्नान—हाथी का नहाना—हो जाता है। वह चूल्हे से निकल के भाड़ में और गढ़े से निकल के कुएँ में पड़ जाते हैं।

यह बड़ी ही पेचीदा पहेली है और इसका सुलझाना निहायत जरूरी है। यदि सब किया-दिया मिट्टी में ही मिल जाए, तो अच्छा है कि कुछ भी करने से पहले यह नेतृत्व की समस्या ही हल कर लें। उसके करते होने वाला धोखा फिर क्योंकर न हो सकेगा यह बात साफ कर लें। हम यह तो नहीं चाहते कि किसान और मजदूर अपनी आजादी और अपने हक की लड़ाई को रोक के ही यह सवाल सुलझाने में लग जाएँ। ऐसा करना खतरनाक है। इससे उनकी दिक्कतें बढ़ सकती हैं, बढ़ जाएँगी। अतः लड़ाई जारी रहे। मगर नेतृत्व की पेचीदा समस्या की ओर उसी के साथ-साथ उनका पूरा ध्यान रहे। न कि अब तक की-सी हालत रहने देना चाहिए। अब तक तो वे सारी शक्ति और बुद्धि लड़ाई में ही खर्च करते रहे हैं। उसका नतीजा क्या होगा, यह बात तक तो अच्छी तरह उनने समझी नहीं। सिर्फ गोल-गोल बातों में ही पड़े रहे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आखिर किसान धान की खेती करता है तो गोल नतीजे को सोच कर तो नहीं। किन्तु ब्यौरेवार ठोस नतीजा पहले से ही मन में बिठा लेता है कि कैसा, कितना धान होगा तथा कब, और अगर उसमें जरा भी गड़बड़ी हुई कि अगले साल सजग हो जाता है। गाय-भैंस खरीदता है, तो गोल बातों के लिए नहीं। किन्तु कैसे, कितना दूध कब तक उससे निकलेगा यह खूब ही पक्का करके रुपए गिनता है। जरा सा भी ऐब हो और पशु छटक जाने या लात चलाने वाला हो, तो गाँठ का पूरा पैसा हरगिज नहीं खोलता है।

फिर जिस लड़ाई में धन, जन, जान सब गँवाएँ उसका रत्ती-रत्ती ब्यौरेवार नतीजा पहले से ही न जान लें यह कैसी नादानी है। इसी का तो बुरा नतीजा अब तक होता रहा है। हक मिलने पर उसकी रक्षा कैसे, कौन करेगा यह भी हम अब तक कभी नहीं सोचते रहे हैं। अब ऐसी गोल बातों का जमाना गया। अब तो हमें इन सब बातों को अच्छी तरह शुरू में ही साफ कर लेना होगा और बखूबी जान लेना होगा कि कहीं धोखा तो नहीं है, कहीं ऐसा तो नहीं होगा कि यत्नपूर्वक प्राप्त किए दूध की रखवाली बिल्ली को ही सौंप दी जाएगी। वे यह साफ-साफ देख लें कि गाय और बकरी हासिल तो की जाएगी पैसे और परिश्रम से, मगर कहीं उनका रखवाला बनने वाला गधे की खाल में छिपा बाघ तो नहीं है।

इसीलिए पद-पद पर अपने नेताओं के विश्लेषण, उनकी देखरेख, उनकी निगरानी उन पर कड़ी निगाह रखने की जरूरत आ जाती है। जिस प्रकार अपने शत्रुओं—शोषकों एवं शासकों—का अच्छी तरह विश्लेषण करते हैं, क्योंकि बिना ऐसा किए काम नहीं चलता और धोखा हो जाता है। ठीक उसी प्रकार अपने नेताओं का और भी हजार गुना विश्लेषण बड़ी ही बेमुरव्वती के साथ करना लाजिमी है। नहीं तो जरूर ही धोखा खा जाएँगे। शत्रुओं की निगरानी और उनकी रत्ती-रत्ती जाँच न भी हो तो ज्यादा से ज्यादा यही न होगा कि शोषण रहेगा और हम पूर्ववत् दुखिया बने रहेंगे? मगर कोई नई दिक्कत तो आएगी नहीं।

लेकिन नेताओं पर कड़ी नजर बिना रखे और उनका विश्लेषण किए बिना तो घर का भी आटा गीला करने की नौबत होगी। हमने धन, जन और जान गँवा के और सर्वस्व की बाजी लगा के हक की लड़ाई लड़ी। मगर नतीजा कुछ न हुआ। वही गरीबी, वही शोषण और वही कष्ट रूपान्तर में जारी रहे। यह तो परले दर्जे की नादानी होगी। यह तो नाव का किराया दे के बह जाना और डूब मरना होगा! इसीलिए हमें मजबूर होके कहना पड़ता है कि नेताओं के ऊपर खुफिया पुलिस का पहरा किसान और मजदूर जरूर ही रखें। नहीं तो पीछे धोखा होने पर हमें दोषी न बनाएँ। खासकर जब कही चुके हैं कि मध्यमवर्ग का ही नेतृत्व होता है और उसी दल के लोग खामख्वाह अगुवा होते ही हैं और उस दल में क्या ऐब हैं यह भी बताई चुके हैं। वह तो ऐन मौके पर लड़ाई को खटाई में डाल देता है ज्योंही देखता है कि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उसकी असली बिरादरी वाले शोषकों की जड़ एक ही धक्के में उखड़ जाने वाली है।

लोग कहते हैं और भोला भाला किसान मानता है कि भला हमारे नेता हमें कैसे धोखा देंगे। जो कई बार जेल गए, जिनने अनेक यातनाएँ भोगीं, जुर्माने दिए, जायदादें जब्त करवाईं और जो फाँसी का तख्ता चूमने तक के लिए सर पर कफनी बाँध के कभी निकल पड़े थे, वही लोग भला क्यों कर हमें गुमराह करेंगे? वही हमें धोखा देंगे यह कौन माने ? और अगर ऐसे लोग भी धोखा देंगे तो विश्वास किन पर किया जाए? फिर तो सर्वत्र अविश्वास ही होगा? और लड़ाई ही बन्द कर देनी पड़ेगी।

बात तो सही है। इसीलिए तो लड़ाई बन्द करके नेताओं की परीक्षा करना हम चाहते नहीं। हम तो लड़ाई के दौरान और सिलसिले में ही उनकी परीक्षा करना चाहते हैं और वही पक्की परीक्षा होगी भी। यह बात आगे साफ की जाएगी। मगर इतना तो मान ही लिया गया कि केवल जाति-पाँति या धर्म-मजहब के नाम पर तो कोई भी आदमी किसानों और मजदूरों का नेता होई नहीं सकता—उसे नेता बनने ही न देना होगा। जब त्याग, बलिदान, जेल वगैरह की बात आ गई तब तो वैसे लोग नेता बनने योग्य नहीं हैं यह बात मानी ली गई। यह इसलिए भी कि जाति और धर्म के नाम पर सस्ती लीडरी का जामा पहन के आज हजारों मिलते और धोखा देते हैं। किसान स्वभावतः उनकी बातों में फँस जाते हैं। वह भी देखते हैं कि त्याग और बलिदान तो हम से हो सकता नहीं और लीडरी तो चाहिए ही। क्योंकि बोर्डों और कौंसिल असेम्बलियों में जाना जो है। इसलिए जाति और धर्म के नाम पर ही नकली आँसू बहाते एवं गला फाड़ते हैं। ताकि लोगों पर जादू चले और काम बने। इसलिए किसान और मजदूर उनसे पहले ही सजग हो जाएँ।

अब रही त्याग और बलिदान की बात। सो तो ठीक ही है। मगर फ्रांस, इटली, जर्मनी, अमेरिका, चीन आदि देशों में किसानों और मजदूरों के जो नेता पहले हुए क्या उनके त्याग और बलिदान नहीं थे? या कि उनका त्याग, उनका बलिदान उनकी तपस्या और उनका कष्ट सहन आज के बरसाती नेताओं से भी कम था, वे तो ऐसे थे कि जिनकी जिन्दगी ही जेल और जलावतनी (देशनिकाले) में बीती थी, जो एक बार नहीं, किन्तु कई बार फाँसी के तख्ते तक पहुँचते-पहुँचते न जाने कैसे बच पाए थे। वे तो मस्त और अपने धुन के पक्के थे। उनके सामने तो आज के त्यागी और तपस्वी नेता कुछ भी नहीं हैं, किसी गिनती में नहीं हैं। फिर भी किसानों और मजदूरों की मुराद क्यों न पूरी हुई और वे आज भी क्यों पहले जैसे ही, या उससे भी बुरी तरह मुसीबतों के फन्दे में फँसे पड़े हैं?

इसलिए महज त्याग और बलिदान की बात पर विश्वास करना इतिहास की शिक्षा से मुख मोड़ना और आँख मूँद के अपने को आग में झोंकना है। नेता बनने के लिए तो त्याग और बलिदान जरूरी ही है। नहीं तो क्या किसी को सुरखाब के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पर लगे हैं कि वही नेता हो और किसान या मजदूर न हो? ड्राइवर वही हो सकता है जिसने उसकी शिक्षा पाई हो। सेनापति वही हो सकता है जिसने फौजी तालीम पाई हो। उसी प्रकार आर्थिक और राजनीतिक मामलों में भी पुश्तैनी पण्डितों और मुल्लाओं को ही लीडरी न मिले, किन्तु दूसरों को ही मिले, इसके लिए जरूरी है कि वे भी परीक्षाएँ पास कर चुके हों। किसान मजदूरों के लिए मुल्क की आजादी का आन्दोलन उठाके जेल जाना, आदि बातें यही तो वह तालीम है और उनमें पास होना ही नेतृत्व का सर्टिफिकेट प्राप्त करना है। इसलिए महज त्याग-बलिदान की बात उठाना ठीक नहीं।

नेता लोग पहले तो ठीक ही रहते हैं। पहले उन्हें आखिर पूछता भी कौन है? मगर ज्यों ही उनकी ख्याति हुई त्यों ही मनुष्य की कमजोरियों ने उन्हें दबाना शुरू किया। और जब उन पर कोई बन्धन या निगरानी नहीं है तो खामख्वाही दब जाते हैं। मगर यह खतरा तो पीछे आता है। जो चढ़ता है वही तो गिरता है। जो जमीन पर ही पड़ा है वह क्या गिरेगा? परिस्थितियाँ भी उन्हें मजबूर करती हैं। एक तो किसान लापरवाह होके उन्हें छूट देता है और पूछता भी नहीं कि क्या करते, क्या नहीं। दूसरे चारों ओर का वायुमंडल मोहक होता है। शोषक लोग अनेक प्रकार से फँसाने की कोशिश करते हैं। जल्दी सफलता नहीं मिलने से उन्हें निराशा भी धर दबाती है कि किसानों के हक शायद ही मिलें। अब वह देखते हैं कि उनका साथ खूब जम के जनता नहीं देती है, तो घबराहट में भी पड़ जाते हैं। ज्यादा उम्र गुजर जाने पर कुछ उसका भी असर होता ही है। यह भी देखते हैं कि दुनिया में और लोग भी तो नेता हो चुके हैं। मगर उनने भी आखिर क्या किया? यही न कि किसी पद पर जा बैठे और सन्तोष कर लिया, या यों ही मर मिटे और कुछ न हुआ? फिर हमीं ने क्या किसान-मजदूर राज्य का ठेका लिया है? इन्हीं सब कारणों से पीछे चलकर उनका पतन हो जाता है।

यह सब बातें उनके लिए हैं जो शुरू में ईमानदारी से काम में पड़ते हैं और अपना कोई भी मतलब नहीं रखते। मगर जो शुरू से ही मतलब के लिए ही आते हैं उनका क्या कहना? वह तो जानबूझ के ही धोखा देते हैं। वह तो धोखा देने की नीयत से आते ही हैं। नहीं तो उनका मतलब सिद्ध होगा कैसे? बासी जलेबी की भी ताजी-ताजी पुकार के जो खोमचेवाला बेचता है उसका तो मतलब साफ ही है। बिना वैसा कहे लोग खरीदेंगे ही नहीं। मगर भूल तो उनकी है जो उसकी बातों पर विश्वास कर लेते हैं और विचार नहीं करते कि बात क्या है?

नेताओं के पतन या धोखे की जो बातें अभी-अभी कही गई हैं उनसे तो आसानी से बच सकते हैं, यदि एक ही काम करें—उन पर कड़ी निगरानी रखें। लेनिन ने बार-बार कहा है कि जनता के दबाने के लिए पुराने साधन तो हैं ही, जिन्हें लाठी, गोली, फाँसी, जेल, देशनिकाला, जायदाद जब्ती आदि कहते हैं। इनसे तो उसे दबाया

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जाता ही है। इसी का नाम तो दमन है। मगर अब दमन का एक नया साधन और नया अस्त्र किसान मजदूरों के दबाने के लिए निकला है। जैसे अनेक आविष्कार होते रहते हैं वैसे ही इसका भी आविष्कार किया गया है। बहुत ही सोच-समझ के। शोषकों ने सोचा कि यदि शत्रु खिलाने से ही मरे तो नाहक जहर क्यों देना? उन्होंने देखा कि दमन से बदनामी भी काफी होती है और हमेशा काम निकलता भी नहीं। प्रत्युत ज्यादा दमन हो जाने पर जनता नल के जल की तरह उमड़ जाती है—ऊपर आ जाती है। फिर तो उसका रोकना कभी-कभी असम्भव-सा हो जाता है। इसीलिए उन्होंने दिमाग लगा के दमन का अत्यन्त शान्तिपूर्ण साधन ढूँढ़ निकाला।

इसे ही कहते हैं खूब बातें बनाना। किसानों के सामने उनकी तकलीफों की बातें खूब करना, गर्मागर्म स्पीचें झाड़ना, मौका मिलते ही सबसे पहले ही उन्हें दूर करने की बार-बार प्रतिज्ञा करना, नकली आँसू बहाना, जमींदारों, साहूकारों तथा सरकार को भर पेट कोसना, और गिन-गिन के गालियाँ देना। यही आज का नवीन आविष्कृत ब्रह्मास्त्र है, जिससे किसान और मजदूर बेलाग मारे जाते हैं। वे कुछ कर भी नहीं सकते। जैसे रेशम का कीड़ा अपने ही बनाए जाल में फँस के मर जाता है। ठीक वैसे ही किसान अपने ही बनाए नेताओं के जाल में पड़ के जिबह हो जाते हैं। यह ऐसी मीठी छुरी है, यह ऐसा हलका नश्तर है कि पता भी नहीं लगता, अच्छा मालूम होता है और एकाएक जान भी चली जाती है। तब भी आँखें नहीं खुलती हैं यही तो इसकी खूबी है—यही तो आश्चर्य है। यही है पूर्ण शान्तिपूर्ण हत्या।

15.8.40। जनता का एक स्वभाव है कि वह आँख मूँदके विश्वास कर लेती है। जब तक अविश्वास रहा तब तक रहा। मगर ज्यों ही वह हटा कि उसकी जगह विश्वास बैठ जाता है। यह अविश्वास भी सब में नहीं पाया जाता है। किन्तु कुछी लोगों में जो व्यवहार कुशल और चतुर होते हैं जनता तो देखादेखी चलती है। उसने देखा कि किसी नेता और बड़े आदमी को लोग बहुत मानते हैं। बस वह उस नेता के पीछे हो लेती है। यह नहीं सोचती कि आखिर वह कौन हैं, कैसे हैं, आया उसके काम के भी हैं या नहीं। ऐसे लोग जिनसे कभी कोई ताल्लुक नहीं, खूब ही पूजे जाते हैं और बेखटके अगुवा बने फिरते हैं। असल में किसानों ने—जनता ने मिट्टी, पत्थर, पेड़ वगैरह जिसे ही ऊँचा देखा या गोलमोल उसे ही देवता मान लिया और उसके सामने सिर झुका के प्रार्थना शुरू कर दिया। इस प्रकार लाखों देवी-देवताओं के सामने झुकते-झुकते उनकी तो झुकने की आदत ही हो गई है। जैसे देवी-देवताओं के बारे में वे ननुनच और प्रश्नोत्तर नहीं करते, ठीक वैसे ही आदमियों के बारे में भी, बशर्ते कि वह बड़े और लीडर हों।

मगर यह सरासर गलत रास्ता है। देवी और देवता तो बोलते-चालते नहीं और न जमींदारों या पूँजीपतियों से मिलते ही जुलते हैं। इसलिए उनसे तो वह खतरा नहीं कि दुश्मनों से मिलकर वार करें और कत्ल कर डालें। मगर नेता लोग तो सब

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कुछ करते हैं—कर सकते हैं। वह तो सर्वत्र जाते और कानाफूसी करते हैं। यह भी देखा जाता है कि शोषकों से कितने ही नेता जा मिले। इसलिए जिसे ऊँचा देखा, जहीं चन्दन लगा पाया या जहीं सेन्दुर या ईंगुर चिपटा देखा उसे ही जैसे देवता मान लिया वैसे ही जिसे ही खादी और गाँधी टोपी पहने देखा और गर्मागर्म स्पीच देते पाया, या यह जान लिया कि जेल-वेल गया है चट उसे ही नेता मान लेना बहुत ही गलत है। मगर होता तो ऐसा ही है।

अगर पूर्वोक्त खोद, विनोद, विश्लेषण और दलील करने की आदत जनता में होती तो धोखा उसे होता ही क्यों? सो भी बार-बार? और आँख मूँद के भेड़ की तरह पीछे-पीछे न चल के, खूब समझ-बूझ के वह अपने नेताओं के पीछे अगर चलती रहती तो यह दुर्दशा उसकी होती ही क्यों? कहावत है कि 'पानी पीना छान के और गुरु बनाना जान के।' यदि यही सिद्धान्त दूर तक लागू हो जाता और नेताओं के लिए भी कोई कसौटी रख के बिना उस पर कसे उन्हें हरगिज नहीं मानते, तब तो सबकुछ ठीक ही हो जाता। जैसे धर्म के मामलों में बुद्धि या तर्क के लिए गुंजाइश ही नहीं रखी गई, और आँख मूँद के मानने का स्वभाव लोगों में जानबूझकर डाला गया। ठीक वैसे ही नेतागिरी के मामले में भी हो गया। जब आदत पड़ जाती है तो धीरे-धीरे उसका विस्तार होई जाता है। धार्मिक नेताओं के पीछे भेड़िया धसान करते-करते आर्थिक एवं राजनीतिक लीडरों के पीछे भी वही होने लगी। पहले तो ऐसे नेता होते न थे। केवल धार्मिक ही होते थे। इसीलिए सारा क्षेत्र उन्होंने ही हथिया लिया था और जनता में दिमागी गुलामी पैदा कर दी थी। क्योंकि ऐसा न होने पर जोई मूर्ख या कुकर्मी हो जाते उन्हें ही जनता नहीं मानती। फिर उनका काम तो नहीं ही चलता। वे लोग हलवा मलाई उड़ा नहीं पाते। इसीलिए जान-बूझकर दिमागी गुलामी जनता में पैदा की गई। अब उसी का नतीजा है कि लोग आर्थिक और राजनीतिक मामलों में भी नेताओं को आँख मूँद के ही मानते हैं और अन्त में बरबाद होते हैं।

जब दो-चार पैसे के घड़े और दूसरे बर्तनों को ठोंक-बजा के लेते हैं तो यह कौन सी बुद्धिमानी है कि जिन्दगी और मौत के सौदे में आँख मूँद के चलें और नेता लोगों को ठोंक-बजा न लें? यह तो बड़ा ही कीमती सौदा है। यहाँ तो क्रान्ति का प्रश्न है फिर मुरव्वत या लापरवाही कैसी? यदि ठोंकने-बजाने में नेता लोगों के दिमाग का पारा चढ़ जाए और वे लोग आपे से बाहर हो जाएँ तो बुरा क्या होगा? आगे चल के धोखा देते सो शुरू में ही खुल गए। कुछ दिन पुजवा के आखिर पोल खुलती ही। यदि पहले ही खुली तो और खुशी होनी चाहिए। जो हमारी मामूली बातें बरदाश्त नहीं कर सकते, जो हमारे प्रश्नों से ही बौखला उठते हैं, वह हमारे लिए ही गोली कैसे बरदाश्त करेंगे और फाँसी पर कैसे चढ़ेंगे? यह तो मोटी दलील है और इसी से काम चल जाता है, बशर्ते कि हम इसका बराबर प्रयोग करें।

कहते हैं कि एक चतुर बनिया कुछ महात्माओं के पास गया और बोला कि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मैं किसी एक को गुरु बनाऊँगा। उसका ऐसा कहना ही था कि सभी तैयार नजर आए! भला गुरु कौन बनना नहीं चाहता? लेकिन उसने कहा कि मैं तो मुर्दा गुरु चाहता हूँ। फिर तो सबके सब बिगड़ उठे और बोले, कैसा सनकी है? कहीं मुर्दा भी गुरु बना करता है? लाचार वह चला गया। उसके बाद गुरु की तलाश में वह दर-दर की खाक छानता फिरा और न जाने कहाँ-कहाँ घूमा। मगर उसकी मुराद पूरी न हुई। सर्वत्र एक ही जवाब मिलता कि मुर्दा और गुरु! यह तो पागलों की बात है। वह परेशान और निराश हो गया और ऊबकर वापस जाना ही चाहता था कि अचानक रास्ते में एक मस्तराम मिल गए। उसने सोचा कि अब तो लौटना ही है। चलो, इनसे भी पूछ देखो?

उसने मस्तराम से कहा कि महाराज मुझे चेला बनाओगे? उत्तर मिला कि चेले तो बनाए नहीं जाते, खुद बनते हैं। हाँ, गुरु बनाए जाते हैं जरूर! उसने कहा कि हाँ, हाँ, मुझे तो गुरु ही बनाना है और मैं आपको ही बनाना चाहता हूँ। लेकिन शर्त यही है कि मैं मुर्दा गुरु चाहता हूँ। मस्तराम ने कहा कि मैं पूरा मुर्दा तो हूँ नहीं। हाँ, आधा मुर्दा जरूर हूँ। उसने कहा कि अच्छा यही सही। पूरा मुर्दा गुरु तो कोई मिला ही नहीं। मैं हैरान हो गया, इसलिए आधे से ही सन्तोष करूँगा। फिर दोनों ही साथ-साथ चल पड़े। दोनों का कुछ समय साथ ही बीता।

बनिया था बड़ा ही काइयाँ। उसने रह-रह के मस्तराम को दिक करना शुरू किया। कभी अन्धेरे में राह चलते हुए जानबूझ के उन्हें गढ़े में पड़ने देता। कभी काँटों और कुशों में बिंध जाने देता। कभी चोरों को ललकार कर पिटवा देता। कभी आगे परोसी थाली उठा लेता। कभी सोए में ही खाट उलट देता। कभी कुएँ में ढकेल देता। कभी स्नान के समय तालाब के गहरे पानी में उन्हें घसीट के डुबाने की कोशिश करता। सारांश यह कि गुप्त और प्रगट रूप में हजारों मौकों पर उसने मस्तराम को काफी तंग किया और अपने जानते नाकों दम कर दी। मगर हर बार उसके आश्चर्य की सीमा नहीं रही जब देखता कि मस्तराम के मुख पर जरा भी क्रोध या मलिनता नहीं। विषाद का चिह्न नदारद। बराबर उन्हें हँसते ही पाता! अन्त में उसने उनके पाँव पकड़के सब अपराधों की माफी चाही और कहा कि महाराज, आप आधा मुर्दा नहीं पूरा मुर्दा हैं। मस्तराम ने इतना ही कहा कि माफी का क्या सवाल? जब मुझे गुरु—पथदर्शक बनाने चले हो तो स्पष्ट है कि बड़ा कीमती सौदा करने वाले हो। ऐसी दशा में खूब जाँच करना और ठोंक-ठाँक लेना उचित ही है। मैं भी तो यही करता, यदि तुम्हें गुरु बनाने चलता या किसी और को ही। यही तो रास्ता है।

यह मुर्दा गुरु वाली बात नेताओं के बारे में भी लागू करना किसानों का फर्ज है। यदि भविष्य में धोखे से बचना चाहते हैं तो उनके लिए दूसरा उपाय है भी नहीं। यदि सस्ते और बाजारू नेताओं से अपना पिंड छुड़ाना चाहते हैं, यदि चाहते हैं कि उनका लक्ष्य सिद्ध हो और किसान-मजदूर राज्य कायम हो तो बिना ऐसा किए काम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चलने का नहीं। जहाँ उनने इसका निश्चय किया कि अधिकांश नेता लोग शुरू में ही दुम दबा के भाग निकलेंगे। वे सामने आएँगे ही नहीं। उनकी लालसा मन में ही मुरझा जाएगी। यदि कुछ लोग हिम्मत और बेहयाई करके आना भी चाहेंगे, या आएँगे तो धीरे-धीरे उन्हीं भी धसकना ही होगा। आखिर मुर्दा तो सभी बन सकते नहीं? फिर उनके लिए चारा ही क्या रहेगा?

कहते हैं कि किसी के यहाँ चार मेहमान पहुँचे। उसने उन्हें आदर से खिलाया-पिलाया। कई दिन गुजर गए। मगर वे लोग जाने को रवादार नहीं हुए। उसने उपाय किया। पहले दिन घी परोसना रोक दिया। बस, एक ने जो शानियल था, ताड़ लिया और वह चला गया। मगर तीन तो इतने पर भी डँटे रहे। फिर उसने साग-तरकारी बन्द की। तब दूसरा भी गया। जब दाल बन्द करके केवल सूखी रोटी खाने को दी तो तीसरा भी चला गया। मगर चौथा जिसका धोधली नाम था फिर भी डटा रहा। वह पूरा बेहया जो था। अब घरवाले ने देखा कि गलहस्ते न 'धोधली'—धोधली को गर्दनियाँ देके निकाले बिना काम नहीं चलेगा। उसने ऐसा ही किया। ठीक यही हालत रँगे नेताओं की होगी। एके बाद दीगरे सभी निकल भागेंगे। मगर जो पक्के निर्लज्ज होंगे उन्हें भी गर्दनियाँ देना ही होगा और इस प्रकार उनसे पल्ला छुड़ाना ही होगा। इस प्रकार छँटते-छँटते जो रह जाएँगे वही सच्चे नेता होंगे। वही अन्त तक साथ देंगे।

हम कोई नई बात नहीं कहते हैं। यही तो संसार का नियम है। बराबर ऐसा ही तो करना ही होता है। बिना बार-बार की छँटैया के काम कभी चलता नहीं। हम देखते हैं कि लोग खाते हैं भात, जो चावलों से बनता है। मगर क्या चावल पैदा होते हैं? किसी ने चावल के पौधे कहीं देखे हैं? पैदा तो होता है धान। सो भी डंठलों और पुआल के भीतर। चावल तैयार करने में कम से कम छह बार छँटैया करनी होती है। पहले तो पीट के या बैलों के पाँव तले रौंद के पुआल को अलग करते हैं। फिर भूसे से अलग करने के लिए उसे हवा में फटकारना (ओसाना) होता है। लेकिन फिर भी देखा जाता है कि बिना चावल वाले और चावल वाले दोनों ही प्रकार के धान मिले रहते हैं। इसलिए तीसरी कोशिश से चावल वाला साफ हो जाता है। फिर ओखली में एक बार कूटने और फटकारने से आधे धान का चावल और आधा धान ज्यों का त्यों रह जाता है। तब पाँचवीं बार कूटने और फटकारने पर चावल अलग हो जाता है। मगर फिर भी देखने में सुर्ख रह जाता है। अन्त में धपाधप उजला चावल प्राप्त करने के लिए छठी बार कूटना तथा फटकारना जरूरी होता है। फिर नेताओं के बारे में भी यही सिद्धान्त किसान क्यों न लागू करेगा? वह तो चावल के सम्बन्ध में बार-बार ही ऐसा करता रहता है। यह तो कोई नई बात उसके लिए है नहीं।

नेता लोग आँसू बहाते हैं सही और उनके आँसू तथा उनकी बातें—उनके धारावाही लेक्चर—उनके दिल का पता लगाने पर तो मानना ही पड़ेगा कि किसानों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और मजदूरों के कष्टों की प्रचण्ड पीड़ा ने उनके दिल तक असर कर लिया है और वह पिघल के बाहर आँख के रास्ते बहा जा रहा है! जो प्रतिज्ञाएँ वे लोग करते हैं उन पर यदि कुछ भी यकीन किया जाए और सौ बातों में एक बात भी मान ली जाए, तो कहना ही पड़ता है कि वे लोग मौका पाते ही किसानों के लिए सबकुछ कर डालेंगे और जरा भी कसर रहने न देंगे। इतना ही नहीं जब तक किसानों के सारे कष्टों को दूर न कर लेंगे तब तक वे दम न लेंगे, आराम न करेंगे, अपनी और अपने बाल-बच्चों की कतई परवाह न करेंगे और आसमान-जमीन को एक कर डालेंगे। सारांश, राम की ही तरह वनवास करने की उनने प्रतिज्ञा कर ली है, जब तक कि राक्षसों का संहार न हो जाए और देवता तथा ऋषि लोग सुख से निवास करने न लगें।

मगर व्यावहारिक रूप में देखा क्या जाता है? क्या सचमुच ये प्रतिज्ञाएँ, ये आँसू और ये गर्म लेक्चर कोई कीमत रखते हैं? ज्यों ही मामूली अधिकार मिले कि ये लीडर लोग अपना पर्दा—अपने ऊपर का बुर्का—उठा फेंकते हैं। फिर तो वे सारी प्रतिज्ञाओं को ताक पर रख के खुद उन पदों पर जैसे-तैसे जा लिपटते हैं—लिपट जाने की कोशिश जी जान से करते हैं। आज तक का इतिहास चिल्ला-चिल्ला के हमें यही बताता है। अपने देश में भी हमने यही पाया है और गैर मुल्कों में भी। ये नेता ऐसे बेशर्म होते हैं कि करते तो हैं धोखेबाजी और किसानों एवं मजदूरों के साथ गद्दारी—द्रोह, मगर फिर भी बात बनाए जाते हैं और कहने की हिम्मत करते हैं कि हम तो उन्हीं की भलाई के लिए यह काम कर रहे हैं। बोर्डों, कौंसिलों, असेम्बलियों में जाके उनकी ही भलाई करेंगे, करते हैं। क्या खूब? यदि भलाई ही करनी थी तो उन्हीं को क्यों नहीं जाने दिया? आप उनके सलाहकार और मददगार रहते और क्या किया जाए, कैसे किया जाए, यह बताते रहते। खैर, भत्ता, वेतन वगैरह छोड़ के यदि कुछ करते तो एक बात भी थी। मगर वह कैसे होगा? इण्टर और सेकण्ड क्लास के बिना अब तो रेल में चली नहीं सकते। क्या यह पैसा विलायत से आएगा जो उनके लिए खर्च होगा?

आज तक इन लोगों ने उन पदों से क्या-क्या किया जिससे किसानों को लाभ हुआ? क्या शिक्षा को मुफ्त और अनिवार्य कर सके? सफाई और दवा का प्रबन्ध सर्वत्र कर सके? मलेरिया वगैरह से उनका पिंड छुड़ा दिया? बाढ़ और पानी रुक जाने से होने वाली तबाही से बचा सके? लगान वगैरह को इतना कम कर सके कि किसान परिवार खा-पी सके? क्या सचमुच किसानों की माली और शारीरिक हालत में कोई खास ढंग की उन्नति कर सके?

हुआ तो कुछ नहीं! किया-कराया तो कुछ भी नहीं। कहेंगे पैसा नहीं है, तो करें क्या? तो क्या यह पैसे की कमी पीछे हो गई, या पहले से ही थी, जब आप लोग वहाँ पधारे थे? बीच में कोई चीज तो हुई नहीं। फिर पहले ही क्यों न ऐसा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सोचा? असल में कहा था वहाँ अपने स्वार्थ के लिए खामख्वाह? अब बहाने ढूँढ़ने लगे हैं। यही बहाने हमेशा हुआ करते हैं। पुलिस, फौज या शासनचक्र चलाने के लिए जरूरी जितनी भी चीजें हैं उनके लिए यदि पैसे मिलते हैं तो किसानों के फायदे के लिए क्यों न मिलेंगे? और अगर नहीं मिलते तो शासन का खर्च क्यों न रोका जाए और नेता लोग उसी काम को क्यों न करें, कराएँ? जो लोग शोषण करते हैं, जो जनता का खून पीते हैं, वह भी यही दावा करते हैं कि जनता के फायदे के लिए ही सबकुछ कर रहे हैं। क्या जमींदारों और पूँजीपतियों का भी यही दावा नहीं है? क्या सूदखोर लोग ऐसा नहीं कहते कि यदि वे न रहें तो देहातों में या शहरों में भी गरीबों का काम ही न चले?

एक खूँखार ने किसी के सम्बन्धी को मार डाला। जब उसने बिगड़ के पूछा और धमकाया तो खूँखार बोला कि नालायक और अहसान फरामोश (कृतघ्न), यदि तेरा सम्बन्धी जीता रहता तो न जाने कितनी बार बीमार पड़ता, समय-समय पर उसे कितने सदमे पहुँचते, भूख-प्यास की तकलीफ होती और परिवार के लिए हजार फिक्रों के पीछे परेशान रहता! मैंने इन सब दिक्कतों से उसे छुटकारा दिला दिया। ऐसी हालत में मुझे धन्यवाद देने के बजाए उलटे तू धमकी देता है। यह कैसा सुन्दर उपकार है।

हिन्दुओं के यहाँ पुराने जमाने में बड़े-बड़े यज्ञयाग होते थे। उनमें अनेक पशु मारे जाते थे। जब विरोधियों ने कहा कि तुम लोग तो हत्यारे हो, तो उत्तर मिला कि तुम्हें पता नहीं, जो पशु मारा जाता है वह सीधे स्वर्ग चला जाता है। इस प्रकार हम उसका बड़ा भारी उपकार करते हैं! क्या खूब! यदि ऐसा ही उपकार करना था तो परिवारवालों को ही क्यों सीधे स्वर्ग न पहुँचाया। नेता लोग भी पदों को स्वीकार करके ऐसा ही दावा करते हैं जैसा यज्ञयाग में पशु को मारने वाले उसके बारे में करते हैं। मगर ऐसे भयंकर उपकार से खुदा बचाए!

असल में किसानों का उपकार किया या नहीं किया। मगर अपना और अपने परिवार का तो कर ही लिया। आखिर जो धन कमाएँगे—कमाते हैं—वह कुएँ में तो फेंका जाता नहीं। वह घरवालों को ही तो मिलता है। सभी का उपकार तो असम्भव था। इसलिए जितनों का कर सके किया। यह तो किसानों की नादानी थी जो ऐसा समझते थे कि सबका एक ही साथ भला हो जाएगा। आखिर स्वराज्य की ही तो बात थी और वह स्वराज्य सबका जुदा-जुदा है। जब नेता लोग स्वराज्य कहते हैं तो उस शब्द में जो 'स्व' शब्द है उसका अर्थ है 'अपना'। मगर उस 'अपना' से नेता लोग निज का न समझ के किसान का समझें, यह तो अजीब बात है! वह तो अपने राज्य की बात कहते हैं। यदि किसान उसे अपना राज्य समझता है तो इसमें भूल किसकी है? नेताओं ने तो साफ ही कह दिया था कि वे अपने (स्व) राज्य के लिए कोशिश कर रहे हैं। और वह स्वराज्य छोटा, मँझोला, बड़ा, बड़े से

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बड़ा, सबसे बड़ा इस प्रकार कई तरह का होता है। यह यूनियन बोर्ड, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड वगैरह छोटे, मझोले आदि श्रेणी में ही हैं और अगर वे मिले तो उन्हें वे लोग छोड़ क्यों दें? वे यह बेवकूफी क्यों करें? यदि किसान अपना (स्व) राज्य चाहते हैं तो वह खुद लड़ें! उसे वे खुद हासिल करें।

कहते हैं कि किसी गरीब ब्राह्मण ने समुद्र तट पर जाके बड़ी उग्र तपस्या दीर्घ समय तक की। वह चाहता था कि उसकी परले दर्जे की गरीबी से उसे छुटकारा मिले। अन्त में समुद्र प्रसन्न हुआ और उसने एक शंख ब्राह्मण को दे के कहा कि जाओ, इससे जो माँगोगे वही देगा। ब्राह्मण कृतकृत्य हो के घर रवाना हुआ! थोड़ी दूर चल के उसने सोचा कि खाने-पीने का समय है। जरा शंख की परीक्षा भी तो करूँ कि क्या बात है! स्नानादि के बाद शंख की उसने विधिवत् पूजा की और हाथ जोड़के माँगा कि मेवा-मिष्टान्न और हलवा-मलाई दो। चार लोगों के खाने-भर मिलें। फौरन सभी चीजें हाजिर हुईं और खा-पी के विश्वासपूर्वक वह घर चला। मगर इस झमेले में देर हो गई। शाम हो जाने से रास्ते में ही किसी एक परिचित के यहाँ जा टिका। परिचित था बड़ा काइयाँ। ठगने का सामान भी उसके पास काफी था। इधर ब्राह्मण था भोला भाला। उसने परिचित के हाथ में शंखवाली झोली देते हुए कहा कि भाई, इसे जरा हिफाजत से रखना बड़ी तपस्या के बाद यह शंख मिला है। अब मेरी गरीबी भागेगी, क्योंकि जो ही माँगिए यह वही देता है। परिचित ने खूब मीठी बातें बनाईं और कहा कि भला हुआ जो आपकी दरिद्रता भगाने की सामग्री मिली। मैं इसे बक्स में बन्द किए देता हूँ आपके सामने ही। चलिए देखिए और उसकी कुंजी आप ही अपने पास रखिए! ब्राह्मण ने प्रसन्नतापूर्वक शंख की झोली बक्स में बन्द करवाई। कुंजी लेना वह न चाहता था। मगर उसने हठपूर्वक दे ही दिया।

जब रात में सभी सो गए तो परिचित ने उस ताले की दूसरी कुंजी निकाली, बक्स खोला, शंख निकाल के उस झोले में हूबहू वैसा ही शंख रख दिया, ताला बन्द कर दिया और खुद भी सो गया। सुबह हुई और ब्राह्मण ने उसे जगा के शंखवाली झोली माँगी। उसने कहा कि घर आपका ही है। जाके खोल के ले आइए। ब्राह्मण ने वैसा ही किया और झोली को ठीक स्थान पर पाके तथा उसमें रखे शंख को देखके वह झोली के साथ बाहर आया और तेजी से घर पहुँचा। पहुँचते ही बड़ी खुशी से स्त्री से कहा कि जल्दी स्नानादि का प्रबन्ध करो। मैं ऐसा शंख लेकर आया हूँ कि यह मन माँगी मुराद पूरी करेगा।

फिर तो तैयारी हुई। स्नानादि के बाद शंख को ऊँचे स्थान पर रखके उसने खूब प्रेम से पूजा की। फिर माँगा कि पाँच रुपए दो। शंख ने कहा दस लो। उसने कहा अच्छा दस ही दो। शंख बोला बीस लो। ब्राह्मण बोला, अच्छा बीस ही सही। शंख ने चट चालीस कहा। जब चालीस की माँग हुई तो उसने अस्सी कहा। सारांश

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यह कि जितना माँगा जाता उससे ठीक दूने का वचन वह देता जाता था। ब्राह्मण बेचारा घंटों इस दूने के चक्कर में पड़ा रहा और भोंकते-भोंकते उसका गला फट गया। अन्त में उसे रंज हुआ और डाँट के बोला कि हरामजादे, कुछ देगा भी सही कि सिर्फ दूने का हिसाब लगाए जाएगा? यदि नहीं दिया तो पत्थर से पीस दूँगा। इस पर लाचार हो के शंख ने अपना असली रूप प्रगट किया और कहा कि मैं तो डपोर शंख हूँ। मैं सिर्फ कहता हूँ, देता नहीं—डपोर शंखोऽस्मि। वदामि न ददाम्यहम्। अब चीरो तो ब्राह्मण के शरीर में खून नहीं। वह समझ न सका कि यह क्या हुआ। मगर करता क्या? लाचारी थी?

ठीक यही डपोरशंखी बात नेताओं की भी है। किसान जो भी सोचता और चाहता है उससे भी बढ़-बढ़ के वचन ये नेता देते जाते हैं। वह बेचारा क्या समझे? विश्वास करता रहता है। मगर जब नेताओं का काम बन जाता है मगर किसान का कुछ भी नहीं होता तब वह बौखलाता जरूर है। मगर अब करेगा ही क्या? अब तो तीर हाथ से निकली गया! नेताओं की तो बन गई। वह तो गद्दी पर जा बैठे। अब यदि उनसे पूछता या जबाव तलब करता है तो उत्तर देते हैं कि क्या करें? परिस्थिति ही ऐसी है, फलाँ-फलाँ दिक्कतें हैं, पैसे नहीं हैं, मुल्क तैयार नहीं है आदि-आदि। लेकिन अब कुछ किया भी तो नहीं जा सकता। अब तो मियाँ की जूती और मियाँ ही का सर के अनुसार किसान के ही बनाए नेता उसी का गला काटने में उसके शत्रुओं से गँठजोड़ कर लेते हैं।

ऐसी दशा में यदि किसान उन्हें पदच्युत करना और पछाड़ना भी चाहे तो कुछ कर नहीं सकता। अब तो उनके ही हाथ में शक्ति रहती है और शासन भी उनके ही हाथ में रहता है। यदि न भी रहे तो भी एकाएक कोई बात किसान कर नहीं सकता। वह तो पहले से तैयार ही नहीं रहता और बिना पूरी तैयारी, पूरी वर्ग चेतना, पूरी संघशक्ति के वह कर ही क्या सकता है? ये सब चीजें ऐसी भी नहीं हैं कि चटपट हो जाएँ। इनके लिए तो काफी समय चाहिए।

मध्यमवर्गीय नेताओं की इधर यह हालत होती है कि किसानों और मजदूरों की पूरी तैयारी के न रहने पर गोलमाल खूब ही करते हैं। उनमें जो बोलचाल और बातें बनाने की शक्ति होती है उसका खूब ही उपयोग उन्हीं किसानों और मजदूरों के विरुद्ध बेखटके करते हैं जिनके कन्धों पर चढ़के ऊपर उठे हैं। खूबी तो यह होती है कि उन्हीं किसानों तथा मजदूरों की भलाई के नाम पर ही लेक्चरबाजी करके उनका ही गला रेतते हैं। असल में मध्यम वर्ग की, उस परिस्थिति में, यह खास खूबी होती है कि वह जिधर ही झुकता है लोगों को, भोली-भाली आम जनता को, उधर ही खींचता है क्योंकि स्वभावतः जनता पर उसकी धाक होती है और वह उसमें विश्वास करती है। और जिधर जनता झुकी उसी की जीत हुई। इसलिए जब वह किसानों और मजदूरों का विरोध करता है तब वह शोषकों और शासकों का समर्थन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करता है, तो लोकमत की तरफ झुक जाने के कारण किसानों एवं मजदूरों का हार जाना जरूरी हो जाता है। क्रान्ति और किसान-मजदूरों की लड़ाई के इतिहास में सैकड़ों बार यह बात देखी जा चुकी है और सभी समझदार इसे स्वीकार करते हैं। इसीलिए जब तक किसानों और मजदूरों का शोषकों एव उत्पीड़कों का—जीता-जागता संगठन न हो जाए, उनमें पूर्णरूप से वर्गचेतना विकसित न हो जाए और एक छोर से दूसरे छोर तक बिजली दौड़ने न लगे तब तक इन मध्यमवर्गीय नेताओं से लड़ाई या खुल्लमखुल्ला विरोध करना बड़ा ही खतरनाक है। वे यह जानते हैं और इसी से अनुचित लाभ उठाते हैं। यही लाभ उठाने के ही लिए तो शोषितों को पूरा-पूरा तैयार करते ही नहीं। तैयार ही नहीं होने देते। उनमें जीती-जागती वर्ग-चेतना आने ही नहीं देते। हजार बहानेबाजी से यह काम रोकते हैं, रोकना चाहते हैं। इसीलिए तो उनसे विरोध न करके उन पर कड़ी नजर रखने और उनकी पक्की जाँच करने की बात कही जा रही है। साथ ही, अपनी तैयारी करने की भी पक्की सलाह दी जा रही है।

किसानों के लिए सबसे जरूरी काम यह है कि वह हरेक नेता का पूरा-पूरा वृत्तान्त जाने। वह शुरू से लेकर कैसे, कहाँ, और किस दशा में क्या-क्या काम करता था, यह अच्छी तरह पता लगाएँ। पूरा ब्योरा और पूरा पूर्व इतिहास जाने बिना असलियत की पहचान असम्भव है। वह इतिहास ही आईने की तरह झलक देता है कि नेताओं के विचार कैसे हैं, उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति एवं रुचि किस ओर है और स्वभावतः वह कैसे लोगों का सम्पर्क पसन्द करते हैं। यदि सदा से उनका यही काम रहा हो कि जिन्हें ही गिरा हुआ और पददलित पाया उनके ही उठाने में पड़ गए तो मानना पड़ेगा कि उनकी प्रवृत्ति किसानों के ही अनुकूल है, लेकिन सिर्फ एकाध दृष्टान्तों से ही यह नतीजा निकालना बड़ी भूल होगी। नेताओं की लगातार ऐसी हलचल और कार्यवाही से ही यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है। यह जरूरी नहीं कि नेताओं ने सर्वत्र लड़ाई लड़ी हो। चाहे लड़ के, चाहे आन्दोलन से या बातों से और अपने व्यवहारों से ही यदि उनने ऐसा किया हो और इस प्रकार शोषकों को अपना विरोधी बना लिया हो तो बेशक ऐसा नतीजा निकाला जा सकता है। यदि उन्होंने बराबर ऐसा किया हो तो उनके झुकाव का अन्दाज लग सकता है। तब माना जा सकता है कि वे किसानों का भी पूरा साथ जरूर देंगे। इसीलिए ब्योरेवार पता इस चीज का लगाना निहायत जरूरी है। उनकी असलियत की यह एक पक्की कुंजी है।

दूसरी चीज देखनी यह होगी कि उसके विचार कैसे रहे हैं और आज भी कैसे हैं। जो निर्भीक हो, निर्भयता से स्वतन्त्र विचारों को प्रगट करे और उनका समर्थन करे वही मजलूमों और पीड़ितों का नेता हो सकता है। सब चीजों की गुलामी भले ही बर्दाश्त कर ली जाए। मगर विचार की गुलामी और बुद्धि की परतन्त्रता, जिसे दिमागी गुलामी कहते हैं हर्गिज बर्दाश्त नहीं की जा सकती। कौन चीज बुरी और कौन सी भली है कौन मान्य और कौन अमान्य है, किससे हित होगा और किससे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अहित, इसका पता तो विचार ही दे सकता है। विचार की कसौटी पर ही कसने से असली और नकली का, भले और बुरे का पता चल सकता है। इसके लिए दूसरा तराजू या दूसरी कसौटी है ही नहीं। अगर चीज ठीक है तो फिर विचार-सूर्य के सामने आने से उसे डर क्या? प्रकाश में आने से तो ठग और चोर ही डरते हैं। इसलिए जब तक विचार की स्वतन्त्रता है तब तक आशा है कि सच्ची बातें छिप नहीं सकती है, कोई उन्हें सदा के लिए छिपा नहीं सकता।

इसीलिए दूसरी जितने प्रकार की गुलामियाँ हैं, सभी मिट सकती हैं, सभी के मिट जाने की आशा की जा सकती है, यदि बुद्धि आजाद हो, और विचारों को प्रकट करने या रखने में कोई बाधा न हो। असल में विचार-स्वातन्त्र्य से कितनी ही बेबुनियाद और हानिकारक रूढ़ियाँ और अन्ध परम्पराएँ खत्म हो जाती हैं, टिक नहीं सकती हैं। और शोषक लोग तो ज्यादातर रूढ़ियों के बल पर ही अपना अस्तित्व बनाए रखना चाहते हैं। जब पुरानी चीजें एके बाद दिगरे मिटने लगीं तो उन्हें खतरा होता है कि जमींदारी वगैरह भी मिट सकती हैं। इसीलिए वे रूढ़ियों को पकड़ रखना चाहते हैं। यही कारण है कि वह स्वतन्त्र विचारों के पक्षपाती कभी नहीं होते। फलतः जो विचार-स्वातन्त्र्य का समर्थक होगा वह उनका विरोधी हो सकता है, यह सम्भावना पूरी-पूरी है।

विचारों के बारे में एक चीज और है। गरीबों का, किसानों का निस्तार तब तक नहीं होगा जब तक क्रान्ति न हो और वर्तमान सामाजिक व्यवस्था न बदल जाए। लेकिन बाहरी क्रान्ति से पहले भीतरी—विचार की क्रान्ति जरूरी है। दकियानूसी, पुराने और खूसट विचारों वाले क्रान्ति से हजार कोस दूर भागते हैं। जब हमें नई दुनिया लानी है, जब नया संसार बनाना है तो उस संसार का खाका तो पहले मन में आएगा ही। जो चित्रकार अपने मन में किसी का चित्र बना नहीं सकता, वह बाहर कागज या दीवार पर कैसे बनाएगा? इसलिए बाहरी उथल-पुथल से पहले विचारों की पृथक् उथल-पुथल अनिवार्य है। जब विचारों में यह चीज हुई तो उसे रोकना नहीं, किन्तु खुल्लमखुल्ला प्रकट करना आवश्यक है। क्योंकि केवल एक-दो या दस बीस के ही विचारों की उथल-पुथल से कुछ होने जाने का नहीं; जब तक आम लोगों में वह बात बैठ न जाए। इसी से मानना होगा कि स्वतन्त्र विचारों को स्वेच्छापूर्वक प्रकट करने से क्रान्ति की परिस्थिति और उसके लिए अनुकूल वातावरण तैयार होता है। इसीलिए वह जरूरी है। जो विचारों को प्रगट करने में ही डरेगा वह किसानों के हकों की लड़ाई लड़ने की हिम्मत ही कहाँ से पाएगा? जो बात में ही इतना कमजोर है वह काम में तो खामख्वाह हजार गुना दब्बू साबित होगा और दब्बू नेता तो डुबा देगा ही, यह ध्रुव है।

तीसरी चीज यह देखने की है कि वह धुन का कैसा है। काम छोटा हो या बड़ा, कोई बात नहीं। मगर उसे पूरा करने में उसने पहले क्या किया यह देखना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जरूरी है। किसी चीज की सफलता के लिए सबसे जो जरूरी चीज है, वह है धुन, लगन, जीवट। कहते हैं कि आदमी की धुन में बड़ी ताकत है, अपार शक्ति है। यदि हम दृढ़संकल्प के हों तो सफलता मिल के ही रहेगी। देखा जाता है कि जितने धर्म और मजहब हुए सभी को पूर्ण सफलता मिली। और सभी के मानने वाले भी खूब ही हुए। यदि सच्चाई की ही बात होती तो परस्पर विरोधी विचारों और बातों में किसी एक को ही सफलता मिलती। मगर मिली सफलता सभी को। सो भी खूब ही। क्यों? इसीलिए कि उनके प्रवर्तकों में धुन थी, लगन थी और उनका संकल्प दृढ़ था। यदि सफलता लोहा है तो लगन और दृढ़संकल्प चुम्बक है जो खामख्वाह उसे पास में घसीट लाती है।

कहते हैं, किसी जमाने में एक टिट्टिभी (टिटिहरी) पक्षी—नर-मादा दोनों ही—समुद्र के किनारे रहते थे। समय पा के उनने ऐसी जगह अंडे दिए जहाँ पर कभी पानी (लहर का) पहुँचता ही न था। मगर अकस्मात् एक दिन ऐसी ऊँची लहर आई कि उनके अंडे बह गए। वे दोनों चारा चुगने गए थे। इसीलिए बचा न सके। नहीं तो अंडे ले के अन्यत्र उड़ जाते। जब लौटे तो अंडे गायब! उनके मन में बड़ा रंज हुआ। उनके क्रोध की सीमा न रही। सोचने लगे, अंडे बहाने में समुद्र को क्या मिला? यहाँ तक तो कभी आता न था। हमारी सारी जिन्दगी तो यहीं बीती। हो न हो, जानबूझ के शैतानियत की है। अच्छा, तो इसका नतीजा उसे भुगतना ही होगा। दोनों ने तय कर लिया कि चाहे जो हो, मगर या तो दोनों मरी जाएँगे, या अंडे ही वापस लेके दम लेंगे। समुद्र को अंडे लौटाने के लिए दो-चार दिन की मुहलत दी गई और कहा गया कि न देने पर या तो तुम्हीं या हमीं। कहते हैं कि न सिर्फ समुद्र बल्कि सुनने और देखने वाले सभी हँसे कि यह क्या बच्चों की-सी नादानी है, देखो इन तुच्छ पक्षियों की हिम्मत! मगर पक्षी अड़े रहे। वह अपने दृढ़संकल्प से विचलित न हुए।

मुहलत की अवधि भी बीत गई। मगर अंडे कौन देता? किसे इसकी परवाह थी? अपार विस्तार वाला और मच्छ, कच्छ आदि एक से एक खूँखार जानवरों एवं पहाड़ों तक को अपने उदर में पालने तथा स्थान देने वाला समुद्र इनकी बात सुनने भी क्यों लगा? जब अवधि पूरी हुई तो पक्षियों ने न कुछ सोचा और न विचारा और लगे चोंच से समुद्र का पानी उठा-उठा के बाहर उलीचने। खाना-पीना बन्द। उसकी फिक्र उन्हें काम के आगे कहाँ थी। काम बराबर चालू रहा। देखा-देखी पास-पड़ोस के पक्षी भी आए और पूछने लगे कि आखिर पानी पीना क्यों छोड़ दिया और यह क्या कर रहे हो? मगर वे दोनों सुनने को भी रवदार नहीं ? सभी हैरान थे। परन्तु उनका उलीचना तो अखंड रूप से चालू था। उनने बात की अपेक्षा काम से ही उत्तर देना उचित समझा। बातों को अपनी तपस्या में वे दोनों विघ्न मानते थे। जैसे योगी अपनी तपस्या के विघ्नों से बचता है वही बात वे दोनों भी करते

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

थे? आखिर योग भी तो किसी लक्ष्य की साधना ही है न? और वह भी अपनी लक्ष्य की साधना में लग्न थे, तल्लीन थे। फिर विघ्न-बाधाओं से बचते क्यों नहीं!

अन्त में उनकी इस धुन का, इस लक्ष्य के प्रति अनन्य भक्ति का, मर जाएँ या लक्ष्य सिद्ध करें इस अटूट संकल्प का असर आखिर और पक्षियों पर भी हो के ही रहा। यहाँ तक कि जो बड़े-बड़े समझदार थे, जो इनको ही समझा-बुझा के उस नादानी के काम से विरत करने का बीड़ा उठाने आए थे। उन पर भी असर हुआ और 'चौबे गए छब्बे बनने मगर दूबे हो के लौटे' वाली बात चरितार्थ हुई। फलतः धीरे-धीरे सभी पक्षी उसी बेवकूफी में फँस गए। फिर तो उलीचने वालों का ताँता बँध गया। कुछ ही दिनों में देखादेखी लाखों-करोड़ों, अनन्त पक्षी जहाँ देखो चोंच से समुद्र का पानी उलीच रहे हैं। खूबी तो यह कि पूछने पर कोई किसी से वजह भी नहीं बताता। पीछे तो पूछने की हिम्मत भी किसी को नहीं होती थी। वह नादानी ऐसी थी कि सबों के सिर पर सवार हो गई। बड़े-बड़े दाना लोग नादान बन गए। लगन और धुन का जादू ऐसा ही होता है। ऐसा ही यह कीमिया है कि सभी चीजों को पारस बना देता है ज्यों ही इसने छुया। यह ऐसी भयंकर छूत है।

आखिर में एक दिन नारद महाराज भी घूमते-घामते उधर आ निकले और यह तमाशा देख के दंग रह गए। उनने हजार कोशिश की कि इस नादानी के कारण का पता लगाएँ। मगर सुनता कौन? उन्हें अभिमान था कि हम तो ऋषि हैं। हमारा अनादर तो कोई कर नहीं सकता। मगर वहाँ क्षणमात्र के लिए भी फुर्सत ही किसे थी जो कि उनका आदर करता? फलतः रंज होने के बजाए उन पर भी इसका बड़ा असर हुआ। वे फौरन ढूँढ़ते-ढाँढ़ते गरुड़ के पास पहुँचे और पक्षिराज को कसके फटकारा कि तुम यहाँ मौज करते हो और तुम्हारे वंश पर उधर बला आई है। छिः छिः! खबर भी नहीं लेते। सुनते हैं कि तुम्हारे परों में अपार शक्ति है, जिससे समुद्र को जला सकते हो? वह अब कब काम आएगी? गरुड़ शर्मिन्दा हुए और दौड़ पड़े। वहाँ जा के जो नजारा उनने देखा उससे अत्यन्त विचलित हो उठे। फिर क्रोध के साथ अपने पंखों को उठा के समुद्र में मारना इसलिए चाहा कि सारा पानी जला दें। इतने में ही हाथ जोड़ के मनुष्य के रूप में समुद्र ने सभी अंडे हाजिर किए। चलो, मामला तय हुआ। गरुड़ ने उन दोनों नर-मादा पक्षियों को किसी प्रकार ढूँढ़ के अंडे सौंपे। फिर रवाना हो गए। उसके बाद ही कहीं जाकर वह उलीचना रुका।

जनता के काम के लिए और खासकर क्रान्ति लाने के लिए जब तक टिट्टिभी जैसा व्यवसाय और दृढ़संकल्प न हो, कुछ भी होने-जाने का नहीं। और जब नेताओं एवं कार्यकर्ताओं में ही यह धुन नहीं तो जनता में और किसानों में वह कहाँ से आएगी? उसकी छूत उनमें कैसे लगेगी? टिट्टिभी की छूत असंख्य पक्षियों में लगी थी। वैसे ही नेताओं और कार्यकर्ताओं की लगन, तत्परता और धुन की छूत भी किसानों में लगती है। टाल्सटॉय ने कहा है कि हमारे लेक्चरों, नोटिसों, किताबों और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गीतों का स्थायी प्रभाव जनता पर नहीं पड़ता। कुछ समय के लिए भले ही पड़ जाए। और बिना स्थायी प्रभाव के काम निकलता नहीं। लेकिन जिन बातों के लिए नोटिसें बाँटते या लेक्चर देते हैं उन्हीं के लिए जब मरने-मिटने को जेल जाने, मार खाने, जायदाद जब्त करवाने को तैयार हो जाते हैं—सारांश कि उन्हीं की धुन में मस्त हो जाते हैं। और अन्य सारी बातें भूल जाते हैं—तभी दुनिया की आँखें खुलती हैं और वह पीछे-पीछे दौड़ पड़ती है। तभी उसके दिल पर उन बातों का स्थायी असर होता है। इसीलिए नेता और कार्यकर्ता में इस धुन का होना सबसे ज्यादा जरूरी है, चाहे वह लिखना-पढ़ना और लेक्चर झाड़ना भले ही न जानता हो।

नेताओं में जो चौथी चीज होनी चाहिए वह है इसी धुन के सिलसिले में। कहते हैं कि 'हाँके भीम होयँ चौगुना।' मगर जहाँ हाँकने का प्रश्न न हो? जहाँ मदद देनेवाला और हिम्मत बँधाने वाला तो हो नहीं, किन्तु विरोधी हों और चारों ओर से बाधाओं का पहाड़ टूट पड़े? वहाँ क्या हो? वहाँ सच्चा नेता क्या करे? 'अर्जुनस्य प्रतिज्ञे द्धे न दैन्यं न पलायनम्'—'खाएँगे गेहूँ और रहेंगे एहूँ।' जितने ही विघ्न आएँ, जितनी ही दिक्कतें हों, जितनी ही रोक-टोक की वृद्धि हो, उतनी ही हिम्मत बढ़े तभी कार्य सिद्धि होती है। बाधाएँ तो हमारी मजबूती की जाँच के लिए ही आती हैं। क्योंकि कमजोरों को विजयश्री जयमाल पहनाना नहीं चाहती है। इसीलिए परीक्षा की जाती है। जब वैसे मौकों पर भी हम डटे रहे हमने पस्ती न दिखाई, किन्तु और भी हजार गुना जोर लगा के आगे बढ़े, तो किसकी ताकत है कि सफलता रोक सके? और जब नेता में ही यह बात न होगी, जब वही चट्टान की तरह अड़ा न रहेगा, तो अनुयायी और किसान कैसे अड़ेंगे? इसीलिए उसमें इस गुण का होना भी निहायत जरूरी है, अनिवार्य रूप से आवश्यक है।

पाँचवीं चीज है अपने आप में, अपने लक्ष्य और किसानों में अमिट विश्वास। नेताओं और कार्यकर्ता के पूर्व इतिहास से इस बात का पता लगाना चाहिए और वर्तमान समय की बातचीत से भी टटोलना चाहिए कि उनमें आत्मविश्वास है या नहीं। वे यह पूरा यकीन रखते हैं या नहीं कि उनका लक्ष्य—किसान राज्य कायम होना—सिद्ध होगा या नहीं। यह भी देखना तथा अच्छी तरह पता लगाना होगा कि कहीं वे ऐसा तो नहीं समझते कि उनसे यह काम तो होगा नहीं। इसे तो कोई और ही पूरा करेगा। यह भी देखना चाहिए कि किसानों पर उन्हें पूरा विश्वास है या नहीं, कि वे जो चाहें वही काम लक्ष्य सिद्धि के लिए किसान जरूर करेंगे। यदि तीन बातों में एक-दो या सभी के बारे में उनके दिल में जरा भी शक हो तो वह हरगिज नेता बन नहीं सकते। वह सेनापति ही कैसा, वह सिपाही ही कैसा जिसे न तो अपने में विश्वास हो और न अपने लक्ष्य में? वह तो मैदाने जंग में टिक सकता ही नहीं। वह तो बात की बात में पछाड़ खाएगा। उसे हिम्मत कहाँ कि अन्त तक टिके सके? जिसे सेना की योग्यता में ही विश्वास नहीं वह क्या लड़ेगा और क्या विजयी होगा?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उसकी तो जड़ ही खोखली है, उसमें घुन लग चुका है। इसीलिए नेता के लिए इन तीनों में अटूट अपार विश्वास का होना निहायत ही जरूरी है।

छठी चीज है नेता का बाहर और भीतर एक रंग होना। कहा है कि 'दुरंगी छोड़ दे, इकरंग हो जा'। दुरंगी चाल खतरनाक है। दुरंगी तो बाहर भी होती है जिसे गंगा-यमुनी चाल कहते हैं। जो लोग चमगादड़ की तरह सभी को खुश करना चाहते हैं और जो मौका देखके ही बातें किया करते हैं वे सर्वत्र अपनी सफाई ही पेश करते फिरते हैं। किसान के सामने किसान की बात और जमींदार के सामने उसकी बात करना, यदि कोई पूछे कि अमुक स्थान पर तो आपने इसके उलटा कहा था तो चटपट उसका अनुकूल ही मतलब लगा लेना और इस प्रकार अपनी सफाई पेश कर देना रँगे सियारों का ही काम होता है। वे तो बाजारू सौदा है, फलतः सभी जगह अपनी कीमत लगवाना चाहते हैं। उनकी जिन्दगी यों ही गुजरती है। वे तो कुछ ठोस काम कर भी नहीं पाते। तब तो पकड़ लिये ही जाएँ। जीवन-भर उनकी सर्वत्र पूछ होती रही। उनके लिए यही क्या कम है?

मगर कुछ लोग तो ऐसे काइयाँ और घाखड़े होते हैं कि बातें करते हैं खुल्लमखुल्ला ऐसी जो या तो साफ किसानों के ही हित की हों या कम से कम ऊपर से उनका ऐसा ही मतलब मालूम पड़े। अपनी सारी वकालत और अपना सारा दिमाग केवल इसी वंचना, ऐसी ही दुमानियाँ बातों में खर्चते हैं। गोया कचहरी में बैठे वकालत करते हों। नतीजा यह होता है कि किसान धोखे में पड़ जाता है और उन पर लट्टू हो जाता है। साफ बातों का तो कहना ही नहीं। मगर गोल बातों में भी वह अपना ही मतलब निकालता है और समझता है कि यही हमारे कर्णधार हैं।

कहते हैं कि किसी भविष्यवक्ता से जो बड़ा चालाक था, किसी ने अपनी गर्भवती स्त्री के बारे में पूछा कि इसे लड़का होगा या लड़की? उसने जबानी न कहके एक कागज पर लिख दिया, 'लड़का न लड़की'। पूछनेवाला सीधा था। कागज लेके चला गया। उससे भविष्यवक्ता ने कहा था कि कागज को अभी मत पढ़ो। जब सन्तान हो जाए तभी खोल के पढ़ना और अगर मेरी बात मिथ्या हो तो कहना! उसमें चालाकी यह थी कि लड़का और लड़की के बीच में जो न था वह दोनों ओर चलता था। फलतः यदि लड़का पैदा होता तो उसका अर्थ लगता कि लड़का, न लड़की। यदि लड़की होती तो मतलब होता कि लड़का न, लड़की। लेकिन यदि गर्भपात हो जाता तो मानी लगता कि न लड़का, न लड़की। ऐसी ही बातें चतुर नेता करते हैं।

लेकिन बातें करने और स्पीच झाड़ने के बाद समय-समय पर जमींदारों और मालदारों की दरबारदारी भी करते रहते हैं। उनसे इस प्रकार घुल-घुल के बातें करते हैं कि लगता है उन्हीं के खैरख्वाह हैं। होते भी हैं वे लोग ऐसे ही। बातें करते हैं किसान की और काम करते हैं उनके शत्रुओं का। काम तो हर घड़ी होता भी नहीं, किन्तु मौके से ही। जब किसानों का उन पर विश्वास है तो वे शक तो करेंगे नहीं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अतः मौका पाते ही ये हजरत लोग जमींदारों का काम बना देंगे। उनसे जमींदारों की भेंट मुलाकात बहुत ही लुक-छिप के और किसी न किसी बहाने से ही होती है ताकि किसानों के दिलों में उनके प्रति शक न हो सके। वहीं माल भी चखते हैं। उनके ही पैसे से अपना काम भी करते हैं, उनसे ही जमीन भी चुपके से लिखा-पढ़ी करके ले लेते हैं। सगे-सम्बन्धियों को उनके यहाँ, या उनके द्वारा नौकरी-चाकरी भी दिलवा देते हैं। उनकी मोटरों से सैर सपाटा भी करते रहते हैं। ये लोग बड़े ही खतरनाक हैं। ये सब रेशम की फाँसी हैं। काले नाग के बच्चे हैं।

इसीलिए जरूरत इस बात की है कि किसान उनके पीछे अपने खुफिया बराबर तैनात रखें। वह दिन-रात उनकी खबर लेता रहे कि कहाँ गए, कहाँ कब उठे-बैठे, कहाँ खाया-पिया, कहाँ सोए और किससे कब क्या लिया-दिया। उनकी दिनचर्या का रत्ती-रत्ती पता लगाना निहायत ही जरूरी है। जो जमींदारों या किसान के शत्रुओं से मिले-जुलेगा, घुल के बातें करेगा, उनके यहाँ खाए-पिएगा, सोवेगा और उनका काम भी करेगा वह किसानों को जरूर धोखा देगा। वह बड़ा ही बगुला भगत है। उससे सजग रहना होगा। धनियों के पैसे में ऐसा जादू है कि कुछ कहिए मत। वह ऐसी मीठी छुरी है कि नेता लोग तो उससे खामख्वाह जिबह होते ही हैं। यदि वे न भी चाहते हों और ईमानदार भी हों। मगर उनके साथ ही किसान भी कट जाते हैं। नेताओं का जिबह होना तो इतना ही है कि वे जमींदार के हाथ के कठपुतले हो गए। मगर किसान तो खत्म ही होते हैं और पता भी नहीं चलता। यही तो खूबी है।

धनियों के इस पैसे की बात कैसी खतरनाक है। यह समझना आसान नहीं है। नेता लोग उनसे पैसे लेते हैं और कहते हैं कि स्कूल खोलेंगे, पुस्तकालय खोलेंगे, आश्रम खोलेंगे और कार्यकर्ताओं को खिलाएँ-पिलाएँगे। यहाँ मैं उन नेताओं की बात करता हूँ जो सचमुच अपने लिए कुछ नहीं चाहते जो जनता की ही भलाई चाहते हैं। वह समझते भी हैं कि इस प्रकार भलाई होगी। उधर अमीर और जमींदार समझता है कि चारा खिला-पिला के फँसा रहे हैं। पीछे तो कहीं अलग जाई न सकेंगे। स्कूल खुल गया, पुस्तकालय बन गया और उसी के साथ अमीर का डंका भी पिट गया। नेता ने भी कहा कि फलाँ बाबू ने या फलाँ सेठ जी ने यह उपकार किया है। इस प्रकार जनता के दिल पर उसकी धाक जमी।

अब अगर बोर्ड या असेम्बली के चुनाव में वह धनी खड़ा हो जाए तो क्या होगा? नेता को तो हिम्मत ही नहीं कि विरोध करे। क्योंकि स्कूल जो टूटेगा, पुस्तकालय जो बन्द हो जाएगा यदि उसके रुपए न मिलें। यह देखा जादू? नतीजा हुआ कि वह अमीर जीत गया। वहाँ जाने के बाद तो हजारों ढंग से वसूल ही कर लेता है उस रुपए का हजार गुना जो उसने उपकार में दिया था! यही नहीं, यदि नेता हिम्मत करके विरोध भी करे तो क्या होगा? उसकी धाक तो पहले से थी ही। अब कुछ और पैसे खर्च करके जरूर ही जीत जाएगा। फिर तो विरोध गुनाह बेलजत होगी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इसलिए विरोध तो न करना ही ठीक है, ऐसा ही सोचते हैं। यदि कहीं वह चीनी की मिल का मालिक् है और किसानों और मजदूरों को हजार ढंग से दिक करता है, पैसे कम देता है, ऊख की तौल आदि में चोरी करता है, दाम देने में जालसाजी करता है, तो भी नेता के मुँह पर तो ताला ही लगा रहता है। यदि बोले तो चन्दा बन्द हो जाए, अथवा आश्रम ही टूट जाए! फिर कार्यकर्ता कैसे रहेंगे। इस प्रकार वह मालदार किसानों से और मजदूरों से भी लाखों-करोड़ों रुपए लूटता है और नेता लोग 'टुक-टुक दीदम, दमन कसीदम' करते हैं। उसी लूट में से एक बूँद खून हमें भी चन्दा देता है। नेताओं को देता है। सो भी उपकार के नाम पर। धन्य है यह उपकार और धन्य है हमारी बुद्धि। यही किसान हितैषिता तो किसानों को बरबाद करती है। खूबी तो यह कि न तो वे और न हमीं इसे समझ पाते हैं। यह मीठा जहर है।

कहते हैं कि चोरों का दल रात में कहीं चोरी करने चलता है। अगर रास्ते में दैवात कुत्ते मिल जाएँ तो भौंकने लगते हैं। इसमें चोरों को बराबर खतरा रहता है। इसलिए हमेशा कुछ गुड़ पास में रखते हैं और कुत्तों को देखते ही उनके सामने डाल देते हैं। फिर भौंकना छोड़कर वे तो गुड़ पर ही लिपट गए और चोर निकल गए। यही बात अमीरों और शोषकों की है। वे नेताओं और कार्यकर्ताओं को अपनी स्वच्छन्द लूट में बाधक और भौंकने वाले कुत्ते समझते हैं। वे खूब जानते हैं कि यही लोग शोरगुल मचाएँगे, आन्दोलन खड़ा करेंगे। इसलिए इनका ही मुँह बन्द करना चाहिए। यही कारण है कि यदि नेता वगैरह स्वार्थी हुए तो उन्हें उनके ही लिए पैसे आदि दे दिलाकर काम चला लिया और उनका मुँह बन्द कर दिया। लेकिन अगर स्वार्थी न हुए तो परोपकार और आश्रम वगैरह के नाम पर ही पैसे दे के उनकी आवाज रोक दी। हमारी समझ कहाँ जो इसे समझ पाएँ। यह तो धनियों का महाजाल है। न जाने आश्रम और कार्यकर्ता रखके हम क्या करेंगे, जब किसान ही लुट जाएँगे! मगर यह समझें तब न?

17.8.40। असल में जो कार्यकर्ता इस प्रकार तैयार होंगे वह तो भाड़े के ही होंगे। उन पर विश्वास तो किया जा सकता नहीं। क्योंकि जिनका भरण-पोषण किसानों के शत्रु एवं उनके रक्तपान करनेवाले करें वे कब तक किसानों का साथ दे सकते हैं? 'बकरे की माँ कब तक खैर मनाएगी?' इसलिए यह सबसे जरूरी सातवाँ गुण नेता का होना चाहिए कि लड़ाई के लिए जो तीन आवश्यक और बुनियादी चीजें हैं उन्हें किसानों के भीतर से ही प्राप्त करें। आदमी (कार्यकर्ता) अन्न, पानादि सामान और पैसे इन तीनों के बिना कोई लड़ाई लड़ी जा सकती नहीं। इसलिए ये तीनों (men, moeny, materials) किसानों को ही अपने ही भीतर से जुटाना होगा। उन्हें अपने पास से ये तीनों पदार्थ एकत्र करने होंगे। यही पक्का सिद्धान्त है और नेता का इसमें पूरा जोर, उसकी इसमें दृढ़ धारणा चाहिए। क्योंकि वही तो किसानों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

को इनकी तैयारी के लिए प्रेरित करेगा, कटिबद्ध करेगा और जब उसी में लोगों का पक्का विश्वास नहीं, जब वही यह बात जरूरी नहीं मानता, तो उन्हें इसके लिए बराबर सुझाएगा क्योंकर?

क्या मँगनी के सिपाही, गोला-बारूद और पैसे से किसी फौज को कभी विजय मिली है? क्या दुश्मनों के ही सिपाही, उन्हीं के अस्त्र-शस्त्र और उन्हीं के रुपए-पैसे से हम किसानों का महान संग्राम जीतेंगे? ऐसा सोचना तो नेता का राजनीतिक दिवालियापन है, उसके दिमाग की दरिद्रता है। शत्रु भी गधा थोड़े ही है कि वह यों ही हमारे लिए ये चीजें देगा। इसीलिए अगर वह देता है तो किसी चाल से ही। ताकि ऐन मौके पर गोलमाल हो जाए। इसीलिए उससे सजग रहना ही होगा।

किसानों के सच्चे नेता के लिए जो सबसे जरूरी और बुनियादी चीज है और जिसके बिना अन्त में विफलता ही होगी चाहे और सभी सामान मौजूद ही क्यों न रहें, वह है उसमें श्रेणी संघर्ष की दृढ़तम एवं निरूढ़ भावना। किसानों और शोषितों का उद्धारक और लीडर वही हो सकता है जिसे इस बात का पूरा विश्वास हो कि शोषितों, जिनमें किसान और मजदूर हैं, की एक श्रेणी है, उनका एक दल है और जब तक वह अपने शोषकों, जमींदारों एवं पूँजीपतियों से बिना समझौता किए ही, चाहे वह रहें या हम रहें, दोनों तो—शोषित और शोषक तो—रह सकते नहीं, एक श्रेणी को तो मिटना ही है और अन्त में शोषक ही मिटेंगे,' ऐसे जीते-जागते विश्वास के साथ लड़ेंगे नहीं, तब तक उनका निस्तार हो सकता नहीं। जो सुलह सपाटे और समझौते की बातें सोचता और करता है या जिसके दिल और दिमाग में वर्ग सामंजस्य और सभी दलों के मेलजोल (class collaboration) का खयाल है वह तो किसानों की नाव को मध्य धारा में ही अवश्य ही डुबोएगा। इसमें जरा भी शक नहीं। यही श्रेणी संघर्ष तो कमाने वालों के सारे आन्दोलनों और लड़ाइयों का मूलाधार है, नींव है, बुनियाद है। यही असली कसौटी है। इसके बारे में जरा भी मुरव्वत और लल्लो चप्पो नहीं होना चाहिए। नेता लोगों को इसी कसौटी पर अच्छी तरह कस के जाँचना चाहिए। उन्हें इसी तराजू पर तौलना हमारा फर्ज है—यही चित्र का आधार है और बाकी गुण इसमें भरे गए रंग हैं। यह आठवाँ गुण असल में सबसे पहला है।

प्रायः देखा जाता है कि जब असेम्बली आदि का चुनाव होता है तो हजारों हजार रुपए खर्च होते हैं। खर्च का कोई हिसाब ही नहीं रहता। ठीक ही तो है। इन्हीं रुपयों के बल पर ही तो विजयी बन के किसानों और मजदूरों को उनकी श्रेणी के शत्रु, उनके मददगार तथा उनके दलाल सदा के लिए गुलाम बनाते हैं। इसलिए यदि वे लोग ये पैसे पानी की तरह बहाते हैं, तो ठीक ही है। यह बात बखूबी समझ में भी आती है। मगर जब किसानों के लिए आँसू बहानेवाले नेता लोग ये पैसे खर्चते हैं और कहते हैं कि जीतने पर असेम्बली में उनकी भलाई करेंगे तो यह बात दिमाग में आती ही नहीं। आखिर वे लोग ये रुपए कहाँ से खर्चते हैं? यदि अपने पास से

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तब तो शक होता है कि वे भी इतने रुपए जमा करने के कारण शोषक श्रेणी वाले ही तो नहीं हैं! इन रुपयों को रोजगार-व्यापार में खर्च न करके चुनाव में खर्चने का मतलब आखिर क्या हो सकता है? यदि व्यापार में मुनाफा करते हैं और बैंक में सूद पाते हैं तो चुनाव के बाद भी वह यही बात क्यों न करेंगे और अपना मुनाफा क्यों न कमाएँगे? वर्तमान समय में जैसे नए-नए व्यापार और कमाने के रास्ते निकलते हैं? उसी प्रकार यह चुनाव भी एक व्यापार क्यों न माना जाए?

और मानने की बात भी क्या? वह तो साफ ही है। हमेशा यही देखा जाता है। जोई वहाँ गया उसे ही अपनी ही फिक्र पड़ी और किसान छूटे? किसान इस चीज को समझे यही असल बात है। फलतः जो नेता ऐसा करें उन पर हर्गिज-हर्गिज यकीन न करें। जो उनके असली नेता होंगे वह तो साफ कहेंगे कि हमें न तो चुनाव में पड़ना है और न व्यवस्थापक सभा का सदस्य बनना है। हाँ, यदि किसान सभा और किसान इसकी जरूरत समझते हैं तो चाहे पैसा खुद खर्च करें, या विना खर्च के ही हमें वहाँ पहुँचा दें। हमें क्या गर्ज पड़ी है कि पैसे खर्चें, या इसके लिए परेशान हों? हमें तो किसानों की सेवा करनी है। जहाँ हुक्म होगा वहीं जाएँगे। यह नौवीं बात नेता में चाहिए।

दसवीं बात जाति और धर्म की है। हम स्थानान्तर में बता चुके हैं कि जाति और धर्म की दोहाई देना मालदारों और मध्यमवर्ग का काम है, उनकी पहचान है। वे लोग जाति-पाँति और धर्म को खामख्वाह आर्थिक और राजनीतिक मामलों में घसीटते हैं। यहाँ तो रोटी और जमीन का सवाल है। चाहे सीधी लड़ाई हो या व्यवस्थापक सभाओं आदि में जाना हो, हर हालत में जाति और धर्म का प्रश्न तो वहाँ उठता ही नहीं। वहाँ न तो पूजापाठ करना है और न शादी या भोज वगैरह। फिर जाति या धर्म का वहाँ मौका ही क्या? किसी खास धर्म या जाति के लिए वहाँ कानून भी नहीं बनते और न जमीन ही दी जाती है। रोटी, कपड़े आदि का ताल्लुक किसी जाति या धर्म से है भी नहीं। फिर यह गोलमाल क्यों? किसानों की जमात में रहके ऐसा प्रश्न, ऐसी हरकत और ऐसी कार्यवाही क्यों? उन्हें तो इन सवालों को सपने में भी नहीं उठाना चाहिए। भूलकर भी मन में इन्हें आने देना नहीं चाहिए। उन्हें इनसे गर्ज ही क्या? ये तो सारा गुड़ गोबर कर देंगे और धोखा देंगे। इसलिए किसान नेता भूल के भी ये बातें न करें। वह तो इनसे सदा अलग रहें।

हम पहले धुन और लगन की बात कही चुके हैं। उसी के सम्बन्ध से नेताओं में ग्यारहवीं बात भी रहती है—ग्यारहवीं बात पाई जाती है। आप चाहे उन्हें जेल में रखिए या कालेपानी में, देश में रखिए या विदेश में, सभा में रखिए या सीधी लड़ाई में, व्यवस्थापक सभा में रखिए या साधारण बातचीत में, वे चाहे सोते हों या जागते हों, बीमार हों या अच्छे हों, घूमते-टहलते हों या चुपचाप बैठे हों, हर हालत में हम एक ही बात देखेंगे। वह बराबर किसी न किसी समस्या या सवाल पर जिससे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

किसानों का ताल्लुक है, सोचते-विचारते रहेंगे। वे बराबर ही ऐसी उधेड़बुन में लगे रहेंगे। चाहे कोई वक्तव्य लिखें, पुस्तक-पुस्तिका लिखें, प्रस्ताव तैयार करें, कार्यपद्धति बनाएँ, या इसी ढंग की और बातें करें। मगर कुछ न कुछ करते जरूर रहेंगे। ऐसी ही चीज जिससे किसानों का सीधा हित हो, उनकी लड़ाई आगे बढ़े और उनका सिर ऊँचा हो। सारांश 'जागत सोवत शरण तिहारी' को चरितार्थ करेंगे। यही उनकी अनन्य भक्ति है। उन्होंने किसानों की बातों को इस कदर अपनाया है कि सपने में भी उन्हें वही बातें दीखती हैं। अपनाने का यही अर्थ भी है सफल लीडर बनने के लिए यह बहुत ही जरूरी चीज है।

बारहवीं और आखिरी चीज जो हम नेताओं के बारे में कहना चाहते हैं वह है खान-पान और रहन-सहन की पूरी सादगी के साथ ही अपनी धारणा को अमली रूप देना। सादगी न होने से तो मामला बेढब हो जाएगा। तब तो किसान दिल खोल के कभी उनसे हिल-मिल न सकेंगे। वह तो उनके खान-पान और और रहन-सहन से वैसे ही भड़केंगे जैसे लाल कपड़े से साँड़ भड़कता है। भड़कना तो किसानों का स्वभाव ही है। और यह ठीक ही है। उन्हें तो हमें अपने निकट लाना है ताकि हिल-मिल जाएँ। इसलिए सादगी जरूरी है। उनके साथ व्यवहार करने में जरा भी भेदभाव की गन्ध नहीं होनी चाहिए। नेता का दिल गंगा की धारा की तरह स्वच्छ होना चाहिए। इसका सलूक ऐसा हो ताकि सभी उसके पास में खिंच जाएँ। जैसे गंगा में डुबकी लगाने को सभी का दिल चाहता है वैसे ही सभी उसके पास अपनी रक्षा के लिए दौड़ के आएँ। नेता अपने अमल से ही अपने प्रति किसानों में यह विश्वास पैदा कर दें कि यही हमारा असली उद्धारक है।

इसीलिए जरूरत इस बात की है कि नेता, राजे, महाराजे, सेठ, साहूकार और धनियों की अपेक्षा किसानों की कदर हजार गुनी ज्यादा करे। वह बाकी लोगों का अपमान तो कर सकते नहीं। ऐसा करने की न तो उन्हें जरूरत ही है और न यह उचित ही है। लेकिन वह ऐसा हर्गिज न करें जिससे देखनेवालों के दिल पर यह असर खामख्वाह पड़े कि किसानों की अपेक्षा उनकी कदर वह ज्यादा करते हैं। असल में हम हजार उपदेश दें और नारे लगाएँ। लेकिन हमारे पुराने संस्कार इतने जबर्दस्त और निरूढ़ हैं कि जिन्हें बराबर शोषक और खूँखार कहके कोसते हैं जब वही पास में आ जाते हैं तो उनके लिए अच्छे आसन और कुर्सी आदि का प्रबन्ध खामख्वाह करते ही हैं। मगर जब किसान या किसान सेवक आते हैं तो इसकी कोई जरूरत ही नहीं समझते। यह बात बराबर होती है। कट्टर से कट्टर नेता यह करते जाते हैं। हो सकता है, उनके दिल में कोई दूसरा भाव न हो। मगर इसका परिणाम तो बुरा ही होता ही है और इसे देखकर बाहरी दुनिया पर, खास किसानों पर भी बहुत बुरा असर होता ही है।

सीधी और साफ बात है कि हमारे सब किए-दिए को यह धो देता है। हम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जान के न करें इससे क्या? साबुन अनजान में भी लगाइए तो धोएगा ही। हमारे पुराने संस्कार हमें ऐसा करने को मजबूर करते हैं ओर उसका नतीजा खतरनाक होता है। इसलिए हमारा कर्तव्य है कि हम अपने प्रति बेमुरव्वत होके यह व्यवहार बदलें। जब हम सचमुच किसान को अन्नदाता और सर्वश्रेष्ठ मानते हैं तो उसके साथ खुद वैसा ही बर्ताव क्यों न करें? जब हमीं न करेंगे तो और लोग कैसे करेंगे? क्यों करेंगे? आखिर कहने से तो कुछ होता नहीं, करने से ही तो होता है। इसलिए जैसा मानते हैं वैसा करें क्यों नहीं?

यदि अमीर लोग आते हैं तो आएँ। मगर समझ-बूझ के आएँ। वह अपमानित और निरादृत तो कभी होंगे नहीं, होने पाएँगे नहीं। मगर जिस सम्मान और प्रतिष्ठा की आदत उन्हें है वह हमारे यहाँ कभी मिलने वाली नहीं यह जान के आएँ। उनके लिए खास आसन और कुर्सी क्यों? वह तो यदि हो भी तो किसान के ही लिए चाहिए। नहीं तो कम से कम इतने से भी तो शुरू हो कि किसी के लिए भी न रहे। उससे भी काम चल जाएगा और धीरे-धीरे इस असली जगह पहुँची जाएँगे। यह बात निहायत जरूरी है। हरेक किसान का फर्ज है कि इस बात पर खास नजर रखे। जब कभी नेताओं के पास रहे तो देखे कि उनका बर्ताव जमींदारों तथा अमीरों के साथ कैसा होता है और किसानों के साथ किस प्रकार का। यदि फर्क पाए और देखे कि अमीरों की कुछ भी खास ढंग की कदर हो रही है तो बेखटके टोक-टाक करे और पूछ बैठे कि यह क्या हो रहा है? यह गड़बड़ी क्यों?

अगर किसान अपना दब्बूपन छोड़के सख्ती के साथ यह पूछताछ, यह निगरानी, यह परख, यह देखभाल और यह परीक्षा शुरू कर दे तो सिर्फ यही नहीं कि नेताओं की कमजोरियाँ और त्रुटियाँ खत्म हो जाएँ और वह पक्के बन जाएँ। बल्कि उनका कच्चा चिट्ठा भी खुल जाए और यदि वह नकली हों तो सभी को मालूम हो जाएँ। फिर तो दुम दबा के भागे बिना उनकी गुजर ही नहीं होगी। सौदा खरीद करना है तो किसान को। फिर उसकी परख और जाँच दूसरा कौन करेगा? दूसरे को गर्ज ही क्या पड़ी है? ऐसी आशा भी वह क्यों करता है कि दूसरे देखभाल कर देंगे? उसकी मुरव्वत और दब्बूपन ने ही तो उसे रसातल भेजा है। फिर भी उसे वह खुद यदि तिलांजलि नहीं देता तो उसके उद्धार की आशा नहीं। नेता लोग जमींदार या साहूकार भी तो नहीं कि जमीन ही छीन लेंगे, या कर्ज न देंगे, फिर रुपए की तरह बार-बार ठनका के ही उन्हें क्यों नहीं स्वीकार करेंगे?

इस नेतृत्व के बारे में एक और भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण किसान जैसे दलों के लिए सबसे जरूरी एवं बुनियादी प्रश्न रह जाता है। बातें तो पहले बहुत कुछ कही गई हैं जिनसे सच्चा नेतृत्व किसानों को मिल सकेगा। इसमें भी शक नहीं कि यदि उन बातों पर अमल हो और किसान एवं उनके हितैषी उनके अनुसार काम करने लग जाएँ तो नेताओं की गड़बड़ी एवं धोखाधड़ी का झमेला ही खत्म हो जाए। मगर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सवाल तो यह है कि क्या यह बात सम्भव और व्यावहारिक है? क्या उन सभी कसौटियों, परिस्थितियों और लक्षणों के अनुसार देख-रेख और नाप-तौल मुमकिन है? क्या व्यावहारिक दृष्टि से किसान जैसी सबसे पिछड़ी श्रेणी और जमाअत के लिए वह अधिकांश में आदर्शमात्र नहीं है? किसे इतनी फुर्सत है कि नेताओं का जन्म, कर्म, पूर्व-इतिहास और जीवन-भर की दिनचर्या का पता लगाए और बारीकी से उसका खोद विनोद करे? कौन किसान ऐसा कर सकता है? और अगर किसान ऐसा करने ही लग जाएँ तब किसान सभा और उनके नेताओं की जरूरत ही क्या रह जाएगी? क्या तब वे खुद सबकुछ कर न लेंगे। यदि नेताओं के सामने बुद्धूपन और दब्बूपन दिखाना ही छूट जाए तो फिर छप्पन लाख मुफ्तखोर साधु-फकीर उन्हें क्योंकर ठगें? और भाग्य तथा भगवान के नाम पर अमीरों के बैल उन्हें क्यों बनाते रहें? क्या यह बात तब तक सोलहों आना सम्भव है, जब तक खुद उनमें ही क्रान्ति न हो जाए?

हम मानते हैं कि वे लोग धीरे-धीरे इस काम में अग्रसर हो सकते हैं, धीरे-धीरे ही सफाई कर सकते हैं। मगर यह धीरे-धीरे भी किस प्रकार जाना जाए? इसकी पहचान भी क्या है? और इस चींटी की चाल से चलने पर कब तक वे पूर्णरूपेण तैयार होंगे? हम यदि मान भी लें कि सामूहिक रूप से इन बातों का प्रचार किसानों में कर देने पर वह स्वयं इस ओर ज्यादा ध्यान क्रमशः देंगे और आगे बढ़ेंगे। मगर आखिर जनसमूह की मनोवृत्ति भी तो एक चीज है। महज प्रचार कर देने से अब तक कितनी बातें सफल हो सकी हैं? और प्रचार करनेवालों की एक लम्बी सेना भी आखिर चाहिए और कोष भी। वह पहले ही कैसे होगा? यदि वही हो जाए तब तो मान ही लेना होगा कि सच्चे नेता और कार्यकर्ता काफी तादाद में पहले से ही तैयार हैं और पर्याप्त कोष भी है। मगर बात तो ऐसी नहीं है। नहीं तो फिर इन शिक्षाओं की जरूरत ही क्यों होती?

सौ बात की एक बात यह है कि कोई ऐसा सीधा उपाय होना चाहिए जो सबकी समझ में आए, जिसे सभी किसान दिल से पसन्द करें, जिसे जरूरी समझें जिसके खिलाफ जाने या बोलने की हिम्मत किसान हितैषी नामधारी किसी को भी न हो सके, और जो अन्ततोगत्वा नकली नेताओं की कलई खोल दें। फलतः या तो वह लोग पहले ही भागें या बीच में ही खुद खिसक जाएँ। यदि और कुछ भी न हो तो भी कम से कम किसानों का ध्यान तो उनकी ओर स्वयं आकृष्ट हो, जिससे उनके आगा-पीछा को पहचान के उन पर कड़ी नजर रख सकें? यदि ऐसी कोई चीज उनकी और हमारी इस समूची हलचल का एक आवश्यक अंग हो तभी काम चल सकता है।

बात तो सही है। इसीलिए तो नेताओं की पहचान के सिलसिले में किसानों के छोटे-मोटे हकों, उन पर होने वाले आए दिन के अत्याचारों और उनकी रोज-रोज

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की माँगों के सम्बन्ध में लड़ाई और संघर्ष को बराबर जारी रखना निहायत जरूरी है। इसी से सब मुराद पूरी होगी। उसी से सबका रहस्य खुलेगा। इतना ही नहीं। किसानों के खाँटी और असली नेता इन्हीं संघर्षों और मुठभेड़ों से निकलेंगे।

असल में जब तक दलितों के भीतर से ही उनके नेता नहीं निकलते तब तक उनका दुःख दूर हो नहीं सकता। इसलिए किसानों के नेता उन्हीं के भीतर से और मजदूरों के मजदूरों में से ही जब निकलेंगे और उनकी लड़ाइयाँ जब वे खुद ही चलाएँगे, तभी किसानों और मजदूरों की विपत्तियों की काली रात खत्म हो के सुख-सम्पत्ति का सूर्य का उदय होगा। लेकिन यह चीज पहले हो नहीं सकती। यह तो उसी रोजाना की छोटी-मोटी लड़ाइयों से ही होगी।

स्थानान्तर में जिस छँटैया की बात कह चुके हैं और बता चुके हैं कि बिना छह बार की छँटैया के असली नेता मिली नहीं सकते, वह भी दूसरे ढंग से ठीक होई नहीं सकती। किसानों के प्रतिदिन के कष्टों और प्रश्नों को लेकर जो छोटी-मोटी लड़ाइयाँ लड़ी जाया करेंगी और उनका सिलसिला जो बराबर जारी रहेगा उन्हीं के द्वारा वह छँटैया (Purging) होगी। उनमें किसानों को लड़ने की तालीम भी अमली तौर से मिलेगी। उन्हें सीधी चोट और आमने-सामने की लड़ाई का प्रत्यक्ष अनुभव भी उनसे खूब ही होगा कि वह कैसे चलाई जा सकती है और उसमें कौन-कौन सी दिक्कतें आ सकती हैं।

सच्ची बात तो यह है कि जैसे बिल्ली को देखते ही चूहे भाग जाते हैं और लाल कपड़े से साँड़ भड़कता है, ठीक वैसे ही ऐसी लड़ाइयों से नकली नेता और स्वार्थसाधक लोग भागते हैं! वह जैसे-तैसे इन्हें टालना चाहते हैं। क्योंकि वहाँ तो दोतरफी चाल रह नहीं सकती। वहाँ तो खम ठोंक के किसानों की ओर से लड़ना और उन्हें लड़ाना है। विपरीत इसके किसान उन संघर्षों को स्वभावतः पसन्द करते हैं। चाहे स्वराज्य की लड़ाई और इसी प्रकार की और लड़ाइयों को वह भले ही खूब न समझें और उनमें उनका दिल भी उतना न लगे, नागरिक स्वतन्त्रता के नाम पर लड़ने का महत्त्व उनके दिमाग में भले ही न घुसे। मगर जमीन मिलने, लगान की कमी, उसकी छूट, सूद की कमी, ऋण की छूट, जमींदार के जुल्म आदि के विरुद्ध जो भी लड़ाई लड़ी जाए उसे तो खामख्वाह वह अपनी ही लड़ाई समझते ही हैं, उसमें पूरा उत्साह दिखाते हैं और चाहते हैं कि वह जारी हो, जारी रहे। केवल इसीलिए कि वह तात्कालिक फायदा पहुँचाने तथा आराम देने के लिए ही होती है, और जिसके पाँवों में जूते की काँटी बार-बार चुभती है, वह जरूर ही उससे बचने का उपाय फौरन करता है, करना चाहता है। मगर मौत से बचने का उपाय कोई नहीं करता। हालाँकि मौत की तकलीफ काँटी चुभने की तकलीफ से हजार गुनी ज्यादा मानी जाती है। यह क्यों? इसीलिए न कि वह तकलीफ प्रत्यक्ष नहीं, रोज की नहीं। मगर काँटी की तकलीफ या सरदर्द प्रत्यक्ष है? निकट है?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अतः ज्यों ही वह लड़ाई छिड़ी कि कुछ लोग तो 'देखि शरासन गँवहि पधारे'। चलो, अच्छा ही हुआ। मगर जिनने हिम्मत की वह आगे बढ़े और भिड़े। नतीजा किसानों के लिए ठीक ही हुआ। पर उनके लिए? वह तो समझते थे कि उनकी लीडरी अब बरकरार रह जाएगी। इसमें पड़ने पर ही जीत जाने के बाद उनकी ख्याति तथा पूजा भी खूब ही हुई। लेकिन एक ही लड़ाई हो तब न? यहाँ तो चला सिलसिला। फिर तो उनके लिए आफत हुई! इधर किसान को चसका लगा कि यही ठीक है। मगर उधर वे घबराने लगे और चुपके से सटक सीताराम हुए। इस प्रकार पहली बार जो न भी निकले, बल्कि हिम्मत करके आगे बढ़े, वह दूसरी बार छँट गए। मगर कुछ तो ऐसे भी निकल सकते हैं जो फिर भी हिम्मत करें और दूसरी लड़ाई में भी भिड़ें। सफलता भी प्राप्त करें। लेकिन यहाँ तो एके बाद दीगरे लड़ाइयों की भरमार है। भरमार होनी ही चाहिए। यह काम जरूरी है। फलतः तीसरी, चौथी, पाँचवीं बार या कुछी बार और आगे जाने पर सभी कच्चे लोग छँट जाने को विवश होंगे। यह तो स्वाभाविक छँटैया है। इसे कोई रोक नहीं सकता। इसी के चलते चावल और भूसी अलग-अलग खामख्वाह होई जाएँगे। बिना ऐसा हुए काम भी नहीं चल सकता—भात बन नहीं सकता और वही हमारा लक्ष्य है।

कहते हैं कि एक मुसलमान बहुत ही भूखा था। उसे खाना-पीना कहीं न मिला। एक दिन पता लगा कि कहीं ब्राह्मभोज है जिसमें हजारों ब्राह्मणों के आमंत्रित किए जाने की खबर है। किसी काइयाँ ने कहा कि तुम भी चले जाओ और ब्राह्मण बनके कम से कम एक दिन तो माल चख आओ। वह खुश तो हुआ। पर चिन्तित था कि यदि कहीं पकड़ा जाए तो? सलाहकार ने उसे एक जनेऊ पहना दिया और उसकी दाढ़ी मुँडवा दी। सिर पर गमछा रखके ढँक लेने को भी कहा ताकि शिखा के न होने की शंका भी किसी को होने न पाए। कुछ और भी बातें जहाँ तक उसे सूझीं उसने उसे बता दीं। फिर एक लोटा, गिलास देके रवाना किया। वह पहुँच भी गया और हजारों की भीड़ में हाथ-पाँव धोके भोजन की पंक्ति में जा बैठा भी। भोज्य पदार्थ परोसे गए और सभी के साथ उसने खाना भी शुरू किया।

मगर उसका खाने-पीने का तरीका निराला ही देखके दैवात् किसी को शक हो गया। बस, चट उसने उसका पता पूछा। उसने अपना गाँव वगैरह बता दिया। इस पर पास-पड़ोस वालों को शक हुआ कि हैं, वहाँ का यह कौन? तब प्रश्न हुआ कि तुम किस जाति के हो? क्योंकि उस गाँव में ब्राह्मण तो थे नहीं। उसने कहना चाहा 'ब्राह्मण'। मगर उच्चारण ठीक न हो सका। तब सवाल हुआ कि कौन ब्राह्मण? बस वह घबरा गया और निराश होके बोला कि या अल्लाह, मुझे क्या मालूम कि ब्राह्मणों में भी बहुत ढंग के होते हैं? फिर तो वह भोज से निकाल ही दिया गया। कई जाँचों में जैसे-तैसे पार हो जाने पर भी आखिर पकड़ा गया ही। ऐसी ही दशा इन रोजमर्रे की लड़ाइयों में नकली नेताओं की होती है और अन्त में या तो वे खुद

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

निकल जाते या निकाले जाते हैं।

सीधी लड़ाई लड़ना तो कोई लेक्चर देना या बातें बनाना है नहीं कि दुमानिया शब्द बोलेंगे और उससे समयानुसार सभी अर्थ लगा लेंगे। यह तो काम है। यहाँ तो इधर जाओ या उधर रहो यह साफ मामला है। इसमें तो हो सकता है, नेताओं के निजी स्वार्थ का ही संघर्ष हो, यदि वे खुद जमींदार, साहूकार या पूँजीपति हुए या उनके सम्बन्धी ही सही फिर तो उसमें पड़ेंगे ही नहीं। यद्यपि अपने स्वार्थ की गड़बड़ी न भी हुई तो भी शोषक दल के स्वार्थ तो गड़बड़ी में पड़ेंगे ही। फिर ये नेता उन्हें कैसे समझा सकेंगे कि किसानों के साथी न हो के असल में वे उन्हीं के साथी तथा खैरख्वाह हैं? यह तो गैरमुमकिन हो जाएगा, सो भी लगातार लड़ी जाने वाली लड़ाइयों के चलते। इसीलिए तो उन्हें बराबर जारी रखना होगा और इसीलिए तो बनावटी नेता दुम दबा के अन्ततोगत्वा भागेंगे।

दूसरी ओर किसानों को यह लाभ होगा कि उन्हीं में से नेता—और अनुभवी नेता तैयार हो जाएँगे। क्योंकि एक तो नकली और बाहरी नेताओं के धीरे-धीरे खिसक जाने से किसानों पर ही लड़ाई चलाने की जवाबदेही आ पड़ेगी और वह क्रमशः उसमें कुशल होई जाएँगे। आखिर वह तो भाग नहीं सकते। उन्हें तो उसी में मरना-जीना है। दूसरे बार-बार लड़ते रहने से उसमें तपतपा के पक्के बन जाएँगे। एकाएक पक्का तो कोई भी नहीं बनता। कहते हैं कि 'लय लागत लागत लागै, भय भागत भागत भागै'। बार-बार की आँच सैकड़ों बार खाने के बाद ही कच्चा लोहा खुद इस्पात बन जाता है। यही हालत किसानों के भीतर के जवानों और उत्साही लोगों की होगी। लड़ाई का व्यावहारिक अनुभव और उसे चलाने की कठिनाइयों का व्यावहारिक ज्ञान उन्हें दूसरी तरह हो सकता भी नहीं। ये लड़ाइयाँ ही तो उनके लिए अखाड़े का काम देंगी। किसानों को भी इस तरह सामूहिक लड़ाई चलाने का ज्ञान होगा। वे स्वावलम्बन का पाठ भी पढ़ेंगे। वे खुद अपने कष्टों को दूर कर सकते हैं, न कि दूसरों के जरिए इसकी पूरी जानकारी और इसका कतई यकीन भी उन्हें इन्हीं लड़ाइयों से होगा। उनमें जीत होने से उन्हे आगे की सफलता का विश्वास होगा। तात्कालिक लाभ होने से हिम्मत भी बढ़ेगी और उन्हें चसका लगेगा। उनमें जो वर्ग-चेतना और संघर्ष शक्ति नहीं है वह भी धीरे-धीरे अपने आप न सिर्फ उनमें आएगी, किन्तु मजबूत होती जाएगी। जरूरत होने से उन्हें तो उसकी तरफ मजबूरन बढ़ना ही होगा। वे दूसरे आदमी कहाँ पाएँगे, धन कहाँ से लाएँगे और पार कैसे पाएँगे इत्यादि जितने भी निराधार वहम और गलत खयाल उन्हें आगे बढ़ने से रोकते हैं, वह अपने आप भाग जाएँगे। उनके लिए गुंजाइश रही न जाएगी। दुश्मन की भी हिम्मत हारेगी। उसमें पस्ती आएगी। इसलिए यह दैनिक लड़ाइयाँ हर तरह से वांछनीय हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चौथा भाग

(9)
किसान सभा को अपनाएँ

18.8.40। जब हम वर्ग संघर्ष और श्रेणी युद्ध की बात मान लेते हैं, तो किसानों के लिए एक जबर्दस्त एवं सुसंगठित किसान सभा की जरूरत अपने आप साफ हो जाती है। श्रेणी युद्ध का तो मतलब ही है कि वर्तमान समाज अनेक परस्पर विरोधी श्रेणियों में बँटा हुआ है। आज तो यह बात साफ हो गई है और होती जाती है कि समाज या जनता नाम की कोई अखण्ड और सम्बद्ध चीज इस दुनिया में है नहीं। पहले चाहे इस प्रकार की चीज भले ही रही हो, हालाँकि भौतिक दृष्टि से इतिहास का अध्ययन और विश्लेषण करने वाले इस बात को नहीं मानते। लेकिन पूँजीवाद के उत्तरोत्तर विकास और उसका अन्तिम रूप साम्राज्यवाद में परिणत हो जाने के बाद जिसे भी आँखें हों वह साफ देख सकता है कि शोषकों और शोषितों की दो मुख्य श्रेणियों में यह समाज बँट गया है। प्रत्येक श्रेणी में अवान्तर भेद हैं सही, जैसे शोषितों में किसान और मजदूर या निम्न मध्यम वर्ग और शोषकों में पूँजीपति जमींदार और उच्च मध्यम श्रेणी। फिर भी दो श्रेणियाँ बहुत ही स्पष्ट हैं।

हमारी दृष्टि ही कुछ ऐसी हो गई है कि हम तह में घुस के देखना और विचारना नहीं चाहते—हमें इसकी आदत ही नहीं है। मगर यदि घुसें तो पता लगेगा कि यह श्रेणी की भावना सर्वत्र काम कर रही है और उसी के साथ उसकी कोशिश बराबर की जाती है कि यह बात जनसाधारण को विदित होने पाए नहीं। यह शोषण तो स्पष्ट शब्दों में रक्तपात और लूट है। यह ठीक है कि इसे सभ्यता और कानून की पोशाक पहना दी गई है ताकि सही बात किसी को मालूम न हो सके। यदि आप इसे जानना चाहें तो बड़े-बड़े राजनीतिक महारथियों, उनकी सभाएँ और ऐसी अन्य संस्थाओं के सामने किसानों की गरीबी की बात रखिए, उन पर कर्जे का जो असह्य भार है, जिससे उनकी कमर टूट चुकी है, उसकी बात कीजिए, सूद की दर ज्यादा है, लगान बहुत ही सख्त है, जमीनें नीलाम हैं, नीलाम हो रही हैं, आदि बातें कीजिए। गाँवों में बेकारी बेहद है, बीमारियों ने डेरा कर लिया है, लोग भूखों मर रहे हैं, पढ़ने की न तो सुविधा है और न उसका प्रबन्ध ही है यह चर्चा छेड़िए। फिर देखिए कि क्या हालत होती है।

लोग मार-मार करेंगे और कह बैठेंगे कि यह असमय का राग क्या अलापने लगे? पहले आजादी तो हासिल हो लेने दीजिए। पीछे बातें देखी जाएँगी और इसका हल सोचा जाएगा। यदि लोकमत के कुछ जाग्रत हो जाने के कारण थोड़े से चतुर लोग यह बात न भी बोलें तो भी वे काम ऐसे ही करते हैं जिससे ये प्रश्न खटाई

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में ही पड़े रह जाते हैं। ऊपर से दिखाने के लिए इनकी चर्चा भी होती है सही, लेकिन काम के समय इन्हें कोई याद भी नहीं करता। गत असेम्बली के चुनाव के समय यही तो हुआ। किसानों और मजदूरों के वोट लेने के लिए बड़ी-बड़ी बातें कही गईं और नकली आँसू बहाए गए, मगर सफलता मिलने पर टाँय-टाँय फिस। दलील यही दी गई कि अभी तो आजादी मिली ही नहीं। तभी तक घरेलू लड़ाई छेड़ना ठीक नहीं। जमींदारों और पूँजीपतियों के साथ समझौते से ही जो हो जाए वही लेकर सन्तोष करना उचित है।

आयरलैण्ड में गत शताब्दी में वहाँ के दलितों--किसानों और मजदूरों—का एक सच्चा नेता था जिसका नाम था जेम्स कानोली। उसने कहा है कि तथाकथित राजनीतिक नेता जमीन, मजदूरी, रोटी, कपडे, मकान वगैरह के प्रश्नों को छेड़ने से ठीक वैसे ही घबराते हैं जैसे बेईमान ट्रस्टी (जायदाद के प्रबन्ध के लिए नियुक्त पंच) उस जायदाद का हिसाब माँगने से घबराते हैं। इसीलिए स्वतन्त्रता, आजादी, मातृभूमि, आत्मसम्मान, राष्ट्रीय झंडे आदि की गोलमोल तथा सख्त खयाली बातें करके लोगों का ध्यान आर्थिक प्रश्नों की तरफ से बलात् आकृष्ट करना चाहते हैं! कितनी चालाकी और कितनी बुद्धिमत्ता है। आजादी और मातृभूमि की इज्जत का सवाल तो लोगों का ध्यान खामख्वाह आकृष्ट करता है और इस प्रकार मध्यम वर्ग तथा मालदारों का काम बनता है।

आखिर आजादी कोई गोलमोल चीज तो है नहीं। उसका तो कुछ प्रयोजन है और हर आदमी, जो आजादी चाहता है, या जिससे आशा की जाती है कि आजादी के लिए लड़ेगा और त्याग तथा बलिदान करेगा, यह हक रखता है कि पूछे कि आजादी और मातृभूमि की प्रतिष्ठा प्राप्त होने से उसे क्या मिलने वाला है? उधर तो उसके घर की माताएँ चिथड़ों में लिपटी हुई कराहती हैं और इधर यह काम किया जाता है उन्हीं जमींदारों तथा पूँजीपतियों के द्वारा जो आजादी और मातृभूमि की पुकार मचाने वालों में आगे हैं। इसका क्या मतलब? आजादी तो मिलेगी सही, मगर हमारी जो जमीन छिन गई है वह वापस मिलेगी या नहीं, यह जानने का क्या उसे हक नहीं है? जमीन तो छीनी है उन्हीं लोगों ने जो आजादी के अगुवा हैं। तो फिर पहले वह जमीन हमें वापस क्यों नहीं देते, ताकि दूने उत्साह से आजादी लेने में हम सपरिवार लग जाएँ? अंग्रेजों या विरोधियों से जमीन तो वापस नहीं लेनी है। फिर उसमें विलम्ब क्यों? असल में ये सवाल तो भंडाफोड़ करनेवाले हैं ? यदि जमीन ही लौट जाए, तो जमींदारों को आजादी से क्या मिलेगा ही? वह स्वर्ग थोड़े ही जाएँगे। असल में कुछ आजादी वह इसलिए चाहते हैं कि उनमें हाथ में शासन सूत्र आ जाएँ। ताकि फिर कोई भी उनसे जमीन वापस दिलाने या छीनने की हिमाकत न करे। मगर अगर जमीन को पहले ही लौटा दें तो आजादी लेकर चाटेंगे थोड़े ही।

उनमें यह शक्ति भी तो नहीं कि अकेले लड़ सकें। वे तो सदा सरकारी अफसरों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

को सलाम करते आए हैं। फलतः उनकी रीढ़ की हड्डी झुक गई है। वे क्या तन के अंग्रेजों के सामने खड़े होंगे? वे क्या लड़ेंगे? उनका पैसा लड़ेगा ऐसा माना जाता है। मगर बिना किसानों के वह कुछ नहीं कर सकता। जब किसान आगे बढ़ें तो पैसे से भी स्वातन्त्र्य संग्राम में सहायता मिले। इसीलिए किसानों को साथ लेना ही होगा। मगर जमींदार और किसान के स्वार्थ तो परस्पर विरोधी हैं। ऐसी दशा में गोलमोल बातें करके ही उस विरोध को दबे दबाए रहने देना तथा काम निकालना इसी में बुद्धिमानी है। इसीलिए तो आर्थिक प्रश्नों को न उठने देना वे जरूरी समझते हैं।

मगर होना क्या चाहिए? ये प्रश्न जरूरी हैं या नहीं? क्या उनके उठाए बिना काम चल सकता है? क्या यों ही गोलमोल बातों के ही लिए लड़ना और पास का रहा-सहा भी गँवाना चाहिए? ऐसा क्यों किया जाए? आजादी मिलने पर बँटवारा होगा या नहीं? यदि होगा तो किस बात का? किस चीज की आजादी का? वह तो बाँटने लायक ही नहीं है। उसे जमींदार ही पूर्ण रूप से रख ले। किसान को तो केवल जमीन पर सोलह आना हक चाहिए और वह कभी छीनी न जाए इसकी गारण्टी चाहिए। क्या यह बात उन्हें पसन्द है? यदि नहीं तो किसान का और उनका मेल कैसा? देखिए न, यह शोषण कितना पेचीदा और गूढ़ है कि आजादी और उसकी लड़ाई के नाम पर भी अमीर लोग गरीबों को और जमींदार किसानों को ही चूसना चाहते, धोखा देना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि लड़े और मरे कटें किसान लोग और मालिक बनें वे लोग। यह तो भयंकर शोषण है। खूबी तो यह है कि जो नेता लोग इसे मिटाने की बात करते हैं वह भी जमीन, रोटी, कपड़ा, मकान, दवा आदि का सवाल उठने देना नहीं चाहते। वह भी प्रायः गोलमोल बातों में ही किसानों को डाले रखना चाहते हैं। उनसे तो खामख्वाह ही धोखा हो जाता है और किसान घपले में पड़ा रह जाता है। वह समझी नहीं पाता कि आजादी से क्या होने वाला है। मगर यह समझना निहायत जरूरी है और समझाने का यह काम केवल किसान सभा ही साफ-साफ कर सकती है।

किसानों के लिए किसान सभा की जरूरत भी इसीलिए है कि वह उनके दान की अपनी चीज है, अपनी संस्था है। जब समाज में श्रेणियाँ हैं तो उनकी अपनी संस्थाएँ भी जरूरी हैं। अलग-अलग तो लड़ सकते नहीं हैं। मिलके तो लड़ना ही होगा। अब अगर किसान को मिलना है तो किसान सभा के द्वारा ही। जब संगठित रूप से आजादी की लड़ाई में वह भाग लेंगे तो उसे हासिल करने के बाद भी अपने हकों का दावा संगठित होके ही करेंगे। फिर तो विरोधियों को भी सुनना ही पड़ेगा। उन्हें उनका दावा मानना ही होगा। नहीं तो किसान साफ कह देंगे कि जिस शक्ति से हमने विदेशियों को उठा फेंका है वह शक्ति कहीं गई है नहीं। यदि आप लोग सीधे नहीं माने तो टेढ़े तो मानना ही होगा। क्या इसके बाद भी शोषकों को हिम्मत होगी कि सहसा उनकी माँगों को नाहीं करें? यह तो असम्भव है। लेकिन यदि किसान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

संगठित न हों तो? तब तो उन्हें अँगूठा दिखा दिया ही जाएगा। क्योंकि तब परवाह किसे होगी कि उनकी ओर ताके भी?

लेकिन हमें तो इससे भी आगे जाना है। हम तो मानते हैं कि लूटने वाले लोग आसानी से नहीं मानेंगे। वे अपनी करतूतों से बाज न आएँगे, जब तक विवश न हो जाएँ, नकार दिए जाएँ। यह ठीक है कि किसानों की संगठित शक्ति देखकर दबेंगे और चाहेंगे कि चालाकी से अपना काम निकालें। सैकड़ों दाँवपेंच और भेदनीति के उपाय ढूँढ़ निकालेंगे और एक-एक करके किसानों को फँसाना चाहेंगे। किसानों का फँस जाना आसान है। वे तो निहायत सीधे होते हैं। अतएव उस जाल में पड़ जाएँगे जरूर ही। तब क्या होगा? सब किया-दिया चौपट होगा।

लेकिन यदि किसान सभा हो और उसमें सभी किसान सम्मिलित हों, उसकी बातों में उन्हें विश्वास हो और उसकी आज्ञा मानते हों, तो यह खतरा आसानी से मिट जाएगा। तब तो यह खतरा शायद ही आए। क्योंकि जमींदार फिर तो हिम्मत ही हारेगा। और अगर उसने हिम्मत की भी तो किसान साफ जवाब देंगे कि हमें तो किसान सभा की राय से चलना है। वह जैसा कहेगी हम वैसा ही करेंगे। यदि वह आपकी बात पसन्द करे तो हम मान लेंगे। और किसान सभा के सामने—सच्ची और पक्की किसान सभा के आगे—उनकी भेदनीति कैसे चल सकती है? उसके सामने जाने की तो उन्हें हिम्मत ही नहीं होगी।

और भी आगे चलिए। संसार का इतिहास बताता है कि आजादी मिलके भी चली गई और किसान दुःखी के दुःखी ही रह गए। इसीलिए न कि पीछे से जमींदारों और मालदारों ने पाशविक शक्ति के सहारे दबा दिया? हमारे देश में भी इतिहास की पुनरावृत्ति होगी यदि किसान सजग न रहे। और उनका सजग रहना है क्या, सिवाय इसके कि किसान सभा को खूब मजबूत बना के रखें और विदेशी शोषकों के हटते ही इस देश के—स्वदेशी—शोषकों को भी शासक बनने न दें। स्वभावतः वह लोग तो शासन सूत्र अपने हाथों में लेना चाहेंगे ही। अतः उन्हें जैसे हो वैसे रोकना ही होगा। नहीं तो सब गुड़ गोबर। लेकिन यदि किसानों की अपनी सभा है नहीं, तो ये कर ही क्या सकेंगे? अकेले तो कुछ होगा नहीं। एक चना तो भाड़ फोड़ सकता नहीं। मगर सभा तो शोषकों को दबाएगी, उन्हें आगे बढ़ने न देगी।

अगर मुल्क के सभी लोगों का एक बड़ा संगठन बना के विदेशी शोषकों और शासकों से पिण्ड छुड़ाना जरूरी है और उस संगठन के बिना यह हो सकता नहीं, तो ठीक उसी तरह स्वदेशी शोषकों से, जो उसके बाद शासक बनना चाहेंगे, पिण्ड छुड़ाने के लिए किसानों और दूसरे शोषितों का अपना-अपना संगठन भी निहायत जरूरी है। उसके बिना तो काम चल सकता नहीं। उस समय तो भीषण मुठभेड़ होगी और उसमें सफलता लाने के लिए किसानों के पास सिवाय संघशक्ति के और होई क्या सकता है?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

किसानों की जब एक श्रेणी है जब वह शोषित तथा दलित हैं तब तो उन्हें अपने उद्धार के लिए लड़ना ही होगा और सिवाय अपनी सभा के पथप्रदर्शन के वे लड़ेंगे कैसे? उनके पास तो एकमात्र संख्या बल है और यदि उसका संगठित उपयोग न करें तो विजय होगी कैसे? किसान सभा के बिना उनके संगठन और रास्ता है भी नहीं। जब शोषकों की अपनी सभाएँ हैं, सो भी एक नहीं अनेक और एक से एक जबर्दस्त। तब किसानों की सभा क्यों न हो? शोषक लोग तो बिना सभा के भी अपनी बुद्धि प्रभाव, धाक और पैसे के बल से सबकुछ कर सकते हैं और इस तरह अपना लक्ष्य सिद्ध कर सकते हैं। पहले करते भी थे ऐसा ही। मगर जमाने की रफ्तार और संसार की दशा देखकर वह भी सजग हो गए हैं। उनने पहले से ही तैयारी कर ली है। किसानों और मजदूरों की अभूतपूर्व जागृति और उनका संगठन देखकर ही उनने समझ लिया है कि बिना संगठन और सभा के काम नहीं चलेगा। वे अब समझ गए हैं कि पीड़ितों और शोषितों का संगठन अनिवार्य है जिसके सामने वे लोग अकेले टिक नहीं सकते। इसीलिए उनने अपनी सभाएँ बना डाली हैं।

मगर यदि खुद किसान ही प्रश्न करें कि हम किसान सभा क्यों बनाएँ, तो आश्चर्य की बात है। किसान सभा की चर्चा और उसके बनने की शंका से ही जमींदार तो अपनी सभाएँ बना डालें। मगर किसान खुद अपनी सभा के बारे में दलीलें करें। इतना ही नहीं। किसान तो बहुत पीछे हैं। जमींदरों की सभाएँ तो पचासों वर्ष पहले से ही बनी हैं। इसीलिए किसानों ने बड़ी देर कर दी है ऐसा मान के फौरन ही किसान सभा की मजबूती में लग जाना होगा।

जमींदार और धनी लोग केवल अपनी अलग सभाएँ बना के सन्तुष्ट नहीं हो जाते। किन्तु राष्ट्रीय संस्थाओं पर भी जिनमें सभी शामिल हैं और जो सभी श्रेणियों की कही जानी चाहिए, उनने अपना अधिकार जमा लिया है, अधिकार जमाने की चिन्ता में वे व्यग्र हैं। वहाँ भी अपने धन और बुद्धि के बल से ऐसा जाल फैला दिया है कि कहने के लिए तो राष्ट्रीय संस्थाओं में नब्बे फीसदी किसान ही मेम्बर हैं। मगर प्रभुत्व शोषकों का ही है, वहाँ आवाज प्रधानतया उन्हीं की या उन्हीं के रंग में रँगी हुई ही उठती है। वहाँ वस्तुगत्या काम उन्हीं का होता है। इतना ही नहीं। किसानों की सभाओं में भी अपने ही दलालों और दूतों को भेजकर वे लोग उन्हें भी हथियाने की भरपूर कोशिश करते हैं। किसान नेताओं को कल, बल, छल से अपने वश में करके तथा नकली नेताओं को किसानों में भेज के अपनी धाक कायम रखना वे खामख्वाह चाहते हैं

इसका उपाय एक ही हो सकता है और वह यह कि हरेक किसान—स्त्री पुरुष—जो बालिग हों, किसान सभा के मेम्बर बन जाएँ और उसे अपनाएँ। जमींदारों की टिक्की तभी तक लग सकती है जब तक किसान सभा में बहुसंख्य—अपार—किसान आँखें खोल के और समझबूझ के शामिल नहीं होते। उनके शामिल होते ही यह चाल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और यह चोरी पकड़ ली जाएगी। आखिर नेता लोगों के बाल-बच्चे तो भूखों मरते नहीं। मरते तो हैं किसानों के ही बाल-बच्चे। फिर भी अगर किसान को ही अपनी सभा की फिक्र नहीं है, वही उसका मतलब नहीं समझता तो नेताओं को क्या गर्ज पड़ी है? उनकी तो नेतागिरी कायम रहनी चाहिए और जब तक किसान मुस्तैदी के साथ किसान सभा में नहीं पड़ते, उसकी खुद देखभाल नहीं करते, और उसे अपने हाथों में रखने को तैयार नहीं हो जाते तब तक नेतागिरी कौन छीनेगा? वह तो बरकरार रहेगी ही।

किसानों को याद रखना चाहिए कि उन्हें विदेशी शासकों और देशी शासकों और देशी शोषकों—दोनों—से ही लड़ना है। लड़ने वाले तो वही हैं। अतः वह दूसरी संस्थाओं पर यकीन न करें, जो सबों की मानी जाती हैं। वह लड़ेंगी, न भी लड़ेंगी। आखिर किसानों और मजदूरों के सिवाय—पसीना बहा के आधा पेट खानेवालों के अलावा बाकियों के बाल-बच्चे तो भूखे हैं नहीं। फिर उन्हें ऐसी गर्ज क्यों हो जैसी कि किसान को होनी चाहिए? यदि वह मौका देख के विदेशियों से एकाएक समझौता कर लें तो क्या होगा? उन्हें ऐसा करने से रोकेगा कौन यदि कमानेवालों की ही सभाएँ नहीं हैं? यदि उनकी संगठित आवाज ही नहीं है? यदि वे रुक भी न सके, तो भी समझौता करके वे जो हानि किसानों को पहुँचाएँगे उसे कौन रोकेगा? जब वह उधर जा मिलेंगे तो आजादी की लड़ाई का काम कौन सँभालेगा? इसे चलाएगा कौन? और अगर यही खटाई में पड़ गई तो किसानों का उद्धार कैसे होगा?

दलील की जाती है कि जब राष्ट्रीय संस्थाओं में किसान ही नब्बे प्रतिशत सदस्य हैं तो उन्हें फिक्र ही क्या होनी चाहिए? जब राष्ट्रीय संस्थाएँ मौजूद ही हैं तो फिर किसानों की सभा अलग बनाने की जरूरत ही क्या? इस प्रकार शक्ति को छिन्न-भिन्न करने से तो लाभ की जगह हानि ही हानि है।

यह दलील देखने से तो अच्छी मालूम होती है। मगर जब उसके भीतर घुसिए तो पोल का पता लग जाएगा। राष्ट्रीय संस्था में चाहे निन्यानबे प्रतिशत से भी अधिक किसान ही हों, फिर भी वहाँ प्राधान्य किसका है और आवाज किसकी है? यदि किसानों की ही आवाज रहती और उन्हीं की बात मानी जाती तो अब तक जमींदारी प्रथा कभी की मिट गई होती। यह तो कोई साम्यवादी क्रान्ति की बात नहीं है और न कोई नई बात ही है। दुनिया में इंग्लैंड को छोड़कर अब कहाँ जमींदारी प्रथा रह गई है?

संसार में जमींदारी प्रथा सहस्रों साल पुरानी थी। फिर भी मिट गई। पूँजीपतियों ने ही उसे मिटाया। मगर हमारे देश की जमींदारी प्रथा तो नई है। यह तो अंग्रेजी सरकार की ही पैदा की हुई है। मगर फिर भी क्यों नहीं मिटती? इंग्लैंड की जमींदारी तो ऐसी भयंकर है भी नहीं। बम्बई आदि प्रान्तों में भारत में भी जमींदारी प्रथा नहीं है। केवल कुछी प्रान्तों में है। फिर भी नहीं मिटती? खूबी तो यह है कि लीडर लोग ही इसे आशीर्वाद देते हैं—ऐसे लीडर लोग भी, जो पहले इस प्रथा को खुद फूटी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आँखों भी देख नहीं सकते थे। जब किसान अधिक तादाद में राष्ट्रीय सभा और कांग्रेस में शामिल न थे, तभी वे नेतागण जमींदारी मिटाने की बात करते थे। लेकिन जब किसान उनकी बातें सुनके बड़ी भारी आशा से कांग्रेस में घुसे तो जमींदारी मिटाना तो दूर रहा, उसकी बात तक बन्द हो गई ! उलटे अब उसे आशीर्वाद दिया जाने लगा। क्या इसे ही राष्ट्रीय संस्थाओं में किसान का बहुमत कहते हैं ? क्या बहुमत का यही अर्थ है ? तब तो उस बहुमत को दूर से ही सलाम कर लेना होगा। तब तो उस संस्था से अलग रहना ही उचित होगा।

संस्था में बहुसंख्य किसान रहने से ही क्या होगा? रेलगाड़ी में बैठने वाले तो बहुसंख्य किसान ही होते हैं। उन्हीं के पैसे से वह चलती भी है। मगर जरूरत होने पर डाकगाड़ी या एक्सप्रेस ऐसे स्टेशनों पर भी रुक सकती है जहाँ साधारणतः उसके रुकने का नियम नहीं है। यदि उसमें फर्स्ट या सेकंड क्लास के आदमी उन स्टेशनों पर ही बैठना चाहें या उससे उतरना ही चाहें। और गाड़ी तो कब्जे में होती है ड्राइवर के। वही चलाता है। वही रोकता है। चढ़ने वाले नहीं रोकते, चलाते। फिर उसमें अधिक संख्या दूसरों की रहने से क्या हुआ?

जमीन तो किसान ही जोतते-बोते हैं। जमींदार और उसके बाल-बच्चे तो कहीं हल चलाते और धान रोपते देखे नहीं गए। मगर जमीन का मालिक माना कौन जाता है? किसान या जमींदार?

भारत में बसते तो हैं भारतीय ही। विदेशी तो गिने-चुने ही मुश्किल से दो चार लाख होंगे। मगर यह देश आज हकीकत में किसका है? सरकार की सारी मशीनरी और सारी प्रबन्ध व्यवस्था—फौज, पुलिस, जेल, कचहरी आदि चलाते तो हैं किसान ही। उन्हीं के आदमी से ही और उन्हीं के पैदा किए हुए गेहूँ, घी, चावल आदि से ही सभी का काम चलता है। मगर यह सरकार है किसकी? मानी जाती है किसकी? इस सरकार में आवाज और बात किसकी चलती है?

ऊपर से लेकर नीचे तक सर्वत्र तो उलटी ही बात चलती है। इसे ही कहते हैं अपने ही घर में बेगाना बनना, परदेशी बनना। यही बात ठीक-ठीक राष्ट्रीय या खिचड़ी सभाओं में आ भी पाई जाती है। वहाँ भी किसान वस्तुतः बेगाने हैं।

भारत में कुछ लोग अफ्रीका, कनाडा, आस्ट्रेलिया, जावा, सुमात्रा, ट्रिनिडाड, फीजी आदि देशों में बसते हैं। चाहे नौकरी करने के लिए या व्यापार के ही खयाल से वहाँ रहते हैं। वहीं बस गए हैं। जब कभी वहाँ की सरकारें उन पर अत्याचार करती हैं तो हमारे नेता राष्ट्रीय सभा में बैठ के बड़े-बड़े प्रस्ताव पास करते हैं और नाथ-पगहा तुड़ाते हैं। बड़ी सरगर्मी देखी जाती है! बड़ी बेकली, बड़ी बेचैनी मालूम पड़ती है। दरिद्रनारायण के सेवक नामधारी भी काफी आँसू बहाते हैं। बड़े-बड़े मिल वाले, पदवीधारी और जमींदार भी प्रतिवाद करते हैं कि यह अत्याचार हैं, जो काबिले बर्दाश्त नहीं। यह तो बन्द होना ही चाहिए, नहीं तो परिणाम बुरा होगा। हम जानते

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ही हैं कि अफ्रीका की लवंग का हाल में ही बायकाट भी इसीलिए हमारे देश में किया गया था। ऐसी बातें बराबर ही होती रहती हैं।

मगर अगर जरा पास-पड़ोस में ही अपने घर में, अपनी ही जमींदारी में, अपनी ही मिलों में, उनके आसपास ही देखें, तो क्या हो? मिलों में जो लाखों, करोड़ों मजदूर आधे पेट के लिए नौकरी करते और नर्क का जीवन व्यतीत करते हैं वह क्या चीज है? क्या उसका प्रतिवाद नहीं होना चाहिए? क्या उन मिलों की चीजों का बहिष्कार हमारा कर्तव्य नहीं है? यदि कहें कि बाहर और भीतर दोनों का—एक साथ नहीं कर सकते तो पहले भीतर वालों का ही क्यों न करें? आखिर जितने लोगों को नारकीय जीवन यहाँ बिताना पड़ता है उनके हजारवें भाग को भी बाहर के देशों में हर्गिज ऐसा नहीं करना पड़ता है। फिर तो यही वाला पलड़ा भारी है।

बहिष्कार तो खैर दूर की चीज है। जरा खुल के प्रतिवाद भी तो होता? गालियाँ भी तो पड़तीं और धमकियाँ भी तो दी जातीं? कम से कम गर्मागर्म लेक्चर भी तो नेताओं के हो जाते? मगर किसे फिक्र है? क्या राष्ट्रीय संस्था में गरीबों के बहुमत का यही नमूना है? तब तो गजब होगा।

जमींदारों की जमींदारियाँ ही लीजिए। बीसों करोड़ किसान इनके अत्याचार की चक्कियों में लगातार ही पिस रहे हैं। करोड़ों प्रतिदिन भूखे ही रह जाते हैं। हाँ, करोड़ों ! बहुत से विद्वानों ने जो यह माना है कि भारत के प्रायः आधे लोग एक वक्त भूखे ही रहते हैं वह आखिर कौन हैं? उनमें अधिकांश किसान ही तो हैं! उन्हें चिथड़े भी नहीं मिलते। बीमारियों में कीड़े-मकोड़ों की तरह लाखों की तादाद में मर जाते हैं और कोई पूछने वाला तक नहीं। अपमान और बेइज्जती की बात तो पूछिए मत। विहार का रेयान और गुजरात का दुबला, हाली, रानीपरज भी क्या आदमी की जिन्दगी बिताता है? मैंने आँखों देखा और बातें की हैं। आज जनजागृति के युग में जिस हाली में चेतना आ गई है वह अपने भाइयों और अपनी माँ-बहनों की बेइज्जती साहूकार, जमींदारों के हाथ देख के यहाँ तक कि याद कर के भी तिलमिला उठता है और जहर की घूँट पी के रह जाता है। क्या इससे भी भयंकर कोई नर्क होगा? क्या यह मानवता का प्रचंड और ज्वलन्त अपमान नहीं है ? क्या उसकी छाती पर यह कोदो दलना नहीं हैं?

मगर हमारे बड़े-बड़े दक्काक और लब्धप्रतिष्ठ नेताओं ने क्या किया है अब तक? क्या चूँ भी की है। क्या डाँट-डपट भी की है कि ये बेहूदगी बन्द हो? क्या अपनी उन रिपोर्टों में भी जिनमें दूसरे मुल्कों में होनेवाले अत्याचारों का भरपूर ही जिक्र किया है, इसकी एक बार भी चर्चा तक की है? यदि नहीं तो क्यों? क्या यही किसानों के बहुमत का अर्थ है? ज्यादातर किसान ही आजादी में मरे मिटे, बलिदान हुए यह गीत गाई जाती है सही, लेकिन क्या उस बलिदान का यही मतलब है कि उन पर होने वाले स्वदेशी अत्याचारों और उनके अत्याचारियों का नाम भी न लिया

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जाए? क्या इसी भरोसे किसानों को राष्ट्रीय सभा में शामिल होने का निमन्त्रण दिया जाता है? क्या इन्हीं करतूतों से वे राष्ट्रीय नेताओं को अपने नेता और राष्ट्रीय सभा को अपनी सभा मानेंगे? क्या इसी करनी और रवैये के बल पर लोगों को कहने की हिम्मत होती है कि किसानों की अलग सभा नहीं चाहिए? उसकी जरूरत है ही नहीं? तब तो खूब है।

16.1.41 । कहते हैं 'निबिया हो करुवा इन, तब्बो शीतल छाँह। भैया हो बिराना, तब्बो आपन बाँह।' अभिप्राय यह है, हमने नीम का पेड़ दरवाजे के पास ही लगाया। नीम होती तो है बहुत कड़वी। उसके फल कड़वे, फूल कड़वे, पत्ते कड़वे, डाल कड़वी। उसका अंग-अंग कड़वाहट से ही व्याप्त है। मगर गर्मियों में जब शीतल छाया की अत्यन्त जरूरत होती है, क्या उसकी छाया भी कड़वी होती है? गर्म होती है? बर्दाश्त के बाहर होती है ठीक वैसे ही जैसे कि उसके फल वगैरह होते हैं? ऐसा तो नहीं होता। उसकी छाया तो अत्यन्त शीतल होती है। ऐसा क्यों? उत्तर देना पड़ता है कि आखिर है तो वह अपनी, अपनी ही लगाई हुई। इसीलिए अन्ततोगत्वा अपने लिए सुखद क्यों न हो? छाया के द्वारा आराम क्यों न पहुँचाएँ? अपनी चीजों की यही बात होती ही है। अपना नजदीकी भाई कितना ही बिराना, कितना ही बड़ा शत्रु, कितना ही बिगड़ैल क्यों न हो, फिर भी मौके पर अपनी बाँह की ही तरह सहायता करता है। चित्ररथ गन्धर्व के द्वारा वन में घोर रूप से अपमानित होने पर दुर्योधनादि कौरवों को आखिर अर्जुन प्रभृति पांडवों ने ही तो उबारा था। उनने ही तो दुर्योधन के दल और उनकी स्त्रियों की इज्जत उस समय रख ली थी। हालाँकि थी उस समय कौरव-पांडवों में परस्पर जानी दुश्मनी। दुर्योधन के मारे ही तो उस समय पांडव वनवास की विपत्तियाँ झेल रहे थे और उन लोगों को चिढ़ाने के लिए ही तो रंगरास और विलास की सामग्रियों को लेकर दुर्योधन उसी वन में गया था।

किसान सभा के बारे में भी यही बात लागू है। चाहे कुछ भी हो। मगर आखिर वह है तो किसानों की अपनी चीज, निजी संस्था। उनकी ही लापरवाही एवं असावधानी के करते चाहे उनका पूरा काम वह भले ही न कर सकती हो, चाहे भले ही कमजोर हो। मगर संकट के समय तो नीम की शीतल छाया सगे भाई की तरह ही काम आएगी, रक्षा करेगी, बचाएगी, रास्ता बनाएगी। अपनी जो ठहरी, खिचड़ी जो न ठहरी। साझे की जो नहीं है। कहते हैं कि जो सभी की चीज होती है वह किसी की भी नहीं होती—Everybody's thing is nobody's. ऐसी चीज ऐन मौके पर धोखा देती है। वह उन्हीं के काम आ सकती है जिनने उसे हथिया रखा है, जिनका उसके ऊपर प्रभुत्व स्थापित है। राष्ट्रीय संस्थाओं की भी यही बात है। उन पर आधिपत्य तो रहता है असल में शोषकों का ही। हालाँकि देखने के लिए उनमें भी संख्या शोषितों की ही ज्यादा होती है। इसीलिए गाढ़े मौके पर वह शोषकों का ही काम करती है। कड़वी नीम और विरोधी भाई की तरह भी विपत्ति में काम नहीं आती है, नहीं आ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सकती है।

बात असल यह है कि किसानों का जो अजहद सीधापन है, अत्यन्त भोलापन है, जिसके चलते सभी पर विश्वास करते रहते हैं और अन्त में धोखा खाते हैं, उसे ही तो दूर करना है। उन्हें विवेक से, विचार से काम लेने की शिक्षा देनी है, उनमें उसकी आदत लानी है। उनके भीतर से बिना सोचे-विचारे ही विश्वास कर लेने unthinking trustfulness की आदत की प्रवृत्ति को जड़-मूल से खोद बहाना है। यह मामूली काम नहीं है। यह तो समुद्र को सोखने, हिमालय को पार करने से भी बड़ा काम है। सिर्फ दस-बीस या हजार-दो हजार को इस प्रकार सुधारना नहीं। लाख-दो लाख की भी बात नहीं है। कम से कम अस्सी प्रतिशत जनता को ऐसा बनाना है। इतने बड़े अपार जनसमूह को रास्ते पर लाना कोई मामूली बात नहीं है। यह जरा टेढ़ी खीर है।

सुधारना भी कैसा? हजारों-लाखों वर्षों की, पुश्त-दर-पुश्त की, वंश परम्परा की आदत सदा के लिए छुड़ानी है। यदि कहें तो कह सकते हैं कि कोयले को धो के सफेद करना है। नमक का खारापन हटाना है। जब दस-पाँच वर्ष की पड़ी आदत जल्द नहीं छूटती जब उसके ही छुड़ाने में आकाश-पाताल एक करना पड़ता है तो हजारों-लाखों वर्षों की वंश परम्परा की—आदत का क्या कहना? यह तो रग-रग में और खून मांस तक में समाई हुई है। इसे तो कमानेवाली जनता माता-पिता के रज-वीर्य से ही प्राप्त करती है, सीखती है। यह तो खानदानी बीमारी है जो माता-पिता के जरिए ही भावी सन्तान में घुस जाती है। ऐसी बीमारी का इलाज, ऐसे लाइलाज मर्ज, राज रोग की दवा आसान नहीं है। तिस पर भी तुर्रा यह कि चारों तरफ का वायुमंडल ही ऐसा जहरीला एवं दूषित है, समाज ही ऐसा सड़ गया है कि लोग साँस लेने में भी इसी रोग के कीटाणुओं (germs) को दिल, दिमाग और पेट में—रग और खून में—भरते रहते हैं। किसानों के बच्चे-बच्चियों को बचपन से ही यही अमली तालीम, यही व्यावहारिक शिक्षा मिलती रहती है कि शोषकों पर, जमींदारों, साहूकारों तथा मालदारों पर विश्वास करो। फिर बगुला भगत नेताओं के बारे में कहना ही क्या? जो प्रतिदिन उसे लूटते और उसी का खून निर्दयता के साथ पीते हैं उन्हीं पर यह किसान विश्वास करता है। कहता है, हमारे सरकार क्या हमें धोखा देंगे? हमारे साधु भी क्या दगा करेंगे ? क्या ये लोग भला कभी झूठ बोलेंगे? जाल करेंगे? इसीलिए तो लगातार ही यह अभागा किसान लुटता ही रहता है? फिर भी होश नहीं! उसी का होश हमें दुरुस्त करना है। इस असाध्य बीमारी की सफल औषधि करनी है।

इसके लिए तो ऐसी चिकित्सा प्रणाली हो, ऐसा चिकित्सालय हो, ऐसा स्वास्थ्यगार हो जहाँ बेफिक्र इसी बात का प्रयोग और इसी रोग की दवा होती हो, जहाँ मरीज जाकर तब तक विश्वासपूर्वक रह सकें जब तक पूर्ण स्वास्थ्य उन्हें न हो जाए, जहाँ सभी प्रकार उनकी खबर लेने की पूरी सामग्री हो। उनके लिए इस राजरोग की अचूक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दवाइयों का आविष्कार करने के लिए ही जो प्रयोगशाला बनी हो, जिसका दूसरा कोई भी काम न हो उसी से यह आशा की जा सकती है कि उन्हें नीरोग बनाने का पूरा सामान मुहैया करेगी। जैसे गड़ेरिए का काम है केवल भेड़ चराना, ठीक उसी प्रकार प्रयोगशाला और चिकित्सा भवन का एकमात्र यही काम हो कि वह किसानों की इसी मारक व्याधि को मूलों एवं निदानों का ठीक-ठीक अनुसन्धान करके उसकी पूरी-पूरी चिकित्सा करें, वहीं इस असाध्य व्याधि के छूटने की आशा हो सकती है। वही किसानों के इस घोर उन्माद इस भयंकर पागलपन को हटाया जा सकता है और वहीं इनका दिमाग दुरुस्त किया जा सकता है। जिन डॉक्टरों, वैद्यों, हकीमों, या ओझा सोखाओं पर किसानों का पूरा-पूरा यकीन हो कि ये हमारी बीमारी जरूर हटा देंगे उन्हीं से यह काम हो सकता है। रोगी का वैद्य तथा उसकी दवा पर पूर्ण विश्वास होना भी निहायत जरूरी है पूर्ण स्वास्थ्य लाभ की दृष्टि से। सारांश यह है कि सर्वजनप्रसिद्ध विशेषज्ञों की ही विलक्षण चिकित्सा की अपूर्व शाला में ही यह काम सम्भव है।

17.1.41। और ऐसी चिकित्साशाला, ऐसी प्रयोगशाला सिवाय सच्ची और जबर्दस्त किसान सभा के दूसरी संस्था होई कैसे सकती है? ऐसी किसान सभा का तो मतलब ही है कि उसमें काम करने वाले, उसे चलाने वाले, उसके नेता एवं कार्यकर्ता ऐसे ही लोग हों जिन्हें दिन-रात एकमात्र किसानों के उद्धार की ही चिन्ता हो, जो निरन्तर किसानों की माली, दिमागी, जिस्मानी और सियासी (राजनीतिक) दशा का पूरा पता लगाने में ही व्यस्त हो, जो केवल इसी धुन में लगे हों कि किसानों की असली कमजोरियाँ कौन सी हैं जिनके करते सबकुछ पैदा करके भी वे भूखों मरते हैं और सर्वत्र अपमानित होते हैं। किसान संसार के लिए सभी प्रकार की शक्तियों के स्रोत हैं। इनके बिना दुनिया का काम एक क्षण भी चल नहीं सकता, दुनिया इनके बिना एक पल भी टिक नहीं सकती। यदि ये गेहूँ, चावल, दूध, घी आदि पैदा न करें, पुलिस तथा फौज में भर्ती होना बन्द कर दें, सरकारी आफिसों के अर्दली वगैरह न बनें, जेलों के बार्डर और सिपाही बनने से इनकार कर दे, कल-कारखानों में कुली तथा मजदूरी के पेशे को तिलांजलि दे दे, जमींदारों के बराहिल पटवारी, गुमास्ते आदि कतई न बनें, अमीरों के हर तरह के कामों के करने से साफ नाहीं कर दें, तो यह दुनिया श्मशान के सिवाय क्या दूसरी नजर आएगी?

मगर इन किसानों की यह ताकत कौन समझता है? इसे कौन मानता है? किसे इसकी जरा भी परवाह है? होगी भी किसी को यह परवाह क्यों, जब खुद किसान ही अपनी यह ताकत भूल गया है? यह तो स्वयमेव अपनी महान महिमा को इस अपरम्पार शक्ति को नहीं समझता, नहीं जानता! यही तो इसका पागलपन है। यही तो इसके दिमाग का दिवालियापन तथा इसकी अक्ल के गुम हो जाने की निशानी है। और जब तक यह पागलपन दूर न हो जाए, जब तक इसकी चिकित्सा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अच्छी तरह न हो जाए, तब तक इस किसान के उद्धार की आशा कैसी? तब तक इसके पनपने एवं फूलने-फलने की उम्मीद कैसी? और यह चिकित्सा किसान सभा ही तो आखिर करेगी। इस बीमारी का निदान आखिर वही तो बताएगी। नहीं तो उसकी जरूरत ही क्या है? उसे दूसरा काम हई क्या? यदि उसमें सिर्फ इसी बात के धुनी कार्यकर्ता तथा नेता नहीं हैं तो वह जहन्नुम में जाए। वह रहेई क्यों? तब तो वह और भी धोखा देगी। जिस किसान सभा के पदाधिकारी और कार्यकर्ता दुखिया किसान को देखते ही अपनी आँख-पलकों पर उसे रख लेने को उछल न पड़ें, उमंग भरे हृदयों से उसका स्वागत समादर न करें वह किसान सभा खाक में जाए, चूल्हे भाड़ में मिले। किसानों के संकटों, उनकी वेदनाओं और उन पर होने वाले जुल्मों की याद मात्र से जिनके कलेजे पानी-पानी होके आँख के रास्ते बाहर न निकल आएँ, जिनके खून में उनके प्रतिकार तथा प्रतिशोध की आग न लग जाए, जो फौरन प्रतिज्ञा न कर ले कि या तो इन आपदाओं को ही मिटा लूँगा या खुद ही मिट जाऊँगा, उनकी, वैसे कार्यकर्ताओं तथा पदाधिकारियों के लिए किसान सभा में स्थान नहीं है, नहीं हो सकता, नहीं होना चाहिए। जैसे साधक अपने साध्य, या इष्ट को पाके मस्त हो जाता है और उसका कलेजा बाँसों उछल पड़ता है, ठीक वही हालत किसान सभा वालों की किसानों के सम्बन्ध में होनी चाहिए। ऐसी ही किसान सभा को अपनाएँ, किसान अपनाएँगे।

यह बात राष्ट्रीय या खिचड़ी संस्थाओं में असम्भव है। यह काम वह करी नहीं सकती है। न तो उनमें किसान का पूर्ण विश्वास ही अन्त तक रह सकता है, न वह दिल खोल के अपनी दुःख-दर्द गाथा ही उन संस्थाओं के संचालकों को सुना सकता है और न उन्हें फुर्सत ही रहती है ऐसी गैरजरूरी बातें के लिए। ये बातें तो उन संस्थाओं के लिए सर्वदा सर्वथा अवांछनीय हैं। ये उनके कार्यक्षेत्र के बाहर की हैं। इनसे उनके काम में बाधा पहुँचती है, बाधा पहुँचने का खतरा रहता है। जिनका काम है वर्ग सामंजस्य करना, लीपापोती करना, जिनकी सतत चेष्टा रहती है बाघ एवं बकरी को एक ही खूँटे में बाँधने की वह भला ऐसी बातों को कैसे पसन्द करेंगी? इनसे तो उनके काम में पद-पद पर रुकावटें पहुँचती हैं। जिस मवाद को समाज के सड़े अंग से बाहर वे संस्थाएँ आने नहीं देना चाहती हैं, किन्तु भीतर ही रख के बाहर से ही मरहम-पट्टी करती है, यह तो वही भीषण एवं रोमांचकारी मवाद है। इससे तो बाहर चारों ओर का वायुमंडल ही दूषित हो जाएगा। फिर तो उनकी लीपापोती, उनका वर्ग सामंजस्य खत्म ही हो जाएगा।

एक अपनी अनुभूत घटना याद आती है। शाहाबाद जिले में डुमराँव के पास भोजपुर का पुराना कस्बा है। उसी के उत्तर सिमरी मौजा पड़ता है। उसे सातों सिमरी भी कहते हैं। असल में सात गाँवों को मिलाकर ही सिमरी कहते हैं। उसी से यह नाम पड़ गया है। सन् 1921 ई. के असहयोग के जमाने से लेकर पीछे बहुत दिनों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तक मुझे वहाँ रहने का मौका लगा है। बरसात के दिनों में सिमरी से डुमराँव आने-जाने के सैकड़ों अवसर आ चुके हैं। भोजपुर से मिले उत्तर एक लम्बी खाल (नीची जमीन) है जिससे हो के एक नाला बहता है। वर्षा के दिनों में उसमें काफी पानी हो जाया करता है। मगर ज्यादा पानी पड़ने पर ही एकाएक यह बात होती है। फिर दोई चार दिनों के बाद विशेष जल बह जाता और लोग बिना किसी नाव या डोंगे के ही पार हो जाते हैं। गर्मियों में या दूसरे मौसम में भी वह जगह सूखी ही रहती है। लेकिन एकाएक ज्यादा पानी हो जाने पर लगातार हफ्तों यों ही पार होना असम्भव हो जाता है। छोटी-बड़ी नावों के लिए भी वहाँ न तो जगह है और न गुंजाइश। वे वहाँ न तो लाई जा सकती हैं और न रखी ही जा सकती हैं।

इसलिए जरूरत के अनुसार स्थानीय लोगों ने एक हिकमत निकाली है इस दिक्कत को सुलझाने के लिए। किसी सूखे पेड़ के तने (धड़) के बीच का भाग खोखला बना देते हैं। बीच से समूचा काठ काट के निकाल लेने पर वह नाव जैसा ही, या यों कहिए कि बहुत छोटी डोंगी जैसा बन जाता है, उसके पेंदे में कुछ घास-फूस या डंठल रख के उस पर आसानी से लोग बैठ सकते हैं। बोरा या दूसरे सामान भी रखे जाते हैं। इन्हें वहाँ डोंगा कहते हैं। इन्हीं से आर-पार होने का काम लिया जाता है।

लेकिन इनमें एक खतरा रहता है। असल में पेड़ के गोलमोल तने को भीतर से खोखला कर देने पर बैठने की जगह तो हो जाती है। मगर तना तो गोला रहता है। इसलिए डोंगा भी गोला ही तैयार होता है। फलतः यदि उसमें बैठने वाले जरा भी हिलें डोलें, तो वह फौरन उलट जाता है। डोंगी या नाव का पैंदा चपटा होने से यह खतरा नहीं रहता। मगर गोलमोल होने के कारण डोंगे में बराबर यह बात रहती है। इधर लोगों की हालत यह होती है कि इस खतरे से सँभलने की पहले से कोई शिक्षा मिलती नहीं। सभी प्रकार के लोग उसमें चढ़ते हैं भी। इसलिए एक ही बार आर-पार होने में न जाने कितनी बार डोंगे के उलट जाने का भय रहता है। जरा सा भी कोई हिला, यहाँ तक कि जरा कस के खाँसा, या खूब जोर से साँस ली कि डोंगा उलटा! इसीलिए उसे चलानेवाले मल्लाह बराबर चिल्लाते रहते हैं कि खबरदार, हिलो मत, डोलो मत, खाँसो मत, साँस मत लो, नहीं तो डोंगा ही डूब जाएगा। चढ़नेवालों को बराबर सचेत करते रहते हैं। फिर भी कभी-कभी उलट ही जाता है। वह ठहरा ही ऐसा नाजुक। फिर किया क्या जाए?

हूबहू यही बात आजादी के लिए लड़ाई चलाने के नाम पर बनी संस्थाओं की है। इनमें सभी तरह के, सभी वर्ग के लोग रहते हैं। ये संस्थाएँ बनती ही हैं इसी प्रकार की। इनकी कोशिश ही सदा ऐसी रहती है कि सभी वर्ग के, सभी स्वार्थवाले लोग उनमें शरीक हों। आजादी तो सभी को चाहिए ही। अतएव सभी लोग उनमें खामख्वाह आते हैं। यही उन संस्थाओं की खूबी है। फिर भी उनकी बातें कुछ ऐसी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चिकनी चुपड़ी होती हैं वे गरीबों के लिए कुछ ऐसा नकली आँसू (Crocodile's tear) बहाती हैं कि शोषित तथा पीड़ित जनता अधिकांश उनमें शामिल होती है। इसी से तो वह संस्थाएँ बलवती होती हैं। यही तो उनका असली बल है, असली ताकत है। आखिर शोषक और मालदार तो खुल के, सीना तान के कभी भी विदेशी शासकों से लड़ सकते नहीं! उनमें हिम्मत ही कहाँ? उनमें बल ही कहाँ? उन्हें तो न सिर्फ जेल का डर है प्रत्युत भारी जुर्माने और जायदाद की जब्ती का भी। फिर तो उनका स्वराज्य ही किरकिरा हो जाए, अगर कहीं गहरा जुर्माना हुआ, या जायदाद ही जब्त हुई। तब तो लेने के देने पड़े। क्योंकि वे हानि-लाभ का हिसाब पैसे-पैसे का लगाते हैं। उनके सर पर तो यह जायदाद गठरी की तरह है। और सिर पर गठरी रख के तो कोई भी आदमी कुश्ती लड़ सकता नहीं। तब तो गठरी ही नीचे जा पड़ेगी। इसीलिए वह भी चाहते हैं कि उनकी भी लड़ाई शोषित जनसमूह ही लड़ें। भूखे नंगों को इसमें खतरा तो हई नहीं। उनके सर पर तो वह गठरी हई नहीं कि गिरने का डर हो। इसीलिए वे खुल के लड़ते हैं। इसीलिए ऐसी संस्थाओं में पीड़ित जनता को अधिक तादाद में लाने की सारी बन्दिशें की जाती हैं। इसीलिए उन्हें सब्जबाग दिखाए जाते हैं। उनके दुःखों को दूर करने के लिए बड़े-बड़े वादे किए जाते हैं।

18.1.41। ठीक ही है वादों के लिए तो कोई दाम चुकाना पड़ता ही नहीं। वह तो निहायत ही सस्ते हैं—इतने सस्ते कि एक कौड़ी भी उनके लिए देना नहीं पड़ता। कोई परिश्रम भी नहीं करना पड़ता, सिवाय बोलने या लिखने के, परिश्रम के। कुछ स्याही-कागज भी कभी-कभी खर्च हो जाते हैं। बस! इसीलिए तो संसार विख्यात क्रान्तिकारी नेता लेनिन ने कहा कि 'वादों के लिए कोई भी कीमत चुकानी नहीं पड़ती। आज जब सभी चीजें अत्यन्त महँगी हैं, केवल वादे ही ऐसे पदार्थ हैं जो बहुत ही सस्ते हैं'—Promises cost nothing. Promises are only thing thats are very cheap even in a epoch of insanely high prices. इन्हीं वादों तथा प्रतिज्ञाओं के फन्दे में, जाल में किसानों और मजदूरों को फँसा के राष्ट्रीय आजादी की लड़ाई चलाई जाती है, राष्ट्रीय संस्थाएँ मजबूत की जाती हैं। मगर मौका आते ही या तो टालमटोल की जाती है, या टका-सा जवाब दे दिया जाता है। जब ऐसी घटनाएँ बार-बार होती हैं तब कहीं जाकर शोषितों की आँखें खुलने लगती हैं। मगर फिर भी उन्हें बन्द रखने के लिए हजारों फन्दे, लाखों तरीके निकाले जाते हैं।

ऐसी संस्थाओं में गर्ज के चलते बहुसंख्य किसान-मजदूर बुलाए जाते हैं सही, वे आते हैं सही, लेकिन इनके संचालन का अधिकार एवं दायित्व ऐसे लोगों के हाथ में रहता है या तो खुद जमींदार, मालदार हैं, शोषक हैं, या उनके दलाल और पुछल्ले हैं। छिपे रुस्तम शोषकों के चलते ही तो किसानों और मजदूरों को रह-रह के धोखे खाने पड़ते हैं। वे तो देखते हैं यही कि इन संस्थाओं के मंत्री, सभापति, प्रभृति तो उन्हीं के भाई, उन्हीं जैसे दुखिया लोग ही हैं। तब ये झूठी बातें बोलेंगे कैसे? झूठे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वादे करेंगे कैसे? मगर उन्हें क्या मालूम कि ये मंत्री, सभापति आदि गधे की खाल ओढ़े बाघ हैं? उन्हें क्या पता कि हाथी को फँसाने वाले पालतू हाथी हैं? वे क्या जानने गए कि ये लोग भीतर ही भीतर जमींदारों, शोषकों एवं शासकों से सौदा करके उनके हाथ अपने को, अपनी आत्मा को, अपने ईमान को बेच चुके हैं? वे बेचारे क्या समझ सकें कि ये तो रखे ही गए हैं इसी चालाकी से कि शोषितों तथा पीड़ितों को शक भी न हो कि ये संस्थाएँ मालदारों के हाथ के खिलौने हैं, उनके हाथ की ही कठपुतलियाँ हैं। यही कारण है कि ऐसी संस्थाएँ सदा खिचड़फरोशी का काम करती हैं, बिसाती की दुकान का काम देती हैं। देखने के लिए ऊपर-ऊपर इनमें सभी लोगों के काम के सौदे, फायदे की चीजें यहाँ मिलती हैं।

मगर ज्यों ही वक्त आया और विश्वास में आके वे गरीब जमींदारों तथा पूँजीपतियों के जुल्मों के खिलाफ फरियाद ले के इन संस्थाओं में पहुँचे कि आफत आई और इनका भंडा फूटा। पहले तो भरसक टालमटोल की जाती है। कहा जाता है, हाँ, देखेंगे, जाचेंगे, और जुल्मों को अगर वे सही साबित हुए बन्द करवा देंगे। यकीन रखिए। विश्वास रखिए। जाँच-पड़ताल का पँवारा भी रचा जाता है ताकि पीड़ित लोग चौकन्ने न हो जाएँ। ज्यादा देरी के लिए सैकड़ों बहाने भी ढूँढ़ लिये जाते हैं। कभी-कभी इन्हें सुलझाने के लिए एकाध पंच भी नियुक्त कर दिए जाते हैं जो जालिमों के या तो पैसे खाते, उनके दबाव में होते, या उन्हीं में से होते हैं, भले ही ऊपर से ठाटबाट में पूरे बगला भगत हों, यही लोग पंचायत करेंगे! यही गरीबों के साथ न्याय करेंगे। बकरी का न्यायकर्ता बाघ होगा!

मगर जब उस छल-प्रपंच से काम सधता नहीं दीखता तो वही डोंगा डूबा, डोंगा डूबा वाली पुकार मचाई जाती है। ये भलेमानस बार-बार यही चिल्लाते हैं, यही दुहाई देते हैं कि यदि ये किसान-जमींदारों या मजदूर पूँजीपतियों के आपसी झगड़े उठाए गए, यदि उन पर वाद-विवाद हुआ, या उन्हें सुलझाने की कोशिश की गई, तो घरेलू झगड़ा शुरू हो जाएगा। फलतः आजादी की लड़ाई ही खटाई में पड़ जाएगी। इसलिए ऐसी बातें तब तक हरगिज न छेड़ी जाएँ जब तक दोनों ही दल एक साथ मिलके, शोषक एवं शोषित कन्धे से कन्धा मिला के विदेशी शासकों को अपने मुल्क से हमारे देश से विदा नहीं कर डालते? तब तक तो जैसे-तैसे समझा-बुझा के ही काम निकालना होगा! मजबूरी जो ठहरी! इन झमेलों के छेड़ने से तो अब तक के सारे किए कराए पर पानी ही जो फिर जाएगा। क्या खूब, समझाने बुझाने से बाघ बकरी को खाना बन्द कर देगा! तब वह जिन्दा रहेगा कैसे? वह मरना तो चाहता नहीं और यह उसकी भी मजबूरी ही तो है? फिर उसे खाए न तो आखिर करे क्या? माला जपे? दूध घी खाए?

यह घरेलू झगड़े की बात भी कैसी निराली है? जब यह उम्मीद की जाती है कि आजादी न मिलने तक किसान जमींदारों के विरुद्ध कोई शिकायत न लाए,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तो उसी के साथ यह भी क्यों नहीं सोचा जाता कि जमींदार भी किसानों को सताना कम से कम तब तक तो बन्द कर दें? आखिर आप जब हमें पीटिएगा तो क्या हम रोएँ-चिल्लाएँगे भी नहीं? उचित तो यही है कि हम भी जबाव में आपको ठोंक दें, हम भी आपको ऐसा दुरुस्त कर दें कि आपकी आदत ही छूट जाए। मगर यदि किसी कारणवश हम यह नहीं करते, नहीं कर पाते, नहीं कर सकते, तो रोना-चिल्लाना भी बन्द? चीख-पुकार भी बन्द? यह तो अच्छी अन्धेरपुर नगरी की बात हुई! यह तो आजादी की लड़ाई क्या हुई, गरीबों एवं शोषितों के लिए आफत आ गई! क्योंकि यदि यह न होती तो आप भी तो यह कहने का साहस नहीं करते कि उनके अत्याचारों के खिलाफ फरियाद भी मत करो। तब तो कम से कम फरियाद तो उचित मानी जाती! फलतः बदनामी के डर से जालिम लोग कुछ तो हिचकते, कुछ तो आगा-पीछा करते। मगर आज तो उनका एकच्छत्र राज्य जैसा हो गया है। वे खुले साँड़ की तरह विचरते और जिसी का खेत चाहा चरते फिरते हैं। तुर्रा यह कि यदि खेतवाला उन्हें हाँकने जाए तो उलटे पेट में सींग घुसेड़ते हैं! धर्म के नाम पर वह भाला-बर्छी से उनका सत्कार भी नहीं कर पाता, और जले पर नमक डालने के लिए कोई उसकी आह भी सुनने को रवादार नहीं। यहाँ तक कि गरीबों को ही आजादी दिलाने के लिए जो बेहाल मालूम पड़ते हैं, उन लोगों के कान भी इन आहों से फटे जाते हैं! किसान तो आजादी के नाम पर सारा त्याग, सारी तपस्या करके भी बुरी बला में आ फँसा।

कहते हैं कि एक ऋषि महाराज तप, जप, पूजापाठ से जीवन व्यतीत कर रहे थे। एकान्त जंगल में उनका स्थान था। उनकी तपश्चर्या से देवता तथा मनुष्य सभी प्रभावित थे? उनके जप-तप के फलस्वरूप सभी लोग हर प्रकार से सुखी सम्पन्न थे। इतने में ही देवताओं एवं असुरों ने मिलकर समुद्र का मन्थन किया, ताकि उससे अमृत निकले और सभी के सभी उसे पी के अमर हो जाएँ। मगर अमृत निकलने से पहले बहुत सी चीजें निकलीं। उनका बँटवारा भी अपनी-अपनी रुचि के अनुसार हो गया। इसी सिलसिले में लक्ष्मी जी के निकलने के पूर्व उनकी बड़ी बहन (ज्येष्ठा) दरिद्रा भी निकलीं। अब एकाएक विषम समस्या सामने आ खड़ी हुई कि इन्हें कौन ले? इन्हें कहाँ रखा जाए? इन्हें अपनाने को तो कोई रवादार न था! भला यह अनन्त बलाओं की बला कौन लेता? कोई रास्ता सूझता न था। सभी हैरान थे, क्या करें, क्या न करें? आखिर दरिद्रा को किसी के माथे तो मढ़ना ही होगा। मगर किसके माथे, यही सवाल था।

अन्त में एक उपाय सूझा। लोगों ने बहुत सोच-समझ के तय किया कि उन्हीं धर्मपरायण, परोपकारी, परम तपस्वी ऋषिजी के माथे मढ़ी जाएँ यह श्रीमती! आखिर समस्या हल हुई। सभी का सर हलका हुआ। ऋषि महाराज की तपस्या उनके व्यापक उपकार का ऋण भी चुकता हो जाए और बला भी टले यह तो बहुत ही अच्छा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

'एक पन्थ दो काज' हुआ। फिर ऋषिजी ढूँढ़-ढाँढ़ के बुलाए गए और उनसे कहा गया कि आप वृद्ध ठहरे, आपके आश्रम में झाड़-बुहारू देने एवं अन्य प्रकार की सेवा-शुश्रूषा के लिए हम लोगों ने एक दासी तजबीज की है। आप उसे ले जाइए। इसके बाद श्रीमती दरिद्रा देवी उनके पल्ले लगाई गईं! ऋषि जी तो कोरे ऋषि थे। उन्हें भीतरी रहस्य क्या मालूम? फलतः उनने स्वीकार कर लिया और श्रीमती जी के साथ वे आश्रम वापस गए।

इधर यारों की बला तो टली। मगर अब ऋषि जी के सिर पर आफत आई! पहुँचते ही न देर लगी कि दरिद्रा जी का काँय-काँय शुरू हुआ। बात यह हुई कि आश्रम में त्रिकाल हवन, वेदपाठ आदि होते थे। यही तो वहाँ का धर्म था। यही वहाँ की असल चीज थी। मगर दरिद्रा जी को यही काबिले बर्दाश्त नहीं। ज्यों ही वेदोच्चारण की भनक उनके कान में पड़ी कि 'बाप रे बाप, कान फटा, कान फटा,' कहके चिल्ला उठती थीं। हवन का धुआँ उनके आँख में गया भी नहीं कि वही 'आँख फूटी, आँख फूटी' की चिल्लाहट मचाती थीं। हवन में जलनेवाले सुगन्धित पदार्थों की गन्ध नासिका में पहुँचते ही 'नाक फटी, नाक फटी' का कोलाहल मच जाता था। अजीब हालत थी! दिन-रात यही रोना-पीटना यही हाय-तौबा! वह भी बुरी तरह परेशान और ऋषि भी बेहद दिक! किया क्या जाए? कोई चारा न था। कोई रास्ता सूझता न था। दो परस्पर विरोधी स्वभावों का, विचारों का, धाराओं का सम्मिलन होने का नतीजा और हो भी क्या सकता था? लाचार होके ऋषिजी को अन्त में श्रीमती जी को आश्रम से सदा के लिए विदाई देनी पड़ी। तब कहीं जाके चैन मिला। तब उन्हें शान्ति मिली।

ठीक यही हालत आज की राष्ट्रीय संस्थाओं में होती है। उनमें बुलाए जाते तो हैं किसान और मजदूर आदि पीड़ित लोग बड़े ही चाव से। जैसे देवताओं और असुरों ने बड़े ही आदर तथा चाव से ऋषिजी को आमंत्रित करके उनके सुपुर्द दरिद्रा महारानी को किया। यदि वहाँ उन्हें गर्ज थी तो यहाँ इन्हें भी कम गर्ज नहीं रहती है। मगर जब गरीब लोग अपने दुखड़े यहाँ सुनाने लगते हैं तो बाप रे बाप, कान फटा, नाक फटी, आँखें फूटी वाली हालत हो जाती है। उनके दुखड़ों की बातें सुनते ही ये लोग दरिद्रा की तरह चीख-पुकार करने लगते हैं। तोबा तिल्ला मचाते हैं। चाहते हैं कि ये बातें उठें ही न। मगर ऋषि की ही तरह किसानों और मजदूरों के तो यही सनातन धर्म हैं, वे तो यही बातें सुनाने के लिए आते ही हैं। उन्हें क्या पता कि ठेठ दरिद्रा से ही पाला पड़ा है जो ये बातें सुन भी नहीं सकती हैं, बर्दाश्त भी नहीं कर सकती हैं। वे घबराते हैं, आश्चर्य में आते हैं। वे यह दशा समझी नहीं सकते ठीक ऋषि जी की ही तरह। मगर जैसे हारकर आखिर ऋषि जी ने दरिद्रा जी से अपना पिंड छुड़ाया। तब कहीं जाकर उन्हें चैन मिला।

ठीक यही बात किसानों और मजदूरों को भी करनी होगी। उन्हें भी इन दरिद्राओं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

से अपना पिंड छुड़ाना ही पड़ेगा। और यह काम जितना जल्द हो जाए उतना ही अच्छा। अब तक तो यह नहीं ही हो सका है। हो सकेगा भी नहीं जब तक किसान सभा को किसान न अपनाएँ, जब तक जबर्दस्त किसान सभा बनाके उसमें ही अपने दुखड़े वे पेश न करें, जब तक वे अपने कष्टों को हटाने के लिए किसान सभा के द्वारा ही सीधी लड़ाई न लड़ें। यह काम किसान सभा ही कर सकती है। यह उसी से हो सकता है। वहाँ खिचड़फरोशी है जो नहीं। वहाँ तो एक ही काम है और वह है किसानों के कष्टों को सदा के लिए दूर करना। फिर चाहे जिस प्रकार यह बात हो सके। जहाँ लीपापोती न हो, जहाँ किसानों की ही सेवा का एकमात्र व्रत हो वहीं यह काम हो सकता है। ऐसी चीज, ऐसी संस्था तो किसान सभा ही है।

19.1.41। यही नहीं कि किसानों की फरियाद सुनने को राष्ट्रीय संस्थाएँ रवादार नहीं। बात तो यहाँ तक होती है कि यदि किसान या किसान सभा दूसरा उपाय न देख खुद कोई प्रतिकार करना चाहे, प्रतिकारों की शरण लें तो आजादी की लड़ाई के शत्रु की पदवी उन्हें दी जाती है। वे और तरह का प्रतिकार कर ही क्या सकते हैं, सिवाय उसके कि 'मरता क्या न करता' के अनुसार जान पर खेल के आमने सामने जालिमों का मुकाबला खूब डट के करें—सीधी लड़ाई लड़ें। कचहरियों और न्यायालय कही जाने वाली संस्थाएँ तो उन्हें और भी पामाल करती हैं। वहाँ तो घर का आटा ही गीला करना पड़ता है। कोई सुनवाई शायद ही होती हो। इसीलिए जालिमों के सामने झुकने से साफ इनकार करने के सिवाय कोई रास्ता उनके लिए रही नहीं जाता। खम ठोंक के भिड़ने पर अत्याचारियों की नाड़ी भी फौरन ही ढीली हो जाती है और सदा के लिए वे अपनी शैतानियत बन्द ही करने को मजबूर होते हैं। अब तक तो उनका काम केवल झूठे रोबदाब, झूठी बन्दरघुड़की से ही चलता था। फलतः किसानों के ललकारते ही वे सटक जाते हैं।

फिर तो वे राष्ट्रीय संस्थाओं में बैठे हुए अपने दलालों की ही शरण लेते हैं। उनकी तो वह दूकान ही केवल ऐसे ही मौकों के लिए है। फलतः वे दलाल किसनों और किसान सभाओं को भरपेट कोसते हैं। राँड की तरह गिन-गिन के गालियाँ देते हैं। ये लोग देश के शत्रु हैं। विदेशियों के दलाल हैं। आजादी के विरोधी हैं, घरेलू झगड़े छेड़ के उस लड़ाई को कमजोर करना चाहते हैं आदि-आदि तानें तिश्ने और गालियों की भरमार होती है। इतना ही नहीं। किसानों को ठेठ स्वराज्य दिलाने की दम भरनेवाले ये पिट्ठू पापी जमींदारों के पिट्ठू सरकारी अफसरों तक से मिल के चाहे जैसे हो किसानों की इन सीधी लड़ाइयों को मिट्टी में मिलाने पर तुल जाते हैं। ऐसे सैकड़ों दृष्टान्त मेरी आँखों के सामने मौजूद हैं। किसानों को इस प्रकार पस्त करने में कौन-कौन से कुकर्म और जालफरेब इन लोगों ने नहीं किए हैं? फिर भी बेशर्मी से चिल्लाए चले जाते हैं कि ये लोग किसानों के सभी कष्टों को दूर करेंगे, उन्हें स्वराज्य दिलाएँगे। कसाई के हाथों फँसी गाय की ही तरह इन जल्लाद जमींदारों,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

साहूकारों एवं पूँजीपतियों के हाथ में फँसे इन किसानों को उनसे तो रिहाई दिलाने के विरोधी हैं। फिर भी ठेठ स्वराज्य तक किसानों को पहुँचा देने का दावा है। बेहयाई की हद हो गई।

इन भले मानसों से कोई पूछता भी क्यों नहीं कि आखिर वह स्वराज्य सिर्फ किसानों और शोषितों के ही लिए होगा, याकि इन मालदारों तथा शोषकों का भी उसमें हिस्सा होगा? वे आखिर इतना तो मानते ही हैं कि जो स्वराज्य सभी के लिए है उसी के लिए यह लड़ाई है, हालाँकि वह स्वराज्य दरअसल मालदारों का ही है। पहले तो उन्हें ही स्वराज्य मिलता है। लेकिन हर हालत में जब स्वराज्य प्राप्त करने की जिम्मेदारी उन पर भी है, तो उन्हें भी क्यों नहीं रोका जाता, समझाया जाता कि किसानों पर अत्याचार करना कम से कम स्वराज्य मिलने तक तो बन्द रखें—स्थगित रखें? फिर भी यदि न मानें, तो घरेलू लड़ाई छेड़ने वाले आजादी के शत्रु वह क्यों नहीं घोषित किए जाते? सिर्फ खद्दर पहन लेने, गाँधी टोपी लगा लेने या कांग्रेस को रुपए-पैसे दे देने से वे लोग बेरोक-टोक क्यों चरते-फिरते हैं? कांग्रेसी जमींदारों के जुल्म तो गैरकांग्रेसियों के सामने बाजी मार ले जाते हैं।

आखिर ताली दोनों हाथों से बजती है। यदि ये हजरत जुल्म ही बन्द कर दें, तो फिर किसान या किसान-सभा उनसे भिड़ने जाए ही क्यों? इसकी जरूरत ही कहाँ रह जाए? और अगर वे लोग ऐसा नहीं करते तो अकेले किसानों पर ही इतना कड़ा बन्धन क्यों? उनने ही कांग्रेस का या नेताओं का क्या बिगाड़ा है? उचित तो यह था कि यदि जमींदार नहीं मानते तो कांग्रेसी नेता लोग उनके विरुद्ध किसानों की लड़ाई में सहायता करते। न्याय और ईमानदारी का तकाजा तो यही है। लेकिन खैर, चुप भी रह जाते और किसानों को कोसते नहीं, तो भी एक बात थी। यदि सरकारी अफसरों से मिलके किसानों को परेशान करना नहीं चाहते तो भी गनीमत थी। मगर यहाँ तो उलटी ही नदिया बहती है।

क्या यह विश्वास किया जा सकता है कि जो कांग्रेस ब्रिटिश साम्राज्यवाद से लोहा लेने को प्रस्तुत है जिसने साम्राज्यशाही को कई जबर्दस्त धक्के दे देके उसकी जड़ हिला दी है, उसके मना करने पर भी जमींदारों की हिम्मत हो सकती है कि किसानों पर अत्याचार करें? जिसकी डपट से बाघ थर्राए क्या उसकी ही डाँट से बकरी की हिम्मत नहीं पस्त हो जाएगी? तो क्या जमींदार, उनके सहायक, उनके अमले दूसरी दुनिया के लोग हैं? क्या उनके दिमाग ही फिर गए हैं? यदि यह बात हो तब तो उनके लिए स्वराज्य का कोई सवाल ही नहीं। तब तो और भी डट के उनके विरुद्ध कार्यवाही की जानी चाहिए। और इस प्रकार यदि राष्ट्रीय संस्था अपनी पूरी ताकत इन मनचले जमींदारों के खिलाफ लगाए तो क्या वे पार पा सकेंगे? क्या तब वे तकुवे की तरह सदा के लिए सीधे न हो जाएँगे? और अगर कांग्रेसी नेता ऐसा नहीं करते तो क्या इससे यह नतीजा नहीं निकलता कि वे लोग या तो खुद

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जमींदार, मालदार और शोषक हैं, या उनके सगे-सम्बन्धी, सहायक और दलाल?

और जमींदार, उनके साथी या पिट्ठू आज किसानों के उत्पीड़न की जरा भी परवाह नहीं करते, जब कि उनसे काम लेना है, जब उन्हें आजादी की लड़ाई में भिड़ा के स्वराज्य लेना है, वही लोग स्वराज्य मिलने पर कैसे परवाह करेंगे? आज तो किसानों और गरीबों की पीठ ठोंक के स्वातन्त्र्य संग्राम को उन्हीं के द्वारा जीतना है। आज तो मालदारों को किसानों की सहायता की निहायत ही जरूरत है। मगर जब गज बावला होने पर भी ये अपनी पुरानी जालिमाना हरकतें बन्द नहीं करते, किन्तु बराबर ही जुल्म की चक्की में किसानों को पीसते ही जाते हैं, तब तो आसानी से यह हिसाब लगाया जा सकता है कि आजादी मिल जाने के बाद किसानों की मदद की जरा भी गर्ज न रहने पर उन्हें हजार गुना बेमुरव्वती से, लाख गुना बेदर्दी से इन्हें पीस डालेंगे। तब तो इन्हें पूरी छूट होगी! तब तो ये खुल के होली खेलेंगे।

जर्मनी के हिटलर के बारे में सभी जानते हैं कि वह अपने को पहले समाजवादी और गरीबों का सेवक कहता था। उसने तो किसानों तथा मजदूरों से—कमाने वाली जनता से—बार-बार प्रतिज्ञाएँ की थीं कि उसके हाथ में शासन सूत्र आते ही वह उत्पीड़न एवं शोषण का सदा के लिए जर्मनी से अन्त करेगा। वह एक भी किसान या मजदूर को—कमाने वाले को—किसी भी प्रकार दुःखी रहने न देगा। वह कमानेवालों के द्वार घी, दूध की नदियाँ बहा देगा। इसी विश्वास से किसानों और मजदूरों ने उसकी पूरी मदद की। वे उसके लिए लड़े और अन्त में उसके हाथों में शासन सूत्र दिला के ही दम ली।

मगर उसके बाद भी जब उनने देखा कि वही पुरानी दुनिया है, वही पुराना उत्पीड़न और शोषण जारी है, कुछ भी परिवर्तन नहीं, प्रत्युत रंग बदरंग है, बल्कि तकलीफें और बढ़ रही हैं, तो उनने मिल के माँग पेश की कि ये बातें अब वादे के अनुसार बन्द हो जाएँ, बन्द कर दी जाएँ। उनने यह भी कहा कि हमारे आराम का सामान मुहय्या किया जाए। इस पर हिटलर का वज्र की तरह जवाब मिला कि चुप्प! यदि जबान खोली तो निकाल ली जाएगी! यदि कुछ भी तूफान किया तो फाँसी की रस्सी में सीधे लटका दिए जाओगे। यदि काँय-काँय की तो जेल की हवा खानी होगी, जायदाद जो बची-खुची है वह भी जब्त कर ली जाएगी। चुपचाप बैठे रहो। सभा-सोसाइटी मत करो। आन्दोलन मत करो। नहीं तो लेने के देने पड़ेंगे।

अब यदि किसानों और मजदूरों को चीरो तो खून नहीं। उन्हें अब पता चला कि कहाँ आ फँसे? किस धोखे में पड़ गए! उनने साफ-साफ देखा कि यह तो विचित्र ही स्वराज्य मिला। उनने कहा कि हम तो इससे कहीं अच्छे पहले ही थे। कम से कम आन्दोलन तो कर सकते थे, फरियाद तो कर सकते थे, चीख-पुकार तो कर सकते थे। मगर अब तो 'न तड़पने की इजाजत है न फरियाद की है। घुट के मर जाएँ, मर्जी यही सैयाद की है।' अब तो हिटलर कहता है कि पहले तो जेल, पुलिस,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

फौज, फाँसी आदियों पर दूसरों का अधिकार था, उसका नहीं। पहले जेल भेज सकते थे, या फाँसी दे सकते थे दूसरे ही लोग। मगर अब तो वह सभी अधिकार मेरे ही (हिटलर के ही) हाथ में हैं। इसलिए अब तो जेल, फाँसी आदि की सजा किसी को भी देने में उसे जरा भी अड़चन नहीं! तो क्या यही स्वराज्य है? यही आजादी है? क्या इसीलिए हिटलर की बात मानके हम लोग लड़े थे? क्या उसे इसी बात की आजादी दिलाने के ही लिए हममें हजारों मरे-कटे और बरबाद हुए? यह तो गजब है! यह तो गजब हो गया? मगर अब आखिर वे लोग करते ही क्या? अब तो बेबस थे! रोते थे, चिल्लाते थे, हाय-हाय करते थे! सो भी धीरे से। नहीं तो फाँसी ही लटका दिए जाएँ।

तो क्या ठीक यही बात हमारे देश के जमींदार, मालदार और धनी मानी लोग भी स्वराज्य मिलने पर नहीं करेंगे? इसमें गारण्टी क्या है कि न करेंगे। झूठे वादे, झूठी प्रतिज्ञाओं की गिनती ही क्या? हिटलर भी तो पहले ऐसे ही वादे करता था। बल्कि यहाँ तो जमींदार और पूँजीपतियों का जुल्म अभी भी जारी ही है। उनका अपना रवैया तो बदला है नहीं। वह तो जारी ही है। फिर स्वराज्य मिलने पर क्यों रुकेगा? अभी तो माथे पर एक-दूसरी सरकार—विदेशी सरकार—बैठी है, जो चाहे तो इन पर लगाम लगा सकती है। कभी-कभी लगाती भी है। अभी तो दमन का सारा सामान उसी के हाथों में है। मगर स्वराज्य मिलने पर तो वह सरकार रहेगी नहीं। तब तो दमन का सारा सामान, सारा अधिकार हिटलर की ही तरह इन्हीं धनी-मानियों के हाथ में ही आ जाएगा। फिर तो करैला नीम पर ही चढ़ जाएगा। फिर तो दमन और अत्याचार की तलवार लाख गुना तेज चलेगी। फिर तो यहाँ भी किसानों की वही हालत होगी जो जर्मनी में हो रही है।

हाँ, यदि ये धनी-मानी जुल्मों को कतई बन्द कर देते तो कम से कम इन्हें यह दलील करने का मौका तो मिलता कि देखिए, हमने तो बहुत दिन से चले आने वाले अत्याचार एकाएक बन्द कर दिए हैं, इसलिए विश्वास कीजिए, स्वराज्य मिलने पर भी हम यह बात होने न देंगे। हालाँकि हिटलर तो पहले कुछ भी अत्याचार नहीं करता था। वह तो स्वराज्य मिलने पर ही करने लगा है। असल में तो स्वराज्य के पहले भी और स्वराज्य मिलने पर भी ये अत्याचार होने न पाएँ इसका तो एक ही उपाय है कि खिचड़फरोशी और लीपापोती की बात छोड़ के किसानों की अपनी सभा खूब जबर्दस्त बनाई जाए। वह उनका अभेद्य गढ़ हो। वह उनके लिए बराबर लड़े, बराबर उनके लिए तैयार रहे। वह उन्हें बराबर ही इस मुठभेड़ की शिक्षा देती रहे और इस प्रकार हरेक किसान को इस भिड़न्त के लिए तैयार करके ही दम ले। वह किसानों के लिए अपना अखाड़ा हो, अपना शिक्षा शिविर (Training Camp) हो। तभी काम चल सकता है। दूसरा उपाय है नहीं। नहीं तो पीछे चलकर तो खामख्वाह धोखा होगा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

20.1.41। इस प्रकार यदि किसान सभा की संरक्षकता तथा उसके नेतृत्व में किसान लोग अपने हकों की सीधी लड़ाई लड़ें और जालिमों को सबक सिखाना शुरू करें तो उनके घर में तो अवश्य ही हड़कम्प मचेगी। उन्हें तो उस दशा में ऐसा नजारा देखने को मिलेगा जिसकी उन्हीं नाममात्र की भी आशा न थी। वे तो समझ बैठे थे कि अपने दुभाषिए दलालों के द्वारा जो अपने खाँटी राष्ट्रवादी होने का दमामा बजाते फिरते हैं, वे सीधे-सादे किसानों को अन्त तक जाल फरेब में फाँस के काम निकाल लेंगे। फलतः हो-हल्ला मचाना शुरू होगा कि आजादी न मिलने के दोषी किसान सभा वाले ही हैं। वही तो मिलकर स्वतन्त्रता की लड़ाई चलाने का रास्ता ही बन्द कर रहे हैं। गोया इस दम्भपूर्ण संयुक्त मोर्चे या मिली लड़ाई की सारी जवाबदेही किसानों एवं किसान सभा पर ही है। ये लोग ऐसा माने बैठे हैं कि यदि किसान सभा वाले चाहें तो यह मोर्चा रह सकता है। केवल उन्हीं का यह फर्ज है? यदि जमींदार इसमें किसी भी प्रकार शामिल होते हैं या थोड़ा बहुत भी साथ जैसे-तैसे ही देते हैं तो उनकी बड़ी दया है! उन्हें तो उसकी जरूरत जरा भी नहीं। सबकुछ जरूरत तो किसानों तथा किसान सभा को ही है।

ठीक ही है, जमींदारों की असली जरूरत तो यह है कि उनकी जमींदारी का अन्धेरखाता चलता रहे। यदि इस जागृति के युग में वे जग के इसे मिटाने की कोशिश करें तो राष्ट्रीयता, संयुक्त मोर्चा और घरेलू लड़ाई से बचने आदि का नुस्खा दिखा कर, या यों कहिए कि इस तरह की मार्फिया खिलाकर उन्हें फिर सुला दिया जाए, दूसरे ढंग से यह काम आज हो भी नहीं सकता है। यही है जमींदारों एवं मालदारों की पहली जरूरत।

उनकी दूसरी जरूरत है आजादी के लिए लड़ने के बजाए स्वराज्य मिलने पर उसे हथिया लेने की। लड़ाई भाड़ में जाए। संयुक्त मोर्चा मिट्टी में मिले। वे तो किसानों के खिलाफ अपनी लड़ाई चलाई रहे हैं। उसी काम में सभी शोषकों का बढ़िया संयुक्त मोर्चा भी है। जिसमें राष्ट्रवादी नामधारी उनके दलाल भी शामिल होई जाते हैं। अतः आजादी की लड़ाई की फिक्र और उस संयुक्त मोर्चे की परवाह किसान करें। आखिर मालदार ही सबकी परवाह कहाँ तक करेंगे? मगर स्वराज्य मिलने पर तो उन्हें हाथ बँटाना ही होगा। शोषित एवं पीड़ित लोग उसका प्रबन्ध कर जो नहीं सकते! इसकी योग्यता जो उनमें नहीं है! सारांश, हर हालत में कमाना किसानों का काम है और भोगना मालदारों का।

लेकिन इसका जवाब तो किसानों को बेमुरव्वती से देना होगा। हम धनियों की यह दया नहीं चाहते! हमें उनका यह भयंकर उपकार नहीं चाहिए। हम पर कृपा करें। यही उत्तर उन्हें देना होगा। कहना होगा कि खून लगा के शहीद होने की जरूरत नहीं। आप लोग अपनी जमींदारियाँ, अपनी मिलें, अपने कारखाने चलाने की ही फिक्र करें। स्वराज्य की प्राप्ति और उसका प्रबन्ध भी हमीं कर लेंगे। और अगर आपको

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भी इसमें शामिल होना है तो सीधे रास्ते से ठीक-ठीक आइए और अपना हिस्सा पूरा कीजिए। यह धोखेबाजी अच्छी नहीं। नहीं तो फिर हमारी किसान सभा ही पर्याप्त है। हम उसी के द्वारा आप लोगों से भी निपट लेंगे और विदेशियों से भी।

पर, इतने पर भी, कुछ आँख के अन्धे एवं अक्ल के दुश्मन मिली जाते हैं। वे लोग बेहयाई से कह बैठते हैं कि किसान सभा तो असमय की शहनाई है। यह तो बेमौसम की वर्षा है। इसे तो कुछ लोगों ने अपनी लीडरी बरकरार रखने, अपना नेतृत्व जमाने ही के लिए चलाया है। 'मुर्दा दोजख में जाए या बहिश्त में, मुझे तो पैसे से काम है,' के अनुसार वे लोग तो मुल्क को गुलाम रख के भी अपने को पुजवाना चाहते हैं। उन्हें आजादी से क्या काम! वे 'घर फूटे, गँवार लूटे' को भूल ही गए हैं। वे तो अपने नीच स्वार्थ के लिए मुल्क के साथ द्रोह करते हैं। गद्दारी करते हैं। मातृभूमि की तकलीफों की परवाह उन्हें जरा भी नहीं।

ऐसे बेशर्म लोगों को मनाना आसान नहीं है। वे समझ के भी समझना चाहते नहीं। वे तो जग के सोना चाहते हैं। तब उन्हें जगाया कैसे जाए? इसका उपाय भी क्या हो सकता है? आखिर सोए को ही जगाया जा सकता है। जगे को भला कौन जगा सकता है? समझाने वाले भी थक जाएँगे। वे भी समझाते-समझाते बेहया हो जाएँगे। फिर भी ये बेशर्म समझनेवाले नहीं।

लेकिन उनके सिवाय ऐसे भी हो सकते हैं नासमझी से ही ऐसा खयाल हो सकता है। ऐसों को तो समझाना ही होगा। कारण, वे तो ईमानदारी से ऐसा मानते हैं कि किसान सभा का समय अभी नहीं है। वह तो आजादी के बाद ही आ सकता है। मगर वे लोग इस सम्बन्ध में सोचेने के समय एक बहुत ही जरूरी बात भूल जाते हैं। वे किसान सभा के इतिहास को या तो जानते ही नहीं, वे उसके विकास को या तो जान ही न सके हैं, या जानकर भी उस पर उनने पूरा-पूरा गौर नहीं किया है, उसका अच्छी तरह से विश्लेषण करके परिणाम नहीं निकाला है। नहीं तो ऐसी बातें बोलते ही न। यदि विचारें तो उन्हें पता लगेगा कि सभा का विकास बिलकुल ही स्वाभाविक ढंग से हुआ है। यह तो कार्य कारणवश अनिवार्य रूप से प्रकट हुई है। सो भी ऐन मौके पर। इसे कोई भी ताकत रोक नहीं सकती। इतना ही नहीं। इसकी उत्पत्ति उसके विकास के लिए यदि उत्तरदायी है, तो केवल वही लोग जो आज इसके सबसे बड़े शत्रु हैं, जो इसे आज फूटी आँखों भी देखना नहीं चाहते, जिन्हें इसका आधार हिंसा मालूम पड़ती है; जो इसके वर्ग संघर्ष वाले पहलू से बहुत ही घबराते हैं।

ऐसा कहने में मेरा यह मतलब हर्गिज नहीं है कि सबसे पहले सन् 1929 ई. में बिहार के गाँधीवादी नेताओं ने ही एक स्वर से इस सभा की जरूरत कबूल की और उनने ही इसे जन्म दिया। यह भी एक बात है और काम की बात है। उनने न सिर्फ किसान सभा की उस समय जरूरत समझी और उसे बनाया, बल्कि उसके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बाद भी छह-सात वर्षों तक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इसका समर्थन करते रहे। यह एक ऐतिहासिक सत्य है। इसे तो उन्हें भी मानना ही पड़ेगा। इसे हजार कोशिश करके भी वे छिपा नहीं सकते।

यह भी ठीक है कि जब एक बार उनने इसे अपनाया और बढ़ाया, जब इसे पुष्ट किया तो आज उनके हजार न चाहने पर भी यह मिट नहीं सकती। तब उन्हें इसकी गर्ज थी, इसकी जरूरत मालूम हुई और आज नहीं है, इससे क्या? चीजें किसी की जरूरत देख के ही बनती-बिगड़ती हैं नहीं। उन्हें तो अपनी खास उपयोगिता पूर्ण करनी होती है। खासकर संस्थाएँ तो अपना विशेष लक्ष्य पूरा करने के बाद ही मिटती हैं, न कि पहले ही। इसीलिए चाहे आज वे लोग किसान सभा को भले ही न चाहें, भले ही इसकी जरूरत महसूस न करें। यहाँ तक कि अपने मार्ग में इसे भारी रोड़ा समझें। मगर इससे क्या? किसान सभा को तो अपना लक्ष्य (Mission) पूरा करना है, इसे तो किसानों का उद्धार करना है, और जब तक यह बात हो नहीं लेती, यह रहेगी और रहेगी। यह फूलेगी, फलेगी और विकसित होगी। कोई ताकत रोक नहीं सकती।

फिर भी तो मैं मानता हूँ कि यदि उनने इसे पैदा किया तो विवश होके। वे भी कार्य-कारण वश मजबूर थे। यदि वे न भी करते तो कोई और ही करता। आखिर दूसरे प्रान्तों में भी आगे-पीछे औरों ने ही किया जो गांधीवादी न थे और न हैं। बिहार में भी सन् 1927 ई. के बीतते न बीतते मैंने ही पटने में इसका सूत्रपात किया। इससे पूर्व तो भारत में कहीं भी संगठित किसान सभा थी ही नहीं। यह ठीक है कि मैं भी उस समय घोर गांधीवादी था। इसलिए उसी सिद्धान्त के अनुसार ही इसे मैंने शुरू किया। मगर यही तो समय एवं घटनाचक्र की खूबी है कि गांधीवाद ने भी इसके उपयोगिता महसूस की। यही तो प्राकृतिक कारणों की विशेषता है कि उनने गांधीवाद को भी इसके लिए विवश कर दिया। और आज मैं गांधीवाद से लाख कोस दूर हो गया हूँ या यों कहिए कि उसे देख भी नहीं सकता, तो इसका कारण भी यही सभा है। इसी सभा ने मजबूरन मुझे ऐसा बनाया है। इससे इस बात पर काफी प्रभाव पड़ जाता है कि सभा आई है प्राकृतिक कारणों के करते ही। अतः इसकी बुनियाद बहुत गहरी है। इसीलिए इसे कोई मिटा नहीं सकता।

अच्छा, तो आइए जरा उन्हीं कारणों का, उसी घटनाचक्र का विचार करें जिनने किसान सभा को जन्म दिया और विकसित किया। इसके लिए हमें आजादी की लड़ाई के आरम्भ में जाना होगा। ठेठ सन् 1921 ई. के पहले पहुँचना होगा। वहीं से अपनी जाँच-पड़ताल, अपना विश्लेषण हम शुरू करेंगे। तभी असलियत का पता चलेगा। तभी मालूम होगा कि इसकी तह में कौन-कौन सी ताकतें काम कर रही हैं और किस तरह काम कर रही हैं।

सन् 1921 ई. के पहले तो संगठित किसान आन्दोलन का पता भी न था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हमारे देश में यों तो छिटपुट भिड़न्त किसानों की सदा से ही होती आई है। मगर वह सफल नहीं हो सकी। क्योंकि उसे संगठित रूप दिया जा सका। दक्षिण में जो दंगे बहुत पहले हुए, या अवध में भी, वह किसानों के ही क्रोध का परिणाम था। संथालों या छोटा नागपुर के अधिवासियों ने जो कभी-कभी तूफान मचाए वह भी ऐसा ही था। असल में साहूकारों तथा जमींदारों का शोषण जब बर्दाश्त के बाहर हो जाता था तभी ये लोग ऐसा करते थे। जब सरकार ने उनकी आजादी पर भयंकर प्रतिबन्ध लगाए। तब भी ये लोग उबल पड़े। मगर कुछी समय के बाद दबा दिए गए। फिर उसी पुरानी निद्रा की गोद में जा पड़े। यही बात बराबर होती रही है।

मगर संगठित रूप से किसानों का आन्दोलन जरा-मरा सन् 1927-28 से शुरू होके सन् 1929-30 में पहुँचा और धीरे-धीरे आगे बढ़के 1933 से इसने जबर्दस्त सूरत हासिल की। आज जो रूप भारत के हर प्रान्तों में इसका देखा जा रहा है वह इसी प्रकार पैदा हुआ है। इसकी बाढ़ का यही रास्ता है।

अब देखना यह है कि इसके कारण क्या हैं? असल में सन् 1919 ई. के पहले तो हमारे मुल्क की जनता, जिनमें तीन-चौथाई से ज्यादा किसान ही है, बहुत ही पस्त थी, बेहद नीचे गिरी थी। मुल्क ने गुलामी के खिलाफ आखिरी जोर सन् 1857 ई. में मारा था। मगर हारने के बाद जो भयंकर दमन एवं आतंक राज्य यहाँ की जनता में फैलाया गया उसके करते बहुत दिनों के लिए जनसाधारण उठने में, सिर उठाने में असमर्थ हो गए। इतने भयभीत हो गए कि 'न भूतो न भविष्यति'। उनकी त्रस्तता भयंकर थी। उनकी यह असहाय अवस्था किसी को भी सताने वाली थी। वे जरा सा भी सर उठाने का नाम तक ले न सकते थे। वे सोच भी न सकते थे कि अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध चूँ भी की जा सकती है।

इसी दरम्यान में तो कांग्रेस का जन्म 1885 में हुआ सही। मगर उसे जनता से कोई ताल्लुक न था। वह तो हमारे मुल्क के पूँजीपतियों या यों कहिए कि भावी पूँजीपतियों की ही कोशिश के फलस्वरूप थी। फलतः उसमें वही आते-जाते थे, लेक्चर देते और सुनते थे। कुछ प्रस्ताव भी पास हो जाते थे। ज्यादे से ज्यादा मुट्ठी-भर पढ़े-लिखे लोगों की जमात ही कांग्रेस को कह सकते थे। उसे जनता की किसानों की न तो परवाह थी और न उसका इनसे कोई असली सम्पर्क ही था। इनकी दयनीय दशा तक उसकी पहुँच थी ही नहीं। फिर करती क्या? इसीलिए किसानों को ऊपर उठाने का सवाल ही तब न था।

बेशक सन् 1905 ई. में उसके बाद जो बंगभंग को लेकर धूम मची, तूफान आया और जबर्दस्त आन्दोलन चालू हुआ वह पहले की अपेक्षा, कांग्रेसी हलचल की बनिस्बत कुछ जोरदार था। वह कुछ नीचे भी उतरा। जहाँ पहली हलचल केवल पूरे बाबुओं, पक्के मालदारों एवं उनके हिमायतियों तक ही सीमित थी, तहाँ यह छोटे मोटे बाबुओं, टुटपुँजियों, पढ़े-लिखे लोगों तथा इसी प्रकार के निम्न-मध्यम श्रेणी के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कुछ जवानों में प्रवेश कर गया। इसका प्रभाव देश के प्रायः सभी भागों में गया। कोमाटा-मारू आदि की घटनाएँ भी ऐसी ही थीं। असली जनता तो फिर भी अछूती थी। किसानों तक तो इसकी पहुँच फिर भी नहीं ही हो सकी। यूरोपीय युद्ध तथा तत्सम्बन्धी चहल-पहल ने किसानों एवं पीड़ितों को भी स्पर्श किया और उनने एक नई लहर दुनिया में फैलती हुई देखी। रंगरूटों की भर्ती, लड़ाई के चन्दे आदि की हलचलों के सिवाय विदेशों में गए किसानों के बच्चों ने, फौजी सिपाहियों ने अनेक बातें सीखीं, बहुत अनुभव हासिल किए। उन्हें देहातों में फैलाया भी। फिर भी जनता जैसी की तैसी पड़ी थी। उसकी नींद ये मन्द हवाएँ तोड़ न सकती थीं। गांधीजी ने खेड़ा तथा चम्पारन में किसानों का एक आन्दोलन चलाया सही। मगर वह भी पढ़े-लिखों तक ही सीमित था। किसानों की लड़ाई वकील तथा दूसरे पढ़े-लिखे बाबू लोग ही चलाते रहे। किसानों को खींचा ही न गया।

मगर यूरोपीय समर के बाद खिलाफत की बात को ले के मुस्लिम जनता में भारी कोलाहल मचा। एक बार सारा का सारा मुसलमान समाज नीचे से ऊपर तक हिल गया। हालाँकि धार्मिक होने के कारण वह बात उस जनता के भीतरी तह को सदा के लिए हिला न सकती थी। धर्म की बातें तो पेट भरे लोगों के ही लिए ज्यादा आकर्षक होती हैं। वे उन्हीं को अच्छी तरह खींचती हैं। फिर भी मुस्लिम जनता पर धर्म का जादू अपेक्षाकृत अधिक होने के कारण एक बार तो वह हिली गई। सो भी बुरी तरह। उसमें भीषण क्षोभ पैदा हो गया।

उसके बाद रौलेट एक्ट को लेकर आन्दोलन छिड़ा? यह भी निम्न-मध्यमवर्ग तक ही प्रायः सीमित रहा। जब उसी सिलसिले में पंजाब हत्याकांड हुआ तो बात कुछ बेढब हुई सही, और जनसाधारण में भी कुछ उत्तेजना फैली सही। फिर भी जैसी चाहिए वैसी नहीं। बेशक, खिलाफत और पंजाब हत्याकांड की घटनाओं ने क्षेत्र तैयार कर दिया। इससे जनसाधारण के कान जरूर खड़े हो गए। उन्हें पता लगने लगा कि कुछ होने वाला है, कुछ करना चाहिए, उन्हें भी कुछ करना होगा। मगर क्या करना होगा इसका पता तब तक किसी को भी न था। सब अन्धेरे में थे। केवल कोई अज्ञात शक्ति उन्हें प्रेरित कर रही थी। भीतर ही भीतर कोई झोंका, कोई धक्का उन्हें लग रहा था ताकि उनकी युगान्तर की नींद टूटे।

21.1.41। इतने में असहयोग आन्दोलन का युग आया। एक तो खिलाफत के खतरे का सवाल था जो मुसलमान जनता को उत्तेजित कर रहा था। यों तो यूरोपीय महासंग्राम से पहले भी सन् 1911 से 1913 तक जो बालकन देशों में संघर्ष हुआ था उसमें ही तुर्की को काफी धक्का लगा था और उसके कुछ प्रदेश छिन गए थे। फलतः मुसलमानों में तभी से सरगर्मी थी। मगर महासमर के फलस्वरूप जो तुर्की के सुलतान खलीफा पस्त हुए और उस देश का बँटवारा मित्र राष्ट्रों ने आपस में करके उन्हें एक प्रकार से गुलाम बना दिया उससे भारतीय मुस्लिम संसार में आग-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सी लग गई। उसके बाद रहा-सहा काम पंजाब के हत्याकांड और मार्शल लॉ ने पूरा कर दिया। भारत की बाकी जनता में भी इसके करते भरपूर उत्तेजना आई। बस, गांधीजी ने कांग्रेस की तरफ से इस उत्तेजना का, इस देशव्यापी लहर का ठीक समय पर, ऐन मौके पर इस्तेमाल कर लिया। सन् 1919 और 1920 में वे मुस्लिम नेताओं को साथ ले के भारत के कोने-कोने में इस अग्नि को प्रज्वलित करते रहे। उनके दौरे और प्रचार तथा पंजाब हत्याकांड की जाँच कमेटी की रिपोर्ट ने जलती आग में घी का काम किया।

मगर इतने से ही तो विराटकाय जनसमूह बिगड़ खड़ा हो सकता न था। इतने से ही उसे देर तक क्षोभ में रख सकना सम्भव न था। यदि उससे कुछ ठोस काम लेना था तो उसके मर्म को स्पर्श करनेवाली, उसकी हृदयतन्त्री को झंकारने वाली बात चाहिए। इसीलिए गांधीजी ने असहयोग आन्दोलन के कार्यक्रम में पीड़ित जनता की बातों को काफी स्थान दिया। चरखे और करघे के सिवाय शराब, ताड़ी, गांजा आदि मादक पदार्थों को बन्द करने पर पूरा जोर देने के साथ ही सरकारी कचहरियों के बहिष्कार, पंचायतों की स्थापना आदि बातें किसानों एवं पीड़ितों को सीधे लाभदायक थीं। स्वराज्य की बात यद्यपि गोल थी और जनसमूह उसे ठीक-ठीक हृदयंगम कर सकता न था। तथापि उसका जो मनमोहक रूप खड़ा किया गया और जनता को समझाया गया कि उससे उसके सारे कष्ट भाग जाएँगे और सुख का जीवन कटने लगेगा, इससे सभी पीड़ित जन इस आन्दोलन में खिंच आए। धार्मिकता एवं नैतिकता के पुट के साथ रोटी का प्रश्न इस प्रकार रखा गया कि भोली-भाली किसान जनता खिंचे बिना रह न सकी।

असल में सरकार का जो बेढंगा रवैया था उसके चलते गांधीजी और कांग्रेस नेता लाचार थे। महासमर में विजय मिलने से वह तो मदान्ध थी। इसलिए कुछ भी सुनने को रवादार न थी। सभा, प्रदर्शन, गर्मागर्म भाषण, प्रस्ताव, कागजी धमकियाँ उसे डुला नहीं सकती थीं। जब तक इस चीख-पुकार, इस आहोजारी, इस मुतालबे के पीछे कोई ताकत न हो, कोई बल न हो, कोई Sanction न हो। इसलिए नेताओं के लिए मजबूरी थी कि सरकार को दबाने के लिए, उससे अपनी माँगें मनवाने के लिए पीड़ित जनता को, जिसमें अधिकांश किसान ही हैं, अपने साथ लें। यही कारण था कि उनने शहरों की आस छोड़ के गाँवों की ओर पहले पहल मुँह फेरा। उनने सोचा कि जो लोग सरकार की जड़ हैं, जो उसे सबकुछ देते हैं, उन्हें ही अपने साथ लो और सरकार से विमुख करो, तभी यह मतवाली सरकार सुनेगी। यही है सन् 1921 ई. असहयोग आन्दोलन का रहस्य।

मगर किसान पूर्णरूपेण साथ दें इसके लिए जरूरी था कि उन्हें जगाया जाए, समझाया जाए और उनमें हिम्मत लाई जाए। क्योंकि वे तो बिलकुल ही मुर्दे थे, पस्त थे। इसलिए हजारों-लाखों, पढ़े-लिखे लोग, वकील, बैरिस्टर वगैरह अपना पेशा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कुछ जवानों में प्रवेश कर गया। इसका प्रभाव देश के प्रायः सभी भागों में गया। कोमाटा-मारू आदि की घटनाएँ भी ऐसी ही थीं। असली जनता तो फिर भी अछूती थी। किसानों तक तो इसकी पहुँच फिर भी नहीं ही हो सकी। यूरोपीय युद्ध तथा तत्सम्बन्धी चहल-पहल ने किसानों एवं पीड़ितों को भी स्पर्श किया और उनने एक नई लहर दुनिया में फैलती हुई देखी। रंगरूटों की भर्ती, लड़ाई के चन्दे आदि की हलचलों के सिवाय विदेशों में गए किसानों के बच्चों ने, फौजी सिपाहियों ने अनेक बातें सीखीं, बहुत अनुभव हासिल किए। उन्हें देहातों में फैलाया भी। फिर भी जनता जैसी की तैसी पड़ी थी। उसकी नींद ये मन्द हवाएँ तोड़ न सकती थीं। गांधीजी ने खेड़ा तथा चम्पारन में किसानों का एक आन्दोलन चलाया सही। मगर वह भी पढ़े-लिखों तक ही सीमित था। किसानों की लड़ाई वकील तथा दूसरे पढ़े-लिखे बाबू लोग ही चलाते रहे। किसानों को खींचा ही न गया।

मगर यूरोपीय समर के बाद खिलाफत की बात को ले के मुस्लिम जनता में भारी कोलाहल मचा। एक बार सारा का सारा मुसलमान समाज नीचे से ऊपर तक हिल गया। हालाँकि धार्मिक होने के कारण वह बात उस जनता के भीतरी तह को सदा के लिए हिला न सकती थी। धर्म की बातें तो पेट भरे लोगों के ही लिए ज्यादा आकर्षक होती हैं। वे उन्हीं को अच्छी तरह खींचती हैं। फिर भी मुस्लिम जनता पर धर्म का जादू अपेक्षाकृत अधिक होने के कारण एक बार तो वह हिली गई। सो भी बुरी तरह। उसमें भीषण क्षोभ पैदा हो गया।

उसके बाद रौलेट एक्ट को लेकर आन्दोलन छिड़ा? यह भी निम्न-मध्यमवर्ग तक ही प्रायः सीमित रहा। जब उसी सिलसिले में पंजाब हत्याकांड हुआ तो बात कुछ बेढब हुई सही, और जनसाधारण में भी कुछ उत्तेजना फैली सही। फिर भी जैसी चाहिए वैसी नहीं। बेशक, खिलाफत और पंजाब हत्याकांड की घटनाओं ने क्षेत्र तैयार कर दिया। इससे जनसाधारण के कान जरूर खड़े हो गए। उन्हें पता लगने लगा कि कुछ होने वाला है, कुछ करना चाहिए, उन्हें भी कुछ करना होगा। मगर क्या करना होगा इसका पता तब तक किसी को भी न था। सब अन्धेरे में थे। केवल कोई अज्ञात शक्ति उन्हें प्रेरित कर रही थी। भीतर ही भीतर कोई झोंका, कोई धक्का उन्हें लग रहा था ताकि उनकी युगान्तर की नींद टूटे।

21.1.41। इतने में असहयोग आन्दोलन का युग आया। एक तो खिलाफत के खतरे का सवाल था जो मुसलमान जनता को उत्तेजित कर रहा था। यों तो यूरोपीय महासंग्राम से पहले भी सन् 1911 से 1913 तक जो बालकन देशों में संघर्ष हुआ था उसमें ही तुर्की को काफी धक्का लगा था और उसके कुछ प्रदेश छिन गए थे। फलतः मुसलमानों में तभी से सरगर्मी थी। मगर महासमर के फलस्वरूप जो तुर्की के सुलतान खलीफा पस्त हुए और उस देश का बँटवारा मित्र राष्ट्रों ने आपस में करके उन्हें एक प्रकार से गुलाम बना दिया उससे भारतीय मुस्लिम संसार में आग-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सी लग गई। उसके बाद रहा-सहा काम पंजाब के हत्याकांड और मार्शल लॉ ने पूरा कर दिया। भारत की बाकी जनता में भी इसके करते भरपूर उत्तेजना आई। बस, गांधीजी ने कांग्रेस की तरफ से इस उत्तेजना का, इस देशव्यापी लहर का ठीक समय पर, ऐन मौके पर इस्तेमाल कर लिया। सन् 1919 और 1920 में वे मुस्लिम नेताओं को साथ ले के भारत के कोने-कोने में इस अग्नि को प्रज्वलित करते रहे। उनके दौरे और प्रचार तथा पंजाब हत्याकांड की जाँच कमेटी की रिपोर्ट ने जलती आग में घी का काम किया।

मगर इतने से ही तो विराटकाय जनसमूह बिगड़ खड़ा हो सकता न था। इतने से ही उसे देर तक क्षोभ में रख सकना सम्भव न था। यदि उससे कुछ ठोस काम लेना था तो उसके मर्म को स्पर्श करनेवाली, उसकी हृदयतन्त्री को झंकारने वाली बात चाहिए। इसीलिए गांधीजी ने असहयोग आन्दोलन के कार्यक्रम में पीड़ित जनता की बातों को काफी स्थान दिया। चरखे और करघे के सिवाय शराब, ताड़ी, गांजा आदि मादक पदार्थों को बन्द करने पर पूरा जोर देने के साथ ही सरकारी कचहरियों के बहिष्कार, पंचायतों की स्थापना आदि बातें किसानों एवं पीड़ितों को सीधे लाभदायक थीं। स्वराज्य की बात यद्यपि गोल थी और जनसमूह उसे ठीक-ठीक हृदयंगम कर सकता न था। तथापि उसका जो मनमोहक रूप खड़ा किया गया और जनता को समझाया गया कि उससे उसके सारे कष्ट भाग जाएँगे और सुख का जीवन कटने लगेगा, इससे सभी पीड़ित जन इस आन्दोलन में खिंच आए। धार्मिकता एवं नैतिकता के पुट के साथ रोटी का प्रश्न इस प्रकार रखा गया कि भोली-भाली किसान जनता खिंचे बिना रह न सकी।

असल में सरकार का जो बेढंगा रवैया था उसके चलते गांधीजी और कांग्रेस नेता लाचार थे। महासमर में विजय मिलने से वह तो मदान्ध थी। इसलिए कुछ भी सुनने को रवादार न थी। सभा, प्रदर्शन, गर्मागर्म भाषण, प्रस्ताव, कागजी धमकियाँ उसे डुला नहीं सकती थीं। जब तक इस चीख-पुकार, इस आहोजारी, इस मुतालबे के पीछे कोई ताकत न हो, कोई बल न हो, कोई Sanction न हो। इसलिए नेताओं के लिए मजबूरी थी कि सरकार को दबाने के लिए, उससे अपनी माँगें मनवाने के लिए पीड़ित जनता को, जिसमें अधिकांश किसान ही हैं, अपने साथ लें। यही कारण था कि उनने शहरों की आस छोड़ के गाँवों की ओर पहले पहल मुँह फेरा। उनने सोचा कि जो लोग सरकार की जड़ हैं, जो उसे सबकुछ देते हैं, उन्हें ही अपने साथ लो और सरकार से विमुख करो, तभी यह मतवाली सरकार सुनेगी। यही है सन् 1921 ई. असहयोग आन्दोलन का रहस्य।

मगर किसान पूर्णरूपेण साथ दें इसके लिए जरूरी था कि उन्हें जगाया जाए, समझाया जाए और उनमें हिम्मत लाई जाए। क्योंकि वे तो बिलकुल ही मुर्दे थे, पस्त थे। इसलिए हजारों-लाखों, पढ़े-लिखे लोग, वकील, बैरिस्टर वगैरह अपना पेशा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

छोड़ के इस काम में पिल पड़े। उनने किसानों को, दलितों को बार-बार समझाया कि तुम सरकार को पछाड़ सकते हो, उसे दबा सकते हो और अपना जन्मसिद्ध अधिकार—स्वराज्य—ले सकते हो। एक विचित्र ही दृश्य था। निराली समाँ थी। हजारों-हजार पढ़े-लिखे लोग नंगे पाँव, धोती-कुर्ता पहने देहातों में धूनी रमाते थे, उनकी खाक छानते थे। उनने अपनी और अपने बाल-बच्चों की परवाह तक छोड़ दी थी। जो जेलखाने अब तक यमपुरी से भी भयंकर माने जाते थे उनकी परवाह कतई छोड़ दी थी। खुले आम सरकार को ललकारते तथा उसके कानूनों को पाँवों तले रौंदते थे।

किसानों ने आश्चर्यचकित नेत्रों से यह दृश्य देखा! पहले तो वह समझी न सके कि यह क्या चीज है। जिस सरकार के पास फौजें, पुलिस, जेल, फाँसी, कचहरियाँ हैं, जो सबको नाकों चने चबवाती रही है और अब भी चबवा सकती है, जिसने जर्मनी के अपार बलशाली कैसर को चूर्ण-विचूर्ण कर दिया, उसी के सम्बन्ध में आज यह बातें। क्या सचमुच हम निहत्थे लोग उसे पछाड़ सकेंगे? यह सम्भव है? ऊँ हूँ! मगर फिर सोचा कि आखिर ये बड़े-बड़े दिमागदार और दक्काक लोग पगले भी तो नहीं हो गए हैं! सबके सब ऐसे कैसे हो सकते हैं? ये बड़ी-बड़ी अक्लें रखते हैं। मगर यही तो ऐसा कह रहे हैं कि हम स्वराज्य की स्थापना कर सकते और सरकार को सात समुन्दर पार भेज सकते हैं! हम निहत्थे तथा पंगु लोग ही! देखो न, जेलों का डर ही इनने—इन कुसुम जैसे कोमल बन्धुओं ने—छोड़ दिया है! वे तो जरा भी जेलों की परवाह नहीं करते! और सरकार भी, सचमुच ही, उनका कुछ कर भी नहीं रही है। हालाँकि ये खुले आम उसके विरुद्ध जहर उगलते हैं, आग लगाते हैं, कानून तोड़ते फिरते हैं! हो न हो, कुछ बात है। इसमें कुछ न कुछ हो के ही रहेगा। जो हमारी समझ में यह बात किसी भी तरह नहीं आती। फिर भी चलो इनकी भी बात एक बार मान के देखें तो। आखिर पीर-फकीर गुरु-औलिया की बातें हजार बार मानी हैं। हालाँकि किसी ने भी स्वर्ग नर्क या भगवान को नहीं देखा। फिर इनकी भी—इन दिमागदारों की भी—बातें एक बार मान देखें क्यों नहीं?

नतीजा यह हुआ कि लक्ष-लक्ष किसान कांग्रेस के संघर्ष में कूद पड़े। मुल्क के एक छोर से दूसरे तक तूफान मच गया। चारों ओर आग-सी लग गई। जो लोग लाल पगड़ी देख के थर्र मारते थे उनने खुले आम कहना शुरू किया कि सरकारी नौकरी गुनाह है, पाप है, 'डूब मरना चाहिए पर यह न करना चाहिए' आदि-आदि। 'पुलिस हमारा नौकर है' के नारे चारों ओर गूँजते थे! जो कल तक मालिक के भी मालिक रहे वही आज नौकर बन गए। मालूम होता था, मुल्क में प्रलय का तूफान आया है जो विदेशी शासन को डुबा के ही दम लेगा। ऐसा जोश था, ऐसी उमंग थी, ऐसी लहर थी कि कुछ पूछिए मत! धर्म-मजहब के पुराने झगड़े न जाने कहाँ चले गए। हिन्दू और मुसलमान सगे भाई की तरह मिलने-जुलने और बर्ताव करने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लगे। नतीजा यह हुआ कि सरकार घबरा उठी। यदि दस को जेल में डालती तो हजार तैयार! फिर करती क्या? लाठी, गोली, फाँसी की भी परवाह छूट चुकी थी। हारकर दिसम्बर में कलकत्ते में सरकार के सबसे बड़े प्रतिनिधि वायसराय लार्ड रीडिंग को कहना पड़ा कि यह क्या हो गया? मैं तो हैरान हूँ यह नजारा देख के! मेरी तो अक्ल ही काम नहीं करती—'I am puzzled and perplexed!'

इस प्रकार निहत्थी जनता के पहले ही शान्तिपूर्ण धक्के में सरकार झुकी! उसका मद चूर हुआ। उसका होश कुछ तो ठिकाने आया। फलतः किसानों को विश्वास हो आया। उनने देखा कि नेता लोग ठीक ही कहते थे कि हम निहत्थे लोग ही सरकार को पछाड़ देंगे। अरे, यह तो धोखे की टट्टी ही है। हम इसे बड़ी जबर्दस्त माने बैठे थे। मगर यह तो कुछ भी नहीं है! ऐं, पहले ही धक्के में फक्क! उन्हें यह प्रत्यक्ष भान हुआ, अमली तौर से मालूम हुआ कि हममें बड़ी ताकत है, अपार शक्ति है। हमने तो इस अपार बलशालिनी सरकार को, महामहिम विदेशी शासन को बात की बात में झुका दिया! इस प्रकार भूले शेर को, जो गधे के साथ मारा फिरता था, अपनी ताकत का अनुभव हुआ और उसने समझा कि हम शेर हैं। हम तो हाथी को भी पछाड़ सकते हैं। फिर गधे की क्या बात?

इसके बाद स्वराज्य पार्टी के जमाने में कौंसिलों के चुनावों में भी जनता ने कांग्रेस को जिताया और इस प्रकार अपनी शक्ति का पुनरपि साक्षात्कार किया। सन् 1930 और 1932 की सत्याग्रह वाली लड़ाइयों का तो कहना ही क्या? उनमें तो पीड़ितों और दलितों ने सरकार को पकड़ के अच्छी तरह झकझोर ही दिया, जैसे जबर्दस्त वानर छोटे-मोटे पेड़ को झकझोरता है। 1930 में सरकार साफ ही हारी और भारत के इतिहास में यह पहला ही अवसर था जब गुलाम देश के प्रतिनिधि की हैसियत से गांधीजी ने सम्राट के प्रतिनिधि वायसराय लार्ड इरविन से दिल्ली में बातें कीं! विलायत के सभी दकियानूसी अंग्रेज इससे जलके खाक हो गए! लाठी से बुरी तरह पिटे, अतएव पस्त साँप की तरह वे सभी, जिनमें आज के प्रधानमंत्री मिस्टर चर्चिल प्रमुख हैं, फुफकार रहे थे।

सन् 1932 में सरकार ने कांग्रेस को झाँसापट्टी में डाल के यद्यपि घोर दमन किया और मालूम पड़ता था कि मुल्क पस्त है! मगर दरअसल बात यह न थी। देश घोर अग्निपरीक्षा से पार हो रहा था। उफ! वह भीषण दमन! वह दमन का तांडव नृत्य! मगर फिर भी देश ने खूबी से मुकाबला किया। असल में अब लड़ाई ऊपर रहने के बजाए भीतर घुस रही थी, जैसा कि आजादी की लड़ाई में सभी देशों में पीछे चलकर होता ही है, जब लोग जम के भिड़ने लगते हैं। मगर गांधीजी ने इस गुपचुप की लड़ाई, इस भीतरी मार को नापसन्द किया। फलतः इसे बन्द कर दिया। इस प्रकार मुल्क की जो अपार हानि उनने की वह वर्णनातीत है! मगर खुल के तो लड़ाई का, उस निरंकुश दमन के सामने, चलना असम्भव था। इसीलिए कहा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जाता है कि उस बार सरकार जीती और कांग्रेस हारी, मुल्क हारा और लार्ड विलिंगटन ने मूँछ पर ताव दिया कि कांग्रेस को तो पस्त किया—The congress is now finished!

लेकिन यदि यही बात होती और मुल्क पस्त हो गया रहता, यदि लड़ाई और मर्दानगी की, हिम्मत की आग भीतर ही भीतर धक्-धक् जलती न रहती तो लार्ड विलिंगटन के ललकारने पर ही केन्द्रीय असेम्बली के चुनाव में कांग्रेस को अभूतपूर्व सफलता क्यों मिलती? इस प्रकार सन् 1935 ई. में बड़े लाट के मुँह में कालिख क्यों पुतती? उनका हिसाब क्यों गलत साबित होता और देश का सिर खुल्लमखुल्ला एक बार फिर ऊँचा क्यों होता? एक बार फिर किसानों और दलित जनता को अपनी अपार शक्ति का अनुभव क्यों होता? इससे तो निर्विवाद सिद्ध है कि मुल्क 1930 की ही तरह 1932 में भी असल में जीता ही था, हारा न था, चाहे ऊपर से भले ही वैसा मालूम होता हो। इसीलिए फिर चुनाव में भी वह अच्छी तरह जीत गया।

इस प्रकार हम साफ ही देखते हैं कि सन् 1921 ई. से लेकर सन् 1935 ई. तक जनता ने कई बार जम के लड़ाई लड़ी और उसने सबसे जबर्दस्त ताकत को बराबर पछाड़ा, साम्राज्यशाही का मान मर्दन किया। 1921, 1930 और 1935 में तो साफ ही साफ, मगर सन् 1926 में कौंसिलों के चुनाव में तथा 1932 में भी जैसा कि बता चुके हैं। मुल्क के नेताओं ने जानबूझ के किसानों को इस जुझार में शामिल किया, उन्हें लड़ना सिखाया, और इस प्रकार उन्हें इस बात का प्रत्यक्ष अनुभव कराया कि उनमें दरअसल अपार शक्ति है, बेहद ताकत है। इस शक्ति का अनुभव पीड़ित जनता करे इसकी जरूरत यद्यपि नेताओं को न थी। वे तो जनता को सिर्फ लड़ाना चाहते थे। और उसके फलस्वरूप सरकार को दबा के अपना मुतालबा पूरा करना चाहते थे। मगर जब उसने सरकार को पछाड़ा, सो भी बार-बार तो उसे अपनी अपार ताकत का, अपने भीम बल का साक्षात्कार और अहसास होना अनिवार्य था। यदि नेता लोग इसे रोकना भी चाहते, तो विवश थे। उनकी ताकत के बाहर की यह बात थी। बेशक, जनता के इस प्रत्यक्ष अनुभव के परिणामों पर आज नेता लोग पश्चात्ताप कर रहे हैं। मगर उस समय तो उनकी मजबूरी थी।

यहाँ एक बात और जान लेने की है कि इस दरम्यान मजदूर लोग संगठित रूप से इस लड़ाई में कभी नहीं पड़े। वह तो अलग ही रहे। उनके नेता उन्हें अलग ही रखना चाहते थे! यह युग तो केवल किसानों के ही लड़ने का था। इसमें वही सामूहिक रूप से पड़े। यहाँ तक कि करबन्दी का आन्दोलन भी उनमें अनेक स्थलों पर चला। इस बात का कोई प्रमाण नहीं कि सामूहिक रूप से कारखाने के मजदूरों ने जम के कभी भी जम के लड़ाई में भाग लिया। असल में उनका संगठन पहले से ही था और उनके नेता इन लड़ाइयों में कोई लाभ नहीं देखते। इसीलिए इन लड़ाइयों का मजदूरों के संगठन पर कोई खास असर नहीं हुआ। इन लड़ाइयों ने उनके सम्बन्ध में कोई ऐसी घटनाओं या घटनाचक्र का काम नहीं किया जिसका उल्लेख किया जाए।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मगर किसान जनता तो इनसे आमूल हिल गई, डोल गई। उसमें बहुत बड़ा परिवर्तन हो गया। यह पहला ही मौका हमारे मुल्क में था।

22.1.41 । अब आइए जरा इस पूर्व लिखित वर्णन से किसान आन्दोलन तथा किसान सभा की प्रगति का, उसके विकास का मिलान करें और देखें कि बात क्या है? यह तो मानी हुई बात है कि यदि जालिम पर कोई रोक-टोक न हो, उसका सामना करनेवाला कोई न हो तो वह खामख्वाह ही खुल के खेलता है। तब तो उसके जुल्मों की कोई सीमा नहीं रह जाती। जब पीड़ित लोग, मजलूम लोग हिम्मत ही नहीं रखते कि जरा डट के जालिम से, अत्याचारी से बातें भी करें तो नतीजा दूसरा हो भी कैसे सकता है? यह भी मान ही चुके हैं कि सन् 1921 ई. के असहयोग संग्राम के पूर्व किसान बुरी तरह त्रस्त एवं पस्त थे। वे अपने को इस कदर गिरे हुए तथा अशक्त मानते थे कि आश्चर्य होता था। मैंने खुद ही एक स्थान पर बताया है कि जमींदार के एक ही मनचले अमले के सामने सारे के सारे गाँव में भगदड़ मच जाती थी। किसान तो यह समझे बैठे थे कि जमींदार और उसके अमले जो भी जुल्म चाहें कर सकते हैं और उनकी खबर लेने वाला कोई भी नहीं। वे कानून-वानून क्या जानने गए? वह तो मानते थे कि जमींदारों एवं उनके गुंडों की मर्जी ही कानून है। वह यह भी समझते थे कि पुलिस और सरकार भी उन्हीं की मदद करेगी, करती है। किसानों की सुध लेना उसका काम नहीं है। उनकी यह भी जबर्दस्त धारणा थी कि जमींदारों की इस अन्धेर का मुकाबला करने का उन्हें कोई भी हक नहीं है। उनका तो एक ही काम है या तो रोना-गिड़गिड़ाना या चुपचाप बर्दाश्त कर लेना।

मगर जब असहयोग युग में उनने सरकार तक को अँगूठा दिखा दिया? जब उनने नेताओं के कहने से ही साम्राज्यशाही की, उस पुराने शेर की भी परवाह न की, यहाँ तक कि उसका पंजा तोड़ दिया, उसका नाखून उखाड़ दिया, और उसे धड़ाम से दे मारा, तो यह स्वाभाविक ही था कि उन्हें अपने अपार बल का प्रत्यक्ष भान हो। तब तो आज तक साफ ही दीखने वाले पंगु के पाँवों में अपार बल का आना स्वाभाविक ही था। तब तो सदियों का मरीज एवं युग-युगान्तर का रोगी अपने को खामख्वाही गामा से, भीम तथा अर्जुन से भी मजबूत मानने को मजबूर हुआ। जब नेताओं ने दुबले और कमजोरों को अखाड़े में लड़ा-लड़ा के कुश्ती की कला सिखलाई और बड़े से बड़े पहलवान को भी इन्हीं तथाकथित कमजोरों के द्वारा पछाड़ पर पछाड़ खिलवाई तो यह कुदरती बात थी कि वे ताल ठोंकने लगें, खुद ही खम ठोंक के खड़े हो जाएँ और सताने वालों को ललकारें।

असल में आजादी की लड़ाई में बार-बार भिड़ने तथा भयंकर शत्रु को रह-रह के पछाड़ने के बाद किसानों के दिलों में स्वाभवतः यह बात पैदा हुई, यह खयाल आया कि ऐं ये जमींदार और उनके अमले हमें सताते हैं। हमने तो इनके दादा गुरु को कस के पछाड़ा है। हमने तो केसरी की दहाड़ बन्द कर दी है। हमने तो मृगपति

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

को, सिंह को नथिया पहना दी ही है, सो भी उसी की ठेठ माँद में ही। और ये तो उसके सामने चूहे, बिल्ली के बराबर भी नहीं हैं। पिल्लू के समान भी नहीं हैं! फिर भी ये बराबर ही हमें सताए चले जा रहे हैं। देखो तो इनकी हिम्मत। बताओ तो भला इनकी गुस्ताखी। इनकी पुरानी हेकड़ी अब भी बन्द नहीं होती। फिर आवाज आई कि है कोई, जो इन्हें तमाचे लगाए? इन्हें मसल देने वाला यहाँ है कोई? जरा इन्हें मजा तो चखाए इस शैतानियत का।

बस, इस स्वाभाविक उद्गार का, इसी कुदरती खयाल का, इसी आवाज का प्रकट रूप है यह किसान सभा, यह किसान संगठन। जब पूर्वोक्त प्रकार से इसका सारा सामान किसानों के दिल दिमाग में पैदा हो गया तो कुछ लोगों ने जिन्हें इनकी परख थी, जिनकी आँखें तेज थीं, जो पहले ही इसे ताड़ गए, किसान सभा के रूप में इसे प्रगट कर दिया। हम देखते हैं कि असहयोग युग के बाद ही धीरे-धीरे किसान आन्दोलन दृढ़ और विकट होने लगा। इसके बाद ही क्रमशः इसे संगठित रूप मिलने लगा। यहाँ तक कि संयुक्त प्रान्त में तो 1932 वाली सत्याग्रह की लड़ाई ही किसानों के ही प्रश्न को लेकर छिड़ी। भारत के प्रायः सभी प्रान्तों में आगे-पीछे जहाँ कांग्रेस जोर पकड़ने लगा। यह भी ठीक है कि जहाँ किसान संगठन की लड़ाई तेज रही वहीं-वहीं किसान संगठन भी चले और धीरे-धीरे तेज बने। युक्त प्रान्त, बिहार, आन्ध्र आदि प्रान्तों के संगठन ही इस बात के सबूत हैं। गुजरात में तो खुद सरदार वल्लभ भाई ने ही उसका नेतृत्व किया। हालाँकि पीछे उसको दूसरा रूप देकर अब उसके विरोधी वे स्वयं बन गए। मगर अब तो असली किसान सभा ही वहाँ काफी मजबूत हो चुकी है।

यह भी स्पष्ट देखा गया है कि ज्यों-ज्यों किसानों को रह-रह के सरकार तथा उसके सहायकों के खिलाफ युद्ध करना पड़ा है और उसमें विजय मिलती गई है त्यों-त्यों किसान सभा एवं किसान आन्दोलन को व्यापक तथा संगठित रूप मिलता गया है, त्यों-त्यों किसान सभा मजबूत होती गई है, होती जा रही है। जैसे-जैसे किसानों को अपनी अपरिमेय शक्ति का भान होता गया है, तैसे-तैसे उसका प्रतिबिम्ब, उसका अक्स किसान संगठन पर तेजी के साथ पड़ता गया है। जब सन् 1934-35 तक कई लड़ाइयों में भाग लेने के बाद किसानों ने अपने को काफी बलशाली समझ लिया तो किसान सभा की जड़ भी बखूबी जम गई। उसके बाद ही तो हमारी सभा में तेजी और मजबूती आई है। हम कहें तो कह सकते हैं कि तभी से दरअसल किसान सभा एक प्रभावशाली संस्था बनी है और तभी से किसानों का प्रतिनिधित्व करने का दावा यह कर सकी है। इसके विरोध का श्रीगणेश भी तभी से शुरू हुआ है, यह भी एक विचित्र बात है।

इससे स्पष्ट हो गया कि किसान सभा उन कारणों के करते आई है जिन पर किसी का वश न था। जिन्हें हम ऐतिहासिक कारण या ऐतिहासिक आवश्यकताओं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

Historic reasons, forces and necessities कह सकते हैं, कहते हैं। यही कारण इसकी बुनियाद हैं, इसकी जड़ हैं। किसान सभा के यही बुनियादी कारण (Fundamental reasons) हैं। और अगर अब इसका विरोध किया जाता है, अगर उसके विरोध की कोशिश होती है तो बेकार है। भूल, भारी भूल तो तब की हुई जब कि गर्ज के बाबले नेताओं ने अपने ही मतलब से मजबूरन किसानों को राजनीतिक लड़ाई में सामूहिक रूप से खींचा, सो भी बार-बार। फिर अब पछताने से क्या फायदा? अब इतने दिनों बाद यह पछताना और यह विरोध कुछ कर नहीं सकता। कहते हैं कि व्यभिचार के समय तो स्त्री को मजा आता है, मगर गर्भ हो जाने पर पछताती है। परन्तु इससे क्या? वह तो उसी मजा का अनिवार्य परिणाम है। बुद्धिमानी तो इस बात में है कि उस मजा में ही न पड़े। और जब एक बार पड़ी चुके तो अब परिणाम का स्वागत करने में ही बुद्धिमानी है। घबरा के गर्भपात कराने में दूसरी बलाओं के खतरे हैं। और किसान सभा का यह विरोध भी गर्भपात की कोशिश के सिवाय और कुछ नहीं है, यह याद रखना होगा।

इस प्रकार किसान सभा का विकास प्राकृतिक ढंग से होने के कारण इसका मूलाधार दुर्भेद्य सिद्ध हो जाता है। फलतः किसानों के लिए इसे अपनाना तथा मजबूत बनाना अपनी खास बात हो जाती है। और लोगों ने तो किसानों की भावनाओं को ही 'निमित्तमात्रं भव सत्यसाचिन्' के अनुसार स्थायी तथा बाहरी रूप देने में पथदर्शन मात्र किया है। इस सभा को सर्वात्मना सुदृढ़ बनाना तो किसानों का ही काम है, उनका अपना फर्ज है, निजी कर्तव्य है, यह बात इस विश्लेषण से स्पष्ट हो जाती है।

इसके साथ ही और भी एक महत्त्वपूर्ण बात है। यह तो निश्चित ही वर्ग संघर्ष एवं श्रेणी युद्ध का युग है। नई सभ्यता ने, रोज व्यापार के नए तरीकों ने, उत्पादन एवं वितरण की पूँजीवादी प्रणाली ने संसार को साफ-साफ दो टुकड़ों में बाँट दिया है। वे दो टुकड़े, दो दल हैं शोषकों और शोषितों के। शोषकों के संगठन तो बहुत पहले से चले आ रहे हैं। उनने संगठन के ही बल पर तो अपना अक्षुण्ण आधिपत्य अब तक संसार में स्थापित कर रखा है। अभी तो बड़ी दिक्कत के बाद रूस में तथा चीन के कुछी भाग में उनका आंधिपत्य मिटा है। फिर भी यत्नशील हैं कि वहाँ भी पुनरपि स्थापित हो जाएँ। लेकिन बाकी जगह तो है ही। उनने इस संगठन के मामले में काफी विशेषज्ञता प्राप्त कर ली है। उनका दुर्भेद्य संगठन जाल सर्वत्र बिछा है। उसकी अनेक तहें हैं। उसके अनेक सिलसिले एके बाद दीगरे हैं। उनने इस संगठन की अनेक कतारें खड़ी कर डाली हैं।

उनकी इस करनी का, इस संगठन कौशल का उत्तर शोषित एवं पीड़ित लोग, जिनमें किसानों की संख्या बहुत ज्यादा है, हर्गिज दे नहीं सकते, यदि वे लोग वैसा ही, बल्कि उससे कहीं बढ़ के संगठन कौशल प्राप्त न करें। जब तक अपने संगठन के महत्त्व तथा उसकी बारीकियों को ये लोग अच्छी तरह जान कर तदनुसार ही

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अमल करने में लग नहीं जाते तब तक इनका निस्तार नहीं, तब तक वर्ग संघर्ष एवं श्रेणी युद्ध में ये लोग सदा ही पराजित ही होते रहेंगे, नीचे ही दबते जाएँगे। फिर तो यह वर्ग संघर्ष पूँजीवादियों मालदारों के ही पक्ष में होगा। शोषितों की जो अपार संख्या है, उनका जो अपार संख्या बल है उसका उचित उपयोग भी आखिर सुदृढ़, संगठन के अलावे और किस प्रकार हो सकता है, जिससे उनके मानवोचित हक उन्हें निर्बाध रूप से सदा के लिए प्राप्त हों और भविष्य में कभी छीने न जा सकें? हमने तो असहयोग एवं सत्याग्रह के युग में देखा ही है कि निहत्थी जनता भी एकमात्र सुन्दर तथा सुदृढ़ संगठन के बल पर ही बड़ी से बड़ी, जबर्दस्त से जबर्दस्त साम्राज्यशाही को पानी पिला-पिला के मार सकती और नाकों दम कर सकती है। फिर वही पाठ किसान अपने अलग संगठन के सम्बन्ध में भी क्यों न पढ़ें? आखिर उन्हें तो विदेशी तथा स्वदेशी—दोनों ही शासकों एवं शोषकों से लड़के निपटना है।

पूँजीवादियों तथा शोषकों के सुसंगठित आक्रमण ने ही तो शोषितों की भी आँखें खोली हैं और वे भी संगठित होने लगे हैं। जब शोषकों ने आपस में गुटबन्दी करके किसानों तथा मजदूरों की माँगों का विरोध किया और उन्हें दबाना चाहा, तो ये भी आपस में मिलने को मजबूर हुए। यह पाठ उनने शत्रुओं से ही सीखा। फलतः स्थान-स्थान पर इन्हें सफलता भी मिली, जबकि पहले सर्वत्र विफलता ही विफलता थी। क्योंकि आपस में ही तो एका न था—फूट थी। इसलिए उनके दिलों में संगठन और एका के लिए चसक पैदा हो गई। अब तो वह संगठन काफी मजबूत हो गए हैं। किसानों की और मजदूरों की अलग-अलग सभाएँ दुनिया के सभी मुल्कों में पाई जाती हैं। निम्न-मध्यम वर्ग की भी अपनी सभाएँ हैं। यह भी प्रबन्ध किया गया है कि ये सभी सभाएँ आपस में मिलकर अपनी सम्मिलित माँगें, अपने मजमूई मुतालबे पेश करते रहें, और इस प्रकार सभी पीड़ितों को मिलकर कुछ प्रमुख अधिकारों की प्राप्ति के लिए लड़ने का पाठ अमली और दिमागी—दोनों ही—तौर पर पढ़ाते रहें। भारत में भी मजदूर संगठन तो बहुत पहले से है।

ऐसी दशा में क्या यहाँ के अस्सी प्रतिशत किसान ही बिखरी दशा में पड़े रहें? क्या दुनिया की इस हवा का, संसार व्यापी इस महान हलचल का उन पर ही कोई असर नहीं होना चाहिए? क्या यह कथमपि संभव है? क्या यह बुद्धि में समाने लायक बात है? क्या इस महान तूफान में बलात् खिंच जाने से बच सकना किसानों के लिए संभव है? यह तो इस जमाने का, इस युग का प्रचंड प्रवाह है जिसके भीषण वेग को कोई ताकत रोक सकती नहीं। यह तो समुद्र की भीषण लहर है जो थम सकने वाली नहीं। ऐसी हालत में किसान संगठन को हमारे देश में विफल बनाने की कोशिश क्या बुढ़िया की झाड़ू से समुद्र की भीषण लहर को रोकने की कोशिश के अलावे कोई और भी चीज है? क्या यह मुमकिन है कि भारत का समुद्र और उसकी उत्तुंग पर्वतमाला इस तूफान को यहाँ आने से कथमपि रोक देगी, जब कि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पास-पड़ोस के रूस और चीन देशों में ही यह किसान अपना सानी नहीं रखता? आज जब रेल, जहाज, बेतार के तार और रेडियो के द्वारा संसार के एक कोने में बैठ के दूसरे कोने से बातें कर सकते और सुन सकते हैं, तब किसानों से यह उम्मीद करना कि वह संसार व्यापी किसान संगठन से अलग रहेंगे, निरी नादानी तथा दिमाग का कोरा दिवालियापन है।

भारत के दरवाजे पर खटखटाने वाले इस संगठन-तूफान ने, इस बवण्डर ने, इस भूकम्प ने ही बलात् इस चक्र में किसानों को खींचा है, यहाँ तक कि जो आज इस संगठन को फूटी आँखों भी देख नहीं सकते, उन तक को पहले खींच लिया। फलतः शुरू में उनने भी किसान सभा की बात उठाई और इसमें काफी मदद की। हमारी किसान सभा का इतिहास ही इस बात का साक्षी है। वे लोग अनजान में ही इधर खिंच गए! आखिर वह जादू ही क्या जो सर पर चढ़ के न बोले? वह आँधी ही क्या जो बड़े बड़ों तक को भी न हिला-डुला दे? फिर किसान इससे कैसे बचे रहते? कैसे इससे अछूते रहते? क्यों कर इस भँवर में न पड़ते? यह तो अनहोनी बात हो जाती।

किसानों के लिए अपनी सभा की बड़ी जरूरत इसलिए भी है कि भोलेभाले होने के कारण स्वराज्य, आजादी, अधिकार आदि के नाम पर स्वार्थी एवं मालदारों के दलाल, नेता नामधारी उन्हें बराबर ही ऊल-जलूल बातें समझाते रहतें और इस तरह हमेशा ही गुड़ गोबर करते रहते हैं। उनका दिमाग कभी साफ होने ही नहीं पाता। वे सदा इस गोलमटोल बात की भूलभुलैया में पड़े रहते हैं। वह यह समझी नहीं सकते कि शोषकों तथा शोषितों का स्वराज्य कभी एक हो नहीं सकता उनके दिमाग में यह बात साफ-साफ आने ही नहीं दी जाती कि दोनों के रास्ते दो, अधिकार दो, तरीके दो और काम दो हैं। वे यह जान ही नहीं सकते कि दोनों के स्वार्थ ऐसे परस्पर विरोधी हैं जैसे उत्तर और दक्षिण ध्रुव। उनका मेल कभी होई नहीं सकता। किसान सभा इसी कमी को पूरा करती है। उसका काम ही है कि किसानों के सामने स्वराज्य आदि का पूर्ण विश्लेषण करके उनका सच्चा चित्र रख दे। क्या यह काम कोई और संस्था करेगी? कर सकती है?

23.1.41। जब किसी के चेहरे पर मनहूसी हो, मैल हो या दूसरी चीज तो आईने में चेहरे को देख के उसका निश्चय करना पड़ता है। उसके दूर करने की कोशिश भी की जाती है उस निश्चय के बाद ही। और यदि आईने को सामने न रख के उसे हटाने की कोशिश करें तो उसमें पूर्ण सफलता न मिलना शायद ही सम्भव हो। किसान सभा के बारे में भी यही बात लागू होती है। किसान की तकलीफों का कारण उसकी तकदीर है, भगवान का उससे ऊपर रंज होना ही है, वह इस जन्म में कुछ कर सकता नहीं, आदि बातें ही उसके चेहरे की मनहूसी हैं और किसान सभा के आईने में इन्हें ठीक-ठीक देख सकता है। शोषक लोग झूठी-मूठी बातें करके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उसे आसानी से फुसला दे सकते हैं, फुसला देते हैं। फलतः वह विश्वास करके सन्तोष कर लेता है। इस बात की कसौटी किसान सभा ही है जहाँ इस फुसलाहट का असली भंडाफोड़ होता रहता है। वह सभा वह आईना है जिसमें इन सबों की असलियत वह देख सकता है। कहते हैं कि नारद का मुख बन्दर का-सा बन गया था। फिर भी वे फूले डूले बैठे थे। पास में देखने के लिए कोई शीशा था जो नहीं। जब शीशे में देखा तो ठंडे पड़े और ऐसा करने वाले पर उनके क्रोध की सीमा न रही। किसान भी जब तक किसान सभा के आईने में अपनी-अपनी स्थिति की असलियत न देखे फूला फिरता है, शोषकों के दलालों के मायाजाल के करते। मगर ज्यों ही सभा में पहुँचा कि उसकी उमंग खत्म! फिर तो शोषकों और उनके दलालों पर आग बबूला होई जाता है।

कहते हैं कि खाट बुनने वाले केवल एक ही ओर बुनते हैं। मगर उसके ही फलस्वरूप दूसरी ओर वह खुद ही बुनी चली जाती है। कहते हैं क्या, इसे तो सभी ने देखा होगा जिन्हें कुछ भी घर गिरस्ती का अनुभव है। ठीक वही दशा किसान संगठन की है। किसानों की श्रेणी के पूर्ण-शत्रु जमींदार लोग जब एक ओर अपने संगठन का विस्तृत जाल फैलाते जाते हैं, तो दूसरी ओर उसी हिसाब से किसानों में वैसा ही संगठन जाल अपने आप फैलता जाएगा ही। उसे कोई रोक नहीं सकता। आखिर इस जमाने में हजार करने पर भी किसानों को सामयिक साहित्य, समाचार पत्र और नोटिस, पैम्फलेट आदि पढ़ने एवं सभा-सोसाइटियों में जाने से रोक सकना असम्भव नहीं तो और क्या है? और जब किसानों सबकुछ पढ़ सकते तथा लेक्चर सुन सकते हैं, तो फिर उनसे यह उम्मीद करना कि वे अपने संगठन में न पड़ेंगे निरी नादानी नहीं तो दूसरा हई क्या? आखिर उनके दिल-दिमाग पत्थर के तो हैं नहीं। अपार कष्ट भी उन्हें हई। फिर प्रभावित क्यों न हों? फिर दवा स्वरूप अपना सुदृढ़ संगठन क्यों न बनाएँ? तो क्या यह माना जाए कि सामयिक साहित्य आदि में इस संगठन की चर्चा रहती ही नहीं और न सभाओं में ही इसका जिक्र आता है? यह तो कहना ऐसा ही है जैसा ठेठ दोपहरी को अन्धेरी रात बताना।

जो लोग राष्ट्रीयता के नाम पर किसानों का सुदृढ़ संगठन रोकना चाहते हैं, उनका मतलब तो स्पष्ट ही है। एक तरफ तो किसानों को कांग्रेस जैसी संस्थाओं में वे खामख्वाह बुलाते हैं। उनके बिना उनका काम जो नहीं चलता। लेकिन साथ ही उन्हें यह खतरा बराबर बना रहता है कि कहीं इन संस्थाओं पर किसान लोग कब्जा ही न जमा लें। यदि वे अच्छी तरह संगठित हों, यदि उनकी आँखें बखूबी खुली हों, यदि वे इसका रहस्य अच्छी तरह समझते हों तो यह बात कठिन नहीं है। इसीलिए उसके साथ ही एक ओर तो वे इस बात की कोशिश करते रहते हैं कि किसान कब्जा करने का महत्त्व कतई समझ पाएँ नहीं। उनकी आँखें बराबर बन्द रहें। लेकिन यदि कोई बाहरी आदमी आँखें खोल दे और उन्हें समझा-बुझा करके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ठीक कर दे तो? तब तो गजब हो जाएगा। इसलिए हजरत दिन-रात यही माला जपते रहते हैं, यही महामन्त्र किसानों को सुनाते रहते हैं कि किसान संगठन ठीक नहीं। तब तो स्वराज्य ही नहीं मिलेगा, वह तो स्वराज्य मिलने के बाद ही होना चाहिए। चीज मिली ही नहीं तब तक बँटवारे की यह तैयारी कैसी, आदि-आदि।

इससे उनका मतलब कुछ न कुछ होई जाता है। कुछ बाधा तो खामख्वाह पहुँची जाती है। पीड़ितों और शोषितों का तो एक ही बल है कि सम्मिलित रूप से अपना दावा (Collective bargaining) पेश करें। उनके उद्धार का, उनके प्रति न्याय का कोई और रास्ता है नहीं। और जमींदारों के दलाल किसानों का यही रास्ता बन्द कर देना चाहते हैं। कल्पना कीजिए कि किसी संस्था में नब्बे फीसदी सदस्य किसान ही हैं। मगर वे आए हैं व्यक्तिगत रूप से ही अलग-अलग। फलतः एक दूसरे को ठीक-ठीक जानते ही नहीं, समझते ही नहीं। वे यह बात नहीं जानते कि हम सबों का एक ही स्वार्थ है और उसकी प्राप्ति का रास्ता भी यही है कि सम्मिलित आवाज उठाएँ। नतीजा क्या होगा? यही न कि एके बाद दीगरे सभी हार जाएँगे और उनका अपार बहुमत बेकार ही सिद्ध होगा। इसीलिए तो व्यक्तिगत रूप से लाए गए थे ताकि एक का दूसरे के साथ कोई पक्का संसर्ग होने न पाए, ताकि वे अपने मिलने के रहस्य को, उसकी शक्ति को समझी न सकें। मगर यदि वे संगठित रूप से आते तो? यदि किसान सभा की ओर से आते तो? सभा की तरफ से न भी आकर यदि सभा में रहने और संगठन का महत्त्व समझने के बाद आते तो? तब तो हवा ही पलट जाती। तब तो बात ही दूसरी हो जाती। तब तो उनका बहुमत अपना काम करी डालता।

सभा की तरफ से कांग्रेस या राष्ट्रीय संगठन में आने में दो बातें और भी हो सकती हैं। पहली तो यह कि कांग्रेस में किसानों का, किसान सदस्यों का, बहुमत न भी रहे तो भी, उनकी माँगों, उनके दावों को इनकार करना प्रायः असम्भव हो जाएगा। क्योंकि उनके पीछे जबर्दस्त किसान सभा की ताकत रहेगी, जो विरोधियों के दिल दिमाग पर पहाड़ की तरह खड़ी नजर आएगी। उन्हें कांग्रेस के भीतर का बहुमत नहीं, किन्तु उसके बाहर किसान सभा का बहुमत रह-रह के नजर आएगा। और उनके दिमाग को दुरुस्त करेगा, उसके लिए दवा का काम करेगा। वे उन माँगों और मुतालबों को ठुकराने के पहले लाख बार सोचेंगे। उनकी हिम्मत ही न होगी कि ठुकराएँ! क्योंकि उस हालत में उन्हें अपना खात्मा ही दीखेगा।

लेकिन संगठित किसान सभा से उनका भी फायदा होगा। जिस बात में उनका तथा किसान सभा का एक मत होगा, दोनों की एक राय होगी, उसमें न केवल कांग्रेस की ही ताकत काम करेगी। प्रत्युत किसान सभा की पूरी ताकत उसके साथ होने के कारण आजादी के दुश्मनों की रूह काँपेगी! वे समझेंगे और घबराएँगे कि बाबा, सँभल के चलो 'सँभल-सँभल पग धरिये'। क्योंकि चारों तरफ जिसके संगठन का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जाल बिछा हुआ है वही किसान सभा इस मामले में कांग्रेस का साथ दे रही है। इसलिए नाहीं-नुकर करने में खैरियत नहीं है ! तो क्या यह मामूली फायदा है? क्या उसकी जरूरत कांग्रेस को नहीं है? और अगर यही बात है, तब तो दाल में काला जरूर है। तब तो, मालूम होता है, विदेशियों से भीतर ही भीतर सट्टा-पट्टे की बात चल रही है। उनसे खुल के लड़ने का सवाल नहीं है। लड़ने की बात तो ऊपरी और धोखे की टट्टी ही मालूम पड़ती है। ऐसी दशा में तो किसान सभा का शानदार संगठन और भी जरूरी हो जाता है। ताकि उसी के करते यह खतरनाक सट्टा-पट्टा और सुलह-सपाटा होने ही न पाए। क्योंकि उस हालत में सुलह-सपाटे के करनेवाले यार लोग डरेंगे कि कहीं सुसंगठित किसान हमें और विदेशियों को—दोनों को ही—एक ही साथ उठा न फेंकें। इसीलिए तो किसानों का अलग संगठन होने देना चाहते ही नहीं। तब तो दुश्मनों से—विदेशी शासकों से—समझौते की गुंजाइश रही न जाएगी।

जब सभी उपायों से ये लोग हार जाते हैं तब तो और भी गजब करते हैं। समझते हैं कि उनकी टिक्की तो लगनेवाली नहीं। वे तो गए बीते हुई। लेकिन किसान भी कुछ कर न सकें तो सन्तोष तो हो कि चलो, दोनों बराबर तो रहे। कोई विजयी तो नहीं हुआ। इसलिए तरह-तरह के जाल रचे जाते हैं। रुपए-पैसे भी खूब ही खर्चे जाते हैं और इस प्रकार सीधे-सादे किसानों एवं किसान कार्यकर्ताओं को फोड़-फाड़ के इस काम से विमुख किया जाता है। और नहीं हुआ तो किसान सभा के नेताओं एवं प्रमुख कर्मियों की भी हजारों झूठी शिकायतें की जाती हैं। जाने कौन-कौन से षड्यंत्र रचे जाते हैं। ताकि किसी भी प्रकार कुछ भी लोग तो फँसें। यदि ऐसा हुआ तो पीछे उन्हीं की देखा-देखी दूसरे भी जरूरी फँसेंगे और इस प्रकार मतलब सध जाएगा। नहीं तो जोई राम सोई राम। कुछ लोग ही सही। यदि थोड़े भी हटे, तो काम में बाधा तो पड़ी ही, संगठन में ढीलापन तो आया ही। इस प्रकार खुद भी खत्म होते और किसानों को भी चौपट करते हैं।

एक कहानी याद आती है। एक पंडित जी बहुत ही भोले-भाले थे। बरसात का समय था। सभी किसान धान की खेती की तैयारी में लगे थे। पंडित जी उसी फिक्र में कहीं से आ रहे थे कि मैदान में पड़ी एक खोपड़ी हँस पड़ी। वे रुके और देखने लगे कि यह क्या दैवी बात? इतने में खोपड़ी बोली कि महाराज, क्या कहें, किसान नादान हैं। उन्हें पता ही नहीं कि इस साल ऐसा दैवी प्रकोप होगा कि अन्त में सभी धान मारा जाएगा। इसी नादानी पर मुझे हँसी आ गई। पंडित जी ने विश्वासपूर्वक पूछा कि ऐसा होगा? उसने उत्तर दिया कि जी हाँ, ऐसा ही होके रहेगा, यकीन कीजिए। फिर वहाँ से चले गए और घर पहुँच के उस साल खेतीबारी बन्द कर दी। दिन बीतते जाते थे। मगर घरवाले और बाहर के लोग भी उन्हें कुछ भी करते न देख अचम्भे में थे कि पंडितजी को क्या हो गया है कि कुछ करी नहीं रहे हैं। मगर वे कुछ न कह के यों ही टाल देते कि देखा जाएगा? इस साल कुछ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ऐसा ही मन है। भीतर ही भीतर तो खुश थे कि परिश्रम, बीज, मजदूरी आदि तो हमने बचा ली। बाकी लोग तो गए।

इस प्रकार समय वीतता गया और किसानों की खेती का काम बखूबी चलता रहा। संयोग से उस साल सब लोगों ने बहुत ज्यादा खेती की। वृष्टि वगैरह भी समय-समय पर ठीक ही हुई। फसल भी अच्छी दिखी। किसानों के कलेजे बाँसों उछल रहे थे सुन्दर फसल को देख के। उधर पंडित जी भीतर ही भीतर इनकी नादानी पर हँसते थे और समझते थे कि दैवी घटना हुई है, खोपड़ी बोली है। इसलिए अन्ततोगत्वा सारी फसल दैवी कोप से चाहे जैसे हो मटियामेट होई जाएगी। खोपड़ी की बात झूठ कैसे होगी। मगर बात उलटी ही हुई। फसल अच्छी पकी। तैयार हुई। खलिहान में आ गई। अब पंडित जी को कुछ घबराहट हुई कि माजरा क्या है? फसल का तो कुछ हुआ ही नहीं। फिर संतोष किया कि शायद खलिहानों में ही कुछ हो, वज्र पड़े, आग लगे और सबकुछ खत्म हो जाए। खोपड़ी की बात जो ठहरी। मगर ऐसा कुछ न हुआ और खुशी-खुशी सभी अन्न किसानों के घर पहुँच गया। वे खाने पीने भी लगे। कोई खटका ही न रहा।

अब तो यदि चीरो तो पंडित जी के शरीर में खून नहीं। खासे उल्लू बने। इसलिए मारे क्रोध के डंडा लेके खोपड़ी के पास पहुँचे। क्रोध से काँपते हुए बोले कि तूने मुझे नाहक ही धोखा क्यों दिया? फसल तो बहुत ही उतरी। अब मेरे बाल-बच्चे भूखों मरेंगे। इसलिए आज ही इसी डंडे से तुझे चूर-चूर कर डालूँगा। खोपड़ी ने फिर हँस के कहा कि अपनी बेवकूफी के करते मेरे ऊपर बेकार गुस्सा हो रहे हैं। मैंने वैसा कहा था सही। मगर दुनिया में बातें तो सभी लोग करते हैं। तो क्या सबों पर आप विश्वास कर लेते हैं? यदि नहीं, तो मेरी बातों पर ही आपको यकीन क्यों हो गया? मुझे आप पहले से जानते थे क्या? यदि नहीं, तो अक्ल का तकाजा था कि कम से कम पूछ तो लेते कि आखिर मैं हूँ किसकी खोपड़ी। आपने खुद तो गलती की। बिना जाने बूझे ही मेरी बातों में पड़ गए। अब मेरे ऊपर क्रोध कर रहे हैं। महाराज मैं ऐसे आदमी की खोपड़ी हूँ, जिसने अपनी जिन्दगी में हजारों घर उजाड़ डाले थे। इसलिए मेरी तो आदत ही थी। छूटती कैसे? अतएव मैंने सोचा कि जीते जी जहाँ हजारों को खत्म किया तहाँ मरने पर एकाध ही सही। सोचा कि कोशिश करके देखूँ। 'यदि लगा तो तीर नहीं तो तुक्का' ही सही। मगर आप पंडित हो के भी अक्ल के ऐसे अन्धे निकले कि आखिर मेरी बातों में पड़ी तो गए और मेरी टिक्की लग गई। अब मुझे चूर करके क्या नीलाम का तिलाम करेंगे? इससे अब मेरा बिगड़ेगा ही क्या? बस, पंडित जी भक्कू बने और अपना-सा मुँह लेके लौट गए।

ठीक यही हालत बगुला भगत राष्ट्रीय नेता नामधारी भी करते हैं। सोचते हैं जोई राम सोई राम। कुछ तो बाधा डालें। फलतः छद्म वेशधारी बन जाते हैं और किसानों के लिए उनका कलेजा फटा जाता हो ऐसी सूरत बना के कुछ को फाँस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ही तो लेते हैं। फँसते भी हैं उन्हीं पंडित जी की तरह बुद्धि की बदहजमी वाले, जिन्हें राष्ट्रवादी बनने का कुछ खयाल है। जो किसान या किसान सेवक बिलकुल ही भोला-भाला है, जो राष्ट्रवाद की बात नहीं जानता। वह तो उनके जाल में फँसता नहीं। जो खूब समझदार है वह भी चकमे में नहीं आता। मगर बिचबिचवा लोग जो अक्ल की डींग मारते, मगर दरअसल बात समझते नहीं, इस फेर में पड़के किसान सभा के विरोधी या कम से कम उससे उदासीन बन जाते हैं।

वह समझते हैं ये राष्ट्रवादी सज्जन भला हमें धोखा क्यों देंगे? जेल गए, जुर्माने दिए, जाने कौन-कौन दुःख भोगे। आखिर किसके लिए? देश के ही लिए तो? हमारे ही लिए तो? फिर हमीं को गलत रास्ते पर भला कैसे ले जाएँगे? यही दलीलें घपले में डाल देती हैं। दलीलें करनेवाले भूल जाते हैं कि उन लोगों का जेल जाना, जुर्माने देना वगैरह औरों के लिए न होके अपने ही लिए है। आखिर बगुला भी तो जाड़े में सारे दिन पानी में ही खड़ा-खड़ा कष्ट भोगता है, गोया जलशयन करनेवाला कोई प्राचीन तपस्वी हो। मगर उसकी तपस्या की बात तो मछलियाँ ही बता सकती हैं जिनके परिवार पर उसके हमले रह-रह के होते ही रहते हैं। दूसरों को क्या मालूम? ठीक उसी प्रकार इन बगुला भगतों के पास-पड़ोस में जो निरन्तर रहते हैं, जो चौबीसों घंटे पुश्त दर पुश्त से उनकी करनी को आँखों देखते आते हैं, जो उनकी चालों के शिकार होते रहते हैं वही बता सकते हैं कि इनकी यह देशभक्ति कितनी गहरी है, इनका जेल जाना आदि अपने ही लिए है या गैरों के लिए है। जो लोग इनसे दूर रहते हैं और जिनकी मुलाकात कभी-कभी छठे-छमास, सभा-सोसाइटी, मीटिंग आदि में ही हो जाती है, या जो ज्यादातर भी मिलते हैं तो ऐसे ही मौकों पर, वे उन्हें क्या समझने गए? वे इन्हें समझ भी कैसे सकते हैं? रामचन्द्र ने भी तो पंपासर के बगुले को यों ही देख के भक्त मान लिया था। मगर मछली से न रहा गया, जो उसी तालाब में रहती थी और जिसके परिवार पर खुद बीती थी। अतः उसने रामचन्द्र का भ्रम दूर किया। इस बात को संस्कृत के कवि ने यों दिखलाया है—

पश्य लक्ष्मण पम्पायां बकः परमधार्मिकः।
शनैः शनैः पदं धत्ते जीवानां वध शंकया।।
बकः किं वर्ण्यते राग येनाहं निष्कुलीकृतः।
सहचारी विजानाति चरित्रं सहचारिणाम्।।

यह जेल जाना भी क्या खूब ही सस्ता सर्टिफिकेट है? देशभक्ति तथा जनता की सेवा का बहुत ही बढ़िया तमगा है। भोले-भाले लोगों को यह नहीं सूझता कि पुश्त दर पुश्त से—सहस्रों वर्षों से लगातार किसानों की कमाई का घी, दूध, गेहूँ, बासमती, मलाई खा के भी यदि किसानों के प्रति भक्ति न हुई, उन्हीं किसानों के प्रति जिनने अपने तथा अपने बाल-बच्चों के मुँह को सी कर और अपने कलेजे पर पत्थर रख के ये चीजें इन्हें एवं इनके बाप-दादों को पहुँचाईं, पर खुद फाँके मस्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रहे। तो इस जेलयात्रा या जुर्माने से इनका दिल कैसे पसीजेगा? इससे इनके दिलों में किसानों के प्रति प्रेम का स्रोत कैसे फूट पड़ेगा? जो इतने कृतघ्न हैं, नाशुक्रे हैं, अहसानफरामोश हैं कि अपने अन्नदाता को ही भूल गए वही जेल जाने मात्र से कैसे महात्मा बन गए, यह बात दिमाग में कैसे अँटेगी और किस के? यदि भूले न रहते, तो खामख्वाह जेल-वेल जाने के पहले ही इस समाज के प्रति बागी बन गए होते, जिसने अन्नदाता को इस बेरहमी और हृदयहीनता के साथ न सिर्फ भुलाया है, बल्कि पाँव तले बुरी तरह ठुकरा रखा है। इनकी जेल-यात्रा तो जमाने का रुख देखके अपनी गिरती हुई धाक बचाने की चालमात्र है। इन्हें डर है कि किसान समय की गति के अनुसार खुद ब खुद बागी बनेंगे, जमाना उन्हें स्वयमेव क्रान्ति का पाठ पढ़ाएगा। फिर तो गेहूँ, घी, मलाई वगैरह गायब ही समझिये। इसलिए जमाने के अनुसार नई चाल चल के उस घी, मलाई, हलवा, पूरी की रक्षा करने तथा किसानों में क्रान्ति एवं बगावत का भाव न आने देने के ही लिए इन भलेमानसों का, इन यारों का यह गहरा षड्यंत्र है। जेलयात्रा क्या साबुन है कि इन पुराने पापियों के पापों को साफ कर देगा? क्या संसार में इससे पूर्व हजारों-लाखों देशभक्त कहे जाने वाले जेल में सड़ने के बाद भी जनता को ठगते नहीं रहे हैं? इतिहास तो इसी का साक्षी है कि यही ठगी, यह जाल, कभी बन्द ही न हुआ। बल्कि जेल, जलावतनी, जुर्माने आदि के शिकार जोई लोग हुए उनने ही उसी की ओट में कमानेवाली जनता को और भी कस के चूसा!

चूसें भी क्यों नहीं? आखिर कमानेवालों को ही जब होश नहीं, तमीज नहीं, तो गैरों का तो मजा ही हुआ। आखिर रोज ही, कंठी, माला, जटा, तस्वीर पहने, चंदन भभूत रमाए लोग ठगते फिरते हैं। उनकी कलई भी खुलती ही रहती है। फिर भी होश नहीं होता इन बदबख्त किसानों को। जहीं साधु-फकीर की-सी सूरत देखी कि झुक गए। समझ लिया कि साक्षात् खुदा मियाँ ही, भगवान ही आ गए, मिल गए! अपने को निहायत तुच्छ और अकिंचन, गया-गुजरा समझने पर ऐसा ही होता है। बस ठीक उसी प्रकार नए तरह की कंठी-माला और चंदन-भभूत वालों को—जेल जाने वालों को—महात्मा समझ आत्मसमर्पण कर देते हैं। यह कभी नहीं सोचते, सोच ही नहीं सकते कि जेल जुर्माने आदि इस युग की नूतन कंठी, माला है नई तिलक, भभूत है। फलतः यार लोग ठगते फिरते हैं। इनका खून पीना उनके लिए सहज हो जाता है।

इसका यह मतलब कदापि नहीं कि किसान सभा में ऐसे ठगनेवालों की गुंजाइश ही नहीं। है संभावना तो हई। ऐसे लोग तो सर्वत्र ही मौका देखते-फिरते हैं और जैसे हुआ घुस पड़ते हैं। इसलिए इनसे सजग तो सर्वत्र ही रहना होगा। फूँक-फूँक के पाँव तो सर्वत्र ही देना होगा। इसीलिए तो नेताओं से सजग रहने की बात स्थानान्तर में विस्तार के साथ कही गई है। वह सभी पर लागू है। मगर जितना खतरा इन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नेताओं से और जगह है उतना किसान सभा में नहीं है, यही हमारा मतलब है। किसान सभा को तो बनाने में शुरू से ही इस बात का खूब खयाल रखा जाता है। रखा जाना चाहिए कि ऐसे महापुरुष उसमें घुसने ही न पाएँ। यदि वे घुस भी जाएँ तो उनको निकाल बाहर करना यहाँ आसान है। क्योंकि इन सभाओं पर किसानों का पूरा अधिकार रहता है, रहेगा, रहना चाहिए। नहीं तो फिर किसान सभा कैसी? मगर दूसरी संस्थाओं में यह बात नहीं हो सकती है। इसलिए खतरा वहीं ज्यादा है।

इस प्रकार कोई शक रह जाने की गुंजाइश इस बात में रही नहीं जाती कि किसान लोग अपनी सभा को—किसान सभा को—अपनाएँ। लेकिन अपनाने का मतलब जो अब तक बताया गया है वह तो हई। वह तो बहुत ही आवश्यक है। उसके बिना न तो किसान ही बच सकते हैं और न किसान सभा ही। इसीलिए तो सबसे पहले उन सभी बातों का विवेचन एवं विश्लेषण साफ-साफ कर दिया गया है। ताकि इस मामले में किसान जनता का दिल और दिमाग बिलकुल ही साफ हो जाए। उन्हें इसमें जरा भी शकसुबहा या आगा-पीछा करने का मौका ही न रह जाए।

मगर जो बुनियादी चीज किसान सभा के अपनाने के सम्बन्ध में बताना बाकी है वह है उसकी सदस्यता—उसकी मेम्बरी। जब तक हर बालिग किसान—स्त्री और पुरुष दोनों ही—गिन-गिन के उस सभा के सदस्य बाकायदा बन नहीं जाते किसान सभा के अपनाने का वस्तुतः कुछ मतलब ही नहीं होता। डपोरशंखी मामले से तो काम चलने का नहीं। बातों से काम नहीं होगा। साधारणतया जैसे अपने घर में सभी किसान रहते और सोते बैठते हैं। नहीं तो जीवन ही भार हो जाए यदि बराबर इधर-उधर घूमना या खानाबदोशी ही करना पड़े। ठीक उसी प्रकार अपनी आर्थिक और राजनीतिक रक्षा के लिए किसान सभा को लड़ाई का गढ़ बनाना तथा उसमें हरेक किसान स्त्री पुरुष का मेम्बर के रूप में दाखिल हो जाना कहीं ज्यादा जरूरी है। इसके बिना सभा में शक्ति आई नहीं सकती। फिर वह उनके हकों की रक्षा कर कैसे सकती है? नित्य कर्म, पाखाना, पेशाब आदि या खाना-पीना जितना जरूरी है उससे भी अधिक जरूरी है हरेक किसान औरत-मर्द के लिए किसान सभा का मेम्बर हो जाना।

जो लोग कान नहीं फुँकवाते—'गुरु मन्तर' नहीं लेते—गुरुमुख नहीं होते उनके लिए कहा जाता है कि 'बिनु गुरु भवनिधि तरै न कोई'। इसलिए सभी स्त्री-पुरुष 'गुरुमुख' होना अनिवार्य कर्तव्य मानते हैं और हजार कोशिश करके गुरुमन्तर लिये बिना नहीं रह सकते ! मगर 'गुरु मन्तर' के बिना जो हानि होने को है उसका तो ठीक-ठीक पता किसी को भी नहीं है। वह तो खयाली बात है। किसी ने स्वर्ग-नर्क देखा तो है नहीं। हाँ, गुरुओं को उसके बिना 'पूजा' और 'गुरु दक्षिणा' नहीं मिलेगी यह हानि जरूर है। मगर यह तो उन्हीं की है। चेलों को इससे क्या? लेकिन किसान सभा का सदस्य न बनने पर तो किसानों की हर तरह की तबाही और बरबादी, हर तरह की बेइज्जती बनी ही रहेगी। नहीं, नहीं वह तो बढ़ती ही जाएगी। यह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हानि तो भयंकर है और अगर इससे बचना है तो हरेक किसान को जो बालिग हो, जिसकी आयु 18 वर्ष की या अधिक हो, अविलम्ब किसान सभा का सदस्य बन जाना ही होगा। इस काम में खासी प्रतियोगिता तथा होड़ होनी चाहिए कि कौन पहले सदस्य बनता है और कौन पीछे। स्त्रियों और पुरुषों के बीच भी गहरी प्रतियोगिता इस सम्बन्ध में जरूर होनी चाहिए। मेरा तो दृढ़ विश्वास है कि जिस प्रकार बकाश्त संघर्ष में स्त्रियों ने आगे बढ़ के न सिर्फ पुरुषों का हाथ बँटाया है, प्रत्युत जहाँ वे ढीले थे अपने हाथों में उस संघर्ष को लेकर सफलतापूर्वक उसे चलाया तथा विजय प्राप्त की है वही बात मेम्बरी के बारे में भी होगी। किसान सभा का सदस्य बनने में भी वे अवश्य ही बाजी मार ले जाएँगी, ऐसी मेरी दृढ़ धारणा है। तभी किसानों का उद्धार हो भी सकता है।

इस सम्बन्ध में प्रबुद्ध तथा समझदार किसानों का, किसान सेवकों का, जवान एवं उत्साही किसानों को भी कुछ करना होगा। उन्हें इस बात की प्रतिज्ञा कर लेनी होगी कि जब तक हरेक बालिग स्त्री-पुरुष किसान अपने इलाके में किसान सभा के सदस्य नहीं बन जाते तब तक चैन न लेंगे। किसी भी स्त्री-पुरुष से मुलाकात होने पर उनका पहला प्रश्न यही होना चाहिए कि आप किसान सभा के सदस्य हैं या नहीं? और यदि वे सदस्य न बने हों तो फौरन ही बना लेना होगा। एतदर्थ किसान सभा की सदस्यता की प्रामाणिक रसीद बही हरेक के पास रहना निहायत जरूरी है। स्थानीय किसान सभाओं से इसका प्रबन्ध कर लेना होगा। किसान सभाओं का भी यह पहला फर्ज होगा कि उत्साही किसानों तथा किसान सेवकों के पास, जो ईमानदारी तथा पूरी लगन के साथ यह काम जरूर ही करें, ऐसी रसीद-बहियाँ जरूर रहें, इसका पूरा-पूरा इन्तजाम कर दें। जब तक हर रेलवे स्टेशन, स्टीमर, घाटों, ट्रेन, कचहरी, मेला, बारात, सभा, जमाव, हाट-बाजार वगैरह में धुनी लोगों के दल पहुँच-पहुँच के यह काम न करेंगे, जब तक हर बस्ती में ऐसे लोगों के लगातार दौरे न होते रहेंगे, यह नहीं होने का, यह याद रखना होगा।

सभी लोगों में इसकी धुन हो, इस बात की लगन हो, यही पहला काम किसान सभा के अपनाने का है। जब तक हमारे सर पर यह खब्त सवार नहीं हो जाता, जब तक हम में हरेक के मत्थे सदस्य बनने बनाने का यह पागलपन, यह भूत सवार नहीं हो जाता किसान सभा के अपनाने के कुछ मानी नहीं। जब तक मेम्बरी वाला यह पहला कदम फौरन उठा के शीघ्र से शीघ्र पूर्ण सफलता प्राप्त कर ली नहीं जाती, असली किसान सभा बन नहीं सकती। तब तक आगे के कदमों का सवाल उठी नहीं सकता।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पाँचवाँ भाग

10
अक्ल का अजीर्ण मिटाएँ

कहते हैं कि 'अति सर्वत्र वर्जयेत्'—कोई बात जरूरत से ज्यादा नहीं होनी चाहिए। ज्यादा हो जाने पर ही हर चीज बुरी हो जाती है। यह जरूरत से ज्यादा हो जाना ही, यह 'अति' ही बुराई का सबसे सुन्दर लक्षण है। नमक भोजन को स्वादिष्ट बनाने के लिए डाला जाता है। मगर ज्यादा पड़ने पर उसे ही मिट्टी में मिला देता है। इसी प्रकार अक्ल, समझ, चालाकी भी अच्छी चीज हैं। इनके बिना आदमी पशु बन जाता है, गधा कहा जाता है। उतना बड़ा जानवर जिसे 'हाथी' कहते हैं, अक्ल के ही बिना लोगों को पीठ पर ढोता फिरता है। यदि उसे अपनी शक्ति की परख और समझ होती तो ऐसा कभी नहीं होने देता और चढ़नेवालों को पाँवों तले रौंद देता। कहते हैं, पक्षियों में कौवा बड़ा ही चालाक माना जाता है। इसीलिए विष्ठा में भी चोंच डालता है। जो लोग बहुत बुद्धिमान नहीं होते, जिन्हें अक्ल का अजीर्ण नहीं होता, उनके पाँवों में यदि कोई गन्दी-सी चीज चिपकी तो वे फौरन पाँवों को धो डालते हैं। विपरीत इसके ऐसा बताते हैं कि जो लोग ज्यादा होशियार होते हैं वे उस गन्दी चीज को उँगली से उठाकर सूँघते हैं, कि क्या चीज है? फलतः केवल पाँव की जगह पाँव, उँगली और नाक इन तीन जगहों में वह गन्दगी लगती है। इसीलिए बुद्धिमानी की बदहजमी बुरी चीज है। ज्यादा अक्लमन्द नहीं बनना चाहिए। खासकर किसानों को तो उससे ही बहुत हानि हुई और हो रही है।

पुरानी कहावत है कि 'भोंदू भाव जाने, पेट भरे से काम'। कितना सुन्दर हो यदि कमाने वाले लोग—किसान वगैरह—इसी पर अमल करें और ज्यादा होशियारी न दिखाएँ। जब हम किसानों को समझाते हैं कि तुम्हीं तो गेहूँ, बासमती, घी, मलाई पैदा करते हो। तो फिर भूखों क्यों मरते हो ? उन चीजों को खाते क्यों नहीं? क्या किसी ने तुम्हारा मुँह सी दिया है? या हाथों को हथकड़ियाँ जकड़े हुई हैं? पेट भरना तो दुनिया में पहला काम है। तुम्हारा बैल पहले पेट भरता है, पीछे काम करता है—हल और गाड़ी खींचता है। खाली पेट हो तो चारों पाँव चित हो जाता है। तुम उसे ही गुरु क्यों नहीं बना लेते? रोज गुरु बनाने और चेला बनने की पुकार गाँवों में मचती रहती है। तो क्या किसान के बैल से भी अच्छा गुरु पेट भरने की शिक्षा देने वाला कहीं मिलेगा? खेतवाले हजार चिल्लाते रहें मगर छूटा हुआ पशु दौड़ के कुछ न कुछ खा तो ही लेता है। पीछे उस पर मार भले ही पड़े। मगर पहले पेट तो भर लेता है। पेट का दुःख तो सबसे बड़ा है। इसलिए मार की परवाह नहीं करता। उसे ही किसान अपना परम गुरु पेट भरने के मामले में क्यों नहीं बनाते? आखिर दत्तात्रेय

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

महाराज जो बड़े महात्मा थे। फिर भी उन्होंने पूरे चौबीस गुरु बनाए थे, जिनमें पशु, पक्षी सभी थे। जिनके ही कामों से उनने कुछ सीखा, उन्हें ही गुरु मान लिया।

इस पर किसानों की और उनके लीडरों की भी दलीलें शुरू हो जाती हैं। वे बाल की खाल खींचने और वकालत करने लग जाते हैं कि तब तो जमीन ही नीलाम हो जाएगी, घर बार ही जब्त हो जाएगा, जेल जाने की भी नौबत आ सकती है आदि-आदि। लेकिन यह 'अक्ल की अति' नहीं, उसका अजीर्ण नहीं तो और है क्या? आखिर इन दलीलों का निचोड़ यही है न कि खा लेने के बाद पीछे आफतें आएँगी? तो क्या दूसरों के खेत चरके पेट भरने वाले पशुओं पर मार-पीट की बला नहीं आती? क्या वे खदेड़ कर काजीहौस, मवेशीखाने या अड़गड़े में डाल नहीं दिए जाते जहाँ भूखों मरते रहते हैं। क्या उन्हें इसकी समझ नहीं होती? या वे डंडे देख के भागते नहीं कि मार पड़ेगी? समझ तो उन्हें भी होती ही है। 'हित अनहित पशु पक्षिहु जाना'। पशुओं को तो अपना खूँटा, अपना घर-वगैरह इतना ज्यादा याद रहता है कि अन्धेरी रात में कितनी भी दूर ले जाके छोड़िए तो भी चले आते हैं। मगर क्या मार-पीट के खयाल से और अड़गड़े में डाले जाने के भय से भूखे होने पर भी वे औरों के खेत और फसलों को चर नहीं डालते? क्या ऐसा करने में वे जरा भी हिचकते हैं?

यह भी दलील दी जाती है कि इक्के-दुक्के किसान यदि ऐसा कर भी लें तो उससे होगा ही क्या? माना कि उनने अपने गेहूँ, चावल, घी, दूध को पहले खा लिया। तो इतने से तो न तो दुनिया ही पलट जाएगी, न कानून ही बदल जाएगा और न सामूहिक रूप से उनके कष्ट ही कम हो जाएँगे, दूर हो जाएँगे। प्रत्युत जो शुरू में ऐसा करेंगे वे कानून के द्वारा तबाह बर्बाद कर दिए जाएँगे। फलतः बाकियों की हिम्मत ही टूट जाएगी। और आगे बढ़ने की आशा पर पानी ही फिर जाएगा। इसलिए जब तक सामूहिक रूप से ऐसा न किया जाए, कोई भी असर न होगा और न जमींदार वगैरह डरेंगे ही। जब सभी या ज्यादा किसान एक साथ ऐसा करने लगें तभी कुछ काम हो सकता है, तभी सरकार तथा जमींदार के घर में हड़कम्प पड़ सकती है। यह बात न सिर्फ किसान कहते हैं, बल्कि उनके नेता और कार्यकर्ता भी ऐसा ही बोलते हैं।

मगर यह तो वही बुद्धिमानी की बदहजमी जिसे वे लोग और खासकर नेतागण मिटाना चाहते हैं ऐसी बेहूदी दलीलें देकर। अभिमान तो उन्हें बहुत बड़ा है कि खूब अक्ल और होशियारी की बातें करते हैं। मगर उन्हें पता ही नहीं कि ऐसी दलीलें पेट भरने के बाद ही सूझती हैं। पेट के बारे में इनकी गुंजाइश नहीं है। दलीलें देनेवालों के पेट खाली हों और कई दिन से उन्हें अन्न न मिला हो तो ये बातें न जाने कहाँ घुस जाती हैं, न जाने कहाँ काफूर हो जाती हैं। ये दलीलें ही साबित करती हैं कि ऐसे बकवास करनेवाले भूख की तकलीफ को, उसकी आग को जानते ही नहीं; उसका उन्हें अनुभव ही नहीं। नहीं तो मुँह खोलने की भी हिम्मत नहीं होती। कही तो चुके हैं कि जब पेट में आग लगी हो तब वे यदि ऐसी बातें बोलें तो माई के लाल ही

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

माने जाएँगे। उन्हें होश नहीं कि आखिर गैरों के खेत को चरनेवाला पशु क्या अपना दल बना के खेत में जाता है? क्या वह पहले जंगल या गाँव के पशुओं की सभा तथा पंचायत करता है? क्या वह सबके दरवाजे-दरवाजे पहले फेरी लगाता है कि चलो सभी मिलके दल बाँध के चरने चलें, खेत खाने चलें? या कि भूखा होने पर खुद अकेला ही खेत की ओर दौड़ पड़ता है? वह तो समूह की या किसी एकाध साथी तक की परवाह नहीं करता और अकेला जा धमकता है? खेत का मालिक वहाँ चिल्लाता ही रहता है। फिर भी नहीं मानता और फुर्ती से कुछ गफ्फे तो उड़ा ही लेता है। पीछे चाहे जो हो।

यदि वह दल बाँधने की कोशिश करता तो क्या यह बात हो सकती? एक तो दल बनना ही असम्भव। जब वह खुद डरपोक है और आगे बढ़ने की उसकी अकेले हिम्मत ही नहीं होती, वह औरों को रास्ता दिखा सकता नहीं, तो उसकी बात में कौन पशु पड़ता? कोरी बातें सुनता कौन है? और यदि सुने भी तो मानता कोई नहीं। बातों से ज्यादा तो उनके अनुसार अमल चाहिए। तभी गैरों पर असर पड़ता है। यदि वह सिर्फ बातें करने और लेक्चर देने लगे कि चलो खाएँ तो सुनने वाले कहेंगे कि यदि यह भूखा है और भूख मिटाने का यही रास्ता है तो खुद उस पर पहले चलता क्यों नहीं? भूख में लेक्चर देने की क्या बात? हो न हो, दाल में कुछ काला है।

दूसरी बात यह है कि जब तक इधर दल बनेगा, समूह सजेगा तब तक खेत वाले सजग ही हो जाएँगे। आखिर समूह की तैयारी गुपचुप हो सकती नहीं। पका पकाया खाना तो है नहीं कि घर में बैठ के चुपके से उड़ा लेंगे। यह तो उपदेश, व्याख्यान और प्रचार की बात ठहरी। इसमें तो हंगामा और शोर जरूर ही मचेगा। फलतः सभी खेतवाले चौकन्ने हो ही जाएँगे। फिर तो खाने की हिम्मत करने वालों को केवल डंडे ही मिलेंगे। दूसरी चीज की आशा वे कर नहीं सकते। ऐसी बात, जैसे हो तैसे पेट भरने की बन्दिश, डंका पीटकर की जाती नहीं। यह तो परले दर्जे की नादानी हो जाएगी।

हाँ, जब वही पशु धीरे से बिना जबान हिलाए ही खेत में खाना शुरू कर देता है तो उसकी देखा-देखी दूसरे भी एके बाद दीगरे पहुँच ही जाते हैं, यदि मौका लग गया और इस दरम्यान में खेत का दावेदार पहुँच न गया। इस प्रकार उस पशु के मौन व्याख्यान, अमली लेक्चर का, 'कह सुमझे कि कर दिखाऊँ' का स्वस्थ असर हो गया और दान या समूह आखिर बनी गया। किसानों के नेताओं को उस पशु से ही पाठ पढ़ना होगा, कम से कम पेट के मामले में, और सीखना होगा कि अपना दल कैसे बनाया जाता है। वह पहले बनता है, पीछे काम होता है और पेट भरा जाता है, या कि पहले पेट ही भरा जाता है और उसी पेट भरने के सिलसिले में ही समूह और मिरोह अपने आप देखा-देखी बन ही जाता है। उसे कोई रोक नहीं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सकता। जरूरत है केवल रास्ता दिखानेवाले की, जो बातें करने की अपेक्षा अलग करना ही जानता हो।

गिरोह या दल तो एकाएक कभी बनता नहीं। उसका तो कायदा ही है कि कोई आगे बढ़ता है और एक-एक करके उसके पीछे आते जाते हैं। इसमें तो धुनी और लगनवाले की जरूरत है जो बात को समझ के आगे बढ़े जो किसी भी बला की, किसी की भी परवाह रत्ती के भी न करे और बढ़ता ही जाए। फिर तो उसमें चुम्बक की-सी आकर्षण शक्ति खुद आएगी और धीरे-धीरे बहुतों को बलात घसीट लाएगी—इच्छा न रहते हुए भी खींच लाएगी। आखिर चुम्बक इच्छा का पता लगाता फिरता थोड़े ही है। ऐसे मामलों में आगे बढ़ना तो खतरनाक है। और खतरे का सामना करने को कोई तैयार नहीं होता, चाहे हजार लेक्चर देते जाइए, जब तक अपनी आँखों नमूना देख न लें कि कोई माई का लाल किस मर्दानगी के साथ खतरों की परवाह न करता हुआ आगे बढ़ता जा रहा है। संसार में पथ दर्शकों का दल कभी पैदा नहीं हुआ। यहाँ तो नियम ही ऐसा है कि ऐसे लोग बिरले ही होते हैं। मगर वे होते हैं धुन के पूरे। इसलिए उनका दल तैयार हो ही जाता है। समाज एक जंजीर में बँधा हुआ है। वह कुछ ढीली जरूर है। इसी से लोग इधर-उधर बहकते हैं। मगर यदि हिम्मत करके कोई एक ही तरफ बढ़ता जाए तो आखिर ढीली जंजीर तन जाएगी ही। अतः वह बाकियों को अन्ततोगत्वा अपनी ही तरफ बलात् खींच ही लेगा। यही होगा कि कोई उससे कुछ दूर होगें और कोई उसके अत्यन्त पास।

असल में खाना तो किसान के पास हई। वही तो उपजाता है। वही तो उसका धनी है। मगर जैसे कस्तूरी मृग की कस्तूरी उसके पास रह के और उसी में पैदा हो के भी गैरों के काम आती है और उसे उससे कुछ भी फायदा नहीं होता। क्योंकि उसका प्रयोग करना वह जानता नहीं। असल में वह कस्तूरी को भूल गया है। ठीक वही हालत किसान की है। वह खाना भूल गया है, गो वही उसे पैदा करता है, उसी के पास होता ही है खाना। फलतः उसे दूसरे ही हड़प जाते हैं और वह टुकुर-टुकुर ताका करता है। यह अजीब अप्राकृतिक-अस्वाभाविक समाँ है। मगर उस पर किसी को भी आश्चर्य नहीं होता। इधर किसी की दृष्टि नहीं जाती। हालाँकि बड़े-बड़े दिमागदार लोग इस दुनिया में हैं। और अगर किसी की जाती है भी तो जो इसका रहस्य किसानों को समझाने लगता है, तो वह नक्कू बताया जाता है और दुनिया उसे काटने दौड़ती है। दुनिया आज ज्यादा तरक्की कर गई है ऐसा बताया जाता है। कहा जाता है कि वह बराबर ही तरक्की करती जा रही है। साइंस और विज्ञान उत्तरोत्तर सपुन्नत होते ही जाते हैं। मगर जिस हिसाब से वह तरक्की कर रहे हैं ठीक उसी हिसाब से उसी अनुपात से यह किसानों और कमानेवालों की भूख भी बढ़ती जा रही है, तरक्की कर रही है। ठीक उसी हिसाब से किसानों की कमाई छिनी चली जा रही है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इसका उपाय क्या है? इसका एक ही रास्ता है कि जो अक्ल के घमण्ड में इस लूट को, इस भयंकर शोषण को ही उचित और जायज ठहराते हैं, जो इस महज नाजायज चीज को जायज साबित करने के लिए पोथे पर पोथे तैयार करते जा रहे हैं उन्हें तमाँचे लगें। ताकि वह समझने को बाध्य हों कि उनका खयाल, उनका रास्ता गलत है। 'उलटे चोर कोतवाल को डाँटे' के अनुसार जो लोग इस लूट को नाजायज बताने और किसानों को खाने का पाठ पढ़ाने में लगे हुए लोगों को ही बेवकूफ, नादान और बदमाश कहने की हिम्मत करते हैं और अक्ल बघाड़ते हैं उनकी इस बदहजमी को, उनकी अक्ल की इस अकड़न तथा अपच को मिटाना होगा। दूसरा रास्ता है नहीं। मगर क्या वह अपच किसानों और किसानों के व्याख्यानों और लेक्चरों से मिटेगी? क्या हम सोचते हैं कि सभा-सोसाइटी करके और दल बाँध के हम उनकी इस बदहजमी को मिटा सकेंगे? उनके पास तो अक्ल का भंडार है। वह तो हम से हजार गुना ज्यादा लेक्चर दे सकते हैं, दिला सकते हैं। यदि हम एक सभा करें तो वह विरोध में हजार कर डालेंगे। अगर हमारी सभा में सौ आदमी आएँ तो वे लाखों को जमा कर लेंगे। उनके पास इसके लिए पर्याप्त साधन मौजूद हैं। उनके पास इसका जादू है ऐसा कहने में जरा भी अत्युक्ति नहीं। फलतः लेक्चरों और उपदेशों से तो हम पार पा सकते नहीं। उसमें तो हार जाएँगे जरूर ही। उनके पास तो मशीनगनें हैं, राइफलें हैं, बन्दूकें हैं, तलवारें हैं, पुलिस है, फौज है। जब तक हम समूह बनायें तभी तक हमें ध्वंस करने में वे लग जाएँगे—आतंक फैला देंगे।

तो फिर क्या हो? किसान के पास तो भैंस होती है। उसने, हमने, सबने देखा है कि हजार लेक्चर दीजिए, मगर उस पर उसका कुछ असर नहीं होता है। कहते भी हैं कि 'भैंस के आगे बीन बजाए सो बैठी पगुराए।' वह तो चुपचाप खाती है और बैठी-बैठी उसे पगुराती है, उसे हजम करती है। ठीक उसी प्रकार जनता फौजदारी, दीवानी, कानून, नीलामी, जब्ती आदि की नोटिसें मिलती रहें, धमकियाँ पड़ती रहें, हंगामा मचता रहे। मगर किसान पर इस बात की जरा भी परवाह न हो। वह तो गैरों को लूटने जाता नहीं। वह तो अपनी गाय-भैंस का ताजा दूध दुहने को समय ही खुद पी लेता और बाल बच्चों को पिलाता जाता है। वह तो अपने हल-बैल से—अपने परिश्रम से—जोती-बोई जमीन में पैदा किए गए गेहूँ को, बासमती को बेखटके भोग लगाता जाता है। वह पड़ोसी की भी राय लेने नहीं जाता। कौन ठिकाना, जब तक राय लेने गया तभी तक लूटनेवाले कहीं लूट ले गंए तो? तब तो हाथ मलना और पछताना ही होगा। पूछने की बात भी इसमें क्या है? खाने में तो भगवान और देवताओं को भी नहीं पूछते हैं। इसीलिए तो कहा जाता है कि 'पाँच कौर भीतर तब देवता और पीतर'। यही है 'सौ वक्ता को एक चुप हराए' का असली अर्थ, किसान वाला मतलब।

यह तो अत्यन्त सीधा-सादा मामला है। यदि हम, यदि किसान को, जाब्ता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

फौजदारी और काश्तकारी कानूनों की जानकारी न होती, यदि उसके दिल दिमाग पर उन कानूनों का आतंक न रहता तो क्या वह गेहूँ, चावल खा जाने या दूध, घी का खुद ही इस्तेमाल कर लेने में जरा भी हिचकता? क्या वह एक मिनट के लिए भी सोचता कि इन पदार्थों को औरों के लिए भी रख लूँ या औरों के लिए बचा रखूँ? जो लोग असभ्य की जिन्दगी बिताते हुए घोर जंगलों में निवास करते हैं वह भी तो आखिर दूध देनेवाले या दूसरे पशु पालते ही हैं। लेकिन क्या उनके दूध, घी गैरों के लिए कभी रखते हैं? क्या जमीन से जो कुछ भी वे पैदा करते हैं वह खुद खा जाते नहीं? और अगर वे ऐसा करते हैं तो उसका कारण क्या है? यही न कि वे असभ्य हैं? कानून-वानून कुछ नहीं जानते? भोंदू हैं और उन्हें तो पेट भरने से काम है? यदि उन्हें भी अक्ल होती जैसी कि किसानों को है, यदि वे भी कानूनों को समझते रहते और मानते रहते कि सरकार को भी कुछ देना है तो सचमुच उस प्रकार बेखटके अपनी कमाई खा-पी जाते जिस प्रकार अनजान की दशा में करते हैं?

जिन पशुओं की चर्चा खेत चरने के सिलसिले में की गई है उन्हीं की बात लीजिए। वे क्यों ऐसा करते हैं? वे गैरों के खेतों तक पर धावा क्यों बोल देते हैं ताकि पेट भरे? यही न कि जिस व्यक्तिगत सम्पत्ति की पवित्रता की घोषणा कानून करता है और उसकी गारण्टी के लिए ही उसकी हस्ती है उसे वे नहीं जानते? जहाँ तक पेट भरने का सवाल है वहाँ तक व्यक्तिगत या सार्वजनिक सम्पत्ति का प्रश्न है उनके दिमाग में कभी आता ही नहीं। वे इस बात को जान ही नहीं सकते कि औरों को भूखों रखके भी सम्पत्ति के संचय का हक किसी को है। उनकी तो सीधी और स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि सबसे पहले पेट भरना जरूरी है। जब सबों के पेट भर लें तो उसके बाद ही सार्वजनिक, सामूहिक या वैयक्तिक सम्पत्ति का सवाल उठ सकता है। इसीलिए वे आँख मूँद के अपनी उदरपूर्ति करने में लग जाते हैं। लेकिन महज नादानी के ये सभी पँवारे यदि वे भी जानते रहते तो क्या कदापि ऐसा कर सकते थे? यदि उन्हें जरा भी पता रहता कि ऐसे कानून हैं तो क्या उनका पाँव खेतों की ओर बढ़ता? आदमी तो झूठ-साँच और बहानेबाजी करके उन कानूनों के जाल से बच सकता है, बचने की कोशिश कर सकता है। मगर पशु तो ऐसा करने में असमर्थ हैं। इसलिए वे तो धीरे से दबक जाते और भूखों मरते।

लोग कहते हैं कि मनुष्य इस सृष्टि का रत्न है, 'अशरफुल्म खलूकात' है। उसके पास अपने हित-हित और बुरे-भले की पहचान की शक्ति है, ज्ञान है, बाकी बातें तो पशु जैसी ही हैं, उसमें भी। केवल इस ज्ञान के करते ही वह पशु आदि से श्रेष्ठ माना जाता है—'आहार निद्रा भय मैथुनादि, समानि चैतानि नृणां पशूनाम्। ज्ञानं हितेषामधिको विशेषो ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समानाः।' खाना-पीना गो पशुओं जैसा ही मनुष्यों में है। मगर ज्ञान ने उन्हें ऊँचा कर दिया है और अगर वही ज्ञान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उनमें न रहे तो पशुओं से उनमें फर्क ही क्या? मगर क्या यह बात सही है? क्या मनुष्य पशुओं जैसा भी खाना-पीना जानते हैं? तब तो भूखों मरते ही नहीं। और इस ज्ञान ने उन्हें पशुओं से श्रेष्ठ बनाया है या बदतर? यह तो उनके लिए बला हो गया है। यही तो उन्हें भूखों मारने वाला साबित हो रहा है, न कि श्रेष्ठ बनाता है। हाँ, यदि जीवन के लिए सबसे जरूरी और ज्ञान-विज्ञान के भी मूल कारण और बाप—इस भोजन के बारे में मनुष्यों से पशु अक्ल सीखते तो बेशक एक बात थी। मगर यहाँ तो उलटी बात है। हमीं को उनसे सीखना है। कम से कम कमानेवालों को तो जरूर ही सीखना है। हमें नाहक, अक्ल का अभिमान है।

हमने आमतौर से देखा है कि देखने में जो महज बुद्धू और नादान मालूम होते हैं जिन्हें बातें करने का शऊर तक नहीं है वैसे देहाती लोग भी जब किसी साधु-महात्मा से बातें करते हैं तो बराबर कहते हैं कि साधु-फकीर का यह धर्म है, वह धर्म है, आप गलत काम करते हैं, यह ठीक नहीं है आदि-आदि। लेकिन जैसे अजीर्ण या अपच की दशा का अन्त शरीर का पोषक न हो के उसे मारने या हानि पहुँचाने वाला ही होता है, रोगों का कारण बनता है, ठीक उसी प्रकार उन्हें भी अक्ल का अजीर्ण हो गया है। उनकी यह अक्ल अपच के रूप में उन्हें मारनेवाली सिद्ध हो रही है। नहीं तो भला खुद तो पशु से भी गए-गुजरे बनें और भूखों मरने की नादानी बराबर करें और साधु-फकीरों को अक्ल सिखाएँ। सो भी सिखाना कैसा कि मौके पर बेकार। जब वही साधु-फकीर उनके दरवाजे पर प्लेग की तरह जा धमकते हैं और गांजा, भंग वगैरह की माँग पेश करते हैं तो वह बदहजमी वाली बुद्धि कुछ भी काम नहीं करती। फलतः जहाँ उन्हें गर्दनियाँ दे के निकाल बाहर करना चाहिए वहाँ उलटे कुछ न कुछ देकर पाँवों पड़ते और पिण्ड छुड़ाते हैं।

कहते हैं कि बच्चों को बुद्धि नहीं होती। इसलिए वे गड़बड़ी करते रहते हैं। मगर जब उन्हें भूख लगती है तो क्या सोचने जाते हैं कि घरवालों के पास कुछ है या नहीं? वे तो चाहे जैसे हो अपना पेट भरना चाहते हैं। घरवालों को भी हजार कोशिश करके भरसक उन्हें सन्तुष्ट करना ही पड़ता है। नहीं तो उनकी चीख-पुकार बन्द होती ही नहीं। जब भूख किसी से भी समझौता या रिआयत करने के लिए जरा भी रवादार नहीं होती, और अगर अन्न न मिले तो खून, मांस, हड्डी तक खाना शुरू कर देती है, तो फिर समझदार कहे जानेवाले किसान क्यों उस मामले में जरा भी रिआयत या समझौता किसी से करें ? वे क्यों सरकार, कानून, जमींदार, साहूकार या भगवान की भी परवाह इस मामले में करें? लड़के-बच्चों से ही इस बात में उन्हें सीखना होगा।

नामदेव नामक एक लड़के की कहानी है। कहते हैं, वह बड़ा ही सीधा-सादा था। मगर उसके पिता भारी पण्डित थे। घर में एक ठाकुरबाड़ी थी। पिताजी प्रतिदिन ठाकुरजी की पूजा करते रहते थे। लड़का देखता रहता था। पूजा और भोग के बाद

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रोज ही ठाकुरजी के भोग का मिश्री मिला दूध उसे मिला करता था। इसलिए पूजा को बहुत ही लाभदायक चीज समझता था। एक दिन पिताजी को किसी जरूरी काम से बाहर जाना पड़ा। उनने नामदेव के जिम्मे ठाकुरजी की पूजा का भार सौंपा और ताकीद कर दी कि कोई गलती न हो। नहीं तो ठाकुरजी रंज हो जाएँगे। लड़के ने खुशी-खुशी बात कबूल कर ली। उसने समझा कि चलो भोग के बाद पूरा दूध मैं ही पिऊँगा। कोई हिस्सेदार न रहेगा। दूसरा कोई था नहीं। केवल पिताजी ही हिस्सा लेते थे। सो चले ही गए।

उसने तड़के उठ के नहाने-धोने के बाद ठाकुरजी को भी विधिवत् नहलाया, धुलाया, चन्दन पुष्पादि चढ़ाया और आरती-प्रार्थना की। फिर कटोरे में भर के मिश्री मिला गाढ़ा दूध—उसने ठाकुरजी के सामने रख दिया और हाथ जोड़ के कहा कि पूजा में लड़के से भूल हो गई हो तो क्षमा कीजिए—यह दूध पीजिए। फिर नियमानुसार द्वार का पर्दा गिरा के बाहर आ गया कि ठाकुरजी निश्चिन्त होके पीएँ। थोड़ी देर बाद भीतर जाके जो देखता है तो दूध ज्यों का त्यों पड़ा है! अब तो वह घबराया कि पूजा में गड़बड़ी हो गई है। इसी से रंज हो के ठाकुरजी दूध पी नहीं रहे हैं। हो न हो, पिताजी से कह देंगे और वह मुझे पीटेंगे। उसकी बुरी गत थी! रोया-गाया। क्षमा कराई और हाथ जोड़कर आरजू की कि महाराज, क्षमा करें, पी लें। फिर पर्दा डाल के बाहर गया। थोड़ी देर बाद देखता है तो दशा पूर्ववत् है। अब तो कुछ पूछिए मत। उसने मान लिया कि कोई भारी भूल जरूर हो गई है। ठाकुरजी न मानेंगे। पिताजी के आते ही सब बातें उनसे भी कही देंगे। फिर तो मुझ पर बड़ी मार पड़ेगी। ऐसा सोच के जार-जार रोने लगा। मगर ठाकुरजी तो ठेठ पत्थर ही ठहरे। वे कब पसीजने वाले थे। जब आदमी कहे जाने वाले जमींदार मालदार आदि नहीं पसीजते तो कहा जाता है कि इनका दिल पत्थर है। मगर यहाँ तो खुद पत्थर ही ठहरा।

इसलिए हार के वह ऊब गया और छुरी निकाल के पेट में भोंकने को तैयार हो गया कि मरी जाना ठीक है, बनिस्वत गधे की तरह पीटे जाने के। ज्यों ही ऐसा करना चाहा कि देखता है कि ठाकुरजी का हाथ कटोरे पर आ गया और दूध उठा के पीने लगे। फिर तो वह रुक गया। जब आधा दूध ठाकुरजी पी गए तो झपट के उसने यह कहते हुए कटोरा छीन लिया कि वाह, वाह, पिताजी आधा कटोरा दूध तो प्रतिदिन मुझे देते थे ही। आज आप रंज होके मेरा हिस्सा पीने चले हैं ! यह नहीं होगा। पिताजी का हिस्सा पी गए तो पी गए। मगर अपना पीने हर्गिज न दूँगा। उसके बाद आधा कटोरा दूध खुद पी गया। किसानों की हालत यह है कि नामदेव के पिता की तरह अपना और अपने बाल बच्चों का भी हिस्सा नए ठाकुरजी लोगों को—जमींदारों तथा मालदारों को—दे डालते हैं। बुद्धि की बदहजमी जो ठहरी। उन्हें अब नादान नामदेव बनना ही होगा। नहीं तो खैर नहीं। यह 'आप मियाँ मँगनी द्वारे दरवेश' वाली हालत अच्छी नहीं है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

किसान ने एड़ी-चोटी का पसीना एक करके खून को पानी बना के—खेती की—खेत को जोता-कोड़ा। उस खेत को, जिसे न तो जमींदार ने ही बनाया है और न तो सरकार या मालदार ने ही। वह तो प्रकृति का, कुदरत का या भगवान का ही बनाया है जिस पर किसान का भी उतना ही हक है जितना औरों का। बल्कि किसान का ही पूरा हक है, न कि दूसरों का। क्योंकि वही जोत-बो सकता है और बिना जोते-बोए तो खेत बेकार ही है। उसी प्रकार जैसे गाय के दूध पीने और उसके थन में लगने का हक उसके बछड़े ही को है। क्योंकि बिना उसके लगे दूध निकल सकता ही नहीं। मगर उसकी पैदावार—उपज—वह भोग नहीं सकता। वह तो पहले जमींदार, सरकार या साहूकार के पास ही जाएगी। उनके बाद ही, यदि बचे तो, किसान को मिलेगा! क्यों? कानून और न्याय का ऐसा कहना जो है। क्या खूबी है! गाय के थन में बछड़ा लगे सही। मगर उसका दूध मुँह में न जाने दे! क्यों? गाय का मालिक दूसरा जो बन गया है और उसे दूध की सख्त जरूरत जो है। मगर क्या बछड़ा कभी इस बेहूदे न्याय और कानून के पचड़े में पड़ता है? वह तो जितना पी सके पीता है जब तक जबर्दस्ती हटा न दिया जाए! उसे तो अक्ल का अजीर्ण है नहीं कि इस न्याय व्याय के ढकोसले में पड़े। तो क्या किसान को पेट के मामले में अक्ल की जरूरत है या बछड़े जैसी पशुता की? उसमें यह बात कब आएगी? कैसे आएगी?

यदि कोई आदमी किसान को समझाने जाए कि खेत और खलिहान में फसल तैयार होने पर भी नाहक ही क्यों खुद तथा बाल बच्चों को भूखों मारता है? खाता-पीता क्यों नहीं है? तो चट उत्तर देता है कि राम, राम, मालिक का जमींदार का हक न दे के पहले ही कैसे खा लूँ? उसकी मर्जी और आज्ञा के बिना एक अन्न भी कैसे छूऊँ? चोरी कैसे करूँ? अधर्म पर लात कैसे दूँ? यह भी नहीं कि वह अपने को इस मामले में भूला भटका मानता हो। वह तो काफी समझदार अपने को मानता है। उसे गर्व है, फख्र है कि पोथी-पुरान पढ़-सुन के ही उसने यह बात सीखी है—यह न्याय तथा धर्म का मार्ग पकड़ा है। इसीलिए उसे छोड़ नहीं सकता। जैसे ऊँट किसी चीज को पकड़ लेने पर आसानी से छोड़ नहीं सकता ठीक वैसे ही उसने भी हक, धर्म और न्याय की बात पकड़ रखी है। जनसाधारण भी इसी की ताईद, इसी का समर्थन करते हैं।

मगर है यह वही अक्ल का अजीर्ण! माना कि जमींदार का हक उसमें है। मगर सवाल तो यह है कि क्या किसान के बच्चों का—उसके परिवार का—और खुद उसका उसमें जरा भी हक नहीं है? क्या टिड्डी, तोते, कीड़े, चूहे वगैरह के बराबर भी उसका हक उस फसल में नहीं है। आखिर चूहे, पशु, आदि तो अपना हक ले ही लेते हैं। वह तो मालिक का हुक्म लेने भी नहीं जाते! तो फिर किसान के परिवार का हक क्यों नहीं है? वह लिया भी क्यों न जाए? आखिर उसी ने तो कलेजे का खून सुखा के वह फसल तैयार की है! फिर उसे मेहनताने का भी हक नहीं? और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अगर है तो उसे प्राप्त करना क्या न्याय और धर्म नहीं है? यदि जमींदार उसमें बाधा डालता है तो उसका मुकाबला करना क्या धर्म नहीं? और जो इस प्रकार अधर्म तथा अन्याय पर उतारू हो उसके साथ क्या यही बर्ताव उचित है कि हाथ पर हाथ धरे बैठे रहें? यदि यही बात हो तो 'जिन मोहिं मारा तेहि मैं मारा', 'शठे शाठ्यं समाचरेत्' कहाँ लगेगा? यह किसके लिए है? क्या सीना जोरी करने वाले को दुरुस्त करना महान् धर्म नहीं है? तो क्या दिन-रात जबर्दस्ती और सीना जोरी पर उतारू जमींदार के साथ रिआयत करना न्याय है? या कि जैसे हो तैसे उससे अपना हक बचा लेना ही धर्म और न्याय है?

यदि बाल-बच्चे इसके करते भूखों मरते, बीमारी से घुल-घुल के मर जाते, चिथड़े में पड़े सड़ते और काँपते हैं, औरतें वस्त्र के बिना नग्न प्रायः आत्महत्या कर लेती हैं तो भी इसे चोरी कहना और खेत-खलिहान से फसल उठा के खा-पी लेने को अधर्म या अन्याय कहना क्या पागलपन नहीं है? जमींदार के बाल-बच्चे तो भूखों मरते नहीं और न दवा के बिना या चिथड़े में लिपटे कराहते हैं। उनकी औरतें लज्जा बचाने के लिए आत्महत्या भी नहीं करती हैं। फिर उन्हें क्या गर्ज पड़ी है कि किसान को खाने-पीने की आजादी दें? 'जाके पाँव न फटै बिवाई। सो क्या जाने पीर पराई?' फिर नाहक ही जमींदार की देखा-देखी कि वह धर्म और न्याय की दुहाई देता है, किसान क्यों पाँचवाँ सवार बनने चला है? घोड़ों के पाँवों में नाल लगते देख मेढक क्यों नाहक ही नाल लगाने के लिए पाँव उठाने लगा है? उसमें तो जमींदारों को फायदा है। मगर किसान तो इससे बरबाद होता है। तब इस अक्लमन्दी की बेहूदा ठेकेदारी को उठा फेंकना क्यों न चाहिए?

धर्म और न्याय की रट बार-बार लगाई जाती है—इतनी अधिक कि सुनते-सुनते तबीयत ऊब गई है। जिन्हें बात बोलने की भी तमीज नहीं, जो 'लिख लोढ़ा, पढ़ पत्थर' हैं वह भी जब धर्म और न्याय की बात छाँटते हैं तो जी चाहता है कि धरती फट जाए और उसमें ही समा जाएँ, ताकि ऐसी नादानी, ऐसा पागलपन देखने का मौका ही न लगे। लेकिन हम पूछना चाहते हैं कि पेट भरेगा अन्न से या धर्म और न्याय से? तन ढँकेगा वस्त्र से या धर्म और न्याय से? रोग हटेगा ओषधि से या धर्म और न्याय से? यदि धर्म और न्याय से ही यह बातें होने को होतीं तो औलिया, महात्मा और पैगम्बर, अवतार और ऋषि-मुनियों को भूख, प्यास, बीमारी वगैरह की तकलीफ कभी हुई न रहती। और धर्म की दोहाई देते-देते पागल बने किसान के परिवार की ऐसी तबाही और दुर्दशा भी न होती रहती। आखिर संसार का सारा काम भगवान, धर्म और न्याय ही कर डालेंगे तो फिर अन्न, वस्त्र और ओषधि पैदा होने की जरूरत ही क्या थी? और अगर इतने पर भी किसान यदि समझता है कि उसने आज तक जो किया है या आज जो कुछ वह कर रहा है वही बुद्धिमानी और समझदारी है, तो जितना जल्द इस समझदारी को सलाम कर लिया जाए और उससे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पिण्ड छुड़ाया जाए उतना ही अच्छा।

किसानों को जो बुद्धिमानी पर नाज है, वे जो इस बुद्धिमानी को मानव जीवन की सार्थकता के लिए जरूरी समझ इस पर अभिमान करते हैं। वह कोई नई बात नहीं है। संसार में नादानी को ही बुद्धिमानी समझने वालों की कमी कभी नहीं रही है। मगर जो बुद्धिमानी व्यावहारिकता से दूर हो वह बहुत ही खतरनाक है। उसने हमेशा धोखा दिया है। जो उसके फन्दे में पड़े हैं वह बरबाद हो के ही रहे हैं। यह अक्लमन्दी का जादू लक्ष-लक्ष जीवों को मिटा चुका है। जाने कितने घरों को, महलों को खण्डहर बना चुका है। यही किसानों को भी मिटाने पर कमर कसे बैठा है। लेकिन यदि उन्हें मिट जाना नहीं है तो इस मर्ज को हटाएँ।

हितोपदेश की एक कहानी है। किसी खूब गहरे गढ़े में दो बड़ी-बड़ी मछलियों के साथ मेढक और मेढकी—यही चार रहते थे। आमतौर से उसका पानी कभी सूखता न था। मगर एक साल घोर अवर्षण होने से उसका पानी सूख चला। फलतः गर्मी आते न आते मेढक नर-मादा को घबराहट हुई। उनने मछलियों से यह बात कही और पहले से ही सजग हो जाने की राय दी। नहीं तो बला आनेवाली ही है। दोनों मछलियों में एक को सौ अक्लें थीं। और दूसरी को हजार। इसी से उन्हें क्रमशः शतबुद्धि और सहस्रबुद्धि कहते थे। शतबुद्धि ने जबाव दिया कि बात तो सही है। मगर घबराने की जरूरत नहीं है। मैं अपनी सौ अक्लें खर्च करके कोई रास्ता निकालता हूँ। लेकिन सहस्रबुद्धि का उत्तर तो और भी विचित्र था। उसने कहा कि मेरे पास पूरी हजार अक्लें हैं। अतः मैं अभी से क्यों फिक्रमन्द बनूँ? ऐन मौके पर उपाय ढूँढ़ लूँगा।

इस पर मेढक को निराशा हुई। उसने मेढकी से कहा कि अपनी-अपनी अक्ल की ऐंठ—उसकी बदहजमी—में फूले ये दोनों सर पर मँडराने वाली आफत को देख नहीं रहे हैं। अन्धे हो गए हैं। इसलिए चलो अभी यहाँ से भाग चलें, निकल चलें। क्योंकि किसी भी प्रकार बला से पिण्ड छुड़ा लेना और भाग जाना यही एक मोटी बुद्धि मेरे पास है। फलतः दोनों ही उस गढ़े से भाग के पास के ही किसी विस्तृत जलाशय में चले गए और सानन्द रहने लगे।

कुछ दिनों बाद देखते हैं कि मछली मारने वाले दो लम्बी मछलियों को लिए उसी रास्ते से चले जा रहे हैं जिनमें एक उनके हाथ में लटक रही है और दूसरी कन्धे पर पड़ी है। मेढक ने पहचान लिया कि ये वही दो मछलियाँ हैं जिन्हें अपनी अपार और अनन्त अक्लों का घमण्ड था। उसने मेढकी से कहा कि वह देखो अक्ल के अजीर्ण का नतीजा। वे दोनों मछलियाँ अपनी समझदारी में फूली थीं। इसीलिए तो उनकी यह दशा हुई है। मैं तो सीधा-सादा कम अक्ल वाला भागना ही जानता था। इसीलिए यहाँ मजा कर रहा हूँ—'शतबुद्धिः कृतोन्नामो लम्वते च सहस्रधीः। एकबुद्धिरहं भद्रे क्रीडामि विमले जले।' किसानों को भी आज तो कम अक्लवाला

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बनने में ही फायदा है। धर्मशास्त्रों और पोथी पुराणों के पन्ने उलटने तथा नाहक ही अक्ल उगलने में उनकी खैरियत नहीं। उन्हें तो चाहिए कि यह काम पण्डितों और राजे-बाबुओं के ही लिए छोड़ें। क्योंकि उनका पेट भरा रहने से बखूबी वही कर सकते हैं।

किसी साहूकार ने किसान को सिर्फ दस रुपए दिए और उसके सौ रुपए उसने धीरे-धीरे वसूल भी लिये। फिर भी उसकी बही में पूरे दो सौ बाकी। अब किसान को दिन-रात यह चिन्ता लगी है कि किसी प्रकार उससे उऋण हो जाऊँ। नहीं तो आकबत बिगड़ेगी, परलोक चौपट होगा। नर्क में पड़ूँगा। उसके भाई दायाद, सगे-सम्बन्धी और पास-पड़ोस वाले भी यही कहते मानते हैं! जरा भी इस धारणा में उनने शिथिलता देखी कि मार-मार, थू-थू, छिः-छिः होने लगती है। लोग कहने लगते हैं कि कैसा नालायक है, बाप-दादों का नाम डुबाएगा महाजन का पावना हजम करके! याद रहे अगले जन्म में गधा बन के पैसा-पैसा चुकाना होगा! नहीं तो बैल तो जरूर बनना होगा। राम, राम कहीं महाजन मारने की भी बात सोचते हैं!

अजीब वायुमंडल है! भला इसमें गुजर हो सकता है! इस भयंकर विवेक विचार की लू में खामख्वाह झुलस जाना ही पड़ता है। यह तो एक सौ दस डिग्री के बुखार की गर्मी है। भला इसमें कौन बचे! दस की जगह पूरे सौ वसूल हो गए। फिर भी महाजन मारने का सवाल। फिर भी किसान को उऋण होना बाकी ही है? उसके करते इस लोक में—इस जीवन में—नर्क से भी गई गुजरी हालत में पड़े हैं। दाने-दाने को मुँहताज हैं। मगर परलोक की फिक्र जान मारे जा रही है। जिस परलोक को किसी ने कभी देखा नहीं, जिसकी शिनाख्त करना गैर-मुमकिन है जिसका कोई पक्का पता नहीं कि फलाँ जगह है, जिसके बारे में हरेक धर्म-मजहबों के झगड़े हैं कि ऐसा है, वैसा है, उसी की इतनी चिन्ता! न जाने, अब इस नारकीय जिन्दगी से बढ़ के और कौन सी जगह नर्क नाम वाली होगी जिससे त्रस्त हैं।

और अगर गधा ही बनें तो लावारिस तो होंगे नहीं। क्योंकि तब ऋण चुकाएँगे कैसे? तब तो फिक्र चिन्ता के बिना खुले घास चरेंगे और मौज करेंगे, लेकिन अगर वारिसवाले बने तो साहूकारजी को भी धोबी तो बनना पड़ेगा ही। इसलिए हमें क्या फिक्र? उन्हें तो पहले अपनी चिन्ता करने दीजिए। हम पीछे देखेंगे। और देखेंगे भी क्या? आज तो कोई पूछता ही नहीं। गधा बनने पर कम से कम हमारा धोबी हमारी खबर तो लेगा। एक खूँटे और रस्सी में किसी घर में बाँधेगा तो सही। कभी-कभी कुछ खिलाएगा भी तो सही। घास चरने को तो मिलेगी ही। मगर आज तो मौत भी नहीं मिलती। क्योंकि वह खुद आती नहीं और अगर आत्महत्या की कोशिश करें तो कानून छाती पर सवार है। बैल बनने में भी यही बात है। उस हालत में भी घास-भूसा की फिक्र वही साहूकार करेगा ही। आज तो हमारी जरा भी फिक्र उसे हई नहीं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पिण्ड छुड़ाया जाए उतना ही अच्छा।

किसानों को जो बुद्धिमानी पर नाज है, वे जो इस बुद्धिमानी को मानव जीवन की सार्थकता के लिए जरूरी समझ इस पर अभिमान करते हैं। वह कोई नई बात नहीं है। संसार में नादानी को ही बुद्धिमानी समझने वालों की कमी कभी नहीं रही है। मगर जो बुद्धिमानी व्यावहारिकता से दूर हो वह बहुत ही खतरनाक है। उसने हमेशा धोखा दिया है। जो उसके फन्दे में पड़े हैं वह बरबाद हो के ही रहे हैं। यह अक्लमन्दी का जादू लक्ष-लक्ष जीवों को मिटा चुका है। जाने कितने घरों को, महलों को खण्डहर बना चुका है। यही किसानों को भी मिटाने पर कमर कसे बैठा है। लेकिन यदि उन्हें मिट जाना नहीं है तो इस मर्ज को हटाएँ।

हितोपदेश की एक कहानी है। किसी खूब गहरे गढ़े में दो बड़ी-बड़ी मछलियों के साथ मेढक और मेढकी—यही चार रहते थे। आमतौर से उसका पानी कभी सूखता न था। मगर एक साल घोर अवर्षण होने से उसका पानी सूख चला। फलतः गर्मी आते न आते मेढक नर-मादा को घबराहट हुई। उनने मछलियों से यह बात कही और पहले से ही सजग हो जाने की राय दी। नहीं तो बला आनेवाली ही है। दोनों मछलियों में एक को सौ अक्लें थीं। और दूसरी को हजार। इसी से उन्हें क्रमशः शतबुद्धि और सहस्रबुद्धि कहते थे। शतबुद्धि ने जबाव दिया कि बात तो सही है। मगर घबराने की जरूरत नहीं है। मैं अपनी सौ अक्लें खर्च करके कोई रास्ता निकालता हूँ। लेकिन सहस्रबुद्धि का उत्तर तो और भी विचित्र था। उसने कहा कि मेरे पास पूरी हजार अक्लें हैं। अतः मैं अभी से क्यों फिक्रमन्द बनूँ? ऐन मौके पर उपाय ढूँढ़ लूँगा।

इस पर मेढक को निराशा हुई। उसने मेढकी से कहा कि अपनी-अपनी अक्ल की ऐंठ—उसकी बदहजमी—में फूले ये दोनों सर पर मँडराने वाली आफत को देख नहीं रहे हैं। अन्धे हो गए हैं। इसलिए चलो अभी यहाँ से भाग चलें, निकल चलें। क्योंकि किसी भी प्रकार बला से पिण्ड छुड़ा लेना और भाग जाना यही एक मोटी बुद्धि मेरे पास है। फलतः दोनों ही उस गढ़े से भाग के पास के ही किसी विस्तृत जलाशय में चले गए और सानन्द रहने लगे।

कुछ दिनों बाद देखते हैं कि मछली मारने वाले दो लम्बी मछलियों को लिए उसी रास्ते से चले जा रहे हैं जिनमें एक उनके हाथ में लटक रही है और दूसरी कन्धे पर पड़ी है। मेढक ने पहचान लिया कि ये वही दो मछलियाँ हैं जिन्हें अपनी अपार और अनन्त अक्लों का घमण्ड था। उसने मेढकी से कहा कि वह देखो अक्ल के अजीर्ण का नतीजा। वे दोनों मछलियाँ अपनी समझदारी में फूली थीं। इसीलिए तो उनकी यह दशा हुई है। मैं तो सीधा-सादा कम अक्ल वाला भागना ही जानता था। इसीलिए यहाँ मजा कर रहा हूँ—'शतबुद्धिः कृतोन्नामो लम्वते च सहस्रधीः। एकबुद्धिरहं भद्रे क्रीडामि विमले जले।' किसानों को भी आज तो कम अक्लवाला

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बनने में ही फायदा है। धर्मशास्त्रों और पोथी पुराणों के पन्ने उलटने तथा नाहक ही अक्ल उगलने में उनकी खैरियत नहीं। उन्हें तो चाहिए कि यह काम पण्डितों और राजे-बाबुओं के ही लिए छोड़ें। क्योंकि उनका पेट भरा रहने से बखूबी वही कर सकते हैं।

किसी साहूकार ने किसान को सिर्फ दस रुपए दिए और उसके सौ रुपए उसने धीरे-धीरे वसूल भी लिये। फिर भी उसकी बही में पूरे दो सौ बाकी। अब किसान को दिन-रात यह चिन्ता लगी है कि किसी प्रकार उससे उऋण हो जाऊँ। नहीं तो आकबत बिगड़ेगी, परलोक चौपट होगा। नर्क में पड़ूँगा। उसके भाई दायाद, सगे-सम्बन्धी और पास-पड़ोस वाले भी यही कहते मानते हैं! जरा भी इस धारणा में उनने शिथिलता देखी कि मार-मार, थू-थू, छिः-छिः होने लगती है। लोग कहने लगते हैं कि कैसा नालायक है, बाप-दादों का नाम डुबाएगा महाजन का पावना हजम करके! याद रहे अगले जन्म में गधा बन के पैसा-पैसा चुकाना होगा! नहीं तो बैल तो जरूर बनना होगा। राम, राम कहीं महाजन मारने की भी बात सोचते हैं!

अजीब वायुमंडल है! भला इसमें गुजर हो सकता है! इस भयंकर विवेक विचार की लू में खामख्वाह झुलस जाना ही पड़ता है। यह तो एक सौ दस डिग्री के बुखार की गर्मी है। भला इसमें कौन बचे! दस की जगह पूरे सौ वसूल हो गए। फिर भी महाजन मारने का सवाल। फिर भी किसान को उऋण होना बाकी ही है? उसके करते इस लोक में—इस जीवन में—नर्क से भी गई गुजरी हालत में पड़े हैं। दाने-दाने को मुँहताज हैं। मगर परलोक की फिक्र जान मारे जा रही है। जिस परलोक को किसी ने कभी देखा नहीं, जिसकी शिनाख्त करना गैर-मुमकिन है जिसका कोई पक्का पता नहीं कि फलाँ जगह है, जिसके बारे में हरेक धर्म-मजहबों के झगड़े हैं कि ऐसा है, वैसा है, उसी की इतनी चिन्ता! न जाने, अब इस नारकीय जिन्दगी से बढ़ के और कौन सी जगह नर्क नाम वाली होगी जिससे त्रस्त हैं।

और अगर गधा ही बनें तो लावारिस तो होंगे नहीं। क्योंकि तब ऋण चुकाएँगे कैसे? तब तो फिक्र चिन्ता के बिना खुले घास चरेंगे और मौज करेंगे, लेकिन अगर वारिसवाले बने तो साहूकारजी को भी धोबी तो बनना पड़ेगा ही। इसलिए हमें क्या फिक्र? उन्हें तो पहले अपनी चिन्ता करने दीजिए। हम पीछे देखेंगे। और देखेंगे भी क्या? आज तो कोई पूछता ही नहीं। गधा बनने पर कम से कम हमारा धोबी हमारी खबर तो लेगा। एक खूँटे और रस्सी में किसी घर में बाँधेगा तो सही। कभी-कभी कुछ खिलाएगा भी तो सही। घास चरने को तो मिलेगी ही। मगर आज तो मौत भी नहीं मिलती। क्योंकि वह खुद आती नहीं और अगर आत्महत्या की कोशिश करें तो कानून छाती पर सवार है। बैल बनने में भी यही बात है। उस हालत में भी घास-भूसा की फिक्र वही साहूकार करेगा ही। आज तो हमारी जरा भी फिक्र उसे हई नहीं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अब रही बाप-दादों का नाम डुबाने की बात। सो क्या उनका नाम अभी बचा ही है? वे खुद तो इसी समझदारी की बदहजमी के करते घुल-घुल के मरे ही। मगर हमारे लिए भी इसका रास्ता साफ करते गए! क्या इस मौत को ही नाम कहते हैं जो बचा है? तब तो यह नामवरी गैरों को ही, साहूकार को ही मुबारक हो! वही घुट-घुट के अन्न बिना मरे। हम क्यों ऐसी नादानी करने जाएँ? हमें लायक नहीं बनना कि घर-बार और पैदावार लुटवाएँ। इस नामवरी से हम बाज आए। हम नालायक ही अच्छे! इससे पेट तो भरेगा, तन तो ढँकेगा, दवा तो मिलेगी? यह नामवरी क्या है, घर जला के होली खेलना है। यह तो कोरा पागलपन है! ऐसे अन्धे धर्म की ठेकेदारी हमें नहीं चाहिए जिसमें जिन्दगी मौत से भी बुरी हो जाए। इस कागजी धर्म की नाव ने अब तक बहुतों को डुबाया है। अब हम इसे डुबा के ही साँस लेंगे। यदि दस रुपए की जगह सौ वसूलने के बाद भी दो सौ बाकी ही रहें और फिर भी धर्म ही कहते हैं तो हम बाज आए इस धर्म से। यह तो इस दुनिया से जितना जल्द मिट जाय उतना ही अच्छा! इसी के करते सारा समाज पागल कुत्तों का दल जैसा बनके काटने दौड़ता है और मार डालना चाहता है। यहाँ तो जीवन दुश्कर है। यहाँ तो 'कहहु पवनसुत रहनि हमारी। जिमि दशनन महँ जीभ विचारी' की बात है। यहाँ तो कुएँ में ही भाँग पड़ी है। यह सिसक-सिसक के मरना भी कैसा भीषण धर्म है।

अजीब पागलपन है। अपनी कमाई से सबसे पहले अपना और परिवार का पेट भरें तो धर्म नष्ट, कानून चौपट हुआ। साहू महाजन की फिक्र न करके पहले पेट की फिक्र करें तो भी यही बात! चोरी करें, डाका मारें तो भी यही कहानी! न करें तो भी गुजर नहीं। और यह सबकुछ होता है कानून, न्याय और धर्म के नाम पर। इस पहेली को कौन सुलझाए? इस बेहूदे झमेले में कौन पड़े? तब तो यही मन्त्र जपना आसान और सबसे ज्यादा फायदेमन्द है कि 'कमानेवाला खाएगा, इसके करते जो कुछ हो।'

जरा आगे बढ़िए। किसान दौड़े आते हैं किसान सभा में और कहते हैं कि जमींदार हमें लूटता हैं, तबाह करता है, झूठा केस करके परेशान करता है। कोई रास्ता बताइए। हम कहते हैं किसान सभा समझाती है कि मुकदमेबाजी में मत पड़ो। वहाँ तुम्हारी गुजर नहीं, तुम्हारी पूछ नहीं। वहाँ और भी बरबादी होगी। पैसा भी जाएगा, काम भी चौपट होगा, झूठ-साँच बोलना भी नाहक ही होगा और अन्त में वही होगा जो बिना यह सब किए ही होता। फिर क्यों वहाँ जाते हो? मगर उसके दिमाग में यह बात घुसती ही नहीं। वह यह सब समझ सकता ही नहीं। उसे इस बात का रहस्य सूझता ही नहीं कि सरकार और जमींदार कायम ही हैं केवल इस बात पर कि हम उनकी और उनकी कचहरियों की परवाह करते हैं, कदर करते हैं, हम मान बैठे हैं कि उनके कानूनों से हमारे साथ न्याय होगा। इस प्रकार उनकी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

धाक हमारे दिल-दिमाग पर जमी हुई है। मगर ज्यों ही हमने यह खाम खयाल छोड़ा और कचहरियों से लापरवाह हुए कि उनकी यह धाक गई। फलतः धीरे-धीरे हम खुद सबल और वह निर्बल होते जाएँगे। उनका सारा काम इसी धाक से, हमारे ऊपर जमे आतंक से ही निकलता है। लेकिन जब यही चीज न रही, तो वे आज गए, कल गए की बात हो के ही रहेगी।

किसान को लाख समझाइए कि उसे फँसा के मारने के ही लिए ये जाल रचे गए हैं। मगर वह मानता नहीं। उसके दिल में तो यह बात बैठी है कि मुकदमे लड़ने, वकील मुख्तार रखने, पैरवी करने से उसकी जीत होगी, न्याय होगा। अतः किसान सभा से यही मदद चाहता है। वह चाहता है कि हम यह कर करवा दें। पहले वह भी ऐसा नहीं मानता। यह तो धीरे-धीरे उसकी जानकारी और समझदारी का ही नतीजा है। जब तक पहले इतना पढ़ा-लिखा, शहरों में आने-जाने वाला, कचहरियों की हवा खानेवाला वह बना था नहीं—जब तक वह पूरा सभ्य न हुआ था—तब तक उस पर भी इस जादू का असर न था। आज भी पिछड़ी एवं असभ्य कही जाने वाली कितनी ही जतियाँ हमारे ही देश में हैं जो इस जादू से बची हैं। जो कचहरियों में पाँव देना जानती ही नहीं, जब तक उन्हें बलात् घसीटा न जाए। हमें तो उनकी यह असभ्यता मुबारक है, उनकी यह अशिक्षा इसलिए शिरोधार्य है कि वे अपने को सब तरह से लुटाते तो नहीं हैं काश! किसान समाज में भी यही अशिक्षा होती। काश, उनके दिमाग से भी यह भूत सदा के लिए उतर जाता कि कचहरियों में न्याय होगा, पैरवी से जीतेंगे—'दूध का दूध और पानी का पानी' होगा। मालदारों के मुकाबले में, चलते पुर्जे लोगों के सामने वह पार पाएँगे यह उनकी सनक यदि मिट जाए तो वे बहुत आगे बढ़ जाएँ।

इन कचहरियों में चलते पुर्जे और मालदार लोग कैसे अपना काम बना लेते हैं और किसान किस प्रकार उल्लू बनता है। इसकी एक सुन्दर दास्तान है। किसी गरीब ब्राह्मण के पास बहुत ही सुन्दर गौ थी। वह कामधेनु ही थी। इतनी सीधी कि कहिए मत। जब चाहिए दुह लीजिए। दूध भी भरपूर था। ब्राह्मण तनहा था। एक बार कई महीनों के लिए उसे कहीं बाहर जाना पड़ा। उसने सोचा इस गौ का क्या करे? इसे कहाँ रखे? आखिर अपने पड़ोसी तेली के यहाँ रखने का निश्चय करके उसने उससे यह इच्छा प्रकट की। तेली तो चाहता ही था कि उसे यह गौ मिले। उसकी नजर उस पर पहले से ही गड़ी थी। मगर ऊपर से नाहीं-नुकुर करने लगा। बोला, मेरा तो अपना ही कोल्हू वाला बैल है। उसी से हैरान हूँ। फिर आपकी गाय का यह भार कैसे सह्य होगा? मगर बहुत कहने-सुनने पर मान गया। ब्राह्मण देवता गौ को उसके हवाले कर रवाना हो गए।

दुर्भाग्य से लौटने में उन्हें काफी देर हो गई। मगर लौट के जब उनने तेली के पास से अपनी गाय वापस लेनी चाही तो उसने कोरा जबाव दे दिया और कह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दिया कि आपकी गाय कैसी? यह तो मेरी है। अब तो उन पर आफत थी! कुछ उपाय सूझता न था। हजार दलीलें कीं, समझाया-बुझाया, धर्म-ईमान की दोहाई दी। मगर सुने कौन? जो लोग हमेशा ही धर्म, ईमान और न्याय की छाती रौंद के धन कमाते हैं, जो धर्म आदि की समाधि पर ही अपने ऐश्वर्य का भव्य भवन निर्माण करते हैं वह यह बातें कब सुननेवाले? फलतः तेली नहीं पसीजा और नहीं पसीजा। उसने साफ ही सुना दिया कि यदि इस जगत में कोई भी धर्मात्मा और ईमानदार आदमी यह कह दे कि यह गाय मेरी नहीं है तो मैं न सिर्फ यह गौ तुम्हें दे दूँगा, प्रत्युत इसके मूल्य का हजार गुना दण्ड दूँगा। ब्राह्मण तो सीधा था। यह सुनके उसे आश्चर्य भी हुआ और गाय मिलने का विश्वास भी। क्योंकि उसकी तो गौ थी ही और तेली ने कही दिया कि कोई भी ईमानदार आदमी यदि ऐसा कह दे तो वह जरूर ही दे देगा। ब्राह्मण को तो हर्जाने तक की आशा हो गई! जैसा कि कानूनवालों के जाल में फँस के किसान सोचने लगते हैं ठीक वही बात उसकी भी हुई। किसानों की ही तरह उसे पूरा विश्वास हो गया। जो होशियार और जानकार थे उनने हजार समझाया। मगर ब्राह्मण के दिल में उनकी बात धँसी ही नहीं।

अन्त में उसने तेली से पक्की बातें करके पंचायत में ही यह बात पेश करने की सोची। तेली ने कहा कि आप ही जिसे पंच मानिए मैं उसे ही स्वीकार कर लूँगा। ब्राह्मण भी और दूसरे भी हैरत में थे कि यह क्या कहता है। मगर तेली तो बेधड़क कहता चला जाता था कि चाहे जो पंच हो मैं न हटूँगा। क्योंकि मुझे डर क्या? गाय तो मेरी ही ठहरी। यही तो तरीका मालदारों का है? किसानों के खेत खलिहान पर वे भी इसी प्रकार बेधड़क दावा करते हैं जिससे बाहरी लोगों को और हाकिमों को भी पूरा यकीन हो जाता है कि जरूर उन्हीं के खेत-खलिहान हैं। किसान का ही दावा झूठा है। ये तो आएदिन की बात है—रोज-रोज का अनुभव है। फिर भी आँखें खुलें तब न?

खैर, पंच मुकर्रर हो गए। उनने गवाही साखी लेने की तारीख भी नियत कर दी। ठीक समय पर तेली के द्वार पर वे लोग आए भी। लोग जमा थे। सभी के सामने उनने तेली से बयान लिया तो उसने यही कहा कि गाय मेरी है। असल में दिक्कत यह है कि लोगों ने इसे खरीदते तो मुझे देखा नहीं। मेरे पास पहले थी भी नहीं। किसी ने मुझे दी भी नहीं कि ये लोग जानें। इसी से शक करते हैं। मगर बात तो अनहोनी हो गई। यह जो मेरा बैल है एक दिन एकाएक उसी के पेट से यह गाय बाहर आ गई।

आप लोग चाहे जिससे यह बात पूछ लें। मैं सिर्फ इतना ही अर्ज करूँगा कि सयाने और पढ़े-लिखे लोग तो जाल-फरेब कर सकते हैं और झूठ भी बोल सकते हैं। वह मुहब्बत में पड़ के किसी की तरफदारी भी कर सकते हैं। अतः आप लोग ऐसों से पूछताछ कर लें जिनमें इन बातों की गुंजाइश ही न हो। पंचों ने और लोगों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ने भी इसका हृदय से अनुमोदन किया और तेली की शतमुख प्रशंसा की। जानने वाले भी आश्चर्य में थे कि यह क्या बातें करता है, इस प्रकार कैसे गाय पाएगा। मगर उन्हें क्या पता कि ये सब चालें हैं। इन्हीं से तो मालदार जीतते हैं। उसकी इस बात का पहला फल तो यही हुआ कि तटस्थ और बाहरी लोगों पर और पंचों पर भी यह असर हो गया कि हो न हो तेली का पक्ष सही है। यही क्या कम बात थी? आखिर जीत होती है कैसे? वह इसी प्रकार ही तो होती है। आसमान से तो कभी यों ही टपक जाती नहीं।

इसके बाद तय पाया कि आज तेली की बात हो गई। अब कल इस गाँव में तथा आसपास के दस-बीस गाँवों में इसकी गवाही ली जाएगी और छानबीन की जाएगी। फिर सभी लोग घर गए। दोनों ही पक्ष वालों को विश्वास था कि जीतेंगे। ब्राह्मण ने तो खामख्वाह मानी लिया कि अब गाय मिल के ही रहेगी। मगर रातोरात तेली ने अपने धन और अक्ल के बल पर इन्तजाम किया कि कई मन सुन्दर मिठाइयाँ आसपास के गाँवों के छोटे-छोटे लड़के-लड़कियों में बँटवा दीं। बाँटने वालों ने उन बच्चे-बच्चियों को सिर्फ इतना ही सिखाया कि तुम बहुत तड़के जगह-जगह जमा हो के यही चिल्लाते रहना सारे दिन कि 'तेली का बैल गाय ब्याया।' इसके बाद फिर कल शाम को इससे भी अच्छी और ज्यादा मिठाइयाँ दी जाएँगी। खबरदार चूकना नहीं। जो चूकेगा और यह बात चिल्लाता न रहेगा उसे मिठाई न दी जाएगी। यह प्रबन्ध उसने इस चालाकी से किया कि किसी को पता ही न चला कि क्या हो रहा है। किसी को इसकी परवाह भी न थी। ब्राह्मण भी बेफिक्र था।

मगर दूसरे दिन प्रातःकाल ही जब सभी गाँवों में चारों ओर बच्चे यही चिल्लाने लगे कि 'तेली का वैल गाय ब्याया' तो लोगों को आश्चर्य हुआ कि यह क्या बात है? फिर भी कुछ रहस्य मालूम न हो सका। यह किसे जानकारी थी कि बीसियों गाँवों में यही शोरगुल है। अन्त में जब पंच लोग गाँवों में घूमने लगे तो उनसे यह चिल्लाहट सुनी। वे इससे आकृष्ट हुए। फिर आगे बढ़े। मगर जिधर ही गए उधर ही यही आवाज! उसके बाद दूसरे, तीसरे, आदि गाँवों में भी गए और सर्वत्र एक ही पुकार पाई। गर्ज यह कि आसपास के सभी गाँवों में घूमघाम के वे लोग थक गए। मगर कहीं भी दूसरी आवाज सुनाई न पड़ी। लड़कों की यह चिल्लाहट सुनके उन्हें औरों से पूछने का मौका भी न लगा। क्योंकि चारों ओर तो यही शोर था! फुर्सत कहाँ थी कि औरों से पूछे? पूछने की उन्हें जरूरत भी न मालूम हुई। उनने खुद सोचा कि जब नादान बच्चे जिधर देखिए उधर ही एक ही बात चिल्ला रहे हैं तो दूसरों से क्या पूछें? सयाने लोग सीख पढ़ के झूठ भी बोल सकते हैं। मगर ये बच्चे हैं, ये ऐसा क्यों करने जाएँगे? इन्हें क्या पड़ी है? ये मिथ्या बातें सीखेंगे भी कैसे? इन्हें सिखाएगा भी कौन? सो भी बीसियों गाँवों के हजारों को? हो न हो, अनहोनी बात जरूर हो गई और वह बिजली की तरह चारों ओर दौड़ गई। बस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बच्चों ने उसे ही पकड़ लिया। सयानों ने भी सुना होगा जरूर। मगर ये लोग तो दलील ही करते होंगे कि यह गैर-मुमकिन है। इसीलिए मालूम होता है इनके दिलों में यह बात बैठी ही नहीं। फलतः भूल गए। मगर बच्चों में तो यह होना सम्भव नहीं। इसीलिए वे भूले नहीं और चिल्लाते हैं। यह भी सम्भव है कि बड़े-बूढ़ों के पास ब्राह्मण रोया गाया हो जिससे वे चुप हैं।

नतीजा यह हुआ कि पंचों के दिमाग में यह बात बखूबी बैठ गई कि गाय अवश्य ही तेली की है। ब्राह्मण का दावा सरासर झूठा है। तेली का बयान बिलकुल सही है कि अनहोनी बात हो गई और एकाएक उसके बैल के पेट से एक दिन यह गौ बाहर आ गई! दुनिया में असम्भव तो कोई बात हई नहीं। भगवान की लीला अपरम्पार है। उसे कोई पार पा सकता नहीं। सब बातें तर्क और दलील से ही सिद्ध नहीं की जा सकती हैं। ईश्वर की माया को भुला नहीं सकते। वह सबकुछ कर सकती है—'मायां सर्वसम्भवः।' इसके बाद तेली के घर पर पंच लोग गए। वहीं ब्राह्मण को भी बुलवाया। अपार भीड़ थी। मुकदमा निराला जो था। देखने के लिए लोग टूट पड़े थे। अन्त में पंचों ने अपना निर्णय सुना दिया कि ब्राह्मण का दावा झूठा है। गाय तो तेली की ही है। सचमुच अनहोनी हुई है और उसके बैल के पेट से ही यह निकली है। इसीलिए तो दूसरी जगह से खरीदने, मिलने आदि का सबूत नहीं मिलता। नहीं तो भला नादान बच्चों को क्या पड़ी है कि चारों ओर उनकी यही पुकार हैं। कहीं दूसरी आवाज सुनते ही नहीं।

इस प्रकार न्याय, धर्म और सत्य के नाम पर जो ब्राह्मण फूला बैठा था उसे टका-सा जबाव मिल गया। उसी के माने पंचों ने उसे अँगूठा दिखा दिया और उसे गाय से सदा के लिए हाथ धोना पड़ा। जो किसान लोग उस ब्राह्मण की तरह न्याय की आशा में कचहरियों और पंचायतों में दौड़ते हैं वे भी उसी प्रकार ठगे जाते हैं। और अन्त में अपना-सा मुँह लेके बैठ रहने को बाध्य होते हैं। उन्हें कानून, धन और धनिकों की चातुरी के मायाजाल का पता पीछे चलता है। तब पछताते हैं वे जरूर। मगर खेद यही है कि फिर भी उनकी आँखें नहीं खुलती हैं। उनकी बात सुनता है कौन? जिधर जाइए उधर ही मालदारों के ही पक्ष की पुकार सुन पड़ती है। उलटे किसानों पर डाँट पड़ती है और बेईमान बनाए जाते हैं। पण्डित, साधु, फकीर, पुजारी, वकील, पढ़े-लिखे लोग सभी धनिकों का ही गुणगान करते हैं। सभी उन्हीं का पक्ष समर्थन करते हैं। 'लंका निसिचर निकर निवासा। इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा।'

19.2.41। एक बार एक किसान से बात हुई। हजरत की जाति तो सदा से खेती करती आई है। अतएव उनकी जाति ही खाँटी किसानों की जाति है जिसे कोइरी कहते हैं। मगर उनके साथ एक दिक्कत हो गई थी। सौभाग्य या दुर्भाग्य से उनके पास नाममात्र को जमींदारी थी जिसकी आमदनी साल में शायद ही सौ-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दो सौ रुपए भी हो। हाँ, काश्तकारी या रैयती जमीन पचास-साठ बीघे से कम न थी। फिर भी उन्हें जमींदार होने का गर्व था! उनने बात-बात में ही एकाएक कह दिया कि हम तो किसान नहीं हैं, जमींदार हैं। मैंने समझा, दो-चार हजार की आपकी जमींदारी तो अवश्य ही होगी। नहीं तो तपाक के साथ जमींदार कहने का मतलब ही क्या हो सकता है? परन्तु अब असलियत का पता चल गया तो मैंने कहा कि यह तो अजीब बात है कि खेती करते ही हैं और रैयत जमीन भी काफी है। उसी में अधिकांश खेती होती है। जमींदार वाली जमीन एक तो नाम के ही लिए है। दूसरे वह तो प्रायः औरों के ही हाथ है। आप लगान ही पाते हैं! फिर भी अपने को किसान न कह के जमींदार कहने के क्या मानी हैं? आखिर आपकी गुजर काश्तकारी और किसानी से होती है या जमींदारी से? और अगर दोनों में एक ही रखने की नौबत आ जाए—क्योंकि समय ऐसा आ रहा है कि दोनों रखना असम्भव हो जाएगा—तो आप किसानी पसन्द करेंगे—रैयती जमीन रखेंगे या जमींदारी? उनने चट कहा कि रैयती जमीन के बिना तो काम चली नहीं सकता। जमींदारी चली भी जाए तो उसी जमीन से गुजर-बसर होगी। इस पर मैंने कहा कि तो फिर जमींदार बनने और उसका टिमाग रखने से क्या फायदा?

इतने लम्बे लेक्चर के बाद कहीं जाकर बात उनकी समझ में आई। मगर आगे चलकर टिकी रही, या फिर उनके दिमाग से भाग गई, इसका पता नहीं। असल में किसानों की आदत 'रामखुदैया' की है। वे ऐसे दुविधे में पड़े हैं कि न इधर के न उधर के। जिस सज्जन की बात अभी कही गई है, ऐसे किसानों की एक काफी संख्या हमारे देश में है। ऐसे भी किसान कम नहीं हैं जो अपनी ही (जमींदारी की) जमीन में खेती करते हैं। उनके पास प्रायः खेती-भर ही जमीन है। जिससे गुजर करते हैं। मगर फिर भी बजाय किसान के जमींदार होने का उन्हें फख्र है। ऐसे लोग अपने को काफी कुशल समझते हैं। मगर इस कुशलता और चालाकी से खुदा हाफिज—उन्हें भगवान ही बचाए। उनकी यह 'रामखुदैया'—कभी राम और कभी खुदा कहने की सनक—उन्हें रसातल ले जा रही है और ले जाएगी। किसान होने का अभिमान न होके जमींदारी का गर्व। यह कितनी खतरनाक चीज है। इसी मनोवृत्ति ने हमें जहन्नुम में मिलाया है। हम समझी नहीं सकते कि हमारे लिए भली चीज कौन सी है। इसीलिए दो नावों पर चढ़ना चाहते हैं। फिर भी ताज्जुब तो इस बात का है कि इस जबर्दस्त नादानी को ही बुद्धिमानी समझते हैं। जितना शीघ्र हम समझ जाएँ, जितनी जल्दी यह नशा हम पर से उतर जाए उतना ही अच्छा! किसान और अन्नदाता बनने का—हल वहने का—हलधर बनने का फख्र हमें फौरन हो जाए तो बेड़ा पार है। किसान को छोटा समझने की भारी भूल ने ही तो हम पर यह विपदा लादी है। अब भी तो चेतें और उससे पिण्ड छुड़ाएँ।

ऐसे किसान सहस्रा-सहस्र की संख्या में सदा मिलते हैं जो जमींदारों के जुल्मों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की शिकायतें करते फिरते हैं। वास्तव में उन्हें जमींदारों ने न सिर्फ लूटा है, किन्तु बुरी तरह अपमानित किया है, बेइज्जत किया है। मगर जरा ऊँची जाति के कहलाते हैं। इसीलिए वह बेइज्जती बुरी तरह उन्हें खलती है। अभी भी खाने-पीने का काम चला जाता है। इसलिए जमींदार के जुल्मों पर उन्हें ज्यादा क्रोध होता है। वह कभी-कभी सक्रिय भी होता है और वे लोग जमींदार को मिटाने पर भी तुल जाते हैं। उसके प्रति भयंकर क्रोध और जलन तो उनके दिलों में हई। फलतः जमींदार नाम सुनते ही चौंक पड़ते हैं। ठीक ही है। सतानेवाले के प्रति यदि यह मनोवृत्ति, यह भावना न हो तो जुल्म का खात्मा कभी होई नहीं।

मगर उन किसानों का खुद व्यवहार कैसा होता है? यदि सौभाग्य से, या दुर्भाग्य से उनके पास दस-पाँच बीघा भी जमींदारी हो जिसे दूसरे किसान जोतते हों, तो उनके साथ उनका सलूक कैसा होता है? खासकर यदि वे तथाकथित 'रैया' समाज के हों तब उन्हें किस नजर से देखते हैं? तब तो सारा मामला ही पलट जाता है और वे बिलकुल ही बदल जाते हैं। एक ओर तो चाहते हैं कि उनका जमींदार या तो उनसे लगान कतई वसूले ही नहीं, या अगर वसूले भी तो बहुत ही कम। घटा दे। क्योंकि बहुत ज्यादा है। और वह वसूली भी हमारी मर्जी के मुताबिक हो। हम जब चाहें तभी उसे दें। मगर इसके ठीक उलटा जब महज टुटपुँजिया जमींदार के रूप में अपने किसानों के पास जाते हैं तो फौरन कौड़ी-कौड़ी वसूल लेना चाहते हैं। घटाने की बात ही नहीं। ज्यादा से ज्यादा इजाफा करके लेना चाहते हैं। इसके लिए कोई भी ज्यादती उठा नहीं रखते। और अगर दुर्भाग्य से किसान 'रैयान' हुआ तब तो कुछ कहना ही नहीं। तब तो जूते से ही बातें करते हैं! गालियाँ का तो कहना ही क्या? कितनी विचित्रता है! अपने जमींदार के जूते, उसकी गालियों बिलकुल ही भूल गईं। ऐसी विस्मृति रसातल चली जाए। ऐसी खतरनाक अक्ल में आग लग जाए। 'जैसे को तैसा मिलै।' वाले नियम को वे क्यों भूल जाते हैं? वे क्यों नहीं सोचते कि हम अपने किसान के साथ जैसा करेंगे हमारे साथ भी हमारा जमींदार वैसा ही करेगा? हमें उससे दूसरे प्रकार के व्यवहार की आशा करने का हक रही नहीं जाता, जब तक हम खुद अपना रवैया नहीं बदलते, यह बात जब तक सभी किसान नहीं समझते तब तक उनका उद्धार नहीं होगा! यह दोनों तरफ से खुद फायदा उठाने की चालाकी डुबाएगी। यह चालाकी भाड़ में जाए।

हम स्वयं तो अपने किसानों से हरी लेंगे, बेगार कराएँगे। उन्हें दबाएँगे और अपमानित करेंगे और चाहेंगे कि जमींदार हमारे साथ ऐसा न करें। क्या यह दिमाग का दिवालियापन नहीं है? ऐसा करने वाले अपने को बेशक बहुत ज्यादा चतुर समझते हैं। मगर यह तो और कुछ नहीं, केवल चातुरी की अपच है। किसान सभा का जन्म इसलिए नहीं हुआ है कि कुछ खास लोगों के जुल्मों को ही मिटाए। उसका तो काम ही है जुल्म मात्र को खत्म करना और शोषण को इस भूमंडल से निकाल बाहर करना।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यदि किसी के भी जुल्म को बर्दाश्त करे, कम से कम उसे देख के उसके पदाधिकारी सिहर न जाएँ, काँप न उठें तो वह किसान सभा कहाने का दावा कर नहीं सकती। जो किसान अपने किसान के साथ ही नहीं। किन्तु अपने कमिया और हलवाहे के साथ बराबरी का, भाईचारे का और मनुष्यता का व्यवहार दिल से नहीं करता वह सच्चा किसान नहीं है। उसे किसान सभा से सहायता पाने का हक नहीं है। किसान के मातहत जो किसान हैं जिन्हें शिक भी (under Tenant of tenant at will) कहते हैं उनके साथ भी अपने भाई जैसा सलूक करना ही होगा। हम जमींदारों से जैसा सलूक अपने साथ चाहते हैं हमें उन किसानों के साथ पहले खुद वैसा ही करना होगा। हमारा कमिया और हलवाहा हमारे साथ यदि प्रेम करने लग जाए, यदि हम अपने प्रेम में उसे फाँस लें, न कि मजदूरी के बल पर ही उससे काम कराएँ, तो हमारी शक्ति असीम हो जाएगी और जमींदार हमारे सामने खामख्वाह झुक जाए। कमिया में अपार शक्ति है। वह पारसमणि है। यह बात जो किसान नहीं जानता वह पारस को मामूली पत्थर समझ ठुकराने वाला नादान है, गो वह अपने को बहुत बुद्धिमान मानता है। जमींदार तो सड़क पर पड़ा हुआ पत्थर का टुकड़ा है। सड़क कूटने वाले इंजिन (Steam-roller) की तरह बन के किसान उसे चूर-चूर करना चाहता है। मगर दुखिया कमिया और हलवाहा उस इंजिन की सूराख है जिससे भाप निकल भागती है। फलतः इंजिन चल सकता ही नहीं।

हमने ऐसे किसानों से जाने कितनी बार बातें की हैं जो जमींदारों के गुमास्ता, पटवारी, बराहिल, अमीन और प्यादे वगैरह बनके काम करते और पैसा कमाते हैं। उनके घर वाले ही नहीं, किन्तु पास-पड़ोस के लोग भी उन्हें सौभाग्यशाली और कुशल मानते हैं कि पैसे कमा के खानदान की परवरिश कर रहे हैं। यही है दुनिया का तरीका। मगर उन पटवारियों ने, गुमास्तों ने और दूसरों ने खुद कहा है कि वे जिस जमींदार के नौकर हैं उसी ने, या दूसरे जमींदार ने भी उनकी जमीनें इसलिए नीलाम करवा लीं कि वे लगान दे न सकें। वह ज्यादा था। फसल भी मारी गई। फिर देते कैसे? इसीलिए अब नौकरी करके दिन काट रहे हैं। उनने यह भी कहा कि जिस नीलामी के करते हम निराश्रय बने और टुकड़े के लिए यहाँ आए हैं वही नीलामी हम खुद करवाते हैं! हम आँखों देखते हैं कि फसल मारा पड़ी है। लगान भी ज्यादा है। फिर भी जमींदार के हुक्म से सख्ती के साथ लगान तो पाई-पाई लेने की कोशिश करते ही हैं। फलतः किसानों का खेत नीलाम होता है और वे सपरिवार मारे फिरते हैं।

यह है हमारी—किसानों की—चातुरी का नमूना। हम ऐसे नालायक हैं कि जो हमारी जड़ खोदता है उसी की मदद इसलिए हमीं करते हैं कि हममें जो बचा बचाया हो उसकी भी जड़ खुद जाए। सो भी खुद हमारे ही हाथों। मेढक जब साँप के द्वारा पकड़ा जाता है तो उसे निगलने में खामख्वाह देर होती है। तब तक न तो वह मरता है और न उस पर साँप के ही जहर का असर होता है। मेढक बहुत शीतल जो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होता है। इस बीच में देखा जाता है कि यदि कोई पतंगा उड़ता हुआ उस मेढक के निकट पहुँच जाए तो चट अपना मुँह खोल के उसे पकड़ने और हजम करने की कोशिश करता है। ठीक वही दशा जमींदारों के पटवारी, बराहिल आदि बनने वाले किसानों की है। वह खुद तो जमींदार के पेट में जा रहे हैं, जा चुके, जाने वाले ही हैं। मगर इसी बीच अपने भाइयों में जितनों को भी हजम कर सकें, चौपट कर सकें उतना ही अच्छा समझते हैं। कहाँ तो चाणक्य की तरह संकल्प कर लेना चाहिए कि जमींदारी को उखाड़ के उसकी जड़ में मठा देकर ही दम लेंगे और कहाँ उलटे ये नालायक उसे सींचते हैं। फिर भी अपने को लायक समझते हैं। इस लायकी के खिलाफ, इस चतुराई के विरुद्ध हमें धावा बोलना होगा—जेहाद जारी करना होगा यदि अपना कल्याण चाहते हैं।

कहते हैं कि लड़ाई में किसी स्त्री का पति लड़ने गया था। जब लौटा नहीं तो उसने समझ लिया कि मारा गया। मगर कम से कम उसकी लाश तो मिले तो उसी के साथ सती हो जाऊँ या उसका अन्तिम संस्कार खुद अपने हाथों करूँ, ऐसी फिक्र उसे हुई। परन्तु कोई उपाय न था। राजक्षेत्र में जाने की मनाही आम लोगों के लिए थी। अतः उसने योगिनी का रूप बनाया, हाथ में एकतारा लिया और 'योगिया को किन बिलमाया' गाती हुई चली। योगिनी को कौन रोके? वह अलख जगाती तथा गाती फिरती थी। उसके आवाज पति के कानों में पहुँची। वह जख्मी पड़ा था। उसने आवाज दी और उससे भेंट हो गई। ठीक उसी प्रकार खुद उजड़ किसानों को तो वेष बदल के जमींदारी में घुसना, अलख जगाना और अपना अवसर देखना चाहिए। ताकि उसकी आवाज को दूसरे किसान समझ के जमा हों, संगठित हों और अपना काम बनाएँ। यह रुपया कमाना कैसा? यह जमींदार की सचमुच नौकरी और फर्माबरदारी कैसी? यह नौकरी नहीं है। किन्तु शतबुद्धि और सहस्रबुद्धि नामक मछलियों जैसी चतुराई की अपच है।

अकसर देखा जाता है कि किसान सभा का जब आन्दोलन तेज होता है, बकाश्त की लड़ाई छिड़ती है, या इसी प्रकार के दूसरे काम होते हैं तो सभी किसान पहले जमा हो जाते, पंचायत करते और उस आन्दोलन में शामिल होते हैं, संघर्ष चालू करते हैं। काम तेज होता और आगे बढ़ता है। जमींदार और उसके अमले बुरी तरह घबराते हैं। उन्हें रास्ता सूझता ही नहीं कि कैसे इस तूफान से पार पाएँ। इतने में उनकी नजर किसानों पर जाती है। वे उन्हें गौर से देखने लगते हैं कि इनमें कौन कैसा है। अन्त में उन्हें पता लगी जाता है कि खासतौर से कौन-कौन से किसान चलते पुर्जे या इस आन्दोलन की जान हैं। बस, उन्हें ही फँसाने की धुन उन पर सवार होती है और अन्ततोगत्वा जमीन दे कर, नौकरी दे दिला के या कुछ रुपए पैसे ही के बल से कुछ को वे अपने वश में कर ही तो लेते हैं। और नहीं तो दबाव डलवाते और सम्बन्धियों की सिफारिशें ही पहुँचाते हैं। इस प्रकार जैसे तैसे उन्हें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वश में करके आन्दोलन को दबाते हैं, दबाना चाहते हैं। वे चलते पुर्जे किसान भी खुश होते हैं कि चलो, हमारा काम तो बनी गया।

मगर हम कहेंगे कि यह वही अक्ल का अजीर्ण है। न कि उनका काम बना है। मौत किसी की मित्र नहीं। वह एक साथ सभी को नहीं मारती, इसीलिए नहीं मरनेवाले यदि उसे अपना मित्र मानने की नादानी करते हैं तो करें। मगर एक दिन होगा जब उन्हें भी वह ग्रसेगी ही। उसी प्रकार जमींदार किसानों का मित्र हो सकता नहीं। वह तो मौत से भी बुरा है। हाँ, होशियार है। इसलिए सब पर एक ही बार धावा बोलने की नादानी नहीं करता। लेकिन एके बाद दीगरे सभी को खत्म करता है, खत्म करेगा, यह ध्रुव सत्य है। हमने अपनी आँखों देखा है कि जो लोग जमींदारों से मिल के किसानों पर आफतें ढाते थे, समय आने पर और अपना काम बन जाने पर जमींदार ने औरों को मिलाया और उन्हें ही सर करना शुरू कर दिया। वह तो चाहता ही है कि एक को मिला के दूसरों को पस्त करूँ। फिर तो यह एक बाकियों का शत्रु हो ही जाएगा। फलतः आगे चल के बाकियों में कुछ को मिला के इसे भी आसानी से दुरुस्त कर लूँगा। यही रवैया बराबर जारी रहता है। किसानों का फर्ज है कि इस मर्ज को, इस बीमारी को जड़-मूल से मिटा डालें, ताकि 'न नौ मन तेल होगा और न राधा नाचेगी।' खुदा से चोरी करनेवाला मुसलमान रोजे के समय तालाब में डूबके पानी पिया करता था। पीछे कहता था कि क्या मैं खुदा से भी चोरी करता हूँ? मगर एक दिन पानी पीने के समय जब गले में टेंगरा मछली अटकी और हजरत के मरने की नौबत आई तब यह चोरी पकड़ी गई। ठीक वही हालत जमींदारों से मिल जाने वाले जरूरत से ज्यादा चालाक इन किसानों की भी होनी है। अतः इस चोरी से बचें, किनाराकशी करें। तभी भला होगा।

ऐसे किसान मन ही मन समझते हैं कि हमने अपने दुश्मनों को खूब ही छकाया। यही जमींदार लोग हमें मिटाने पर तुले बैठे थे और आज यही हमारी खुशामद कर रहे हैं। हम आज उन्हीं के माथे पर सवार होके अपना काम बना रहे हैं। कम से कम हमारे सामने तो ये लोग दबे। यही क्या कम है? आखिर दुनिया तो मतलब की ही है। सभी अपना-अपना काम निकालते हैं। हमने भी अपना काम बना लिया। उनके भाईबन्धु भी खुश होते हैं कि चलो खूब ही हुआ। जमीन मिली। खुशामद हुई। रुपए-पैसे मिले। जो जमींदार हमारे खून का प्यासा था उसी ने अपना खून हमें दिया। अपनी इस कुशलता के बारे में उनकी बहक भी काफी होती है। खूब बढ़-चढ़ के बोलते हैं। मगर उन्हें पता नहीं कि बलिदान के बकरे की तरह ही उनकी यह पूजा हो रही है और उन्हें माल चभाया जा रहा है। फर्क इतना ही है कि जहाँ बकरा अकेला बलिदान होता है तहाँ ये हजरत अपने हजारों भाइयों को जिबह कराने के बाद खुद भी उसी घाट उतारे जाते हैं। असली हित तो वही है जो शुरू में कुछ कड़वा एवं दुःखद होने पर भी अन्त में सुखद तथा मधुर रहे। जो आरम्भ में सुन्दर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हो, मगर परिणाम में जहरीला वह अहित ही होता है। यही बात यहाँ भी है।

यह सोचना भी कि जमींदार के साथ देर तक लड़ने में परेशानी काफी होगी, तबाही भी कम न होगी, परिणाम भी अनिश्चित ही रहता है। इसलिए यदि इन सभी नुकसानों को बचा के हमने अपने लिए कुछ कमा भी लिया तो बुरा क्या किया? यह तो व्यवहार कुशलता ही हुई, कोई यथार्थ अक्लमन्दी नहीं है। हद से ज्यादा लोभ करना और बचने बचाने की कोशिश करना अन्त में धोखा देता है, खतरे में डालता है। सर्वत्र एक ही पाठ पढ़ना कि जैसे हो तैसे अपने लिए कुछ संचय कर लिया जाए, बचा लिया जाए, परले दर्जे की बेवकूफी है, चाहे उसे चालाकी भले ही कहा जाए। सोचना तो यह चाहिए कि इस बचाव और किफायत में कोई खतरा तो नहीं है। देखना चाहिए कि हम जो यहाँ प्राप्ति कर रहे हैं, वह आगे चलके हानि तो नहीं सिद्ध होगी। विष से मिले दूध की प्राप्ति को प्राप्ति कहना कौन सी अक्ल है?

कहते हैं, एक सियार काफी चतुर और किफायतशार था—कंजूसी से काम करता था। किसी किसान के खेत में मक्की लगी हुई थी। उस पर सियारों का हमला होता रहता था। उन्हें मारने के लिए उसने तीर और कमान का प्रबन्ध किया था। जहाँ आहट हुई कि सन्न-सन्न तीर चलने लगे। इससे सियार लोग पनाह माँगते फिरते थे। मगर एक बार ऐसा हो गया कि उसने तीर तो कमान पर चढ़ाया और उसे चलाया भी। फिर भी वह किसी चट्टान से टकरा के उलटे लौटा और किसान के ही कलेजे में ऐसा आ लगा कि हाथ में कमान लिये ही वह लहूलुहान हो गया। खून का फौव्वारा कलेजे से ऐसा छूटा कि कमान की तांत पर उसकी मोटी तह जम गई। किसान वहीं फौरन चल बसा।

इतने में वह चतुर सियार उधर आ निकला। भूखा तो था ही। उसने दुश्मन चित पड़ा देख खूब खुशी जाहिर की। लाश के पास आया और नाचा-कूदा। फिर भोग लगाने चला तो सोचा कि हिसाब से ही खाऊँ तो कई दिन काम चलेगा। मुर्दा काफी बड़ा है। कंजूसी से खाना ठीक है। जरा भी नुकसान करना अच्छा नहीं है। बहुत मुद्दत पर शिकार हाथ लगा है। कहाँ से खाना शुरू करें यह सोचकर उसकी नजर कमान की तांत पर जमी खून की मोटी तह पर गई। उसने सोचा कि पहले उसे ही खा लें। मीठी भी होगी और पीछे वह तो यों ही चली जाएगी। बस, उसी पर दाँत लगाया। थोड़ा ही चाट पाया होगा कि ताँत कट गई और एकाएक ऊपर उछल के कमान की एक नोक सियार के पेट में ऐसी आ लगी कि वह भी वहीं ढेर हो गया। इस प्रकार उसकी जरूरत से ज्यादा चालाकी ने उसी का काम-तमाम किया। ठीक वही दशा ऐसे किसानों की होती है। शत्रु से फायदा उठाने वालों की यही हालत होती है।

जब तक किसानों में चेतना नहीं है जब तक उन पर किसान आन्दोलन का असर नहीं होता, जैसे तैसे अपना काम चलाते रहते हैं। कभी इधर दौड़ते और कभी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उधर पहुँचते हैं। रोना-गिड़गिड़ाना, आरजू-मिन्नत करना और जमींदारों या उनके अमलों की खुशामद में लगना उनका एक काम होता है। ठीक ही है 'आरत के चित राहत न चेतू।' वे समझ भी तो नहीं पाते कि यदि वे बकरी हैं तो जमींदार बाघ है। फिर दया क्यों करेगा? पुराने दकियानूसी खयालों के करते जमींदार को माँ-बाप मानते और पुकारते हैं। कभी-कभी उदात्त स्वार्थ या दूरअंदेशी के विचार से उनके साथ जमींदार की जरा-मरा रिआयत भी होई जाती है। वह समझता है, इनमें चेतना नहीं है। अतः मेरे आभारी बनेंगे जिससे आगे काम निकलेगा। पुराने जमींदारों में यह बात देखी जाती थी।

मगर जब किसान सभा का घोर और व्यापक आन्दोलन चल पड़ा है, जब दुनिया में चारों ओर वर्ग संघर्ष का नारा बुलन्द हो रहा है, जब यह माना और खुल्लमखुल्ला कहा जाने लगा है कि जमींदारी मिटाए बिना खैरियत नहीं, इसे तो जैसे हो बिना एक कौड़ी दिए ही खत्म करना ही होगा। और जमीन का मालिक किसान ही होगा, तो भी वही बात देखी जाती है। एक ओर तो जमींदारी मिटाने की बात को किसान हृदय से पसन्द करता है। इस आन्दोलन में काफी सहायता भी यथाशक्ति करता है। जहीं देखिए तहीं किसान मर्द-औरतें, बच्चे जमींदारी प्रथा नाश हो, किसान राज्य कायम हो, जमीन किसकी? किसानों की आदि पुकार मचाते रहते हैं। मगर दूसरी ओर जब जमींदार पहले जैसी रिआयतें जरा भी करने को तैयार नहीं होता, बेढंगे कानूनी शिकंजे में किसानों को फँसा-फँसा के उनकी रही-सही जमीनें भी छीनता है, या छीनने की कोशिश करता है, तो किसान की सब गर्मी ठण्डी हो जाती है। वह घबरा जाता है और दौड़ा-दौड़ा किसान सभा में आता है। वहाँ फरियाद करता है कि जमीन गई। वह मिलती नहीं। जमींदार सुनने को रवादार नहीं। आप लोग चल के या कह-सुन के दिलवा दें। उसे वाकई इस बात का विश्वास रहता है कि किसान सभा जबर्दस्त चीज है। अतः किसान नेताओं के कहने से जमींदार खामख्वाह मान के जमीनें दे देगा और और जुल्म कम करेगा—बन्द करेगा। वह मानते हैं कि किसान सभा ऐसा जरूर कर देगी। और अगर ऐसा न किया गया—अगर किसान सभा इस झमेले में नाहक पड़ने से दूर रही, तो किसानों के मन में खयाल होता है कि सभा तो कुछ करती ही नहीं। गोया जमींदार के दरवाजे पर जाके नाक रगड़ना ही सबकुछ करना है, और अगर सभा ने, नेताओं ने यह नहीं किया तो कुछ नहीं किया। यह आम बात है। कभी-कभी तो ऐसा होता है कि ऐसी फरियादों से तबीयत ऊब उठती है।

यह कितनी खतरनाक बात है। जब किसानों में जागृति आई, उनकी आँखें खुलीं और उनने असलियत समझी या समझनी शुरू की, तब यह बात कैसी? एक ओर जमींदारी मिटाने और खुद जमीन के मालिक बनने का दावा करना, तूफान मचाना, नारे लगाना, और दूसरी ओर उसी साँस में जमींदार से रिआयत भी चाहना। रिआयत

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की आशा भी करना। जिसे मटियामेट कर देने पर आप कमर कसे तैयार बैठे हैं और इस बात की खुले आम घोषणा कर चुके हैं, ऐलान कर चुके हैं उसी से रिआयत की आशा! सो भी किसान सभा के जरिए। यह तो 'बाँड़ खुद तो गए ही मगर नौ हाथ का पगहा भी लेते गए' वाली बात हो गई। आप स्वयं तो यह जरूरत से ज्यादा अक्लमन्दी करी रहे हैं मगर अपने साथ किसान सभा को जबर्दस्ती घसीटना चाहते हैं और अगर सभा ने इस खतरनाक बुद्धिमानी से पनाह माँग ली, तो उसी पर बिगड़ने लगे! आपने गाढ़ी भाँग पी ली है, तो खैर, मगर सभा को भी क्यों पिलाना चाहते हैं? यह बेहद चालाकी का नशा उस पर चढ़ाने की कोशिश क्यों करते हैं?

'दुई कि होई एक समय भुआला। हँसब ठठाइ फुलाउब गाला'' के अनुसार दोनों बातें कैसे हो सकती हैं? जमींदारी मिटाइएगा भी, उसे छीनिएगा भी और जमींदार से दोस्ती भी रखिएगा? आखिर रिआयत चाहने का और अर्थ होई क्या सकता है? शत्रु के साथ तो मेहरबानी या रिआयत की जाती नहीं। वह तो मित्र के साथ ही या कम से कम ऐसे आदमी के साथ की जाती है जो शत्रु नहीं है। मगर आप तो हैं करारे शत्रु। आप तो डंका पीट के इसकी घोषणा करते हैं। आप तो डंके की चोट जमींदारी को भगाना चाहते हैं, उसे पिंडा पानी देके सदा के लिए उससे छुटकारा पाना चाहते हैं। फिर भी रिआयत कैसी? आखिर जमींदार तो नादान है नहीं। यदि आपको चालाकी का नशा है तो उसे क्यों हो? उसको इसका अजीर्ण क्यों हो? वह तो भरसक एक भी ऐसी बात करने से बाज न आएगा जिससे आपकी नाकों दम हो जाए, 'आप ऊब के किसान सभा से हट जाएँ, उसके सामने अंटा चित गिरें, घुटने टेक दें। आखिर लड़ाई ही तो ठहरी, फिर उसमें दाँव-पेंच घात की जगह—भी जान से लड़ने और जूझने के स्थान पर—यह दया, कृपा और रिआयत का सवाल कैसा? यह असमय की होली, बेवक्त का राग कैसा? और अगर किसान सभा आपके इस राग सुर में अपना सुर न मिलाए तो उसे धन्यवाद देने तथा उस पर खुश होने के बजाय यह रंजिश कैसी? बल्कि जो सभा या उसके लीडर ऐसा करें उन्हीं पर रंज होना चाहिए। क्योंकि वह वर्ग युद्ध का रास्ता छोड़ मेल-जोल का मार्ग पकड़ते हैं। अतः उनसे धोखे हैं। हाँ, आपकी और हमारी—किसान सभा की—लड़ाई से हार के यदि जमींदार गिरे और समझौता चाहे तो बात दूसरी है। तब हम देखेंगे कि क्या करना चाहिए। परिस्थिति के अनुसार ही उस समय हम कुछ भी कर सकते हैं—समझौते और रिआयत की बात सोच सकते हैं। मगर जब तक वह अकड़ के खड़ा है और झुकना नहीं चाहता तब तक तो यह बात सोचना हमारे लिए बुरा है। धोखे की बात है। हम धोखा खा सकते हैं यदि इसमें पड़े।

यह वर्ग युद्ध और वर्ग संघर्ष जिसके फलस्वरूप ही जमींदारी मिटाने, या किसान मजदूर राज्य कायम करने की बात कही जाती है, मामूली नहीं है। यह बड़ा ही महत्त्वपूर्ण मसला है। यदि किसानों ने इसे बखूबी समझ न लिया यदि उनने इसका रहस्य, इसके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सभी पहलू रत्ती-रत्ती जान न लिये तो कुछ न होगा और सारी मेहनत अकारथ जाएगी। सिर्फ जान लेने से ही काम न चलेगा। बराबर ही सौदा कम तौलने वाले किसी बनिये से कहिए कि यह काम बुरा है, यह तो चोरी है, बेईमानी है तो वह भी चटपट कह बैठता है कि हाँ, हाँ, मैं तो यह बात अच्छी तरह जानता हूँ मगर...। उसका यह मगर बड़ा ही खतरनाक है। यही तो उसके जानने को न जानना कर देता है, जानने को बेकार कर देता है। यह ऐसा मगर है कि गज को ग्रस लेता है। यह ऐसा अगस्त्य है कि समुद्र को सोख लेता है। यह ऐसा भस्मक रोग है कि सारे खाए-पिए को जला देता है और रस बनने देता नहीं। किसान के हर ऐसे काम में—हर ऐसी जानकारी में—यही मगर लगा हुआ है। वह भी कहता है कि मैं तो मानता हूँ कि बिना बेमुरव्वती के साथ दिल खोल के प्राणपन से जमींदार के साथ लड़े—वर्ग संघर्ष किए न तो जमींदारी मिटेगी और न हमारा दुःख ही दूर होगा। यह तो मुझे अब मालूम होई गया। इसमें तो कोई शक नहीं है। मगर—। बस, हर जगह यह 'मगर' आ धमकता है मुँह बाए हुए और सभी को ग्रस लेता है—सब किए-कराए और समझे-बूझे पर पानी फेर देता है। यही कारण है कि वह किसान सभा के द्वारा जमींदार से सिफारिश करवाना चाहता है। यही कारण है कि वह जग के सोता है।

इसलिए उसका कर्तव्य है, हमारा कर्तव्य है, किसान सभा का और किसान सेवकों का कर्तव्य है कि इस मगर को मार डालें। ऐसा करें कि यह दीखे नहीं। तभी संघर्ष की सफलता होगी, तभी यह ठीक-ठीक चलाया जा सकेगा। तभी किसान वर्ग-संघर्ष और वर्ग युद्ध का रूप जान सकेगा, यह महसूस करेगा, साक्षात्कार करेगा, अनुभव करेगा, रिअलाइज (Realise) करेगा, फील (Feel) करेगा। हम केवल जानकारी नहीं चाहते हैं, जिस प्रकार किताबें पढ़ के लन्दन, पेरिस, बर्लिन, मास्को की जानकारी करते हैं। नहीं, नहीं, हमारी आँखों के सामने वह चीज साकार बनके नाचती रहे ऐसी हालत को जानकारी कहते हैं। जब कोई बात हमारे दिल दिमाग में, रग-रग में, खून-मांस में, बिंध जाए, चुभ जाए, और पल-पल पर खटकती रहे, कदम-कदम पर चुभती रहे, तब हमें उसकी सच्ची जानकारी कही जा सकती है। वही अनुभव, साक्षात्कार, अहसास Realisation, feeling है। जब वह हमें मतवाला बना दे, मस्त बना दे, अधीर, उतावला desperate बना दे, उसे पूरा कर डालने के लिए आतुर और विकल बना दे, बेचैन बना दे, तभी उसकी वास्तविक जानकारी मानी जाएगी जिसकी हमें जरूरत है।

किसान समझ लें कि वर्ग युद्ध में पड़ने पर जमींदार, सरकार और उनके मददगार, सलाहकार हमें ग्रस लेने, मिटा देने, पस्त कर डालने की सारी कोशिशें पत्थर का दिल बना के करेंगे। वह रिआयत और मेहरबानी का नाम भी नहीं ले सकते। हम उजड़ें नहीं, बसे रहें यह बात सोच भी नहीं सकते। उनकी चले तो हमें, हमारे साथियों को, हमारे परिवार और सगे-सम्बन्धियों को कच्चे ही चबा जाएँ। वह डण्डे से पीटे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गए काले नाग और गेहुँवन साँप की तरह, अजगर की तरह फुफकारते रहेंगे, वह आग उगलते और जहर का वमन चौबीसों घंटे करते रहेंगे कि हम ससमाज उसी में दग्ध हो जाएँ मर-मिट जाएँ, तहस-नहस हो जाएँ। वे वर्ग युद्ध का रहस्य खूब समझते हैं। वे यह युद्ध चलाना जानते हैं। पुश्त दर पुश्त से उन्हें इसकी शिक्षा मिली है। वे इसकी पूरी हिम्मत और धुन रखते हैं। उनके साथ कोई 'अगर, मगर...' नहीं लगा है। उन्होंने इस 'मगर' को कभी का मार डाला है। वह इसका खतरा खूब ही जानते हैं। वे तो इस लड़ाई को आखिरी समझ के लड़ते हैं, लड़ेंगे। वे तो इसके लिए सर्वस्व न्योछावर कर देंगे। वे तो मानते हैं कि 'अभी नहीं तो कभी नहीं' (Now or Never)। इसलिए किसी भी प्रकार चूकने वाले नहीं।

किसानों को भी उनसे यही सीखना होगा। इस मामले में उन्हें ही अपना गुरु बनाना होगा और गुरुदक्षिणा के रूप में उन्हें जमींदारी की चिता—जो जल के खाक हो गई हो, उन्हें सौंपनी होगी। यह कोई हलवे का भोग नहीं है कि धीरे से गले के नीचे उतर जाए।

यह तो निहायत ही तीखी और कड़वी दवा है—चिरायते का काढ़ा है जिसके पीते ही रोंगटे खड़े हो जाएँ और सारा शरीर झन्ना उठे। जमींदार तो किसान के साथ रिआयतें करना साँप को दूध पिलाना समझते हैं। अब किसान खुद सोचें कि जमींदारों के सामने दाँत निपोरना बेवकूफी और नादानी है या अक्लमन्दी? बेहयाई है या भलमनसी? उन्हें तो चाहिए कि जमींदार की परछाईं देख के भी दूर हट जाएँ। मछली फँसाने वाले बंसी में आटा या मांस लगा के पानी में उसे छोड़ देते हैं। उसी आटे या चारे के लोभ से मछली फँसती है। ठीक यही हालत जमींदारों की रिआयत की है। वह तो किसान को फँसा मारने के ही लिए चारे की तरह जरा-मरा सहूलियतें दे सकते हैं, देते हैं। सबसे बड़ी हानि जो इस आतुरता, दीनता और दया, भिक्षा से होती है। वह यह कि जमींदार यदि पस्त हिम्मत भी होता हो तो उसे हिम्मत आ जाती है कि अब किसान गिरने लगे। फलतः उन्हें दबाने के लिए और भी ज्यादा बन्दिशें करता और जोर लगाता है। कहते हैं कि 'यदि नाचना है तो मुँह क्या छिपाना?' उसी प्रकार यदि लड़ना है तो जमींदार के सामने यह दीनता कैसी? ओस चाट के प्यास बुझाने का यह यत्न कैसे उचित कहा जाए? तो क्या जमींदार की दी हुई सुविधा ओस से ज्यादा होती है? ज्यादा होगी? यदि कोई ऐसा सोचे तो उसे पागलखाने के सिवाय कहीं स्थान नहीं। जैसे कमान की ताँत में लगे खून-मांस के लोभ से सियार की जान गई, वैसे ही इस लोभ से किसान मारा जाता है।

हमने देखा है कि किसानों के पास जीवनोपयोगी सभी पदार्थों का प्रायः अभाव रहता है। वे बराबर ही भूख, कपड़े, लत्ते, दवाओं की कमी आदि की शिकायतें करते रहते हैं। वे जब न तब इसी बात का रोना रोते पाए जाते हैं। बाप रे बाप, मर गए, लुट गए, पिस गए की चिल्लाहट सदा सुनाई पड़ती है। बात भी बनावटी नहीं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है। यही तो असलियत है। मगर सिर्फ किसान सभा में, मीटिंगों में या किसान नेताओं के ही सामने यह रोना रोने से काम चलने का नहीं। संसार को, मतवाली दुनिया को, खुद किसानों के दुश्मनों को अच्छी तरह मालूम हो जाना चाहिए कि किसान सचमुच दुखिया और मजलूम हैं। वे समझ जाएँ कि यह दशा किसानों को बुरी तरह खलती और तीर की तरह पल-पल में, साँस-साँस में चुभ रही है। वे इससे ऊब चुके हैं। तभी वे डरेंगे, भयभीत होंगे और समझेंगे कि कहीं किसान क्रान्ति न कर बैठें—जान पर खेल के जूझने न लगें।

लेकिन यह बात होती नहीं। किसान अपनी इस दशा का, इस मनोवृत्ति का, इस भावना का सबूत दुनिया को नहीं देता। किसान सभा में या ऐसे ही मौकों पर चीखने से लोग नहीं मानेंगे। समझेंगे कि यह तो बनावटी बातें हैं। जब तक किसान की रग-रग से, नस-नस से, साँस-साँस से, हर बोली, बानी, भाव-भंगी से, चेष्टा से यह बात टपक न पड़े तब तक बाहरी जगत को उसके रोने-चिल्लाने की सच्चाई पर विश्वास नहीं होगा। मगर ऐसा नहीं होता। हम देखते हैं कि जब कोई साधु, फकीर, पण्डित, पुजारी, विद्वान किसानों के पास पहुँचते हैं तो चटपट आत्मा-परमात्मा, जीव-ब्रह्म, पुण्य-पाप, नरक-स्वर्ग का पँवारा उमड़ जाता है। इसी बात की जिज्ञासा इसी का प्रश्नोत्तर चलता है। कनफुक्के गुरुओं के सामने भी यही कथा चलती है। और ये सभी मालदारों के एजेण्ट और दलाल हैं। इसीलिए यह सारा समाचार सर्वत्र फैलाते रहते हैं। फिर दुनिया कैसे विश्वास करे कि किसान दुखिया है। यदि कोई भूखा हो, जाड़े से काँपता हो, ज्वर से जलता हो तो इन साधु-फकीरों के सामने ये निरर्थक बातें करेगा, या कि रोटी, भात, वस्त्र, दवा का प्रश्न छेड़ेगा? वह खुद तो छेड़ेगा ही नहीं। परन्तु यदि दूसरे कोई भी ऐसा करना चाहें तो जल मरेगा। मगर किसान को तो अक्ल का अपच हो गया है जिसके लिए ये बातें चूर्ण का काम करती हैं। रोटी का प्रश्न चूर्ण या वटी तो है नहीं। हाजमा है नहीं। मगर यह तरीका गलत है, नाशकारी है, यह याद रहे। ब्रह्म, बैकुण्ठ, स्वर्ग कहीं भागे चले जाते हैं नहीं। उनके लिए कोई जल्दी नहीं है। पेट भर लेगा तो पीछे आसानी से उन्हें ढूँढ़ लेंगे। और भूख में या ज्वर में तो मिलेंगे ही नहीं, चाहे हजार चिल्लाएँ।

एक बात और। जब तक किसानों में जागृति नहीं है तब तक तो शायद ही कभी ऊब के आतंकवाद की शरण वे लेते हैं। जब दूसरा कोई चारा रही नहीं जाता। आखिर करें भी क्या? मगर जब वे जगने लगते हैं तो या तो अवसरवादी (opportunists) और मालदारों के दलाल या अतिवादी (ultraleftists) लोग उन्हें गलत रास्ते पर ले जाना चाहते और आतंकवाद या जैसे क्रान्ति के नाम पर जल्दीबाजी करने की बातें हैं। इस प्रकार की गर्मागर्म बातें रुचती हैं सभी को। इसीलिए जनसाधारण की इस रुचि से वे अनुचित लाभ उठाने की कोशिश करते हैं। किसान भी उधर झुकते हैं। वे समझते हैं कि विपदा दूर करने का सरल रास्ता मिल गया। इसमें नामवरी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की भी गुंजाइश काफी रहती है। संसार का ध्यान भी ऐसे काम करनेवालों की ओर आसानी से आकृष्ट होता है। मगर है यह चीज बहुत ही गलत और निहायत ही खतरनाक। इसमें तो खतरे ही खतरे हैं। मैंने कभी-कभी कुछ सीधे-सादे नौजवानों को ऐसी बातें बड़े ही जोश के साथ करते देखा है। उनकी बातें सुनी हैं। वे अपने को बहुत ही चालाक समझते हैं। वे मानते हैं कि आतंकवाद का ही नाम, क्रान्ति है। बहुत ही विश्वासपूर्वक ऐसी बातें करते देख मुझे कष्ट भी हुआ है और रंज भी।

मैं उन्हें और दूसरों को साफ सुना देना चाहता हूँ कि यह चालाकी किसानों को रसातल ले जाएगी—वे मिट जाएँगे इसका अनुसरण करते ही। इसलिए हमें इस प्लेग और संक्रामक रोग से किसानों को बचाना है। यही कारण है कि उन्हें चेतावनी दी जा रही है। क्रान्ति बच्चों का खिलवाड़ या नटलीला नहीं है। वह तो नई दुनिया का, नए जगत का निर्माण है। अतएव जब तक जनसमूह उसकी महत्ता, उसकी उपयोगिता और उसे लाने का मार्ग अनुभव नहीं कर लेता, जब तक उसे अडिग निश्चय और पक्की धारणा हो नहीं जाती कि उसके सिवाय और रास्ता हई नहीं, जब तक समस्त या अधिकांश जनता उसके लिए उतावली हो उठती नहीं तब तक वह हो सकती नहीं। आतंकवाद तो लड़कपन है और क्रान्ति समझदारों का काम है। आतंकवाद का काम यही होता है कि किसानों के संगठन एवं जनजागरण का काम छूट जाता है। और हम भटक जाते हैं—असली काम को छोड़कर नकली में पड़ जाते हैं। शोषकों एवं शासकों को इससे स्वर्ण सुअवसर मिल जाता है कि वह अपना आतंक कायम करके जगती हुई जनता को त्रस्त और पस्त कर दें—बहुत दिनों के लिए विचलित एवं निराश कर दें—किंकर्तव्यविमूढ़ कर दें। इसलिए इस खतरे से हमें बाल-बाल बचना होगा।

छठा भाग

(11)
किसान सेवक और किसान कोष तैयार करें

किसान सभा की सदस्यता के बाद ही पर उससे मिला हुआ दूसरा प्रश्न है। किसान सेवक दल का। पहले कदम के बाद ही यह दूसरा कदम आता है। असल में तो इसके बिना पहले कदम की भी सफलता हो नहीं सकती। जो लोग पहले कदम को पूर्ण सफल बनाने में तन-मन से लग जाएँगे, पिल पड़ेंगे, वही तो सच्चे किसान सेवक होंगे, उन्हीं से तो वास्तविक किसान सेवक दल का श्रीगणेश और सूत्रपात होगा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यदि पहले कदम में हमें पूरी सफलता मिली तो उसका साफ मतलब यही होगा कि हम जबर्दस्त से जबर्दस्त किसान सेवक दल तैयार कर सकेंगे। उससे यह साफ हो जाता है कि जिस मात्रा में हमारे पहले कदम की सफलता होगी उसी मात्रा में उस दूसरे कदम की भी, मगर उत्तरोत्तर बढ़ने वाली, कामयाबी मिलेगी। क्योंकि किसान सभा के सदस्य बनाने वाले मस्ताने लोगों के अलावे सदस्यों में भी बहुत से जवान स्त्री, पुरुष ऐसे निकलेंगे ही जो खामख्वाह चाव के साथ सेवक दल में भर्ती हो जाएँ। इस तरह एक ऐसा चक्र चालू हो जाएगा जिसका उत्तरोत्तर विकास होता ही रहेगा। किसान सेवकों का एक दल तैयार हो के सदस्य बनाने में लग जाएगा। फलस्वरूप वह दल तथा सदस्यों में से कुछ और लोगों को मिलाकर नए सिरे से विस्तृत किसान सेवक दल संगठित होगा कि आगे चल के सदस्य बनानेवालों की संख्या बढ़ेगी ही। फलतः सेवक दल का आकार भी उसके बाद विस्तृत होगा। इस प्रकार अन्योन्याश्रय तथा परस्पर सहकारिता के करते ही हम आगे बढ़ेंगे।

सवाल पैदा होता है कि किसान सेवक दल का सूत्रपात हो कैसे, इसे कैसे, कौन करे, कब करे तथा इसमें शामिल हों कैसे लोग? सवाल तो आसान भी है और कठिन भी। इसका जवाब भी कुछ ऐसा ही है। दुनिया की जो प्रणाली है उसके अनुसार तो चटपट में हो सकते हैं कि जो लोग इस काम में दिलचस्पी रखते हों वह फौरन आगे आएँ और इस काम को हाथ में लेके बढ़ाएँ जिन्हें किसान सभा के उद्देश्य तथा कार्यक्रम में पूरा यकीन हो, जो उसे दिल से मानते हों उन्हीं का यह काम है कि इसमें पड़ जाएँ। इसमें शामिल भी उन्हीं लोगों को करें जो धुनी हों। लगन वाले हों, भरसक युवक हों, उत्साह वाले हों। सबसे बड़ी बात यह है कि उन्हें किसान सभा में किसानों में उनके लक्ष्य में और खुद अपने आप में ज्वलन्त, जीता जागता विश्वास हो। जब रावण ने लंका के बीच बैठी सीता से छेड़खानी की तो सीता का तड़ाक-फड़ाक उत्तर मिला कि 'सो भुज कंठ कि तव अति घोरा। सुनु सठ अस प्रवान पन मोरा।" विचित्र उत्तर था, ऐसा कि साधारण आदमी को समझ में ही न आए। वह उसे पागल प्रलाप के सिवाय कुछ समझे ही न। या ज्यादे से ज्यादा लड़कपन की बात माने।

भीषण चहारदीवारी और दुर्गम समुद्र से घिरी हुई बीहड़ लंका की एक वाटिका में एक स्त्री बैठी हुई है जिसका कोई भी अपना कहलाने वाला पास-पड़ोस में तो क्या हजारों मील तक नहीं हो। वह स्त्री चुरा के जबर्दस्ती वहाँ लाई गई है अकेली। वहाँ भी उसके इर्द-गिर्द खूँखार राक्षसों का पहरा है—ऐसा पहरा कि हवा भी बिना इजाजत के आने न पाए। ऐसी तो सख्ती है। लंका भी वही जहाँ खुद रावण रहता है, जो उसका गढ़, उसकी राजधानी है, जहाँ जाते समय हनुमान को पहले तो समुद्र में ही परछाईं के द्वारा खिंच जाना पड़ा और बड़ी मुश्किल से जान बच पाई। मगर जब मामूली बिल्ली के रूप में उस गढ़ में घुसने लगे तो एक राक्षसी ने ही रोक-टोक की।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

फलतः उसमें भी उनकी भिड़न्त हुई। ऐसा तो दुष्प्रवेश वह गढ़ है। उसके अधिपति रावण का तो कहना ही नहीं। उसका प्रताप तो मध्यांग ज्येष्ठ के सूर्य जैसा तपता है। उसके बारे में तुलसी ने कही दिया है कि 'चलत दसानन डोलति अवनी।' यदि एक बार कसके बोल दे तो देवताओं की धोती ढीली हो जाए और उनकी स्त्रियों के गर्भ गिर पड़ें।

उसी लंका के बीच बैठी असहाय सीता उसी रावण ललकार के कहती है कि मेरे शरीर को या तो राम की बाँहें छू सकती हैं या तेरी तलवार ही। तेरी क्या बिसात कि छू ले? ऐ बदमाश, मैं यह पक्की बात कहती हूँ। यह कोई बन्दर घुड़की नहीं है। सीता के ये वचन किस बात के प्रमाण हैं? उसके ऐसा कहने के लिए वहाँ सामान ही क्या है? कोई भी कारण साधारण स्त्री-पुरुषों को नजर नहीं आता कि जिससे सीता की इन बातों का समर्थन हो सके या उनका औचित्य सिद्ध हो। फिर भी ये बातें सही थीं, उचित थीं और इतिहास उस बात का साक्षी है कि सीता ने ठीक ही ललकारा था। रावण की हिम्मत ही न हो सकी कि नजदीक भी जाए—उसी रावण की जिसका तेज जलता था, जो तपता था, जिसके बारे में लोगों ने कहा है कि 'पवन जहँ अंगना बटोरे, मेघ भरैं जहँ पानी।' यह असम्भव बात यह अनहोनी कैसे हो गई? उसका रहस्य क्या है? हमें यही बात तो सोचनी है।

यदि हम तह में घुसके देखें तो साफ ही मालूम होगा कि सबकुछ होते हुए भी सीता में यह जीता जागता हुआ विश्वास था कि मेरे जैसी पतिव्रता एवं सती-साध्वी को छूने की हिम्मत किसी पापी को नहीं हो सकती। उसके दिल में यह ज्वलन्त धारणा दृढ़ता के साथ बैठी हुई थी कि रामचन्द्र अवश्य मिलेंगे और मेरा उद्धार करेंगे केवल इसके कि रावण मेरा कुछ भी करे, कुछ भी कर सके, उसका यह अमिट और अटूट यकीन था कि प्रतापी से भी प्रतापी पापी उसकी ओर देखते ही भस्म हो जाएगा। वह हृदय के अन्तस्तल से यह माने बैठी थी कि शीघ्र से शीघ्र उसका उद्धार लंका से हो के ही रहेगा। वह हस्तामलक की तरह स्पष्ट ही देखती थी कि रामचन्द्र से मेरा मिलन जल्द ही होने वाला है। इस धारणा को उसके दिल दिमाग से कोई भी ताकत डिगा न सकती थी। हजार संकट आए, बाधाएँ आएँ, और अब और ज्यादा बाधाएँ होई क्या सकती थीं? फिर भी मेरा लक्ष्य तो सिद्ध होगा ही, मैं तो अपने इष्ट को प्राप्त करूँगी ही। स्वप्न में भी उसे दूसरा खयाल होता न था। कभी भी वह इस दृढ़ धारणा से विचलित होती न थी। बस इसी का यह परिणाम हुआ कि उसकी भविष्यवाणी अक्षरशः सत्य ही निकली और वह विजयिनी हुई सो भी शीघ्र ही। यही वजह थी कि रावण काँप गया और अपना-सा मुँह लेके चलता बना। अटल, अडिग, अमिट, ज्वलन्त, जीते-जागते विश्वास की करामात ही ऐसी है। अपने लक्ष्य में अपने ध्येय में अपनी शक्ति में ऐसा विश्वास का होना ही विजय की पहली तथा आखिरी सीढ़ी है। यह अदम्य विश्वास हिमालय को हिला देता है, समुद्र को सुखा देता है, जहर को अमृत बना देता है और चाँद-सूर्य को पूर्व से पश्चिम या पश्चिम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

से पूर्व कर देता है। इसमें पहाड़ को तोड़ने वाली ऐसी (डायनामिक) शक्ति है कि कुछ कहिए मत। इसी के बल पर टिट्टिभी ने अपने बच्चे पाए थे समुद्र के गर्भ से। इसी के चलते पाँच वर्ष का बालक घोर जंगल में जाके, जबकि उसे बोलने की पूरी शक्ति न थी, अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सका। इसी की करामात है कि प्रह्लाद सभी प्रकार की विकट से विकट परीक्षाओं में उत्तीर्ण हुआ और आदर्श पुरुष बना। संसार का इतिहास इस बात का साक्षी है कि अपने में तथा अपने लक्ष्य में अक्षुण्ण देदीप्यमान विश्वास रखने वाले बड़े से बड़े पैगम्बर या ऋषि-मुनि विजयी बने हैं। इसके करते ही अनेक देशों के हकों के लिए लड़नेवाले महापुरुष सफलमनोरथ हुए हैं। इसके बिना लड़ने वाला पुरुष भीतर से खोखला रहता है। इसके सभी प्रयत्न ऐसे ही विफल होते हैं जैसे बिना फल (लोहे की नोक) वाला तीर।

इसलिए किसान सेवक देश में जो लोग प्रविष्ट हों या जो उसका काम चलाएँ उनमें इस अटूट विश्वास का होना बुनियादी चीज है। अंग्रेजी में उस आदमी को लाइलाज कहते हैं जो किसी की सुनता ही नहीं। किसान सेवक को सचमुच वैसा ही होना चाहिए जहाँ तक अपनी धुन से मतलब है, जहाँ तक उसके लक्ष्य में लगन तथा विश्वास से ताल्लुक है। उसके विपरीत किसी की भी बात सुनने को वह कभी तैयार न हों। ऐसी बातों से उसके कान के पर्दे जब फटने लगें तभी उसे पक्का धुनी कह सकते हैं। तभी वह सच्चा किसान सेवक बनने का हकदार हो सकता है। हमें तो मस्तराम और मतवालों का दल चाहिए जो झूमते चलें, जो लापरवाह हों और जिनकी दृष्टि उसके लक्ष्य पर ऐसी टँगी हो कि सारी चीज ही भूल जाए।

एक खयाली उड़ान मारने वाले ने प्रश्न किया और खुद ही उत्तर भी स्वयं ही दिया। उसने कहा कि चकोर आग क्यों खाता है? थोड़ी देर सोचने के लिए रुका। फिर कहने लगा चकोर की लगन उसकी अनन्य भक्ति, उसका प्रेम चन्द्रमा से है। वह चाहता है कि किसी प्रकार अपने प्रेमी से या प्रेम पात्र से मिलूँ। मगर कोई रास्ता नहीं सूझता है। वह तो कहाँ जमीन पर रहने वाला और चन्द्र ठेठ आकाश में अनन्त दूरी के ऊपर। यह अगम्य अन्तर। यह अपार दूरी। यह कैसे पार की जाए यह मामूली नहीं होता है। उसके पर हैं तो बहुत ही सुन्दर, अत्यन्त रमणीय, मनमोहक। मगर उनमें उड़ान मारने की ऐसी शक्ति नहीं कि वहाँ पहुँचा दें। हो भी कैसे? रमणीय तथा दिखाऊ चीजों में, तड़क-भड़क वालों में शक्ति कहाँ? वह तो शान-बान में ही खत्म हो जाती है। इसलिए बार-बार तड़फड़ाता है। लेकिन नतीजा कुछ नहीं। हाँ खुरदुरे तथा नाखूनदार पाँवों में ही तो दौड़ने की ताकत है। ठीक ही है। ऐसे ही हाथ-पाँव तो कुछ कर सकते हैं। दुनिया का यही नियम है। लेकिन खेद है कि चन्द्रमा-चकोर का प्रेम पात्र तो इस धरातल पर है नहीं। फिर पाँवों की शक्ति से फायदा ही क्या? वह दौड़े भी तो आखिर जाएगा कहाँ? यहाँ तो 'प्रीतम बसे पहाड़ पर हम गंगा के तीर अब तो मिलना कठिन है पायन परी जंजीर' वाली बात है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रियतम तो आसमान में है। पहाड़ पर भी होते तो शायद कोशिश करता। फलतः अपने को खासकर अपने परों को धिक्कारता है कि किसी भी काम के न साबित हुए। सो भी ऐन मौके पर ही।

इसके बाद उसकी बेकली और बेचैनी बढ़ती है। और प्रीतम से मिलने को वह बहुत बुरी तरह अधीर हो उठता है। फिर एकाएक उसे खयाल आता है कि एक रास्ता तो मिलने के लिए बहुत ही आसान है। मेरा प्रीतम केवल आकाश में ही नहीं बसता है। उसका निवास स्थान महादेव बाबा का ललाट भी तो है और महादेव जी को भस्म से बहुत ही अनुराग है, यहाँ तक कि वे तो चिता की भस्म ज्यादा प्रेम से सारे शरीर में रमाते हैं। इसीलिए तो उनका स्थान श्मशान माना जाता है तथा उनके बारे में पुराने लोगों ने 'श्मशानेष्वाक्रीड़ा' 'चिताभस्मालेपः' आदि कहा है। तो बस, चलो अब सब ठीक हो गया। मेरी दिक्कत अनायास ही हल हो गई। अब तो प्रीतम से मिल के ही रहूँगा। अब तो और कुछ करना नहीं है। केवल आग खाऊँगा। और जल के राख हो जाऊँगा। फिर तो श्मशानशायी शिव खामख्वाह मेरे शरीर का भस्म अपने सर्वांग में जिसमें ललाट प्रमुख है—लपेटेंगे और मैं प्रीतम से—माशूक से—अयत्न ही जा मिलूँगा। बस, उसने आग खाना शुरू कर दिया।

अपने 'प्रियतम' अपने लक्ष्य के प्रति अटूट प्रेम और अमिट विश्वास में झूमने वाले मस्तानों की टोली यही करती है। उसका यही रास्ता ही है। उसका तो मूल मन्त्र ही यह है कि 'सन्तन संग बैठि लोक लाज खोई। अब तो बात फैल गई जाने सब कोई।' जब घोर जंगल में राम के पास से सीता हरी जा चुकी, तो उसके प्रेम में उनकी सुध-बुध ऐसी गायब हुई और वे ऐसे विह्वल हो गए कि पशु-पक्षियों एवं वृक्षों तक से भी सीता का पता पूछना शुरू किया—'हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम्ह देखी सीता मृगनैनी।' सच्ची लगन इसी का नाम है। मस्ती इसे ही कहते हैं। बिना इस प्रकार के अनोखे पागलपन के लक्ष्य तक पहुँच सम्भव भी नहीं। यही पागलपन तो पत्थर को भी पिघलाता और कट्टर विरोधियों को भी सहायक बनाता है। ऐसे ही मस्तानों की टोली का जब किसान सेवक दल बने, तभी किसानों का उद्धार होगा। हम ऐसी ही टोली चाहते हैं।

इस मस्ती में अटल प्रतिज्ञा, दृढ़ संकल्प—'शरीरं वा पातर्ययम्, कार्य वा साधयेयम्'—मौत या लक्ष्य वाली लगन का पुट जब आ मिलता है तो काम बन जाता है। 'अर्जुन स्यं प्रतिज्ञे दे न दैन्यं न पलायनम्' के अनुसार जब उद्योगी पुरुष झटसे प्रण कर लेता है कि न तो किसी के सामने दाँत निपोरेंगे और न दिक्कतों से घबरा के भाग ही जाएँगे। किन्तु खुले दिल से ललकारता है कि आओ विपत्तियाँ तुम दुःखों को साथ लाओ। पीटूँगा मैं तुम्ही को, तुम से ही या पिटूँगा, तभी तो विजय होती है। विपत्तियों से क्या डरना? वही तो विजय की पहली सीढ़ी है। कठिनाइयाँ और दिक्कतें हों तो लक्ष्य की ओर साइन बोर्ड की तरह इशारा करती हैं कि इसी रास्ते से वह मिलेगा। देखो न वह तो नजदीक में ही है। मगर जो साइन बोर्ड के पास

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तक पहुँचा ही नहीं उसे क्या पता कि सिवाय इसके और रास्ता लक्ष्य प्राप्ति का है या नहीं? उसे क्या मालूम कि वह दूर है या नजदीक?

कहते हैं, तुलसीदास राम के अनन्य भक्त थे। राम को छोड़ उन्हें औरों से न तो प्रेम था और न उनकी परवाह करते थे। साथ ही राम से मिले बिना चैन ही न लूँगा यह भी उनका हठ था, ऊँट की पकड़ थी, दृढ़ प्रतिज्ञा थी। घटना ऐसी बताई जाती है कि एक बार ब्रज में घूमने-घामने जा निकले। वहाँ देखते है कि वृन्दावन बिहारी का सोलहों सिंगार है और मुरली मुख में लगाए कृष्ण सुरीली तान छेड़ रहे हैं। इधर-उधर ढूँढ़ा खोजा सही। पर राम का कहीं पता नहीं। वहाँ से उनकी बेदखली हो चुकी थी। वह क्या अयोध्या थी? वह तो आनन्द कन्द का ब्रज था। फिर राम का वहाँ पता हो तो कैसे? तुलसीदास को यह बात खटकी। सोचा क्या करें? कैसे कृष्ण के सामने सर झुकाएँ? तब तो अनन्य भक्ति ही खत्म हो जाएगी—ध्येय के प्रति, आराध्य के प्रति, साक्ष्य के प्रति, अनन्य प्रेम ही न रह जाएगा। इसलिए उनने तय किया कि चाहे जो हो, पर कृष्ण के सामने तो मेरा यह सर झुकेगा नहीं, और साथ ही सुना भी दिया कि 'कहा कहौं छवि आपकी भले बने हो नाथ। तुलसी मस्तक तब नवैं जब धनुष बान हाथ।' गजब हो गया।

मगर नतीजा क्या हुआ? झख मार के कृष्ण को अपना रूप बदल के राम बनना पड़ा। 'निज भक्तन के कारणे नाथ भए रघुनाथ'। तब कहीं जाकर तुलसी का मस्तक उनके सामने नवा। सच्ची लगन एवं दृढ़संकल्प में वह अभूतपूर्व शक्ति है कि आखिर ध्येय को अपने पास खींच ही तो लाती है। साधारण चुम्बक का आकर्षण उसके सामनें फीका है। इसीलिए तो कहते हैं कि विवेकानन्द जैसे घोर नास्तिक एवं प्रचण्ड तार्किक को परमहंस रामकृष्ण के एक मामूली वाक्य ने सोलहों आने बदल दिया। न कोई तर्क। न कोई दलील। न कोई माथापच्ची। और विवेकानन्द पूरे आस्तिक बन गए। उनने रामकृष्ण से पूछा के ऐ महाराज, ईश्वर भी कोई पदार्थ है? रामकृष्ण ने बस इतना ही कहा कि हाँ, मैं तो उसे ठीक वैसे ही देखता हूँ जैसे तुम मुझे। इतने से ही काम हो गया। क्या किसी और के मुँह से अनन्त बार ऐसा वाक्य सुनके भी विवेकानन्द पर कुछ भी असर होता, सिर्फ घृणा पूर्ण हँसी के? फिर रामकृष्ण में क्या खूबी थी कि बात हृदय में चुभ गई? असल में उनकी लगन सच्ची थी, लक्ष्य के प्रति उनकी भक्ति अनन्य थी। उनका बाहर भीतर एक था। जो कहते वही करते थे। ऐसा नहीं कि 'मुख में बान और मन में आन'। इसी का वह नतीजा था।

यह बाहर-भीतर एकरस होना ही सच्ची लगन का दृढ़ संकल्प का असली सबूत है। कहने के लिए तो सभी कह डालते हैं कि हमें तो किसानों में अटूट भक्ति है, हम तो उनका उद्धार हृदय से चाहते हैं, हमारा तो यही व्रत ही है, आदि-आदि। मगर इसका पता कैसे लगे? इसकी परीक्षा किस प्रकार हो? इसके जाँच की कसौटी क्या है? यह लगन, यह प्रेम, यह भक्ति केवल बातों की ही है या कि उसमें कुछ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सार है, इसका निश्चय कैसे हो? इसका रास्ता यही बाहर-भीतर एकरस होना ही है। जब हम इसी रंग में रँगे हैं तो यह बात छिपने की कब तक? उस प्रेम का पनाला तो फूट के बाहर आई जाएगा। हजारों मौके लगेंगे जब उसे बाहर आना ही होगा। कहते हैं कि कस्तूरी को कितना ही छिपा रखिए फिर भी उसकी गन्ध फैल ही जाती है। यह प्रेम, यह किसान भक्ति तो कस्तूरी की गन्ध से भी हजार गुनी तेज है, भेदन करने वाली है। वह तो अंग-अंग में बिंध जाने वाली चीज है। वह तो रोम-रोम से फूट पड़ती है। इसका फूटना यही है कि हम जो सोचें वही बोलें और वही करें। जब हमारा हरेक काम हमारी हरेक साँस हमारी बातों से ही मिलती जुलती रहेगी, जब एक भी काम उसके विपरीत न होगा तभी माना जाएगा कि हम सच्चे किसान सेवक हैं। यदि दैवात् एकाध बार चूके तो हममें खामख्वाह तिलमिलाहट होगी, तड़प होगी और हमारा दिल सहसा रो उठेगा कि हाय रे, हम तो चूके। यही है हमारी उस दृढ़ प्रतिज्ञा, सच्ची लगन की परख की कसौटी।

बात यह है कि किसान सेवकों को यह समझ लेना होगा कि उन्हें किसानों के सामने हिसाब देना है। वह हिसाब दो प्रकार का होगा। एक तो रुपए, पैसे, अन्न, पानी आदि का। दूसरा अपने कामों का। सार्वजनिक जीवन की जो हमारी सबसे बड़ी कमजोरी है वह यह है कि चाहे हमें मजबूर करके हमारे कामों का और रुपए-पैसे आदि के रूप में हमें जो कुछ जनता से मिला है उसका—दोनों का ही—हिसाब देना पड़े और हमें इसे दें भी जब जनता हमारी छाती पर सवार होके तलब करे। अगर हम खुद यह नहीं महसूस करते, अपने दिल में समझते नहीं कि हमें दोनों का हिसाब खामख्वाह देना है। फलतः हर क्षण उसके लिए तैयार रहना चाहिए। जनता का तो फर्ज ही है कि हमसे दोनों प्रकार का हिसाब जरूर माँगे और गड़बड़ी होने पर अमानत में खयानत का जुर्म हम पर लगा के हमारी सजा करे और हमें उस स्थान से च्युत भी कर दे। इसके बिना काम चलने का नहीं। यही तो जरूरी है। मगर चाहे वह माँगे या न माँगे। हमारा तो यह पवित्र कर्तव्य होना चाहिए कि हम उसके लिए तैयार रहें।

ऐसा होने पर कभी भी हम चूकेंगे नहीं। तब तो हमारी सख्त नजर अपने हरेक कामों पर तथा जनता के द्वारा दिए गए पैसे-पैसे पर दाने-दाने पर रहेगी। हम बार-बार देखते रहेंगे कि अपने कामों में कहीं गलती तो नहीं करते, हमारे काम कहीं ऐसे तो नहीं कि उसमें जनता का तत्काल या सुदूर भविष्य में अहित होगा। अन्न-पानी और रुपए-पैसे के बारे में भी फूँक-फूँक के ही उस दशा में हम पाँव देंगे और हमारे जानते एक भी मामूली से मामूली खर्च ऐसा न हो सकेगा जो जनता के लाभार्थ न हो। तब तो हम उसकी कौड़ी-कौड़ी का खूब ही सदुपयोग करेंगे। और अगर कहीं चूके तो साफ ही स्वीकार करेंगे कि यह भूल हो गई। मगर फिर भविष्य में होने न पाएगी। इस हालत में हमारे हाथ-पाँव, हमारी जबान, हमारा ईमान, हमारी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नीयत तथा हमारे दिल-दिमाग पर जबर्दस्त लगाम रहेगी जो कभी बहकने न देगी, कुरास्ता चलने न देगी।

इस प्रकार हमारा बाहर-भीतर एकरस होगा। हर बात में स्वयमेव प्रत्यक्ष हो जाएगा। इसमें विशेष जाँच-पड़ताल की जरूरत ही न पड़ेगी। और अगर जनता ने—किसानों ने—हमारी कभी इस बात में परीक्षा भी ली तो हम सोलहों आने खाँटी सिद्ध होंगे—उस परीक्षा में अच्छी तरह उत्तीर्ण होंगे। लेकिन जनता का भी फर्ज है कि वह किसान सेवकों से कसके हिसाब माँगे, बराबर माँगे। कम से कम उनके दिल पर यह असर पैदा कर रखे कि उन्हें अकस्मात् हिसाब देना पड़ जाएगा जब कि तैयारी करने की मुहलत मिली न सकेगी। ऐसी मनोवृत्ति के—ऐसे आतंक के—पैदा न करने का ही नतीजा यह होता है कि रुपए-पैसे में और कामों में भी—दोनों ही में—गड़बड़ी होती है, अमानत में खयानत प्रायः होती ही रहती है, किसान सेवकों को इस दोनों प्रकार के मामले में लापरवाही एवं ढीले ढाले बना देने की जबावदेही इस प्रकार किसानों पर ही आ जाती है। अतः यदि हम चाहते हैं कि किसान सेवक बाहर-भीतर एकरस रहें तो यह सख्ती जो कामों और पैसों के हिसाब के बारे में बताई गई है, बराबर बेमुरव्वती और बिना लल्लोचप्पो के रखी जानी ही चाहिए।

किसानों का तो बेड़ा डूबेगा ही यदि सोलहों आने उन्हीं के ऊपर दारमदार रखने वाले किसान सेवकों का दल तैयार न किया जाए। जरा सी ढिलाई हुई कि सेवक लोगों ने जमींदारों एवं मालदारों से गुपचुप बातचीत शुरू कर दी। उनके जाल तो सदा बिछे ही रहते हैं। बस उनके हमारे सेवक लोग जा फँसे। ऊपर से तो यह दिखाने की कोशिश करते हैं कि वे मालदारों के जानी दुश्मन हैं। बातें भी ऐसी ही करते रहते हैं। जमींदारों और धनियों से मिलने-जुलने का नाम लेने पर आगबबूला हो जाते हैं। मगर उनकी यह भावभंगी सिर्फ दिखावटी होती है ठीक वैसी ही जैसी कि गाली सुनते ही वेश्या की क्रोधमयी भावभंगी। भीतर से तो वे मालदारों से मिलते ही हैं, मिले ही रहते हैं। मगर उसे छिपाना चाहते हैं। छिपाने की कोशिश करते हैं। फिर भी वह छिपेगा कब तक? आखिर प्रकट होई जाएगा। बशर्ते कि किसानों की बेरुखी बराबर बनी रहे।

कहते हैं कि एक सज्जन का चाल चलन कुछ शिथिल था। फलतः उनके साथी या अभिभावक उन पर कड़ी नजर रखते थे। ताकि वे बहक न जाएँ। एक दिन ऐसा हुआ कि वे हजरत सोई रात में धीरे से घसक गए और किसी यार के पास जाके सारी रात मौज करते रहे। सोने का...

(इन दोनों निबन्धों के बीच की पूरी एक कापी (64पेजी एक्सरसाइज बुक) अनुपलब्ध है)।

...तामिली नहीं सकती। जब तक शोषक लोगों की शक्ति रहेगी, जब तक उनका अस्तित्व रहेगा वे लाख उपाय करके जनता को ठगते ही रहेंगे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इसीलिए तो वे लोग किसान, मजदूर आदि जनता के भीतर सामूहिक रूप से असली राजनीतिक चेतना—वास्तविक राजनीति का ज्ञान आने देना चाहते नहीं। यदि किसान और मज़दूरों में सोचने की शक्ति आ जाएँ और वे राजनीतिक दृष्टि से अग्रसर या समुन्नत हो जाए तो शोषकों के लिए बड़ा भारी खतरा होगा। जनता में सोचने-विचारने की शक्ति बड़ी खतरनाक चीज है ऐसा वे मानते और समझते हैं।

तब तो उनका जादू ही मिट जाएगा और उनकी टिक्की ही न लग पाएगी। इसलिए हर तरह कोशिंश करके लोगों को तेली के बैल की तरह आँखें मूँद के ही रखना चाहते हैं। यदि बैल की आँखें खुली हों तो वह हर्गिज तेली की मर्जी के मुताबिक थोड़ी सी ही जगह में चक्कर नहीं काट के फाँद जाएगा। इसीलिए सबसे पहले तो जनता में—सर्वसाधारण में—किसी भी प्रकार के सोचने-विचारने की शक्ति का आना वे बर्दाश्त नहीं कर सकते।

लेकिन यदि किसी प्रकार और बातें सोचने की शक्ति बर्दाश्त भी कर लें तो भी राजनीतिक ज्ञान तो उन्हें सर्वथा सर्वदा असह्य है। जनता में यह ज्ञान आ जाए इसकी अपेक्षा शोषक लोग अपनी मौत ज्यादा पसन्द करेंगे। क्योंकि मौत तो तब कम से कम अपनी मर्जी के मुताबिक होगी। मगर जब जनसाधारण राजनीति में प्रबुद्ध हो गए तो फिर शोषकों को मरने भी इच्छानुसार न देंगे। किन्तु उन्हें विवश करेंगे कि जनसाधारण की इच्छा के अनुकूल ही मरें या जिएँ। इसीलिए जमींदार, मालदार और उनके दोस्तों की एकमात्र इच्छा रहती है कि जनता में राजनीतिक मामलों के प्रति अत्यन्त उदासीनता हो—लोगों को इन बातों में जरा भी दिलचस्पी न हो। इसके लिए वे लोग सबकुछ करने को तैयार होंगे। जो भी खर्च हो, परेशानी हो सबकुछ सहर्ष सह लेंगे। क्योंकि पीछे तो सारा खर्च और सारी परेशानी सूद दर सूद के साथ वसूल हो ही जाएगी। इसीलिए उनके लिए सबसे अनुकूल बात यही है कि जनसाधारण या उनमें अधिकांश राजनीतिक मामलों में कोई दिलचस्पी न लें।

जनसाधारण में यह चेतना न होने का ही नतीजा है कि वे वोट के महत्त्व को समझते ही नहीं। फलतः मालदार और उनके दलाल पैसे के बल पर ही वोट प्राप्त कर लेते हैं। नादानी के कारण किसी नौकरी-चाकरी, मुरव्वत या सिफारिश के चलते ही लोग अपना वोट उन्हें दे आते हैं। और नहीं हुआ तो कुछ पैसे ही लेकर दे आए और दूसरों से भी दिला दिया। भला जो वोट तख्त उलटने की ताकत रखता हो उसे यों फेंका जाए? पाँवों तले रौंदा जाए? इससे कहीं अच्छा है कि उसे फाड़ के फेंके। क्योंकि तब गो उससे होने वाले लाभ भले ही न मिले, लेकिन मालदारों को देने से जो गला कटेगा वह तो बचेगा। वोट के जमाने से उनका दल अमीरों और उनके दलालों के टुकड़े खाके किसानों और मजदूरों को फँसाने के लिए घूमा करता है। उससे सजग रहना चाहिए। साफ कह देना होगा कि आपके लिए चाहे जान, घर-बार भले ही दे दें मगर वोट कदापि न देंगे क्योंकि यदि वोट का ठीक-ठाक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उपयोग करेंगे तो जान भी बचा लेंगे और गया घर-बार भी लौटा लेंगे सूद के साथ।

शोषक और स्थायी स्वार्थ वाले हमेशा इस बात पर जोर देते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति के शरीर की रक्षा की पूरी गारण्टी चाहिए और व्यक्तिगत सम्पत्ति पर कभी कोई धावा न बोले, प्रत्युत उसकी कदर करे ऐसा प्रबन्ध चाहिए। उनकी दृष्टि में राजनीति का निचोड़ यही दो बातें हैं। ठीक भी है। सम्पत्ति तो उनके पास हई। यह आई भी है लोगों का रक्त चूस-चूस के। इसलिए कहीं ऐसा न हो कि लोग बिगड़ उठें और लूट लें। यही कारण है कि उसकी सुरक्षा की पूरी गारण्टी सरकार से करवाना चाहते हैं। लेकिन यदि कहीं उन्हीं पर हमला हो गया तो ? आखिर शोषण तो करते हैं वही लोग। फलतः यदि लोगों में 'रहे बाँस न बजे बाँसुरी' के अनुसार उन्हीं पर हाथ साफ कर लिया तो? इसीलिए शारीरिक रक्षा की भी गारण्टी वे चाहते हैं। वर्तमान राजनीति के यही दो मूलतत्त्व हैं। बाकी इन्हीं दोनों के विस्तार हैं।

मगर गरीबों को—जनता को—इससे क्या लाभ ? उनके शरीर पर हमला करेगा ही कौन? उन्हें खतरा हई किससे? उनने किसका क्या छीना-लूटा है, यदि अपना ही सर्वस्व छिनवाया-लुटवाया नहीं है? सम्पत्ति तो उनके पास हई नहीं कि उस पर कोई खतरा हो। उनका तो शरीर और उनकी श्रमशक्ति यही सम्पत्ति है। मगर ये दोनों भी अमीरों के हाथ में बिकी जैसी हैं? ठीक जैसे कसाई के हाथ में गाय पड़ी हो। फिर व्यक्तिगत सम्पत्ति की रक्षा की गारण्टी से भी उन्हें क्या लाभ? कहने के लिए तो कानून ये दोनों बातें सभी के लिए करता है। मगर जनता को तो इससे कोई प्रयोजन नहीं। यह तो मुट्ठी-भर शोषकों के ही फायदे के लिए है। इससे स्पष्ट है कि पूँजीवादी राजनीति कितनी खोखली, कितनी निस्तार और किस कदर धोखे की है। असल में गारण्टी तो कानून के द्वारा सिर्फ इस बात की होनी चाहिए कि 'कमाने वाला खाएगा'। कानून सबसे पहले यह कहे कि कमाने वाले—काम करने वाले—हर प्रकार से सुखमय और समुन्नत जीवन गुजारें। हमारी राजनीति का निचोड़ यही है और हमें—किसानों और मजदूरों को—इसीलिए लड़ना है।

किसानों की राजनीति हवा में मिल जाएगी और उन्हें कोई पूछेगा भी नहीं, यदि उनकी अपनी सभा—किसान सभा—ही न रही। यदि वह जबर्दस्त न हुई और आँख मूँद के उसकी आज्ञा पर चलनेवाले किसान न बने तो उससे कोई बात भी न करेगा। शोषक और उनके दोस्त किसानों के सामने खूब बहकते हैं सही और लम्बी-लम्बी बातें भी करते हैं। मगर उनका कलेजा धक्-धक् करता रहता है कि कहीं किसान सभा उनकी कलई खोल न दे। कहीं वह किसानों को सजग न कर दें। किसान सभा को याद करके ही उनकी सारी अक्ल खत्म हो जाती है, सारी बोलती बन्द हो जाती है। और सारी आई-बाई ही हजम हो जाती है। मजदूर सभा की भी यही बात है। इसलिए किसानों को चाहिए कि राजनीतिक दृष्टि से भी किसान सभा की ही ओर दृष्टि रखे और उसे सबकुछ मानें। किसान सभा ही उनकी दुनिया हो,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वे अपनी उसी दुनिया में सोते-जागते-विचरते रहें, उसकी की चर्चा दिन-रात करते रहे, उसी की समुन्नति की बात बराबर सोचते रहें, उसी के लिए लड़ें, झगड़ें, उसी के लिए मरें-मिटें और उसी के लिए संग्राम और युद्ध करें। तभी उनकी राजनीति दुरुस्त होगी, उनके काम की होगी। उनके लिए कामधेनु बनेगी।

राजनीति की दृष्टि से किसानों को दो खास बातें और भी करनी होंगी। हम देखते हैं कि चाहे कोई नेता उन्हें मिले या न मिले, उनकी कोई किसान सभा हो या न हो, उन्हें कोई रास्ता दिखावे या न दिखावे, कभी-कभी जुल्मों और तकलीफों से ऊब के, जबकि बर्दाश्त करना असम्भव हो जाता है, लड़ बैठते, बगावत कर देते, तूफान बरसा कर डालते हैं। बेशक अन्ततोगत्वा उन्हें उसमें पूर्ण सफलता नहीं मिलती। वे शोषकों और शासकों के द्वारा बुरी तरह पीस दिए जाते हैं। ऐसी घटनाओं से हर मुल्क का इतिहास भरा पड़ा है। हाँ, इतना जरूर हो जाता है कि उनका यह दमन शोषकों तथा शासकों को बहुत ही महँगा पड़ता है। उन्हें आगे के लिए भी खतरा हो जाता है। इसलिए जिन बातों से किसान ऊब कर बागी बन बैठे थे उन्हें दूर करने की कुछ न कुछ कोशिश होती ही है। ऐसी लड़ाइयों को इतिहास में बिना तैयारी की आप ही आप अचानक लड़ी जाने वाली लड़ाइयाँ कहते हैं। इनसे यदि कभी पूरी सफलता भी मिली तो कालान्तर में वह विफल बना दी जाती है। मगर दरअसल पूर्ण सफलता तो कभी भी नहीं मिलती है।

इसका कारण क्या है? क्यों वे विफल होते रहते हैं बार-बार और शोषक सफल? असल में किसानों में राजनीतिक चेतना वर्ग चेतना तो होती नहीं। मगर शोषक में खामख्वाह होती है। किसान लोग इन लड़ाइयों का राजनीतिक महत्त्व क्या जानने गए? वे यह भी क्या जानें कि हममें वर्ग चेतना चाहिए और उसी के आधार पर संगठित रूप से लड़ने पर ही हमें विजय मिलेगी जो स्थायी होगी। उनमें यह जागृति, यह ज्ञान कतई होता नहीं। इसी से विफलता मिलती है। वर्तमान युग में तो इस चेतना के बिना और राजनीति के ज्ञान के बिना और भी सफलता मिलना असम्भव है। इसलिए हमारा और उनका प्रधान काम है कि जो भी ऐसी आर्थिक लड़ाइयाँ लड़ी जाएँ वे वर्ग चेतना के आधार पर राजनीतिक लड़ाई के रूप में ही लड़ी जाएँ। इस प्रकार राजनीतिक चेतना बहुत जल्द विस्तृत और दृढ़ होगी। वे अपने अनुभव से ही यह बात जल्द सीखेंगे।

दूसरी बात यह है कि वस्तुतः किसानों के संख्या बल और उनकी उत्पादन शक्ति के करते उनकी महत्ता, उनकी श्रेष्ठता स्वाभावतः मूल रूप से उनमें पड़ी हुई है। इसे कौन अस्वीकार करेगा? यह तो सभी मानते हैं कि यदि किसान न हो तो दुनिया का सारा कार-बार ही बन्द हो जाए—दुनिया मसान ही बन जाए। धन और जन का सम्पादन सर्वत्र वही करते हैं। इसे ही मूल रूप से निहित पर प्रसुप्त श्रेष्ठता कहते हैं। वे ऐसे हैं कि चाहें तो तूफान बरसा करें और दुनिया को नष्ट कर दें।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मगर इससे काम नहीं चलेगा। खान में पड़े हीरे की कीमत कहीं नहीं होती जब तक वह बाजार में उसकी पूछ न हो। पहलवान जब तक अपनी करामात न दिखाए उसकी कदर नहीं होती, उसकी धाक नहीं जमती। सिंह बलवान होता है सही। मगर जब तक वह सोया हो और अपना विक्रम दिखाए नहीं उसके पेट में हिरण चले नहीं जाते। इसीलिए किसानों की इस बीज रूप से निहित प्रसुप्त श्रेष्ठता को, विक्रम को वास्तविक रूप, व्यावहारिक आकार देना होगा ताकि दुनिया देखे और चकाचौंध में पड़े। बिना इसके उनकी राजनीति मुर्दा ही रह जाएगी उनकी विपदा बनी की बनी ही रहेगी जब तक हम उस विक्रम को प्रकट नहीं करते, जब तक हम उसे वास्तविक बल नहीं बना डालते तब तक उद्धार की कोई आशा नहीं। इसलिए हमारा, किसान सभा का, किसान सेवकों का और खुद किसानों का पूर्ण प्रयत्न होना चाहिए कि किसान वर्ग चेतना के आधार पर आर्थिक लड़ाइयों को राजनीतिक रूप में परिणत करें और अपने भीतर निहित जौहर को दिखाएँ।

आखिरी प्रश्न यह रह जाता है कि जिस वोट की राजनीतिक महत्ता इतनी बड़ी है वह आखिर दिया किसे जाए? अपना वोट अन्ततोगत्वा दें किसे? असल में इस प्रश्न का उत्तर आसान नहीं है। मगर इसका यह मतलब भी नहीं कि किसान इसे जान सकते ही नहीं। बात तो यह है कि यदि अपनी तलवार हम शत्रुओं को देंगे तो उससे हमारा ही गला सबसे पहले कटेगा। अतः ऐसी भूल तो हर्गिज करनी न चाहिए कि किसान अपने वर्ग के शत्रुओं को—जमींदारों और उनके दलालों को अपना-अपना वोट दे दें। इस बात में तो कोई रिआयत या समझौता करने की गुंजाइश ही नहीं। शत्रुओं के लिए सीधा और साफ नाहीं है।

फिर आते हैं ऐसे लोग जो बीच में हैं। न तो किसानों के ही साथ साफ खुल के रहते हैं और न उनके दुश्मनों के ही साथ। कभी इधर ढुलकते नजर आते हैं तो कभी उधर। वास्तव में तो जो लोग किसानों के—शोषितों के—साथ खुल्लम खुल्ला नहीं आते वह खामख्वाह उनके शत्रुओं से मिली जाते हैं। तीसरा रास्ता तो है नहीं। मगर उनकी यह दशा स्पष्ट प्रतीत नहीं होती। साफ-साफ यह देखा नहीं जाता कि उधर जा मिले। यह भी सम्भव है कि अपवादस्वरूप कुछ लोग बीच ही का रास्ता पकड़ें। हालाँकि ऐसों की संख्या नाममात्र की ही होती है। फिर भी बीच में रहने का नतीजा तो यही होगा कि कभी किसानों की ओर मिलेंगे और कभी जमींदार आदि की तरफ। हो सकता है, कभी उदासीन भी रहें। मगर यहाँ तो सीधा सवाल है कि किसानों और शोषितों के लिए सतत लड़ने और संग्राम करने का। जरा भी रिआयत न कर बेमुरव्वती से उनके हकों के लिए कदम-कदम पर मुठभेड़ करने की जरूरत है। इसलिए जो लोग ऐसा नहीं करते उनसे किसानों को कोई आशा नहीं हो सकती है। जब माँग भर सेन्दुर या चटपट विधवा की बात है तो गोलमोल कैसा? फिर भी ऐसे लोगों के सम्बन्ध में जरा सोच-विचार के काम करना होगा। वह कैसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

किया जाएगा यह बात अभी-अभी साफ हुई जाती है।

लेकिन इतना तो निर्विवाद है कि न सिर्फ जिनकी बातों से, प्रत्युत कामों से, रोज-रोज के सलूकों और व्यवहारों से, तौर-तरीकों से, चालों और हरकतों से—सारांश सभी प्रकार से—यह सिद्ध हो चुका है कि वे किसान हित के व्रत के व्रती हैं, किसानों के ही लिए मरने-जीने वाले हैं और जिनके बारे में किसान सभा ने भी आदेश दे दिया है, सबसे पहले वोट के असली अधिकारी वही लोग हैं। जिनके बारे में किसान संसार में जरा भी शकसुबहा ही रह गया है कि किसानों को छोड़ दूसरी ओर नजर भी डालेंगे, जिनकी सेवाओं ने, जिनके त्याग और बलिदान ने किसानों को न सिर्फ ऊँचा उठाया है, उन्हें उनका अधिकार दिलाया है, बल्कि जिनके सामने किसानों के सिर आभार के मारे झुक गए हैं वही हैं असली अधिकारी किसानों के वोट के। जिनके नाम पर जमींदारों और मालदारों में थर्राहट पैदा हो जाती है वही किसानों के वोट पा सकते हैं—उन्हीं को वोट मिलना चाहिए। सबसे बड़ी बात यह है कि जो न तो मेम्बर बनना चाहते और न वोट की परवाह करते हैं, लेकिन जिन्हें यदि किसान सभा हुक्म देकर खासतौर से भेजे तभी मजबूरन तैयार हो सकते हैं उनसे ही किसानों को कभी धोखा नहीं हो सकता। मगर सबकुछ होते हुए भी जिनके दिलों में मेम्बरी की कुछ भी इच्छा है या जो किसान सभा की सख्त फरमान के बिना भी वोट लेने और मेम्बर बनने की बात सोचते हैं उनसे धोखा हो सकता है। उनके दिल की यह दुर्बलता ही उन्हें कभी पथभ्रष्ट कर सकती है।

किसान सेवकों को तो किसानों के अधिकारों के लिए लड़ना है। फिर यह लड़ाई चाहे कौंसिल, असेम्बली, पार्लियामेंट आदि में रह के लड़ी जाए, या उनसे बाहर ही रह के। कौन कहाँ लड़ेगा, कौन कहाँ रहके ही ज्यादा काम कर सकता है और ज्यादा खूबी से लड़ सकता है, किसके कहाँ रहने से ज्यादा फायदा किसानों को होगा, इस बात का निर्णय तो किसान सभा ही कर सकती है और वही उसी निर्णय के अनुसार अपने आदमियों को—सिपाहियों को हुक्म दे सकती है कि अमुक को अमुक स्थान पर जाना और काम करना है। फिर तो बिना ननुनच के वहाँ जाना ही होगा और जब तक वहाँ से वापस आने की आज्ञा नहीं होती वहीं रह के अपनी ड्यूटी अदा करनी होगी। ऐसी दशा में किसी भी किसान सेवक को अधिकार या स्वतन्त्रता कहाँ रह जाती है कि वह खुद सोचे कि असेम्बली वगैरह में जाएगा या बाहर रहेगा? और अगर कोई किसान सेवक नामधारी ऐसा करता है तो वह ईमानदार सेवक नहीं है।

मगर ऐसे किसान सेवकों को देने के बाद भी ऐसा मौका आ सकता है कि औरों को भी देना पड़े। ऐसा भी मौका हो सकता है कि ऐसे किसान सेवकों को वोट देना उचित न हो, उचित न समझा जाए। क्योंकि परिस्थितियाँ बराबर एक सी नहीं रहती हैं—बदला करती हैं। खास कर राजनीतिक लड़ाई में आँख मूँदकर काम करने में खतरा होता है। राजनीति का रास्ता कोई राजमार्ग नहीं है। वह तो बड़ा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ही टेढ़ा-मेढ़ा और बीहड़ है—नीचा-ऊँचा है। इसलिए वहाँ सँभल-सँभल पग धरिए की बात है फलतः ऐसी जरूरत पड़ सकती है कि खाँटी किसान सेवकों के बजाए औरों को वोट दिया जाए। वैसे मौकों पर ही खूब सोचना-विचारना पड़ता है। वही किसान सभा के नेतृत्व और किसानों की राजनीतिज्ञता की कड़ी परीक्षा होती है। उसमें उन्हें उत्तीर्ण होना होगा।

सौ बात की एक बात तो यह है कि जब तक शोषितों के हाथ में पूर्ण रूप से शासन सूत्र आ नहीं जाता और आने पर भी जब तक खतरा है कि छिन जाए तभी तक यह बातें ज्यादा सोचनी पड़ती हैं कि किसे वोट दिया जाए, किसे न दिया जाए। पीछे तो यह मसला आसान हो जाता है और उतने सोच-विचार की जरूरत रही नहीं जाती है। क्योंकि चुनाव के फलस्वरूप पदों को भोगना तो है नहीं, पदों को स्वीकार करना तो इसलिए है नहीं कि उनसे किसानों के लिए कोई वैधानिक और रचनात्मक काम करें। यह बात तो गलत है। यह सिद्धान्त ही भ्रमात्मक है कि पूर्ण अधिकार मिलने के पूर्व ही इस दृष्टि से कोई भी पद स्वीकार किए जाएँ यह तो सुधारवाद और अवसरवादिता है। हमें तो इससे हजार कोस दूर रहना है। यह तो वह कीचड़ है कि इसमें फँस के हम खत्म ही हो जाएँगे—मरी जाएँगे।

इसलिए हमें तो तब तक उन संस्थाओं का क्रान्तिकारी उपयोग मात्र करना है। हमें उनका ऐसा उपयोग करना है कि क्रान्ति का वायुमण्डल तैयार हो, उसका मार्ग परिष्कृत हो, उसकी बाधाएँ कम हों। कोई भी ऐसी संस्था न तो बुरी होती है और न भली। सबकुछ निर्भर करता है उसके उपयोग पर ही। यदि हमने उसका उपयोग क्रान्ति के लिए किया तो ठीक है। मगर यदि केवल सुधार बुद्धि से किया तो बुरा है। और इनका क्रान्तिकारी उपयोग केवल यही है कि इनमें जा के शोषकों का, उनकी चालों का, उनकी सरकार का पद-पद पर भंडाफोड़ दिया जाए, कच्चा चिट्ठा खोला जाए। और अड़ंगे लगाए जाएँ। बाहर जो क्रान्तिकारी आन्दोलन चलते हैं, उनके साथ भीतर के काम का पूरा मेल हो और दोनों एक-दूसरे के पोषक हों। फलतः इसी दृष्टि से लड़ने वालों को ही उन संस्थाओं के मेम्बर बनाना ठीक है। ऐसे ही लोगों को वहाँ चुन के—वोट दे के—भेजना चाहिए।

मगर हमारे चाहने पर भी जब परिस्थितिवश ज्यादातर ऐसे लोग भेजे न जा सकें या यों कहिए कि सभी चुनाव क्षेत्रों में ऐसों का भेजना गैर-मुमकिन हो तब क्या करना होगा, यह प्रश्न है। वहाँ सरकार तो चलानी है नहीं और न संस्था ही चलानी है। प्रबन्ध भी नहीं करना है। ऐसी दशा में यदि हमारा बहुमत न भी रहे तो क्या हर्ज? अड़ंगा और भंडाफोड़ तो कुछ चुने चुनाए लोग भी करी सकते हैं। इसलिए जहाँ तक ऐसे पक्के नेता भेजे जा सकें, भेजें जाएँ। कोशिश यही रहे कि कुछ न कुछ जरूर ही भेजे जाएँ। सारी शक्ति लगा के कम से कम कुछ जगह सफलता प्राप्त की जाए जरूर ही। जो लोग खड़े हों वह हारें न तो अच्छा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मगर इसका यह भी मतलब नहीं है कि हारने की ही डर से हमारे पक्के आदमी कहीं से खड़े ही न हों। यह तो सरासर गलत बात होगी। हम तो स्वतन्त्र रूप से अपने कुछ आदमियों को खड़ा करेंगे ही। हाँ कोशिश करेंगे कि वे जरूर जीत जाएँ। इसीलिए यदि कठिनाई देखेंगे तो ज्यादा जगह से अपने आदमी खड़ा करेंगे ही नहीं। मगर यदि कहीं एकाध हारे भी तो परवाह नहीं, चुनाव में खड़े हो के जीत लेना ही काम नहीं है। किसान सभा के खाँटी आदमियों को जो तपे तपाए हों, खड़ा करके हम अपनी नीति को जनता के सामने स्पष्ट कर देंगे कि वहाँ जाके हमें क्या करना है। इसका नतीजा यह होगा कि जो लोग हमारे विरोधी होंगे या जो जीत का रास्ता पकड़ने वाले होंगे उन्हें अपनी नीति का खुलासा खामख्वाह करना होगा। सो भी सिर्फ उसी चुनाव क्षेत्र में नहीं, किन्तु सर्वत्र। जनता या किसानों को हमारी नीति मालूम हो जाएगी तो सभी चुनाव क्षेत्रों में आग की तरह यह बात फैलेगी। फलतः सर्वत्र जनता और किसान उम्मीदवारों से किसी नीति के आधार पर यह प्रश्न करेंगे कि आप वहाँ जाके क्या करेंगे ? इसका परिणाम यह होगा कि जनता का और किसानों का वोट जिसमें जरूर मिले इसके लिए उन्हें अपनी नीति का स्पष्टीकरण करना ही होगा। और खामख्वाह ऐसी बातें कहनी ही होंगी, ऐसी घोषणाएँ करनी ही होंगी जिनसे किसानों को लाभ हो और वे खिंच जाएँ। हमारी नीति के मालूम होते ही उन्हें भी बहुत कुछ किसान हित की बातें, किसान हित के वादे करने ही होंगे। नहीं तो वोट ही न मिलेगा। इस प्रकार वे वादे में बँध जाएँगे। हमारा काम यही होगा कि हम किसानों से कह दें कि ये सभी वादे खूब याद रखें। क्योंकि मौका आने पर जब वे लोग इन्हें पूरा न करेंगे तो उनसे सवाल करना होगा। इस प्रकार आगे चल के उनकी पोल खुल जाएगी और किसानों को पुनरपि वे ठग न सकेंगे।

अब इस वोट के बारे में केवल एक ही बात रह जाती है जहाँ से हम अपने पक्के आदमी किसी वजह से चुन नहीं सकते वहाँ क्या करें? वहाँ चुपचाप बैठे रहें या किसी को वोट दें-दिलाएँ ? चुपचाप रहना ठीक नहीं। वोट तो देना-दिलाना होगा ही। किसे दें-दिलाएँ यही प्रश्न है। हमें वहाँ देखना होगा कि चुनाव में जितने दल वाले पड़े हैं उनकी नीति क्या-क्या हो है। जो लोग किसी दल के न हो के व्यक्तिगत रूप से खड़े हों उन्हें तो साफ-साफ टका-सा उत्तर मिलना चाहिए फिर चाहे वह कितने ही अच्छे क्यों न हों? यह सदा याद रखना होगा कि राजनीतिक दल ही हारते और जीतते हैं। वही बुरा या भला कुछ कर भी सकते हैं। व्यक्तिगत रूप से जाने वाले लोग तो हर मौके पर सिर्फ अपने ही लिए सौदा करते रहते हैं। फलतः वे बहुत ही खतरनाक होते हैं। इसलिए ऐसों को तो एक वोट भी नहीं मिलना चाहिए। तभी वह रास्ता बन्द होगा।

रह गई दलों की बात। तो उसमें भी साफ-साफ शोषकों के बल के बारे में तो शुरू में ही कह चुके हैं। उनके लिए तो साफ इनकार है। मगर जो दब जाते

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हैं उनमें यह देखना होगा कि कौन दल जनता के ऊपर किसानों तथा औरों पर ज्यादा असर रखता है, जिसके ऊपर उनका ज्यादा विश्वास है कि उनकी भलाई करेगा।

किसानों को जब तक अनुभव न हो तब तक क्या पता कि किसान सभा के बाहर जो लोग हैं और जो दल किसान सभा से अलग हैं वह एक न एक दिन किसानों को धोखा देंगे ही। किसान केवल लेक्चर से ये बातें समझ नहीं सकते। जनता का ऐसा स्वभाव नहीं। कुछ ही लोगों को इस प्रकार समझा सकते हैं। यह जनसमूह तो कटु अनुभव के बाद ही सीखता और ठीक-ठीक समझता है। जबकि उसके माथे न उतरे और उसकी आँखों के सामने न गुजरे उसकी अक्ल दुरुस्त नहीं होती। यही संसार का नियम है।

इसलिए जिस दल पर उनका ज्यादा विश्वास हो उसी दल को चुन लेना होगा इस बात की कोशिश करनी होगी कि उसकी नीति और प्रोग्राम ज्यादे से ज्यादा किसानों के अनुकूल हो। किसान सभा के नेता लोग उस दल से साफ कह दें कि हम आपका साथ चुनाव में देंगे सिर्फ उन जगहों को छोड़ जहाँ खास हमारे आदमी खड़े हैं। इस प्रकार भरसक इस बात की कोशिश करनी होगी कि वह दल किसान सभा के आदमियों के विरुद्ध अपना उम्मीदवार खड़ा न करें। साथ ही अपना प्रोग्राम ऐसा बनाएँ जो किसानों को ज्यादा पसन्द हों, बनिस्बत और दलों के प्रोग्राम के। चाहे बातचीत और समझौते से या किसानों के दबाव से सही, यह बात हो जानी चाहिए। यह हमारी पहली जीत होगी यदि हमारे उम्मीदवारों का उस दल ने विरोध न किया और यदि प्रोग्राम भी कुछ ज्यादा बना तो कहना ही क्या? किसानों का वोट लेने के लिए अच्छा तो देखने में जरूर ही रहेगा यदि उसमें कुछ और भी तरक्की हो जाए तो ठीक ही है। यदि न भी हो तो वही सही। यदि हमारे आदमी का वह लोग विरोध न करें तो यह भी एक बात होगी, मगर यदि प्रोग्राम भी वही रखें और विरोध भी न छोड़ें तो भी कोई बात नहीं। किसान सभा को निश्चय कर लेना होगा कि बाकी जगहों में उसी दल को जिताने में सहायता दी जाएगी।

इसके बाद किसानों को यह बात साफ-साफ बता देनी होगी कि हम उस दल के उम्मीदवारों की मदद करेंगे। क्यों करेंगे यह भी बता देना होगा। उसके बाद किसानों का काम होगा कि उसी के अनुसार काम करें। उसमें जरा भी इधर-उधर होने न पाएँ। किसानों को हम अच्छी तरह समझा देंगे कि हम उन्हें इसीलिए मदद कर रहे हैं कि तुम्हारा विश्वास उसी दल में ज्यादा है। तुम समझते हो कि वह दल विजयी हो के तुम्हारे हक तुम्हें दिलाएगा। उस दल की बातों और प्रतिज्ञाओं पर तुम्हारा अभी तक विश्वास है। हम हजार समझाते हैं, मगर तुम अभी समझते नहीं हो। तुम्हारा विश्वास उन पर से डिगता नहीं। इसलिए तुम्हारी बात मानकर के ही हम ऐसा करते हैं कि तुम उसे पसन्द भी करो और आगे चल के तुम्हारी आँखें भी अपने अनुभव के बल पर खुल जाएँ और तुम असलियत समझ जाओ कि तुम्हारा उद्धार कौन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करेगा, तुम्हें पक्का यकीन हो जाए कि किसान सभा के सिवाय दूसरे से तुम्हारा उद्धार हर्गिज न होगा। जब वे लोग चुन के असेम्बली या पार्लियामेंट या ऐसी ही दूसरी संस्थाओं में जाएँगे तभी उनका नंगा रूप मालूम होगा। क्योंकि बहुमत के आधार पर जब वहाँ ये पद ग्रहण करेंगे तो उस समय वे वादे भूल जाएँगे जो आज किसानों से कर रहे हैं। वही परीक्षा का समय होगा। और कलई घुलेगी—'हकीकत साफ खुल जाएगी वक्ते इम्तहां तेरी।'

उन्हें यह भी बता देना चाहिए कि और दलों के लोग तो किसानों से ज्यादा दूर हैं बनिस्बत इस दल के। फलतः उनसे तो किसानों को भी कोई आशा शायद ही है। ऐसी हालत में उन्हें जिताना बड़ा ही खतरनाक है। वे तो सीधा शोषण करते ही जाएँगे। इसलिए उन्हें बहुमत में भेज के उनके हाथ में शासन या प्रबन्ध की शक्ति देना तो शैतान के हाथ में मशाल देना हो जाएगा। जब हम इस दल का समर्थन करते हैं तो खतरा तो मिटी जाता है। वे लोग तो हमारी और किसानों की भी नजरों में खतरनाक हैं। अतः उनसे बचना ही चाहिए। मगर जिस दल का समर्थन हम करते हैं गो हमारी दृष्टि में वह भी खतरनाक है। फिर भी दुर्भाग्य से किसान समूह ऐसा नहीं समझता। फलतः यहाँ हमारा और उसका मतभेद है। इसलिए हम किसानों की ही बात मानकर यहाँ चल रहे हैं और सर्वसम्मत मर्ज (खतरे) की दवा पहले करते हैं। चटपट मारने वाला रोड़ा पहले भगा रहे हैं। इसके बाद जो अभी सर्वसम्मत रोग नहीं है, फलतः जो देर से मारेगा उसकी पारी भी खामख्वाह आएगी और वह भी भगाया जाएगा। मगर किसानों की आँखें खुलने पर ही इतना करने के बाद चुनाव का काम ठीक ही होगा।

टिप्पणी—इस लेख के आगे के पृष्ठ उपलब्ध नहीं हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यह क्या? लोकसंग्रह

नागपुर में सत्याग्रह समर का मारू बाजा बज गया था, रणचण्डी की प्रचण्ड पुकार दिग्दिगन्त में फैल गई थी, समरांगण में आहुति होने के लिए देश की वीर आत्माओं के दल एके बाद दीगरे रणभूमि पहुँच रहे थे, हँसते-हँसते माता के लाल जेल की चहारदीवारी के भीतर बन्द होते जाते थे, माता की दारुण दुर्दशा से सन्तप्त हृदय अपनी श्रद्धा की पुष्पांजलि लेके उसकी आराधना के लिए लालायित हो उठे थे। मातृभक्ति को शब्दों से नहीं, किन्तु कर्मों द्वारा प्रकट करने का अलभ्य अवसर ढूँढ़ने वालों ने इस देवदत्त स्वर्ण सुयोग का हृदय से स्वागत किया था। इस अग्निपरीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए आगे बढ़ने वालों की होड़ लग चुकी थी और लग रही थी, देश के कोने-कोने से सच्ची लगन वाले महापुरुष धीरे-धीरे युद्धभूमि में पहुँच के सैन्य संचालन, सामग्री सम्पादन और शान्तिपूर्ण रण को अनवरत चलाने का उदात्त उद्योग कर रहे थे, इस धर्मयुद्ध का श्रीगणेश करनेवाला महारथी शत्रु के पिंजड़े में बन्द होके अपने प्राणों की बाजी लगाए बैठा था। इसका प्रथम सेनापति, जो इसका जीवन है, प्राण है, आत्मा है, ज्योति है, दारुण तपश्चर्य में विलीन होके क्षुधा, तृषा आदि कष्टों की उपेक्षा की मूर्ति बन बैठा था और 'शरीरं वा पातर्ययं कार्यं वा साधयेयम्' का जीता जागता भाष्य अपनी क्रिया के रूप में जनता के सामने उपस्थित करने को बद्धपरिकर हो गया था। ठीक इसी समय अकस्मात् बिना बादल के आकाश से विकराल विद्युतपात होता है, रुक जाओ—Halt—की मनहूस आवाज होती है, जो उत्साह मदमत्त आत्माओं की उमंग पर पानी फेर देती है और मालूस के अन्तस्तल से आवाज आती है कि यह क्या?

सत्याग्रह समर के विशेषज्ञ महात्मा जी का वह पत्र ही इस रसभंग, इस 'मोहन भोग की कंकड़ी' का कारण बताया जाता है, जो उनके द्वारा सत्याग्रह के सम्बन्ध में श्रीयुत भरुचा को लिखा गया था। आज बहादुर मंचेरशा जेल के भीतर बन्द है और उनकी जगह दूसरे लोग सेनापति के पद पर अभिषिक्त हुए हैं! उनका कहना है कि महात्मा जी के अनुरोध और लोकमत जानने के खयाल से एक मास के लिए समर स्थगित किया गया है! परन्तु हमारी तो समझ में आता ही नहीं कि मध्य धारा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में आके नौका की जाँच कैसी? नाविकों की परीक्षा और सम्मति कैसी? यदि यही करना था तो आरम्भ करने से प्रथम ही कर लेते, खूब सोच-विचार लेते। मध्य में आके और कुछ लोगों को बलिदान करके यह परामर्श और लिहाज कैसा? युद्ध के मध्य में ऐसा करना पराजय का नामान्तर ही समझा जाता है? तो क्या अब हमारी वीरता इसी में है कि सेनापति के हटते ही आत्मसमर्पण कर दें? देश को आजाद करने में क्या यही लड़कपन काम देगा? अब जब शुरू कर चुके थे, तो 'विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः प्रारभ्य चोत्तमजना न परित्यजन्ति' को चरितार्थ करने में ही मनुष्यता थी, इनसानियत थी, शान थी, बुद्धिमानी थी, शिष्टसम्मत मर्दानगी थी। लेकिन पद पद पर आगा-पीछा करना हमारा सनातन धर्म जो ठहरा। बस 'विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः' को ही हमने यहाँ चरितार्थ कर डाला, 'सहसा करि पाछे पछताहीं' का लक्ष्य अपने आपको बना दिया! यही तो हमारी बहादुरी की बानगी और मर्दानगी का नमूना है। बेशर्मी की हद हो गई और गैरत का गला घुट गया! जिस जोश और उमंग के साथ यह समर छिड़ा था और आगे चल कर अग्रणी लोग जैसी उत्साहपूर्ण बातें कर रहे थे, उससे इसको स्वप्न में भी आशा न थी और अचानक यह देख के मुख से निकल आया कि यह क्या?

मान लीजिए कि लोकमत जानने के लिए ही हमने सत्याग्रह स्थगित किया है और यदि लोकमत इसका विरोधी हुआ तो फिर इसे बन्द कर देना ही पड़ेगा। ऐसी दशा में देश के जिन लालों को हम लोगों ने जेल भेजा है, उनका क्या होगा? उनकी इस व्यर्थ की जिल्लत का उत्तरदायित्व किस पर होगा? और यदि वे यों ही जेल में सड़ते रह गए, और दैव न करे कि ऐसा हो, यदि अवारी की दशा मैक्सिवनी की हो गई, तो संसार के सामने मुख दिखलाने की भी जगह कहाँ रह जाएगी? यदि निर्लज्जता की ओट में ऐसा कर भी लें तो भविष्य में क्या होगा? देश के दबंग नेताओं और कांग्रेस की बार-बार घोषणा है कि बिना सत्याग्रह के स्वराज्य प्राप्ति असम्भव है। लेकिन यदि बालकों की तरह चट सत्याग्रह शुरू कर कुछ को जेल में पठाके पट सोचना और लोकमत जानने के लिए उसे यों ही स्थगित करना शुरू कर दिया करेंगे तो फिर जनता का विश्वास हम पर और सत्याग्रह पर कैसे रह जाएगा? और यदि उसका विश्वास ही जाता रहा, तो फिर केवल स्वयम्भू नेताओं के करते क्या होगा? यह तो कहने की बात ही नहीं कि सार्वजनिक कार्यों में ऐसी हरकतों का नैतिक प्रभाव अत्यन्त अनिष्टकारी, भयंकर एवं विषमय होता है। ऐसा करने से सार्वजनिक कार्यों का भविष्य सदा के लिए चौपट हो जाता है। यही नहीं, जेल में जलील होने वाले वीर अवारी और दूसरे सैनिकों को ज्यों ही हमारी इस कायरता और बुजदिली का पता लगा होगा त्योंही उन पर बिजली गिर गई होगी और उन्होंने आह भरी होगी कि यह क्या ? क्या ऐसी घोषणा करने की बात सोचने से पहले हमने इस महापाप से बचने का, इस आत्मघात की निवृत्ति का, इस देशद्रोह के प्रायश्चित्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

का कोई उपाय सोचा है? यदि नहीं, तो दुनिया हमारे नाम पर थूकेगी और स्वतन्त्रता की लड़ाई लड़ने वाले हम बहादुरों की इस करनी को देखके पूछेगी कि इस लड़ाई के मध्य में ही यह क्या?

लोकमत जानने के लिए परतन्त्र और पतित देशों के लिए यह रीति नहीं है जो नागपुर के नेताओं ने निर्धारित की है। यह तो स्वतन्त्र और समुन्नत देशों के ही लिए लागू है, मौजूं है। पराधीन देशों में तो जनता का मत जानने और बनाने का एक ही लासानी उपाय है और है वह दुष्कर। आज हम महात्मा जी के पत्र का बहाना लेकर सत्याग्रह, स्थगित करने के नाम पर, बन्द कर देते हैं। परन्तु यदि 19 मई के उनके ही *यंग इंडिया* को देखते तो पता लग जाता कि लोकमत जानने और बनाने का कौन सा उपाय उन्होंने बताया है। यह लिखते हैं–

"निस्सन्देह अब तो कार्यकर्ताओं को स्वावलम्बी हो जाना चाहिए। उन्हें अब बड़े और प्रभावशाली समझे जानेवाले लोगों के मुँह की ओर इस आशा से देखने की कोई जरूरत नहीं कि वे उन्हें अपने नामों का उपयोग करने की इजाजत दें। बल्कि यदि वे किसी बात को ठीक समझें तो उन्हें स्वयं ही निर्भयतापूर्वक अपनी योजनाओं पर अमल शुरू कर देना चाहिए। उन्हें अपने विश्वास के बल और कार्य पर ही निर्भर रहना चाहिए। गलतियाँ तो होंगी ही और कष्ट भी होगा, सो भी ऐसा कष्ट जो टाला नहीं जा सकता। पर, राष्ट्र यों ही आसानी से नहीं बन जाते। किसी बड़ी बात को हासिल करने के लिए कठोर और कड़े अनुशासन (Dicipline) की आवश्यकता होती है और यह अनुशासन कोरी दलील और निरे वाद-विवाद से नहीं प्राप्त होता। इसका पाठ तो विपत्ति की शालाओं में ही पढ़ा जाता है। और जब युवक बिना किसी ढाल के काम करना सीखेंगे तो वे अनुशासन और जिम्मेदारी को भी अच्छी तरह जानने लग जाएँगे। फिर तो इन उम्मीदवार नेताओं की फौज में से एक ऐसा नेता पैदा होगा जिसे अनुशासन और आज्ञापालन के लिए पुकार मचानी न पड़ेगी, वरना वे उसे स्वभावतः प्राप्त हो जाएँगे। कारण, वह कई जगह धोखा खाके और परीक्षाओं में उत्तीर्ण होके निश्चित नेतृत्व के लिए अपना अधिकार सिद्ध कर देगा।"

क्या इससे अच्छा उपाय लोकमत को जानने या अपने अनुकूल बनाने की हो सकता है? तो क्या नागपुर के नेताओं ने महात्माजी का यह भी कथन सुना है या केवल पत्र ही पढ़ा है? स्मरण रहे कि पत्र तो यों ही ऊपरी है। पर, यह लेख तो उसी सत्याग्रह के बारे में ही है। और यदि पढ़ा है, तो सत्याग्रह स्थगित करने के व्याज से यह क्या?

मौ. मुहम्मद अली चाहते हैं कि लाठी भी न टूटे और साँप भी मर जाए। परन्तु

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अब तो समय ही पलट गया है। फलतः इस गंगा-यमुनी चाल की गुजर अब नहीं। आप या तो मुसलमानों को ही प्रसन्न रख सकते हैं या हिन्दुओं के ही प्रेमभाजन हो जाएँ। पर, दोनों कैसे होगा? भय है कि कहीं 'दुविधा में दोऊ गए' को ही आप चरितार्थ न कर बैठें और आपकी दशा त्रिशंकु की हो जाए।

यदि सब समाचारपत्रों में प्रकाशित महात्माजी का नागपुर सत्याग्रह के सम्बन्ध का पत्र ठीक है, और ऐसा न होने का कोई कारण तो दीखता नहीं, तो स्वीकार करना पड़ता है कि हम महात्माजी की मनोवृत्ति समझने में सर्वथा असमर्थ हैं। यदि इस सत्याग्रह को वे असत्याग्रह और अशान्तिमूलक समझते हैं, तो 19 मई वाले अपने इसी विषय के लेख में उन्होंने यह स्पष्ट लिख क्यों न दिया? उसमें तो केवल इतना ही लिखते हैं कि इस सत्याग्रह के सम्बन्ध में मेरी स्वीकृति नहीं है, बस, मैं इतना ही कह सकता हूँ और इसके बारे में कोई राय नहीं दे सकता। आज फिर ऐसा क्या हो गया कि एकदम इसके विरोधी हो गए?

यदि सशस्त्र सत्याग्रह आज अशान्तिमूलक और हेय है, तो क्या यह उनकी नई जानकारी है? यह तो पहले से ही जानते होंगे। इसके सिवाय चोरी के कानून की अवज्ञा की उपमा इस अवसर पर बहुत खटकती है। उससे यहाँ क्या सम्बन्ध? अस्त्र विधान ने तो भारत को जनाना, नामर्द और पंगु बना दिया है! इसने ईश्वरीसृष्टि में यह मरम्मत कर दी है। फलतः हम चोर-डाकुओं और जंगली जन्तुओं से अपनी रक्षा नहीं कर सकते। जो यमराज से वार्तालाप करने के लिए मृत्यु का आलिंगन हँसते-हँसते करते थे आज वही लाल पगड़ी देख के डर जाते हैं। यह महापाप किसके करते हुआ? क्या इसका कारण और कोई है? यह विधान मनुष्यता का कलंक है। अतएव इसकी अवज्ञा से चोरी के विधान की अवज्ञा की तुलना कैसी?

सशस्त्र सत्याग्रह शान्तिपूर्ण नहीं हो सकता है, यह भी निराली बात है। जिन्होंने कृपाणधारी सिखों को गुरु के बाग और जैतों में शान्तिपूर्ण सत्याग्रह करते देखा है, वही कह सकते हैं कि शान्ति शस्त्र रखने न रखने से नहीं होती वह तो मन का पदार्थ है, मनोवृत्ति है।

जिस प्रकार चातक को चन्द्रमा से लगन होती है और रह-रह के यही याद हो आता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है, जिस तरह पपीहा को स्वाती की बूँद की पिपासा रहती है और क्षण-क्षण में उसकी स्मृति हुआ करती है, जैसे चींटों को चीनी से प्रेम होता है और पल-पल में वही स्मरण हो जाती है, जिस प्रकार मीन को जल से प्रीति होती है और वियोगावस्था में वही उसके दिमाग में घूमा करता है, जिस तरह मयूर को श्याम मेघमाला से मुहब्बत होती है और वही उसे बार-बार नचाया करती है, जैसे पतंग को दीपक से अनुराग है और वही उसे पुनः-पुनः व्याकुल कर दिया करता है, जिस तरह मृग का मुरली की तान से जी जान का सम्बन्ध है और वही उसे अधीर कर दिया करती है, जिस प्रकार मधुकर को पुष्परस से घनी घनिष्टता है और वही उसे अपनी स्थिति भुला देने को विवश कर देता है, जिस तरह हाथी को हथिनी से गाढ़ी मैत्री है और वही अपने दर्शनमात्र से उसे जाल में फँस जाने को बाध्य करती है, जैसे मछली को माँस और अन्न के टुकड़ों की लालच है और वही उसे वंशी में फँस के प्राणाहुति के लिए विवश कर देते हैं, ठीक उसी तरह हमें रायल कमीशन से अनुराग है, प्रीति है, घनिष्ठता है, लगन है और क्या नहीं है? फलतः हम उसकी याद से आज तड़फड़ा उठे है और हम उसके द्वारा किस जाल में फँसेंगे, किस वंशी को गले में घुसेड़ेंगे, किस दीप की शिखाज्वाला में जलेंगे, इसका हमें पता ही नहीं! चीनी में मिठास अवश्य होती है, परन्तु उसी के आस्वादन में सहस्र-सहस्र चींटियों की जान एक ही साथ जाती है। परन्तु हमें तो इसकी परवाह है ही नहीं, इस भावों अनर्थ की कल्पना भी हमें नहीं है। हम तो इस समय एकमात्र यही बात सोचते हैं कि किस प्रकार रायल कमीशन का पदार्पण शीघ्रातिशीघ्र यहाँ हो जाए और हम लोग उससे अपना मनोअभिलषित सिद्ध करें। परन्तु भविष्य के गर्भ में रहनेवाले अनर्थ को, प्राणान्तकारी परिणाम को, सत्यानाशकारी परिपाक को, यदि उसकी सम्भावना होती, भुला देने में या उस ओर दृष्टिपात न करने में कोई बुद्धिमत्ता नहीं है।

कोई कहे या न कहे, बोले या न बोले, अपनी मण्डली और समिति में प्रस्ताव करे या न करे, प्रत्युत दिखाने के लिए अपनी भावभंगी से उदासीनता ही क्यों न प्रकट करे, लापरवाही क्यों न सूचित करे, लेकिन हममें हरेक का मानस उसी कमीशन की ओर खिंचा है, प्रत्येक भारतीय का मानस रूपी लोहा उसी कमीशन रूपी चुम्बक की ओर आकृष्ट है और लाख अनिच्छा के रहते हुए भी हम दिन-रात कम से कम एक-दो बार उसकी स्मृति अपने मानस पटल में अवश्य जगा लेते हैं। निस्सन्देह हममें कुछ ऐसे वीर पुरुष भी हैं, जिन्हें कमीशन की स्मृति दुःखद है और वे आज भी ऐसे कमिशनों के वैसे ही विपक्षी हैं जैसे आज से कई वर्ष पूर्व थे। वे सोचते हैं और हमारे जानते ठीक ही सोचते हैं कि यह कमीशन और कमेटियाँ हमारे जाल हैं, जो हमारी मनोवृत्ति को वास्तविक कार्य से बलात् हटा कर अपनी ओर आकृष्ट करती हैं। हमारी स्वभावसिद्ध कमजोरियों को प्रबल हो जाने और अपना प्रभाव दिखा देने का अवसर देती, इनके करते मानव स्वभाव-सिद्ध-दुर्बलता एकाएक बलवती हो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उठती है और आतुरता के आवेश में आके हममें बड़े से बड़े भी आशा-भरी दृष्टियों से इन्हें देखने की भारी भूल कर बैठते हैं, थाली खो जाने पर व्यग्रता और आतुरता के मारे घड़े में भी हाथ डाल के टटोलने की बात प्रसिद्ध ही है। बस, उसी नियम को चरितार्थ करते हुए हममें वीर से वीर और निरपेक्ष से निरपेक्ष आत्माएँ भी इन कमीशनों के मायाजाल में अनायास और अनजान में ही फँस जाती हैं। मयदानव द्वारा रचित सभा में बड़ों-बड़ों को भी भ्रम हो जाना कोई नई बात नहीं है। यह माया ऐसी है और यह मोह ऐसा प्रबल है कि 'सियहिं विलोकि धीरता भागीं' को चरितार्थ करने में जनक सरीखों के त्याग, वैराग्य और निर्मम प्रवृत्ति को भी स्थानच्युत कर देने की कमाल की करामात इन कमेटियों में रहती है? इनके करते जो पारस्परिक भेदबुद्धि और कलह उत्पन्न होती है उसकी स्मृति अभी ताजा ही है और हममें शायद ही कोई उसे भूला होगा। यह है संक्षेप में कतिपय दूरअंदेशों का विचार। यह बात बिलकुल ही सत्य है कि जब बिजली चमकती है तो हममें दृढ़ से भी दृढ़ पुरुषों की आँख सहसा झप जाती है। इन कमीशनों का वायुमण्डल मय सभा से भी अधिक मोहक और चपला की चमक से भी विशेष विचलित करने वाला, अन्तर्दृष्टि को झपानेवाला होता है। लोग कौंसिलों को ही मायामन्दिर कहते हैं। परन्तु ये कमीशन तो इस विषय में कौंसिलों के भी बाप हैं। फलतः ये कमिशन सिवाय भारतीयों को फँसाने के और कुछ कर ही नहीं सकते। मछलियों और दूसरे जीव-जन्तुओं को फँसाने के लिए भी अन्ततोगत्वा कुछ न कुछ चारा फैंकना ही पड़ता है। ये विचार कुछ उच्च आत्माओं के हैं और सोलहों आने यथार्थ हैं।

परन्तु आज इन विचारों की प्रतिष्ठा कहाँ है? हममें कितने हैं जो इन विचारों को व्यावहारिक रूप देने को आज तैयार हैं? यद्यपि कमीशन का बहिष्कार, वास्तविक और व्यावहारिक बहिष्कार इन विचारों का फल हो सकता है, तथापि आज इस राष्ट्रीय दुरवस्था के युग में बहिष्कार की चर्चा उठा के मूर्खता करने कौन जाएगा? हम जानते हैं कि बहुतेरे इसकी चर्चा भी करेंगे। परन्तु हृदय से इसे माननेवाले और साथ ही बड़े कहाने वाले कितने मिलेंगे? बड़े इसीलिए कि छोटों को पूछता ही कौन है, चाहे वह कितने ही पक्के और बहुसंख्य क्यों न हों। फिर भी इन कमीशनों की उपेक्षा तो की जा सकती थी और की जा सकती भी है। लेकिन क्या यह भी हमसे सम्भव है? क्या आज के दूषित और मनहूस वायुमण्डल में यह भी हम सामूहिक रूप से करने को तैयार हैं? कदापि नहीं। हमें तो रह-रहके वही याद आ रहा है और प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से वही आज हमारे विचारों का प्रधान विषय हो रहा है। लोग हम पर हँसेगे और कहेंगे कि यह क्या लड़कों और पागलों की बातें कर रहे हो? कमीशन की उपेक्षा करना मूर्खता और पहले से पड़ी बेड़ियों को और भी जकड़ने का सामान प्रस्तुत करना है। अब इनकी मोहकता और विचालक शक्ति का पता हमें अच्छी तरह है। फलतः इन अनिष्टों की सम्भावना इनसे कदापि नहीं है। परन्तु ऐसा कहने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वालों को हम हाल के ताजे कृषि कमीशन की याद दिलाएँगे। क्या वे भूल गए कि इन कमीशनों और कौंसिलों के पूर्ण अविश्वासी महात्माजी भी किसी न किसी रूप में इनके फन्दे में फँस ही गए? चाहे उनका फँसना ऊपरी और क्षणिक ही क्यों न हो और चाहे उन्होंने और लोगों ने भी उनकी सफाई इस बारे में लाख क्यों न दी हो। फिर भी उन्होंने इस बारे में जो बम्बई के गवर्नर से परामर्श किया था उसका प्रभाव लोगों पर कितना पड़ा और कैसा हुआ? महात्माजी के सहस्र-सहस्र कट्टर अनुयायियों पर गोया वज्र ही टूट पड़ा और उनका हृदय टूक-टूक हो गया। उन्होंने लाख सफाई दी, पर जनता का सन्तोष उससे न हो सका और हो भी कैसे? उन्होंने भी तो कुछ न कुछ आशा उस कमीशन से की ही थी, तभी तो उस सम्बन्ध में बातें करने गए। यदि निराश होते तो बातें क्यों करने जाते? बस, यही आशा सब विपत्तियों और अनर्थों की जननी है और इसी ने उन्हें भी धोखे में डाल दिया! धोखे में इसलिए कि अभी-अभी मद्रास सरकार ने सर्क्यूलर निकाल के उनके चरखा संघ को राजनीतिक करार देते हुए सरकारी कर्मचारियों को उसमें सहायक होने से रोका है! जब महात्माजी पर भी उसका प्रभाव हो गया तो यहाँ इस कथन में अत्युक्ति क्या कि 'सिव विरंचि कहुँ मोहइ, को है बपुरा आन?' क्या हम इससे शिक्षा ग्रहण करेंगे?

कहा जाता है कि कमिशन में आधे या अधिक भारतीय हों और वे जनता के विश्वासपात्र हों, प्रतिनिधि हों, कमीशन के यूरोपीय सदस्यगण ऐसे हों कि जिनका भारत से प्रत्यक्ष रूप से कोई स्वार्थ या सम्बन्ध न रहा हो या भविष्य में होने की सम्भावना हो, आदि आदि। यह भी माँग अभी से पेश की जाती है कि प्रान्तों को पूर्ण स्वायत्तशासन देने की सिफारिश करते हुए भारत सरकार में भी जिम्मेदारी का भाग प्रविष्ट किया जाए और वह भी पूर्णरूपेण नहीं तो आंशिक रूप से ही जनता के प्रति जिम्मेदार हो। लेकिन यह बातें सुनके हँसी भी आती है और रुलाई भी। विचार होता है कि क्या अभी तक हमने ब्रिटिश सरकार को पहचाना तक नहीं? तो क्या सचमुच ये कमीशन निरी हमारी ही भलाई के लिए नियुक्त हुआ करते हैं? आखिर, यह खामखयाली भी हम किस बूते पर करते हैं? यह सोचते भी हम किस आधार पर हैं? यदि हमारे करते इस कमीशन की नियुक्ति हुई रहती तो एक बात थी। पर, हम तो चट्टान से भी टकरा-टकरा के अपना सिर फोड़ और मन मोड़ चुके और उसका कुछ न हुआ। फिर भी हम मान बैठते हैं कि यह वही कमीशन नियुक्त होता है जिसे हमने बार-बार चाहा है, जिसका मुतालिबा बार-बार पेश किया है। पर, याद रखना चाहिए कि यह कमिशन वही नहीं है। यह तो हमारे ब्रिटिश प्रभुओं का निजी है, जो उनकी ही मर्जी मुबारक का फल है।

चीन में गड़बड़ी है और रूस से भी तनातनी है। अफगानिस्तान का भी रुख अंग्रेजों के प्रति अच्छा नहीं है। यह पता चला है कि रूस सरकार का हाथ अफगानिस्तान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में इस समय विशेष है। जापान अंग्रेजों से सन्तुष्ट है नहीं और चीन में राष्ट्रीय भावों की विजय हो ही रही है। तो क्या इन सब घटना चक्रों का प्रभाव भारत पर न पड़ेगा और हमारे प्रभु इनसे दूरअंदेशी का लाभ न उठावेंगे? यह तो कभी सम्भव नहीं। बस, इन्हीं के करते यहाँ कमीशन जो कुछ कर जाए वह कर जाए! हमें अपने बल को तो इस समय कुछ भी आशा करनी निरी मूर्खता होगी। जिस प्रकार महापात्रों को दैवी कोप की आशा रहती है और वह दिन-रात यही सोचा और मनाया करते हैं कि अमुक धनिक यजमान के घर कोई मृत्यु हो तो कुछ मिले, ठीक वही दशा हमारी है और हम भी दिन-रात यही सोचा करते हैं कि ब्रिटिश सरकार बाहरी विपत्ति आवे जिससे हमें लाभ हो। इस समय भी यही दशा है, जितनी चिन्ता हमें बाहरी परिस्थिति की रहती है और जितना अवलम्बन उस पर करते हैं यदि उसका सहस्रांश भी अपनी चिन्ता करके स्वावलम्बी होते तो आज भारत का इतिहास दूसरा ही होता। अन्ततोगत्वा यही करना होगा, कारण, बाहरी घटना चक्र की फलस्वरूप अधिकर-प्राप्ति कभी स्थायी न हो सकेगी और 'मालेमुफ्त दिलेबेरहम' को हम चरितार्थ कर डालेंगे। फलतः हमें उसी रायल कमीशन की जप करते मरना न चाहिए और यह न सोचना चाहिए कि इस समय वही सबकुछ करेगा। हाँ करेगा वही, जो हमारी शक्ति के बल पर नियुक्त होगा।

(आषाढ़ शुक्ल 15, गुरुवार, संवत् 1984, 14 जुलाई, 1927, लोकसंग्रह, समस्तीपुर, पटना से प्रकाशित)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

किसान कैसे लड़ते हैं?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बात क्या है?

कोई यह समझने की भूल न करे कि इस पुस्तिका में लिखी बातें निरी कहानियाँ हैं और मैंने उनका संग्रह कर दिया है। असल में गत बारह वर्षों में अधिकांश बिहार में और अन्यत्र भी किसानों के द्वारा चलाई जाने वाली अपने हकों की जिन लड़ाइयों का मैंने स्वयं अनुभव किया है और बहुत नजदीक से देखा है कि किसान उन्हें किस प्रकार चलाते रहे हैं, उन्हीं का संग्रह यहाँ किया गया है।

यों तो ऐसी सैकड़ों लड़ाइयाँ बिहार में, विशेष रूप से किसान सभा की देख-रेख में ही, लड़ी गई हैं। मगर उनमें जिनसे, या जिनके जिन अंशों से, किसानों और किसान-कार्यकर्ताओं को भविष्य में अपना संग्राम चलाने में सहायता मिल सकती है, केवल उन्हीं को मैंने चुन लिया है। जिन लड़ाइयों का आगे वर्णन है, उनमें किसानों की विजय हुई है, यह खूबी है—चाहे पीछे प्रकारान्तर से उन्हें भले ही परेशान या तबाह किया गया हो।

किसानों का युद्ध-क्षेत्र धीरे-धीरे बढ़ रहा है और आए दिन बकाश्त जमीन या इसी प्रकार की दूसरी बातें लेकर किसानों को जमींदारों तथा औरों के साथ संघर्ष करने के मौके ज्यादा आ रहे और आने वाले हैं। इसलिए आशा है, आगे लिखी घटनाएँ अवश्य उनका पथ-प्रदर्शन करेंगी। इन्हें पढ़कर हम उनकी त्रुटियों को भी जान सकते और भविष्य में उनसे बच सकते हैं।

सेंट्रल जेल, हजारीबाग
आषाढ़ शुक्ल, विष्णुशयनी एकादशी,
पं. 1997 वि.

स्वामी सहजानन्द सरस्वती
15.7.40

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(1)

भागलपुर जिले में, गंगा के किनारे, उत्तर ओर, सोनबरसा गाँव है। गाँव बड़ा है और ब्राह्मणों की बस्ती है। कुछेक को छोड़, साधारण श्रेणी के ही किसान वहाँ बसते हैं।

उस इलाके में मिस्टर ग्राण्ट की जमींदारी है। उनकी दो कोठियाँ नारायणपुर और लत्तीपुर में हैं। एक तो अंग्रेज, दूसरे जमींदार। फिर तो 'करैला नीम पर चढ़ गया'। सो भी ग्राण्ट साहब कोई ऐसे-वैसे अंग्रेज नहीं। वह बड़े ही चलते-पुर्जे और तपाक वाले थे।

उनकी न सिर्फ भारत सरकार और प्रान्तीय सरकार तक ही चलती थी, वरन् ठेठ अंग्रेजी सरकार और पार्लियामेंट में भी उनकी धाक थी। फलतः यदि संयोग से कभी यहाँ उनकी सुनवाई न होती, तो वहीं प्रश्न करवाते और पार्लियामेंट के मेम्बरों के द्वारा अपना काम बना लेते थे। इसीलिए यहाँ के छोटे-बड़े सभी हाकिम-हुक्काम उनसे डरते और पनाह माँगते थे। किसी के ऊपर उनकी जरा-सी नजर बिगड़ी कि उसकी खैरियत नहीं।

परिणामस्वरूप अपनी बड़ी जमींदारी में, जेठ के महीने के मध्याह्न के सूर्य की तरह तपते थे। किसी किसान या मजलूम की क्या मजाल कि चूँ करे। सभी थर्राते रहते और बिना जबान हिलाए ही उनके जुल्मों को चुपचाप सहते थे, क्योंकि 'न तड़पने की इजाजत थी, न फरियाद की थी। घुटके मर जाएँ, मर्जी यही सैयाद की थी!' उनके छोटे-मोटे अमलों की नादिरशाही और मनमानी-घरजानी का, ऐसी हालत में, आसानी से अन्दाज लगाया जा सकता है। वे किसानों के लिए यमराज से भी बढ़ कर थे।

जैसा कि जमींदारों और सभी शासकों का कायदा होता है, ग्राण्ट साहब और उनके मैनेजर ने हर गाँव के प्रभावशाली और चलते-पुर्जे लोगों को चुन-चुन कर अपने अमले बना लिया था और अपने किसी न किसी काम में लगा दिया था। फिर तो बाकियों के लिए कोई चारा न था, सिवाय इसके कि आँख मूँद कर उनका लोहा मानें और उनकी मर्जी के खिलाफ साँस भी न लें। यदि गरीब और पीड़ित किसान अत्याचारों और जुल्मों से ऊब कर कोई प्रतिकार करना चाहते भी, तो बेबस थे—क्योंकि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आज की तरह वह जमाना किसान सभा का न था कि जालिमों को नाकों चने चबवाने का काम आसानी से हो जाता। तब तो किसान अत्यन्त विशृंखल और अप्रबुद्ध थे। हाँ, धीरे-धीरे उनमें जागृति आने जरूर लगी थी।

किसानों का तो एक ही बल है—संगठन। और, वह उस समय उनमें था नहीं। अगर ऊब कर वे स्वभावतः संगठित होना चाहते भी, तो कोई मददगार न थे, प्रत्युत बाधक और फोड़ने वाले ही ज्यादा थे। कारण, धनी और प्रभावशाली लोग तो साहब के डबल गुलाम पहले से ही बने हुए थे और वे थे उनके पूरे नमक हलाल! इसीलिए ज्यों ही बेचारे गरीब सुगबुगाते कि उस्ताद लोग आकर उन्हें ठण्डा करने लग जाते। कभी भय, कभी तकदीर और कभी भगवान की बात लाकर उन्हें पस्त कर देते थे।

'ग्राण्ट साहब गोरे तो हैं ही, तिस पर तुर्रा यह कि सात समुन्दर पार आकर यहाँ जमींदारी कर रहे हैं! यह करम की बात और भगवान की मर्जी नहीं तो और क्या है? उनके पूर्वजन्म की कमाई के बिना यह कैसे सम्भव हो सकता है?'

यही दलील उभड़ते हुए किसानों को ठण्डा करने में जादू का काम कर जाती थी और सीधे-सादे किसान कलेजा मसोस कर रह जाते थे। साहब उन्हें उजाड़ डालेंगे, यह भय का भूत तो अलग था ही।

लेकिन कहते हैं कि 'जुल्म की टहनी सदा फलती नहीं' इसलिए एक न एक दिन मिस्टर ग्राण्ट का अत्याचार इन गरीबों को उभाड़े बिना नहीं रह सकता था। जब कई बार कोशिश करके भी वे साहब का बाल बाँका न कर सके प्रत्युत स्वमेव तबाह हो गए, तो निराशा की दशा में अधीर बन गए और मतवालों की-सी दशा में आ गए और सोचने लगे कि साहब से जैसे हो निपटना ही चाहिए—चाहे परिणाम कुछ भी क्यों न हो।

बिल्ली बड़ी ही कमजोर होती और आदमी से डर कर भागती है। लेकिन आखिर सब चीजों की सीमा होती है और डर भी मजबूरन कभी छोड़ना ही पड़ता है। आप उसी बिल्ली को खदेड़ते-खदेड़ते किसी ऐसे मकान में पहुँचा दें जिसमें एक ही दरवाजा हो, भागने के लिए खिड़कियाँ या रास्ते न हों; अन्त में वह दरवाजा भी बन्द कर यदि आप बिल्ली के पीछे पड़ जाएँ तो नतीजा क्या होगा? वहाँ भी जान बचाने की कोशिश वह करेगी जरूर और इधर-उधर कूदे-फाँदेगी भी। मगर बचाव की कोई आशा न रहने पर वह भागना बन्द कर पीठ को दीवार की ओर और मुँह आपकी ओर कर सारी शक्ति से गुर्राना शुरू करेगी, जैसे कोई बाघिन हो। इतना ही नहीं। आप पर झपटेगी भी और अगर जान लेकर आप न भागे तो पंजे से आपका पेट भी फाड़ेगी या कम से कम मुँह नोंच लेगी जरूर।

जान बचाने के लिए अब तक वह भागती फिरती थी। अब आप भागिए, नहीं तो खैरियत नहीं!

यह उलटी बात क्यों हो गई? बिल्ली को बाघिन किसने बनाया? निहायत

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

डरपोक और कमजोर बिल्ली में यह अपार शक्ति एकाएक कहाँ से आ गई?

असल में संसार का यही नियम है। जुल्म की आँच में तपकर लोग इस्पात बन जाते हैं। उनकी कमजोरियाँ जल जाती हैं। जब चारों ओर से हारने के बाद ऊब कर मनुष्य जान पर खेल जाता और मतवाला (desperate) बन जाता है, तो उसके भीतर सोई हुई शक्ति का स्रोत एकाएक उमड़ पड़ता है। शक्ति कहीं बाहर से नहीं आती। वह तो हमारे भीतर ही रहती है, ठीक जैसे दूध में घी रहता और दीख नहीं पड़ता है। मगर जिस प्रकार मथने से मक्खन के रूप में वह जमा होकर नजर आता है, ठीक उसी प्रकार जुल्म और अत्याचार की बार-बार की आवृत्ति प्रसुप्त शक्ति के लिए मथानी का काम करती है। प्रचंड निराशा के बाद जब 'मरता क्या न करता' के अनुसार हम जान पर खेलते हैं, तो वह शक्ति अनायास आगे आकर दुर्गा की तरह हमारी मदद करती और शत्रु को पछाड़ती है। हिन्दू लोग जो मानते हैं कि कलियुग के बाद सत्ययुग आता है, उसका यही अर्थ है। पहले दर्जे के परस्पर विरोधी पदार्थ मिल जाते हैं(extremes meet)। इस अंग्रेजी कहावत का भी यही आशय है।

इसी नियम के अनुसार आखिर सोनवरसा के किसान भी तैयार हो ही गए। गंगा के दियारे की जमीन का झगड़ा था। हजारों बीघे फर्स्ट क्लास की जमीन थी। वह तो सोना थी। किसान कहते कि जमीन हमारी है, गाँव वालों की है; साहब के मैनेजर कहते कि यह तो साहब की है। सब उपाय करके किसान थक गए। मगर नतीजा कुछ न हुआ। साहब टस से मस न हुए।

बेशक, कानून तो है। मगर पीड़ितों के लिए तो वह ठीक वैसे ही है, जैसे कि वन में पका बेल वानर के लिए! गरीबों की आखिर कानून मदद ही क्या करेगा? वह तो अमीरों और धनियों के लिए है। कचहरियाँ उन्हीं की, हाकिम उन्हीं की बातें आसानी से सुनते, बड़े-बड़े वकील-बैरिस्टर उन्हीं को मिलते और पुलिस तथा फौज उन्हीं की सहायता के लिए चटपट पहुँच जाती है। इसीलिए कहते हैं कि रुपया कानून की छाती पर कोदों दलता है : 'Money rules the law'। फलतः इस झमेले में पड़कर किसान सिर्फ घर का आटा गीला करते हैं। उनके हाथ कुछ लगता नहीं। जहाँ देखो रुपए की पूछ है और यही चीज गरीबों के पास नहीं होती।

थाने से ही पैसे का प्रसंग शुरू होकर ठेठ ऊपर तक चला जाता है। निरुपाय होकर गाँव के सभी किसान एक दिन एकत्र हुए और सोचने लगे कि क्या किया जाए और उस जमीन पर अपना कब्जा कैसे जमाया जाए। देर भी नहीं कर सकते थे क्योंकि जमीन पर जंगल की तरह सरसों लगी थी और पक चुकी थी, जो देर होने से गिर कर खत्म हो जाती। सभी उदास थे। कोई अक्ल न चलती थी।

इतने में श्री रामरूप कुमर नामक एक गठीले, पर अपढ़, किसान ने कहा कि हम तो हजारों हैं और साहब हैं अकेले। नौकर-चाकर मिलाकर पचास-सौ होंगे। यदि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पुलिस या फौज जाएँ तो ज्यादा से ज्यादा दो-तीन सौ हो जाएँगे। फिर भी तो हम उनसे कई गुना रहेंगे। ऐसी हालत में चलो जान पर खेल कर सभी चलें और सरसों काट लें। आखिर भूखों मरने से और दवा या वस्त्र के बिना घुल-घुल कर जान देने से तो अच्छा है कि या तो सरसों काट कर घर में धरें या गोली के घाट उतर जाएँ। मर जाने पर तो भूख, प्यास, बीमारी, जाड़ा आदि सभी से पिंड छूट ही जाएगा। यदि जेल चले गए तो वहाँ भी हमारे मकान से कहीं सुन्दर पक्का मकान, हमारे खाने से लाख दर्जे अच्छा खाना। और हमारे कपड़ों से कई गुना अधिक और अच्छा कपड़ा मिलेगा ही। वहाँ तो दवा भी मिलेगी। यहाँ तो मर जाते हैं और कोई पूछने वाला नहीं! फिर परवाह किसकी? असल में हमारा शत्रु यह भय ही है और इसे ही मार भगाना हमारा पहला फर्ज है। जो मौत और जो जेल इतनी अच्छी चीजें हैं, जो हमारी हजार दिक्कतों की आसान दवाइयाँ हैं, उन्हीं से भय?

सबकी आँखें अकस्मात् खुल गईं और मालूम पड़ा कि समस्या सुलझ गई। सबके कलेजे बाँसों उछल पड़े और सबों में मुर्दानगी की जगह मर्दानगी उमड़ पड़ी। सभी बोल उठे कि ठीक है, ठीक है अब लिया, तब लिया। अब तो मामला सर ही है। फिर रामरूप ने ही प्रश्न किया—मान लीजिए जमीन पर कब्जा हो गया, तो भी बँटवारे के समय दिक्कत होगी और हम लोग आपस में ही झगड़ पड़ेंगे। फिर तो बना बनाया काम चौपट हो जाएगा और साहब की बन आएगी। आखिर आज तक वह हमारी ही फूट के बल पर बैठा है न? वह तो पुनरपि उसी फूट और आपसी कलह से लाभ उठावेगा और बिल्लियों के झगड़े में बन्दर बनेगा।

एक बात और। जब हमें साहब जैसे जबर्दस्त शत्रु से भिड़ना और उसे अच्छी तरह पछाड़ना है, तो पूरी तैयारी कर लेनी चाहिए। लाठी चलाने की नौबत होगी, जेल जाना होगा, मरना होगा, रुपए खर्चने होंगे और समय-समय पर अनेक ऐसे ही काम करने होंगे। कब कौन, कितने आदमी, कितने रुपए या कितना सामान देगा इसका भी निपटारा अभी हो जाना चाहिए ताकि निश्चिन्त होकर हमारी लड़ाई चले—नहीं तो बीच में ही गड़बड़ी होगी और आग लगने पर कुआँ खोदने का सवाल पैदा हो सकता है।

यह बात भी सभी को पसन्द आई और सबने कहा—भाई रामरूप जी, आप ही यह गुत्थी भी सुलझाइए और आज से आप ही हमारे नेता बनिए। हमने मँगनी और उधार के बाहरी नेता बहुत देखे। मगर कुछ हुआ-हवाया नहीं। वे पढ़े-लिखे जरूर होते हैं, और आप अपढ़ हैं। मगर आखिर गेहूँ, चावल, चना, घी, मलाई आप ही और हम ही तो पैदा करते हैं न? भलेमानस, ये पढ़े-लिखे कब ऐसा करते हैं? वे तो हमारी कमाई का ही घी-हलुवा खाकर, लेक्चरों और बड़ी-बड़ी बातों के जरिए, सिर्फ उसकी बदहजमी मिटाते हैं। आखिर शरीर से कोई काम तो वे लोग करते नहीं, यहाँ तक कि पैदल घूमते-फिरते भी नहीं। टहलने भी चलते हैं तो उनके बजाए प्रायः

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उनकी मोटर या घोड़ागाड़ी ही टहलती है। फिर ये चीजें पचें तो कैसे? इसीलिए उन्हें लेक्चर देना पड़ता है। उससे 'एक पंथ दो काज' होता है। अन्न की बदहजमी के साथ ही अक्ल की बदहजमी मिट जाती है। यदि न बोलें तो उनकी बहुत ज्यादा पढ़ी-लिखी बुद्धि उनके पेट और दिमाग के भीतर ही उछल-कूद मचाती रहती है। लेकिन हम तो अपनी मोटी बुद्धि से यही जानते हैं कि हजार लेक्चरों से न तो एक दाना गेहूँ, चावल पैदा होता है और न पैसे-भर घी, दूध। और इन चीजों के बिना तो दुनिया का, उन नेताओं का खुद भी, काम ही नहीं चलता। लेक्चर के बिना तो कोई भूखों मरता नहीं। इसलिए हम लोग ही अच्छे। इसीलिए हम चाहते हैं कि अब गेहूँ, घी, दूध की तरह नेता और लीडर भी हम अपने ही बीच पैदा करें। तभी हमारा निस्तार होगा। हमारे कष्टों को हमारा ही आदमी समझ सकता है। बाहरी क्या समझेंगे? 'जाके पाँव न फटे बिवाई। सो क्या जाने पीर पराई?' सबकुछ पैदा करके भी भूखों हम मरते हैं, या हमारे नेता? फिर वे क्या समझने लगे कि हमें क्या तकलीफें हैं? इसलिए हमारा नेता हम में से होना चाहिए।

सभी को यह बात अच्छी लगी और हाँ, हाँ बोल बैठे सबके सब। तब रामरूप ने कहना शुरू किया—आज त्याग और बलिदान का समय है। हो सकता है, इस समग्र 'सबसे ज्यादा त्याग हम करेंगे, हम करेंगे' ऐसी होड़ या ऐसी प्रतियोगिता दुर्भाग्य से हममें परस्पर न हो, और बलिदान में बड़ा हिस्सेदार बनने को शायद कोई तैयार न हो। फिर भी जमीन मिलने पर तो जरूर ही 'हम धनी हैं, बड़े हैं, इसलिए हमें ज्यादा मिले और फलाँ आदमी गरीब है, उसे कम मिले;' 'हमारे पास ज्यादा हल-बैल हैं और हमारा परिवार भी बड़ा है, मगर अमुक सज्जन के पास इन दोनों बातें में एक भी नहीं है, इसलिए हमें ज्यादा और उन्हें कम जमीन मिले।' ये बातें उठेंगी। इसलिए मैं चाहता हूँ कि आदमी और परिवार का खयाल न करके, सिर्फ हल-बैलों के विचार से शुरू से ही हिस्सेदारी तय कर दी जाए। यह सच भी है कि आखिर जमीन जोती जाती है हल-बैलों से ही, न कि धन और परिवार से। इसलिए आज ही हम क्यों न तय कर लें कि ये हल ही हिस्सेदार हैं? फिर गाँव-भर के हलों को, या फी हल दो बैल के हिसाब से बैलों को ही, गिन कर हिस्सेदारों की संख्या यहीं पर हम निश्चित क्यों न कर लें? आगे जब-जब रुपए की जरूरत हो, लाठी चलाने वालों का काम पड़े, जेल-यात्रियों की आवश्यकता हो, या मौत के आलिंगन का मौका आए, तो इन्हीं हलों के हिसाब से सभी लोग अपना हिस्सा बेखटके क्यों न चुकाया करें?

यह बात भी सबने पसन्द की और कहा—भाई रामरूप जी ने तो आज सचमुच ही वास्तविक किसान नेता होने का परिचय दे दिया। उन्होंने हमारी सारी उलझनें सुलझा दीं। भला यदि कोई बाहरी नेता होता, तो ये भीतरी बातें क्या समझता? यह सुलझन और यह रास्ता तो ठीक हमारे ही लायक है। ओह! इसे हम कितनी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आसानी से समझ गए! बस, अब कोई भी तितिम्मा और बखेड़ा आगे खड़ा होगा ही नहीं। सचमुच ही लड़ाई में तो बड़ा हिस्सा कोई भी नहीं लेना चाहता। यही मानव स्वभाव है। मगर जमीन के बँटवारे के समय अवश्य ही यह तूफान खड़ा होता, जिसका समाधान हमारे भाई ने, हमारे नेता ने कर दिया। हम तो हल के हिसाब से ही त्याग और बलिदान में हिस्सा लेते-लेते इसी हिस्सेदारी के अभ्यासी बन जाएँगे क्योंकि इसमें समय लगेगा। जल्दी तो यह झमेला निपटेगा नहीं। आखिर ग्राण्ट साहब कोई साग-मूली तो हैं नहीं कि जल्दी ही हम लोग उन्हें आसानी से गटक जाएँगे, या वह स्वयं मुर्झा जाएँगे। हमें तो लोहे के चने चबाना होगा। अतः इसके लिए अभी से तैयार हो जाना चाहिए। ऐसी दशा में हम खामख्वाह इस हल वाली हिस्सेदारी के अभ्यस्त हो जाएँगे। फलतः बँटवारे के समय न तो किसी को खयाल ही होगा और न हिम्मत ही होगी कि ज्यादा या कम का दावा करे!

इसके बाद फौरन हलों की गिनती की गई। सारे गाँव में कुल साढ़े तीन सौ हल ठहरे। बस, ये ही साढ़े तीन सौ हिस्सेदार ठहराए गए और उस दिन सभा बर्खास्त हुई।

मगर यह बात छिपने वाली तो थी नहीं। साहब के दलाल और टुकड़खोर फौरन कोठी में पहुँचे और उन्होंने सारी दास्तान उन्हें सुना दी। साहब भी हैरान थे कि यह क्या हो गया! न कोई नेता आया और न मीटिंग वगैरह हुई, फिर एकाएक यह क्या हो गया ? उनके दिमाग में यह बात आ ही न सकी। उनका होश-हवास उड़-सा गया।

उन्हें ताज्जुब हुआ कि रूस की सोवियत प्रथा एकाएक कैसे टपक पड़ी? किसने यह फितूर पैदा किया? उन्होंने सोचा कि चुपके से कोई बाहरी आदमी खामख्वाह आया और वह या तो गाँव में ही ठहरा है या यह मन्त्र देकर चला गया।

उन्होंने अपने जासूसों और दलालों से रह-रह कर पूछना शुरू किया—सच बताओ, कोई बाहरी आदमी आया था या नहीं? सबने एक स्वर से नाहीं की। साहब को विश्वास न हुआ और सैकड़ों ढंग से जाँचा-पूछा। मगर आखिर कोई आया हो तब न! लोगों ने कहा कि नेता या बहकाने वाले कोई सुई थोड़े ही हैं कि जो ही चाहेगा छिपा कर रख लेगा।

बात भी तो ठीक ही है। मगर पूँजीवालों, जमींदारों या गैरों पर शासन करनेवालों के दिमाग में तो सदा यही खब्त सवार रहता है कि पीड़ितों को—किसानों, मजदूरों और दूसरे कमाने वालों को—बाहरी लोग ही भड़काते और बहकाते हैं। नहीं तो ये बेचारे तो सीधे-सादे होते हैं। ये तो कभी भी धनियों, जमींदारों या सरकार का विरोध करना जानते ही नहीं।

इन शासक और शोषक भलेमानुसों के दिमाग में यह मोटी बात आती ही नहीं कि जिसे बीमारी होती है वह स्वयं दवा के लिए चिल्लाता है। जो भूखा-प्यासा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होता है, वह खुद अन्न-पानी की पुकार मचाता है। आखिर किसान-मजदूर भूखे-नंगे तो होते ही हैं। बीमारियों में कीड़े-मकोड़े की तरह वे ही हजारों मर भी जाते हैं, न कि नेता। शोषक यह भी नहीं सोच सकते कि तेज भूख लगने और भयंकर दर्द पैदा होने पर कुम्भकर्णी नींद भी टूट ही जाती है। सोए हुए लोग भी भूख और दर्द की शान्ति का उपाय ढूँढ़ने लगते हैं। वे खुद डाक्टरों को बुलाते है। न मिलने पर कोई न कोई रास्ता निकालते ही हैं। जादू-टोना और जन्तर-मन्तर की सृष्टि इसी आतुरता और अन्य उपाय न मिलने, का ही तो फल है। कहते भी हैं कि जरूरत आविष्कारों की जननी है : 'Necessity is the mother of invention.'

शोषितों और मजलूमों की जरूरतों ने ही नेताओं को पैदा किया है, न कि नेताओं ने जरूरतें पैदा की हैं। इसीलिए बाहरी नेताओं पर रोक लग जाने पर मजलूमों के भीतर से ही उनके नेता पैदा होते हैं। वे ही धुआँधार लड़ाई चलाते भी हैं। बाहरी नेता तो सुलह-सपाटे की बात भी सोचते हैं, मगर उनके भीतर के नेता तो एक ही बात जानते हैं कि या तो पीड़ित और शोषित ही रहेंगे, या उनके लूटने वाले ही! दोनों तो रह नहीं सकते, क्योंकि बाहरी नेताओं की तरह किताबें पढ़ कर तो सब बातें वे जानते नहीं। वे तो स्वयं भुक्तभोगी होते हैं।

यह भी स्वाभाविक ही है कि बीमार या भूखा आदमी रोग और भूख के साथ समझौता करने की बात सोच ही नहीं सकता। किसान और मजदूर यह बखूबी जानते हैं कि उनकी बीमारी और उनकी भूख के कारण कौन हैं, उनकी कमाई को कौन लूटते हैं। इसमें किसी बाहरी आदमी के समझाने की जरूरत ही नहीं।

इसलिए आखिर मिस्टर ग्राण्ट को मानना ही पड़ा कि गाँव वालों ने बिना किसी बाहरी इशारे या मदद के खुद-ब-खुद यह काम किया है और अब हमें सिर्फ उन्हीं से सीधे लड़ना होगा। यह काम जरा कठिन है, यह भी वह समझने लगे। बाहरी लोगों पर तो कोई रोक मजिस्ट्रेट साहब या पुलिस के जरिए लगा कर ही आसानी से काम चल जाता है। और नहीं हुआ तो सहस्रमुखी कानून की किसी धारा में ही लाकर उन्हें पकड़वा दिया। वे होते भी हैं एक-दो ही।

मगर यहाँ तो आफत है। सैकड़ों हैं, हजारों हैं; गाँव का गाँव ही है। फिर इन पर कोई नोटिस भी तो आसानी से नहीं लग सकती है।

बहुत सोच-साच कर अन्त में उन्होंने तय किया कि हथियारबन्द पुलिस लाकर ही उन्हें रोक सकते हैं, हालाँकि इसमें खर्च काफी होगा—स्थानीय पुलिस थोड़े ही है कि बिना कौड़ी-खर्चे ही दौड़ी चली आएगी। हथियारबन्द पुलिस के लाने में तो पास के पैसे कटेंगे। मगर किया क्या जाए? मजबूरी है।

उसने यह भी सोचा कि जब इस प्रकार संगठन है, तो हथियारबन्द जवान भी तो आखिर किसानों के ही बच्चे, सो भी इसी जिले या प्रान्त के हैं। कहीं वे भी न किसानों में मिल जाएँ! इसलिए हथियारबन्द गोरखे (नेपाली) ही लाना ठीक है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इसके बाद, फौरन मजिस्ट्रेट के पास खुद ही पहुँचे और सारी कहानी सुना कर गोरखों की मंजूरी ली। वे रवाना भी हो गए। साहब ने समझा कि इसी बार इन बिगड़े दिमाग वालों को सदा के लिए दुरुस्त कर ही छोड़ेंगे, नहीं तो रह-रह कर यह बला सिर उठाती ही रहेगी।

इधर किसानों को भी सब बातें मालूम हो गईं। उन्होंने भी देखा कि मामला बेढब है।

इतने में खबर लगी कि हथियारों से लैस गोरखे यह आए, वह आए। अन्त में सचमुच ही ऐन गंगा की करारी धारा के किनारे उसी झगड़े वाली जमीन के पास वे लोग पहुँच भी गए।

सोनबरसा में सनसनी थी। घबराहट भी थी। मगर रामरूप कुमर बेफिक्र थे। जब किसानों ने यह खबर उन्हें दी, तो उन्होंने कहा कि फी हल तीन-तीन आदमी के हिसाब से फौरन कम-से-कम एक हजार आदमी कमरबन्द जमा हो जाएँ।

लेकिन असल सवाल तो यह था कि राइफलों और बन्दूकों के सामने खाली हाथ या लाठी लिये ये हजार आदमी आखिर करेंगे ही क्या? ये तो बकरे की तरह केवल बलिदान हो जाएँगे। इसका क्या उपाय?

रामरूप ने कहा—उपाय जरूर होगा। घबराने की क्या बात? हम तो देहाती किसान हैं और उपाय भी वैसा ही करेंगे जो देहाती हो, सुलभ हो।

मगर लोग अचम्भे में थे। उनके दिमाग में यह बात आती न थी कि राइफलों और बन्दूकों के मुकाबले देहाती पदार्थ क्या हो सकता है! यही कानाफूसी चारों ओर हो रही थी।

तब तक रामरूप ने कहा कि हमारे गाँव में सूखे बाँस तो कटे-कटाए बहुत होंगे और होंगे पचास हाथ लम्बे भी। सभी ने कहा—बाँसों की क्या कमी?

—और किरासन का तेल और फटे-पुराने कपड़े?

उत्तर मिला—ये दोनों भी जितना चाहिए मिल सकते हैं।

इस पर रामरूप ने हुक्म दिया—बात की बात में सैकड़ों बाँस, किरासन तेल और फटे पुराने कपड़े खूब जमा किए जाएँ!

लोगों ने सुनते ही, पलक मारते, तीनों चीजों का ढेर लगा दिया। फिर हुक्म हुआ कि पचास बाँसों के पतले छोरों पर ये कपड़े खूब ज्यादा लपेटे जाएँ, ताकि घंटों जलते रहे और खत्म न हों।

लोग ताज्जुब में थे कि इस होली का क्या मतलब? इससे गोरखों की राइफलें कैसे मानेंगी? मगर अपने नेता की आज्ञा फौरन पूरी की गई।

फिर, सभी बाँसों के कपड़े किरासन तेल से तर कर दिए गए।

अब रामरूप ने कहा—हजारों आदमी तैयार हो जाएँ मुकाम पर चलने के लिए। याद रहे कि सरसों काटने के लिए सबके पास एक-एक हँसिया भी जरूर रहे!

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बात की बात में सब लोग तैयार हो गए। उसके बाद हरेक बाँस के कपड़े में आग लगा दी गई और 'इन्कलाब जिन्दाबाद' के नारों के साथ दस-दस बीस-बीस आदमियों ने, जैसा कि रामरूप ने कहा, एक-एक बाँस उठा लिया और उन सबों के जलते सिरे आगे करके सभी रवाना हो गए। दिन में एक साथ पचास बाँसों से निकलने वाली लपट सभी को चकाचौंध में डालने वाली हो गई।

किसान फिर भी आश्चर्य में थे कि यह क्या तमाशा है!

पलक मारते ही गाँव से निकल उस जमीन के नजदीक वे लोग जा पहुँचे, जहाँ हथियारबन्द गोरखे तैनात थे। दूर से साहब भी देख रहे थे। उन लोगों ने एक साथ पचासों लुक्काड़ जलते देख सोचा कि यह क्या? हजारों आदमी तो लुक्काड़ के पीछे थे। उनका गिरोह साफ नजर आता न था। न तो गोरखे और न साहब ही इसका रहस्य समझ सके। फलतः घबरा गए। क्या करें, क्या न करें—वे लोग इसी आगा-पीछा में थे।

राइफलें या बन्दूकें सीधी भी न कर सके थे कि लुक्काड़ों वाला दल उनके पास आ गया। अब तो घबरा कर भागने की सोचने लगे क्योंकि हजारों के बीच जान का खतरा था। राइफल या बन्दूक ठीक-ठीक चला सकना भी असम्भव था। साहब तो जरा दूर थे। इसलिए वह तो भाग गए। मगर हक्के-बक्के गोरखों की क्या दशा हुई, इसका कोई प्रमाण न मिल सका। इतना सभी कहते हैं कि वे लापता हो गए।

कुछ का कहना है कि जान बचाने के लिए सभी गंगा में कूद गए और डूब गए, क्योंकि धारा बहुत तेज थी, गहराई भी काफी थी। दूसरों ने कहा कि किसानों ने ही सबों को उठा कर बीच धारा में फेंक दिया और सभी डूब मरे। यह भी खयाल है कि तैरते-तैरते सभी, या कुछ लोग, कहीं दूर जा निकले और बच गए। मगर इतना सही है कि जिस काम के लिए वे आए थे वह तो नहीं ही हुआ। किसानों ने उनकी राइफलों एवं बन्दूकों का यह बहुत ही सुन्दर देहाती, पर लासानी, जवाब ढूँढ़ निकाला! अपढ़ देहाती दिमाग ऐसे ही होते हैं, बशर्ते कि मन में पक्का-पक्की ठान लें।

इस प्रकार बिना एक बूँद रक्त बहाए, एक लाठी या गोली खाए, और एक भी जान दिए—किसानों की विजय हुई। फौरन ही सारी की सारी सरसों उन्होंने काट कर घर पहुँचा दी। देर होने में खतरा था कि साहब कोई और तूफान करता और वह खेत में ही पड़ी रह जाती।

अब तो पचासों हजार रुपए की सम्पत्ति किसानों के घर जा पहुँची। वे उन्हीं रुपयों से साहब से बहुत दिनों तक निपट सकते थे। कई हजार आदमियों को सारी सरसों काटने और ढोने में देर भी न लगी। हाथों-हाथ काम हो गया। यही तो सामूहिक शक्ति की महिमा है। अलग-अलग काटते तो न जाने कितनी देर होती और कितने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पचड़े खड़े हो जाते!

उधर साहब की जान तो बची, मगर समूची कोशिश विफल हो जाने से उन्हें मर्मान्तक वेदना हुई। खून-खराबी वगैरह का केस भी नहीं कर सकते थे। सबूत ही क्या था? गोरखे मरे या बचे इसका कोई प्रमाण तो था नहीं। फिर, किसने किसको मारा, यह भी बतानेवाला कोई नहीं था। वहाँ तो जादू का काम हुआ और रामरूप की गँवार बुद्धि ने बाजी मार ली।

साहब ने पीछे हजार कोशिशें कीं कि किसानों को फँसाएँ। गोरखों के खून को साबित करने के लिए उन्होंने आकाश-पाताल एक कर दिया। बहुत छान-बीन की गई। खूब दौड़-धूप हुई। मगर नतीजा कुछ न निकला। सोनबरसा का एक कुत्ता भी साहब की ओर से न भौंकता था। पास-पड़ोस के लोग भी साहब से खुश थोड़े ही थे; समय-समय पर उसने सबों को परेशान जो किया था।

जो उनसे खूब हिले-मिले थे, वे भी किसानों की अभूतपूर्व विजय से अत्यन्त प्रभावित थे। फलतः उनके विरुद्ध जबान हिलाने की हिम्मत न कर सकते थे।

असल में विजय का परिणाम ऐसा ही होता है कि शत्रु भी विरोध में कुछ करने को तैयार नहीं हो सकते। समस्त वायुमण्डल ही बदल कर कुछ और हो जाता है। इसीलिए तो कहते हैं कि जीतने वाले के साथी सभी हो जाते हैं, पर हारने वाले का कोई नहीं।

इस प्रकार, श्री रामरूप जी के नेतृत्व में किसानों ने उस जमीन पर दखल जमा लिया। साहब की हिम्मत ही न हो सकी कि पास आएँ। गाँव में जो लोग भीतर से उनके साथी थे, वे भी अपूर्व विजय और निराले संगठन को देखकर दब गए। पीछे चल कर सारी की सारी जमीन साढ़े तीन सौ हलों में बराबर बाँट दी गई। किसी ने कुछ भी चीं-चपड़ न की। सबने खुशी-खुशी अपना-अपना हिस्सा स्वीकार कर लिया।

उसके बाद, जब कभी भी मुकदमा लड़ने या लाठी चलाने की नौबत हुई, तो हलों के हिसाब से अनायास ही काफी रुपए और काफी जवान जमा हो जाते थे। फिर तो विजय ही विजय थी।

एक बार मैं वहाँ गया था। मेरा सामान दूसरी जगह पहुँचाने के लिए बैलगाड़ी की जरूरत हुई। किसी ने श्री रामरूप कुमर से कहा। फिर क्या था। साढ़े तीन सौ गाड़ियाँ आने की नौबत हो गई। मगर हमने रोका कि जरूरत ही क्या है!

हमने जब-जब रामरूप को देखा तब-तब हम खुश हुए। पूर्ण शान्त और तगड़ा जवान, हँस कर बोलने वाला। किसानों को ऐसा ही लीडर चाहिए, न कि हम लोगों जैसे बातूनी और ढपोरशंख।

सोनबरसा का यह संगठन दुर्भेद्य चक्रव्यूह था, जिसके भीतर किसान अकंटक राज्य करते थे। पीछे सुना कि बहुत दिनों के बाद गाँव के कुछ धनियों को घूस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देकर साहब ने फोड़ा और किसानों पर जैसे-तैसे केस चलवाए।

मगर ग्राण्ट साहब और उनकी जमींदारी तकुवे की तरह सीधी तो हो ही गई!

(2)

गया जिले के कुर्था थाने में मुहम्मदपुर नाम का एक गाँव है। वहाँ श्री दशरथ सिंह आदि बहुत से किसान बसते हैं। घटना बहुत दिन पहले की है। उनके जमींदार पड़ोस के ही लारी मौजे के श्री आदित्य प्रसाद सिंह, श्री प्रकाल सिंह वगैरह हैं। मुहम्मदपुर से दो ही तीन मील दूर लारी है। किसान लोग बराबर पैसे-पैसे लगान चुकता कर देते थे। वे जमींदारों से छपी हुई रसीद लिया करते थे। कानून के अनुसार छपी-छपाई रसीद ही देना बाजिव भी है। मगर रसीदों में एक कानूनी कसर रह गई थी जिसके करते आगे चल कर किसान काफी तबाह हुए।

असल में रसीद के ऊपर जमींदार का नाम वगैरह भी छपा रहना चाहिए। लेकिन बाजारू रसीदें ऐसी रहा करती हैं कि उनमें जमींदार का नाम नहीं छपा होता। ऐसी रसीदों में आसानी होती है और सस्ती मिलती हैं। फलतः साधारण जमींदार प्रायः उन्हें ही खरीद लेते और उन पर अपना नाम लिखकर किसानों को दिया करते हैं। यह आम बात है।

फिर भी कानून की दोहाई देनेवाली सरकार तथा उसकी लाड़ली पुलिस इस अन्धेरखाते को रोकती नहीं। उनकी आँखों के सामने यह गड़बड़ी बराबर चलती रहती है। किसान बेचारा तो नाम वाली बारीकी समझ नहीं सकता। वह तो छपी-छपाई रसीद देख कर ही सन्तुष्ट हो जाता है। यह भी चतुर किसानों की बात है।

लेकिन सीधे-सादे किसान तो या तो जमींदार के हाथ की नन्ही-सी पुर्जी से ही सन्तोष करते हैं, या उसकी भी परवाह न करके जमींदारों पर ही विश्वास करते हैं। मैंने हजारों को कहते सुना है कि हमारे मालिक (जमींदार) बेईमानी थोड़े ही करेंगे।

उन्हें यह पता नहीं कि जमींदारी की जड़ ही बेईमानी और मुल्क के साथ गद्दारी (द्रोह) है। यह कायम ही हुई इसी तरह। किसान तो भूखों मरें, उनके बच्चे छटाँक-भर दूध के लिए बिलबिलाएँ, उनकी माता-बहनें चिथड़े पहन अर्द्ध नग्न हो दिन काटें और दवा के बिना अकाल काल कवलित हो जाएँ। मगर उन्हीं की कमाई से जमींदार के कुत्ते दूध, घी में स्नान करें, उनकी तवायफें गुलछर्रे उड़ाएँ। और सुन्दर, से सुन्दर गेहूँ, चावल तथा कपड़े घुन और कीड़े खा जाएँ। यह रोज की बात है।

मगर क्या यह इनसान का काम है? क्या किसान और उसके कलेजे के टुकड़े नन्हे-नन्हे बच्चे जमींदारों के कुत्तों और कीड़े-मकोड़ों से भी गए-गुजरे हैं? नहीं तो फिर किसानों के पास ही वे लोग कुछ छोड़ क्यों नहीं देते? कौड़ी-कौड़ी लगान की—सूद

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और तावान के साथ—वसूली के लिए बेहाल क्यों रहते हैं?

फिर भी उन पर विश्वास करें? सो भी वे ही किसान जिनके साथ आए दिन अमानुषिकतापूर्ण व्यवहार!

ठीक वैसी ही बाजारू रसीद श्री दशरथ सिंह प्रभृत मुहम्मदपुर के किसानों के पास भी थी। मगर वह इसका रहस्य क्या समझें? फलतः निश्चिन्त थे।

इसी बीच ऐसा मौका आया कि किसी काम से कुछ किसान जमींदारों के घर गए थे। काम देने-पावने का ही था। बात ही बात में किसी बिगड़े दिल जमींदार ने किसानों को गाली दे दी। सौभाग्य या दुर्भाग्य से जमींदार और किसान एक ही बिरादरी के हैं। अतएव, बर्दाश्त न कर सके। ऐसा मौका यह पहला ही आया। फिर बर्दाश्त करते तो कैसे?

कुछ जातियों को हमने दबा रखा है। उन्हें नीच तथा कमीना भी नाम दे रखा है। उनका प्रसिद्ध नाम है 'रैयान' या रैयान। बाकी लोग अपने को 'अशराफ' कहते हैं। दूसरे भी उन्हें ऐसा ही कहते हैं। अगर सिर्फ जमींदार ये दो भेद बना लेते तो खैर एक बात थी। मगर बदकिस्मती से किसानों के दिमाग में भी 'रैयान' शब्द घुस गया है। मैंने फटे तथा विदीर्ण कलेजे को थाम कर किसानों को ही अपने हलवाहों चरवाहों को 'रैयान' कहते सुना है। सच बात तो यह है कि किसानों के मुँह से यह शब्द सुन कर मुझे जो वेदना हुई है वह और मौकों पर शायद ही हुई हो। अपने ही पड़ोसियों और भाइयों को, जिनके बिना किसानों का काम एक मिनट भी नहीं चल सकता और जो उनके असली हाथ-पाँव हैं, इस तरह घृणापूर्ण शब्दों से याद करना पागलपन की पराकाष्ठा है।

किसान याद रखें, एक दिन आएगा, सो भी शीघ्र ही, जब ये ही 'रैयान' उनकी और अपनी—दोनों की—लड़ाई जीतेंगे! मेरा यह पक्का विश्वास है। सो भी अनुभव के आधार पर।

इसलिए अच्छा हो कि यह बुरी तरह चुभने वाला 'रैयान' शब्द संगठित रूप से किसान हटा दें और कभी इसे जबान पर न लाने का संकल्प कर लें।

खैर, तो दशरथ सिंह वगैरह 'रैयान' तो थे नहीं। तब गाली क्यों बर्दाश्त करते? इसीलिए जमींदार का जवाब कुछ वैसे ही ढंग से उन्होंने भी चटपट दे दिया। बस, मामला बेढब हो गया। भला जमींदार यह चीज बर्दाश्त करे।

आम तौर से यही समझा जाता है कि जमींदारों की भी वही बिरादरी और वही धर्म होते हैं, जो किसानों के। मगर यह बात—यह खयाल—सरासर गलत है।

जमींदारों की नकली और दिखावटी जाति-बिरादरी भले ही किसानों से मिलती हो और धर्म भी भले ही वैसा ही हो, तो भी उनकी असल जाति और ही होती है और वह सबों की एक ही होती है। इसीलिए जहाँ किसी एक धर्म या जाति के जमींदारों ने किसानों के खिलाफ आवाज उठाई कि सभी जमींदार—बिना जाति और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

धर्म के विचार के—सियार की तरह हुआँ-हुआँ मिला देते हैं।

इसलिए उनकी बिरादरी एक है। धर्म भी एक ही है। वह किसानों से निराला ही है भी। ऊपरी धर्म और बिरादरी तो धोखे में डालने के लिए है। असल में जमींदारी, जोर-जुल्म और रुपया-पैसा यही उनकी जाति है, यही उनका धर्म है। इसका नाश वे हर्गिज बर्दाश्त नहीं कर सकते। हाँ, ऊपरी जाति-धर्म भले ही नष्ट हो जाए, कोई परवाह नहीं। इसीलिए दशरथ सिंह प्रभृत की समझ गलत थी कि उनकी बिरादरी वही है जो जमींदारों की। यही कारण है कि जमींदारों ने उसी दम तय कर लिया कि किसानों को सबक सिखाया जाए ताकि ऐसा समझने की नादानी वे आइन्दा कभी न करें।

किसान लोग तो लारी से घर चले गए। मगर जमींदारों ने सलाह की कि समूचे मुहम्मदपुर के किसानों पर चार साल के बकाया लगान की नालिश की जाए और उन्हें तबाह किया जाए। वे लोग लगान चुकती की रसीदें पेश करके मुकदमे को खारिज न करवा दें—इसलिए वही बाजारू रसीद वाला नुक्स निकाला गया। सोचा गया कि वे रसीदें इनकार कर दी जाएँगी कि जाली हैं। कहेंगे, हम ऐसी रसीदें भला क्यों देने लगे? तब सवाल होगा कि अच्छा, तो आप लोग जो रसीदें देते हैं वे ही अदालत में पेश करें। मगर दूसरी रसीदें तो पास में हैं नहीं! ऐसी दशा में नालिश फिर गड़बड़ी में पड़ जाएगी। अगर नामवाली रसीद अभी छपवाकर पेश भी करें तो गुजर नहीं, क्योंकि अदालत में तो पुरानी रसीदों की माँग होगी और वे तो असम्भव हैं।

इसके बाद वे लोग गया में एक वकील साहब के पास पहुँचे। वह उनमें से एक जमींदार के दामाद हैं, साथ ही किसानों के बड़े हिमायती माने जाते थे। आज भी तो उनका और उनके साथियों का ऐसा ही दावा है। उसके बाद किसानों के माथे सवार होकर वे बहुत आगे बढ़े भी हैं।

मगर, वकालत पेशा ही कुछ ऐसा है कि जरूरत पड़ने पर गुरु का भी गला काटने की सलाह वकील लोग दे सकते हैं। गंगा, तुलसी और बाइबिल, कुरान उठवा कर झूठी कसमें तो रोज ही खिलवाते हैं। इस प्रकार, जब अपने भगवान और खुदा का ही गला काट डालते हैं तो किसान का गला तो बहुत ही नर्म है। उसको काटना बकरे के गले से भी आसान है। किसानों की हिमायत भी तो अपना काम निकालने के लिए ही थी। अपना काम बिगाड़ कर किसानों की भलाई के लिए हिमायत की जाती है—ऐसा जो किसान माने, वह मूर्ख है। वैसे, सच्चे हिमायती तो बिरले ही होते हैं।

खैर, वकील साहब की तो पाँचों घी में हो आईं। सम्बन्धी के सम्बन्धी और मुवक्किल के मुवक्किल मिले। उनके लिए तो सोने में सुगन्ध मिली। उन्होंने चटपट रास्ता सुझा ही तो दिया। राय दी कि किसी प्रेस वाले को कुछ ज्यादा पैसे देकर मिलाया जाए। वह रसीदें छापकर अपने कागजों में पाँच-सात वर्ष पहले दर्ज करे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

फिर वे ही रसीदें पेश की जाएँ कि पुरानी हैं। सबूत में उस प्रेस वाले के पुराने रजिस्टर दाखिल हों जिनमें यह जालसाजी की गई हो। काम तो आसान नहीं। मगर, पैसे से सब हो सकता है।

एक बात और भी की जाए, नहीं तो सब गुड़ गोबर हो जाएगा। कुछ किसान मिलाए जाएँ। ये नई रसीदें पाँच-सात वर्ष की पुरानी तारीखों में काटकर उन्हें दी जाएँ और उन्हें राजी किया जाए—गवाही देने और उन्हें अदालत में पेश करने के लिए कि ये ही रसीदें वे पहले से पाते आ रहे हैं।

इस प्रकार सब षड्यंत्र ठीक हो गया और पूरी तैयारी भी कर ली गई।

मुहम्मदपुर के किसानों को तो मालूम नहीं कि उनका गला रेतने के लिए क्या-क्या हो रहा है। वे तो निश्चिन्त थे। इधर भीतर ही भीतर सारी तैयारी करके उन पर रेंट सूट (लगान का केस) दायर कर दिया गया। जब किसानों को इसकी नोटिस मिली तब वे चौंके कि यह क्या? दौड़े-दौड़े गया पहुँचे। वहाँ से फिर जहानाबाद। वहाँ पता लगाया, तो बात सही निकली। फिर भी वे तो फूले थे कि रसीदें पेश कर देंगे, फलतः पहली पेशी में ही यह केस खत्म हो जाएगा।

मगर, मुकदमा पेश होते ही पता चला कि बात कुछ और ही है। तारीखों पर तारीखें पड़ीं। किसानों ने बड़ी दौड़-धूप की। उन्होंने पैसे भी काफी खर्चे। मगर बन्दिश ऐसी पक्की थी कि उनकी एक न सुनी गई और उनके खिलाफ पूरे दस हजार रुपए की डिग्री हो गई। हाकिम ने न तो किसानों के बयानों को ही माना और न उन रसीदों को ही। उनकी आवाज नक्कारखाने में तूती की आवाज साबित हुई। ये ही आज के कानून और न्यायालय। भला गरीब और अपढ़ इनसे कब पार पा सकते हैं?

अपील करते-कराते वे लोग हाईकोर्ट तक का दरवाजा खटखटा कर निराश हो गए! डिग्री बहाल की बहाल रही। उलटे और भी खर्च उस पर जुटता गया और सूद भी। किसानों का खर्च और उनकी परेशानी तो अलग थी ही।

कहते हैं कि वे लोग दो बार हाईकोर्ट तक पहुँच कर थक गए। इसके बाद गवर्नर के पास भी दरखास्तें गईं। छोटे अफसरों का तो कहना ही क्या? मगर नतीजा कुछ न हुआ, सुनवाई कहीं न हुई।

इतने में किसान सभा का जमाना आ गया। किसान पंडित यदुनन्दन शर्मा के पास गए और उन्हें लेकर मुझे भी पकड़ा कि जमींदारों से मेल-जोल करवा दें। वे वकील साहब तो हम दोनों के पूरे परिचित थे। जमींदारों से भी मेरा परिचय था। मैंने भी कोशिश की—केवल इसलिए कि किसानों को सन्तोष हो जाए।

वकील साहब तो चुप रहे, मगर जमींदारों ने मुझे खुश करने के लिए मेरे सामने बातें मान लीं और तय कर देने को कहा। तय क्या करना था। कुछ रकम छोड़ कर, कुछ की किस्तें कर देनी थीं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लेकिन पीछे जमींदार लोग बदल गए। मैंने पत्र लिखा। मगर उत्तर नदारद!

तब हमने दशरथ सिंह को राय दी कि अब सीधी लड़ाई लड़ो, गाँव पर किसान सभा का आश्रम खोल कर कुछ कार्यकर्ता रखो। इधर वे चारों ओर प्रचार और तैयारी करें, उधर तुम लोग अपने बाल-बच्चों के साथ आसपास के गाँवों में जाकर सभी लोगों से हाथ जोड़ कर कह दो कि तुम्हारी जमीन नीलाम होने पर कोई लेने या जोतने को तैयार न हो, हमारे कार्यकर्ता भी इसमें सहायता करेंगे।

किसानों ने यही बात अक्षरशः की। फलतः देहात के किसानों पर असर हो गया कि सचमुच ये हमारे भाई हैं। हम क्यों इनकी जमीन छीनें? जब आप खुद दुःखी बन कर बाल-बच्चों के साथ किसानों के पास गिरिए, तो वे जरूर आपका साथ देंगे। ऐसा मैंने कई मौकों पर देखा है। यहाँ तक हुआ है कि जमींदारों ने बिना जमीन वाले मजदूरों को बुला कर किसानों की जमीन में से थोड़ी दी थी, बाकी में उन्हीं के द्वारा अपनी खेती करवाते थे। मगर जब मेरी राय मान कर किसान उन मजदूरों के पाँवों पर पड़े, तो वे जमीन छोड़ कर चले गए और मजबूरन जमींदार ने जमीन फिर पुराने किसानों को ही दी।

परिणामस्वरूप जब मुहम्मदपुर की पूरे अस्सी बीघे जमीन नीलाम करवा कर जमींदारों ने दूसरे किसानों से आबाद करानी चाही, तो सब ने साफ इनकार किया कि भाई की जमीन हम क्यों छीनें? यहाँ तक कि सौ-सौ रुपए फी आदमी को देकर कुछ पाही किसान ग्वालों से उन्होंने खेती करवानी चाही। लेकिन साफ इनकार!

वह जमीन गाँव के सामने उससे मिली हुई पूर्व ओर है। उसमें बहुत अच्छा धान होता है। किसान लोग, नीलाम होने के बाद भी, उसे बराबर जोतते-बोते और फसल काटते रहे। जमींदार हैरान थे! उनकी एक न चलती थी।

लाचार उन्होंने उस जमीन पर दफा 144 की नोटिस करवाई। मगर नोटिस न तो तोप है, न तलवार, न लाठी और न कटीला तार, कि जमीन में जाना और खेती करना बन्द करवा दे। नोटिस के बाद भी तो जमीन पर पहले ही जैसे किसान का हल चलता है, चल सकता है, और धान वगैरह पैदा होता ही रहता है। तब फिर वे मानने और रुकने क्यों लगे?

कहते हैं—खेत पर और आदमी पर नोटिस लग गई! मगर हजार रोशनी लेकर और कोशिश करके देखें, तो जमीन या आदमी पर वह नोटिस लगी हुई नजर आती नहीं! वह तो सिर्फ हमारे गन्दे दिमाग में लग जाती है।

हाँ, यदि हक की बात हो तो मानें भी।

मगर उस जमीन पर हक तो असल में किसानों का ही था, और अगर रुपए तथा बुद्धि के बल पर कानून को जबर्दस्ती किसानों के विरुद्ध किया जाए तो किसानों का यह एकमात्र पवित्र कर्तव्य हो जाता है कि उस कानून को न मानें—उसे मानने से साफ इनकार कर दें। तभी कानूनों की छाती पर चलने वाली रुपए की यह चक्की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बन्द हो सकती है। दूसरा रास्ता नहीं। जब तक ऐसा न होगा तब तक धनी, या जमींदार, जालफरेब तथा अन्याय के द्वारा उनका हक छीनने की कोशिश बन्द न करेंगे।

वहाँ के किसानों ने यही किया। नोटिस की परवाह न की और उस साल भी फसल तैयार करके काट ली!

जब अगले वर्ष भी किसानों ने फसल तैयार कर ली, तो काटने के पहले ही जमींदारों ने उसे जब्त करा कर पुलिस का एक अच्छा दल उसकी रखवाली के लिए तैनात करवा दिया! जमींदारों ने कहा—बोएँ किसान और जब्त करवा-करवा कर काटें हम, बस इसी से वे लोग सर हो जाएँगे।

जमींदार भीतर ही भीतर खूब खुश थे कि भली तैयार फसल हाथ लगी। मगर किसान और हमारे कार्यकर्ता निश्चिन्त थे। उन्होंने तय कर लिया था कि चाहे कुछ हो, जमींदारों के हाथ फसल न लगने देंगे। फलतः सुबह, शाम और दिन या रात में—जब भी मौका लगता, इधर-उधर से कुछ न कुछ धान वे लोग उड़ा ले जाते थे। जब जमींदार लोग जानबूझ कर बेईमानी पर उतर आए थे, तो फिर किसान क्यों नाहक युधिष्ठिर बनने का दावा करते? यह तो पहले दर्जे की नादानी होती। इसलिए मौका देखकर कुछ न कुछ बराबर नोचते रहते। रात में जब पुलिसवाले सो जाते, तब खासतौर से काट लेते। काटते भी इस होशियारी से कि आसानी से मालूम तक न होता। बीच-बीच में से खींच लेते।

अधिकांश तो उन्होंने यह किया कि धान की फसल की मलाई ही निकाल ली और सिर्फ उसका डण्ठल ही खड़ा रहने दिया, ताकि दूर से देखने वाले समझें कि फसल खड़ी ही है! जब धान की प्रायः सभी अच्छी-अच्छी बालें खींच ली गईं, तो डण्ठल और पुआल खड़ा रहने में हर्ज ही क्या था?

पुलिस ने कटवा कर फसल जब खलिहान में रखी, तो वहीं से धान के बोझे और बण्डल गायब हो गए। एक बण्डल के चार बना कर एक रख दिए और तीन को गायव कर दिया। इससे बंडलों की गिनती में तो फर्क न पड़ा और असल माल जैसे चूहों के पेट में चला गया! आखिर ये सैकड़ों दोपाए चूहे दिन-रात लगे जो रहे! उन्हें नींद हराम जो थी! पुलिस भी तो आखिर किसानों के ही परिवारों से आती है। तो क्या उसे गरीबों पर दर्द नहीं होता ? और अगर जरूरत होने से उसकी थोड़ी-बहुत पूजा-प्रतिष्ठा कर दी जाए, पत्रं-पुष्पं अर्पण कर दिया जाए, तो कहना ही क्या! बात तो यह है कि यदि सैकड़ों आदमी संकल्प करके किसी काम में पड़ जाएँ और चैन न लें, तो उसमें सफलता जरूर ही मिलती है। यही बात महमद (मुहम्मद) पुर में भी हुई।

अन्त में जब जमींदार ने धान को पुआल से अलग करवा कर साफ करवाया और तौला, तो कुल सवा सौ मन कच्ची तौल से धान निकला! जमीन थी पूरे अस्सी बीघे! उधर पुलिस लाने और महीनों रखने में पूरे नौ सौ रुपए खर्च हुए थे। धान मुश्किल से डेढ़-दो सौ रुपए का हुआ होगा। बस, जमींदारों की हिम्मत खत्म थी!

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अगर इसी प्रकार दो-चार वर्ष लगातार किसानों की तैयार फसल जब्त करवाने और काटने का काम वे लोग जारी रखते, तो जमींदारी ही बिक जाती। इसलिए उन लोगों का हिसाब गलत निकला। इसे ही कहते हैं 'सौ सुनार की और एक लुहार की'। उन्होंने हजारों रुपए खर्च करके धान लेने की तैयारी की, मगर किसानों ने अनायास ही उनके मंसूबे पर पानी फेर दिया।

फलतः उन लोगों ने दशरथ सिंह वगैरह किसानों को खुद बुलवा कर कहा—जाइए, हम लोग हारे। आप लोग जीते। अब दस हजार रुपए की डिग्री खर्च, इस बीच के कई साल का लगान, और पुलिस वगैरह लाने का खर्च सब खत्म हुआ। आप लोग खेत जोतें और हमें भी हमारा मुनासिब हिस्सा देते रहें, यही कहना है।

किसान खुशी-खुशी घर आए। इस अपूर्व विजय पर खूब उत्सव मनाया गया। इसकी प्रसिद्धि देहात में चारों ओर हो गई। इससे अन्य जमींदारों की भी हिम्मत टूट गई।

इधर, सभी किसानों में आत्मविश्वास पैदा हो गया कि हम लोग आसानी से जमींदारों को पछाड़ सकते हैं। कुछ दिनों बाद दशरथ सिंह ने मुझसे मिल कर यह खुशखबरी सुनाई। मैंने उन्हें बधाई दी।

मगर अब उन्होंने मुझसे यह कहा कि जमींदारों से कहकर उस अस्सी बीघे जमीन की रसीद हमारे नाम से कटवा दें क्योंकि जमीन तो नीलाम थी और जमींदार लोग किसानों से इधर जो गल्ला पाते थे उसकी रसीद देते न थे।

असल में, रसीद देने से उस जमीन पर किसानों का दखल साबित हो जाता और जमींदार यही बचाते थे; इसलिए दशरथ सिंह की यह प्रार्थना थी।

मैंने उत्तर दिया कि जमींदारों को आपने पछाड़ा है, न कि मैंने—आप लोगों को यह खूब समझना चाहिए। किसानों की भारी भूल यही है कि सबकुछ करते हैं खुद, मगर उसका श्रेय गैरों को—नेताओं को, भगवान को या तकदीर को—देते हैं! आप इस भूल को सुधारें। असल में हम लोग तो निमित्त मात्र हैं। करने वाले आप ही हैं। इसलिए आप ही जमींदारों से कहिए। वे डर कर रसीद जरूर देंगे। ...मगर रसीद की जरूरत क्या है? जब रसीद मिलती थी तभी तो यह जमीन चली गई। आज तो आपने, अपने संगठन से, जमींदारों को हरा कर उसे पुनः प्राप्त किया है। अब, जब तक जमींदार शरारत न करें, उन्हें भी उचित भाग दीजिए और शेष स्वयं खाइए। लेकिन यदि वे गड़बड़ करें तो सब खा जाइए। वे कुछ न कर सकेंगे। जमीन आपके नाम पर अब है नहीं कि नालिश करेंगे। फिर नाहक रसीद क्यों चाहते हैं?

वे चले गए और तब से यही कर रहे हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(3)

पटना जिले के सिलाव थाने में दरमपुरा नाम की एक छोटी-सी बस्ती है। वहाँ कुछ ब्राह्मण और कुछ दूसरे किसान बसते हैं। वे गरीब हैं और जमीन जोत-बोकर ही गुजर करते आ रहे हैं। उस गाँव के जमींदार मुहम्मद इद्रिस साहब दूसरे मौजे में बसते हैं, जो वहाँ से कुछ दूर है।

इद्रिस मियाँ ने उस गाँव की अधिकांश जमीन नीलाम करवा कर बकाश्त बना ली थी। मगर उन्हीं किसानों को फिर बँटाई पर दे दी थी। खुद तो खेती कर सकते न थे। उसमें बँटाई की अपेक्षा फायदा भी न था। बँटाई में आसानी यह थी कि जब खुशी हुई, एक से छीन कर दूसरे को दे दी। ज्यों ही किसान जरा भी खुशामद में चूका कि उसकी जमीन गई।

कानून के अनुसार वह जमीन एक बार देकर फिर नहीं छीन सकते थे क्योंकि बकाश्त जमीन यदि उसी मौजे का किसान (Settled raiyat) एक बार जोत ले, तो बिहार काश्तकारी कानून की 21वीं धारा के अनुसार उस जमीन पर उसका कायमी हक हो जाता है; अतः अगर जमींदार उसे छीने तो अपराधी है। मगर किसान को कानून-फानून का क्या पता? और जमींदार को उसकी परवाह भी क्यों हो, जब किसान ही अन्धा ठहरा और अपना हक ही नहीं जानता?

इसलिए इद्रिस मियाँ की यह छीना-झपटी और तुम्बा-फेरी बराबर जारी रही। जो ज्यादा से ज्यादा रुपए या गल्ला देता, उसे ही जमीन देते थे।

इधर जब किसान सभा का जमाना आया और उसके करते किसानों की आँखें खुलीं, तो उन्होंने अपने हक पहचाने। खासकर बकाश्त जमीन वाली बात उन्हें खूब समझाई गई। उन्हें तैयार भी किया गया कि वे बकाश्त जमीनों को हर्गिज न छोड़ें। जगह-जगह किसान डटने भी लगे।

फिर तो इद्रिस मियाँ के कान खड़े हो गए। फलतः उन्होंने सभी बकाश्त जमीन दरमपुरा के किसानों से छीन ली। उन्होंने यह भी सोचा कि या तो खुद खेती करें या दूसरे गाँवों के (पाही) किसानों को दें। पाही किसान के बारे में तो काननू है कि बिना लगातार बारह वर्ष उस गाँव में खेती किए वह देही किसान (Setted raiyat) बन नहीं सकता और बिना देही बने बकाश्त जमीन पर कायमी हक हो ही नहीं सकता। उन्होंने यह भी सोचा कि न किसी पाही किसान को बारह वर्ष लगातार खेती करने देंगे, और न वह कायमी हक का दावेदार होगा।

उधर दरमपुरा वालों की तो भूखों मरने की नौबत आई। वे हजार रोए-चिल्लाए और वचन देते रहे कि हम कोई दावा न करेंगे, मगर मियाँ जी सुनने वाले कब थे? वह तो जमाने की हवा देखते थे और काफी सजग थे।

यद्यपि जमीन छीनने का हक तो उन्हें नहीं था और अगर किसान डट जाते,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तो वह मश्किल में पड़ जाते—मगर किसानों में हिम्मत कहाँ थी कि डटें ? सो भी, उस इलाके के किसान बहुत पिछड़े हुए थे। जमींदारों ने उन्हें काफी दबा रखा था। उधर छोटे जमींदार ज्यादा हैं। वे और भी ज्यादा जुल्म करते हैं। लोगों का खयाल है कि छोटे-छोटे जमींदासर तो गरीब होते हैं, वे जुल्म भी नहीं करते या नाम मात्र का ही करते हैं, इसलिए उनके ऊपर खास तौर से रहम होना चाहिए। मगर यह बात सरासर गलत है। मैंने तो देखा है कि छोटों का जुल्म अपेक्षाकृत कहीं ज्यादा है। यह ठीक है कि बड़े जमींदार हजारों और लाखों किसानों पर जुल्म करते हैं और अगर उनका सब जुल्म जमा कर दिया जाए, तो उसका पहाड़ बन सकता है। लेकिन यदि व्यक्तिगत किसानों को अलग-अलग देखा जाए, तो आम तौर से छोटे जमींदारों का अत्याचार कहीं बढ़ा-चढ़ा है। बड़े तो शायद ही ऐसे हों, जो लगान लेकर रसीद न देते हों। मगर छोटे तो शायद ही कोई रसीद देते हों। सो भी, यदि कोई देता है तो बाजारू रसीद खरीद कर ही, जो कानूनन गलत है। मौके पर काम भी नहीं करती।

लेकिन भावली जमीन की रसीद तो कोई छोटा जमींदार देता ही नहीं। अगर भूल से किसी ने कभी दी भी, तो पाँच मन गल्ले की जगह पचीस मन उस पर लिख कर देता है। कुछ जमींदारों ने एक बार दलील दी की कि भावली की रसीद रहने पर जब किसान उसे नकदी (cash) करने का दावा करेगा, तो लगान बहुत कम होगा। वह गल्ले की रसीद पेश कर देगा और उसी के अनुसार नकद लगान तय होगा, इसी से हम रसीद नहीं देते क्योंकि मौका आने पर हम कहेंगे कि हमें ज्यादा गल्ला मिलता है। जमीन बहुत अच्छी है। ज्यादा गल्ला लिख कर रसीद देने का भी यही मतलब है !

हरी, बेगारी, दूध, दही, घी आदि की बात तो पूछिए मत। यह तो छोटे जमींदारों का सनातन धर्म ही ठहरा। असल में छोटी लाल मिर्च जितनी कड़वी होती है, उतनी बड़ी नहीं। जितना तेज कुटकी या पिस्सू काटता है, उतना तेज मच्छर नहीं। मुहम्मद इद्रिस भी छोटे ही जमींदार हैं। इसीलिए किसानों को उन्होंने काफी तबाह किया है। जमीन नीलाम भी इसी तरह करवाई थी।

रसीद तो कभी देते न थे और जब भी जरा भी रंज होते तो चट चार साल के लगान की नालिश ठोंक कर जमीन ही नीलाम करवा लेते ! जब मौरूसी और खतियानी (सर्बे खतियान में दर्ज) जमीन की ही रसीद देना उन्होंने नहीं सीखा, तो फिर बकाश्त की रसीद की क्या बात ? इसीलिए उन्होंने सोचा कि यदि जबर्दस्ती यह जमीन छीन लें, तो किसान करेंगे ही क्या ! उनके पास सबूत तो कोई है नहीं कि वे जमीनें जोतते थे।

उधर पुलिस और सरकार के घर में अन्धेरखाता ऐसा है कि वह कागजी सबूत और रसीद ही ढूँढ़ती है। वह तो इस मामूली अक्ल से भी काम लेना नहीं जानती कि जमींदार रसीद देकर बेवकूफी क्यों करेगा ? यह सभी जानते हैं कि मौरूसी जमीन की भी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रसीदें जब नहीं मिलती हैं, तो बकाश्त की कैसे मिलेंगी ? मगर फिर भी रसीदें ढूँढ़ते और नहीं रहने पर किसान को दुरदुराते हैं कि हटो, तुम्हारा दखल उस जमीन पर नहीं है।

जिसे रसीद लिखने और देने का हक और इल्म है, वह तो देता नहीं। तो किसान क्या करें? क्या अपना सिर फोड़ें?...उस पर भी तो सुनवाई नहीं!

मगर पास में रसीद न होने पर भी रसीद के बाप-दादे तो उसके पास हैं ही, जिन्हें हल, बैल, कुदाल आदि कहते हैं। हाकिम का काम है असलियत का पता लगाना। इसलिए उसे उचित है कि किसान के घर जाकर हल, बैल आदि देखे और पता लगाए कि इनसे वह कौन सी जमीन जोतता है। आखिर अपना घर, जमींदार और सरकार की कचहरी या पुलिस का थाना तो जोतता न होगा। और जब दूसरी जमीन उसके पास है नहीं, तो खामख्वाह वह बकाश्त जमीन ही जोतता होगा। बैलों से तो दूध भी नहीं दुहा जा सकता कि उसी वास्ते पाले गए हों। वह खुफिया गवाही भी ले सकता है।

मगर ये मोटी और साफ बातें छोड़, उसे केवल रसीद की फिक्र रहती है। पाँच हाथ का हल और हेंगा (चौकी) छोड़ कर चार अंगुल का कागज ही उसके लिए भारी सबूत है। यह भी खयाल नहीं होता कि रसीद पर न तो हल ही चलता है और न खेती ही होती है। खेती तो खेत में होती है। सो भी हल-बैलों से ही। फिर रसीद के लिए परेशानी क्यों?

इस प्रकार जब किसानों को कोई आसरा न रहा, तो हार कर किसान सभा के कार्यकर्ताओं के पास पहुँचे। उन्हें सारा दुखड़ा कह सुनाया। उनका तो काम ही था किसानों का पथ-प्रदर्शन करना और जहाँ तक हो सके उनकी सहायता करना।

उन्होंने किसानों को राय दी कि जमीन पर डट जाओ। शान्तिपूर्वक वहीं मरो-मिटो। दूसरा उपाय है नहीं। अगर तुम लोगों ने यह तय कर लिया कि जब तक तुम्हारी और तुम्हारे बाल-बच्चों की छाती पर से जमींदार या उसके आदमियों का या गैर किसानों का हल गुजर नहीं लेगा, तब तक खेत न जोतने दिया जाएगा—तो विजय तुम्हारी होगी। केवल चुपचाप खेत में सपरिवार पड़ जाना और किसी भी हालत में न हटना; यही तुम्हारा काम होना चाहिए। अच्छा है, सभी वहीं मर जाएँगे तो खाने-पीने का प्रश्न सदा के लिए जाता रहेगा। जमींदार से भी कह देना चाहिए कि खून की खाद सबसे अच्छी बताई जाती है; इसलिए हमारा खून खेत में बहा कर चलते-चलाते उसे पैदावार बना लीजिए। मगर सभी लोगों को—स्त्री, पुरुष, बच्चों को—ऐसा करना होगा। तभी जीत होगी। अगर फसल तैयार हो, तो काटने के समय ही छेंक कर पड़ जाओ।

किसानों के पास भी दूसरा रास्ता न था। अतः बातें मान कर चले गए।

किसानों की बोई धान की फसल तैयार थी। जमींदार ने उसे अपनी बता, काटना शुरू किया। जब किसान रोकने गए, तो दफा 144 की नोटिस उन पर करवा दी। जब उसे न मानकर खेत पर धरना देने गए, तो पुलिस के द्वारा पकड़वा कर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सबों को—मर्दों को—जेल भिजवा दिया और फसल काट कर खलिहान में जमा की।

अब औरतों और बच्चों की बारी आई। औरतें तो ब्राह्मण कुल की ठहरीं। उनमें सबसे समझदार औरत को सीताराम कहते हैं। उसने ही औरतों का नेतृत्व किया। सभी औरतें, बच्चे-बच्चियों के साथ, खलिहान में जा बैठीं। धान के पास ही पुआल की पलानी (छप्पर) डाल कर रहने लगीं। वहीं से धान निकाल कर सुखातीं, उसका चावल कूटतीं, पकातीं और खाती थीं। ओखली, बर्तन, सभी सामान वहीं ले गईं, और उसे ही घर बना लिया। कुछ दिन यही चलता रहा!

जमींदार घबराया कि क्या करे। पुलिस का दरवाजा खटखटाया। और, वह जमींदार की मदद को आ धमकी।

पूस-माघ के दिन और कड़ाके का हड्डी-तोड़ जाड़ा पड़ता था। गरीबिनों के पास वस्त्र कहाँ? चिथड़े लपेट कर पुआल और पलानों के भीतर घुस कर किसी प्रकार दिन काटती थीं।

पुलिस ने सबसे पहले उनकी भात पकाने की हंडिया तोड़नी और फेंकनी शुरू की ताकि भूखों मर कर भाग जाएँ। बड़ी भीषण परिस्थिति थी! धान तो खाया नहीं जा सकता! और अगर किसी प्रकार चावल बना भी, तो कच्चा कैसे खाया जाए? सो भी रोज-रोज? पीछे तो चावल कूटने का सामना भी छीन लिया गया।

मगर औरतें हिम्मत के साथ डटी रहीं। और, बच्चे-बच्चियाँ भी। उफ्! कैसी नृशंसता पुलिस कर रही थी। उधर, हमारे कार्यकर्ता भी सजग थे। खाने की चीजें, बनी बनाई उन्हें दे आने लगे।

इस पर पुलिस ने सभी को पकड़ने की धमकी दी। बिहारशरीफ वालों को और सिलाव वालों को भी हुक्म सुना दिया गया कि किसी किस्म की सहायता नहीं कर सकते, नहीं तो केस चलाया जाएगा! तब रात में चुपके से खाना पहुँचाया जाने लगा।

इस प्रकार, काम जारी रहा और पुलिस तथा जमींदार का मंसूबा पूरा होता न दीखा। औरतों को गिरफ्तार करने की हिम्मत उनकी होती न थी। चाहते थे कि वे यूँ ही हार कर भाग जाएँ। मगर सो तो हुआ नहीं। अब क्या किया जाए, यह सोचा जाने लगा।

इतने में मघबदरिया शुरू हुई और लगातार हवा के साथ थोड़ी-सी बूँदा-बाँदी कई दिनों तक पड़ती रही। बस, पुलिस को शैतानियत सूझी। उसने उन औरतों की झोंपड़ियाँ उजाड़ कर फेंक दीं और हजार कोशिश करने पर भी फिर बनने-बनाने नहीं दीं।

अब तो बड़ी आफत थी। एक तो पास में अन्न-वस्त्र नहीं। इस पर वह भयंकर हवा और बदली। जाड़ा तो था ही। मगर वाह रे हिम्मत! आखिर सीताराम के नेतृत्व ने कमाल किया और उन औरत-बच्चों ने ऐसा किया जो किसान आन्दोलन के इतिहास में अमर रहेगा।

उसने सबकुछ सहा। मगर वहाँ से हटने का नाम न लिया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पुरानी पुस्तकों में लिखा है कि मर्दों की अपेक्षा स्त्रियों में दो-गुनी मर्दानगी और छह गुनी तत्परता रहती है। इसकी सच्चाई हमने प्रत्यक्ष रूप से वहीं देखी। सभी हैरत में थे। पुलिस भी दंग थी। जमींदार और उसके पिट्ठू हक्का-बक्का थे।

अन्त में मजिस्ट्रेट साहब के सामने चल कर तय कराने के बहाने वे औरतें और बच्चे-बच्चियाँ पुलिस के जरिए बिहारशरीफ लाई गईं। मगर वहाँ भी धोखेबाजी की गई और, बच्चे-बच्चियों को किसी प्रकार अलग करके, औरतों को गिरफ्तार कर लिया गया। बच्चे-बच्चियाँ धर्मशाला में लाई गईं। मगर पुलिस की ताकीद थी कि उन्हें कोई खाना न दे!

लेकिन सभी लोग उसी तरह पत्थर के तो होते नहीं। फलतः लोग उन्हें खिलाते-पिलाते रहे। पुलिस चाहती थी कि ये बच्चे-बच्चियाँ घर जाने को राजी हो जाएँ; इसीलिए खाना-पीना रोकती थी।

मगर उन बच्चों की हिम्मत तो देखो। उनमें सबसे बड़ी थी एक लड़की, जो आठ-दस वर्ष की होगी। बाकी छोटे थे। वही लड़की सबका नेतृत्व करती थी। उनमें कोई कभी रोने का नाम तो लेता न था। पूछने पर सबों ने यही उत्तर मिलता था—हम लोग भी जेल ही :जाएँगे।

इसे ही कहते हैं माता-पिता की अमली शिक्षा। उन बच्चों ने न तो स्कूल में और किसान सभा में ही जेल जाने की बात सीखी थी। जिस प्रकार पक्षी का बच्चा माता-पिता का उड़ना देख कर ही उड़ना और बत्तख का बच्चा तैरना देख कर तैरना सीख जाता है, ठीक वही बात यहाँ थी। लोग दंग थे। दिन-रात मेला लगा रहता था। अतः, अन्त में बच्चों को भी माँ-बाप के पास भेजना ही पड़ा।

जेल में रहने पर भी औरतों की हिम्मत न टूटी और वैसा ही उत्साह बना रहा। वहाँ से लौटते ही फिर खेत पर आ डटीं।

फिर तो जमींदार साहब निराश होकर वहाँ से हट ही गए। यहाँ तक कि कई वर्षों तक लगान वसूल करने की भी उन्हें हिम्मत न रही! वह वहाँ आने की हिम्मत कर ही न सके! इसी बीच मैंने वहाँ जाकर देखा और सीताराम के नेतृत्व में उन स्त्रियों के दल से बातें भी कीं।

जमींदार की कचहरी ही किसान सभा का आश्रम बन गई थी। उसी पर लाल झण्डा उड़ रहा था।

उस समय गाँव का ही एक आदमी जमींदार का अमला था। इस आन्दोलन से दब कर वह भी किसानों के साथ हो गया था।

अब सुना है, कई साल के बाद वह फिर अपनी पुरानी चाल चलने लगा है; धीरे-धीरे किसानों को फोड़ रहा है। इधर स्वच्छन्द होकर किसानों ने ऊख वगैरह की खेती की। एक-दो ने कुछ पैसे भी बचाए थे। बस, अब उस अमले के साथी बन उन पर सनक सवार है कि सभी जमीन हम लोग ही जमींदार से लिखवा लें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और जोतें। ठीक है, 'घर फूटे गँवार लूटे।' जमींदार तो यह चाहता ही है।

मगर यह होने न पाएगा। पुराने दिन सदा के लिए चले गए, यह याद रहे!

(4)

गया जिले के टेकारी थाने में सांढ़ा मौजा है। उसके जमींदार अमावां-टेकारी के राजा श्री हरिहरप्रसाद नारायण सिंह हैं।

उस गाँव में किसान सभा के सबसे जबर्दस्त कार्यकर्ता ब्रह्मचारी रंगनाथ जी हैं। वे गठीले जवान, बिलकुल नई उम्र के, निडर आदमी हैं। लाठी-वाठी से जरा भी नहीं डरते। हिम्मत काफी रखते हैं। अब तक कई बार जेल जा चुके हैं—सो भी किसानों की ही लड़ाई में। कांग्रेस से उनका कोई ताल्लुक नहीं रहा है। जहाँ किसानों का संघर्ष छिड़ा वहीं जा डटे। सौभाग्य से उनकी बहन भी उन जैसी ही हिम्मत वाली हैं।

सांढ़ा गाँव तो बड़ा है। मगर उजड़ा-जैसा ही प्रतीत होता है। जमींदारी ऐसी जोंक और ऐसी पिशाची है कि किसानों का रक्त बूँद-बूँद करके चूस लेती है और उन्हें मरणासन्न छोड़ देती है। जमींदारों के अमले प्लेग के कीटाणुओं की तरह जहाँ पहुँचे कि उसे उजाड़ छोड़ा। इनके नाम पर किसानों का कलेजा काँपता है।

सांढ़ा में हजारों बीघा जमीन नीलाम होकर किसानों के हाथ से निकल चुकी थी। मगर जमींदार आखिर क्या करता? जमीन तो पन्हाई गाय नहीं कि चट दुह ले। वह रुपया-पैसा या चावल-गेहूँ भी नहीं कि नीलाम करके कहीं उठा ले जाए। वह तो नीलाम होने के बाद भी जहाँ की तहाँ पड़ी रहती है। वह किसान को छोड़ना नहीं चाहती—छोड़ती नहीं। असल में उसी की जो ठहरी! फिर कहाँ जाए कैसे?

इसीलिए तो अब किसान सभा के प्रताप से किसानों ने यह बात समझ ली है। उन्होंने जमींदारों से कहना भी शुरू कर दिया है कि जब तक जमीन को आप उठा नहीं ले जाते, जब तक वह जहाँ की तहाँ पड़ी रहती है, तब तक हम उसे जोतना-बोना न छोड़ेंगे चाहे कागजी नीलामी और दखल-दिहानी हजार हो जाए। आखिर जमीन रहते भी भूखों क्यों मरें? जाड़े में क्यों ठिठुरें और दवा के बिना मौत के मुख में क्यों चले जाएँ?

कुछ लोग कहने लगे हैं कि किसान ज्यादती करते हैं। वे कानून नहीं मानते। मगर ज्यादती जो जमींदार और हाकिम करते हैं। वे चाहते तो हैं कि खेत नीलाम करवा कर उसके मालिक बन जाएँ, मगर भूख, बीमारी, जाड़ा, शर्म, आदि किसानों के पास ही छोड़ देते हैं! यह कैसे होगा?

आखिर इन भूख, बीमारी आदि के लिए कोई कानून है? क्या ये किसी कानून को मानते हैं? यदि नहीं, तो किसान बेचारा क्या करे? उसे तो यही भूख, रोग आदि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मजबूर करते हैं कि या तो वह खेत जोतें या चोरी-डकैती करे। मगर चोरी-डकैती की तो हिम्मत उसे तब तक होती नहीं जब तक जमीन पड़ी है। हाँ, वह चली जाए तो चोरी-डकैती भी करनी ही पड़ेगी। लाचारी जो ठहरी।

यह भी तो ताज्जुब ही है न, कि चोर-बदमाशों को पक्के मकानों में रखकर सरकार खुद खाना, कपड़ा और दवा देती है? मगर गेहूँ, बासमती, दूध, घी, पैदा करके गैरों को लुटाने वाले किसान भूखों मरते हैं और सरकार को जरा भी फिक्र नहीं! क्या इसका यह तात्पर्य नहीं कि सरकार अप्रत्यक्ष रूप से किसानों तथा गरीबों से इशारा करती है कि यदि जीविका का उपाय न हो, तो चोरी-डकैती करो?

सरकार और जमींदार यह क्यों नहीं करते कि जमीन के साथ ही किसान परिवार की भूख, बीमारी, शर्म, जाड़ा आदि भी नीलाम करवा दें? तब कोई दिक्कत न होगी। फलतः बकाश्त जमीन का झमेला खड़ा ही न होगा।

इसलिए सांढ़ा की जमीन भी उन्हीं किसानों के पास पड़ी थी। उसे वे ही जोतते थे। मगर तरह-तरह से तंग किए जाते थे। कभी पैदावार में से सिर्फ चौथाई उन्हें देकर तीन भाग जमींदार ले लेता, लेकिन उस चौथाई से तो खेती का खर्च भी सधना असम्भव था। कभी प्रति बीघा दो-चार रुपए पहले ही लेकर उन्हें खेत दिया जाता, बाद में पैदावार में से भी आधा या दो-तिहाई लिया जाता! कभी पूरे खेत का लगान इतना ज्यादा बाँध दिया जाता कि उसे चुकाना किसान के लिए असम्भव हो जाता। सरकार मौजूद! उसकी सर्वशक्तिशालिनी पुलिस मौजूद! अमन और कानून के ठेकेदार भी मौजूद! मगर कोई देखने वाला नहीं कि यह लूट और अन्धेरखाता क्यों हो रहा है! जमींदार किस तमीज और किस अक्ल से ऐसा कर रहा है!

जमींदार के दिमाग का भी दिवाला ही निकला समझिए। नहीं तो वह खामख्वाह सोचता कि जब थोड़ा-सा लगान रहने पर किसान चुकता न कर सके और अन्त में जमीन नीलाम हो गई—यह भी नहीं कि रुपए छिपा कर उन्होंने महल बनवाए, तवायफें नचवाईं या रासरंग किए—तो फिर यह कमरतोड़ खूनी लगान वे कैसे चुका सकेंगे और जिन्दा भी कैसे रहेंगे? यों तो जमींदार, उसके हिमायती, साथी और वकील तथा सरकार का दावा है कि वे सभी बड़े ही दिमागदार हैं। मगर दिमाग के दिवाले का इससे बड़ा प्रमाण और क्या हो सकता है?

और तो और। सुनते हैं कि कोई सर्वशक्तिमान भगवान है। वह दीनबन्धु और दयालु भी है। तो क्या वह भी सोया है? या कि मर गया? या जमींदारों का घूस उसने भी खा लिया? नहीं तो ऐसा होने क्यों देता? क्या जमींदारों और पुलिस से वह भी डरता है? तो क्या ये किसान दीन-दुखिया और दया के पात्र नहीं हैं? क्या भगवान चाहता है कि ये लोग भी उसे हलुवा का भोग लगाएँ तब ही इनकी सुनेगा? मगर इन्हें हलुवा कहाँ मिलेगा? यहाँ तो सत्तू भी मयस्सर नहीं!

जमींदार और सरकार दोनों ही पानी पी-पीकर कोसा करते हैं केवल किसान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सभा वालों को! वे कहते हैं कि किसानों में क्रान्ति का भाव ये लोग ही भर रहे हैं, शान्ति एवं कानून भंग करने का पाठ उन्हें ये ही पढ़ाते हैं, मगर जमींदारों और उनके नौकरों की—उनके मैनेजरों, सर्किल अफसरों, तहसीलदारों, बराहिलों की—ऊपर लिखी जल्लादाना हरकतें ही असल में क्रान्ति और कानून तोड़ने की प्रवृत्ति के लिए क्षेत्र तैयार करती हैं! मरता क्या न करता? 'अतिशय रगड़ करै जो कोई, अनल प्रकट चन्दन ते होई।' सूखी घास और आग एक जगह रख देना और फिर उम्मीद करना कि आग न जले, सबसे बड़ी नादानी है।

क्रान्ति की आग भूखे पेट और नंगे तन से पैदा होती है। पेट की ज्वाला पेट और शरीर को जलाने के बाद संसार को जला कर ही दम लेती है। दुनिया का इतिहास बतलाता है। आप पूर्वोक्त हृदयहीनता और शैतानियतें बन्द कीजिए और देखिए कि फिर भी क्रान्ति की बात कितने किसान करते हैं। भूख संसार में सबसे बड़ी है, यहाँ तक कि भगवान से भी। भगवान से मिलने और बैकुंठ जाने के लिए कोई चोरी नहीं करता। मगर भूख के लिए सभी करते हैं। गुरु जी महाराज चिल्लाते रहें कि—बच्चा, चोरी करो तो भगवान मिलेंगे। फिर भी चेले एक न सुनेंगे। मगर चोरी का उपदेश किसी भी भुक्खड़ को नहीं देना पड़ता!

लेकिन किसान सभा का जमाना आया देख, जमींदार ने उस तरह भी जमीन देने से इनकार कर दिया। एक बार ले लेने के बाद किसान दावेदार हो जाएँगे और छोड़ेंगे नहीं—यह भय उसे भूत की तरह सताने लगा। जमीन से स्वयं कुछ पैदा कर सकता नहीं और किसान को देने में यह दिक्कत! अजीब पहेली थी। पाही किसान को दी जाए तो ठीक। मगर जो किसान सभा देही किसानों को सजग और संगठित कर सकती है, वह क्या उन्हें नहीं कर सकती? तब? फिर इस झमेले से क्या फायदा?

मगर जमींदार यह सोचे तब न! उसकी तो बुद्धि ही मारी जा चुकी है। वह आँखों से देखता है कि धड़ाधड़ किसान संगठित हो रहे हैं। फिर भी वह वही मुंशी जी वाला हिसाब लगाए जा रहा है—हालाँकि मुंशीजी की ही तरह बहुत जल्द उसे कहना पड़ेगा कि 'नापेजोखे थाहे, लड़के डूबे काहे?' मगर ऐसा कौन पाही किसान था जो बला में पड़े? 'जहाँ साँप का बिल वहाँ पूत का सिराहना?' हजारों किसानों के बीच बाहर का आदमी जाकर किसी प्रकार खेती कर पाएगा? किसान लोग मुट्ठी-मुट्ठी करके नोच न लेंगे? यह बड़ा सवाल था। इसलिए सोचा गया, पहले जमींदार की ओर से उसमें खेती की जाए और कुछ दिनों के बाद सांढ़ा वाले जब ठण्डे पड़ जाएँ तो बाहरियों को वह जमीन दी जाए।

आषाढ़ का महीना था। जमींदार के दलालों और अमलों ने सोचा कि खेत जोता जाए। मगर उसके पास इतने हल-बैल कहाँ? और, पास वाले किसान तो हल देंगे नहीं! किसान सभा का जमाना ही तो ठहरा! पहले की बात होती तो हरी, बेगारी, आदि से काम चल जाता। इसलिए बहुत दूर से बैलगाड़ियों पर लाद कर हल लाए गए।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बैल भी आए। पुलिस को पहले ही खबर दे दी गई थी। गाँव वाले अस्सी प्रमुख लोगों पर दफा 144 की नोटिस भी तामील कर दी गई थी कि खेत के नजदीक न जाएँ!

इधर हमारे किसानकर्मी पं. यदुनन्दन शर्मा भी तैयार थे। सांढ़ा जाकर गाँव के स्त्री-पुरुष सभी किसानों से बातें करके उन्हें ठीक कर आए थे। औरतें तैयार थीं और कहती थीं कि मर्द खेतों पर न जाएँ। आखिर सीधी लड़ाई तो थी ही। सत्याग्रह के नाम पर यश और वाहवाही थोड़े ही लूटनी थी। सोचा गया—किसान जेल क्यों जाएँ; वे बाहर ही रहें और घर-गृहस्थी सँभालें।

उधर शर्मा जी को ही गिरफ्तार करने के लिए भी पुलिस तुली बैठी थी। मगर वह तो चुपके से रात में बीसियों मील साइकिल पर चल कर वहाँ जाते और काम करके भाग आते। पुलिस भी हैरान थी। कोई ऐसा वारंट तो था नहीं कि जहाँ पाए वहीं पकड़ लें। सांढ़ा में ही रोक थी और वहाँ उन्हें वह न देख पाती थी।

खैर, उधर मर्दों की बुलाहट तो मजिस्ट्रेट साहब ने उस नोटिस के सम्बन्ध में कचहरी में की, और इधर बैलों के झुण्ड के साथ बैलगाड़ियों पर लदे-लदाए हल वगैरह लेकर जमींदार की यम-सेना ठीक उसी समय सांढ़ा पहुँच गई! पहले ही से सब ठीक-ठाक था।

पुलिस के कई दरोगा, इंस्पेक्टर, कांस्टेबुलों का दल और सैकड़ों चौकीदार, दफादार भी साथ ही जा धमके। आखिर जमींदार की खेती करवानी जो थी। भलेमानसों को यह भी तमीज नहीं कि इतनी तैयारी से खेती नहीं की जा सकती। इसमें तो 'नौ की लकड़ी, नब्बे खर्च' की बात थी। और रोज-रोज यह यम-सेना और ये वानर-भालू मिलेंगे भी तो नहीं। तब क्या होगा? और ये जाएँगे भी कहाँ-कहाँ? पुराना जमाना भी नहीं कि किसान दब जाएँगे, डर जाएँगे। यह तो यदुनन्दन की गया में उनका और उनकी—हमारी—सभा का जमाना है।

अन्त में हुआ भी ऐसा ही और 'नदिया नीचे गई, मगर दादा को डुबा कर।' जमींदार का और पुलिस का भी गर्व चूर होना था! और कुछ बात न थी।

हाँ, तो पुलिस की सेना ने खेत को चारों ओर से घेर लिया और बीच में जमींदार के भाड़े वाले हल चलने लगे। वे लोग समझते थे कि मर्द लोग नोटिस के डर से कोई बाधा न डालेंगे। वे यहाँ हैं भी नहीं। जो हैं भी, वे पुलिस की तैयारी देख कर हिम्मत न करेंगे। चारों ओर सिर्फ हजारों तमाशबीन खड़े थे। नई चीज और पहले-पहल लड़ाई इसी प्रकार की थी। इसलिए कौतूहल भी था।

इतने में ही गाँव से औरतों का एक झुण्ड—याद रहे बूढ़ी, जवान, सभी प्रकार की ब्राह्मण औरतें थी—आता दीखा और यह आया, वह आया, अब पहुँचा, तब पहुँचा करते-करते धड़ाम से उसी खेत पर आ ही तो गया! औरतों ने न कुछ सोचा, न विचारा। वे सीधे

सांढ़ा—टिकारी के पास गया सम्पादक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पुलिस के घेरे को फाड़ कर हलों के पास चली गईं और उनके सामने लेट गईं।

फिर, हल चलें तो कैसे? हल बन्द थे। और उसी के साथ पुलिस और जमींदार के आदमियों की बोलती भी बन्द थी। सभी हक्के-बक्के थे। कुछ सूझता न था। उन्होंने स्वप्न में भी न सोचा था कि ऐसा होगा और साड़ी एवं चूड़ी वालियों के सामने धोती तथा मूँछ वालों को झुकना होगा।

फिर थोड़ी देर बाद राय-सलाह करके पुलिस ने उपाय सोचा और दूसरे खेत को जाकर मजबूती से घेर लिया। सभी पुलिस वाले एक-दूसरे की लम्बी बाँह पकड़े हुए खेत के चारों ओर छेंक कर खड़े हो गए ताकि औरतें उसके भीतर न जा सकें। मगर हल तो वहाँ था नहीं और औरतें उसे जाने देती न थीं। इसलिए एक-दो पुलिस अफसरों ने कुछ औरतों से मीठी-मीठी बातें शुरू कर दीं। इस प्रकार उन्हें फँसा लिया। कहने लगे—तुम लोग रईस घरों की बहू-बेटियाँ हो, यह काम ठीक नहीं, जेल जाना पड़ेगा, आदि-आदि। इसी बीच सभी हल पुलिस के घेरे में जाकर चलने लगे। तब एक औरत ने पुकार का बाकियों से कहा—यहाँ हमें बातों के धोखे में डाल कर, देखो, वह खेत जोता जा रहा है! चलो-चलो, नहीं तो सब खत्म हुआ!

बस, फिर क्या था? सब की सब दौड़ पड़ीं और चण्डी की तरह पुलिस की बाँहों को मरोड़ कर अलग हटाती हुई हल के सामने जा जमीं। फिर तो न सिर्फ हल चलना ही बन्द हुआ, बल्कि हलवाहे और जमींदार के आदमी भी सब कुछ छोड़छाड़ कर भाग गए—हालाँकि उन्हें पुलिस ललकारती ही रही।

इस पर पुलिस काफी बेवकूफ बनी। रंज होकर पुलिसवालों ने जमींदार के कारपरदाजों से यहाँ तक कह दिया कि जब तुम्हीं लोग भागते हो और कुछ करने को तैयार नहीं, तो हम नाहक क्यों मरें? बाद में वे अपना-सा मुँह लेकर चलने की तैयारी करने लगे।

मगर यह काम भी आसान न था। जिस बस (लौरी) में लदकर वे लोग सदलबल आए थे, जब लौटने के लिए उसमें बैठने लगे तो औरतें उस पर जा चढ़ीं और कहने लगीं—हमने कानून तोड़ा है इसलिए हमें जेल ले चलिए! यों ही क्यों लौटे जाते हैं?

अब तो आफत थी! जो औरतें भीतर न जा सकीं, वे बस के बाहर ही उस पर लटक गईं। पुलिसवाले हैरान थे। कहाँ तो आतंक फैलाने और जमींदार का खेत जुतवाने आए थे और गिरफ्तारी की धमकी देते थे, और कहाँ अब दुम दबा कर यदि भागते हैं तो यह भी असम्भव! औरतें खुद जेल जाना चाहती हैं! मगर वे ले जाने को रवादार नहीं! मगर वे तो तुली बैठी हैं, और बिना ले गए गुजर नहीं! लौरी चल जो नहीं सकती।

कोई रास्ता सूझता न था। आखिर बड़ी दिक्कत से गाँव वालों ने समझा-बुझाकर रोका! तब कहीं 'रोजा को आए, नमाज गले पड़ी' से जान बची और रवाना हो सके।

यह सारी दास्तान जब मेरे पास पहुँची, तो मेरा कलेजा बाँसों उछल पड़ा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मैंने माना कि बिना मातृशक्ति के पड़े हमारी और किसानों की जीत नहीं हो सकती।

याद रहे कि कांग्रेसी लड़ाई में जिस प्रकार पढ़ी-लिखी औरतें उपदेश और गर्म लेक्चर सुन कर थोड़ी बहुत कूदी थीं, सो बात यहाँ न थी। यहाँ तो अपनी रोटी का सवाल उन्हें खुद-ब-खुद हल करने की सूझी। उन्होंने यह भी स्पष्ट देखा कि मर्दों से यह काम होने का नहीं, इसी से इसमें कूदीं। इसलिए ऐसी मुस्तैदी थी—क्योंकि जीवन-मरण का प्रश्न था!

इसके बाद तो मजिस्ट्रेट, पुलिस और जमींदार की आँखों की पट्टी खुली। उन्होंने समझा कि यह मसला ऐसा आसान नहीं, जैसा कि पहले समझते थे। यह तो बहुत ही पेचीदा है।

इसलिए सुलह-सपाटे की बात शुरू हुई। मजिस्ट्रेट साहब ने किसानों से कहा कि यदि आप लोग तैयार हो जाएँ तो समझौता करवा दिया जाए। किसान तो तैयार थे ही। मगर शर्मा जी से भी उन्होंने पूछ लिया और उनके 'हाँ' कहने पर वे लोग सुलह के लिए तैयारी की बात कह आए।

अब बात चली कि किस आधार पर सुलह-सलाहियत हो। सोच-साच कर यह बात निकाली गई कि फी किसान केवल एक बीघा जमीन दी जाए। किसानों ने इसे भी मान लिया, हालाँकि एक बीघे से एक आदमी की साल-भर गुजर असम्भव थी। फलतः उन्होंने यही कहा कि जमीन जरा अच्छी रहे तो शायद किसी प्रकार काम चले। लेकिन सुलह तो ठीक-ठीक तभी होती है जब दोनों दल उसकी उपयोगिता के कायल हों। और यहाँ हालत यह थी कि अभी तक जमींदार इसका कायल न था। कुछ मजबूरी और कुछ मजिस्ट्रेट के दबाव से ही उस पर राजी हुआ था। मजिस्ट्रेट बेचारे भी अपनी हैरानी और सारा तूफान बचाने के लिए ही परेशान थे। इसलिए दूसरी तरफ बेमन की और 'आय फँसे' वाली बात थी। हमने यह सब जानते हुए भी किसानों को तैयार होने को कहा। इसका नतीजा भी अच्छा ही हुआ।

खैर, जमीन मिली सो तो मिली ही। हमें इससे अनुभव बहुत कुछ हुआ। इसके करते प्रारम्भिक दशा में घोर दमन की आग में जलने से बचा कर किसानों में हमने हिम्मत भी ला दी।

अब इस बात की जाँच शुरू हुई कि गाँव में कितने आदमी बिना जमीन और ज़ीविका के हैं। मगर यह काम भी जमींदार के उन्हीं अमलों को सौंपा गया जो न सिर्फ हृदयहीन और बेदर्द थे, बल्कि जिन्हें केवल किसानों को पीसने की आदत थी।

उन लोगों ने फिर वही मुंशी जी वाला हिसाब लगाकर रिपोर्ट तैयार की कि केवल पचास आदमी ही बिना जीविका के हैं, हालाँकि थे असल में उससे कई गुने। उसी के बल पर हाकिम ने भी सिर्फ पचास बीघे जमीन देने का निर्णय किया।

किसान घबराए। मगर शर्मा जी की और मेरी राय से मान गए। सिर्फ यही चाहा कि खैर, पचास बीघे अच्छी जमीन तो मिले। मगर वह भी नहीं होने को था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जमींदार ने सबसे खराब जमीन चुनी और उसे ही देने को कहा। दूसरी जमीनों के बारे में न जाने क्या-क्या दिक्कतें बता डालीं और मजिस्ट्रेट ने मान लिया। खैर, पचास बीघे भी एक जगह हो तो खूब परिश्रम करके खेती हो। इसलिए अन्ततः उसे भी किसानों ने मान लिया।

मगर जब हजार टुकड़ों में पचास बीघे पूरे करने की बन्दिश की गई तब मामला बेढंगा हुआ। और, औरतें बिगड़ उठीं। उन्होंने साफ कह दिया—मर्द हट जाएँ, हम सभी जमीन लेकर ही दम लेंगी?

अब तो गजब हुआ। मजिस्ट्रेट को भी मालूम हो गया। मर्द तैयार भी थे, तो औरतें सुनने को रवादार नहीं! मेरे पास खबर पहुँची। मैंने कहा कि काम बिगड़ा। मैंने जाकर उन्हें समझाना चाहा। मैं ताड़ गया कि जमींदार किसी प्रकार चालबाजी करके किसानों के माथे सुलह से भाग जाने का दोष थोप-थाप कर मजिस्ट्रेट को भड़काना और अपना काम बनाना चाहता है।

मगर पुलिस इतनी चौकन्नी थी कि मेरा जाना असम्भव था। मेरे खिलाफ 144 की नोटिस तो थी ही और मैं उसे तोड़ने को तैयार न था। फलतः शर्मा जी को खबर भेजी और उन्होंने चुपके से कुछ लोगों को सांढ़ा से बहुत दूर मखदूमपुर बुलाया। मैं भी रात में चुपके से वहाँ जाकर एक सुनसान मैदान में उन्हें समझा आया कि वे हर्गिज इनकार न करें, औरतों को भी समझा दें कि ऐसा करने में खतरा है।

मजिस्ट्रेट तो समझते थे कि किसान अब न मानेंगे। मगर उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब किसानों ने जाकर उनके सामने स्वीकार कर लिया कि इतने पर भी वे तैयार हैं। बस, इतना होना था कि पासा पलटा। अब तो मजिस्ट्रेट के दिल पर पूरा असर हो गया कि किसान और उनके नेता जरूर झगड़ा बचाना चाहते हैं, जमींदार ही झगड़ा लगाना और बढ़ाना चाहता है; किसानों और किसान लीडरों पर झगड़े का इल्जाम गलत है। इसके बाद उसने निश्चय कर लिया कि सबसे अच्छी जमीन ही दिलवाई जाए। सो भी एक ही जगह। हुआ भी यही।

इतना ही नहीं। उसके करते, सांढ़ा के सम्बन्ध में मजिस्ट्रेटों का कुछ ऐसा रुख हो गया कि जो ही आया किसानों का खयाल बराबर करता रहा।

फलतः उसके बाद जब पचास बीघे के अलावा 16 बीघे ऊख पर किसानों का दावा हुआ और जमींदार ने समझौते के बल पर ही उन्हें बेदखल करना चाहा, तो पुलिस और मजिस्ट्रेट के अच्छे रुख के फलस्वरूप किसान जीत गए क्योंकि ऊख पर किसानों का ही अधिकार मजिस्ट्रेट ने बता दिया। फिर तो धीरे-धीरे और जमीनों पर भी किसानों का दावा हो गया और वे जमीनें भी उनके कब्जे में ही रह गईं।

आज तो सांढ़ा की सब जमीन फिर किसान ही जोतते-बोते हैं। जमींदार के बराहिल ने जो पचास बीघे अपने नाम से पहले से ही लिखवा ली थी, उसे भी छोड़ कर वह भाग गया और किसानों ने उस पर दखल कर लिया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सुलह के बारे में मेरा एक सिद्धान्त रहा है और उससे किसानों को अन्त में फायदा ही हुआ है। सुलह तो हम करते हैं अपनी कमजोरी के करते दाँवपेंच से ही। और जब एक बार हमने उसके लिए वचन दे दिया, तो फिर अन्त तक भागना नहीं चाहिए। उसमें डटना चाहिए। बात कहें तो खूब नीचे-ऊपर सोच कर और एक बार जब कह दी तो चाहे जान जाए, मगर उस पर अन्त तक डटे रहें। इसका प्रभाव दूसरों पर और अन्ततोगत्वा सरकारी हाकिमों पर भी पड़ता है, जैसा कि सांढ़ा में ही देखा गया है। फलस्वरूप हमारा पक्ष हर प्रकार से दृढ़ हो जाता है। इससे हममें कमजोरी तो कभी आई नहीं है। यह दूसरी बात है कि हमारी दिक्कतें बढ़ी हैं। मगर जब हम काफी बलवान न थे, तभी तो सुलह की बात मानी। फिर तो दिक्कतें जरूरी थीं।

हाँ, अब हम बलवान हो गए और सुलह में आम तौर से न पड़ेंगे, यह बात दूसरी है। मगर जिस दशा में हमने सुलह की बात मानी थी, उसमें वही ठीक था।

मैं जब सन् 1939 ई. में सांढ़ा में गया, तो यह जान कर बड़ी खुशी हुई कि किसान खूब मुस्तैद हैं। वे खुश भी हैं। प्रायः ग्यारह सौ बीघे जमीन में राजा अमावां-टेकारी की बँटाई से करीब एक हजार मन धान उस साल मिला था, मुझे ऐसा बताया गया। यदि किसानों से लड़ते नहीं तो इससे कहीं ज्यादा उन्हें बिना तरद्दुद मिला करता! मगर जमींदारी की ऐंठ भी तो ठहरी। चलो, अच्छा ही हुआ।

(5)

अनुवां नाम से प्रसिद्ध एक बस्ती गया जिले के अरबल थाने में है। उस गाँव की जमींदारी कुछ ही दिन पहले पुराण नामक गाँव के एक सज्जन ने खरीदी है। ये हजरत नए जमींदार बने हैं। पहले इनकी हालत अच्छी न थी। मगर जैसे-तैसे रुपया जमा करके अब चलते-पुर्जे जमींदार बन गए। कहते हैं कि नया मुसलमान बहुत ज्यादा नमाज पढ़ता है। वही हालत इनकी है। जमींदारी का नया रंग इन पर चढ़ा है, इसलिए दिन-रात इसी नशे में चूर रहते और किसानों को चैन नहीं लेने देते।

अनुवां के किसानों की बात तो कहिए मत। वे लोग जाति के कोइरी हैं। मैंने अनुभव किया है, यह जाति गौ है। इतनी सीधी और दबने वाली कि कुछ पूछिए मत। मगर कसाई तो आखिर गाय को भी नहीं छोड़ता, वह तो उसका भी वध करता ही है।

ठीक ऐसा ही हुआ अनुवां वालों के साथ। वे क्या जानें रसीद किस चिड़िया का नाम है। वे लोग जैसे सीधे, वैसे ही परिश्रमी भी होते हैं। खून को पानी करके गई-गुजरी जमीन में भी साग-तरकारी वगैरह पैदा करते एवं जमींदार की सख्त से सख्त माँग और कड़े से कड़ा पावना भी चुका ही देते हैं, हालाँकि इसके करते स्त्री और बच्चों तक को कलेजा फाड़कर कमाना पड़ता है। लेकिन सब कुछ करने पर भी अनुवां वालों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की जमीन नीलाम होकर जमींदार की बकाश्त बन चुकी थी। जहाँ तक याद है, पहले ही जमींदार ने इसे बकाश्त बना लिया था। फिर भी वे ही किसान उसे जोतते थे।

जब पुराण वाले महाशय का जमाना आया, तो इन्होंने चाहा कि किसानों से सभी जमीन छीन लें क्योंकि इनके सिर तो किसान सभा और बकाश्त-संघर्ष के भय का भूत सवार था जो चैन से न रहने देता था। इसलिए धीरे-धीरे इन्होंने अपना विकराल रूप दिखाना शुरू किया। चाहा कि कल, बल, छल से उन गरीबों को बेदखल कर दें। एकाएक जोर-जुल्म करने में खतरा था कि कहीं तूफान खड़ा न हो जाए। बेचारे कोइरी गिड़गिड़ाए, हाथ-पाँव पड़े। मगर कौन सुनता है?

यदि बाघ भक्त हो तो खाए क्या? वह तो फलाहारी बन नहीं सकता! फिर तो मर ही जाएगा। ठीक यही बात जमींदारों की है। वे यदि ईमानदार बनें और जोर-जुल्म न करें तो धीरे-धीरे जमींदारी ही खत्म हो जाए।

यही तो उसकी भीतरी कमजोरी (inherent weekness) है कि बिना जुल्म के टिक नहीं सकती। अगर किसानों पर आतंक न जमाया जाए और तरह-तरह से वे दबा न रखें जाएँ तो एक दिन उभड़ जाएँ और लगान देना बन्द कर दें। नालिश करके वसूली में चाहे किसान भी भले ही तबाह हों, मगर जमींदार के लिए भी तो 'नौ की लकड़ी और नब्बे खर्च' की बात होती ही है। कचहरियों के नाजायज खर्च पूछिए नहीं। फलतः उसकी जमींदारी ही बिक जाए। इससे बचने के लिए जोर-जुल्म, गैर-कानूनी दबाव, और चार-चार पाँच-पाँच रुपए के नौकर रखकर उनके द्वारा किसानों की छाती पर कोदों दलते रहना जरूरी है। इसीलिए यह जमींदारी खत्म होने वाली चीज है। दुनिया से खत्म होकर अब केवल भारत में ही टिकी है। इंग्लैंड में भी है सही, मगर वहाँ तो उसका रूप ही दूसरा है।

किसान निराश्रय थे और सैकड़ों स्त्री, पुरुष, बच्चों के भूखों मरने की नौबत आई। क्या करें, कहाँ जाएँ, किसे पुकारें? भगवान भी बहरा हो गया मालूम पड़ता है!

ऐसा सोचते-सोचते उन लोगों ने सोचा कि चलें किसानों के नेता और किसान सभा के संचालक पं. यदुनन्दन शर्मा के पास; सुना है, वह सिर्फ गरीब-दुखियों के लिए ही मरते रहते हैं; उनको दूसरा काम है ही नहीं।

बस, वे लोग चल पड़े और शर्मा जी से मिल कर सबने अपनी राम कहानी सुनाई। शर्मा जी ने पूछा कि तुम्हारे मकान संगमर्मर या ईंट पत्थर के बने तो नहीं हैं? खपरैल से छाए गए भी शायद ही हों! उत्तर मिला—फूँस की झोंपड़ियाँ ही तो हैं।

तब उन्होंने कहा कि क्यों नहीं उन्हीं झोपड़ों को उठा कर अपने-अपने खेतों पर लगा लेते और वहीं पशु, मवेशी, बकरी, बर्तन वगैरह भी रख लेते? गाँव में नाहक पड़े रहने से न तो स्वर्ग ही मिलेगा और न खाना-पीना ही—जमीन तो मिलेगी कहाँ, उलटे छिन ही जाने को है। मगर खेतों पर झोंपड़े डाल कर रहने का सबसे बड़ा नतीजा यह होगा कि अन्धों तक को मानना पड़ जाएगा कि खेतों पर कब्जा तुम्हारा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ही है। यों तो दुनिया में अधिकार वाले और बड़े कहे जाने वाले आम तौर से आँख के अन्धे और कान के ही पक्के होते हैं, लेकिन पुलिस और हाकिम-हुक्काम तो खास करके ऐसे ही होते हैं। वे तो सुनी-सुनाई बातों पर दूर से ही विश्वास कर लेते हैं। किसान की तो उन तक पहुँच भी नहीं। इसलिए वे धनियों को ही सुनते हैं। मगर जब तुम्हारी झोंपड़ियाँ खेतों पर ही होंगी, तो आखिर पुलिस को जाकर देखना तो पड़ेगा ही। अगर फिर भी गलत रिपोर्ट दे, तो उसे ललकारा तो जा ही सकता है। इस प्रकार खेतों पर कब्जा साबित होने से कानूनन उनसे किसान हटाए नहीं जा सकते। बकाश्त जमीन की हालत ही ऐसी है।

किसानों के मन में यह बात बैठ गई और उन्होंने खेतों पर ही जा बसने का संकल्प खुशी-खुशी कर लिया।

उन्हें इससे आसानी भी होगी, ऐसा सोचा गया। सब बाल बच्चे वहीं रहेंगे, तो फसल की रखवाली भी अच्छी होगी। दौड़-दौड़ कर गाँव में जाने तथा व्यर्थ हैरान होने की नौबत भी न आएगी। शर्मा जी के उपदेश का उन पर पूरा प्रभाव पड़ा।

लेकिन यदि वे 'अशराफ' कहे जाने वाले लोग—ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि—होते, तो बहुत ननुनच करते और खेतों पर जाकर शायद ही बस सकते। उनकी शान में फर्क जो पड़ जाता। उनकी इज्जत जो बिगड़ जाती! इसे ही कहते हैं कि 'रस्सी तो जल गई, मगर ऐंठन बाकी ही है!' भूखो मरने की नौबत है! नंगे फिरें यह हालत है। फिर भी ऐंठ ज्यों की त्यों! लेकिन जमाना बदल गया। किसानी भी करें और झूठी शान भी रखें, यह बात अब चलने की नहीं।

शर्मा जी ने उन लोगों को यह भी समझा दिया कि इतने पर भी पैसे के बल से जमींदार दिक करना चाहेगा और तुम लोगों को जेल में ले जाने की कोशिश करेगा। समन, नोटिस और वारंट भी आ सकता है। मगर खबरदार, अपने खेत से हर्गिज न हटना। भुलावे में न पड़ना और कचहरी जाने की गलती न करना। पुलिस और हाकिमों से साफ कह देना—इन्हीं खेतों को जेल बना दीजिए। हम यही पड़े रहेंगे! भागेंगे नहीं। मगर दूसरी जेल में हम नहीं जा सकते। यह भी कह देना कि जब तक कि हमारे स्त्री, बच्चे, बूढ़े, बकरी, मवेशी वगैरह सभी उस दूसरी जेल नहीं पहुँचाए जाते, तब तक इन्हें यहीं छोड़ कर सिर्फ कुछ लोग उस जेल कदापि न जाएँगे। हाँ, यदि सबको ले चलने का इंतजाम करें, तो देखा जाएगा।

मगर जेल से लौटने के बाद फिर हमारे लिए जीविका का प्रबन्ध क्या होगा, यह अभी से पक्का-पक्का तय हो जाना चाहिए नहीं तो पीछे धोखा होगा और हम लोग लावारिस पशु की तरह छोड़ दिए जाएँगे। उस समय हम क्या करेंगे? पशु तो दूसरे के खेत में चर कर पेट भर लेगा। उस पर न तो दफा 379 का केस चलेगा और न 107, 108, 144 की नोटिस ही होगी। मगर हमारे लिए तो आफत है। जब सदा से जोते जाने वाले अपने खेत पर ही हल चलाने से जेल की नौबत है, तब

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गैरों के खेत के पास जाने पर तो शायद फाँसी ही होगी। अतः हमसे तो पशु ही अच्छे।

लेकिन यदि पुलिस वाले जोर-जुल्म करें और खामख्वाह पकड़ ले जाना चाहे, तो सभी बाल-बच्चों को एक-दूसरे को अच्छी तरह पकड़ कर पड़ जाना होगा और कहना होगा कि हम यों भेड़-बकरी की तरह चले न जाएँगे, सारी शक्ति लगा कर यही रुकेंगे। सौ आदमियों को ले जाने के लिए हजारों आदमी और सैकड़ों लौरियाँ चाहिए; सो भी यहाँ से देखें हमें कौन कैसे उठा ले जाता है! हमने तो तय कर लिया है कि न जाएँगे! जाइए, जो मन में आए कीजिए!

शर्मा जी ने कहा—अगर तुम लोगों ने मेरी ये बातें मान लीं और ऐसा ही निश्चय कर लिया, तो फिर तुम्हारे खेतों पर से तुम्हें कोई हटाने वाली ताकत इस दुनिया में नहीं है। जमींदार, सरकार, पुलिस, गुण्डे वगैरह सभी थक कर बैठा जाएँगे, यह ध्रुव सत्य है।

किसान लोग अनुवां लौट गए और शर्मा जी के उपदेश का उन्होंने अक्षरशः पालन किया। रातोरात घर-द्वार उजाड़ कर खेतों पर ही जा बसे। खेती-बारी का काम भी लगातार चलने लगा।

अचानक रात-भर में ही खेतों पर उन्हें आबाद देख सभी को आश्चर्य हुआ। इसका रहस्य कोई समझ न सका—गो जमींदार को घबराहट हुई। मगर करता ही आखिर क्या? फलतः, किसानों का काम चालू रहा।

उधर अन्धे कानून की अन्धी कार्यवाही भी जारी हुई और किसानों पर 144 की नोटिस आ ही तो गई। मगर बेकार! खेतों पर ही तो उनका घर था। फिर वे जाते कहाँ? न जाने किस अक्ल से ऐसी नोटिस जारी की गई! ऐसा करने वालों को पहले देख तो लेना था कि किसानों के घर कहाँ हैं!

फिर उन पर हुक्म उदूली का केस भी दफा 188 के अनुसार चलाया गया। मगर किसानों को उससे क्या मतलब? उनकी तो खेती चलती रही। कभी पुलिस का दल धर-पकड़ करने आया, तो कभी दरोगा साहब धमकाने आए। मगर परवाह किसे थी और सुनता कौन था?

जबर्दस्ती की नौबत देख, सभी किसान आपस में लिपट कर बैठ गए और पुलिस की सेना अवाक् थी! आखिर करती भी क्या? अतः वापस आ गई।

एक बार यों ही धक्का-मुक्की भी किसी कांस्टेबुल के साथ हो गई। वह बहुत शेखी बघारने और नवाबी जो करने लगा था! इस पर बलवे का केस भी उन गरीबों पर चला। पीछे दफा 108 का भी वार हुआ। मगर सब बेकार।

कहते हैं कि 'सौ वक्ताओं को एक चुप्पी साधने वाला हरा देता है।' ठीक अनुवां में भी जमींदार, सरकार और पुलिस की हजार कोशिशों को मुट्ठी-भर गरीब और निस्सहाय किसानों के दृढ़ संकल्प, उनकी धुन, आपसी एकता और निर्भीकता ने निष्फल कर दिया और किसी की एक न चली!

किसान लोग बीच-बीच में एक लीला भी करते थे। जमींदार तो मरा जा रहा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

था खर्च के भार और परेशानी से। उसका काम भी कुछ होता न था। नया धनी था। इसलिए रुपए की भी ममता उसे काफी थी। मगर किसानों का काम बेखटके चलता था। एक कौड़ी का भी खर्च न था। इसलिए जहाँ जमींदार पस्तहिम्मत था, वहाँ किसानों को हिम्मत थी। फलतः, कभी-कभी अपने खेतों की साग-तरकारी तोड़ कर अपने लड़कों के द्वारा उसी हाकिम के पास भेजवा देते, जिसके यहाँ इनका केस था। लड़के लोग जाते और चुपके से वहाँ साग-तरकारी आदि रखकर सिर्फ इतना ही सुना देते कि यह उसी खेत की है जिसके बारे में झगड़ा है और जिसके सम्बन्ध में जमींदार का दावा है कि उसका कब्जा है, न कि हमारा! मगर हम तो उन्हीं किसानों के बच्चे हैं!

इस प्रकार अपने कब्जे के विषय में वे जीता-जागता सबूत पेश कर आते। यह भी कह आते कि शक हो, तो चल कर देख लीजिए न!

इस तरह सबकुछ करके जमींदार, पुलिस और सरकार थक गई, मगर किसानों को टस से मस न कर सकी। कभी-कभी जो जोर-जबर्दस्ती की जाती, तो उसका विरोध हम लोग बाहर से भी करते। जब मामला बहुत दिनों तक यों ही टलता रहा, तो किसान सभा की ओर से गया के कलक्टर को लम्बा तार दिया गया कि किसानों का खेतों पर कब्जा है, जिसे कोई भी देख सकता है और जिससे इनकार नहीं किया जा सकता, फिर भी लगातार बहुत दिनों से उन्हें परेशान किया जा रहा है। यह चीज बहुत बुरी है। इसका नतीजा किसी के लिए भी अच्छा न होगा। बस, उसके बाद अधिकारियों ने देखा कि अब इस मामले को और टालना ठीक नहीं, शायद और भी गड़बड़ी हो। इसलिए उस समूची जमीन—एक सौ पन्द्रह बीघे पर—किसानों को कब्जा दे दिया गया!

जो लोग ऐसे संघर्षों में नहीं रहे या जिन्होंने इनका अनुभव नहीं किया है, उन्हें शायद विश्वास न हो। मगर बात तो पक्की है। किसी से छिपी नहीं है। कोई भी वहाँ जाकर जाँच सकता है।

(6)

कोपाखुर्द, या छोटा कोपा, नाम से पुकारा जाने वाला एक मौजा, पटना जिले के नौबतपुर थाने में है। जैसी कि उस इलाके की दशा है, वहाँ भी छोटे-छोटे जमींदार बसते हैं। उनकी हालत पहले चाहे अच्छी रही हो, मगर इस समय तो वे तबाह हैं। फिर भी, जमींदारी शान तो तो रहती ही है। यह नहीं कि किसानों से मिल-जुलकर रहें और व्यर्थ के झमेले में न फँसे। वैसे तो जमींदारों के विरुद्ध किसान सभा ने कोई संगठित आवाज अब तक नहीं उठाई—खास कर जब बिना खेती के उनका काम चल ही नहीं सकता। मगर जमाना ही कुछ ऐसा है। जब एक बार किसानों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में जागृति हो गई और जमीन सम्बन्धी अपना हक उन्होंने समझा, तो फिर वे यह देखने थोड़े ही जाते हैं कि खेतिहर जमींदार हैं या लगान वसूलन वाले पूरे बाबू।

विशेषतः जो किसान स्वयं भूखा है, वह दूसरे की भूख और गरीबी की परवाह कतई नहीं कर सकता। यह भी बात है कि कोपा के जमींदारों के विरुद्ध यद्यपि किसान सभा ने कोई काम नहीं किया था, तथापि किसान सभा को गाली देना उनका सनातन धर्म था। इसलिए स्वभावतः ही हमारे कार्यकर्ता उन लोगों से चिढ़ते जरूर थे। यह ठीक भी था। हम कुछ करें भी न, और आप हमें बदनाम करते जाएँ—यह कब तक चलने का?

बात हाल की ही है। इस मामले में किसानों को अन्ततोगत्वा सफलता तो नहीं मिली, यह बात ठीक है, मगर जिस तरह उन्होंने काम किया वह मार्के का है और उससे काफी शिक्षा मिलती है। और, अगर सफलता न मिली तो केवल इसलिए कि किसानों को लड़ाई की खुद जानकारी न होने और किसान सभा से मदद न लेने के कारण ही वे गुमराह हुए। उन्होंने बेवकूफी में आकर जिद भी कर ली और समझौता करने पर राजी नहीं हुए। वे समझते थे कि उनका पक्ष मजबूत है, फलतः जरूर जीतेंगे। इसीलिए गड़बड़ी हुई। अगर थोड़ी-सी दूरअंदेशी से वे लोग काम लेते, तो जमीन उन्हें मिल कर रहती। यह शिक्षा भी इस घटना से मिलती है। सिर्फ 25-30 बीघे जमीन का ही सवाल भी था!

हाँ, तो बात यह है कि छोटा कोपा में कुछ ग्वाले किसान गत सर्वे सेटलमेंट के पहले से ही बसते थे। इसीलिए सर्वे के समय उनके नाम से पचीस-तीस बीघा जमीन खतियान में दर्ज हो गई थी। उसके बाद भी वे कुछ समय वहाँ रहे। मगर पीछे वहाँ से कई जगह जा बसे। जमींदारों के अत्याचार को वे लोग बर्दाश्त न कर सके। छोटे जमींदार लोग तो ज्यादा दिक करते भी हैं। सो भी यदि पड़ोसी हों, तो जुल्म और भी बढ़ जाता है!

जैसा कि आज तबाही की हालत में भी उनका मिजाज आसमान पर चढ़ा मालूम होता है, उससे अन्दाज लगता है कि पहले खूब खुल कर खेलते होंगे। तब गरीब किसानों का कोई पुसाँहाल था नहीं, फिर खटका ही क्या था?

इसीलिए आए दिन घी, दूध, हरी, बेगारी आदि से ऊब कर भागने में ही उन गरीबों ने खैरियत समझी। किसान लोग ग्वाले ठहरे और आज की तरह पहले न तो उनकी यादव सभा ही थी और न उनके समाज में जागरण ही, जिससे किसान सभा के अभाव में उसी से कुछ कर सकते। सारांश, कोई त्राण न था। इसलिए घर-बार छोड़ कर भाग निकले और जहाँ-तहाँ जा बसे।

इधर जब बकाश्त की लड़ाई स्थान-स्थान पर शुरू हुई और किसानों को उसमें सफलता भी मिलने लगी, तो किसान संसार में स्वभावतः ही आशा का संचार हुआ कि अब जमीन मिलेगी। यही आशा उन गरीबों में भी जागी। फिर उन्होंने सर्वे की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

खतियान देखी। अब क्या था ? कुछ लोगों ने राय दी कि उस जमीन पर अगर जा बैठो, तो तुम लोगों का दखल हो जाए।

कसर यही रही कि राय देने वाले पूरे जानकार न थे। बिहटा-आश्रम पड़ोस में रहने पर भी, न जाने वहाँ मुझसे या मेरे आदमियों से पूछने भी क्यों न आए? यही नहीं। मुझे ताज्जुब है कि अन्त तक भी मैंने उनमें एक का भी चेहरा न देखा। हारते-हारते भी वे मेरे पास न आए। ऐसा अन्दाज है कि समझ तो उनमें कम थी ही, साथ ही उनकी जाति के लीडरों ने शायद उन्हें विश्वास दिला दिया था कि वहाँ मत जाओ, जमीन तो आसानी से हम ही दिला देंगे। कई घटनाओं से इसकी पुष्टि भी होती है। जातीय नेता लोग आजकल बोर्डों और कौंसिलों में जातीयता के नाम पर ही पहुँचना चाहते हैं और किसान सभा से इस बात में उन्हें खतरा मालूम होता है। इसीलिए, स्वभावतः उन्होंने ऐसी राय दी होगी।

जो कुछ भी हो। बात तय पाई गई और किसान लोगों ने उस जमीन पर दखल जमाने का निश्चय कर लिया। बसते थे तो 4-5 ही मील पर, मगर जमींदार और उसके आदमियों के सामने वहाँ जमना आसान न था। अगर लाठी और गिरोह लेकर जाते, तो पकड़े जाते और पुलिस फौरन उन्हें जेल में ठूँस देती। कब्जा भी सिद्ध न होता। बड़ी कठिनाई थी। कोई अक्ल सूझती न थी। मगर पीछे तो ऐसी सूझी कि जब मुझे मालूम हुआ, तो मैं भी दंग रह गया।

मैंने पहले-पहल वहीं लेनिन के इस कथन की सत्यता पाई कि हमें किसानों और जनता से अनेक बातें सीख कर औरों को सिखानी चाहिए और इसी प्रकार उनकी लड़ाई चलानी चाहिए।

उन्होंने खूब सोच-साच कर एक रास्ता बहुत अच्छा निकाला, जिससे जमींदार, पुलिस और अधिकारी भी दंग रह गए। सौभाग्य से उनकी वह जमीन कोपा से कुछ हट कर एकान्त में पड़ती थी, जहाँ रात में सुनसान रहता था—न कोई गाँव से आता, न जाता। उन्होंने सोचा कि एक ही रात में दखल का पूरा-पूरा प्रबन्ध और प्रमाण एकत्र कर देना चाहिए, दूसरे दिन तो मौका ही न लगेगा।

इसके लिए अँधेरी रात में, रातोरात वहाँ फूस के कुछ छप्पर, बैलों के खाने के लिए कुछ नादें, भूसा और नेवारी (पुआल) आदि, और एक कुआँ बन जाना जरूरी था। कुछ ही घंटों में ये सारी बातें हो जाएँ तो ठीक। मगर यह तो वैसे ही था, जैसे कि समुद्र को सोखना, या हिमालय को उठा लेना! वे लोग 4-5 मील के फासले पर रहते भी थे। अगर अपने घर पर हजार-दो हजार आदमी इसके लिए जमा करते, तो शोहरत हो जाती। फिर तो पुलिस शक करती और वहाँ जा पहुँचती। अनायास जमावड़ा देख कर खामख्वाह लोगों को शक होता ही। बात भी फूट जाती।

एक बहुत जरूरी बात और थी। नए छप्पर, नया कुआँ और बैलों के लिए खाने की नई नादें धोखा देतीं। पुलिस और हाकिम लोग खामख्वाह ताड़ जाते कि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ये तो फौरन बनी चीजें हैं। यदि ये लोग पहले से बसते रहते, तो सभी चीजें नई कैसे रहतीं? यह खतरा तो ऐसा था कि सब किए-कराए पर पानी ही फेर देता।

इसलिए मामूली दिमाग का काम न था कि इन सब कठिनाइयों का हल निकाले। मगर मैंने देखा है कि जब किसान अपना दिमाग किसी काम के लिए ठीक कर लेता है और उसमें आगा-पीछा नहीं रखता, तो न जाने कितने नए-नए रास्ते और उपाय उसके तूफानी दिमाग से बाहर आते रहते हैं। तब तो वह कमाल करता है। यही बात कोपा में भी हुई। किसानों ने खूब सोच-विचार कर इन सभी दिक्कतों को सुलझाते हुए एक सुन्दर रास्ता आखिर निकाल ही लिया।

उन किसानों ने तय कर लिया कि यहीं से पुराने छप्पर ज्यों के त्यों—उनके खम्भों वगैरह के साथ—उठा कर कोपा पहुँचाए और खड़े किए जाएँ। ऐसा भी किया जाए कि इन छप्परों पर जो कद्दू वगैरह की लत्तियाँ फैली हों, वे ज्यों की त्यों रहें। उनकी जड़ों के थल्ले ही खोद लिए जाएँ, तो ये लताएँ हरी-हरी ही वहाँ पहुँचा कर जमीन में छप्पर पर फैली ही गाड़ दी जाएँ। यदि कुआँ भी जरूरी है तो उसके लिए रातोरात खाँखर खोदा जाए। फिर पुरानी ईंटें यहाँ से ही ले जाकर उन्हीं से कुआँ तैयार कर डालें। पुआल की पुरानी ढेर जैसी की तैसी जमी-जमाई ही वहाँ पहुँचा दी जाए।

मगर यह काम पूरा करने के लिए तो कई हजार लोगों की फौज चाहिए जो हाथोहाथ लेकर चीजें पहुँचा दे और वहाँ भी पल मारते सब काम कर डाले।

इसलिए कोशिश करके प्रायः दो हजार लोगों को उस जगह तैयार कर दिया गया! उन्हें ठीक वक्त पर पहुँच कर काम में लग जाने का आदेश भी दे दिया गया। यदि घड़ी की सुई की तरह ठीक समय पर काम न हुआ तो सब किए-कराए पर पानी ही फिर जाएगा, इसलिए काफी मुस्तैदी के साथ सभी तैयारी की गई। ऐसा हिसाब लगा कर सब प्रबन्ध हुआ कि जरा भी कसर और किसी बात की कमी न रहने पाई!

फिर, निश्चित तारीख की रात में लोग जमा हो गए और हवा की तरह सभी चीजें कोपा में पहुँच गईं। पुरानी पलानी (छप्पर) कद्दू, कुम्हड़ा, नेनुआ, वगैरह की हरी या सूखी लताओं के साथ ही वहाँ पहुँचा दी गई। लताएँ जमीन में ज्यों की त्यों गाड़ दी गईं जिससे मालूम हो कि यहीं पर जमी थीं। पलानियों के छप्पर हू-ब-हू पुराने रहे, उनके खम्भे वगैरह भी। उन्हें ऐसे खड़ा किया गया कि पता ही न लगता था कि कहीं बाहर से आई हैं—वहीं बहुत पहले ही बनी थीं, ज्यों की त्यों पड़ी है, ऐसा ही मालूम होता था। कुएँ के लिए पानी के सोते तक, पल मारते गढ़ा खोद कर टूटी-फूटी और मैली-कुचैली पुरानी ईंटों से ही उसे बाँधकर तैयार कर दिया गया। मालूम होता था कि बहुत पुराना है। बैलों के लिए नादें बन गईं। बैल उन्हीं पर बँधे-बँधाए खाने भी लगे। भूसा जमा कर दिया गया। पुआल की ढेर हू-ब-हू पुरानी ही वहाँ लाकर रख दी गई।

खाना-पकाना शुरू हो गया। बर्तन-भाँडे धो-धा कर जगह ऐसी बना दी गई कि जैसे पुरानी हो। कहीं उपलों के ढेर जमा थे, तो कहीं बैलों के बाँधने की जगह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में उनके मूत्र और गोबर का ढेर देख कर कोई भी कह सकता था कि वे यहाँ बहुत दिनों से बाँधे जाते हैं। राख-वाख के काफी ढेर भी गढ़े में कर दिए गए। सारांश, कोई भी कसर नहीं रहने पाई। जहाँ तक सूझा, पूरी तैयारी कर दी गई।

जब कोपा वालों ने सुबह देखा कि वहाँ एक छोटा-सा टोला बसा है तो दौड़े-दौड़ाए तमाशा देखने आए। वहाँ तो थोड़े से ही लोग मिले। बाकी तो अपना काम करके अँधेरे में ही चलते बने थे। जो थे, वे अपनी घर-गिरस्ती के काम में लगे थे। जो ही देखता उसे ही पूछने की हिम्मत न होती क्योंकि बस्ती तो कुछ भी नई न मालूम होती थी। सभी चीजें मुद्दतों की साफ-साफ दीखती थीं। मगर कल बस्ती थी नहीं, और आज पुरानी बस्ती यहाँ हो गई! लोगों के ताज्जुब का ठिकाना न था!

अगर किसी ने पूछ भी दिया—कहाँ से आए हो और कैसे? तो हँस कर उत्तर मिलता था—सूझता नहीं है क्या? हम तो यहीं के पुराने बाशिन्दे हैं। आप लोग ही कहीं दूर-दराज के रहने वाले मालूम पड़ते हैं!

अजीब बात थी! वहीं के रहने वाले दूर-दराज के हो गए और दूर वाले वहाँ के! मगर चीज तो कुछ ऐसी ही थी। समाँ तो कुछ इसी ढंग का था।

जमींदारों को भी घबराहट हो गई। उन्होंने उन खेतों में हल चलते देख रोक-टोक भी शुरू की। मगर ग्वाले लोगों ने डाँट दिया—यह कह कर कि यदि सर्वे वाले हमारे खेतों पर रोक-टोक करेंगे तो ठीक न होगा।

चारों ओर शोहरत मची। जमींदार थाने पर गए। रुपए खर्चे गए। पुलिस भी फौरन पहुँची। मगर करती क्या? यह निराला दृश्य देख कर हैरत में थी। कुआँ, पलानी, वगैरह सभी पुरानी चीजें थीं।

पूछने पर किसानों ने कहा कि हम तो यहीं के पुराने बाशिन्दे हैं। सर्वे के समय से ही हम लोग यहाँ पड़े हैं। चुपचाप खेती करते आते हैं। यह है खेत की खतियान और उसका नक्शा जिसमें यह गाँव और हमारे खेत दर्ज हैं। अब जमींदार को नाहक जबर्दस्ती करने की सूझी है। वह हमें खेतों से बेदखल करना चाहता है, इसलिए जाल-फरेब कर रहा है। आखिर सर्वे के कागज तो गलत नहीं हो सकते। और क्या हम लोग पक्षी हैं कि रातोरात उड़ कर यहाँ आ गए हैं? अगर आए भी तो ये पुरानी पलानियाँ, पुराना कुआँ वगैरह कहाँ से उड़ कर आ गए? क्या जादू-मंतर के बल से कोई करामात हो गई? लोग पागलों की-सी बातें करते रहते हैं जो समझ में नहीं आतीं!

दारोगा साहब ने सभी कागज-पत्र देखे और पूछताछ भी की। उन्होंने देखा कि बातें तो सही हैं। उन्होंने चौकीदारी का सवाल किया कि तुम लोग चौकीदारी की रसीद लाओ।

बोले—यदि यहीं रहते हो तो चौकीदारी तो लगती ही होगी।

किसानों ने कहा—हम क्या जानें चौकीदारी-फौकीदारी? हमसे न तो कभी किसी ने चौकीदारी माँगी और न हमने दी। हम निहायत गरीब हैं। शायद ऐसा ही समझकर चौकीदारी हम पर नहीं लगी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दारोगा भी चुप हो गए। आखिर करते क्या? चौकीदारी सरपंच यदि चौकीदारी किसी से न वसूले, तो दोष किसका? बिना माँगे क्यों कोई देगा?

उस दिन तो पुलिस अपना-सा मुँह लेकर चली गई। मगर वह हैरान थी कि थाने के पास ही यह पुराना गाँव और हमें पता तक नहीं! चौकीदार भी नहीं बता सकता था। सचमुच कमाल की बात थी! सभी की अक्ल गुम! यह तो विचित्र सृष्टि थी! गोया दूसरे ब्रह्मा ने तैयार की! या कि स्वयं विश्वामित्र की ही यह रचना थी!

पुलिस की बदनामी भी थी कि उसकी जानकारी के बाहर यह टोला कैसे था। जमींदार को भी पूरी घबराहट थी—खासकर पुलिस के बैरंग लौट जाने और उसका रुख देखने से! उसने सोचा, जमीन तो हाथ से निकली। इसलिए उसने काफी रुपए खर्चे। जिसकी-जिसकी पूजा-प्रतिष्ठा से काम चलने वाला था, भरपूर की गई।

एक तरकीब सोची गई कि इन खेतों में नहर का पानी आता है और उसका महसूल बराबर देना पड़ता है। उसकी रसीद तो हमारे ही पास है। उन लोगों के पास तो है नहीं। यदि वे जोतते थे तो नहर की रसीद दिखाएँ और लगान देने की रसीद भी पेश करें। पुलिस के सामने यह दलील पेश की गई। साथ ही जो कुछ शिष्टाचार था, पूरा किया गया।

इधर किसान लोग तो फूले थे कि अब खेत तो हमारा हो ही गया, हमें कोई हटा नहीं सकता। इसलिए चुपचाप बैठे थे। न तो दौड़-धूप करते थे और न पैसा खर्च कर रहे थे। लोगों के समझाने पर भी उन्हें इसकी परवाह जरा भी न हुई! आखिर इस दुनिया में पैसे से बढ़ कर शक्तिमान कोई नहीं। पैसे से सब कुछ हो सकता है। मगर वे लोग पैसे की यह अपरम्पार महिमा समझ न सके। भोले-भाले ग्वाले ही तो ठहरे!

आखिरकार पुलिस और अधिकारियों की गहरी छान-बीन शुरू हुई। उधर जमींदारों ने घबराकर सुलह कर लेनी चाही क्योंकि उनका पक्ष कमजोर नजर आता था। किसानों को हमने खबर भी भेजवाई कि सुलह कर लें—क्योंकि हम तो उनकी कमजोरी जानते थे! मगर उन्होंने एक न सुनी।

निदान, अधिकारियों की छानबीन में उनसे कहा गया कि अगर खेत जोतते थे, लगान की रसीद पेश करो, क्योंकि यह जमीन तो बेलगान है नहीं। उन्होंने उत्तर दिया कि जमींदार लोग कभी रसीद देते ही नहीं। बात तो ठीक ही थी।

तब नहर की रसीद माँगी गई।

अब तो मामला बेढब था। लगातार इतने दिनों से नहर का पानी आता रहे, तो उसके महसूल की रसीद तो चाहिए ही। उसके बारे में यह तो कह नहीं सकते कि नहर वाले देते ही नहीं—ठीक जमींदार की तरह।

इसलिए किसान लोग घबराए और सहसा कोई उत्तर न दे सके। उधर जमींदारों ने नहर की रसीद पेश कर दी, जिससे पुलिस को विश्वास करने का मौका मिला कि जरूर जमींदार ही यह खेत जोतते-बोते हैं। किसानों ने पीछे इसका उत्तर देने का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विचार किया कि सोच-विचार कर कहेंगे। मगर पुलिस ने तो अपना हथकंडा पा लिया।

असल में किसानों ने नादानी की, जिससे सबकुछ किया-कराया चौपट हुआ। सुलह कर लेनी थी। मगर राजी न हुए। पहले भी, पूछताछ कर यह काम किया न था। यह भी भारी भूल थी। नहर के महसूल के बारे में ऐसा होता है कि बहुतेरे किसानों के खेतों का महसूल उन्हीं के देने पर भी जमींदार लोग अपने ही नाम से रसीद कटवा लेते हैं। मगर यह बात वे किसान समझते न थे, नहीं तो यही उत्तर देते। लेकिन यह उत्तर साधारणतः काफी नहीं समझा जाता और जमींदार का कब्जा सिद्ध हो जाता है, भले ही उन खेतों को जमींदार सपने में भी न जोतता रहा हो। ऐसे मौके अनेक आए हैं। पुलिस और हाकिम कागजी सबूतों पर पूरा यकीन करते हैं। इसी से जमींदार फायदा उठाते हैं।

कोपा में तो बात भी यही थी कि जमींदार ही असल में जोतते थे। मगर न भी जोतते रहते, तो भी नहर वाली रसीद ही काफी थी।

नतीजा यह हुआ कि पुलिस ने जमींदारों के पक्ष में ही खूब कस कर रिपोर्ट लिखी और किसानों को जबर्दस्ती करने वाला साबित किया। फलतः खेत मिलना तो दूर रहा, वे लोग गिरफ्तार हुए और उन पर मुकदमा चलने लगा। वे लोग अब कचहरी में खूब दौड़े, रुपए भी उन्होंने काफी खर्चे और परेशानी भी खूब ही उठाई। मगर अब होता क्या? 'समय चूकि पुनि का पछिताने' यही बात यदि पहले की जाती और वे लोग दूरअंदेशी से काम लेते, तो और ही बात होती।

अन्त में वे लोग हारे और उन्हें जेल की सजा भोगनी पड़ी।

मुझे इस बात की खास तकलीफ थी कि इतनी खूबी के साथ सब कुछ करके भी, वे लोग सफल न हो सके। खुद-ब-खुद रास्ता सोच निकालना, जिसे अंग्रेजी में initiative लेना कहते हैं, सो भी बहुत खूबी के साथ, मैं यही चीज किसानों में सर्वत्र देखना चाहता हूँ क्योंकि बिना इसके वे लोग स्वावलम्बी और विजयी न होंगे और नेता लोग उन्हें बराबर ठगते रहेंगे।

उन किसानों ने यह बात तो की, और खूब ही की। फिर भी हारे, इसी का दुःख मुझे सदा रहेगा।

लेकिन यदि आगे के लिए किसान इससे सीख जाएँ कि एक तो नाहक फूल जाना ठीक नहीं, दूसरे ऐसे मौके पर बिना किसान सभा से पूछे कुछ नहीं करना चाहिए, तो सन्तोष की बात होगी।

(7)

सहबाजपुर नाम का गाँव, नियामतपुर आश्रम के नजदीक ही बेला थाने, गया जिले,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में है। प्रधानतया वह क्षत्रियों की बस्ती है। जमींदार वही राजा अमावां-टेकारी हैं।

ये किसान पहले तो सम्पन्न थे। मगर अब तो गरीबी की मूर्ति बन गए हैं। न नैनीताल-शिमला की सैर करते रहे, न बड़ी-बड़ी पार्टियाँ दीं, न नाच-मुजरे और महफिलों में रुपए गँवाए और न ठाठ-बाट या साज-सामान में ही। कम से कम इस बात का सबूत तो है नहीं। बूढ़े लोगों के स्मरण में भी यह बात नहीं है, जिसके मानी हैं कि कम से कम साठ-सत्तर साल से उनमें कोई ऐसी बात न हुई। फिर गरीब हुए क्यों?

क्या जमींदार और उनके दोस्त इस बात पर कभी ठण्डे दिल से सोचने का कष्ट करते हैं? जिस प्रकार गैरों की कमाई से ऐश उड़ाने का हक वे लोग अपने लिए समझते हैं, क्या उसी प्रकार यह भी सोचते है कि उन किसानों को भी आदमीं की तरह जीने का हक है? अगर उन्हें लगान वसूलने का कानूनी हक है, तो किसानों को भी इनसान की तरह जिन्दा रहने का कानूनी और नैतिक—दोनों ही तरह का—हक है। क्या यह बात वे लोग मानते हैं? यदि मानते, तो उनकी निर्दयतापूर्ण लूट जारी न रहती। और, जो हृदयहीन हरकत उनके अफसरों ने सहबाजपुर में की, वह कभी न होने पाती!

उन्हें याद रखना चाहिए कि मनुष्य की तरह जीवनयापन करने का हक सभी कानूनी, नैतिक या लाठी के हकों से कहीं बड़ा है। मौका आने पर उन हकों को मिटा कर भी इसे कायम रखना जरूरी है क्योंकि उनका भी आधार यही है। यदि किसान जीवित ही न रहें, या हैवान बन जाएँ, तो फिर जमींदारों को कानूनी हक हासिल कैसे होगा? जो मुर्गी सोने के अंडे एक-एक करके बराबर देती रहती है, अगर लोभवश उसका पेट फाड़ दिया जाए, तो सभी अंडे गायब हो जाएँगे। क्या यह बात उन्हें याद है?

नहीं। यदि याद होती तो किसानों में यह हाहाकार न मचने पाता। हाँ, तो जमीन भी वहाँ की अच्छी और उपजाऊ नहीं है। ऊसर है। किसान लोग मर-जी कर कुछ पैदा करते थे, सही। मगर बहुत ज्यादा लगान चुकता करने के बाद गुजर के लिए कुछ भी बचता ही न था। वैसी जमीन का लगान तो रहना ही न चाहिए था। अगर होता भी, तो सिर्फ दो-चार आना बीघा।

नतीजा यह हुआ कि किसानों की जमींनें, सारी की सारी, लगान की डिग्री में नीलाम हो गईं! मगर ऐसी जमीनों को आखिर पूछे कौन? अगर अच्छी हों तो जमींदार उनमें अपनी खेती भी करवाएँ। परन्तु ऊसर लेकर क्या करें! ऊसर में तो सारा खर्च बेकार जाए और पता भी लगे कि किसान क्यों लगान न दे सके। दूसरे गाँव के किसान भी वह गले की फाँसी लेकर क्या करें? उस गाय को कौन खरीदे जो न ब्याई हो और न गाभिन होने के योग्य?

इसलिए मजबूरन उन्हीं किसानों के पास वे जमीनें रह गईं। वे जोतते-बोते थे। जमींदार फसल में ही बँटवारा कर लेता था और उसके अमले लोग जब चाहते, एक किसान से छीन कर दूसरे को दे देते थे! फलतः किसानों को जमींदार से ज्यादा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उसके अमलों की ही खुशामद करनी पड़ती थी।

मगर किसान आन्दोलन को देख कर जमींदार के आदमी चिहुँके। उन्होंने सोचा कि कानून की आँख में धूल झोंक कर और बेईमानी करके जो किसानों की जमीनें वे छीनते रहते हैं, वह अब न चलेगा। अब तो किसान डटने लगेंगे। अपना हिस्सा लेकर भी रसीद तो देते नहीं, यह बात सही है। इससे उनके कब्जे का कागजी सबूत तो है नहीं। मगर अगर वे छोड़ने से इनकार करें, तो मामला बेढब हो सकता है। इसलिए आफत आने के पूर्व ही उसका उपाय कर लिया जाए तो ठीक।

फिर तो सारा प्रोग्राम तय हो गया। उन्होंने सोच-साच कर सब तय किया। सोचा गया कि धान की फसल कटकर जब खलिहान में पहुँच जाए, तो एकाएक दावा ठोंक दिया जाए कि यह गल्ला जमींदार का है, उसके नजदीक कोई न जाए।

गाँव के ही कुछ लोगों को फोड़ कर जमींदार अपने नौकर और लठधर भी रखते हैं और उन्हीं के बल पर किसानों को सर करते रहते हैं। वही हिसाब यहाँ भी लगाया गया। ठीक ही है, हाथी को हाथी ही फँसाता है।

ठीक यही हुआ! जब समूची फसल काट कर किसानों ने खलिहान में जमा कर दी, तो राजा अमावां के लठधर दूत वहाँ जा डटे। उन्होंने किसानों को डाँट कर कहा—नजदीक न आओ! खबरदार यह तो मालिक (जमींदार) की फसल है! तुम्हारा इसमें क्या है?

बड़ी अजीब बात थी। किसान आश्चर्य में थे। दिन में जगे-जगाए स्वप्न कैसे होने लगा? वे मन ही मन कहते कि यह क्या बला हुई! हम तो बराबर जमींदार का हिस्सा, उसके अमलों की पूजा, नजर के साथ, चुका ही देते थे—फिर यह क्या बात हुई?

मगर पूछने पर उत्तर कौन दे? लठधर लोग तो सिर्फ लाठी की बात कह सकते थे!

अतः जमींदार की कचहरी—बेला—तक दौड़धूप हुई। मगर सब बेकार! किसी-किसी ने कहा—तुम लोगों को किसान सभा सूझी है! जाओ न, किसान सभा में? यहाँ क्यों आए हो? नियामतपुर आश्रम तो नजदीक ही है! अब क्यों नहीं वहाँ जाते? खबरदार, खेत पर गए तो दफा 188 और 107 की कार्यवाही हो जाएगी और बड़े घर (जेल) की हवा खानी होगी!

असल में पुलिस को भी सभी प्रकार से पहले ही तैयार कर लिया गया था। तब वह हमला हुआ।

लाचार किसान लोग पंडित यदुनन्दन शर्मा के पास आश्रम में गए और सब दुखड़ा सुनाया। शर्मा जी ने पूछा—डटोगे? बाल-बच्चों के साथ खलिहान में जा कर पड़ोगे? या कि झूठी राजपूती शान आकर खड़ी होगी और 'स्त्री कैसे पर्दे के बाहर जाए, बहू कैसे जाए, लड़की जवान है, वह कैसे जाए' आदि आगा-पीछा की बातें होंगी? साफ बोलो। यदि सारा गाँव परिवार के साथ घर-बार छोड़ कर खलिहान को

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ही घर बनाने और वहीं पशु, बकरी आदि रखने को तैयार हो, तो अभी जीत हो जाएगी। नहीं तो तैयार फसल जाएगी, खेत जाएगा और भूखों मरने की नौबत होगी। इतना ही नहीं। 'बुढ़िया के मरने का डर नहीं, मगर यम का रास्ता जो खुल जाएगा।' सहबाजपुर वाले हार जाएँ तो हार जाएँ। हमें उतनी परवाह नहीं। मगर इसके चलते जमींदार की जो हिम्मत बढ़ेगी, उसका भयंकर दुष्परिणाम, दूसरे किसानों को भी भोगना होगा। फिर तो न सिर्फ अमावां-टेकारी के जमींदार का, बल्कि सभी जमींदारों का, तांडव-नृत्य शुरू हो जाएगा। इसलिए अच्छी तरह सोच लो, तब उत्तर दो।

किसानों ने आगा-पीछा जरूर किया—क्योंकि वे तो बिना परिश्रम कोई जादू-मंतर की तरह रास्ता चाहते थे जैसी कि उनकी सदा, सर्वत्र, आदत होती है। किसान समझते हैं कि किसान सभा वाले स्वयं कुछ कर-करा कर जमीन और फसल दिला देंगे। वे यह भी समझने की नादानी करते हैं कि हम लोग जमींदारों से कह-सुन कर ही दिलवा देंगे। उन्हें इतनी समझ नहीं कि एक ओर तो हम जमींदारों से बराबर लड़ते और जमींदारी मिटाने पर तुले बैठे हैं, दूसरी तरफ वे हमारी ही बात मानें यह कैसे हो सकता है जब तक यह न हो कि हमारा सारा आन्दोलन और जमींदारी मिटाने की बात केवल ऊपरी और धोखे की टट्टी हो? आखिर जमींदार बेवकूफ तो होते नहीं। वे तो गुरु-घंटाल और पूरे चालाक होते हैं। वे अपना स्वार्थ खूब जानते हैं।

लेकिन अन्त में दूसरा रास्ता न देख, वे तैयार हो गए। शर्मा जी को वचन दे दिया कि—हाँ डटेंगे।

फिर तो हुक्म हो गया कि जाइए और अभी से शुरू कर दीजिए।

उधर जमींदार ने जिले के बड़े-से-बड़े अफसरों तक को उलटा-सीधा समझा कर अपने पक्ष में ठीक कर रखा था। उनके लिए तो केवल किसान सभा का हौवा ही काफी था। अधिकारी वर्ग के कान तो इतने से ही खड़े हो जाते थे!

एक बात और थी। राजा अमावां के एक सर्किल आफिसर बाबू शिववचन सिंह बड़े तेज और चालाक अफसर माने जाते हैं। समझा जाता है कि अतरी परगने के सरगना और जोरावर राजपूत-किसानों को उन्हीं ने सर किया था। वह वहीं रहते भी थे। सहबाजपुर के किसान भी तो राजपूत ही हैं। इसलिए वही यहाँ के लिए भी जवाबदेह बनाए गए।

वह कांग्रेसी और खादीधारी भी माने जाते हैं। जमींदार और उसका बड़ा अफसर यदि सिर्फ खद्दर पहन ले, तो भी पक्का कांग्रेसिया माना जाता है। फलतः 'एक तो डाइन, दूसरे हाथ में जलती लुकाठी'। उन्होंने इसकी काफी तैयारी भी कर ली थी कि सहबाजपुर को सर करके नामवरी और भी लूटूँगा।

जब किसानों का परिवार घर से निकल कर खलिहान की ओर चला, तो अजीब दृश्य था। किसान सभा (गया) ने उसके कई फोटो ले रखे हैं, उनसे उस संग्राम का पूरा चित्र सामने आ जाता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

औरतें, खासकर नई और जवान औरतें, बाहर आने में हिचकती थीं। वह काफिला आगा-पीछा करता हुआ खलिहान में पहुँचा सही, मगर औरतें पास के पेड़ों में छिप कर ठहरीं। किसी का पर्दे में मुँह था और किसी का पेड़ की ओट में।

यह क्या?

आवाज हुई—यह ठीक नहीं; सारे खलिहान को घेर कर बैठ जाना होगा, जिससे जमींदार के आदमी उसे छू न सकें और अगर छूना भी चाहें तो मर्दों, स्त्रियों और बच्चों की छाती पर से ही उन्हें गुजरना पड़े! आखिर यही हुआ और घेरा पड़ गया। न जाने पुराने जमाने में कैसे घेरे पड़ते थे। मगर यह तो बीसवीं शताब्दी के चतुर्थ दशक का घेरा था!

वही पास में बैल आदि बाँधे गए। ओखली, मूसल, चूल्हा, चक्की, बर्तन, भांडे सभी वहीं लाए गए। धान से पुआल जुदा करके पशुओं को खिलाया जाता। धान का चावल बना कर खाना पकता था। ठीक जिस प्रकार खानाबदोश और बराबर घूमने वाले कंजर और नट लोग करते हैं, वही हालत वहाँ हो गई। लड़ाई में सब कुछ करना ही पड़ता है!

अब तो जमींदार के घर में खलबली मची। वह तो और ही हिसाब लगा रहे थे। मगर अब क्या करें? किसे-किसे पकड़ें और जेल भेजें?

और पकड़े भी कौन? औरतों और बच्चों पर हाथ कौन डाले? बड़ी परेशानी थी। कुछ सूझता नहीं था। लगातार हफ्तों यह घेरा पड़ा रहा।

उधर पुलिस के छोटे-बड़े सभी अफसरान और दूसरे अधिकारी—मजिस्ट्रेट तक—आते-जाते और बराबर समझाने की कोशिश करते रहे। मगर सुने कौन? सुनने वाला तो नियामतपुर आश्रम में बैठा था। किसान तो पूरे बहरे बन बैठे थे। कभी-कभी बहरा बनना भी लाभदायक होता है!

यह भी पता लगा कि बाबू शिवबचन सिंह अंतरी से बेला तक घोड़े की पीठ पर चढ़ कर न जाने कितनी बार आए-गए, खास कर रातोरात। लठधरों और मुस्तण्डों को भी जमा किया। पुलिस की सेना भी आई कि सारा गल्ला उठवा कर बात की बात में दूसरी जगह पहुँचवा दें और किसान मुँह ताकते रह जाएँ। यह भी मालूम हुआ कि दौड़-धूप और तैयारी में जमींदार के दो हजार रुपए स्वाहा हो गए! मगर नतीजा कुछ न हुआ।

शर्मा जी ने तो पहले ही यह खतरा समझा था, इसलिए पूरा-पूरा घेरा डालने की राय शुरू में ही दे दी थी। किसानों को सजग भी कर दिया था। इसीलिए किसी की एक न चली और किसान जीते।

पहले तो, न तो पुलिस ही कुछ सुनने को रवादार थी और न हाकिम-हुक्काम ही। वे लोग नीलाम और दखल-दिहानी के कागजों को देखकर यही कहते थे कि जमींदार की ही जमीन है और फसल भी। मगर अब हार कर सुनने को तैयार हुए और मजिस्ट्रेट ने वचन दिया कि समझौता करवा देंगे। तब कहीं जाकर शर्मा जी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की आज्ञा से घेरा उठा, नहीं तो बराबर हमारे कार्यकर्ता वहीं रहते थे और किसानों को प्रोत्साहित करते रहते थे।

आखिरकार जब जमींदार और उसके अफसरों का मद चूर्ण हुआ, सरकार भी परेशान हुई, तभी समझौते की बात चली।

पहले चलती तो जमींदार की फजीती तो न होती!

फिर तो अधिकारियों ने माना कि अगर जमींदार की फसल होती, तो बीसियों ढेरें क्यों लगाई जातीं? तब तो एक ही जगह एक प्रकार की फसल जमा रहती। उसी प्रकार, ऊख की खेती छोटे-छोटे खेतों में सैकड़ों जगह क्यों रहती? एक ही जगह या दो-चार जगह ही रहती। यह भी पता लगाया गया कि इतने खेतों के लिए बैल, हल और खेती के सामान जमींदार के पास कहाँ हैं? बैलों के खाने की नादें और उनके लिए काफी भूसा, पुआल, वगैरह भी कहाँ है?

अगर उन्हें यह अक्ल पहले ही आ जाती तो क्या बुरा होता? यही नहीं। क्या उसके बाद भी उन्होंने ऐसे मौके पर इस अक्ल से काम लिया? हर्गिज नहीं।

खैर, सहबाजपुर के किसान तो जीते। यही नहीं कि उन्हें उनकी फसल और जमीन मिली, उनसे छीनी न गई—बल्कि हाकिम ने भावली की नकदी, सो भी काफी कम, लगान करवा दी!

(8)

गुजरात प्रान्त के पंचमहल जिले में गोधरा के नजदीक गुसर नाम का एक गाँव है। वहाँ किसान बसते हैं। गुजरात, काठियावाड़ और महाराष्ट्र में सूदखोर साहूकारों ने आतंक फैला रखा है। किसान उनसे ठीक उसी प्रकार थर्राते हैं जैसे हैजे और प्लेग से।

पता नहीं, बाहर के लोग क्या समझते हैं। मगर मुझे तो कई बार गुजरात में जाना और उसके हर जिले में दौरा करना पड़ा है। कहते हैं, गुजरात में तो क्या, बम्बई प्रान्त में ही, जमींदारी प्रथा नहीं है। वहाँ रैयतवारी है, जिसका अर्थ है कि किसान सीधे सरकार को ही जमीन का कर, लगान, या मालगुजारी देते हैं। मगर यह तो कहने मात्र की बात है। वहाँ तो असली किसानों के पास जमीनें रह ही नहीं गई हैं। उनकी सारी जमीनें साहूकारों ने ले ली हैं और किसानों की जगह वे ही बैठ गए हैं।

वे खुद तो खेती करते नहीं। उन्हीं किसानों को अर्द्ध भाग या बँटाई पर खेतों को देते हैं, जिनके पास पहले वे खेत थे। बँटाई की हालत यह है कि किसान अपने हल, बैल, परिश्रम से खेती करते हैं। साहूकार लोग खेती में जरा भी मदद नहीं करते। मगर फसल पकते ही आधा हिस्सा लेते हैं। खूबी तो यह कि सिर्फ ज्वार, बाजरा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वगैरह गल्ले में ही नहीं, बल्कि रुई और मूँगफली आदि किराना पैदावार में भी आधा हिस्सा लेते हैं! यहाँ तक कि बड़ौदा राज्य में, जहाँ फसल में बँटवारा न करके नकद लगान लेने का ही उन्हें हक है, वहाँ भी बँटाई ही करते हैं।

इसीलिए तो गुजरात प्रान्तीय किसान सभा की ओर से श्री इन्दुलाल याज्ञिक और श्री पंगारकर आदि कों वहाँ किसानों की सीधी लड़ाई चलानी पड़ी। फलतः किसानों ने फसल बाँटने से इनकार कर दिया। मांगरौल तालुके आदि के संघर्ष का यही रहस्य है।

यही नहीं। जब फसल किसी कारण से मारी जाती या अच्छी नहीं होती तो साहूकार किसान से नकद रुपए ही वसूल करता है।

किसान सभा की स्थापना से पूर्व, वहाँ किसी ने यह प्रश्न उठाया तक नहीं और न बाहरी दुनिया को इसका पता ही था कि वहाँ—गांधी जी के प्रान्त में—दिन-दहाड़े कैसी लूट जारी है!

लोग अभी तक यही समझते हैं कि बारदौली में जो लड़ाई या सत्याग्रह हुआ और जिसके चलते श्री वल्लभ भाई सरदार तथा किसान हितैषी ख्यात हुए, वह किसानों की लड़ाई थी। मैं भी तो यही समझता था। मगर वहाँ जाने पर पता चला कि वह लड़ाई तो उन्हीं साहूकारों और धनियों की थी, जिनकी संख्या प्रतिशत दस-पन्द्रह से ज्यादा नहीं। ये ही जमीन के मालिक बन बैठे हैं।

वहाँ का असली किसान तो आज मजदूर और बँटाईदार बन गया है। वही गुजरात का हाली, दुबला और रानीपरज है, जो असल में पहले जमीन का मालिक और किसान था, मगर जिसकी सारी जमीनें इन्हीं लुटेरे साहूकारों ने छल-प्रपंच से छीन लीं और नकली किसान बन बैठे।

आज तो वे हाली, दुबला और रानीपरज उन्हीं के गुलाम हैं—ठीक उसी प्रकार जैसे पुराने जमाने में गुलाम (Slave and Serf) होते थे। स्त्री और पुरुष दोनों ही जिन्दगी भर के लिए उनके पास बिक गए हैं। उनकी सन्तानों की भी यही हालत रहती है।

यदि ये गुलाम किसी मालिक (साहूकार) को छोड़ कर भागें तो कहीं रहने नहीं पाते! कोई उन्हें नौकर भी नहीं रख सकता। सभी पूछते हैं—तुम कहाँ से आए, किसके यहाँ रहते थे आदि-आदि। जिसके पास से वह भागता है, उसके मुस्तण्डे पठान फौरन दौड़ पड़ते हैं और दस-बीस मील के भीतर ढूँढ़-ढाँढ़ कर पशु की तरह पकड़ लाते हैं।

हाँ, अब हमारी किसान सभा ने उन्हें बहुत-कुछ निर्भीक बना दिया है। अब तो मारे-पीटे जाने पर, साहूकारों को ठोंक कर वे चले आते हैं!

यह गुलामी धीरे-धीरे मिट रही है। उनके दिमाग में एक गलत खयाल था, इसी से गुलामी करते थे। अब समझ गए कि वह भूल थी; हम आजाद हैं। बस, वह तो निरा सपना था। अब जागने पर मिट गया!

हाँ, तो उस गुसर मौजे को भी साहूकारों ने तबाह कर रखा था। एक रुपए के दस रुपए लिए, फिर भी उनके हिसाब में बीस बाकी रहे! शैतान की अँतड़ी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की तरह वह हिसाब कभी खतम होता ही नहीं। जब किसान सभा का जमाना आया, तो सन् 1938 ई. के शुरू से ही—क्योंकि गुजरात में पहले किसान सभा थी नहीं—किसान अपना हक समझने लगे और जागने लगे। उनमें हिम्मत और मुस्तैदी भी आने लगी।

मैंने अपनी आँखों से देखा है कि वे किसान सभा से कितना प्रेम करते हैं, किस उमंग से उसे अपनाते हैं। उनके इस अगाध प्रेम और उत्साह ने मुझे बार-बार मुग्ध किया है। फलतः वे लोग साहूकारों से जहाँ पहले चूँ भी न कर सकते थे, प्रत्युत थर्राते रहते थे, वहाँ अब सवाल-जबाव करने लगे हैं! हक की बातें करते हैं! कभी-कभी फटकार भी सुना देते हैं कि—जाओ, जो करना है करो।

उस गुसर के किसानों में एक बूढ़े श्री जबेर भाई भी हैं। दुबले-पतले आदमी। कद भी मझोला। सिर तथा दाढ़ी के बाल एकदम सफेद। सिर पर हलकी-सी पगड़ी बाँधते हैं। यद्यपि उम्र काफी हो गई, तथापि शरीर में फुर्ती है।

मैं एक बार उनका लेक्चर गुजराती में सुन कर गद्‌गद हो गया। बाईं हथेली पर रह-रह कर दाहिनी को ठोंकते जाते और देहात की भाषा में किसानों के दिलों में चुभ जाने वाली बातें इस ढंग से कहते थे कि सभी किसान मस्त होकर सुनते थे। उस भाषण ने मेरे दिल पर बड़ा असर किया। मैंने कहा कि ऐसे ही किसान जब पैदा हों, तभी किसानों के कष्ट दूर होंगे। हमारा काम सिर्फ उन्हें पैदा कर देना या ढूँढ़ कर बाहर ले आना-भर है।

जबेर भाई के सिर पर भी कर्ज का भार बहुत था। बेचारे ने बहुत कोशिश की कि उससे पिंड छूटे और साहूकार उन्हें बख्शे। जिन्दगी-भर देते-देते मरे। मगर साहूकार को राजी न कर सके—उसका पावना चुकता न कर सके।

भला मौत को भी कोई राजी कर पाता है? क्या उसका पावना कभी चुकता होता है? उसे तो जितना ही मिले, हजम करती जाती है। फिर भी आगे हाथ बढ़ाती ही रहती है। उसका पेट तो कभी भरता नहीं। यदि भरे तो फिर दुनिया खाली कैसे हो? इसलिए कर्ज को पुराने लोगों ने आग बतलाया है, जो जलाती जाती और तेज होती रहती है।

फिर तो श्री जबेर भाई ऊब गए। कोई रास्ता उन्हें सूझता न था। वह इसी उधेड़बुन में थे कि किस प्रकार इस पाप से पिंड छूटे—कि किसान सभा का पैगाम आ गया। इससे किसानों एवं पीड़ितों में नव-जीवन तथा आशा का संचार हो गया। उन्होंने भी सूरत और बड़ौदा राज्य में साहूकारों के विरुद्ध किसानों की लड़ाई का समाचार जाना।

खुद श्री इन्दुलाल जी से जबेर भाई की मुलाकात और बातें भी हुईं। उनके यहाँ सभा भी हुई। वह बड़ी मुस्तैदी से सभा के काम में जुट गए। यहाँ तक कि जब श्री इन्दुलाल जी और उनके साथी इधर आजादी की लड़ाई की बात लेकर जेल जाने की सोचने लगे, तो खास जबेर भाई ने उन्हें बेमुरव्वती से रोक कर कहा कि अभी तो हमारी किसान सभा की प्रारम्भिक दशा है, अभी किसान उठने लगे हैं, तब तक इस बीच में ही जेल की क्या बात?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आज जबेर भाई को रास्ता मिल गया। फलतः उन्होंने साहूकार से आखिरी बार निपट लेने की ठान ली। साहूकार लोग अकसर गाँवों में फेरी लगाते रहते हैं। इसी तरह उनकी कर्ज की वसूली चलती है। जिस गाँव में आते हैं, उसके किसान पहले से ही तैयार रहते हैं। वे किसी प्रकार या तो उन्हें खुश करते या चुपके से कहीं चले जाते हैं! मगर साहूकार लोग तो अपने दूतों के द्वारा पहले से ही खासतौर से खबर करवा देते हैं ताकि किसान उस दिन हाजिर रहें। न रहने पर उनसे जवाब-तलब किया जाता है।

गुसर में भी एक दिन खबर आई कि हजरत आने वाले हैं। जबेर भाई को तो विशेष रूप से खबर दी गई थी। इसलिए वह भी तैयार बैठे थे। जब उन्होंने समझ लिया कि अब वह आने वाले ही हैं, उनका समय हो रहा है, तो दाएँ हाथ में एक दाब—जिसे गुजरात में धारिया कहते हैं और जो काफी तेज और बड़ा होता है—और बाएँ में एक मजबूत रस्सी लेकर अपने दरवाजे पर बैठ गए। धारिया खूब ही तलवार जैसा चमचमाता था। रस्सी भी रगड़ कर फाँसी वाली रस्सी की तरह बना दी गई थी। पास में ही थोड़ी सी सूखी घास तथा फूस पड़ी थी और एक दियासलाई भी।

जब उन्होंने साहूकार को आते देखा तो खुद ही उस रस्सी से सवाल किया : 'बोल रस्सी, तू क्या चाहती है?' नजर भी रस्सी पर ही थी। साहूकार को देखते न थे। फिर स्वयं ही रस्सी की तरफ से उत्तर दिया—'मैं चाहती हूँ कि आज जब साहूकार आए तो उसे कस कर बाँध दिया जाए, मेरी ही मदद से!' फिर धारिया की ओर देख कर बोले : 'अच्छा, धारिया, अब तू बोल, क्या चाहता है?' उसकी ओर से भी अपने आप बोल उठे—'मैं यही चाहता हूँ कि रस्सी से बाँधे जाने के बाद साहूकार के टुकड़े-टुकड़े मेरी ही सहायता से कर दिए जाएँ!' अन्त में घास, फूस और दियासलाई की तरफ देख कर पूछने लगे : 'तुम लोग भी बता दो कि क्या चाहते हो!' आवाज निकली—'साहूकार के टुकड़े-टुकड़े हो जाने पर हमारी ही मदद से वह यहीं पर जला दिया जाए, ताकि 'न रहे बाँस, न बजे बाँसुरी।'

अब तो साहूकार को चीरिए तो खून नहीं। वह तो डर के मारे दूर ही खड़ा रहा! नजदीक आने की उसे हिम्मत ही न हुई। और जो वहाँ से भागा तो फिर गुसर में आने का उसने नाम तक नहीं लिया!

उसे खयाल हुआ कि जबेर भाई पागल हो गया है और ठिकाना क्या—कि एक दिन वह सचमुच वही कर दे जो कहता था! फिर तो कुछ न होगा। रुपए-पैसे तो आते-जाते रहते हैं, मगर जान तो फिर मिलने की नहीं। और जान से ही तो सबकुछ है।

उसे यह भी हिम्मत न हुई कि पुलिस के पास कोई रिपोर्ट करे। असल में साहूकार लोग तो डरपोक होते हैं। केवल बन्दरघुड़की से ही उनका काम चलता रहता है। फलतः यदि जरा भी हिम्मत की जाए और बन्दरघुड़की की परवाह न की जाए, तो वे बुरी तरह घबरा उठते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यही बात वहाँ भी हुई और जबेर भाई की हिकमत एवं हिम्मत काम कर गई। साहूकार के आदमियों ने उसे हजार हिम्मत दिलाई कि चलिए, गुसर में आपका बाल भी बाँका न होगा मगर वह वहाँ नहीं आया तो नहीं आया! घर से ही तकाजा करके जो कुछ वसूल कर सका वही किया!

मगर जबेर भाई के पास तो तकाजा भेजने की भी हिम्मत उसे न हुई! उसे रह-रहकर उनके शब्द, उनका चेहरा, और धारिया वगैरह चीजें याद आती थीं! फिर तो घबरा जाता था। कभी-कभी सोने के समय सपने में भी वही चीजें देखता होगा और यह भी देखता होगा कि जबेर भाई उसकी छाती पर सवार हैं। असल में भय ऐसी ही चीज है। इसी से उसने उनसे रुपए माँगने की बात ही छोड़ दी, ताकि उस कांड को वह भूल जाएँ। फलतः जबेर भाई अनायास ही ऋण-मुक्त हो गए।

(9)

गया जिले के मझवे मौजे में मैंने किसान स्त्री-पुरुषों की जो जवाँमर्दी और जो लगन देखी, उसे भूल नहीं सकता। जब तक वही बात सभी किसानों में नहीं आ जाती तब तक उनका उद्धार नहीं होगा, मैं ऐसा मानता हूँ।

बकाश्त का संघर्ष बहुतों की दृष्टि में नामवरी का साधन है। कुछ लोग यह भी मानते हैं कि इससे हमारा और किसान सभा का जमींदारों पर और अधिकारियों पर भी दबदबा बैठ जाएगा।

मगर असल में यह तो किसानों के जीवन-मरण का प्रश्न है। यदि किसान इसमें जीतें तो वे रह सकते हैं, नहीं तो उनकी इंच-इंच जमीन छिन जाएगी और उन्हें भूखों मरना होगा। बिना इस दृष्टि के काम चलने का नहीं—अब तक किसान यह न समझ लें कि इसी बकाश्त के संघर्ष में हम मर भी जाएँ तो कोई चिन्ता नहीं, हमारे बाल-बच्चे तो खाएँ-पिएँगे और जिन्दा रहेंगे; लेकिन अगर हमने प्राणों से मोह किया और लाठी से डर कर हम भागे तो हमारे लड़के-बच्चे जरूर भूखों मरेंगे।

मैंने यही लगन और यही धुन, मझवे के किसानों में पाई। मेरे दिमाग में तभी से यह बात घुस गई कि बिना इस धुन के बकाश्त-संघर्ष बेकार है। यदि धुन होगी, तो हम हार कर भी जीतेंगे और जमीन लेकर ही रहेंगे। मगर इसके बिना मिली-मिलाई जमीन भी चली जाएगी, छिन जाएगी।

मझवे मौजा बहुत ही जालिम जमींदारों का है। गया-क्मूल लाइन पर ही वहाँ फ्लैग (नन्हा-सा) स्टेशन भी है। गया से नवादा जाने वाली पक्की सड़क मझवे से होकर ही गुजरती है। वहाँ तीन-चार बड़े-बड़े जमींदारों के सिवाय सभी किसान ही बसते हैं। उनकी संख्या काफी है। उनमें अधिकांश वे ही हैं जिन्हें समाज ने नीचे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गिरा रखा है और बदकिस्मती से हम जिन्हें 'रैयान' और 'नीच' कहते हैं।

मैंने किसान आन्दोलन के सिलसिले में न सिर्फ बिहार में, प्रत्युत अन्यत्र भी देखा है कि ये 'नीच' और 'रैयान' नामधारी असली किसान बात ठीक-ठीक समझ जाने पर मौका पड़ते ही कितना डटते हैं। बड़हिया टाल की लगातार तीन वर्षों की लड़ाई केवल इन तथाकथित 'रैयानों' की ही रही है। उसमें उन्होंने कमाल किया है। उन्हीं की लड़ाई में सरकारी अफसरों को खामख्वाह कहना पड़ा कि सचमुच यह शान्ति सेना है। दूसरी किसी जगह यह सर्टिफिकेट हमें नहीं प्राप्त हो सका!

बड़हिया टाल में जब हमारे एक कार्यकर्ता पर जमींदारों के आदमियों की लाठियाँ बरस रही थीं और वह बेहोश पड़ा था, तो इन्हीं 'रैयानों' की एक औरत ने उसके ऊपर लेट कर लाठियाँ स्वयं अपने सिर एवं देह पर ले लीं। और उसे मरने से बचाया।

ऐसी घटना हमें और जगह नहीं मिली कि अपनी जान पर खेल कर एक किसान औरत हमारे कार्यकर्ता का—जो बाहर से गया था और निस्सन्देह रैयान जाति का नहीं था—बचाए! उसे विश्वास था कि यह कार्यकर्ता उसको और उसके परिवार को रोटी दिलाने वाला है, इसी से अपनी जान से भी ज्यादा उसकी कीमत उसने की।

जब बड़हिया गाँव में इन्हीं 'रैयानों' का जुलूस वहाँ के 'अशराफ' जमींदार रोकना तथा लाठी के बल से कानून अपने हाथ में लेना चाहते थे, तो ये लोग डट गए। और सिर तथा देह से खून की धार बहते रहने पर भी, जुलूस निकाल कर ही छोड़ा।

हमें सचमुच इसका गर्व हुआ जब हमने श्री पंचानन शर्मा के नेतृत्व में इनकी बहादुरी का वृत्तान्त सुना कि लाठियाँ बरसती थीं और ये बराबर बढ़ते चले जाते थे! पुलिस खड़ी तमाशा देखती थी। वह जमींदारों के डर से चूँ न कर सकी।

उसके बाद फौरन ही किसान-सम्मेलन के मंच पर इन काले-कलूटे 'रैयानों' को बैठा कर हमने और हमारी सभा ने अपने को कृतकृत्य माना जबकि इनके शरीर और कपड़े खून से लथपथ थे; इनके सिर पर पट्टी बँधी थी। इन 'रैयानों' ने ही किसान सभा को अजर-अमर और श्री कार्यानन्द शर्मा को बड़हिया टाल का योद्धा बना दिया!

ऐसे ही रैयान मझवे में हैं। वे आषाढ़ के महीने में बरसात में अपने खेत पर जा डटे जबकि खद्दरधारी और कांग्रेसी जमींदारों ने लाठी के बल से उन्हें बेदखल करना चाहा। एक जमींदार साहब न सिर्फ नई प्रान्तीय कौंसिल (अपर चेम्बर) के कांग्रेसी मेम्बर हैं, बल्कि एक प्रसिद्ध कांग्रेसी और कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के मेम्बर एवं किसान कार्यकर्ता के ससुर भी हैं। गया की अजीब हालत है। शुरू से ही कांग्रेस नेताओं की बिहार में नीति यही रही है कि दो-एक जमींदारों को जैसे-तैसे जेल पहुँचा कर और बाकियों को खद्दर पहना कर कांग्रेसी घोषित कर देना। फिर तो वे लोग साँड़ बन कर खुले चरते और निर्भय रहते हैं। वे जितना भी जुल्म करें, सब छिप सकता है।

कार्यानन्द शर्मा—बड़हिया टाल संघर्ष के नायक थे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बड़हिया, तेउस वगैरह गाँवों में यही हुआ। मझवे में भी यही हो रहा है। इसीलिए वहाँ दिक्कत बढ़ गई। मगर जब किसान लोग डटे तो एक बार तो हैरत में आना पड़ा! अधिकारियों एवं जमींदारों तक को दातों तले उँगली दबानी पड़ी। उन्होंने सुलह और पंचायत की बात की, कमिश्नर ने कहा कि पंचायत से तय करा दिया जाएगा। इस पर संघर्ष तो रुका। मगर पंचायत में और-और कांग्रेसी जमींदारों के साथ मिलकर, उन लोगों ने ऐसी लीपा-पोती की कि वह बात न कहना ही उचित है।

घटना के दिन जब मैं वहाँ गया, तो देखता हूँ कि कई किसान मर्द और दो-चार औरतें खेत में मौजूद हैं। औरतें ज्यादा उम्र की थीं; जवान शायद ही थीं। उनके हाथों में झण्डे थे। चोट तो उन्हें भी लाठियों की लगी थी। मगर मर्दों को सख्त चोट थी। उनके सिर फूटे थे। शरीर में दूसरी जगह भी मार पड़ी थी। वे टूटी-फूटी खाटों पर पड़े थे। धीरे-धीरे बूँदें पड़ रही थीं। उनसे बचने का कोई भी उपाय न था। गाँव के स्त्री-पुरुषों में उत्साह की बिजली दौड़ रही थी।

जब हमारे आदमियों ने उन्हें उठा कर घर में या छाया में ले चलने की इच्छा प्रकट की तो उनका उत्तर मिला कि हम लोग तो यहीं पड़े रहेंगे। मरेंगे तो क्या? जमीन तो मिलेगी और बाल-बच्चे तो जिन्दा रहेंगे! यों भी तो भूखों मरना ही है! फिर यहीं क्यों न मरें? यहाँ से हटे, तो जमींदार का हल चलेगा और पुलिस कहेगी कि उसी ने जोता-बोया है। फिर हाकिम उसी के पक्ष में फैसला देगा। मगर यहाँ पड़े रहने पर यह बात होने की नहीं। हमने इसीलिए मार भी खाई है। यदि हटे तो यह मार खाना बेकार होगा।

मैंने जब उनकी यह बात सुनी—हाँ, उन अपढ़ 'रैयानों' की—और स्वयं उनसे बातें कीं, उनकी हालत देखी, तो जी भर आया। मेरे मन में आया कि कैसे जमींदारी को खोद कर इतना नीचे गाड़ दूँ कि वह हमेशा के लिए खत्म हो जाए। मेरा सिर उन स्त्री-पुरुषों के सामने सहसा झुक गया। मैंने दिल में कहा—तुम्हीं लोग, तुम्हारे जैसे 'रैयान' और 'नीच' स्त्री-पुरुष ही, किसान सभा को बल देंगे। मुझे यह भी कहना पड़ा कि पापी समाज को तुम्हें 'रैयान' और 'नीच' बनाने के महापाप का प्रायश्चित्त भी शीघ्र ही करना पड़ेगा—यदि उसे और किसानों को अपना उद्धार करना है।

मेरा दिल उस दिन कचोट गया—हाय, मैं भी 'रैयान' क्यों न हुआ ताकि अपने को कृतकृत्य मानता!

उसके बाद पाँच-छह मील दूर डिस्पेंसरी से दवा के साथ डॉक्टर बुलाए गए। उन्होंने सबों की मरहम-पट्टी की। मगर जब उन्होंने हठ किया कि यहाँ मत रहो वहीं अस्पताल में—दवाखाने में—चलो तो ठीक दवा होगी यहाँ खतरा है, खासकर पानी पड़ने की हालत में, तो उन लोगों ने पहले की ही तरह कहीं भी जाने से साफ इनकार कर दिया!

हजार कोशिश की गई और डॉक्टर ने बार-बार कहा कि यहाँ मर जाओगे,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मगर कौन सुनता था? मरने को तो वे लोग तैयार बैठे थे। वे अपने संकल्प से विचलित न हुए और डॉक्टर को बैरंग वापस जाना पड़ा।

ठीक है, जब तक किसान इसी प्रकार मौत का भय छोड़ उससे प्रेम करने को तैयार न हो जाएँगे, तब तक न तो जमींदारी मिटेगी, न किसान राज्य कायम होगा और न उनके कष्ट दूर होंगे। उन्होंने अमली तौर से बता दिया कि 'जीना है, तो मरना सीखो!'

(10)

गया जिले में मझियावां नाम की एक बहुत बड़ी बस्ती है। हमारे श्री यदुनन्दन शर्मा को जन्म देने का गौरव इसी गाँव को प्राप्त है।

यहाँ के जमींदार वही प्रसिद्ध राजा बहादुर अमावां-टेकारी हैं। यह गाँव जमींदार का ऐसा खैरख्वाह और भक्त रहा है कि कहा नहीं जाता। टेकारी-अमावां की जमींदारी बहुत बड़ी है। गया में उतनी बड़ी जमींदारी दूसरी कोई नहीं। प्रायः समूचे जिले में और बाहर भी फैली हुई है।

मझियावां को आज जब शर्मा जी का फख्र है और उन्हीं के द्वारा जमींदार से मुठभेड़ करने और उसे पछाड़ने का भी, वहाँ पहले जमींदार के हुक्म मानने की ही उसकी प्रसिद्धि थी। अकेले उस गाँव ने राजा अमावां को इतने अमले (गुमास्ता और बराहिल वगैरह) दिए कि चारों ओर जिले-भर में वे पाए जाते हैं। उनके ही द्वारा किसानों का शोषण होता है।

उस बेहूदी भक्ति, उस किसान-द्रोह और गद्दारी का ही परिणाम है कि गत वर्ष वहाँ जब बकाश्त संघर्ष छिड़ा तो—गाँव के कुछ नवजवानों को जो शर्मा जी और किसान सभा के प्रभाव में हैं, छोड़ कर—प्रायः सभी के सभी मर्द हिम्मत हार बैठे। बहुत ही थोड़े से साथ देने को तैयार हुए।

श्री रामदेवदास जी महन्त वहीं ठाकुरबाड़ी बना कर रहते हैं। वह छह महीने के लिए जब जेल गए, तो उनके साथ देखा-देखी कुछ लोग आगे बढ़े सही, मगर सब मिला कर मर्द लोग नामर्द ही रहे।

फिर भी लड़ाई तो चलती रही।

जब मैं एकाएक शाम को अँधेरा होने पर, पन्द्रह-सोलह मील बरसात में पैदल ही चल कर, वहाँ एक दिन पहुँचा तो मर्द भी जमा हुए जरूर, मगर औरतों में मैंने जो उमंग देखी, वह भूलने की नहीं। वे किसानों के गीत गाती तथा क्रान्तिकारी नारे लगाती हुई मेरे 'दर्शन' के लिए, गिरोह बाँध कर, बात की बात में आ पहुँचीं।

अजीब दृश्य था। एक ओर अन्धेरे में, गोया मुँह छिपा कर, मर्द लोग बैठे थे, दूसरी ओर आगे बढ़ कर औरतें जमी हुई थीं, गोया मर्दों से बाजी मारने को

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उतारू हों। उन्होंने साफ कह भी दिया कि ये मर्द लोग गड़बड़ करेंगे, इनके लक्षण अच्छे नहीं; यहीं पर पुलिस की छावनी पड़ी है और बहार से आ-आकर लोग गिरफ्तार होते हैं, मगर ये लोग तमाशा देखते हैं! औरतें लड़ रही हैं और ये बैठे हैं!

मैंने मर्दों से पूछा भी कि बात क्या है? यों तो, मुँह बचाने के लिए उन्होंने उत्तर दिया कि वे भी मुस्तैद हैं, मगर आवाज से—और काम से भी—साफ था कि उनमें वह हिम्मत नहीं, वह जोश नहीं। वहाँ तो मर्दानगी औरतों में ही थी। मालूम होता था साड़ी और चूड़ी ने अपना स्थान बदल लिया है। लड़ाई तो पहले से ही चल रही थी। बहुतेरे लोग जेल में थे।

मुझे जरूरी काम से उसी दम वापस जाना था। फिर रातोरात पन्द्रह-सोलह मील चल कर टेकारी आया। वहाँ से मोटर से गया जाकर ट्रेन पकड़ी। घोर देहात में वर्षा में सवारी क्या मिलती? पालकी थी भी, तो एक तो उस पर चलने की हिम्मत नहीं—कैसे आदमी, पर चढ़ कर चलूँ यही खयाल मारे डालता था—दूसरे, उसकी तैयारी में देर होती और गया में ट्रेन छूट जाती। इसलिए मर-जी कर पैदल जाना और ट्रेन पकड़ना ही उचित समझा।

लेकिन मझियावां में जो संघर्ष चला, वह अपने ढंग का निराला था। उसे समझने के लिए कुछ बातें जान लेना जरूरी है।

जिस कुर्था थाने में वह गाँव है वह गया जिले में, किसान सभा की दृष्टि से, सबसे अच्छा माना जाता है। वहाँ कार्यकर्ताओं का एक बड़ा दल है, जो और कहीं नहीं है। वहाँ के कार्यकर्ता गया के हर कोने में फैल कर किसानों में काम करते हैं! यह बात न सिर्फ जमींदारों को खटकती है प्रत्युत कांग्रेस के उन दोस्तों को भी, जो ऊपर से किसान-हितैषी बन कर भीतर ही भीतर किसानों को ठगते और धोखा देते हैं, जो किसान सभा को फूटी आँखों भी नहीं देख सकते क्योंकि किसान सभा उनका कपटी-मुनि वाला रूप किसानों में प्रकट कर देती है।

इसी के साथ एक बात और हो गई। मझियावां के पास के ही मौजे खटांगी के जालिम जमींदार के जुल्म के खिलाफ वहाँ के एक (कोइरी) किसान श्री वाल्मीकि जी ने एक प्रकार का जेहाद बोल दिया और सिर झुकाने से साफ इनकार कर दिया। इस पर जमींदार ने उन्हें तबाह करने में अपनी सारी शक्ति लगा दी। इधर यदुनन्दन शर्मा ने भी अपना बल वाल्मीकि जी की मदद में लगाया। मुझे भी वहाँ जाना पड़ा। नतीजा यह हुआ कि जमींदार सबकुछ करके भी हारा तथा भयभीत हुआ। उसका पहला प्रताप जाता रहा। जहाँ उसके सामने जाने की किसी को हिम्मत न होती थी, वहाँ वाल्मीकि जैसे सदा पाँव तले रौंदे कोइरी जाति के आदमी भी सीना तान कर खड़े हो गए। यह उसके लिए मौत से भी बुरा था। इसीलिए तो वाल्मीकि जी पर ज्यादा कोप था!

फलतः जब वाल्मीकि जी का गल्ला उसने खलिहान में रोकवाना चाहा, तो कई सौ किसान आसपास के गाँवों से जमा होकर उनकी मदद में आए और कंधे पर लाठी तथा सिर पर टोकरी में खलिहान से गल्ला उठा कर जुलूस के साथ, जमींदार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के दरवाजे से होते, वाल्मीकि के घर पहुँचा आए! जमींदार को घर से बाहर निकलने तक की हिम्मत न हुई—बल्कि शर्म के मारे वह सपरिवार गया चला गया।

इसलिए, जब सन् 1939 की गर्मियों में वहाँ डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का चुनाव हुआ और किसान सभा वाले कांग्रेस की ओर से वहाँ खड़े हुए, तो कांग्रेसी दोस्तों ने बेहयाई से जमींदारों और प्रतिगामियों के साथ गुट करके हमारे आदमी का सख्त विरोध किया।

उन्होंने जाति-बिरादरी का भयंकर बावेला खड़ा कर दिया। कोइरी जाति के एक आदमी को विरोध में खड़ा करवा कर कोइरी, कुर्मी और अहीर, आदि का गुट त्रिवेणी संघ और दलित संघ के नाम से करना चाहा। ऐसा तूफान खड़ा किया कि लाठी-राज्य और गुंडा-राज्य बना दिया।

पुलिस का भी कुछ अजीब-सा ढंग रहा। ऐसा अन्धेर था कि हमारे आदमी वोट देने जाने भी न पाते। हमारे लोग निराश थे। शर्मा जी भी लाठियाँ खा आए। खुले आम शराब पीकर लठधर घूमते और पीटते थे। हमारे लोगों ने समझा कि हमारा आदमी जरूर हारा।

मगर आखिर में, जो विरोधी की ओर से गए उन्होंने ही हमारे आदमी को वोट देकर जिताया। और इस प्रकार किसान सभा की सेवा को स्वीकार कर लिया! जमींदार और उनके अखबार जो होली मना रहे थे, उन्हें मुहर्रम मनाने को बाध्य किया। उनकी आशाओं पर पानी भी फेर दिया।

मगर घृणित और गन्दे प्रचारों से सारा वायुमण्डल विषाक्त जरूर हो गया। मालूम होता था कि वहाँ किसान सभा की जगह जाति-पाँति वालों का ही बोलबाला है।

ऐसी ही परिस्थिति में वर्षा शुरू होते ही मझियावां का बकाश्त सत्याग्रह छिड़ गया! चारों ओर से कार्यकर्ता जुटे। काम चालू हुआ। चुन-चुन कर गिरफ्तारियाँ जारी हुईं। ऐसे समय में देखा गया कि आस-पास के गाँवों के कोइरी, अहीर आदि आ-आकर उसमें शामिल हुए। इस प्रकार वायुमण्डल का जहर धुल गया। मझियावां वाले किसान तो ब्राह्मण ठहरे और उनकी सहायता औरों ने की, यही खूबी थी।

मगर सोचा गया कि यह लड़ाई औरतें ही चलाएँ तो ठीक। उन्हें उत्साह भी था और—जैसा कि पहले कहा गया है—उन्होंने मर्दों से कह भी दिया था कि आप लोग बैठे रहें; हमें लड़ने दें।

असल में दो-एक बार पहले मर्द लोग उभड़ कर भी बीच में ही बैठ गए थे। इससे अंदेशा था कि कहीं इस बार भी न बैठ जाएँ। इसलिए औरतों ने जिम्मेदारी ली। उन्होंने उसे जिस खूबी से अन्त तक निबाहा वह प्रशंसनीय है। पूर्ण विजय भी उन्हीं के चलते हुई भी।

खेत जोतने और धान रोपने का काम था। पुलिस का कैम्प कुछ हट कर वहीं पड़ा था। हमारा कैम्प भी वहीं मौके पर था। खा-पी कर पूरी तैयारी के साथ लोग दस-ग्यारह बजे खेतों पर जाते थे। बिगुल बजता था। बस, पुलिस समझती

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

थी कि अब काम शुरू हुआ। अतः वह भी सदल-दल गिरफ्तारी के लिए मौके पर जा धमकती थी। फिर दो-तीन बजे काम बन्द हो जाता था। यही तरीका बराबर चला।

पुलिस को भी चौबीस घंटे की नाहक की हैरानी न थी और किसानों को भी। यह बात वहीं हुई और कहीं नहीं। यह भी वहाँ की विशेषता थी।

लड़ाई में मर्द भी जाते थे और स्त्रियाँ भी। जब पुरुष पकड़ लिये जाते, तो हल चलाने और रोपने का काम औरतें करती थीं! औरतों को पुलिस पकड़ती न थी।

पहले तो मर्दों को पकड़ कर पुलिस 18-20 मील पैदल रेलवे स्टेशन पर ले जाती थी। मगर पीछे लोगों ने पैदल जाना अस्वीकार कर दिया। तब क्या करे? वहीं रखने लगी। न तो कोई सवारी मिल सकती थी और न उसका रास्ता ही था। इसलिए मजबूरन वहीं रखना पड़ता था। फलतः धर-पकड़ रस्म मात्र ही थी। पकड़े गए लोग घूमते-फिरते थे। हाँ, वे लड़ाई में शामिल न होते थे। पुलिस का सलूक अच्छा रहा। इसलिए लोगों ने उसे दिक भी नहीं किया।

यही नहीं कि मझियावां की ही बांभनी और दूसरी औरतें आतीं और हल चलाती थीं, बल्कि पास के गाँवों की भी ग्वालिनें और दूसरी जाति वालियाँ आकर ठीक समय पर शामिल होती थीं। ठीक हल चलाने का काम वे ही करती भी थीं।

ब्राह्मण लोग कहते हैं कि हम हल नहीं चला सकते, मगर उनकी औरतों ने वह काम करके ही तो विजय पाई, नहीं तो मर्द पकड़े जाते, हल बन्द हो जाता और खेती रुक जाती; फिर तो जमींदार की ही जीत होती। किसानों को तो औरतों ने ही जिताया।

एक बात और भी थी। रोपने के बाद जमींदार के गुण्डे आते और सब उखाड़ कर फेंक देते थे। मर्द तो वहाँ रहते थे नहीं; वे या तो पकड़ लिए जाते या घर में रहते थे। फलतः औरतों ने ही उन गुण्डों से खेत की रक्षा की और उन्हें भगाया।

एक बार तो अँधेरे में कुछ बदमाश ऐसा ही कर रहे थे कि एकाएक औरतें पहुँची और वे लोग भागे। मगर औरतों ने एक ओर तो शोर किया, और दूसरी ओर खदेड़ कर दो-तीन ने एक मुस्तण्ड को पकड़ ही तो लिया! बाद में उसकी कमर पकड़ कर बैठ गईं। इस प्रकार, उसे पुलिस के हवाले किया! फिर तो गुण्डों का उत्पात बन्द ही हो गया। औरतें न लड़तीं, तो यह कैसे होता!

उसके बाद जमींदार ने एक दूसरा रास्ता सोचा क्योंकि न तो पुलिस की धर-पकड़ से खेती रुक सकी और न भाड़े के बदमाशों की शरारत से ही। कुछ गरीब और भिखारिन औरतें उसने—उसके अमलों ने—जमा कीं। फिर उन्हें यह लोभ देकर भेजा कि जाकर वहाँ रोपा हुआ धान उखाड़ फेंको और लौटो तो फी औरत एक-एक रुपया दिया जाएगा। उसने सोचा कि यदि उधर औरतें हैं, तो इधर भी औरतें रहेंगी; पुलिस भी हस्तक्षेप न करेगी क्योंकि उन्हें नहीं छेड़ती तो इन्हें क्यों छेड़ेगी?

फलतः भाड़े वाली औरतें वहाँ गईं। वे अपना काम शुरू करना ही चाहती थी कि मझियावां की औरतों को खबर लगी। बस, फिर क्या था! गिरोह बाँध कर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वे दौड़ पड़ीं और भाड़े वालियों को झाड़ू से मारते-मारते भगा दिया ! उन बेचारियों को क्या पता था कि झाड़ू से सत्कार होगा। उन्हें यह बात बताई तो गई थी नहीं, नहीं तो शायद ही आतीं! उसके बाद जब वापस गईं तो शायद बड़ी दिक्कत से रुपए के स्थान पर दो-दो आने पैसे मिले!

इस प्रकार जब पुलिस, अधिकारी और जमींदार आजिज आ गए, फिर भी वहाँ का काम न रोक सके, तो कलक्टर साहब खुद वहाँ पहुँचे।

उन्होंने जाँच-पड़ताल की। फिर यदुनन्दन शर्मा से कहा कि लड़ाई बन्द करें, मैं तय-तमाम करवा दूँगा। उन्होंने बात मान कर लड़ाई रुकवा दी।

तब जमींदार के मैनेजर इधर-उधर करने लगे। आखिर में हार कर उन्हें भी मान ही लेना पड़ा। जमींदार के लाखों रुपए बाकी थे। शायद दस हजार में चुकती हुई और लगान का पुराना दर काफी कम करके फिर सभी खेत किसानों को ही मिल गए।

(11)

रेवड़ा का नाम तो मुल्क में ही नहीं, उसके बाहर भी प्रसिद्ध हो चुका है। उसकी लड़ाई को भी लोग बहुत जानते हैं। मगर उसकी कुछ जरूरी, और काम की बातें शायद ही जानते हों। भविष्य के लिए इनको जान लेना अत्यन्त आवश्यक है। इसीलिए इन्हें लिखना पड़ता है।

रेवड़ा गया जिले के नवादा सब-डिवीजन के वारिसलीगंज थाने में काशीचक स्टेशन से तीन मील उत्तर-पश्चिम पड़ता है। वहीं पर गया, पटना, और मुंगेर जिले की सीमाएँ मिलती हैं। घोर देहात और पिछड़ी जगह है—ऐसी पिछड़ी कि कहिए मत। किसान सभा का काम तो वहाँ पर सत्याग्रह से पहले कुछ भी न था। सभा का एक मेम्बर भी वहाँ न था।

ऐसे गाँव में ऐसी सुन्दर लड़ाई हुई जिसने जमींदार और सरकार दोनों का ही मद चूर किया और दुनिया का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। यह क्या कम ताज्जुब की बात है? बाहरी दुनिया समझती है कि वहाँ किसान सभा पहले से काफी मजबूत थी, इसीलिए हम लड़े और जीते। मगर बात उलटी है और जानने की है।

प्रश्न हो सकता है कि तो फिर लड़ाई हुई कैसे और जीते भी लोग कैसे? यही तो खूबी है! इतना ही नहीं कि वे किसान संगठित न थे, बल्कि इतने गरीब और तबाह थे कि एक पैसा नहीं खर्च कर सकते थे; एक कार्यकर्ता या स्वयंसेवक को—किसान सेवक को—एक दिन खिला भी न सकते थे! चिथड़े-चिथड़े और दाने-दाने को मरते थे!

फिर भी कई महीने तक बराबर सैकड़ों आदमी प्रतिदिन यहाँ खाते रहे। हजारों रुपए नकद खर्च हुए। असल में इसी तबाही और गरीबी में उस लड़ाई और उसकी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सफलता का रहस्य छिपा है—यों तो पंडित यदुनन्दन शर्मा की लगन, धुन और कार्यपरता कारण है ही।

जमींदार ने किसानों का खून चूस लिया था। उनकी हड्डियाँ भी घिस डाली थीं। ब्राह्मणों की लड़कियाँ बिकवा कर उनके दाम का आधा पैसा वह जमींदाराना हक में लेता था और शेष आधा बाकी लगान में। जवान और अधेड़ मर्दों के हाथ बच्चियाँ बिकती थीं ताकि वे लोग आतुर होने के कारण ज्यादा पैसे दें—इसलिए जब तक लड़कियाँ सयानी होतीं, वे मर जाते थे। फिर तो उन्हें विधवा जीवन बिताना पड़ता था।

ऐसी औरतों ने रो-रोकर मुझे अपनी रामकहानी सुनाई है।

वे ही रणचण्डी और दुर्गा की तरह क्रुद्ध होकर इस लड़ाई में न सिर्फ औरतों का नेतृत्व करती रही हैं, प्रत्युत मर्दों को भी फटकार कर दुरुस्त करती रही हैं। यह पहला कारण है विजय का।

गरीबी की बात तो कह ही चुके हैं। जमींदार ने समूचा खेत—प्रायः हजार बीघा—नीलाम करवा लिया और लड़कियाँ तक बिकवा दीं, केवल यही बात न थी। गाँव में बकरी के दो बच्चे हों, तो एक जमींदार के हिस्से का माना जाता था। न देने पर आफत।

यदि छप्पर पर बरसात में या दूसरे समय दो नेनुआ, कद्दू या कुम्हड़े फलें, तो उनमें से एक जमींदार का होता था! गाय, भैंस के दो सेर दूध में एक सेर उसके हिस्से का हो गया!

एक बार जरूरत पड़ी कि गाय या भैंस का दूध चाहिए। मगर वहाँ ढूँढ़ने से दूध न मिला। जमींदार खामख्वाह दूध चाहता था। कोई ऐसा ही कारण था। बस वह क्रोध में आकर बोला : 'यदि गाय-भैंस नहीं हैं, तो क्या औरतें भी ब्याही नहीं हैं? फिर उन्हीं को क्यों नहीं दुह लाते?'

किसानों से वह जमींदार बेगार करवाता था—सभी जाति के लोगों से! मौजूदा जमींदार के दादा बा. शुक्कन सिंह का जुल्म वहाँ प्रसिद्ध है। वह शक्स मुंगेर के सिकन्दरा थाने में अपनी जमींदारी में ऐसा जुल्म करता था कि सर्वे तक में उसने बाधा डाली! मुझे बताया गया कि बिहार सरकार को उसी के लिए खासतौर से काश्तकारी कानून की 112 धारा लगा कर कार्यवाही करनी पड़ी।

यदि रेवड़ा के किसान बैलगाड़ी रख कर किराए पर चलाते और किसी प्रकार गुजर करते, तो उनकी गाड़ियाँ मुफ्त में ही जमींदार के घर कई-कई दिन काम में रखी जाती थीं। न तो उन्हें और न बैलों को खाना तक दिया जाता था! शाम को वे छोड़ दिए जाते थे। सुबह फिर बुलाए जाते! न आने पर आफत! जमीन यदि उन्हें जोतने को दी जाती तो सैकड़ों बहाने से प्रायः सारी पैदावार ले ली जाती! बहुत ही कम उन्हें छोड़ा जाता! इसी से किसान हद से ज्यादा ऊब चुके थे। उनके भीतर असन्तोष की आग जलती थी। यह दूसरा कारण था सफलता का।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मगर जब तक किसान को आशा रहती है कि उसका मामला निपट जाएगा और जमींदार मान जाएगा, तब तक वह लड़ने का नाम भी नहीं लेता। वह स्वभावतः ऐसा ही दकियानूस होता है। इधर जब किसान आन्दोलन चला तो जमींदार ने अपनी मनमानी शर्तों पर भी किसानों को खेत देने से साफ इनकार कर दिया! सस्ती का जमाना था। नौकरी-चाकरी के लिए भी कहीं पूछ नहीं। जीविका का कोई दूसरा रास्ता न था। इसलिए किसान दौड़े-धूपे। जमींदार तथा उसके नादिरशाह अमलों की लाख खुशामदें कीं। मगर फल कुछ न हुआ। रोने-गिड़गिड़ाने और आरजू-मिन्नत से कोई पत्थर को नहीं पिघला सकता। जमींदार सोचता यदि इन्हें खेत दिया, तो इनका कानूनी हक स्पष्ट हो जाएगा; और अगर इन्होंने दावा कर दिया कि न छोड़ेंगे—तो?

वे लोग मजिस्ट्रेट के पास गए! मिनिस्टरों के दरवाजे भी उन्होंने खटखटाए। मगर बेकार! नेताओं में किसी-किसी ने कहा कि किसान सभा और यदुनन्दन शर्मा के पास क्यों नहीं जाते? यहाँ क्यों आए हो? फलतः वे लाचार होकर निराश हो गए। अब वे जी-जान पर खेलने को तैयार (desperate) थे—यदि कोई रास्ता सूझता। यह तीसरा कारण था उनकी कामयाबी का।

इसी बीच शर्मा जी एक बार उनकी खबर लेने वहाँ एकाएक पहुँच गए। आषाढ़ का पानी पड़ा था। थोड़ी-बहुत मक्की या सावां वे बो चुके थे। फिर जमींदार ने दफा 144 के जरिए रुकवा दिया था। खेत परती पड़े थे। खेतों में बीज बोया न गया था। खेत में धान का बीय यों ही पड़ा रह गया था। बहुत ही नाम मात्र को रोपा जा सका था! जो रोपा गया था, उस पर भी जमींदार का दावा हो गया था। किसानों ने अपनी दुःख-दर्द-गाथा उन्हें सुनाई।

शर्मा जी पिघल गए! उनका हृदय मानो विदीर्ण हो उठा। उन्होंने किसानों को समझाया-बुझाया और आश्वासन दिया। अन्त में कहा कि पुलिस, नोटिस, जमींदार की धमकी और जेल या लाठी की परवाह न करके धान काट लो और खेत जोत लो। पीछे देखा जाएगा!

किसानों ने बात सुन ली, मगर उनकी समझ में न आई!

वे समझते थे कि यह किसान नेता है, कोई आसान रास्ता बताएगा। मगर यह तो वही लेक्चर देता है जो दूसरे देते हैं। हमसे जेल जाने और लाठी खाने को कहता है। मगर खुद न लाठी खाएगा और न जेल जाएगा। यह तो खूब है! किसानों का नेता ऐसा ही होता है?

फिर उन्होंने शर्मा जी को साफ सुना दिया—जाइए, जब हमें ही जोतना और मरना है तो जो समझेंगे, करेंगे। यह तो बराबर सुनते ही थे। हमने समझा था, आप कुछ नया और सीधा उपाय बताएँगे, जो आसान हो। यह तो वही पुरानी बात है। हाँ, यदि आप अपनी बात मनवाना चाहते हैं तो यही ठहरिए, हमारे साथ मरिए और आगे-आगे हँसिया तथा हल लेकर चलिए। पीछे-पीछे हम जरूर चलेंगे। नहीं तो हमें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मरने दीजिए। हम ऐसा नेता नहीं चाहते।

शर्माजी* के दिल में यह बात धँस गई और वहीं ठहरने का निश्चय करके फौरन बोले—हाँ, मैं आगे-आगे हँसिया लेकर जरूर काटूँगा और हल जोतूँगा।

फिर तो दुनिया पलटी! किसानों का चेहरा खिल गया! यह चौथा कारण था जिसने रेवड़ा को जितवाया।

उसके बाद फौरन ही उन्होंने मुझे अचानक तार दिया कि मैं फँस गया। जेल जाने की नौबत है। आप काम सँभालेंगे क्योंकि 144 की नोटिस खेतों पर लगी है।

शर्मा जी ने उधर स्वयंसेवकों की ट्रेनिंग के लिए कैम्प खोल दिया। बाकायदा काम होने लगा। चारों ओर प्रचार भी होने लगा। इधर किसानों के साथ जाकर तैयार धान काट लिया। थोड़ा तो था ही, कुछ फौरन कटा और कुछ धीरे-धीरे पीछे कटा।

इस पर सरकार के घर में तूफान मचा! कांग्रेसी मन्त्रिमंडल का जमाना था। जिले के जवाबदेह पुलिस के अफसर पहुँचे और अन्त में कलक्टर साहब भी पधारे। वह तो गया जिले को ही सर करने के लिए आए थे।

किसानों ने उनसे बातें करने से इनकार किया और कहा—शर्मा जी से पूछिए।

वह घर में थे। मजिस्ट्रेट वहीं पहुँचा। वे मिलना न चाहते थे, मगर जब घर में आया तो निकल कर मिले और बातें कीं। उसने पूछा कि धान किस खेत का है? जवाब मिला, उन्हीं खेतों का। उसने कहा कि इसका काटना तो मना है। खैर, काटा तो काटा। हमें दे दीजिए। उत्तर मिला कि यह नहीं हो सकता, चाहे जो हो जाए, यह तो खाने के लिए काटा है और जब तक जेल में रखकर सरकार खिलाने-पिलाने का प्रबन्ध नहीं करती तब तक यदि दे ही देंगे तो खाएँगे क्या?

और बातें भी हुईं। फिर वह चला गया। उसने कहा कि यह तो हमारा कानून साफ ही टूट गया।

शुरू से ही यह तैयारी और पूरी मुस्तैदी भी सफलता का साधन बनी।

इसके बाद शर्मा जी ने हल लेकर बचे-बचाए खेतों में, जिनमें नमी थी और बीज उग सकते थे, रबी स्वयं बोई। किसान भी साथ रहे। बीच में लोगों ने सुलह की बातें शुरू कीं, तो उन्होंने कहा—कीजिए। स्वयं भी जमींदार श्री रामेश्वर बाबू से उन्होंने कहा कि सुलह कर लें, तो अच्छा होगा।

किसान लोग फी बीघा तीस रुपए देकर सुलह करना चाहते थे, जिसके मानी नकद तीस हजार रुपए एक मुश्त! मगर वह न माना। उन्होंने यह भी कहा कि किसान सभा यह सुलह नहीं कर सकती। किसान कर रहे हैं। हाँ, सभा उन्हें रोकती भी नहीं। जब सभा इसमें पड़ जाएगी, तो बुरा होगा।

पर कौन माने?

यदुनन्दन शर्मा मझियावाँ, कुर्था, गया—सम्पादक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उसके बाद देहातों में बिगुल आदि के साथ वालंटियरों का मार्च शुरू हो गया। इससे खूब ही बिजली दौड़ी। मैंने खुद कई मीटिंगें वहाँ रह-रह कर कीं। उनमें स्त्री-पुरुष 20-25 हजार से कम जमा न होते थे। बाहर भी मीटिंगें करके उस लड़ाई का महत्त्व समझाया और किसानों से कहा कि रेवड़ा को तीर्थ समझ, आज्ञा पाते ही, जो जहाँ हो, वहीं से दौड़ पड़े। अन्न-धन की यथाशक्ति सहायता भी करें, यह भी अपील की। स्वयं मैंने वक्तव्य दिया कि अब मौका आ गया है कि किसान सभा को मजबूरन सीधी लड़ाई लड़नी होगी, नहीं तो वह मिट जाएगी। उसके बाद ही सभा की ओर से बाकायदा वही पहली लड़ाई रेवड़ा में छिड़ी।

उधर रेवड़ा में पंचायत बना कर निश्चय हो गया कि जो कुछ तय-तमाम करना हो, वही करेगी। और पंचायत ने तय करके सभी स्त्री-पुरुषों के दिल में यह बैठा दिया कि शर्मा जी के रहते, जो करें वही करेंगे। इसीलिए जेल में जाने पर भी उन्हीं पर बात टाली जाती थी।

अधिकारियों ने हजार कोशिश की कि किसान खुद मिलें और समझौता करें। मगर सब बेकार!

इसलिए पहली बार ऐसी अपूर्व एकता और शर्मा जी के एकच्छत्र नेतृत्व को देख शत्रु लोग घबरा गए। सिर मार कर हार गए। मगर वे एकता और नेतृत्व का गढ़ तोड़ न सके। विजय की यह कुंजी थी।

हमने सिखला दिया था कि पुलिस वगैरह को गाली सुनाना और बदनाम करना ठीक नहीं। उनमें भी तो किसानों के ही 99 फीसदी बच्चे हैं। उन पर भी इस युद्ध का असर होगा, क्योंकि उनके भी ऐसे ही खेत हैं। उनके घर वालों एवं माता-बहनों की भी यही दशा है। उसका चित्र उनकी आँखों के सामने इस लड़ाई में जरूर आएगा और उनका दिल पसीजेगा। फलतः स्त्रियों ने पुलिस के सिपाहियों के सिर पर चन्दन और अक्षत चढ़ाया और उन्हें भाई कह कर पुकारा, हालाँकि वे धर-पकड़ करते थे। इससे उनका दिल जरूर रोता था।

अन्त में 'शर्मा जी की जय' के नारे लगाते हुए ही वे लोग वहाँ से गए। एक चीज यह भी निराली ही थी।

औरतों ने मर्दों के साथ-साथ पूरी सहानुभूति और मुस्तैदी दिखाई, यहाँ तक कि गिरफ्तारी के लिए हठ तक किया। आखिरी दिन जब पुलिस कच्चे कुओं को गिरा देने और उन पर चलने वाली लाठा-कुंडी को जब्त करने गई तो औरतों ने जम कर मुकाबला किया।

साठ-सत्तर पुलिस के जवान, कई अफसर, मजिस्ट्रेट वगैरह साथ ही गए थे। मगर जहाँ पहले एक ही औरत लाठा चलाती थी, वहाँ उसने जैसे ही पुकारा—उनका झुण्ड जमा हो गया! एक चलाती और बाकी नारे लगातीं—'जमींदारी का नाश हो! अंग्रेजी राज का नाश हो! किसान राज कायम हो! इनकिलाब जिंदाबाद!' आदि-आदि।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जब उस कुएँ पर, जहाँ वे थीं, पुलिस न पहुँची, किन्तु दूसरे ही पर जाकर अपना काम करना चाहा—तो दौड़ कर औरतें वहाँ भी पहुँचीं और उन्हीं नारों के साथ लाठा चलाना शुरू किया। पुलिस भक्कू बन कर खड़ी थी। उससे कुछ बन न पड़ता था।

प्रान्तीय किसान कौंसिल के सभी सदस्य उस दिन वहाँ थे। हम लोग पहले तो दूर से ही यह दृश्य देखते थे। पीछे निकट चले गए। पुलिस कुछ न कर सकी और अपना-सा मुँह लेकर बैरंग लौट गई। अजीब समाँ था। हमारे कलेजे बाँसों उछल रहे थे। शर्मा जी तो जेल में थे। असल में खेती का दिन था नहीं। सत्याग्रह होता कैसे? इसी से उन्हीं खेतों में कच्चे कुएँ खोदे गए। उन्हीं से साग-तरकारी तथा ऊख बोने के लिए जमीनें सींचते थे, ताकि नर्म होने पर जोती जा सकें। पुलिस वही काम बन्द करना चाहती थी। मगर औरतें तैयार थीं कि लाठा और कुंडी पुलिस को न ले जाने देंगी, पकड़ कर लिपट जाएँगी।

औरतों से मुकाबला होने से पहले एक और घटना भी हुई, जिसमें पुलिस मर्दों से हार चुकी थी। पहले तो उसने कुछ लोगों को, जो हल वगैरह चलाते थे, पकड़ा। किसान भी पकड़े गए और उनके हलवाहे भी। याद रहे कि खुशी-खुशी ये हलवाहे वगैरह जेल गए। वहाँ भी खुश थे। रेवड़ा में सभी का सहयोग था। सभी तैयार थे—फिर चाहे वे किसान हों या नहीं। यही खूबी थी। इसीलिए पीछे थोड़ी-बहुत जमीन सभी को, विजय होने पर, दी गई। जिनके पास पहले न थी, उन्हें भी दी गई।

परन्तु जब पुलिस ने देखा कि धर-पकड़ से कुछ होने-जाने का नहीं, जितने पकड़े जाते उनसे कई गुना हाजिर थे, तो हल, कुदाल आदि खेती के औजार भी छीनना शुरू किया। उससे गरीब किसानों की बड़ी हानि थी। कहाँ से बार-बार लाते?

इसलिए हमने तय किया कि चाहे जो हो मगर खेती के औजार पुलिस न ले जाने पाए। एक-एक औजार को दस-दस आदमी पकड़ कर लटक जाएँ। इसलिए उस दिन जब हल चलाने का समय आया, तो दो ही चार हलों के साथ सैकड़ों आदमी गए। हल चलता था और वे वहीं बैठ कर नारे लगाते थे। जब पुलिस के सैकड़ों का दल कैम्प से चला, तो गाँव में घण्टा बजा। बस, सब सजग हो गए और दौड़ पड़े।

घण्टे का मतलब था—खतरा या बुलाहट है। ऐसा ही संकेत था। इसे सुन कर सभी को हमारे कैम्प—डीह—पर दौड़ आना पड़ता था। इस घन्टे से बड़ी आसानी थी। यह पक्के संगठन की निशानी थी।

उस दिन जब पुलिस आई और हल वगैरह छीनने लगी, तो हम लोग भी दौड़ कर देखने गए कि क्या होता है। पुलिस ने हजार चाहा कि हल और कुदाल ले ले, मगर लोगों ने नहीं छोड़ा तो नहीं छोड़ा। थोड़ी देर तक कोशिश करके पुलिस हार गई। तब औरतों की ओर गई। मगर वहाँ भी कुछ न कर सकी। उसने यह न सोचा था कि हम औजारों को रोकेंगे तो औरतें भी इस प्रकार भिड़ेंगी। अतः शर्म के मारे पुलिस रास्ता (सड़क) छोड़ कर खेतों में भटकती फिरी। जाने क्या सोचती

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

थी। पीछे रास्ता छोड़ कर ही टेढ़े-बाँके मार्ग से डेरे पर पहुँची। हम लोग हँसते रहे। असल में हँसी रोकी जा नहीं सकी। वह पुलिस की आखिरी हार थी।

वह तो फिर कभी पकड़ने न आई।

हाँ, इसी बीच किसानों की जो 10-12 बीघे ऊख थी, उसे हम मिल में देकर चटपट रुपया बना लेना चाहते थे। मगर सरकार के इशारे पर मिल वालों ने लेने से इनकार किया! इस पर एक भी ऊख न जाने देने और पिकेटिंग करने की धमकी देते ही मिल वाले सीधे हो गए और ऊख ले ली। इस प्रकार, किसानों को हजारों रुपए मिल गए। ये रुपए और तरह कभी न मिलते।

रेवड़ा की तैयारी का एक अच्छा सबूत देखिए। एक स्त्री के एक नन्हा-सा बच्चा गोद में था। एक बच्ची भी थी। उसके घर में दो ही मर्द थे और दोनों ही जेल में थे। हमने उसका हाल पुछवाया कि शायद कोई तकलीफ हो या कम से कम उसे मानसिक वेदना ही हो। पता लगा कि वह तो खुश है और कहती है कि मर्दों के रहने पर तो खर्च की फिक्र थी, मगर अब तो कोई फिक्र नहीं है—क्योंकि खर्च घटा था। यह बात भी थी कि जो जेल में हो, उसकी खेती-गिरस्ती, या पशु आदि की हिफाजत सब मिल कर करते थे। ऐसे लोगों के घर वालों को खाने-पीने का कोई कष्ट न हो, इसकी भी फिक्र बराबर की जाती थी।

उस लड़ाई के सिलसिले में ही लोगों ने बिना टिकट उस लाइन में रेल में आना-जाना सीख लिया। हजारों आदमी बराबर ऐसा करते थे। जब पं. यदुनन्दन शर्मा का केस गया में चला, तो बिना टिकट के किसानों से भरी ट्रेनें जाने और आने लगीं ! पीछे, तारीख के दिन, हर ट्रेन के प्रत्येक खाने में लट्ठबन्द पुलिस और पुलिस अफसर जाने लगे। वे चढ़ने से रोकते थे। मगर फिर भी लोग पहुँच ही जाते थे। गया से चलने में तो खामख्वाह चढ़ लेते थे।

एक बार सारी ट्रेन ऐसों से ही भर गई और टिकट वाले मुँह ताकते खड़े रह गए। फिर बड़ी दिक्कत से मैंने जाकर उन्हें उतारा क्योंकि कलक्टर वगैरह थक चुके थे (किसान उनकी बातें सुनते थे, फिर उन्हें देखकर बोल उठते थे, 'भूखे हैं, रोटी दो। शर्मा जी छोड़े जाएँ।' आदि-आदि)।

रेवड़ा में अन्त में जीत हुई। जिला कांग्रेस कमिटी की बकाश्त कमेटी ने जो 150 बीघे पर जमींदार के कब्जे की रिपोर्ट दी थी, वह मजबूरन उसे देकर बाकी किसानों ने ली। करते क्या? अपनी ही कमेटी की रिपोर्ट जो थी! लाचारी थी!

(12)

जनता की लड़ाइयों में वे ही जीतते हैं जिन्हें न केवल अपने में पूरा विश्वास होता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है, वरन् अपने लक्ष्य और जनता में भी। बिना इन तीन विश्वासों के विजय असम्भव है और अगर ये विश्वास हों तो उसे कोई रोक भी नहीं सकता। ऐसे विश्वास का सुन्दर नमूना बिहटा में मिला।

वहाँ वाली चीनी की मिल के जुल्म से ऊब कर हमारे साथियों ने, जो मजदूरों में काम करते हैं, मजदूरों की हड़ताल की बात सोची। उसकी तैयारी भी की।

मैं तो उस तैयारी से पूरा वाकिफ इसलिए न था कि उस काम से मेरा खास ताल्लुक न था; वह उन्हीं लोगों के जिम्मे था। पर, यह मालूम था कि वे लोग काम ठीक-ठीक न कर रहे थे, कुछ ढिलाई थी इसलिए मजदूरों का सुन्दर संगठन बिगड़ रहा था और मिल वाले अनेक ढंगों से उनमें फोड़-फाड़ कर रहे थे। उन्हें हिम्मत भी जुल्म करने की इसलिए हुई थी। वे चाहते थे कि मजदूरों की सभा रहने न पाए। इसलिए उनकी यूनियन में जिन मजदूरों ने काफी दिलचस्पी ली, या जिन्होंने उससे पहले वाली अत्यन्त सफल और पूर्ण हड़ताल में पूरा भाग लिया था, उन्हें या तो निकाल चुके थे, या किसी न किसी बहाने से निकाल रहे थे। इसीलिए घबराहट थी।

और हड़ताल की बात सोची गई। मुझे क्या? जब उनके नेता और मेरे साथी चाहते थे, तो मैं और करता ही क्या?

हाँ, मैंने यह जरूर कहा कि जरा अच्छी तरह जाँच कर देखें कि सफलता होगी या नहीं। उन्होंने प्रान्त के एक मजदूर नेता को, जो साथी ही है; बुलवा कर सब बातें कहीं और सारी हालत की जाँच करवाई। नेता ने भी कहा कि आधा इधर, आधा उधर की बात है। अगर मौका लग गया तो हम जीत जाएँगे!

फिर तो शाम को हड़ताल की घोषणा हुई। एक ही दो घंटे में वह होने वाली थी। मैं आश्रम चला गया। वे लोग वहीं थे। रात में जय-जयकार और शोरगुल दूर से सुनता रहा। सोचा, काम बना। मगर सुबह आया तो सुना कि हिसाब गलत निकला। केवल सौ-डेढ़ सौ मजदूर ही हड़ताल कर सके! नेता लोग मनहूस थे। कहने लगे कि विफल रहे—अन्दाज सही न था। मैंने पूछा, तब? उत्तर मिला, कोई चारा नहीं, दिन-भर यहीं मुँह छिपा कर पड़े रहेंगे और शाम को अँधेरे में यहाँ से चले जाएँगे! अजीब बात थी। मैंने कहा कि आखिर रहिएगा कहाँ; रास्ता चलना असम्भव हो जाएगा। लेकिन आप लोग चाहे जो भी करें, मैं क्या करूँ? मैं तो यहीं रहूँगा। जब तक राजनीति से हट न जाऊँ मेरे लिए तो दूसरा चारा ही नहीं, सिवाय इसके कि मिल वालों को धर दबाऊँ। बोले, यह तो गैर-मुमकिन है। मैंने पूछा, गैर-मुमकिन क्यों? आखिर मेरे किसानों की ऊख से ही मिल चलती है और अगर उनसे कहूँ तो एक भी ऊख न आए। यद्यपि अभी-अभी मिल चालू हुई है और जाड़ा शुरू है इसलिए किसानों को पैसे की सख्त जरूरत है, मगर मेरा पूरा विश्वास है कि मेरी बात मानेंगे और हड़ताल कर देंगे। उन्होंने ऐसा कई बार किया है। तब वे बोले, सो तो होगा; मगर बाहर से रेल में जो ऊख आएगी उसका क्या होगा? मिल वाले

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तो सब ऊख बाहर से ही मँगा सकते हैं। ऊख इस साल ज्यादा है भी। मैंने उत्तर दिया—किसान ही रेल पर पिकेटिंग भी करेंगे और भीतर न जाने देंगे। सवाल हुआ, कितने लोग पिकेटिंग करेंगे और जेल जाएँगे! जितने की जरूरत होगी उतने—मैंने कहा।

इस पर हँस कर बोले—नहीं-नहीं, ज्यादा से ज्यादा पचीस-पचास आदमी जाएँगे, और कुछ न होगा। हाँ, आपकी भी बची-बचाई प्रतिष्ठा जाएगी, यही होगा। मैंने हजार दलीलें दीं और उन लोगों के दिल से यह धारणा हटानी चाही। मगर कुछ न हुआ। मेरे भीतर अजीब महाभारत मचा था।

मेरे सामने तो वे बातें मान लेते। मगर ज्यों ही मैं तैयारी के लिए हटता कि फिर वही बातें चलने लगतीं और कहते कि कुछ न होगा। फलतः दिन में तीन बार मैंने उन्हें मनाया और वे पीछे फिसल गए! आखिर में शाम को ऊब कर मैंने तय कर लिया कि ये लोग चाहे कुछ सोचें और करें, मैं तो किसानों को हड़ताल और पिकेटिंग के लिए पुकारूँगा ही!

जब मेरा रंग बेढंगा देखा, तब कहीं वे लोग राजी हुए—सो भी और साथियों के जोर देने पर, मजबूरन।

बस, फिर तो पुकार हुई और उसी रात में, जबकि कड़ाके का जाड़ा पड़ रहा था, तीन-चार हजार किसान सारी रात मिल के फाटक और लाइन पर नारे लगाते पड़े रहे और एक भी गाड़ी भीतर न जाने दी! पुलिस का दल भी तैनात था। जब निराश होकर और धर-पकड़ न देख कर सुबह तीन बजे अधिकांश लोग चले गए, और थोड़े ही रहे, तब पुलिस ने सैकड़ों को पकड़ कर बड़ी दिक्कत से कुछ रेलें भीतर मिल में पहुँचवाई।

इसके बाद तो मेरे दोस्तों की आँखें खुलीं और उन्होंने माना कि मेरा ही कहना ठीक था।

फिर, दिन-भर शान्ति रही। लोग पिकेटिंग पर डटे रहे। देहात की ऊख भी रोकी गई। शाम को फिर वही भीड़ और कई हजार लोगों का वही हंगामा! पुलिस, मजिस्ट्रेट, मिल वाले सभी हैरान थे कि यह क्या हो गया। रात में भी कुछ न हुआ। और फिर, उसी प्रकार सुबह सैकड़ों को पकड़ कर कुछ रेलें भीतर की जा सकीं। मगर वे लोग घबरा गए। हमने सोचा कि अब आगे एक भी रेल न जाने देंगे, चाहे जितनी धर-पकड़ हो।

इससे मिल वालों को बड़ी बेचैनी हुई और मेरे पास पैगाम पर पैगाम आने लगे कि मैनेजिंग एजेंट मिलना चाहते हैं। मुझे क्रोध तो बहुत था। मगर काम करना था। इसलिए कह दिया—मिल सकते हैं।

फिर क्या था। मोटर दौड़ाए सीधे आश्रम आए और पास के ही डाक-बँगले में बैठ कर घंटों बातचीत के बाद हमारी माँगें उन्होंने मान लीं। इस तरह हम विजयी हुए। बेशक, मेरा तो किसानों पर पूरा विश्वास था। मगर मैं भी जितनी सोच न

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सका था, उससे कहीं ज्यादा उन्होंने मुस्तैदी दिखाई। ठीक ही है, पीड़ित जनता उग्रतम नेताओं से भी हजार गुना उग्र होती है।

इस प्रकार, हमारे अटल विश्वास ने पासा पलटा और विजय दिलाई।

(13)

दरभंगा जिले के पड़री परगने में बिथान एक मुकाम है। रोसड़ा थाने में पड़ता है। महाराजा दरभंगा की जमींदारी है। वहाँ उनका सर्किल ऑफिस पास में ही गजपति मुकाम में है। सर्किल के पास ही सीही मौजा है, जहाँ बहादुर किसान सेवक श्री पंचलाल (पाँचा) रहता है।

सारा इलाका साल-भर प्रायः जलमग्न ही रहता है। समुद्र के टापुओं की तरह कहीं-कहीं गाँव हैं जिनमें तथाकथित 'रैयान' और खेत-मजदूर ही रहते हैं। पाँचा कोइरी जाति का है। वहाँ की सभी की सभी जमीनें जमींदार की बकाश्त मानी जाती हैं। उस पानी में निराले ढंग का धान होता है। न तो नीलामी के कागज हैं और न सर्वे के कागजों से ही पता चलता है कि कब कैसे बकाश्त की रचना हो गई! असल में जमींदार जबर्दस्त ठहरा। उसने जैसा चाहा कर लिया। वे गरीब सदा के दबे-दबाए कब बोलते? वहीं की एक औरत ने कांग्रेस की जाँच-कमिटी के सामने कहा था कि तहसीलदार ने हुक्म दिया था कि इसे नंगी करो और इसके ससुर की जाँघ में इसकी जाँघ बाँध दो!

वहाँ अन्न तो दुर्लभ है। जमीन में अथाह पानी रहता है। कुछ भी पैदा नहीं होता। फिर भी लगान वसूल होता है। गरीब लोग मछली मार कर खाते-पीते हैं। मगर वह भी करने नहीं देते ये जमींदार के दूत!

पानी में जो धान होता है उसे रात में एक प्रकार की चिड़िया खा जाती है। इसलिए रात में नाव पर बैठ कर किसान रखवाली करते हैं। जमींदार के गुण्डे रात में आकर नाव बलात् उलट देते और किसान को पानी में डूबा छोड़, नाव ले भागते! किसानों के हाथ-पाँव पीठ की ओर बाँध कर उलटा डाल देते! मार-पीट का तो कोई ठिकाना नहीं। गोइठा (उपला) और दूध-दही तो उनकी अपनी चीज थी। डर के मारे किसान पहुँचाते रहते!

वहाँ सभा कौन करे? और अगर कभी कोई गया भी, तो सीधे स्वराज्य दिलाने का ही वादा कर आया! देह पर चिथड़ा नहीं और न पेट में अन्न—मगर ठेठ स्वराज्य ही दिलाएँगे; जले पर नमक छिड़कना इसे ही कहते हैं! यदि जमीन और जुल्म हटाने की बात करें तो महाराज रंज जो हो जाएँगे! म्याऊँ की ठौर कौन पकड़े? फिर तो स्वराज्य मिलने में महान विघ्न हो जाएगा। महाराजा ही तो उसे लाएँगे न? किसान,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जमींदार के मामूली नौकरों की जूती से भी बदतर थे और उनकी छाती वे लोग बराबर रौंदते थे! मगर उनका पुर्साहाल कोई न था।

मैं जब पहले पहल सन् 1937 ई. में वहाँ गया, तो नाव से ही हसनपुर रोड स्टेशन से जाना पड़ा। वहाँ देखा कि 20-25 हजार स्त्री-पुरुषों की भीड़ है। सभी प्रायः नंगे, गन्दे और फटे चिथड़े पहने, काले-कलूटे, दरिद्रता की मूर्ति नजर आते थे। मैं रो पड़ा। मुझे पता चला कि बहुतेरे तो खबर सुन कर एक दिन पहले से ही आए हैं! दस-पन्द्रह मील से पानी में आना।

खैर, मैंने सभा की और उनके हृदय की ही बात बोलता रहा। वे मुग्ध हो गए! उनका चेहरा खिल गया! जमींदार ने कोई विघ्न न डाला। उसे और उसके अमलों को असल में विश्वास ही न था कि यहाँ सभा होगी और इतने लोग आएँगे।

मगर यह सफलता देख वे लोग भी घबरा गए। मेरे लेक्चर ने तो उन्हें भयभीत कर डाला। उन्होंने सोचा कि उनके सदा के पालतू जानवर—ये गरीब—कहीं हाथ से निकल न जाएँ। मैंने जीवन-भर वैसा दृश्य नहीं देखा है—और, न वैसी पामाली।

दूसरी बार, एक वर्ष बाद, जब फिर मीटिंग हुई तो जमींदार की सारी ताकत लगी और उसने चाहा कि सभा न हो सके। जब गन्दे और झूठे प्रचारों एवं धमकियों का नतीजा कुछ न हुआ—क्योंकि किसान तो पहली सभा से ही जान चुके थे कि बात क्या है—तो सभा के लिए जमीन नहीं मिले, यही किया गया। एक के बाद दीगर, तीन-चार जगह तैयारी हुई। मगर अन्त में सभी जगहों से हटना पड़ा। जिस किसान की जमीन में शामियाना जाता, वही आकर रोने लगता कि हम उजड़ जाएँगे! आखिरकार ऊब कर हमने पहली सभा की ही जगह तैयारी कर ली। सोचा—यह तो जमींदार की खास जमीन है; अगर वह रोकेगा तो सत्याग्रह होगा। खैर सभा हुई और लोग खूब जमे।

अब सभा में ही उनके गुण्डे विघ्न करने लगे। कोई इधर बोलता, कोई उधर सवाल करता ताकि काम न हो सके। वहाँ पुलिस भी थी; पर चुप थी। अन्त में किसानों का रुख बिगड़ा। तब गुण्डे लोग सटक सीताराम हुए।

मगर फिर दूसरा उत्पात किया। बड़ा-सा हाथी सीधे सभा में घुसाना चाहा, ताकि भगदड़ मच जाए। पुलिस ने न रोका। उसे हिम्मत ही न थी। मगर किसान कब बर्दाश्त करते? कई हजार खड़े हो गए और ईंटों से मारते-मारते हाथी को भगा दिया! फिर तो सभा का काम पूरा हुआ और खूब ही हुआ!

इस बार जमींदार की जो एक न चल पाई और सीधे किसानों ने ही उसको पछाड़ा, इससे उनमें हिम्मत हुई। फलतः दूध, घी, दही, गोइठा, बेगार, मारपीट—सब बातें बन्द हो गईं। वे लोग तन गए। पूर्वोक्त पंचलाल ने उन्हें तैयार किया और सब चीजें रोक दीं। जब तक किसानों के बीच से ही उनके नेता पैदा न हों, उनका उद्धार नहीं हो सकता। पड़री वालों की यह दशा न होती यदि पंचलाल, उसका भाई और उसके साथी तैयार न होते।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पंचलाल बड़ा ही बहादुर और मजबूत जवान है। सीही में जो खेत जबर्दस्ती जमींदार जोतता था, उसे उसने खुद जोता और उसमें फसल लगाई। जब काटने गया, तो जमींदार के आदमी बन्दूक लेकर रोकने आए। पंचलाल सीधे छाती तान कर उनके सामने खड़ा हो गया और कह दिया—मुझे गोली मार कर मेरी लाश भले ही ले जा सकते हो; मगर जीते जी यह फसल न जाने दूँगा। आखिर वे लोग हार कर चले गए।

इसी प्रकार उसने न जाने कितने अत्याचार रोके।

तीसरी बार खास गजपति में, ऑफिस के बगल में ही हमारी सभा हुई। वहाँ लम्बा सा लाल झंडा फहरा रहा था। सर्किल अफसर वगैरह शर्म और डर के मारे भाग कर कहीं चले गए। जिनकी छाती पर बैठते थे, वे ही आज उलटे बैठना चाहते हैं! भला, यह बर्दाश्त हो? मगर करते क्या? इसलिए हट जाना ही उचित समझा।

पड़री में युगान्तर हो गया! अब पुराने दब्बू किसान न रहे! अब तो वे सेर के लिए सवा सेर हैं! 'पैसा देकर बाजार दर से गोइठा लो, नहीं तो जाओ'—ऐसा साफ ही सुना देते हैं! छाती ऊँची करके चलते हैं।

(14)

दरभंगा जिले के बहेरा थाने में देकुली धाम मौजा है। वहाँ के हमारे सबसे जबर्दस्त और धुनी कार्यकर्ता श्री सत्यदेव राय हैं। गाँव बड़ा है। वहाँ ज्यादातर मैथिल ब्राह्मण बसते हैं। मगर सब मिला कर दूसरे लोग भी काफी हैं। उन्हीं ब्राह्मणों में एक हजरत वहाँ के जमींदार हैं।

जमींदारी तो छोटी ही है। मगर कर्ज पर उनके कई लाख रुपए लगे हैं, ऐसा बताया जाता है। पुराने आदमी हैं और नीम टर अंग्रेजी भी जानते हैं। कहा जाता है, पुराने जमाने के मैट्रिक्युलेशन तक पढ़े हैं।

जो हो, कर्ज पर रुपए देकर उन्होंने गरीब किसानों को पामाल कर दिया है। उनकी सारी जमीनें लिखा ली हैं। वहाँ गरीबी बहुत ज्यादा है—इतनी कि कह नहीं सकते। एक बार मैं भूकम्प के बाद उसी इलाके में—खास देकुली नहीं—सभा करने गया था। सभा में बहुत लोग तो सिर्फ इसलिए आए थे कि कुछ रिलीफ—खाना, कपड़ा—बँटेगा। वहाँ बागमती नदी की कई धाराएँ हैं। उनने उस इलाके को तबाह कर रखा है। मगर देकुली उस धारा से बचा है।

फिर भी, गरीबी ऐसी है कि पास ही के एक किसान ने मुझे सुनाया कि उसने सकरकंद की खेती की थी और गरीब लोगों ने उखाड़ कर खा ली, मैं कुछ न कर सका! करने की हिम्मत ही न हुई! खेत में चना लगा था। वह तो खड़ा ही रहा, पर उसके दाने निकालकर किसान खा गए।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वैसे ही इलाके में देकुली का जालिम साहूकार-जमींदार आतंक राज्य कायम किए बैठा है। इसके करते वहाँ किसानों को जबर्दस्त संघर्ष करना पड़ रहा है, जो बराबर जारी है।

एक वार मैं वहाँ जव सभा करने गया, तो किसानों की अपार भीड़ पाई! असल में पाप का घड़ा भरा है और फूटने वाला ही है, ऐसा मालूम हो गया! बात की बात में वैसा भारी जमाव मैंने शायद ही कहीं पाया हो!

वहाँ जाने का रास्ता ऐसा बीहड़ और सड़कें ऐसी खराब कि कुछ पूछिए मत। इसीलिए तो जुल्म करने वालों को आसानी होती है। फरियाद भी कौन सुने? वहाँ कौन जाए? परवाह किसे?

मगर मैंने देकुली को जितना तैयार पाया, पुलिस की आँखों के ही सामने जमींदार के लट्ठधरों ने जिस प्रकार हमारे कार्यकर्ताओं को वहाँ पीटा फिर भी किसान भयभीत न हुए, वह निराली चीज है। अकेले देकुली से कई सौ किसान जेल गए। आज भी पचासों जेल में हैं! सैकड़ों पर केस चल रहे हैं! फिर भी, हिम्मत में जरा-सी भी कमी का नाम नहीं। वाह रे मर्दानगी और वाह रे तैयारी! राघोपुर और पंडौल सागरपुर के सत्याग्रह संघर्ष में भी वहाँ के बहादुर किसान गए अैर उसे चलाया।

लोग कहते हैं कि खूब आन्दोलन होने से और सभा का काम बराबर होने से ही किसान और मजदूर तैयार हो सकते हैं। मगर जुल्म और तबाही ऐसी पाठशालाएँ हैं, जो पीड़ितों को अपनी आँच में तपाकर पक्के बना देती हैं!

देकुली में हम कोई ज्यादा काम नहीं कर सके हैं। फिर भी, उसकी मुस्तैदी और उसकी धुन हमारी उक्त बात के पक्के प्रमाण हैं। वास्तविक स्थिति (objective condition) यों ही तैयार होती है। यह ठीक है कि अकेले श्री सत्यदेव राय की लगन और धुन ने—मस्ती ने—सबों में बिजली दौड़ा दी है। वह जवान भी चेहरे-मोहरे से खाँटी किसान मालूम पड़ता है। है भी अत्यन्त सीधा-सादा। मगर उसके भीतर जो आग छिपी है, वह जमींदारी को जला कर ही दम लेगी।

उस जमींदार के दोस्त उस जिले के कुछ प्रमुख कांग्रेसी नेता हैं। वे उसके कानूनी सलाहकार और वकील भी हैं। वह इलाका छोटे जमींदारों का है। यह भी एक बाधा है क्योंकि ऐसे जमींदार आसानी से किसान सभा के खिलाफ भड़काए जा सकते हैं?

सरकार का क्या कहना? वह तो जमींदारों और श्रीमन्तों की पीठ पर सदा रहती ही है। अमन और कानून उन्हीं के लिए हैं न? गरीबों के लिए तो कानूनी न्याय ऐसी महँगी चीज है कि अप्राप्य है। वे उसमें पड़े कि तबाह हुए और घर का भी आटा गीला करके लौटे।

यदि कानून, पुलिस और कचहरियाँ न होतीं, जेल और फाँसी का तख्ता न होता, तो किस जमींदार की ताकत है कि लगान वसूल कर लेता? इनने किसानों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के हाथ-पाँव बाँध रखे हैं।

देकुली* का जमींदार इन साधनों से सम्पन्न है, इसीलिए हिम्मत करके लड़ता चला आ रहा है, हालाँकि काफी रुपए खर्च करने के कारण उसकी भी बुरी गत है।

किसानों का मुकाबला वहाँ जमींदार और सरकार ने दो प्रकार से किया—अलावा मार-पीट के। एक तो कानून तोड़ने के लिए उनकी गिरफ्तारियाँ कीं। दूसरे, सामूहिक रूप से उन पर दूसरे-दूसरे केस खड़े किए। इस तरह किसान हैरान किए गए और जेल पहुँचाए गए।

किसानों ने भी सत्याग्रह, यानी बकाश्त जमीन के जोतने, बोने और फसल काटने के सिवाय जमींदार का घोर एवं सफल बायकाट किया। यह अस्त्र सफलतापूर्वक वहीं प्रयुक्त हुआ।

फलतः, जमींदार परेशान हो गया। उसकी खेती-गिरस्ती के लिए हलवाहे-चरवाहे की कौन कहे, उसे पानी देने और उसका भोजन बनाने वाले नौकरों तक का मिलना असम्भव हो गया। मेहतर या और काम करने वालों की भी यही दशा रही। इस प्रकार, रुपया-पैसा देकर सबको बाँध रखने वाले चलता-पुर्जा जमींदार का ऐसा सफल बायकाट किसी और जगह नहीं हुआ!

दूसरी खूबी वहाँ यह है कि सभी प्रमुख कार्यकर्ताओं के जेल चले जाने पर भी, किसान लोग स्वयं यह काम चलाते रहे। इस प्रकार उनमें स्वावलम्बन आया, खासकर संघर्ष चलाने के मामले में।

सरकार के एक विशेष अफसर के द्वारा सुलह का प्रश्न उठा कर हमारे किसान संघर्ष को रोकने और—पीछे सुलह में टाल-मटोल करते-कराते—परेशान करने की नीति वहाँ भी बरती गई। उसका पर्याप्त कटु अनुभव हमें वहाँ भी हुआ। इसलिए हम लोग उस झमेले में अब पड़ना नहीं चाहते, चाहे वहाँ हो या और कहीं!

(15)

किसानों में हमने यह देखा है कि स्वावलम्बन और सामूहिक रूप से मिल कर काम करने की पुरानी आदत खत्म-सी हो गई है। पहले ऐसा अकसर होता था; गाँव का पंचायती काम सभी मिल कर करते थे। इसे बिहार में बहुत जगह गुवाम कहते हैं। हमने देखा है कि दक्षिण बिहार में आबपाशी के लिए जवाबदेही, कानून के जरिए, जमींदार पर हो जाने के कारण किसान ऐसे परमुखापेक्षी हो गए हैं कि इधर जमींदार कुछ करता नहीं, उधर वे भी उसी की आशा पर फसल खो देते हैं। खुद पैन और

देकुली—उत्तरी बिहार—सम्पादक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आहार का प्रबन्ध नहीं करते कि धान के लिए पानी वर्षा में जमा हो और खेतों में पहुँच सके! नदियों की धाराएँ रुक गई हैं, ज्यादा बालू आ जाने से उनका मुँह बन्द हो गया, और धारा का रुख पलट गया। नदी से खेत में पानी लाने की पैन (नाली) भर गई है। इससे पानी नहीं पहुँच सकता।

जमींदार तो नालिश करके पूरा लगान वसूल करता ही है, आबपाशी का कानून भी ऐसा रद्दी है कि किसान कुछ कर ही नहीं सकता और जमींदार साफ बच जाता है। अजीब हालत है। फसल मारी गई किसानों की और लगान भी देना पड़ा। मगर फिर भी होश नहीं कि खुद कुछ करें!

पटना जिले के बिहारशरीफ के इलाके में राजगिर से एक नदी आती है जिसे पंचाने कहते हैं। उससे लाखों बीघा धान आबाद होता है। मगर उसकी धारा में ज्यादा बालू और छोटे-मोटे पत्थर भर जाने से उसका मुँह बन्द हो गया था। धारा दूसरी ओर चली गई थी। किसान रोते थे।

हमने अपने कार्यकर्ताओं को समझाया कि बकाश्त का सत्याग्रह किसान क्या करेंगे, यदि पंचाने का सत्याग्रह नहीं कर सकते? यहाँ तो फौरन फल मिलेगा और जेल-वेल का खतरा भी नहीं। उनके दिल में बात आ गई!

बस, बीसियों गाँवों में सभाएँ करके किसानों को तैयार किया गया और कई हजार किसानों का जत्था 8-10-12 मील से आकर, ठीक मुकाम पर जमा हुआ। अपनी-अपनी खुराक और जलाने के लिए लकड़ी वगैरह सभी लोग साथ लाए; कुछ यों भी जमा की गई। खोदने की कुदालें भी घर से ही लेते आए। मगर मजबूत टोकरियों की जरूरत थी और वे उनके घर कहाँ? इसलिए कुछ चन्दा करके टोकरियाँ जमा की गईं।

फिर, काम चालू हो गया। एक साथ हजारों कुदालें और टोकरियाँ बराबर चलती थीं! अजीब समाँ था। लगातार हफ्तों काम चालू रहा। मालूम होता था, जैसे पुराने समय में राजा सगर के लड़के समुद्र खोदते हों, या यों कहिए कि गंगा की धारा लाने के लिए भगीरथ का प्रयत्न हो। अन्त में धारा खुल गई। कुछ-कुछ कसर थी जो दूसरी बार के यत्न से साफ हुई। लाखों बीघा जमीन बेखटके आबाद होने लगी। बाढ़ से औरों की जो तबाही होती थी, वह भी बची।

पीछे सरकार ने नाप-जोख की और खुद खुदवाने का वचन दिया। देखें वह क्या करती है। हमें तो उससे कतई आशा नहीं, सो भी शीघ्र। पीछे चाहे जो हो।

इस प्रकार, जमींदारों का अभिमान चूर हो गया कि उनके बिना आबपाशी का प्रबन्ध असम्भव है! किसानों की यह एक महत्त्वपूर्ण विजय है!

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गंगा के उत्तर, मुंगेर और भागलपुर जिलों में, गोगरी से लत्तीपुर तक; एक बहुत पुराना बाँध था। वह गंगा की बाढ़ से उत्तर के सैकड़ों गाँवों की रक्षा करता था। मगर अब वह खत्म हो गया है। सिर्फ कहीं-कहीं उसका निशान मात्र है। फलतः, गंगा और छोटी लाइन के बीच के सैकड़ों गाँव प्रायः हर साल डूबते हैं। उनकी फसल बर्बाद हो जाया करती है।

सभाएँ हुईं। सरकार से प्रार्थना की गई। प्रस्ताव पास हुए, गर्मागर्म स्पीचें हुईं कि वह बाँध बनवा दिया जाए। मगर कौन सुने? सरकार तो वज्र की बहरी है। अतः उसे सुनाना आसान नहीं है।

मैं भी एक बार ऐसी सभा में बुलाया गया। मैंने कहा—यदि सरकार नहीं सुनती तो न सुने; हम खुद-ब-खुद क्यों नहीं सुनते? आखिर सरकार तो डूबती नहीं, डूबते तो हम—किसान हैं। फिर हम क्यों न उपाय करें?

लोगों को यह बात जँची तो। उनकी आँखें भी खुलीं। मगर एक-दो मील नहीं, बीसियों मील लम्बे और पहाड़ जैसे ऊँचे बाँध के बनाने का सवाल था! अतः कुछ आगा-पीछा हुआ। लेकिन फिर सब लोग तैयार हो गए।

सबने तय किया कि बाकी गाँवों को भी खबर दी जाए और सब मिल कर इसे बना ही डालने का तय कर लें। यही हुआ भी। दस-पन्द्रह गाँवों के एक-एक दल बने और तय पाया गया कि अपने-अपने सामने का बाँध ये ही दल पूरा करें।

लोग हैरत में थे कि लाखों रुपए खर्च करके बन सकने वाली चीज ये लोग कैसे बना लेंगे? मगर, आखिर समूह का निश्चय ही तो ठहरा। सामूहिक काम करने का संकल्प भी कोई चीज है!

काम शुरू हो गया—बरसात आने से पहले ही। और, ऐसी तेजी हुई कि मालूम पड़ा कि केवल दस-पन्द्रह दिनों में ही उतना लम्बा बाँध पूरा हो जाएगा। मालूम हो रहा था कि भीम का बल किसानों में आ गया है। मैंने कहीं-कहीं जाकर देखा तो सचमुच पहाड़ जैसा ऊँचा, और कई गाड़ियाँ साथ चलें इतना चौड़ा, बाँध बन रहा था। ऐसी मुस्तैदी थी कि अब लिया, तब लिया हो रहा था।

इतने में ही सरकार की महारुद्र वाली तीसरी आँख खुली और उसने मदद करने के बदले प्रहार किया! रेलवे लाइन को न जाने इस बाँध से क्या खतरा मालूम हुआ? अतः उस कम्पनी ने सरकार पर दबाव डाला।

उधर जमींदारों को मछली का नुकसान सूझा! बाढ़ से पानी आ जाने पर जगह-जगह रुकता था और उसमें मछलियाँ होती थीं। उनकी बिक्री से जमींदारों को काफी पैसे मिलते थे। अब बाँध होने पर, पैसे न मिल सकेंगे।

ठीक है, बाढ़ आने पर पहले किसान और उनके पशु, आदि मछलियों की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ही तरह मरें। पीछे मछली मारी जाएँ! यही है व्यक्तिगत अन्धा स्वार्थ।

मगर सरकार को तो ऐसे व्यक्तियों की रक्षा खामख्वाह करनी थी। इसलिए कानूनी दाँव-पेंच ढूँढ़े गए और प्रमुख लोगों पर नोटिस हुई कि आप लोगों पर केस क्यों न चले! फिर भी परवाह न करके काम जारी रहा। पर, जब धर-पकड़ की नौबत आ गई तो मजबूरन छोड़ देना पड़ा।

अब तक वह यों ही पड़ा-पड़ा वर्तमान शासन प्रणाली को भर पेट कोसता है! मगर क्या वह सुनने वाली है?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

खेत-मज़दूर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रवेशिका

यों तो खेत-मजदूरों, खेती के मजदूरों यानी हलवाहे, चरवाहे वगैरह का सवाल शोषित एवं पीड़ित जनता, मजलूम जनता के सवाल का एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण अंग है, बड़ा हिस्सा है। इसलिए जब कभी यह प्रश्न उठे ठीक ही है। इसका ठीक-ठीक हल हो जाना भी निहायत जरूरी है। इसीलिए जो लोग कमाने वाली जनता के हामी हैं और जो इसकी सभी समस्याओं एवं गुत्थियों को सुलझाने में दिन-रात लगे हैं उन्हें इन खेत-मजदूरों के प्रश्नों का स्वागत करने को तैयार ही रहना चाहिए, बल्कि खुद भी उनकी दिक्कतों और तकलीफों को ढूँढ़ निकालना चाहिए। अगर वे लोग सचमुच किसानों का उद्धार करना चाहते हैं, मजदूरों का निस्तार करने पर तुले बैठे है, तो उनकी ईमानदारी की परीक्षा और जाँच सिर्फ इसी बात से हो जाएगी कि वे इन खेत-मजदूरों की बातों को किस नजर से देखते हैं और इनमें उन्हें काफी दिलचस्पी है या नहीं। अगर किसानों का ताल्लुक खेती और उसके सवालों से है तो खेत-मजदूरों का तो और भी ज्यादा है। वही तो खेती की जड़ हैं, मूलाधार हैं, हाथ-पाँव हैं। इसीलिए खेती और किसानों की बात उठते ही उनकी समस्या सबसे पहले आ खड़ी होती है। ऐसी हालत में उसे अच्छी तरह हल किए बिना ही यह समझ बैठना कि खेती से सम्बन्ध रखने वाले प्रश्न हल हो गए, निरी नादानी और बेईमानी है।

मगर आज की बात कुछ निराली-सी है। जहाँ एक ओर सचमुच गरीबों के लिए चौबीसों घण्टे मर मिटने वाले और उनकी सारी तकलीफों को मार भगाने की धुन वाले मस्तानों की टोली इन खेत-मजदूरों से सम्बन्ध रखने वाले सभी मसलों की उधेड़बुन कर रही है, तहाँ दूसरी ओर शोषक और शासक या यों कहिए कि मेहनतकशों तथा श्रमजीवियों के खून पीने वाले और उनके पिट्ठू भी परेशान हैं। उनकी नींद हराम है। इसलिए वे लोग भी इन खेत-मजदूरों के प्रश्नों को उठाते हैं—इसलिए नहीं कि इन गरीबों की तकलीफों को दूर करें या उन्हें कुछ आराम दें-दिलाएँ। बल्कि केवल इसलिए कि शोषितों एवं पीड़ितों के भीतर ही आपस में लड़ाई लगवा दें। जिससे दलबन्दी की दलदल में फँस जाने पर शोषकों के खिलाफ लड़ी जाने वाली उनकी लड़ाई का संयुक्त मोर्चा खत्म हो जाए और वह लड़ाई इस तरह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

खटाई में पड़ जाए। क्योंकि मजलूमों और पीड़ितों का तो एक ही बल है और वह है उनकी सम्मिलित शक्ति या मजमूई ताकत। फलतः इसमें गड़बड़ी हुई कि सारा मामला चौपट हुआ, सारी लड़ाई हवा हुई।

असल में किसान सभा की बढ़ती हुई ताकत और किसान आन्दोलन की तेजी को देख के जमींदारों और उनके भाई-बन्धुओं के होश ठिकाने रही नहीं गए हैं। उनके दिल दिमाग में कुछ ऐसा खौफ और आतंक छा गया है कि उसका बयान किया नहीं जा सकता है। नतीजा यह हुआ कि वे सभी तरह की बन्दिशें किसान आन्दोलन को कुचलने के लिए करने लगे हैं। कानूनी और गैर-कानूनी एक भी उपाय काम में लाने से चूकते नहीं। बिहार में खासकर तथा अन्य प्रान्तों में भी कानून और शान्ति के नाम पर किसानों एवं किसान कार्यकर्ताओं का जो दमन इधर कुछ वर्षों के भीतर हुआ है वह निराला है। सच्चे और झूठे मुकदमों की जो लड़ी लग गई थी वह किसान सभा के इतिहास में पहली बात थी। इसी के साथ जो गुण्डेबाजी, जो लाठीराज, जो बेतहाशा मारपीट और लूटपाट जमींदारों ने जगह-जगह की, कराई वह भी सोलहों आने नई बात थी। मालूम होता था, कोई सरकार हई नहीं। मजलूमों का पुर्साहाल कोई भी नजर न आता था सिवाय किसान सभा वालों के।

एक ओर तो यह किया गया। दूसरी ओर जमींदारों के पैसे, उनकी कोशिश, पैरवी और उन्हीं के बल पर खेत-मजदूरों में आन्दोलन किया गया। बिहार में तो यह बात खूब ही की गई। मगर एकाध और प्रान्तों में भी यही चीज पाई गई। जहाँ किसान आन्दोलन तेज था वहीं यह बात देखी गई। जमींदारी के अलावे कुछ ऐसे चलते पुर्जे लोगों ने भी यह काम किया जो सस्ती लीडरी और नामधाम कमाने की इच्छा के साथ ही नगद नारायण के जमा करने की भी फिक्र रखते हैं। उन्होंने देखा कि यही तो मौका है। चूकने से पछतावा होगा। उन्हीं को पक्के अवसरवादी कहते भी हैं जो मौके से फायदा उठाने से कभी बाज नहीं आते। नतीजा यह हुआ कि खेत-मजदूरों के बरसाती नेताओं की भरमार हो गई, जगह-जगह। उनकी सभाएँ होने लगीं, उनमें बड़े-बड़े प्रस्ताव पास होने लगे, किसानों के सामने असम्भव माँगें भी पेश होने लगीं, कुछ उचित माँगों के साथ ही, और उनके पूरा न होने पर हल वगैरह का काम बन्द कर देने की धमकी भी दी जाने लगी। कई जगह तो काम बन्द भी करवा दिया गया।

इसी के साथ-साथ एक बात और भी हुई। बिहार में जब किसानों के विराट प्रदर्शन पटने में तथा हजारों अन्य स्थानों पर होने लगे तो देखा-देखी खेत-मजदूरों के प्रदर्शन की भी नकल की गई। पटने में एक प्रदर्शन जैसे-तैसे किया भी गया। बिहार प्रान्तीय किसान कॉन्फ्रेंस के समय मोतिहारी में भी एक छोटा सा दल ऐसा कर रहा था। इसमें कुछ उन महानुभावों का भी हाथ था जो अपने को गाँधीवादी कहते हैं। या यों कह सकते हैं कि जितने लोग और जितने दल किसी कारण से

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

किसान सभा और उसके आन्दोलन के विरोधी हैं और उसे बर्दाश्त नहीं कर सकते उन सबों का किसी न किसी रूप में इस खेत-मजदूर आन्दोलन में हाथ रहा है। यहाँ तक कि किसी वजह से जो इसमें कुछ भी हाथ बँटा नहीं सके वह दिल से इसका समर्थन तो करते ही रहे। इसे देख-देख के खुश भी होते रहे। जब हमने अंग्रेजी में छपी एक पुस्तिका देखी जिसके ऊपर लिखा था कि खेत-मजदूर आन्दोलन की यह रिपोर्ट है, तो हमारे ताज्जुब का ठिकाना न रहा। यह तथाकथित रिपोर्ट जहाँ तक हमारी जाँच से पता चला हिन्दी में या और भाषाओं में न छापकर सिर्फ अंग्रेजी में ही छपी थी। गोया खेत-मजदूर अंग्रेजी के अलावा दूसरी भाषाएँ या तो जानते ही नहीं, या उनके बिना इनके काम में हर्ज नहीं होता। या अपना काम सिर्फ अंग्रेजी से ही चला लेते हैं।

इस रिपोर्ट से पता चला कि असल में बाहरी दुनिया की आँखों में धूल झोंकने के ही लिए इस आन्दोलन का रूप खड़ा किया गया है। खेत-मजदूरों की सेवा से इसे कोई मतलब नहीं है। यह केवल प्रचार और प्रोपेगैण्डा के लिए एक नया जरिया बनाया गया है। इसीलिए तो सिर्फ अंग्रेजी में ही रिपोर्ट छापी गई, ताकि बाहरी दुनिया पढ़ सके। इतना ही नहीं। हरिपुरा में जो कांग्रेस का अधिवेशन 1938 में हुआ था उसी समय आल इंडिया खेत-मजदूर सम्मेलन के अधिवेशन की बार-बार खबर अखबारों में छपी थी। सरदार वल्लभ भाई पटेल ही उसके सभापति होंगे यह भी प्रकाशित हुआ था। मगर कुछ बातें ऐसी हो गईं जिससे न तो वह कॉन्फ्रेंस ही हो सकी और न सरदार वल्लभ भाई सभापति ही बने। मगर इससे साफ हो जाता है कि खेत-मजदूर आन्दोलन के पीछे कौन हैं और इसका मकसद (लक्ष्य) क्या है। कौन नहीं जानता कि सरदार वल्लभ भाई से बढ़के शायद ही कोई किसान सभा का दुश्मन हो?

यह भी बात है कि कौंसिल, असेम्बली आदि के चुनाव में सफलता का साधन भी यह आन्दोलन बनाया गया है। इसीलिए तो ऐन उसी मौके पर इसमें तेजी आती है और चुनाव के आगे-पीछे कुछी समय तक वह कायम रहती है। बाद में कुछ पता ही नहीं चलता कि आया वह जिन्दा है या मर गया। यह भी देखा गया है कि अकसर वही लोग उसमें ज्यादातर शरीक होते हैं जिन्हें चुनाव की गर्ज है। हमने खुद देखा है कि जिन लीडरों और उनके साथियों के रोजमर्रा के कामों से खेत-मजदूर तबाह और बेइज्जत होते रहते हैं, भूखों मरते रहते हैं, उजड़ जाते हैं वही लोग उनकी सभाओं में प्रायः शरीक होते रहते हैं। आखिर उन्हें अमली तौर पर तो कुछ करना है नहीं। बल्कि उलटे ही करना है। मगर बातें बनाने और रस्म अदाई की तौर पर बाहरी हमदर्दी दिखाने में वे क्यों चूकने लगे?

इसका मतलब कतई नहीं कि जो लोग इस आन्दोलन में शामिल हैं वे सौ फीसदी सभी के सभी ऐसे ही हैं, उनमें एक-दो-चार भी ईमानदारी के साथ इस काम में नहीं पड़ते। जरूर ईमानदार लोग भी यह काम करते हैं। मगर उन्हें हम उँगलियों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पर गिनने लायक भी शायद ही पाते हैं। वे एकाध ही होते हैं, बिरले होते हैं। उनकी नीयत भी दुरुस्त रहती है। उनका यकीन है कि ऐसा करके वे वाकई खेत-मजदूरों को असली फायदा पहुँचा रहे हैं। मगर यहीं उनकी भारी भूल है। जिस फायदे के खयाल से वे उसमें पड़ते हैं वह तो होता नहीं। क्योंकि उस आन्दोलन के असली चलाने वाले दिल से नहीं चाहते कि वैसा हो और खेत-मजदूरों को जल्द से जल्द कुछ आराम मिले। उन्हें तो अपना उल्लू सीधा करना है। फिर उन गरीबों का काम हो तो कैसे? लेकिन उनके हजार न चाहने पर भी इस आन्दोलन के चलते धीरे-धीरे जब इन सारी विपदा और तकलीफों, उनकी बेइज्जतियों और अपमानों, उनकी भूख और बीमारी के असली कारण हैं कौन और वे दूर होंगे कैसे, तव उनका असली लाभ हो के ही रहेगा। इसे कोई रोक नहीं सकता। इसलिए इस दृष्टि से हरेक आदमी को, जो शोषितों और पीड़ितों की सेवा और मदद करना चाहता है, इस आन्दोलन का दिल से स्वागत ही करना चाहिए। उनके जगने में यह भी कुछ न कुछ मदद देगा ही और बिना जगे कुछ हो सकता नहीं।

तब तो इन यारों की भी आँखें खुलेंगी और ये अपने किए पर पछताएँगे भी। मगर इससे क्या? तब तो वह काम रुक न सकेगा। बल्कि वे लोग तो इस खतरे से आज भी सजग हैं। इसीलिए वो इस आन्दोलन को हर तरह से अपने ही हाथों में रखना चाहते हैं और इसमें तेजी भी आने देना नहीं चाहते। मगर उन्हें याद रखना चाहिए कि इससे कुछ होने जाने का नहीं। यह उनकी या किसी की भी ताकत के बाहर की चीज है कि मजलूमों और पीड़ितों के आन्दोलन को शुरू करके आखिर में उसे अपने कब्जे में रख सकें, चाहे उसका आरम्भ कितनी ही होशियारी और चालाकी से क्यों न किया जाए और चाहे वह कितना ही धीरे-धीरे या फूँक-फूँक के क्यों न चलाया जाए। असल में ऐसे आन्दोलनों का जन्म तो इसी तरह प्रायः होता ही है। अकसर इन्हें आरम्भ करते हैं वही लोग जो पीछे चलकर इनसे घबराने लगते हैं, यहाँ तक कि मिटा देना चाहते हैं। मगर तब उन्हें केवल कलेजा मसोसना ही हाथ लगता है। ये आन्दोलन तो मर सकते नहीं, जब तक वे शोषितों और पीड़ितों का पूरा उद्धार न कर लें। यह दूसरी बात है कि बीच-बीच में परिस्थितिवश से दब जाया करें।

यह भी बात है कि बहुत से किसान किसान सभा और उसके आन्दोलन में शरीक होकर भी मन ही मन यह समझे बैठे हैं कि किसान सभा से फायदा उठा लें। मगर खेती के मजदूरों के साथ अपना रवैया न बदले—उनके साथ सख्ती और बेमुरव्वती से ही पेश आते रहें। उन्होंने शायद यह समझ लिया है कि किसान सभा एक खास जमात की चीज है, ठीक उसी तरह जैसे जमींदार सभा। मगर उन्हें जान लेना चाहिए कि किसी बँधी बँधाई जमात की चीज न हो के यह सभा खेती से सम्बन्ध रखने वाली और उसी के जरिए गुजर करने वाली शोषित एवं पीड़ित जनता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की चीज है। इसीलिए जो जितना ही ज्यादा पीड़ित और दुखिया है उतना ही ज्यादा वह किसान सभा के नजदीक है—किसान सभा भी उसके उतना ही निकट है। जुल्म और अत्याचार चाहे किसान करे या जमींदार या और ही कोई। मगर सभी बराबर हैं और किसान सभा उसे हर्गिज बर्दाश्त नहीं कर सकती। खेत मजदूर सबसे अधिक दुखिया होने के कारण किसान सभा की नजर सबसे पहले उन्हीं पर जाती भी है।

ऊपर लिखित बातें तथा इन जैसी ही और भी कितनी ही हैं जिन पर प्रकाश डालना और जिन्हें अच्छी तरह समझा देना निहायत जरूरी है। खेत-मजदूरों का मसला मामूली न होकर बड़ा ही पेचीदा है। इन्हें किसान समझें या मजदूर यह भी एक बड़ा सा सवाल है और इसके हल कर लेने पर ही इस ओर हम बहुत कुछ आसानी से पाँव बढ़ा सकते हैं। इस सम्बन्ध में आगे लिखी गई पंक्तियों का यही मतलब है कि सारी बातों का स्पष्ट विवेचन हो जाए।

सेण्ट्रल जेल, हजारीबाग
महाशिवरात्रि
24.2.1941

—स्वामी सहजानन्द सरस्वती

नोट : स्वामी जी खेत-मजदूर को जोतविहीन किसान समझते थे और जर्जर जोतदार किसान से इनका सश्रय संभावित किसान क्रान्ति में चाहते थे। यह बात आज भी समीचीन एवं संगत है तथा समय की माँग है—सम्पादक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(1)
खेत-मजदूर.... तब और अब

आज जब जिधर ही देखिए सदियों से पद-दलित तथा युगों से शोषित जनता न सिर्फ अपने सवालों को ही मुस्तैदी से संसार के सामने पेश कर रही है, किन्तु उन्हें अपने अनुकूल हल करने के लिए भी या तो कमर बाँध चुकी है या बाँध रही है, तो खेती के मजदूरों की समस्याएँ और उनके बहुत ही पेचीदे मसले, जिनके करते वे पिस रहे हैं, घुल-घुल के मर रहे हैं, न उठें न उठाए जाएँ यह बात तो दिमाग में आने की ही नहीं। जब किसानों और मजदूरों की रोटी, कपड़े वगैरह के सवालों को हमेशा के लिए एक ही बार ठीक कर डालने के खयाल से हजारों नहीं, लाखों जन सेवक युवक और वृद्ध, स्त्री तथा पुरुष कमर बाँधे मैदानेजंग में कूद चुके और कूद रहे हैं, तो फिर खेती में काम करने वालों का इसी सम्बन्ध का प्रश्न यों ही खटाई में पड़ा कैसे रह सकता है? इस पहेली को हमें सुलझाना ही होगा और इसीलिए सबों के सामने इसे अपने असली रूप में ला के खड़ा करना पड़ेगा ही। ताकि इस पर पूरा प्रकाश पड़े। और अगर हमने यह काम नहीं भी किया, या इससे मुँह मोड़ लिया तो सिर्फ बदनामी और पछतावा ही हमारे हाथ लगेंगे। ये प्रश्न और ये सवाल तो खुद ब खुद उस हालत में हमारे सामने क्या, सर पर आ खड़े होंगे। हम इनसे भले ही भागना चाहें, मगर ये तो हमसे भागने के बजाए जबर्दस्ती हमारा पल्ला पकड़ेंगे, हमारा पीछा करेंगे। और नहीं तो इन खेत-मजदूरों के दिली दुश्मन ही इनको ला धमकाएँगे। समय की गति जो ठहरी।

और आखिर यह सवाल उठें क्यों न? यही नहीं कि खेती में काम करनेवाले ये लोग अत्यन्त दीन-दुखिया और सताए हुए हैं और न सिर्फ यही कि वर्तमान समाज में कल-कारखानों के मजदूरों या किसानों की ही तरह वे एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। ये कारण तो हईं और उनकी समस्याओं को हमारे सामने जबर्दस्ती ला धकेलने के लिए ये दोनों ही वजहें काफी भी हैं। मगर सबसे बड़ी बात है कि उनकी तादाद बहुत बड़ी है जो कल-कारखाने के मजदूरों की संख्या से कहीं जबर्दस्त है। इसी के साथ बहुत बड़ी खूबी यह है कि इनकी यह संख्या शैतान की अँतड़ी की तरह बराबर ही बढ़ रही है। सो भी जमीन रखने वाले किसानों को हटाकर उन्हीं की जगह जहाँ एक ओर मुफ्तखोर जमींदार नामधारियों की तादाद बेतहाशा बढ़ रही है तहाँ दूसरी ओर इन खेत-मजदूरों या यों कहिए कि बिना जमीन वाले किसानों का नम्बर ऊपर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सर उठाए चला जा रहा है। हम अच्छी तरह देख रहे हैं कि किसानों के हाथ से जमीनें धड़ाधड़ निकली जा चली जा रही हैं। वे या तो निर्दयता के साथ ज्यादा से ज्यादा लगान वसूलने और उसी पर सदल-बल गुलछर्रे उड़ाने वाले जमींदारों के हाथों में चली जाती हैं जो उन किसानों से बहुत ही दूर और खासकर बड़े-बड़े शहरों में ही ज्यादातर रहते हैं, या सूदेखोर बनियों और महाजनों कब्जे में, जो उन जमीनों को उन्हीं के साथ बन्दोबस्त करते हैं जो अधिक से अधिक लगान देते हैं। सो भी यह बन्दोबस्त अधिकांश में अस्थायी या चन्दरोजा ही होता है। ताकि उनने जभी चाहा ये जमीनें निकाल के फिर दूसरों को दे दीं जो और भी ज्यादा पैसे दे सकें या जिनसे कुछ ज्यादा काम निकल सके। इसका यह भी नतीजा होता है कि किसान इन जमीन वाले बनियों या जमींदार-साहूकारों से हर घड़ी थर्राते रहते हैं। उनके खिलाफ चूँ कर सकते नहीं। यह बात अभी-अभी साफ हुई जाती है।

असल में खेतों में कमाने या काम करनेवालों की संख्या तो उस समय भी बहुत ज्यादा थी जब पहले खेती करने की विद्या और तरकीब मानव समाज ने जानी और धीरे-धीरे इस काम को खूब फैला दिया। मगर उस दशा में और आज की हालत में जमीन-आसमान का फर्क था। जहाँ खेतों की तरक्की और उसका व्यापक विस्तार होने के साथ-साथ पहले जमाने में खेती में काम करने वालों की तादाद क्रमशः घटने लगी और लोग धीरे-धीरे दूसरे प्रकार की जीविकाओं और कामधन्धों में जाने लगे, तहाँ आज इनकी तादाद फिर बढ़ने लगी है। दूसरे कामधन्धों से ये लोग जबर्दस्ती बाहर निकाले जाने लगे हैं और अपने पुराने खेतों से भी। इस तरह आज तो उलटी गंगा बहने लगी है। वह न जाने क्या गजब ढाएगी और किसे-किसे उजाड़े बसाएगी। कमाके खुद खाने तथा गैरों को खिलाने वाले और इस प्रकार अपने खून को पानी बना डालने वाले इन लोगों की जीविका के सभी साधनों से होने वाली आहिस्ता-आहिस्ता की यह बेदखली बहुत ही खतरनाक है। हमें बहुत ही ठण्डे दिल-दिमाग से इस भीषण परिस्थिति पर न सिर्फ विचार ही करना होगा, बल्कि बहादुरी के साथ इसका सामना भी करना पड़ेगा। नहीं तो यह सभी को ले बैठेगी।

आइए जरा इस हालत की और भी सफाई कर लें। ताकि इसका असली और विकराल रूप हमारी आँखों के सामने अच्छी तरह नाचने लगे। तभी इसे हम बखूबी तभी इस बात की जरूरत भी महसूस करेंगे कि इसका सामना खामख्वाह करना चाहिए। तभी हममें सामना करने की पूरी हिम्मत भी आएगी। हम उसी के मुताबिक अपनी तैयारी भी तभी कर सकेंगे। अभी तो हालत यह है कि जोई उठता है, सोई इस समस्या के सुलझाने के लिए कुछ न कुछ बातें बोल ही देता और कुछ उपाय सुझाई देता है। आगा-पीछा वह सोची नहीं सकता। क्योंकि सारी बातें तो उसे मालूम नहीं हैं। उसके सामने इस गहन समस्या के सभी पहलू आए ही नहीं हैं। इसीलिए वह सोच भी नहीं सकता कि उसके इन उपायों का असर दूसरों पर क्या होगा, ये उपाय

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कारगर हैं या नहीं आदि-आदि। यदि पूरी बातें उसे मालूम हों तो वह खुद सोचेगा कि उसके ये रास्ते शायद स्थिति को और भी बदतर बना देंगे। अतएव जल्दी में बिना अच्छी तरह छानबीन किए ही वह कोई बात इनके मुतल्लिक उस दशा में बोल सकेगा नहीं।

हाँ, तो हम उस बात को लें। यह तो सभी मानते हैं कि जब धीरे-धीरे मनुष्यों की संख्या इस भूमण्डल पर बढ़ने लगी तो उनकी जीविका का प्रश्न जटिल होने लगा। फलतः मुस्तैदी से खोज शुरू हुई कि जंगली जीवों या घास-पात और फल-फूल आदि के सिवाय क्षुधानिवृत्ति का कोई और भी जरिया है या नहीं। इस माथापच्ची तथा जाँच-पड़ताल में पड़े लोगों को जब पहले पहल खेती करने की सूझी, जब यह बात दिमाग में आई कि जमीन के भीतर बीज के रूप में जौ, गेहूँ आदि के दाने डालकर उनसे दस-बीस गुना पैदा किया जा सकता है, तो मानना होगा कि जीविका के उपाय के सम्बन्ध में एक बड़ी क्रांति हो गई। जमीन तो लम्बी और पैदावर थी ही। फिर चाहे जितनी दूर में फसल बोओ। केवल जंगलों को काट-कूट के साफ करने की जरूरत थी। परिणामस्वरूप, एक बार खेती का खूब ही विस्तार हुआ। प्रायः सभी प्रजा, सभी जनता इस काम में लग गई। आज की तरह न तो जमीन पर कोई बन्धन था और न जमींदार या सरकार की तरह लगान या माल वसूलने वाले ही थे। तब रुकावट कैसी? जिससे जितनी बन पड़ी उतनी जमीन जोतता-बोता था। एक बार तो सभी लोग प्रधानतया खेती में ही काम करने लगे, उसी के द्वारा प्रधान रूप से जीविका चलाने लगे। वेदों, वैदिक ग्रन्थों और महाभारत आदि इतिहासों में जो 'विशः', 'विशांपति' आदि शब्द पाए जाते हैं वे इसी बात के सूचक हैं।

बेशक पीछे चलके 'विंश' या 'वैश्य' शब्द एक खास जाति या श्रेणी का वाचक बन गया और उसी के जिम्मे खेती का कारबार सौंपा गया। बाकी लोग दूसरे-दूसरे कामों में लग गए! यह बात तब हुई जब समाज के विकास के साथ उसकी रक्षा एवं समुन्नति के लिए वर्ण और आश्रम के विभाग बनाए गए। सारांश यह है कि जब समाज के कई दल बना के उन्हें अलग-अलग जवाबदेही सौंपी गई उसी समय वैश्य नाम का एक वर्ण खासतौर से खेती में लगा दिया गया। अब तो यह भी बात लापता है। पता ही नहीं चलता कि कौन वैश्य है, कौन नहीं। क्योंकि खेती सभी करते हैं। पहले यह बात न थी कि दूसरे वर्ण बिलकुल ही खेती करते ही न थे। थोड़ी बहुत खेती तो ब्राह्मण तक भी करते थे। इसीलिए तो वेदों में भी यह बात मिलती है। मनु ने तो अपनी स्मृति के चौथे अध्याय के शुरू में ही 'अमृतकर्षणामृतम्', 'तेनचैवापिजीव्यते' आदि के द्वारा ब्राह्मण के लिए भी खेती बताई है। दूसरे स्मृतिकारों ने भी ऐसा ही किया है। फिर भी यह प्रधान काम तो वैश्य का ही माना गया है। यह उसी का काम बताया गया है कि खेती के जरिए सबों के लिए अन्नादि पैदा करे।

मगर शुरू में ये 'वैश्य' या 'विंश' शब्द प्रजा या जनतामात्र का ही वाचक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मात्र जाता था। दरअसल प्रजा शब्द का वही अर्थ है जो जनता या जनसमूह का। 'विशांपति' शब्द का अर्थ है प्रजापति या राजा। मालूम होता है जमीन में बीज का सामूहिक रूप में प्रवेश कराने के कारण ही यह 'विंश' शब्द पहले पहल प्रचलित हुआ। उस समय सभी लोग यह काम करते भी थे। क्योंकि एक तो यह नई बात थी, दिलचस्प थी। दूसरे इस प्रकार खेती करने से घर के पास ही खाने-पीने के लिए अन्न हो जाता था। फलतः जीविका के लिए दूर-दराज के देशों में जाना न पड़ता था। फिर तो सबों का खेती में लग जाना स्वाभाविक ही था। इसीलिए विंश या वैश्य नाम सभी लोगों का, जनसमूह का, प्रजा या जनता का ही पड़ गया।

खेती में काम करने वालों की या यदि कहें तो कह सकते हैं कि खेती के मजदूरों—खेत मजदूरों की यह पहली दशा थी। हाँ, इस दशा में आज के उनके सम्बन्ध के प्रश्न ही उठी नहीं सकते थे। इनकी तब गुंजाइश थी ही कहाँ? 'नविशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्राह्ममिदं जगत्। ब्रह्मणा पूर्वं स्टष्टंहि कर्मभिर्वर्णतां गतम्' (मोक्षधर्म अध्या. 188/10), *महाभारत* के इस कथन का भी कि 'ब्रह्मा की पैदा की हुई सृष्टि में कोई भेद या दल न था। सभी बराबर थे। यह तो पीछे चलकर विभिन्न कामों के करते ही वर्णों की जुदी-जुदी रचना हुई।' यही मतलब है कि शुरू में वे लोग एकी तरह के काम करते थे।

इस प्रकार कुछ समय यों ही गुजर जाने के बाद ऐसा भी मौका आया कि नए-नए उद्योग धन्धों की खोज हुई। जनसंख्या की वृद्धि के साथ ही उनकी जरूरतें भी बढ़ने लगीं। परस्पर संघर्ष और शत्रुओं के हमले भी होने लगे। ज्ञान की वृद्धि के साथ ही उसके लिए खास विभाग बनाने की भी जरूरत समाज ने महसूस की। लड़ाई-दंगे होने पर भी खेती-बारी का काम न रुके और न अन्वेषण या खोज का। नहीं तो आफत होगी और सभी लोग यों ही तबाह हो जाएँगे। इसीलिए जहाँ लड़ने-भिड़ने का काम एक खास दल, विशेष वर्ण को सौंपा गया, तहाँ पढ़ने-सोचने और खेती-बारी का काम भी ब्राह्मण और वैश्य वर्ग को क्रमशः दे दिया गया। इस प्रकार अब विश या वैश्य शब्द प्रजा या जनता के मानी में न बोला जाकर मानव समाज के एक खास दल, वर्ण या विभाग के अर्थ में प्रयुक्त हो गया।

हाँ, एक चौथा दल भी बनाया गया जिसे संरक्षित दल या शूद्र कहने लगे। इसका यही काम तय पाया कि जरूरत पड़ने पर हर शेष तीन दलों की सहायता हर तरह से करे। ज्यादातर दौड़धूप और शारीरिक काम ही इस दल के जिम्मे था। तभी तो सभी दलों को इससे सहायता सम्भव थी। मगर यह बात न थी कि यह चौथा दल दिमागी काम करता ही न था। अनेक प्रकार के कारीगर और मिस्त्री भी प्रायः इसी दल में होते थे। स्मृतियों में इन्हें भी शूद्र नाम से पुकारा गया है। इस प्रकार समाज के लिए शूद्र वर्ण एक रक्षित सेना का काम करता था। एक ओर तो कला-कौशल और कारीगरी के सम्बन्ध के जितने काम समाज के लिए जरूरी होते

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

थे उनकी पूर्ति शूद्र ही करते थे। यहाँ तक कि रसोई बनाने का काम भी शूद्रों का ही माना जाता था। ऐसा स्पष्ट लिखा है। इसीलिए पाचक (रसोइया) का काम करने वाले ब्राह्मण को शूद्र के समान ही माना है, जैसा कि 'पाचकश्चैव षडेते शूद्रवद् द्विजाः' से स्पष्ट है। दूसरी ओर शेष तीन वर्णों में जहाँ जिसे आदमी की जरूरत हुई कि इसी रक्षित सेना ने उसकी पूर्ति की। बिना दिमागी काम किए ही वे लोग कारीगरी आदि के ज्ञाता कैसे हो सकते थे? और अगर शूद्र शब्द का यही अर्थ न माना जाता रहता तो *छान्दोग्योपनिषद्* (4/2/3/5) में जनाश्रुति नामक क्षत्रिय राजा को रैक्व ऋषि बार-बार शूद्र क्यों कहके पुकारते, जैसा कि 'अरेत्वा शूद्र', 'आजहारेमाः शूद्र' आदि वाक्यों से स्पष्ट है? उस ऋषि के द्वारा बोले गए इस शब्द का जो भी अर्थ भाष्यकारों ने किया है उससे ही साफ है कि शूद्र शब्द का पहले वह संकुचित अर्थ नहीं था जो दुर्भाग्य से आज माना जाता है।

यही बात वैश्य के बारे में भी शुरू में जरूर थी जबकि वर्णों की रचना नहीं हुई थी। बेशक उस रचना के बाद वह शब्द प्रजा या जनता के अर्थ में प्रयुक्त न होकर उसके एक अंश मात्र का बोधक रह गया। लेकिन उसी के साथ शूद्र वर्ग की भी रचना हुई जो व्यापक अर्थ में प्रचलित था। साथ ही एक बात और भी हुई। जब खेती का अधिकार आमतौर से सबके लिए न होकर एक हद तक सीमित हो गया, तो दूसरों के द्वारा खेती करवाने का भी श्रीगणेश हुआ। कही चुके हैं कि वैश्य वर्ण के साथ खेती का आम अधिकार सीमित हो जाने पर भी दूसरे वर्ण इससे सोलहों आने वंचित न किए गए। खासकर ब्राह्मणों को तो यह अधिकार था कि वह खुद अपने काम के लिए खेती से भी अन्न पैदा कर सकते हैं, करें। *मनुस्मृति* का उल्लेख हो चुका है। दूसरी स्मृति ने भी इस पर काफी जोर दिया है। इस बात का विस्तृत विवेचन मैंने *'ब्रह्मर्षिवंश विस्तर'* नामक पुस्तक में किया है।

लेकिन खेती की आज्ञा देने पर भी ब्राह्मणों के लिए यह नियम था कि भरसक वे अपने हाथों खेती न करके औरों से ही कराएँ। हाँ, जब वे इस बात के लिए समर्थ न हों और या तो उन्हें खेती के लिए मजदूर तथा काम करने वाले मिले ही न, या अगर मिलें भी उन्हें उचित मजदूरी वगैरह वे किन्हीं कारणों से दे के सन्तुष्ट न कर सकें, तो खुद अपने हाथों भी खेती कर सकते हैं, ऐसा नियम बनाया गया। इन दोनों प्रकार की खेतियों को क्रमशः अस्वयंकृता और स्वयंकृता कहते थे। 'स्वयंकृता' के मानी हैं अपने हाथों की गई और 'अस्वयंकृता' का अर्थ है दूसरों से कराई हुई। जिन पुरानी पोथियों में ब्राह्मणों को खेती करने का अधिकार मिलता है उन्हीं में ये ब्यौरे भी लिखे गए हैं।

चाहे इसका मतलब शुरू में कुछ भी क्यों न रहा हो। फिर भी यहीं से खेती के मजदूरों का श्रीगणेश उस मानी में होता है जिस मानी में आज हम यह शब्द बोलते हैं। भारत से बाहर के मुल्कों में जो सर्फ या खेतों में काम करनेवाले गुलामों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

का जिक्र पहले जमाने में पाया जाता है वह कुछ इसी ढंग की बात है। व्यवहार में अमली तौर पर चाहे उसमें और भारत की व्यवस्था में प्रारम्भ में बहुत ज्यादा फर्क क्यों न रहा हो, फिर भी सिद्धान्त के रूप में दोनों बातों, दोनों व्यवस्थाओं को एक ही स्थान मिलता है। आखिर खेती में काम करने वालों तथा दूसर गुलामों में, जो उनसे पहले पाए जाते थे और इन 'सर्फ' लोगों के समय में भी जहाँ-तहाँ थे, मगर विलुप्त हो रहे थे और उनकी जगह ये खेती के काम करने वाले ही ले रहे थे, अन्तर तो था ही। सो भी महान अन्तर। जहाँ गुलामों की देह और आत्मा सर्वथा उनके स्वामियों के अधीन थी कि जब चाहे जो करें, वहाँ 'सर्फ' या खेत-मजदूर ऐसे न थे। वे तो कुछ समय तक अपने ही लिए मालिक के द्वारा दिए गए खेतों में काम करते थे, और कुछ निश्चित समय तक मालिक के खेतों में उसके लिए भी। मालिक जब जो चाहे उनसे करवा नहीं सकता था। कभी-कभी तो ऐसा भी होता था कि मालिक के खेतों पर काम न करके अपनी कमाई का एक निश्चित अंश ही मालिक को नजर या भेंट के रूप में वे लोग दिया करते थे। फलतः गुलामों की अपेक्षा उन्हें आंशिक स्वतन्त्रता, कम से कम बाहरी तौर पर, तो थी ही। ठीक इसी प्रकार देश-भेद से इन खेत-मजदूरों में और उनकी दशा में भी भेद होना स्वाभाविक था। शोषितों और पीड़ितों के मसीहा श्री कार्ल मार्क्स ने *'पेट के लिए मजदूरी और पूँजी'* नामक ग्रन्थ नें बहुत ही विशद रूप से इसका वर्णन यों किया है :

'जिस प्रकार खेती का बैल किसान के हाथ अपनी श्रम-शक्ति को नहीं बेचता, ठीक उसी तरह गुलाम लोग अपनी श्रम-शक्ति को मालिकों के हाथ बेचते न थे। किन्तु सदा के लिए एक ही बार अपनी उस शक्ति के साथ ही वे लोग उसके हाथ बेच दिए जाते थे। किसी भी पण्य या विक्रय वस्तु की तरह वे एक मालिक के हाथ से दूसरे के पास चले जाते थे। वे स्वयं तो खरीद-बिक्री के पदार्थ माने जाते थे। मगर उनकी श्रम-शक्ति ऐसी मानी जाती न थी। विपरीत इसके खेती में काम करने वाले 'सर्फ' अपनी श्रम-शक्ति का केवल एक अंश बेचते थे। जमीन के मालिक के हाथ से इन्हें मजदूरी नहीं मिलती थी। बल्कि जमीन के मालिक लोग ही उलटे उन्हीं से एक तरह की भेंट पाते थे। असल में 'सर्फ' लोग जमीन के मातहत थे और उसकी पैदावार उसके मालिक को पहुँचाते थे।'

इस वर्णन में खेत-मजदूरों की आंशिक स्वतन्त्रता साफ दिखाई गई है। जहाँ गुलामों के भरण-पोषण आदि की सारी जिम्मेदारी मालिक पर ही थी, वहाँ खेत-मजदूर उलटे मालिक को ही खिलाते-पिलाते थे। मालिक उस जिम्मेदारी से बरी था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि खेती में काम करने वालों की—खेत-मजदूरों की—यह दूसरी दशा हुई। इसमें जहाँ एक ओर पहले की अपेक्षा खेती के काम करके जीविका करनेवालों की संख्या अपेक्षाकृत कम हो गई और समाज में कुछ लोग अन्यान्य कामों में जा लगे, तहाँ दूसरी ओर ऐसे लोग भी पैदा हो गए जो दूसरे के खेतों पर काम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करते थे, जिसके बदले में या तो उन्हें जमीन ही मिलती थी, या निर्वाह योग्य मजदूरी ही। यद्यपि खुद अपने खेतों पर काम करने वालों को आज की भाषा में मजदूर कहने की परिपाटी नहीं है। तथापि हम तो उससे पूर्व की दशा के मुकाबले में उन्हें खेती के मजदूर या काम करने वाले ही कहते हैं। यही ठीक भी है। वे सचमुच ही मजदूर या श्रमजीवी थे। लेकिन जिस मानी में आज मजदूर शब्द बोला जाता है उस मानी में भी तो आखिर कुछ लोग उसी समय पैदा हुए।

इसके बाद तीसरी दशा में ये खेती पर काम करने वाले पहुँचे। मगर इस हालत में पहुँचने में बहुत लम्बी मुद्दत लगी। असल में अब प्रवाह उलटने की बारी आई। पहले जो खेती पर निर्भर करने वालों की संख्या क्रमशः घट रही थी अब उसके क्रमशः बढ़ने की नौबत आ पहुँची। इसीलिए इस हालत की शुरुआत को, आरम्भ को एक प्रकार से खतरे की घंटी समझना चाहिए। पहली दो हालतों का जो संक्षिप्त वर्णन ऊपर आया है उससे साफ है कि उनकी तादाद घटने लगी थी। इस कमी के दो मानी होते हैं। एक तो सर्वथा या हर सूरत से कमी; दूसरी अपेक्षाकृत कमी। खेतों पर कमाने वालों की यह कमी दूसरी प्रकार की या अपेक्षाकृत ही थी। क्योंकि जनसंख्या तो धीरे-धीरे बढ़ती ही थी। इसलिए जितने लोग हजारों वर्षों के दरम्यान खेती छोड़ के और धन्धों में लगे उनकी तादाद समूची जनसंख्या के मुकाबले में जरूर ही बहुत ही कम या सिर्फ उसका एक टुकड़ा थी। फिर भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि यदि यही बात हजारों साल पहले होती तो जो संख्या खेती वालों की इस प्रकार होती उससे तो कहीं ज्यादा हजारों वर्ष बाद होई गई होती। आखिर कम और ज्यादा जनसंख्या को एक ही प्रकार के टुकड़ों में बाँटने पर ज्यादा संख्या का टुकड़ा बड़ा तो होगा ही। मगर फिर भी समूची संख्या के मुकाबले में छोटा ही होगा। इसीलिए इसे अपेक्षाकृत कमी ही कह सकते हैं। मगर यह ठीक है कि इससे लोगों की भीड़ खेती पर ही नहीं रह गई। फलतः जीविका में दिक्कतें न आईं।

मगर जब तीसरी हालत में आई तो बात कुछ और ही हो गई। एक तो धीरे-धीरे खेती लायक सभी जमीनें प्रायः जोती जा चुकीं। बच रही सिर्फ वे जिन पर आसानी से खेती करना गैर-मुमकिन था। जब तक किसी वैज्ञानिक तरीके से काम न लिया जाए और बहुत ज्यादा पूँजी न लगाई जाए तब तक जिन जमीनों में खेती न हो सकती थी वही बचं रही। इसलिए जो दल, वर्ण या कौमें खेती के लिए मुकर्रर की गई थीं उनकी भी जनसंख्या बढ़ते-बढ़ते अब खेती के लायक जमीन की कमी महसूस होने लगी। दूसरे, कुछ लोगों ने अनेक तरकीबों से अपने कब्जे में ज्यादा जमीनें कर लीं। क्योंकि सभ्यता के विकास के साथ छीना-झपटी की भी उत्पत्ति हुई, उन्नति हुई। व्यक्तिगत सम्पत्ति जमा करने की होड़-सी लग गई। सभी जमीनें कब्जे में आ जाने पर ऐसी जमीन जो बिना खेती की बची हो रही न गई। फिर तो जिनके पास पहले से जमीनें हों उन्हीं से छीना-झपटी करना लाजिम हो गया। नतीजा यह हुआ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कि कुछ के पास जहाँ जरूरत से ज्यादा जमीन हो गई तहाँ बहुतों के पास या तो थी ही नहीं या बहुत ही कम। फलतः वे लाचार हो कर ज्यादा जमीनवालों के या तो हलवाहे वगैरह बन के गुजर करने लगे, या सख्त से सख्त शर्तों और ज्यादा से ज्यादा लगान पर उनसे जमीनें लेने लगे। इस प्रकार आज के मानी में खेत-मजदूरों की तादाद बढ़ी और उत्तरोत्तर बढ़ने लगी।

तीसरी और सबसे बड़ी बात हुई कि जहाँ पहले नए-नए और आसान उद्योग धन्धे या गुजर-बसर के रास्ते निकला करते थे, वहाँ अब नयों की तो बात ही छोड़िए, जो पहले से भी थे वह भी बन्द होने लगे। आधुनिक ढंग के कल-कारखानों की उत्पत्ति और वृद्धि का जो गत चार-पाँच वर्षों का इतिहास जिनने पढ़ा है वह इस बात को बखूबी समझ सकते हैं। इंग्लैंड वगैरह सभी मुल्कों में किस तरह चरखे और करघे चलाने वाले या दूसरे पेशेवर लोगों को मजबूरन उन कामों से भाग के या तो खेती का लाचार सहारा लेना पड़ा या चोरी, डकैती, भिखमंगी वगैरह का। हिन्दोस्तान में भी किस तरह जुलाहों ने अपने अँगूठे काटे-कटवाए, उनके तथा औरों के धन्धे कैसे तबाह हुए, तबाह किए गए यह बात सभी जानते हैं। आज भी तेल पेरने वाले, आटा पीसने वाले, चीनी बनाने वाले और इसी प्रकार के हजारों पेशे वाले कल-कारखानों के मुकाबले में दिवालिए बनके धीरे-धीरे उनसे भाग निकले हैं, भागे जा रहे हैं। गुजस्ता चार-पाँच सौ सालों से जो यह नए ढंग से छीना-झपटी पुराने धन्धों के बारे में नए कल-कारखाने कर रहे हैं वह रोज-रोज बढ़ती ही जा रही है। उस छीना-झपटी के नए-नए रूप खड़े हो रहे हैं। यह सवाल आज हमारी आँखों के सामने नाच रहा है। पहले तो हाथ से किए जाने वाले उद्योग-धन्धों को कल वाले छीन लेते हैं। फिर छोटे-मोटे कल-कारखानेदारों को बड़े-बड़े भगा देते हैं। अन्त में मुट्ठी-भर बड़े-बड़े मालदारों का गुट बड़े-बड़े हजारों कारखाने खोल के बाकियों को बेकार बना देता है। इस प्रकार आज एकाधिकार का एकच्छत्र राज्य या तो हो चुका, या होने जा रहा है।

अब सोचना यही है कि जिनके धन्धे और रोजगार छिन रहे हैं वे आखिर करेंगे क्या? अपने तथा अपने बाल बच्चों के पेटों पर पत्थर तो बाँध लेंगे नहीं। हवा पी के भी गुजर कर सकते नहीं। नौकरी-चाकरी भी आखिर कितने पाएँगे। ये कारखाने सभी को नौकर तो रख सकते नहीं। यह भी बात है कि जो लोग पढ़े-लिखे न हों, निपुण न हों उन सबों को काम मिल भी नहीं सकता। और गरीबों के लिए पढ़ने का सामान कहाँ? उन्हें पूछे कौन? आज तो यह हालत है कि या तो बड़ी कला वाले विशेषज्ञों की पूछ है या स्त्रियों और बच्चों की। कलों ने कुछ ऐसा कर दिया है कि लड़कियाँ, लड़के या ज्यादे से ज्यादा औरतें ही काम कर सकती हैं जो पुष्ट मर्दों के बिना पहले हो नहीं सकते थे। लड़के-बच्चे वगैरह सस्ते मिलते भी हैं। उन्हें ज्यादा मजदूरी देनी नहीं पड़ती। नतीजा होता है कि मर्दों को कम काम मिलता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है। सिर्फ बच्चों या औरतों की कमाई से गुजर भी होती नहीं। ऐसी दशा में वे कहाँ जाएँ, क्या करें यह बड़ा सवाल उनके सामने चौबीसों घंटे खड़ा रहता है। दूसरा रास्ता मिलता भी नहीं। इसलिए हार के खेती की ही शरण लेना चाहते हैं, लेते हैं। खेत भी मिलते नहीं कि जोतें। वे भी तो बहुत महँगे हो गए हैं। यह महँगी भी आए दिन बढ़ती ही जाती है। फिर भी इतना जरूर है कि महँगी से महँगी कीमत या अधिक से अधिक मालगुजारी दे के खेत तो मिली जाते हैं। मगर नौकरी-चाकरी या दूसरें धन्धों का तो दरवाजा उनके लिए सदा के लिए बन्द है। जिस तरह महान समुद्र, जिसके आर-पार का कुछ अन्दाज ही न हो, के बीच में पड़े जहाज के मस्तूल पर बैठे कौवे के लिए कोई चारा नहीं, सिवाय इसके कि उसी मस्तूल पर खामख्वाह बैठे, चाहे हजार बाधाएँ हों और अन्त में मरना भी पड़े। आखिर मस्तूल छोड़ के जाएँ तो कहाँ जाएँ? ठीक वही हालत किसानी करने वाले इन गरीबों की है। हार के खेती का ही सहारा लेते हैं। फिर चाहे वह कितनी भी महँगी क्यों न हो।

जमीन वाले भी कैसे भले होते हैं। उन भलेमानुसों को तो मौका ही मिल जाता है कि खूब ही कसके कीमत, लगान या मालगुजारी वसूलें। मैं तो खूनी और रक्त पीने वाले जमींदारों को जानता है जो जमीन की पैदावार का तीन-चौथाई खुद ले के सिर्फ एक-चौथाई ही किसान के लिए छोड़ते हैं। खूबी तो यह है कि उसी चौथाई में उसे खेती का समूचा खर्च भी चुकाना पड़ता है जो सरासर असम्भव है। यह तो सभी जानते हैं कि कुल पैदावार का प्रायः एक-तिहाई खेती के खर्च में चला जाता है, और उन्हें मिलता है केवल एक-चौथाई ही। ऐसी दशा में वे खुद अपने परिवार के लिए क्या बचाएँगे? नतीजा होता है कि उन्हें अपनी मजदूरी भी हासिल नहीं होती। फलतः वे बनिए-महाजनों या सूदखोरों के चंगुल में रोज-रोज फँसते जाते हैं, ऐसे ही किसान सूदखोरों के क्रीतदास बन जाते हैं। यों तो कहने के लिए वे किसान हैं। किन्तु खेतों में बैलों से भी ज्यादा मेहनत करते रहते हैं। इतने पर भी जब पूरी मजदूरी भी उन्हें नहीं मिलती तो वे खेत-मजदूर से भी गए गुजरे हैं। यह भी नहीं कि थोड़े हैं। ऐसे किसान करोड़ों हैं और उनकी संख्या बेतहाशा बढ़ रही है, जैसा कि आगे बताएँगे।

एक बात और होती है। खेती करने वाले किसानों के परिवारों की जब वृद्धि होने लगती है और इसी के साथ सम्मिलित परिवार की जगह उसके टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं तो इसका परिणाम खेतों पर बुरा पड़ता है। जो खेत पहले बड़े-बड़े थे वही अब बँटते-बँटते बहुत ही छोटे हो जाते हैं गोया पानी पटाने की क्यारियाँ हैं। जहाँ एक ओर परिवार बड़े होते हैं तहाँ दूसरी ओर ये खेत छोटे। यह छुटाई कहाँ जाके टिकेगी कोई कह नहीं सकता। इसके परिणामस्वरूप कम से कम अस्सी फीसदी किसानों की जमीनें अब ऐसी हो गई हैं कि उनसे उनके परिवार के भरण-पोषण की तो बात ही दूर रहे, आधा या चौथाई पेट भी नहीं भरता, सो भी मोटे से मोटे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अन्न को खाकर। इस प्रकार की जमीनों की यह बीमारी किसानों को मटियामेट करने पर तुली बैठी है। फिर भी उसके रोकने का कोई उपाय हो नहीं रहा है। ये प्रायः अस्सी फीसदी किसान और कहीं-कहीं तो नब्बे फीसदी भी, इतने गरीब और तबाह हैं कि उन्हें मजदूर कहने में भी शर्म आती है। क्योंकि मजदूर होने पर कम या बेश एक बँधी-बँधाई मजदूरी तो मिलती है। मगर यहाँ तो वह भी नहीं है।

यह इतनी प्रत्यक्ष और सभी जानकारों की मानी हुई बात है कि इसमें किसी भी शंका की गुंजाइश नहीं। फिर भी खून पीने वाले जल्लाद लोग दलील कर बैठते हैं कि तो फिर किसान ऐसी खेती के पास जाते ही क्यों हैं? वे खामख्वाह क्यों खेती में पड़ते हैं जब मजदूरी भी नहीं पाते? उसे वे छोड़ बैठते क्यों नहीं? बिना फायदे के तो कोई भी काम इनसान कभी करता ही नहीं। तो क्या किसान पागल हैं जो ऐसा करते हैं? आदि-आदि। इन सवालों के जरिए ये भलेमानस यह दिखाना चाहते हैं कि नन्हे-नन्हे खेतों के टुकड़ों के पीछे अपने खून को पानी बना डालने वाले ये किसान परिवार जरूर फायदे में रहते हैं। ये लोग दूर की कौड़ी लाते हैं। इसे ही कहते हैं असम्भव को सम्भव साबित करने की हिम्मत और कोशिश। ये लोग अपने को काफी चतुर समझते हैं। मगर इनकी हालत उन बड़े हिसाबी मुंशी जी जैसी ही है, जिन्होंने नदी की गहराई का इसी तरह की दलील और अक्लमन्दी से ऐसा हिसाब लगा लिया था कि उनके छोटे-छोटे बच्चे आसानी से बेखटके पार हो जाएँ। उनने लड़कों को इसी के बूते पर नदी पार कर जाने को कह भी दिया था। मगर जब बीच में ही सभी लड़के डूब मरे तब कहीं जाकर मुंशी जी को अपने हिसाब की गलती का पता चला। ठीक यही बात ये लोग करना चाहते हैं। जब किसानों की हड्डियाँ तक लापता हो जाएँगी तब ये लोग चेतें तो चेतें। मगर पहले नहीं। इन्हें क्या मालूम कि मिट्टी या बालू से आदमी की न तो भूख जाती, न वह जिन्दा रहता और न वह उसका खाद्य है? मगर भयंकर अकाल वाले प्रदेशों में सैकड़ों-हजारों ऐसे आदमियों और जानवरों की लाशें मिली हैं जिनने भूख से व्याकुल हो के बालू या मिट्टी खा ली थी। फलतः मर जाने पर उनके पेटों में वही चीजें पड़ी निकलीं। मस्तूल के कौवे की बात तो कही चुके हैं। कोई और उपाय न देख के लाचार किसान ऐसी दिवालिया खेती का सहारा लेते हैं यही सोचकर कि पीछे जो कुछ होगा देखा जाएगा, तत्काल तो काम चले। इसे ही कहते हैं, 'डूबते को तिनके का सहारा'। फायदे का हिसाब लगा के वे इस काम में हर्गिज नहीं पड़ते। वे तो हिसाब लगाना जानते भी नहीं। वे यही सोचते हैं कि चलो और नहीं तो मेहनत करने के लिए एक साधन तो मिला—इससे और नहीं तो मजदूरी तो मिलेगी। मगर उन्हें क्या पता कि यहाँ मजदूरी तक को पहले से ही लूट लेने की बन्दिश करके यार लोग ताक में बैठे हैं। उन्हें कफन खसौटी करने वालों से ही पाला पड़ा है। इस बात पर आगे और भी प्रकाश डाला जाएगा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

किस प्रकार किसानों की जमीनें लुट रही हैं और उसी के फलस्वरूप किस प्रकार खेती के मजदूरों की, जिनमें पूर्वोक्त किसान नामधारी भी शामिल है, संख्या शैतान की अँतड़ी की तरह बढ़ रही है इस बात की सफाई कुछ और भी करने की जरूरत है। तभी इसका नग्न चित्र हमारी आँखों के सामने आएगा। यदि कोई भी आदमी सेन्सस (मनुष्यगणना) की तथा दूसरी सरकारी रिपोर्टों को, जिनमें इस बात की छानबीन की गई है, देखे और उसी के साथ प्रामाणिक गैर-सरकारी आंकड़ों की भी मिलान करें तो उसे आसानी से पता लग जाएगा कि किस तेजी से खेती-मजदूरों की संख्या बढ़ती जा रही है और उसी के साथ सिर्फ लगान वसूलने वाले जमींदारों की भी। सन् 1911 ई. की मनुष्यगणना में समूचे देश में लगान पर मौज मारने वाले जमींदारों या जमीन के मालिकों की तादाद 28 लाख लिखी गई है। फिर दस वर्ष बाद सन् 1921 में वही बढ़ के 37 लाख और सन् 1931 में पूरे 41 लाख हो गई। यानी कुल बीस ही साल में ये ड्योढ़े हो गए। यह प्रायः पचास फीसदी की वृद्धि इतनी थोड़ी मुद्दत में गजब की है। इसी के साथ-साथ सन् 1921 में खुद खेती करने वाले किसानों की संख्या, जिनकी अपनी जमीन हो, जो सन् 1921 में 7 करोड़ 46 लाख थी वही घट के सन् 1931 में 6 करोड़ 55 लाख पहुँच गई। यानी दस साल में पूरे 91 लाख किसानों की जमीन छिन गई। इसका सीधा अर्थ यह है कि हर साल 9 लाख से ज्यादा किसानों की जमीनें छिनी गई। यह तेज चाल साफ बताती है कि अगर यही हालत रही तो कमोबेश सत्तर साल बीतते न बीतते सभी किसान बिना जमीन के हो जाएँगे। इनमें 14-15 वर्ष तो बीत भी चुके हैं।

अब देखना यह है कि किसानों की जमीनें जब यों तेजी से छिनी जा रही हैं तो जैसे एक ओर मुफ्तखोर लगान चट्ट जमीन वाले (जमींदार) बढ़ेंगे उसी तरह दूसरी ओर खेती के मजदूर भी बढ़ेंगे ही। यानी ऐसे लोग जिनकी अपनी जमीनें तो होंगी नहीं। इसलिए या तो जमीन वालों से शिकमी, बटाई वगैरह के रूप में बहुत ज्यादा लगान दे के ये लोग जमीनें लेंगे और खेती करेंगे, या दूसरे के खेतों पर सिर्फ बहुत ही थोड़ी मजदूरी पर काम करके जैसे तैसे आधा-चौथाई पेट खाके और चिथड़े लपेट के गुजर करेंगे। हर हालत में वे खेत-मजदूर ही होंगे। दूसरे हो सकते नहीं। इस बात पर ज्यादा विचार अगले प्रकरण में करेंगे। यहाँ यही जान लेना है कि सरकार की ही रिपोर्टों के मुताबिक इन खेत-मजदूरों की तादाद किस तेजी से बढ़ती-बढ़ती आज कहाँ तक जा पहुँची है। सचमुच एक बार तो यह बात दिल दहलाए देती है।

श्रीयुत आर. पामदत्त ने सन् 1940 ई. में प्रकाशित अपनी पुस्तक *आज का भारत* के 218 वें पृष्ठ में इसके बारे में इस प्रकार लिखा है कि—

'सन् 1842 ई. की मनुष्यगणना के कमिश्नर सर टामस मुनरो ने लिखा था कि भारत में बिना जमीन का किसान एक भी न था (बेशक यह अत्युक्ति कही

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जा सकती है। मगर इससे स्पष्ट होता है यदि ऐसे किसान थे भी तो उनकी संख्या इतनी कम थी कि उसे लिखना फिजूल समझा गया)। फिर सन् 1882 की मनुष्यगणना में बिना जमीन वाले खेत-मजदूरों की तादाद 75 लाख आँकी गई। सन् 1921 ई. की गणना ने तो उनकी कुल तादाद पूरे 2 करोड़ 17 लाख, या खेती में लगे लोगों का पाँचवाँ हिस्सा ठहराई। सन् 1931 में वह बढ़के 3 करोड़ 35 लाख, या यों कहिये कि खेती में लगे कुल लोगों की तिहाई हो गई। उसके बाद से लेकर आज तक (1940 में) यह कूता गया है (जैसा कि सन् 1938 में बंगाल असेम्बली में काश्तकारी कानून के संशोधन के बहस मुबाहसे और पहले बताए गए मद्रास प्रान्त के आंकड़ों से भी सिद्ध हो जाता है) कि बिना जमीन के खेत-मजदूरों की कुल संख्या खेती में लगे सब लोगों की आधी हो गई है।' स्थानान्तर में यह संख्या पूरे पाँच करोड़ आँकी गई है, जिसका मतलब है कि खेती में लगे हुए किसान परिवारों की संख्या प्रायः दस करोड़ है। ऊपर केवल परिवारों की ही संख्या से मतलब है या ज्यादे से ज्यादा कमाने वाले व्यक्तियों से ही, न कि सभी व्यक्तियों से। परिवार के आश्रित बूढ़े, बच्चे आदि उस संख्या में शामिल नहीं हैं। किन्तु केवल कमाने वाले ही लिये गए हैं। नहीं तो किसानों की संख्या 80 फीसदी होने के कारण कुल तादाद 28 और 32 करोड़ के बीच में होगी। इस प्रकार खेत-मजदूर बाल बच्चे सहित दस से लेकर चौदह-पन्द्रह करोड़ के बीच में पहुँच सकते हैं। कम से कम दस करोड़ तो जरूर ही। क्योंकि उनके तो बच्चे वगैरह भी कमाते ही हैं। केवल बहुत ही नन्हे बच्चे और निहायत बूढ़े वगैरह छूटते हैं।

जिस मद्रास प्रान्त के आंकड़ों का जिक्र ऊपर आया है उसकी हालत यों है कि सन् 1901 में जहाँ सिर्फ लगान लेने वालों की तादाद फी हजार आदमियों में सिर्फ 20 ही थी, तहाँ तीस ही साल के बाद बढ़ के पूरी 50 यानी ढाई गुनी हो गई। इसी के साथ बिना जमीन वाले खेती के मजदूरों की संख्या 345 से 429 तक यानी एक-तिहाई से प्रायः आधी हो गई। इसी प्रकार यदि बंगाल की हालत का मुकाबला सन् 1921 और 1931 में करते हैं तो दस साल के भीतर ही भयंकर परिवर्तन पाते हैं। जहाँ बंगाल में 1921 में सिर्फ 390562 ही लगान वसूलने वाले जमीन के मालिक थे तहाँ 1931 में पूरे 633834 हो गए। यानी 61 फीसदी बढ़ गए। ठीक इसके उलटा अपने खेतों में खेती करने वाले किसान परिवार घट के 9274924 से 6079717 रह गए। अर्थात् 50 फीसदी की कमी हो गई। खेत-मजदूरों की संख्या भी 1805502 से 2718939 तक जा पहुँची, जिसका मतलब है कि 34 फीसदी की बढ़ती हुई। इसी तरह यदि पंजाब की ओर नजर डालते हैं तो भी इसी तरह की बात पाई जाती है। संयुक्त प्रान्त तथा मध्य प्रान्त और बरार भी कुछ ऐसे ही पथ के पथिक नजर आते हैं। पंजाब में लगान पर ही गुलछर्रे उड़ाने वाले सन् 1911 और 1921 के दरम्यान 626000 से बढ़ के 1008000 हो गए। पूरे 62 प्रतिशत

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की वृद्धि हुई। मध्य प्रान्त में भी इसी मुद्दत में 52 प्रतिशत की और युक्त प्रान्त में 46 प्रतिशत की वृद्धि हुई। यह दशा बेशक निहायत ही खतरनाक है। इस सम्बन्ध में ज्यादा ब्योरा और विस्तार देना फिजूल है। ऊपर लिखी बातें काफी हैं।

खेती पर अधिकाधिक लोग क्रमशः किस प्रकार निर्भर होते जा रहे हैं इसका पता इसी से लग जाता है कि भारत की जनसंख्या की 61.1 फीसदी 1891 में खेती से गुजर करती थी। वही बढ़के 1901 में 66.5, 1911 में 72.2 और 1921 में 73 हो गई। बेशक 1921 की मनुष्यगणना में खेती से जीने वालों की तादाद में गोलमाल हुआ है। इससे पूर्व की तीन गणनाओं के आंकड़े 61.1, 66.5 और 72.2 ही इसके सबूत हैं और संकेत करते हैं कि यह संख्या 78 के करीब होनी चाहिए। फिर भी वृद्धि तो मानी ही गई है। अगर इसी हिसाब से आगे के बीस वर्षों का भी हिसाब लगाएँ तो मानना पड़ेगा कि आज 80 से लेकर 85 फीसदी तक जनसंख्या का आधार एकमात्र खेती है। दूसरी ओर पुराने उद्योग-धन्धों और दस्तकारी के क्रमशः खत्म हो जाने से खेती के अलावे दूसरे उद्योग-धन्धों से गुजर करने वालों की तादाद क्रमशः घटती ही जा रही है। हालाँकि नए ढंग के कल कारखाने और बड़ी-बड़ी मिलें इधर ज्यादा खुली हैं। इसका साफ मतलब यही है कि दस्तकारी वगैरह के चौपट हो जाने से जो लोग बिना जीविका के हो गए हैं नए ढंग के कारखाने उन सबों को काम देने में असमर्थ रहे हैं। इसीलिए जो लोग दलील करते हैं कि लोगों की एक जीविका यदि छूटती है तो दूसरी नए ढंग की मिल जाती है नए कारखानों में, वे गलत रास्ते पर हैं और पूँजीवाद की असलियत को समझते ही नहीं। हाँ, तो उद्योग-धन्धों से जीने वाले इस देश में जहाँ 1911 में 5.5 प्रतिशत थे, वहाँ 1921 में 4.9 ही रह गए और 1931 में तो और भी घट के 4.3 प्रतिशत हो गए।

हमने पहले हिसाब लगाया है कि अगर यों ही लोगों की जमीनें छिनती रहीं तो कमोबेश अगले सत्तर सालों में ही सारी जमीनें उनके पास चली जाएँगी जो खुद खेती करते नहीं। फलतः खेती करने वाले सोलहों आने बिना जमीन के हो जाएँगे और जमीन वालों की मनमानी शर्तों पर ही उनसे जमीनें लेके या तो खेती करेंगे, भूखों मरेंगे, कहीं मजूरी करेंगे या चोरी-डकैती आदि। मगर हमें यह न भूलना चाहिए कि वैज्ञानिक ढंग से लंबे पैमाने पर खेती का युग है। इसलिए एक ओर तो हजार उपाय करके किसानों की सारी जमीनें जल्दी ही छिन जाएँगी और भय है कि इस काम में सत्तर साल की आधी मुद्दत भी शायद ही लगे। दूसरी ओर वे जमीनें शिकमी ढंग से भी किसी को फिर मिल न सकेंगी जैसा कि अभी तक होता रहा है। नतीजा यह होगा कि बाकी लोगों को ठीक वैसे ही खेत-मजदूर बन जाना होगा जैसे कि आसाम वगैरह के चाय बागानों एवं कहवा या रबर की खेती में काम करने वाले करीब-करीब दस लाख मजदूर बन गए हैं, जिन्हें मोटी भाषा में कुली कहते आते हैं। सब लोग तो वैसे मजदूर भी बन न सकेंगे। कारण, सबको काम तो मिल न

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सकेगा। इसलिए कुछ या तो भूखें मरेंगे या दूसरे रास्ते में जाएँगे। मगर बाकी लोग बड़े-बड़े फार्मों पर मजदूरी करेंगे, जैसा कि अमरीका आदि देशों में होता है। वहाँ एक ओर मुट्ठी-भर करोड़पति लोग बड़ी-बड़ी मिलों और बड़े-बड़े फार्मों के मालिक हैं। दूसरी ओर असंख्य जनसमूह उनका गुलाम है और मजदूरी के नाम पर उन्हीं के दिए टुकड़ों पर दिन काटता है।

इस प्रकार अब तक के बयान से यह साफ हो गया है कि खेती के मजदूरों-खेत-मजदूरों का सवाल पेचीदा है। उनकी न तो कोई बँधी-बँधाई तादाद ही है, और न यही बात है कि किसी एक ही तरीके से उनका नम्बर बढ़ता है। उसके बढ़ने के तो अनेक रास्ते हैं। खूबी तो यह है कि कल जमीनें पास होने से किसान थे और आराम से गुजर करते थे; तो आज एकाएक उनके छिन जाने से मुहताज बन गए। कल किसी धन्धे में लगे थे तो आज कोई पूछने वाला नहीं है, पुर्साहाल नहीं है। हर जाति, कौम और मजहब के लोगों को आए दिन इसी घाट उतरना पड़ रहा है। जो लोग माने बैठे हैं कि खेत-मजदूर तो हरिजन या पिछड़ी जातियों के ही लोग हैं उनने देखा कि यह बात गलत है। इस दल में तो सभी लोग लाचारी से धड़ाधड़ शामिल हो रहे हैं, सबों को शामिल होना है।

(2)
मजदूर या किसान?

खेत-मजदूरों की हालत का जो नक्शा अब तक खींचा गया है उससे उनकी असलियत की बहुत कुछ जानकारी हो जाने पर भी उनके बारे में एक निहायत ही जरूरी बात का जान लेना बाकी ही है और इसके बिना उनसे सम्बन्ध रखने वाली उनके दुःख-सुख की बातों का ठीक-ठीक समझना या उनका कोई हल सुझाना आसान हो नहीं सकता। इसीलिए आगे बढ़ने से पहले उस बात का विचार कर लेना आवश्यक है।

खेत-मजदूर या खेती के मजदूर कहने से ही यह बात एकाएक दिमाग में घुस जाती है कि ये लोग भी ठीक वैसे ही मजदूर हैं जैसे कल-कारखानों और खानों वगैरह में काम करने वाले। इसीलिए लोग समझने लगते हैं कि दूसरे मजदूरों के उद्धार की जो तरकीबें हैं उन्हीं को अमल में लाने से खेत-मज़दूरों की भी भलाई होगी और वे अपना मकसद-अपना लक्ष्य हासिल कर लेंगे। ऐसा खयाल हो आना स्वाभाविक है। सिर्फ खयाल ही नहीं, बल्कि उसी के मुताबिक कुछ नए-नए मजदूर-नेता अमल भी करने लगे हैं। नतीजा यह हुआ है कि एक तो इसके चलते खुद खेत-मजदूरों की, और किसानों की भी दिक्कतें बढ़ गई हैं। दूसरे उन्हें कामयाबी भी नहीं मिली है। आमतौर से आगे बढ़ने के बजाए ऐसे कामों से वे लोग पीछे चले गए हैं। यह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ठीक है कि कुछ ने तो अनजाने में ही ऐसा किया है। क्योंकि मजदूर नाम से ही वे धोखे में पड़ गए हैं। मगर ज्यादातर ऐसे भी लोग उनका नेतृत्व करने आए हैं जिन्हें अपना उल्लू सीधा करना था। बस, उनने एक रास्ता यही पा लिया। फलतः सारा गुड़ गोबर कर मारा। पता नहीं कि उनका मतलब भी सधा या नहीं। हाँ, इतना तो जरूर देखा कि कुछ दिनों बाद वे मौन हो गए।

दिक्कत यह है कि लोगों ने मजदूर शब्द का निराला मानी मान लिया है। इसी की जगह जो श्रमजीवी तथा मेहनतकश शब्द बोले जाते हैं उनका मतलब बहुत ही साफ है कि परिश्रम करके या हाथ-पाँव चलाके जो अपनी जीविका करे। अंग्रेजी में इसी अर्थ में 'वर्कर' और 'लेबर' शब्द आते हैं। उनका अर्थ है काम करने वाला या मेहनत करने वाला। यही अर्थ ठीक-ठीक मेहनतकश या श्रमिक शब्दों का है। ये शब्द यह बताते हैं कि निठल्ले बैठे हुए माल उड़ाने वालों की तरह ये लोग नहीं हैं कि दूसरों की कमाई पर भरपूर हाथ साफ करें। यह काम तो जमींदार, साहूकार और पूँजीपति या सरमाएदार ही करते हैं। श्रमिक या श्रमजीवी तो अपनी मेहनत की ही कमाई खुद खाते या औरों को भी खिलाते हैं। यही ठीक भी है और यदि इसी मानी में मजदूर शब्द लिया जाए जैसा कि चाहिए, तब तो खेत-मजदूर का अर्थ समझने में धोखा या गड़बड़ की गुंजाइश ही न रह जाए।

मगर गड़बड़ होती है इसीलिए कि मजदूर के मानी में ही एक शब्द अंग्रेजी में और भी आता है जिसे 'वेज-वर्कर' कहते हैं। 'वेज-लेबर' शब्द भी इस अर्थ में प्रयुक्त होता है। इन दोनों शब्दों का अक्षरार्थ है 'मजदूरी या वेतन के लिए काम (मेहनत) करने वाला'। प्रायः नौकर और भृत्य शब्द इसी माने में बोले जाते हैं। हालाँकि भृत्य शब्द का असली अर्थ है कि जिसका भरण-पोषण किया जाए। किसी कमाने वाले के आश्रित जितने लोग होते हैं उन सबों को भृत्य कहते हैं। मनु ने अपनी स्मृति के ग्यारहवें अध्याय में 'भृत्यानामुपरोधेन' श्लोक में भृत्य शब्द का यही अर्थ लिया है। हाँ, तो 'वे-वर्कर' के माने में ही मजदूर शब्द को समझ के लोग ऐसा मानने लगे हैं कि जो मजदूरी के लिए खेतों पर काम करे वही खेत-मजदूर हैं। जो अपने खेत को जोते-कोड़े, जैसाकि शुरू में सभी करते थे और आज भी बहुतेरे करते हैं, उसे खेत-मजदूर अब न कह के सिर्फ गैर के ही लिए उसी के खेतों को जोतने-कोड़ने आदि का काम जो करता है और उसके बदले में अन्न या पैसे पाता है उसे ही खेत-मजदूर मानने से बहुत सी भूलें हो जाती हैं। अंग्रेजी के 'एग्रीकल्चरल-लेबर' या 'एग्रीकल्चरल प्रोल्तारियत' का भी ऐसा ही अर्थ माना जाता है।

बात असल में यह है कि आज संसार में, जिस मानी में मजदूर शब्द बोला जा रहा है उसके अर्थ को 'वेज-लेबर' शब्द भी ठीक-ठीक जाहिर कर नहीं सकता। इससे तो सिर्फ इतना ही पता चलता है कि कोई आदमी गैरों के खेत या कारखाने वगैरह में इसीलिए काम करता है कि उसके बदले में एक बँधी-बँधाई रकम या गल्ला

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वगैरह मिल जाए। इससे यह कतई मालूम नहीं होता कि काम करने वाले के पास खुद भी खेत, काम के दूसरे साधन, घर बार वगैरह, या कुछ सम्पत्ति है या नहीं। आज तो इस प्रकार काम करने वालों का एक बड़ा दल बन गया है जो बाबू कहलाता है और जिसे निम्न-मध्यमवर्गीय भी कहते हैं। ऑफिसों के किरानी वगैरह इसी श्रेणी में आ जाते हैं। जिनके पास कुछ भी नहीं है और जो कमाएँ तो खाएँ, नहीं तो भूखों मरें ऐसे लोग भी 'वेज-वर्कर्स' हैं।

लेकिन आज तो आमतौर से मजदूर शब्द इसी मानी में बोला जाता है कि जिसके पास 'न तो तर धरती और न ऊपर बज्जर' हो, जो हर प्रकार की छोटी-बड़ी सम्पत्ति से सर्वथा रहित हो, जो दूसरों के खेतों या कल-कारखानों में काम करके गुजर करे और पराए के मकानों में ही रहे, जिसे मकान मालिक या कल कारखानेदार जभी चाहे निकाल बाहर करे। ऐसे लोगों को आजकल 'फ्री लेबर' या स्वतन्त्र श्रमिक कहते हैं। इसके मानी हैं कि हर चीज से उनका सम्बन्ध टूटा हो। क्योंकि सम्बन्ध बन्धन का कारण होता है। उसके चलते पूरी आजादी नहीं रहती। इसलिए उनके पास केवल श्रम-शक्ति ही रहती है। उनकी यही एक सम्पत्ति रह जाती है। बाकी सभी गायब। हाँ, स्त्री, बच्चे, पिता आदि ऐसे व्यक्ति भी हो सकते हैं जिनकी जीविका का दारमोदार उसी एक कमाने वाले पर ही हो। हालाँकि पूँजीवादी व्यवस्था अमली तौर पर आज यह भी नहीं मानती कि श्रमशक्ति या काम करने की ताकत के सिवाय मजदूर के पास या उसके सम्बन्धी स्त्री बच्चे आदि भी हैं। सिद्धान्त के रूप में भले ही यह बात मानी जाती हो कि यदि स्त्री, बच्चे उसे न होंगे तो उसके मरने या अशक्त हो जाने पर फिर मजदूर मिलेंगे कैसे? इसीलिए काम के बदले में उसे इतनी मजदूरी जरूर मिलनी चाहिए कि वह खुद सशक्त रहे, सन्तान उत्पन्न कर सके और स्त्री, बच्चों का भरण-पोषण कर पाए। मगर व्यवहार में तो यही देखा जाता है कि जहाँ तक हो सके कम से कम मजदूरी ही उसे दी जाती है जिससे उस अकेले की भी गुजर असम्भव है।

आज के कल-युग (कल-कारखानों के युग) में वह एक प्रकार से खरीद-बिक्री की चीज माना जाता है। जिस प्रकार कपड़े लत्ते वगैरह बाजार भाव पर बिका करते हैं और उनकी कीमत कभी घटती और कभी बढ़ती है, कभी-कभी तो ऐसा होता है कि उनका पूछने वाला कोई होता ही नहीं, जिससे वे पड़े-पड़े सड़ा करते हैं। ठीक यही दशा उस मजदूर की या यों कहिए कि उसकी श्रमशक्ति की है। वह भी 'कमोडिटी' ही है। उसकी भी कीमत घटती-बढ़ती रहती है। कभी-कभी तो उसे कोई पूछता भी नहीं। गुलाम लोग तो बिक जाते थे और जिसके पास वे जाते वही उनके खान-पान वगैरह का प्रबन्ध सदा के लिए करता था—उसके लिए जवाबदेह बन जाता था। अगर उसने कदाचित् गुलाम को बेचा भी तो कोई खरीदता वही उसके खान-पान आदि के लिए उत्तरदायी बन जाता। यह बात पहले प्रकरण में ही कही जा चुकी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है। मगर वर्तमान के 'वेज-लेबर' (मजदूर) की तो अजीब हालत है। यह तो मारा फिरता है, कारखानेदार उसे आदमी समझते ही नहीं। उन्हें उसकी गर्ज नहीं है। यदि वे एक मजदूर चाहते हैं तो दस दौड़े आते हैं। फिर गर्ज क्यों रहे? जिस प्रकार बाजार में चीजों की कीमत आपस की चढ़ा-बढ़ी के कारण बहुत ज्यादा गिर जाती है, वही हालत मजदूरों की, उनकी श्रमशक्ति की है। आपसी चढ़ा-बढ़ी के चलते उसकी कीमत नाममात्र को ही मिलती है। इसीलिए मजदूर का उचित और असली नाम 'वेज-लेबर' न होकर प्रोल्तारियन माना गया है। इस शब्द का अर्थ है 'सर्वहारा'—अर्थात् जिसका सबकुछ छिन गया है, हर लिया गया है। कार्ल मार्क्स ने अपनी पूर्वोक्त पुस्तक में इस सर्वहारा की उपमा रेशम की कीड़े से दी है जैसे रेशम के कीड़े को खाना इसलिए खिलाते हैं कि वह मालिक के लिए रेशम पैदा करते हैं। ठीक सर्वहारा को भी खाना देते हैं केवल इसलिए कि काम कर देता है। कीड़े को जिन्दा रहना है तो रेशम पैदा करे और सर्वहारा को कायम करना है तो काम करे।

मार्क्स उसी किताब में आगे और भी लिखता है कि 'इस स्वतन्त्र श्रमिक (मजदूर) की तो यह हालत है कि इसे अपनी आत्मा, अपनी हस्ती को ही बेच देना पड़ता है। सो भी एक बार नहीं, किन्तु टुकड़े-टुकड़े करके। अपने जीवन के 8, 10, 12 या 15 घंटे एक दिन वह उसके हाथ नीलाम कर देता है जो सबसे ज्यादा बोली बोलता है—दाम देता है। अर्थात् जिसके पास उत्पादन के (काम करने के) साधन कच्चे माल, औजार हथियार वगैरह तथा जीवनोपयोगी अन्न-वस्त्रादि होते हैं और जिसे पूँजीपति कहते हैं। यही बात फिर अगले दिन और उसके बाद बराबर होती रहती है। यह श्रमजीवी या सर्वहारा न तो किसी एक पूँजीपति के और न किसी जमीन के मातहत होता है। सिर्फ उसकी रोजाना जिन्दगी के 8, 10, 12 या 15 घंटे उस आदमी के हो जाते हैं जो उन्हें खरीदता है।'

अपने विश्वविख्यात ग्रन्थ *कैपिटल* में मार्क्स इसी बात को संक्षेप में यों लिखता है कि 'उसके पास साधनों में एक भी नहीं रहना चाहिए जिस पर उसकी श्रमशक्ति का प्रयोग हो सके।' ऐसे लोग जिनके पास श्रमशक्ति के अलावा और कुछ हई नहीं।

मि. जॉन स्ट्रेची ने अपनी पुस्तक *समाजवाद सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक* में यही बात यों लिखी है कि 'मजदूर वर्ग ऐसे लोगों का बना होता है जिन्हें मजबूरन अपनी जिन्दगी कायम रखने के लिए अपने काम करने की शक्ति को कारखानेदारों या खेतवालों के हाथ काम करने के लिए बेच देना पड़ता है।'

अब हमें इसी कसौटी पर कसके देखना है कि हमारे देश के खेत-मजदूर कहे जाने वाले आया इसमें खरे उतरते हैं या नहीं, आया उनमें यह बात पाई जाती है या नहीं। बेशक यहाँ खेतों में काम करने वाले मजदूरों के दो टुकड़े कर सकते हैं। एक दल तो उनका है जो वैज्ञानिक ढंग से की जाने वाली खेती के लिए हजारों एकड़ों फार्मों में काम करते हैं। ऐसे मजदूर दार्जिलिंग एवं आसाम के उत्तरी जिलों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के चाय बागानों में तथा नीलगिरी आदि स्थानों में कहवा या रबर के बड़े-बड़े फार्मों में पाए जाते हैं। इनके बारे में पूर्वोक्त पुस्तक में श्री पामदत्त ने लिखा है कि 'साहूकारों के गुलाम बनके जो लोग मजदूरी करते हैं, अनेक बातों में ठीक उन्हीं की-सी हालत उन दस लाख से ज्यादा मजदूरों की है जो गुलामों की तरह बड़े-बड़े चाय, कहवा और रबर के बागानों में काम करते हैं। इन बागानों में 90 प्रतिशत के मालिक यूरोपीयन ही हैं जो बहुत ज्यादा मुनाफा कमाते हैं।'

प्रान्तीय सरकारों और भारत सरकार के बड़े फार्मों में तथा कुछ गैर-सरकारी फार्मों में भी इसी प्रकार के मजदूर मिल सकते हैं। मगर एक तो इनके बारे में कोई पक्की जानकारी है नहीं। दूसरे पूर्वोक्त बागानों के मजदूरों की बात निराली है। वे एक-एक स्थान पर कई-कई हजार की तादाद में आज युगों से बस गए हैं। इस प्रकार वे सचमुच सर्वहारा बन गए हैं। यह बात इन फार्मों में काम करने वालों में अभी तक आमतौर से है नहीं। इसीलिए बागान वालों के बारे में श्री पामदत्त लिखते हैं कि 'संगठित मजदूर आन्दोलन को चलाने की शक्ति की दृष्टि से हमें दस लाख से ज्यादा उन श्रमजीवियों को भी गिनना होगा जो बागानों में काम करते हैं। ये लोग पूर्ण रीति से वैज्ञानिक तरीके पर गुलाम बना रखने वाले चाय वगैरह के बागानों में काम करते हैं। यद्यपि वे लोग अब तक सभी प्रकार के संगठनों से वंचित रह गए, उन्हें किसी से मिलने-जुलने नहीं दिया जाता और पूर्णतया मालिकों के अधीन कर दिए गए हैं। तथापि बेचैनी और गड़बड़ी के समय उनने बहुत ऊँचे दर्जे के संघर्षात्मक काम किए हैं।'

अतएव ऐसे खेत-मजदूरों को मजदूर या सर्वहारा श्रेणी में दाखिल करने में किसी को भी आनाकानी हो नहीं सकती। वे तो उसी दल के हई। ऐसे बागानों या फार्मों में, जो आज मौजूद हैं या आगे कायम होंगे, जो भी खेत-मजदूर होंगे वे तो दरअसल उन मजदूरों से जरा भी भिन्न नहीं हो सकते जो खानों, बड़े कारखानों या ऐसे उद्योग-धन्धों में काम करते हैं। उन दोनों की दशा, रहन-सहन, लड़ाई और परिस्थिति प्रायः एक ही ढंग की होती है। शायद ही तफसीली या ब्योरे की बातों में कुछ अन्तर होता है। मगर असलियत एक ही होती है।

खेत-मजदूरों के दो दल होते हैं इस बात की पुष्टि लेनिन के उस भाषण के एक अंश से हो जाती है जो उसने कम्युनिस्ट पार्टी की दसवीं कांग्रेस के अवसर पर सन् 1921 ई. की गर्मियों में दिया था। खेत-मजदूरों के जिस सर्वहारा नामक अंश का उल्लेख अभी किया गया है उसे लेनिन ने खुद उसी भाषण में स्वीकार किया है। उसका एक अंश यों है—'जिन देशों में पूँजीवाद की काफी तरक्की हो गई है वहाँ कुछ मुद्दत से बनते-बनते अब खेत-मजदूरों का एक वर्ग तैयार हो गया है जो केवल पैसे या मेहनताने के लिए काम करता है। जिन मुल्कों में यह वर्ग काफी मजबूत और बड़ा बन गया है वहाँ पूँजीवाद से सीधे समाजवाद की स्थापना हो सकती

RajGuru Math, Shivala, Varanaśi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है। लेकिन हमने तो अपनी लम्बी लेखमालाओं, सभी भाषणों और सभी अखबारों के द्वारा इस बात पर पूरा जोर दिया है कि रूस की परिस्थिति ऐसी नहीं है। रूस में तो अपेक्षाकृत अल्पसंख्यक ही मजदूर कल-कारखानों में काम करते हैं। यहाँ तो अधिकांश लोग छोटे-छोटे खेतिहर हैं, जो अपनी जमीनों में खेती करते हैं।'

लेनिन के इस कथन से जहाँ एक ओर यह बात सिद्ध होती है कि लम्बे पैमाने पर ही खेती करने पर खेत-मजदूरों का सर्वहारा वर्ग तैयार होता है और उसके लिए पूँजीवाद के भरपूर विकास की जरूरत है, साथ ही उस दशा में भी इस वर्ग के तैयार होने में कुछ मुद्दत लगती है, तहाँ दूसरी ओर दूसरे खेत-मजदूरों का नाम उसमें लिया ही नहीं गया है। खेत-मजदूरों के सर्वहारा वर्ग के सिवाय बाकियों को लेनिन ने टुटपुँजिए खेतिहर वर्ग में ही गिना है। यह तो कह नहीं सकते कि बड़े-बड़े फार्मों के सिवाय बाकी जो छोटे-मोटे किसान थे उनके खेतों पर मजदूर काम करते ही न थे। रूस का इतिहास ही इस बात का साक्षी है कि ऐसे लोग थे बहुत। इतना ही नहीं। खेती सम्बन्धी गुलामी प्रथा जब सन् 1861 ई. की 19वीं फरवरी को रूस में कानून के जरिए खत्म की गई तो हालत यह हो गई कि कहने के लिए वे गुलाम आजाद बन गए और उन्हें जमीनें भी मिल गईं। मगर श्री लांसलाट ओयन के अनुसार— जिनने सन् 1906 और 1917 के बीच किसान आन्दोलन के सम्बन्ध की अपनी किताब के छठे पृष्ठ में यह बात यों लिखी थी कि असलियत यह थी कि इस आजादी और जमीन की प्राप्ति के लिए सरकार को हर साल उन्हें जो रकम चुकानी पड़ती थी वह उन जमीनों की पैदवार की कीमत से कहीं ज्यादा होती थी। यह बात प्रोफेसर वाई. ई. यानसन ने लिखी है। यद्यपि हारकोव सरकारी वकील ने प्रोफेसर की सभी बातें अक्षरशः नहीं मानी हैं, तथापि उसने कबूल किया है कि बहुत से इलाकों में तो साफ ही जमीन की कमी ऐसी थी कि उसकी उपज से अपनी प्रतिदिन की सख्त जरूरतों को पूरा करना और सरकारी पावना चुकाना ये दोनों बातें किसानों के लिए असम्भव थीं। इसीलिए श्री ओयन अपनी उसी किताब के 7वें पृष्ठ में साफ ही लिखते हैं कि 'इस जमीन की कमी के करते किसानों को मजबूरन या तो जमींदारों से लगान पर जमीन लेकर अपनी जरूरत को पूरा करना पड़ता था, या उन जमींदारों के खेतों में उन्हें मजदूरी करनी पड़ती थी, या गाँवों से दूर जा के कहीं नौकरी करके काम चलाना पड़ता था।'

उसके बाद श्री ओयन की पूर्वोक्त पुस्तक के 65-66 पृष्ठों के अनुसार सन् 1906 ई. के 9 नवम्बर की घोषणा के द्वारा जो गाँवों की पंचायती जमीनों को टुकड़े-टुकड़े बाँटने की आजादी किसानों को जार के प्रधानमंत्री स्टालिपिन ने दी उसका भी नतीजा यही हुआ कि गाँवों में दो प्रकार के किसान हो गए। एक तो वे जिन्हें पंचायत से बाहर जमीन मिलने पर भी, जमीन की अल्पता या खेती का और सामान पास में न होने के कारण, वह जमीन मजबूरन बेच देनी पड़ी। दूसरे थे धनी और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सम्पन्न लोग, जिन्हें जमीन खरीदने की आजादी अब प्राप्त थी। सन् 1907 और 1910 के भीतर कुल मिला के प्रायः एक करोड़ एकड़ जमीन इस प्रकार बिक गई।

इनके सिवाय बालटिक प्रदेश में 'बतराकी' कहे जाने वाले ऐसे लोग थे जिनकी अपनी जमीनें न होने पर भी दूसरे के खेतों पर काम करते थे। पैदावार का एक निश्चित भाग जमीन के मालिक को देने की शर्त पर जमीनें लेकर खेती करने वाले तो थे ही। इस प्रकार जैसे हमारे देश में हलवाहे आदि के नाम से प्रसिद्ध खेत-मजदूर हैं वैसे ही रूस में भी थे। फिर भी यह सोचने की बात है कि लेनिन ने उन्हें खेत-मजदूर न कहके टुटपुँजिए किसानों के ही नाम से पुकारा है और खेतिहरों में ही जिन्हें शामिल कर लिया है। आखिर स्टालिपिन की व्यवस्था ने ही तो रूस में कुलक नामक धनी किसानों की वृद्धि को प्रश्रय दिया था। इसीलिए उनके यहाँ खेतों में काम करने वालों की कमी रूस में थी नहीं। यह ठीक है कि लेनिन के कथनानुसार उन्हें 'जमीन वाले छोटे-छोटे किसान' भी नहीं कह सकते। लेकिन उनका पृथक् उल्लेख ऐसे महत्त्वपूर्ण अवसर पर जो लेनिन ने नहीं किया, उससे साफ है कि जहाँ तक जनता की क्रान्ति का ताल्लुक था, किसानों से अलग उन खेती के मजदूरों की गिनती न थी। लेनिन ने उन्हें कारखानों या बड़े-बड़े फार्मों के सर्वहारा की श्रेणी के योग्य न समझ किसानों की ही श्रेणी में समझा।

लेनिन के इस कथन का और मतलब है। असल में क्रान्तिकारी शक्तियों का विश्लेषण करते हुए ही उसने ऐसा कहा था और असली क्रान्तिकारी शक्ति तो गाँवों में केवल सर्वहारा श्रेणी में ही हो सकती है। क्योंकि वह दल कारखानों के सर्वहारा जैसा ही है। बाकी लोग तो उसके पीछे आते हैं। सो भी शुरू में नहीं। किन्तु आगे चलकर जब वे देखते हैं कि उनका मतलब सिद्ध होने वाला है। सर्वहारा श्रेणी को भी क्रान्ति की सफलता के लिए मजबूरन उनसे समझौता करना पड़ता है। लेनिन का तात्पर्य यही है कि केवल सर्वहारा श्रेणी को ही सर्वशक्तिमान समझ उनसे ही क्रान्ति की सफलता का खयाल करना भारी भूल है। वे तो देहातों में हई नहीं है। देहातों में तो टुटपुँजिए किसान ही अत्यधिक संख्या में पाए जाते हैं और यदि उनसे सुलह न की जाएगी तो क्रान्ति की सफलता मिल नहीं सकती। बनी बनाई क्रान्ति मटियामेट हो जाएगी। नई आर्थिक नीति की जरूरत बताते हुए ही उनसे यह बात कही थी और इस नीति में टुटपुँजिए या साधारण किसानों के साथ काफी रिआयत करके समाजवाद के सिद्धान्त का पूर्ण पालन न किया गया था। फलतः उन किसानों के साथ सर्वहारा वर्ग का एक प्रकार से समझौता हुआ था। यदि खेती के मजदूरों को सर्वहारा श्रेणी में मानते तो क्रान्ति की सफलता में धोखा होता। क्योंकि उनकी मनोवृत्ति किसानों जैसी ही होती है। इसलिए उस कथन के बाद ही उसी भाषण में यही बात लेनिन ने कही थी।

हाँ, तो बड़े-बड़े बागानों और फार्मों में काम करने वाले दस-बारह लाख मजदूर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तो सर्वहारा श्रेणी में ही आते हैं जैसा कि अब तक के वर्णन से स्पष्ट हो जाता है। सर्वहारा की सबसे बड़ी और असली पहचान यह है कि उनमें संगठित रूप से मिलकर लड़ने और अपना हक हासिल करने की शक्ति होती है, जिसे अंग्रेजी में कलक्टिव बारगेनिंग पावर कहते हैं। इन फार्मों और बागानों के मजदूरों में भी यह बात पाई जाती है।

इस बात को यों देखें तो काम चले। किसी भी मिल या कारखाने को लीजिए। वहाँ हजारों मजदूर काम करते पाए जाएँगे। एक तो वे एक ही साथ एक ही समय उठते-बैठते और सोते-जागते हैं। गिरोह बाँध के एक ही साथ काम पर जाते और वहाँ से लौटते हैं। समय की पाबन्दी पर पूरी नजर रखने की मजबूरी के करते उनका जीवन फौजी जवानों की तरह हो जाता है। एक प्रकार की कवायद उन्हें सीखनी ही पड़ती है आने-जाने आदि के रूप में। साथ ही, बराबर सम्मिलित जीवन बिताने का भी उन पर असर पड़ता है, जैसे बैरकों के सिपाही हों। यदि वे एक राय से काम बन्द कर दें तो कारखाने वाले को अपना काम चलाना गैर-मुमकिन हो जाता है। एक तो उनके कामों को आमतौर पर से सभी लोग कर नहीं सकते कि छोड़ देने पर सँभाल लें। दूसरे हजारों आदमियों को जमा करना आसान नहीं। तीसरे काम छोड़नेवाले मजदूर पिकेटिंग आदि के जरिए बाहरी लोगों को रोक देते हैं। चौथी बात यह होती है कि उनकी यूनियन (सभा) आसानी से उनका पथप्रदर्शन कर सकती है। क्योंकि वे लोग एक ही जगह रहते जो हैं, जिससे जब चाहें सबों से मिलजुल सकते हैं। पाँचवीं बात यह होती है कि दूसरे-दूसरे कारखानों के मजदूर भी उनकी सहानुभूति में काम बन्द कर देते हैं। क्योंकि यह हालत तो एक के बाद दीगरे सभी की होती है। इसलिए यदि एक कारखाने वालों ने दूसरे मिलवालों से हमदर्दी दिखाई, तो दूसरे भी मौका पड़ने पर पहले वालों से दिखाते ही हैं। सबसे बड़ी बात यह होती है कि एक स्थान पर रहने के कारण समाचार-पत्रों, सामयिक किताबों, सभाओं वगैरह से फायदा आसानी से उठाया जा सकता है। इसके सिवाय जहाँ ऐसे कारखाने या बागान होते हैं वहाँ रेल, तार, बेतार, वगैरह की आसानी रहने के कारण दुनिया की खबर वहाँ और वहाँ की दुनिया में आसानी से पहुँच जाने के कारण बाहर की जनता भी उनके साथ सहानुभूति का प्रदर्शन करती है। अतएव इन सभी बातों के फलस्वरूप उन मजदूरों को अपनी लड़ाई में आसानी होती है और सफलता भी प्रायः मिलती ही है। ये सभी बातें मिलों और फार्मों या बागानों में समान रूप से पाई जाती हैं। रेल तार वगैरह के बिना दोनों का ही काम नहीं चल पाता। बाकी बातें भी पाई जाती हैं।

इस प्रकार खेत-मजदूरों के एक भाग का विचार हो चुका। वे सोलहों आने मजदूर वर्ग में आ जाते हैं। अतएव उनकी लड़ाइयाँ, उनके संगठन, उनके काम ठीक वैसे ही होने चाहिए, जैसे दूसरे मजदूरों के होते हैं—उनके जो मिलों वगैरह में काम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करते हैं। मगर यह याद रखना होगा कि खेत-मजदूरों की संख्या पाँच करोड़ या ज्यादा बताई गई है उसका एक महज नन्हा सा हिस्सा ऐसे मजदूरों का है। मुश्किल से दो प्रतिशत भी शायद ही हो। इसलिए अब जो 98 प्रतिशत बच गए हैं उन्हें किस श्रेणी में गिना जाए यह सवाल उठता है—अर्थात् उन खेत-मजदूरों के दूसरे और महत्त्वपूर्ण भाग का विचार भी कर लेना जरूरी है। असल में तो हमें इन 98 फीसदी से ही काम पड़ता है। 2 प्रतिशत तो कहाँ दूरदराज खोह और प्रदेश में पड़े हैं कौन बताए? उन तक कौन पहुँचे? जैसा कि रूस के बारे में लेनिन का वचन उद्धृत कर चुके हैं वह भारत में तो और भी अक्षरशः लागू है। यहाँ तो छोटे-छोटे खेत नन्हीं-नन्ही क्यारियों जैसे—सर्वत्र नजर आते हैं और उनमें कहीं एक, कहीं दो, कहीं चार इसी प्रकार खेत-मजदूर हल चलाते या दूसरे काम करते पाए जाते हैं। कोई गाँव ऐसा है जहाँ खुद किसान ही अपनी खेती का काम कर लेते हैं। उन्हें हलवाहे आदि की जरूरत नहीं होती। फिर ऐसा भी गाँव है जहाँ दो ही चार किसान हैं। जिन्हें खेत-मजदूरों से काम लेने की जरूरत है। जहाँ ज्यादा खेत-मजदूर हैं ऐसे भी गाँव पाए जाते हैं। कहीं गाँव पास-पास में हैं, तो कहीं एक से दूसरे का फासला मीलों और कोसों है। तात्पर्य यह है कि खेती के मजदूर दाने की तरह बिखरे पड़े हैं और इनका परस्पर मिलना आसान नहीं है। यदि चाहें तो भी अकसर मिल सकना प्रायः असम्भव है। न तो सबों के काम के घंटे तक निश्चित हैं और इतनी ही देर काम करेंगे, ज्यादा देर नहीं यही तय है। फलतः काम के बाद पस्त और मुर्दे हो जाते हैं। गधे की तरह दिन-रात खटना जो पड़ता है। ज्यादातर किसानों और उनके मजदूरों की—दोनों की ही—यही हालत है। फिर हिम्मत कहाँ कि काम के बाद मीटिंग करें?

जाति-पाँति और धर्म-मजहब का भेद भी इन्हें एक-दूसरे से जुदा रखता है। ऊँच-नीच के पुराने खयाल और संस्कार उनके दिल में यह बात आने ही नहीं देते कि सभी खेत-मजदूर हैं। फिर मिलके लड़ने की बात कैसे और क्यों कर उठ सकती है? यदि कहीं लड़ने की हिम्मत भी इनने की तो किसान आसानी से एक की जगह दूसरे से काम ले सकता है। हर किसान को तो एक, दो-चार ही की जरूरत होती है और उतने ही आसानी से उसे मिल सकते हैं। यदि न भी मिलें तो किसान खुद भी खेती का काम कर सकता है। कल-पुर्जे चलाने या मशीन का काम तो है नहीं कि गँवार किसान चला नहीं सकता। लकड़ी के ये पुराने दकियानूसी हल तो सभी के हाथों बखूबी चल सकते हैं। असल में थोड़ा सा सम्मान की मिथ्या धारणा या धर्म का गलत खयाल ही उसे हल वगैरह चलाने से रोकता था। मगर जब भूखों मरने या झुकने की नौबत आएगी तो ये खयाल टिक नहीं सकते। ऐसा सैकड़ों जगह हो भी चुका है। सिर्फ कयास या अन्दाज की बात नहीं है। ऐसी दशा में मिलके लड़ना या कलेक्टिव बारगेनिंग की गुंजाइश भी यहाँ कैसे हो सकती है? और अगर कहीं-कहीं खेत मजदूरों के द्वारा काम छोड़ देने (हड़ताल) की धमकी या खास हड़ताल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

को ही सफलता मिली है तो ज्यादा जगह विफलता भी हाथ लगी है। यह भी याद रहे कि किसानों के सजग न होने से ही यह बात हुई है। लेकिन जब यह हड़ताल संगठित रूप से चलाने की कोशिश होगी तो किसान भी सामूहिक रूप से सजग हो जाएँगे और नतीजा बुरा होगा।

मजदूरों की सम्मिलित लड़ाई की योग्यता के सम्बन्ध में पहली जितनी बातें कही गई हैं उनमें एक भी इन खेत-मजदूरों के सम्बन्ध में लागू नहीं हो सकती हैं। दूर-दराज की देहातों में रेल, तार वगैरह का ही अभाव ही समझिए। अखबार और सामयिक साहित्य की प्राप्ति भी नहीं के बराबर ही है। मीटिंगें भी शायद ही कभी कहीं हो पाती हों। उनका संगठन तो और भी कठिन है। परस्पर हमदर्दी तो शायद ही कहीं हो। उसका प्रदर्शन का मौका भी तो नहीं होता। परिणाम भी कुछ हो नहीं सकता। एक किसान का दूसरे के साथ वैसा नाता नहीं है जैसा कि एक मिल का दूसरी के साथ। अतएव इन्हें मजदूरों की श्रेणी में गिनना ठीक नहीं है। इसके लिए कोई भी कारण नहीं है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि इन खेत-मजदूरों के मकान या झोंपड़े तो होते ही हैं। एकाध बकरी, गाय या सूअर वगैरह भी रहते ही हैं। और नहीं तो दो-चार कट्ठे जमीन के भी होते ही हैं। ज्यादा नहीं तो मकान वाली ही जमीन इनकी होती है। यह भी बात तो है कि कल तक किसान थे, मगर जमींदार या साहूकार ने सारी जमीन नीलाम करवा ली तो एकाएक आज बिना जमीन के हो गए—खेत-मजदूर बन गए। मगर सर्वहारा इतनी जल्दी कैसे बन जाएँगे? कही तो चुके हैं कि खेत-मजदूरों की संख्या इतनी बड़ी तेजी से बढ़ रही है। हर साल लाखों इस दल में शामिल हो रहे हैं। अतएव इन्हें किसान ही मानना ठीक है। ये उसी वर्ग में शामिल किए जा सकते हैं, किए जाने चाहिए।

लेकिन इस गोलमोल कथन से काम नहीं चल सकता। इस बात की थोड़ी और सफाई होनी चाहिए। किसान कहने से बहुत तरह के लोग आ जाते हैं। ऐसे भी लोग अपने को किसान कहते हैं, कहने की हिम्मत करते हैं जिनके पास बीसों हजार बीघा जमीन केवल रैयती है। लेकिन यदि सच पूछा जाए तो वे जमींदार ही हैं—भयंकर जमींदार हैं। क्योंकि किसान के नाम लोगों को आसानी से धोखा दे सकते हैं। साधारणतया किसान उसी को कहना चाहिए जिसकी प्रधान जीविका खेती हो। इसका आशय यही है कि प्रधानरूप में खेती के बिना जिसकी जीविका चल न सके वह किसान कहने का दावा नहीं कर सकता। ऐसी दशा में जो लोग बहुत ज्यादा रैयती जमीनें रखते और कुछ में खेती करके बाकी को दूसरों को बन्दोबस्त कर देते हैं। उनकी जीविका जो खेती के बिना भी चल ही जाती है। विपरीत इसके जिसके पास जरा-मरा अपनी जमीन हो, या न भी हो, मगर दूसरों से ही बँटाई वगैरह के रूप में ही कुछ जमीन ले के, खेती करे और मौका पाकर गैरों के खेतों पर मजदूरी करे, वह किसान कहा जा सकता है। लेकिन जिसके परिवार के लिए जीविका का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रधान साधन मजदूरी ही हो वह साधारणतया किसान न समझा जाने पर भी किसान श्रेणी के बाहर तब तक माना जाना नहीं चाहिए जब तक छोटे-मोटे खेतिहरों के खेतों पर काम करके ही जीविका करता है और बड़े बागानों या बड़े फार्मों में काम नहीं करता। तात्पर्य यह है कि जब तक उसे जमीन हासिल कर उसमें खेती करके गुजर करने की आशा है और जब तक इस आशा की पूर्ति की सम्भावना है तभी तक उसे किसान कह सकते हैं। मगर जहाँ आधुनिक ढंग के फार्मों में मोटर के हलों से खेती होने लगी और पूँजीवाद का खेती में भी पदार्पण हो गया वहाँ यह सम्भावना नहीं रह जाती। इसलिए वहाँ का खेत-मजदूर जरूर ही किसान न होके मजदूर या सर्वहारा बन जाता है। फलतः जैसे-जैसे ये फार्म बढ़ेंगे तैसे असली खेत-मजदूर बढ़ते जाएँगे।

असल में किसान तीन दलों में बाँटे जा सकते हैं—(1) गरीब किसान (2) मध्यम श्रेणी के किसान, और (3) धनी किसान। वर्तमान रूस के विधाता श्री स्तालिन ने *लेनिनवाद* नामक सुन्दर किताब लिखी है। या यों कहिए कि स्तालिन के लेखों, भाषणों आदि का संग्रह स्वरूप ही वह पुस्तक बनी है। उसके पृष्ठ 308 में टिप्पणी इस बात पर सुन्दर प्रकाश डालती है। रूस की उस समय की दशा भारत से मिलती-जुलती थी जहाँ तक किसानों का ताल्लुक था। इसीलिए वह टिप्पणी हमारे बड़े काम की है। वह यों है—'रूसी किसान प्रधानतया तीन तरह के हैं—(1) धनी किसान, जिन्हें कुलक कहते हैं। इनके खेत बड़े-बड़े होते हैं और ये लोग मजदूरी पर मजदूरों से काम करवाते हैं। ये लोग 'देहाती सम्पत्ति जीवी या पूँजीपति' हैं। जारशाही के समय के गाँवों के सूदखोर और शराब बेचने वाले भी कुलक कहे जाते थे। (2) मध्यम किसान, जो अपने खेतों में अपने घर वालों की ही मदद से अपने ही हाथों खुद खेती करते हैं। ये लोग साधारणतया मजदूरों से काम नहीं करवाते। (3) गरीब किसान जिनके पास या तो बहुत ही थोड़े खेत होते हैं, या बिलकुल ही नहीं होते। ये लोग प्रधानतया मजदूरी के लिए ही खेतों में काम करते हैं। इन्हें अर्द्ध किसान या अर्द्ध सर्वहारा कह सकते हैं। ये लोग गाँवों में काम न रहने पर यानी खेती का मौसम न होने पर शहरों में मजदूरी करते हैं।'

ऊपर के इस बयान में कई महत्त्वपूर्ण बातें हैं। एक तो यह है कि यह जो रूस के किसानों का वर्णन दिया गया है वह प्रायः भारत के किसानों की दशा से सोलहों आने मिलता-जुलता ही है। जिन धनी और गरीब किसानों का उल्लेख इसमें है वे तो हमारे यहाँ भी ठीक-ठीक पाए जाते हैं। जरा भी अन्तर नहीं है। रूस में खेत-मजदूरों को गरीब किसानों में ही गिना है। हमारे यहाँ भी यही बात है। हम इसे न समझें या न मानें, तो बात ही दूसरी है। मगर हालत तो दोनों जगह बराबर ही है। हाँ, मध्यम किसानों का जो वर्णन वहाँ के लिए है उसमें और यहाँ के मध्यम किसानों की हालत में कुछ-कुछ अन्तर है। हमारे यहाँ धर्म-वर्म का मिथ्या बखेड़ा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होने के कारण मध्यम किसान बहुतेरे मजदूरों से काम करवाते हैं। ज्यादातर ब्राह्मण लोग ही ऐसा करते हैं और कुछ क्षत्रिय लोग भी। इस धर्म के बखेड़े के करते ही गरीब ब्राह्मण किसान भी खुद हल नहीं चलाते। यहाँ के भी मध्यम किसान कमाते खाते ही हैं। उनकी पैदावार बेचने के लिए शायद ही कभी होती हो। पैदावार से मेरा मतलब गल्ले से है। ईख, मिर्च, तम्बाकू आदि किराना चीजें तो वेची ही जाती हैं। मगर धनी बनने के लिए इनकी बिक्री वे नहीं करते, किन्तु केवल अपना खर्च चलाने के ही लिए।

दूसरी बड़ी वात इसमें यह है कि गरीब किसानों का जो तीसरा दल है वह प्रधानतया खेती के मजदूरों से ही बना है। ज्यादे से ज्यादा वे आधे किसान और आधे मजदूर हैं, यानी कुछ समय खेती का काम करते हैं और यह काम न रहने पर कुछ समय शहरों में जाकर कमाते हैं। यह बात हमारे यहाँ भी अक्षरशः पाई जाती है। उसमें यह भी कोष्ठक में लिखा है कि मजदूरी के लिए खेतों में काम करने वाले, जिससे प्रतीत होता है कि खेत-मजदूर उन्हें भी कहते हैं जो मजदूरी के लिए काम नहीं करते। यह बात मैंने पहले ही लिखी है विस्तार के साथ।

तीसरी बात यह है कि जिनके पास खेत बिलकुल ही नहीं हों वे भी गरीब किसानों में गिने जाते हैं। हम तो कही चुके हैं कि खेत पास में रहना जरूरी नहीं है। जहाँ तक खेत मिलने की गुंजाइश या आशा है तहाँ तक खेतों के मजदूरों को किसान ही कहना चाहिए। रूस में भी यही माना जाता था। हाँ, बड़े-बड़े फार्मों के खेत-मजदूरों को खेत मिलने की कोई भी आशा न होने के कारण वही असली मजदूर हैं—वहाँ भी और यहाँ भी। बाकी तो अधिक से अधिक अर्द्ध-मजदूर हैं।

जिन्हें इस बात का यकीन न हो हमारे यहाँ के भी गरीब किसान एक प्रकार के मजदूर ही हैं उनके लिए आगे बहुत सी बातें लिखी जावेंगी। मगर इस मौके पर बम्बई के एक सरकारी कर्मचारी अंग्रेज डॉक्टर हैरोल्ड मान की जाँच-पड़ताल का नतीजा हम यहाँ उद्धृत कर देते हैं। डॉक्टर मान सरकार के कृषि विभाग के डाइरेक्टर थे। उनने पूना जिले के एक गाँव के किसानों की आर्थिक दशा की जाँच सन् 1914-15 ई. में की थी। जब जाँच के किसानों का नतीजा बहुत ही दर्दनाक निकला जिसके लिए वे तैयार न थे तो उन्हें विश्वास न हुआ। अतएव सन् 1921 में एक और गाँव की जाँच उनने की। मगर जब उसका नतीजा पहले से भी भयंकर साबित हुआ तो लाचार उन्हें मानना ही पड़ा। जहाँ पहले गाँव में कुल 103 परिवारों में सिर्फ 8 ही खेती से अच्छी तरह गुजर कर सकते थे, तहाँ दूसरे में पूरे 147 में केवल 10 ही ऐसे थे। एक बात और थी। पहले मौजे में कुल 103 में से 8 परिवारों को निकालने के बाद शेष 95 में 28 ऐसे थे जो खेती की आमदनी और बाहर की नौकरी की आमदनी को मिला के किसी प्रकार गुजर कर लेते थे। मगर दूसरे में तो 147 में 10 के अलग करने पर बाकियों में केवल 12 ही ऐसे थे। इस प्रकार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जहाँ पहले गाँव में पूरे 67 परिवार कुल परिवारों के 65 प्रतिशत भूखों रह जाते थे। और किसी भी तरह भर पेट खा-पी न सकते थे, तहाँ दूसरे में कुल 125 परिवार या कुल के 85 प्रतिशत की यह भयंकर दशा थी। दूसरे गाँव की एक और भी दर्दनीय बात उनने लिखी है। वहाँ कुल 732 आदमियों में 664 प्राणी भुक्खड़ थे—यानी कुल जनसंख्या के पूरे 91 प्रतिशत। पहले गाँव के पास में एक एल्यूमिनियम की फैक्टरी होने के कारण गाँव के 30 प्रतिशत लोग उसमें कमाते थे और इस प्रकार गुजर करते थे। मगर दूसरे गाँव के नजदीक ऐसी कोई चीज न होने के कारण उसकी और भी तबाही थी।

यदि पूर्व लिखे इस वयान के साथ यह भी वात जोड़ दी जाए कि डॉक्टर मान ने गाँव वालों की गुजर का क्या अर्थ लगाया था तो हम और भी अचम्भे में पड़ जाएँगे किसानों की गरीबी की भयंकरता को देख के। उनने किसी प्रकार कामचलाऊ पेट भरने की गई-गुजरी चीज को भोजन और जैसे-तैसे काम चलाने मात्र वस्त्र को कपड़े में गिना है। यही दो जरूरी चीजें हैं। यहाँ तक कि चिराग या लालटेन की रोशनी भी उनने निकाल दी है और सिर्फ सूर्य, चाँद की रोशनी से ही काम चलाना स्वीकार किया है। श्री पामदत्त की पूर्वोक्त पुस्तक के 222-223 आदि पृष्ठों में इस बात का पूरा वर्णन है।

श्री पामदत्त ही 347 पृष्ठ में लिखते हैं कि सन् 1927-28 ई. में ब्रिटेन की ट्रेड यूनियन कांग्रेस का जो प्रतिनिधि मण्डल भारत में आया था उसने लिखा है कि संगठन योग्य मजदूरों की संख्या यहाँ ढाई करोड़ है। मगर इस ढाई करोड़ में कम से कम 2 करोड़ 15 लाख तो सिर्फ खेत-मजदूर ही हैं जिनमे चाय बागानों आदि के प्रायः 10 लाख को छोड़ बाकी 2 करोड़ 5 लाख सिर्फ छोटे-छोटे खेतों में ही काम करते हैं। उन्हें काम भी बरावर नियमित रूप से नहीं मिलता। ज्यादातर वे लोग अत्यन्त भुक्खड़ किसानों के ही यहाँ काम करते हैं। फलतः नियमानुसार बनाई जाने वाली ट्रेड यूनियनों के जरिए उनका संगठन हो नहीं सकता। हालाँकि किसान आन्दोलन में बड़ा ही महत्त्वपूर्ण भाग ले सकते हैं।

सन् 1938 ई. में अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर कार्यालय ने भारत के बारे में एक रिपोर्ट छापी है। उसके 30वें पृष्ठ में लिखा है कि 'खेत-मजदूरों की कुल तादाद जो सन् 1921 में 2 करोड़ 15 लाख बताई गई थी, 1931 ई. में वह 15 लाख से भी ज्यादा हो गई। मगर इनमें 2 करोड़ 30 लाख के बारे में सन् 1931 ई. की भारतीय मताधिकार समिति ने लिखा था कि वे विना जमीन के हैं। 'बिना जमीन' कहने का अर्थ यही है कि उनकी अपनी रैयती या मालिकी कोई भी जमीन नहीं है। भले ही बँटाई या शिकमी जमीन लेकर खेती वे लोग करते हैं या न भी करते हैं। मगर मताधिकार कमेटी ने भी तो आखिर इतना कबूल ही किया है कि कम से कम 58 लाख ऐसे भी परिवार खेत-मजदूरों के उस समय थे जिनकी निजी जमीनें (रैयती या मालिकी)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

थी। क्यों 3 करोड़ 15 लाख में 2 करोड़ 30 लाख ही बिना जमीन के बताए गए हैं। इससे तो हमारे उसी कथन की पुष्टि होती है कि खेत-मजदूर किसान ही हैं।

शायद कुछ लोगों को फिर भी कुछ झिझक हो कि खेत-मजदूरों को किसान कैसे मानें, इसलिए जरा भीतर प्रवेश करके किसानों की हालत को देख लेना चाहिए। बम्बई सरकार के अफसर मिस्टर कीटिज का हवाला देते हुए भारतीय कृषि कमीशन की रिपोर्ट के 132 पृष्ठ में लिखा गया है कि 'बम्बई हाते के किसानों की होल्डिंगें बहुत ज्यादा ऐसी हो गई हैं जिनमें सफलतापूर्वक खेती करना असम्भव है।' मद्रास के डॉक्टर स्लेटर इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि वहाँ भी बहुत हिस्से में यही हालत है। दूसरे प्रान्तों की भी प्रायः यही दशा है।

इन्हीं मिस्टर कीटिज के लेख का हवाला देते हुए पूर्वोक्त डॉक्टर मान ने दक्षिण के दो गाँवों की दशा जाँची थी। उसके बारे में श्री पामदत्त अपनी पूर्वोक्त किताब में लिखते हैं कि 'जिस जमीन में सिंचाई का प्रबन्ध नहीं है वैसे खूब अच्छी जमीन के 10 से लेकर 15 एकड़ तक की होल्डिंग को ही आर्थिक दृष्टि से लाभकर या भारतीय किसान परिवार के गुजर योग्य कह सकते हैं।'

अब जरा पुनरपि भारतीय कृषि कमीशन की रिपोर्ट के 133 पृष्ठ को देखिए। वहाँ लिखा है कि 'पंजाब के बारे में जो आँकड़े हासिल हैं उनसे सिद्ध है कि 22.5 फीसदी किसान सिर्फ एक एकड़ या उससे कम ही जमीन जोतते हैं, 15.4 प्रतिशत एक और ढाई एकड़ के बीच में, 17.9 प्रतिशत ढाई और पाँच के बीच में, और 20.5 प्रतिशत पाँच और दस के बीच में। बम्बई की भी प्रायः यही हालत है। बर्मा की शायद कुछ अच्छी हो। मगर भारत के अन्य प्रान्तों की तो और भी बुरी हालत है।'

इससे स्पष्ट है कि पंजाब, जो सबसे सम्पन्न प्रान्त माना जाता है, के 76.3 प्रतिशत किसान ज्यादे से ज्यादा दस एकड़ तक ही जोतते हैं और परिवार के गुजारे के लिए, जैसा कहा गया है, दस से लेकर 15 एकड़ चाहिए। फलतः वे भूखे ही रहते हैं। यों तो सन् 1921 ई. की मनुष्य गणना के अनुसार प्रान्तों के हर परिवार के जिम्मे औसतन जो जमीनें पड़ती हैं वह और भी कम हैं। उसके अनुसार तो सिर्फ बम्बई की ही औसत 10 एकड़ से ज्यादा है। बाकियों की कम ही है, जैसा कि '(1) बम्बई 12.2 (2) पंजाब 9.2, (3) मध्यप्रान्त और बरार 8.5, (4) बर्मा 5.6, (5) मद्रास 4.9, (6) बंगाल 3.1, (7) बिहार 3.1 (8) आसाम 3.0, (9) युक्त प्रान्त 2.5। कृषि कमीशन के उक्त उद्धरण से भी यही स्पष्ट है कि बम्बई के सिवाय अन्य सभी प्रान्तों के 76.3 प्रतिशत से कहीं ज्यादा किसान 10 एकड़ तक ही या उससे भी कम जोतते हैं।

और जब हम इस बात पर गौर करते हैं कि जमीन के मालिक और उसे जोतने वाले किसान के बीच में दो-चार से लेकर पूरे पचास तक ऐसे लोग एक के ऊपर एक हैं जो लगान वसूलते और उससे मुनाफा करते हैं तब हमें पता लग जाता है

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कि खेती करने वाले को कितना बचता है। वह तो सचमुच ही लुट जाता है। हाल में प्रकाशित बंगाल के फ्लाउड कमीशन की रिपोर्ट में भी यह बात मानी गई है और साइमन कमीशन की रिपोर्ट के प्रथम भाग के 340 पृष्ठ में भी इन पचासों लुटेरों की बात लिखी है कि वे कुछ जिलों में पचास से ज्यादा तक पाए जाते हैं।

जब एक प्रकार से दूसरा आदमी जमीन लेकर तीसरे के हाथ बन्दोबस्त करता है और वह चौथे के साथ...और जब इस प्रकार ताँता बँध जाता है तो असली किसान में मजूरी करने वाले खेत-मजदूर में कुछ भी अन्तर नहीं रह जाता। इसीलिए मद्रास की बैंकिंग जाँच कमेटी ने सन् 1930 ई. में यों लिखा था : 'खेत-मजदूर रखकं उनके हाथों खेती करवाने या दर रैयत की खेती में साफ-साफ भेद करना हमारे लिए कठिन है। दर रैयत तो शायद ही नगद लगान पर जमीन पाता हो। आमतौर से उसे बँटाई पर खेत मिलता है जिसमें पैदावार का काम 40 से लेकर 60 तक, और कभी-कभी 80 हिस्से तक भी, जमीन का मालिक लेकर बाकी किसान (दर रैयत) के लिए छोड़ता है। किसान साल व साल इसी प्रकार किसी तरह जिन्दा रहता है। उसे जमींदार से कर्ज लेना पड़ता है। जमींदार ही उसे बीज, खेती के औजार और बैल भी देता है। विपरीत इसके हलवाहे आदि खेती के मजदूरों को मालिक समय-समय की छोटी-मोटी जरूरतों के लिए नगद पैसे देता है, जमींदार के बीज, औजार और पशुओं से खेती करता है और फसल तैयार होने पर या तो उसे एक ही बार बँधी-बँधाई गल्ले की रकम मिल जाती है, या फसल का एक निश्चित भाग। कभी-कभी तो ऐसा भी होता है कि हलवाहे आदि को निश्चित गल्ले के साथ ही कुछ नगद भी मिल जाता है। किसान चाहे अपने ही पशुओं और हल आदि से भले ही खेती करे। मगर व्यवहार में दोनों के बीच कोई साफ अन्तर नजर नहीं आता और अगर जमींदार खेती के मुकाम से दूर रहता है तब तो यह पता ही नहीं चलता कि खेती करनेवाला आया उसका नौकर है या दर रैयत किसान।'

अपनी पुस्तक के 220 पृष्ठ में श्री पामदत्त ने भी लिखा है कि 'लेकिन दरअसल नन्हे खेतों में खेती करने वाले अधिकांश टुटपुँजिए किसानों, दर रैयतों या शिकमी किसानों की जो हालत है उसमें और खेत-मजदूरों में कोई विशेष अन्तर नहीं है और इन दोनों दलों का भेद सिर्फ बनावटी है।'

कृषि कमीशन की रिपोर्ट के द्वितीय भाग में जो गवाहियों का पहला हिस्सा है उसके 292 पृष्ठ में कुछ आँकड़े दिखला के कि किस प्रकार 15 एकड़ तक के जोतने वाले किसानों की ही संख्या तेजी से बढ़ रही है, एक सरकारी अफसर का बयान यों दिया है—'केवल पाँच ही वर्ष के भीतर होने वाले परिवर्तन के सूचक इन आंकड़ों से साफ पता लगता है कि पन्द्रह एकड़ तक जोतने वालों की वृद्धि किस खास तरह से हो रही है। चन्द ही जमीनों को छोड़ बाकी दशा में ये 15 एकड़ तक के खेत ऐसे नहीं होते कि जिनमें एक जोड़े बैलों से भी नफा के साथ खेती

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की जा सके।'

अब तक जो कुछ लिखा गया है उससे यह बात साफ हो जाती है कि जो असल किसान हैं, जिन्हें गरीब या मध्यम किसान कहते हैं, उनकी हालत और 98 प्रतिशत खेत-मजदूरों की दशा में कोई भी महत्त्वपूर्ण अन्तर नहीं है। जहाँ तक इन दोनों की आर्थिक दशा और माली हालत का ताल्लुक है, खेत-मजदूरों और गरीब किसानों में जिनकी संख्या 80 फीसदी से कम नहीं है, कोई भेद किया जा नहीं सकता—किसी भेद की गुंजाइश नहीं है। यदि कुछ किसान भर पेट खा-पी लेते हैं तो कुछ खेत-मजदूर भी ऐसे जरूर हैं। ज्यादे से ज्यादा अगर कह सकते हैं तो इतना ही कि जैसे किसानों की दशा बदतर होते-होते जो उनमें सबसे नीचे आ जाते हैं वही गरीब किसान हैं, ठीक वैसे ही आमतौर से उनकी दशा कुछ और गिर जाने से उन्हें खेत-मजदूर कहने लगते हैं। मगर यह बताना कठिन है कि कहाँ से किसान कहना छूट के मजदूर कहने का श्रीगणेश होता है। ऐसी कोई सीमा खींची जा सकती नहीं। इसलिए खेत-मजदूरों को, जिनसे आमतौर से हमारा ताल्लुक है, किसान ही मानना उचित है।

मगर इस मानने का प्रयोजन केवल उनके संगठन और आन्दोलन से है। उन्हें किसान इसलिए मानना है कि उनका आन्दोलन मजदूरों की तरह न किया जाकर किसानों की ही तरह, उनके साथ मिल कर ही किया जाए।

(3)
उनकी समस्याएँ

खेत-मजदूरों की तादाद वगैरह जान लेने और उन्हें किस वर्ग में शामिल किया जाए—वे किस श्रेणी के हैं—ऐसा समझने के बाद यह सवाल स्वभावतः उठता है कि आखिर इस उधेड़बुन की जरूरत क्या है—ऐसा खोद विनोद क्यों किया जाता है? सवाल तो सही है। इसीलिए जरा अब हमें उस मतलब पर भी गौर कर लेना चाहिए जिसके लिए अब तक की सारी जाँच-पड़ताल की गई है। असल में हमें खेत-मजदूरों की समस्याओं पर, उन्हें आएदिन जिन दिक्कतों का मुकाबला करना पड़ता है उन पर गौर करना है। उनकी तह में पहुँच के उनकी असलियत को पहचानना है। तभी उनका ठीक-ठीक उपाय किया जा सकता है। रोग का निदान और मर्ज की तफतीश यदि बखूबी न हो सके तो इलाज कैसा होगा? ऐसी हालत में मुनासिब दवा का पता भी कैसे लग सकता है?

एक बात यह भी है कि खेत-मजदूरों के नाम पर मिथ्या और गलत समस्याएँ भी खड़ी की जाती हैं। इनके सवालों को बहुतेरे लोग गलत नजर से देखते हैं। इन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सवालों तक पहुँचने का उनका तरीका ही गलत होता है। फलतः उन्हें सुलझाने के उपाय भी गलत ही बताए जाते हैं। यह निहायत ही खतरनाक और बुरी बात है कि इनके बारे में हमारी पहुँच ही सरासर गलत हो। तब तो हम न सिर्फ खुद धोखा खाएँगे, बल्कि औरों को भी धोखे में डालेंगे। इसीलिए जब हम खेत-मजदूरों के प्रश्नों को खासतौर से उठाते हैं तो इसका यह भी प्रयोजन है कि उन्हें मिथ्या दृष्टिकोण और गलत नुक्ते निगाह से देखने वाले भी सँभल जाएँ। यदि वे न भी सँभलें, तो कम से कम दूसरे लोग तो आगाह हो जाएँ और धोखे में न पड़ें।

हमने अच्छी तरह देखा है कि लोगों ने अब तक खेत-मजदूरों के आन्दोलन को दलित जातियों के आन्दोलन के साथ मिला देने की कोशिश प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से की है। वे ये समझे बैठे हैं, समझते रहे हैं कि दलितों या हरिजनों तथा खेत-मजदूरों में कोई अन्तर नहीं है। यही कारण है कि हरिजन सभाओं के लीडर ही इस आन्दोलन में अगुवा बनके अब तक आए हैं। बेशक उनके पीछे दूसरे लोग भी दीखे हैं, मगर जैसे गाय की पूँछ पकड़ के वैतरणी पार करने की बात मानी जाती है ठीक उसी प्रकार हरिजन नेताओं का पल्ला पकड़ के ही दूसरे सज्जन खेत-मजदूरों के नेता बनने की हिम्मत अब तक कर सके हैं।

इसका एक बुरा नतीजा यह हुआ है कि खेत-मजदूरों की मौलिक समस्याएँ और उनके बुनियादी सवाल हमारी आँखों से ओझल हो गए हैं और सिर्फ चन्द मोटे-मोटे प्रश्न ही खड़े हो सके हैं एक तो हमने इस समस्या को केवल गिनी-चुनी जातियों की ही चीज मान लिया है। दूसरे इस पर धार्मिक रंग भी चढ़ जाने का अवसर मिल गया है। हमारी बदकिस्मती से मुल्क में हरिजनों के प्रश्नों को खामख्वाह धार्मिक रूप दे दिया गया है और जब खेत-मजदूरों के प्रश्न भी उन्हीं के प्रश्न माने गए तो इन पर भी खामख्वाह धार्मिक रंग कुछ न कुछ आ ही जाता है, गो उतना तेज नहीं। मगर यह निहायत ही गलत और खतरनाक बात है। असल में तो हरिजनों का सवाल भी धार्मिक न हो के आर्थिक ही है और यह बुनियादी बात है। मगर खेत-मजदूरों के प्रश्न तो सोलहों आने आर्थिक ही हैं। इनमें तो हमारे मुल्क की सभी जातियों और धर्मों के गरीब और दुखिया लोग आ जाते हैं। यह बात हमने पहले ही सिद्ध कर दी है।

मगर खेत-मजदूर का सवाल आर्थिक होते हुए भी उनके सम्बन्ध की असल बुनियादी बात उस प्रश्न का यह पहलू नहीं है। वास्तविक बुनियादी बात तो यह है कि यह प्रश्न किसी-किसी नियत या मुकर्रर दल का नहीं है। हमारी सबसे बड़ी भूल यही होगी अगर हमने यह मान लिया कि खेत-मजदूर कुछ खास जाति बिरादरी के लोगों को ही मिलाकर बने हैं और उनकी तादाद एक तरह से निश्चित-सी है। तब तो इस सवाल के असली हल तक हम पहुँची न सकेंगे। खेत-मजदूरों की जमात तो रोज-रोज तेजी से बढ़ने वाली जमात है और इसमें ऐसे लोग बराबर शामिल होते रहते हैं जो कल तक सुखी-सम्पन्न किसान थे। हमने ज्यों ही ऐसा मान लिया कि हम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस बड़े मर्ज की तह में जा पहुँचे। इसकी ठीक-ठीक दवा भी हम उस हालत में आसानी से समझ सकेंगे, या यों कहिए कि ढूँढ़ निकालेंगे। किसानों की बड़ी जमात से बाहर इनकी जमात नहीं है, नहीं हो सकती है यह एक दूसरा मौलिक प्रश्न, बुनियादी सवाल, इनके मुताल्लिक है। क्योंकि ऐसा मान लेने पर हम उन गलतियों से बच जाएँगे जो खेत-मजदूर आन्दोलन के सिलसिले में हम कर सकते हैं, यदि इन्हें किसानों से जुदा मान लिया। इस प्रश्न को धार्मिक रूप न दे के सोलहों आने आर्थिक मानना यह भी एक तीसरी बुनियादी बात हो सकती है, हालाँकि यह सिर्फ इन्हीं से ताल्लुक न रख के हरिजनों के प्रश्नों से भी रखती है। मगर यदि हमने धार्मिक रूप से इसे कहीं भूल से दे दिया तो इस आन्दोलन का प्राण ही निकल जाएगा। तब तो यह एक तरह से बेकार-सा हो जाएगा। इसीलिए हमें इन तीनों बुनियादी बातों का पूरा-पूरा खयाल रखना होगा।

लेकिन यह तो दूर की बातें हैं जिनका असर खेत-मजदूरों के आन्दोलन पर पड़ेगा और खतरे से बच के अच्छी तरह चलाया जा सकेगा। दूरअंदेशी की ही ये बातें हैं जिन्हें मामूली खेत-मजदूर समझ नहीं सकते। उनके नेता नामधारी भी आमतौर से इन्हें समझते ही नहीं। वे इनका महत्त्व हृदयंगम कर नहीं सकते। फिर भी इनकी तात्कालिक प्रश्नों के समाधान को लेकर ही ये दूर की बातें सोची जाती हैं उन्हीं को सामने लाना जरूरी है। अगर खेत-मजदूरों की आएदिन की मुसीबतें और यंत्रणाएँ नहीं होतीं तो कौन सोचने जाता कि ये किसानों की जमात में ही हैं या बाहर? कौन इस बात का खयाल भी करता है कि आया इनका दल बराबर तेजी से बढ़ रहा है, या एक प्रकार से निश्चित-सा है? किसके दिमाग में यह बात समाती कि इनकी तकलीफों की वजहें आर्थिक हैं, न कि धार्मिक? तब ऐसा सोचने की आवश्यकता ही क्यों पड़ती? यह तो तब होती है जब हम चलते हैं इन्हें आफतों से बचाने और सुखी बनाने—जब हम इनके दुःख निवारण के रास्ते ढूँढ़ने बैठते हैं। तभी तो यह बात सामने आ खड़ी होती है कि किस रास्ते और उपाय से इन्हें आसानी से अच्छी तरह अपना लक्ष्य मिल सकता है। इसीलिए उन्हीं तात्कालिक तथा प्रतिदिन होने वाले संकटों पर विचार करना निहायत जरूरी है कि वे कौन-कौन से हैं और कैसे हैं।

दिमाग में यह बात लाते ही सबसे पहला प्रश्न पैदा होता है इनकी मजदूरी का। खेती के मजदूरों को मासिक या वार्षिक तनख्वाह तो दी जाती नहीं। उन्हें तो रोजाना मजदूरी मिलती है। जब काम किया तो मिली, न किया तो न मिली। मोटी तौर पर तो यह बात ठीक ही जँचती है कि काम करें तो मेहनताना पाएँ, न करें तो न पाएँ। मगर जरा भी भीतर प्रवेश करके सोचने पर इसकी असलियत का पता लग जाता है कि कितनी बुरी चीज है। इसका तो सीधा अर्थ यही होता है कि बीमारी या कमजोरी आदि की दशा में उसे सपरिवार भूखों मरना पड़ता है, यदि परिवार उसी पर आश्रित हो। मजदूरों की जो माँगें हैं उनमें सबसे पहली तो यही है कि बीमारी, बुढ़ापे आदि के समय उनके गुजर की गारंटी होनी चाहिए। मगर खेत-मजदूर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तो असल में मजदूर श्रेणी में हैं नहीं। इसीलिए अब तक लोगों का ध्यान इस ओर नहीं जा सका है। व्यापारी या किसान का बैल जब बोझा नहीं ढोता या हल नहीं खींचता—जब उसे कोई काम नहीं रहता—तो क्या खाना नहीं पाता और भूखों करता है? यदि नहीं, तो फिर दूसरे काम करने वाले, सो भी इनसान, क्यों भूखों मरें यदि वे बीमार या कमजोर हो जाएँ, यह बात समझ में नहीं आती। इसीलिए स्वभावतः यह कहा जा सकता है कि खेत-मजदूरों के लिए भी यह गारंटी चाहिए कि अस्वस्थता, बुढ़ापा या हाथ-पाँव आदि खराब हो जाने की दशा में उनकी गुजर होती रहे।

मजदूरी के बारे में ही दूसरा सवाल उठता है कि वह कितनी हो। यह तो सभी स्वीकार करेंगे कि आश्रितों के सहित खेत-मजदूर का खाना, कपड़ा, दवागीरी आदि का काम जितने से चलता रहे उतनी मजदूरी तो होनी ही चाहिए। दिक्कत इसमें यही है कि न तो सरकार ने ही और न ही किसी और ही सर्वमान्य संस्था ने अब तक यह बात मुकर्रर की है कि कितने से यह काम चल सकता है। देहाती लोगों के लिए कम से कम कितने रुपए या अन्नादि से गुजर बसर जरूरी है यह किसी को मालूम ही नहीं है। इसीलिए कम से कम वेतन या मजदूरी जो गुजारा करने के लिए जरूरी हो—उसे तय करने में यह भारी अड़चन है। फिर भी यह प्रश्न तो अपनी जगह पर जैसा का तैसा है कि गुजर योग्य मजदूरी मिलनी ही चाहिए। हाँ, इस सवाल के साथ ही, वह कितनी हो, इसकी भी पूरी जाँच-पड़ताल करनी होगी और यह काम उन्हीं का है, जो खेत-मजदूरों के पेशवा और लीडर हैं। क्योंकि इसकी जाँच न होने के कारण वे सिर-पैर की बातें माँगें पेश की जाती हैं, जा सकती हैं जो कथमपि पूरी नहीं हो सकती हैं। जब तक किसानों की आर्थिक दशा में भारी परिवर्तन नहीं हो जाता हमें केवल आदर्शवादी न बनके व्यावहारिक बनना चाहिए। यह बात भूलनी न चाहिए कि अधिकांश गरीब और साधारण किसानों के यहाँ ही के खेत-मजदूरों से हमारा मतलब है। अधिक संख्या उन्हीं की है और उन्हीं की मजदूरी को ठीक करना सबसे जरूरी है। इसलिए हम कहीं ऐसी माँग न पेश कर दें कि घर-बार और खेत बेच कर भी उसे किसान पूरा कर न सकें। फलतः सिर्फ कलह और वैमनस्य ही हमारे हाथ लगे।

मजदूरी के सिलसिले में हमें यह बात भी देखनी है कि पहले क्या हालत थी और अब क्या है। दोनों दशाओं का मुकाबला करने पर ही हम मौजूदा परिस्थिति में कोई उचित दावा पेश कर सकते हैं। यों तो सर्वे सेट्लमेण्ट की रिपोर्टों और दूसरे कागजों में अलग-अलग जिलों के बारे में कुछ न कुछ बातें दी गई हैं जिनसे इस बात पर प्रकाश पड़ता है कि खेत-मजदूरों की मजदूरी क्या रही है। मगर डॉक्टर राधाकमल मुखर्जी ने अंग्रेजी में एक किताब लिखी है *लैंड प्राब्लम ऑफ इंडिया—भूमि सम्बन्धी भारत की समस्या।* उसके 222वें पृष्ठ में, उन्होंने ढूँढ़ खोज के प्रायः सौ साल के भीतर किस प्रकार भारत में खेत-मजदूरों की मजदूरी घटी-बढ़ी इस बात

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के आँकड़े दिए हैं। उनने सन् 1842 ई. से शुरू किया है। घटने-बढ़ने का ठीक-ठीक पता लगाने के लिए मजदूरी के साथ ही उस समय चावल किस भाव से एक रुपए का मिलता था यह भी उनने लिखा है। मजदूरी रोजाना सूखे पैसे के रूप में दी गई है। उसके साथ किसी प्रकार का खाना-पीना मिलने की बात नहीं है। सन् 1842 में जब चावल फी रुपया 40 सेर मिलता था उनकी मजदूरी एक आना थी। दस साल बाद सन 1852 में चावल का भाव 30 सेर हो गया। मगर मजदूरी डेढ़ आने हो गई। जब 1862 में भाव 27 सेर था तो दो आने थी। फिर सन् 1872 में तीन आने हुई जब चावल की दर 23 सेर थी। सन् 1911 में चावल 15 सेर का मिलने पर चार आने और सन् 1922 में चावल 5 सेर का रहने पर 4 से 6 आने तक रही। उनने यह भी लिखा है कि सन् 1934 में युक्तप्रान्तीय सरकार ने जो पाँच साला मजदूरी की रिपोर्ट प्रकाशित की उसमें प्रान्त की औसत मजदूरी तीन ही आने लिखी है। बल्कि 326 गाँवों में तो डेढ़ ही आने बताई गई है।

डॉक्टर मुखर्जी ने जो कुछ लिखा है उससे यह स्पष्ट है कि जैसे-जैसे चावल या यों कहिए कि खाद्य पदार्थ की महँगी होती गई है तैसे-तैसे मजदूरी बढ़ती गई है, जिससे खाना-पीना चल सके और गुजर हो सके। यानी मजदूरी बढ़ाने में इस बात पर पूरा ध्यान दिया गया है। उससे यह भी पता लगता है कि खेत-मजदूरों की मजदूरी में क्रमशः कुछ वृद्धि होती गई है जिससे उनका आराम थोड़ा-थोड़ा बढ़ता चले। सन् 1842 से लेकर सन् 1911 तक यह बात बराबर देखी जाती है कि पूरे पचास साल तक। क्योंकि सन् 1911 में जब मजदूरी चौगुनी हो गई तो चावल 15 सेर मिलता था। हालाँकि इस हिसाब से दस ही सेर चाहिए। यही बात कमोबेश 1852, 62 और 72 में भी पाई जाती है। यह तो ठीक ही है। मगर सन् 1922 ई. में यह बात नहीं पाई जाती। चावल तो 40 की जगह 5 सेर हो गया। मगर मजदूरी एक आने से बढ़ के आठ आने या ज्यादा होने की बजाए ज्यादे से ज्यादा 6 आना और कहीं-कहीं तो चार ही आना रह गई। यह पहेली समझ में नहीं आती कि ऐसा क्यों हुआ, कैसे हुआ। ऐसा लगता है कि सन् 1911 के बाद जो पहला साम्राज्यवादी युद्ध यूरोप में हुआ और जिसमें प्रायः दुनिया के सभी देश कूदे थे, उसने हर बात में उलट-फेर कर दी। फलतः जो स्वाभाविक रीति मजदूरी बढ़ाने की थी वह भी जाती रही और आँख मूँद के लोगों ने काम करना शुरू किया। जैसे मिलों के मजदूरों के सम्बन्ध में सिद्धान्त तो यह माना जाता है कि उनके तथा उनके आश्रितों के भरण-पोषण योग्य वेतन दिया जाना चाहिए, जैसा कि पहले कह चुके हैं। मगर इस सिद्धान्त का पालन अब साम्राज्यवादी युग में कतई नहीं होता। क्योंकि मजदूरों की तो अब इफरात है। इसीलिए कम से कम तनख्वाह दी जाती है। ठीक उसी प्रकार इधर साम्राज्यवादी युग में खेत-मजदूरों के बारे में भी शायद होने लगा है। क्योंकि उनकी संख्या बेतहाशा बढ़ने के कारण एक के खोजने पर चार मिलते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

फिर किसी को गर्ज ही क्या होगी कि मजदूरी की कमी बेशी और भरण-पोषण का विचार करे? चाहे जो भी कारण हो, मगर यह हालत शोचनीय है और किसी भयंकर बात का सूचक है। इस पर विचार करेंगे आगे चलकर।

मजदूरी से ही सम्बन्ध रखने वाली बात यह भी है कि जहाँ किसान लोग पैसा और अन्न दोनों को सम्मिलित रूप में मजदूरी की जगह देते हैं वहाँ एक तो दोनों मिलाकर भी मजदूरी कामचलाऊ शायद ही होती है। कुछ स्थानों का तो मेरा निजी अनुभव है कि हर्गिज कामचलाऊ नहीं होती। इसी के साथ दूसरी बुरी बात यह होती है कि जो अन्न दिया जाता है वह अच्छा तो होता ही नहीं। हाँ, बुरा कदन्न जरूर होता है। गोया खेत-मजदूरों को हम इनसान समझते ही नहीं। मैं मानता हूँ कि निहायत गरीब किसानों की इस बात में मजबूरी होती है। वह खुद भी जो कुछ खाते-पीते हैं कुछ ऐसा ही होता है। फिर भी यह एक प्रणाली-सी पड़ गई है। इसीलिए देखा-देखी अच्छे और खाते-पीते किसान भी वैसा ही करते हैं। वे किस अक्ल से ऐसा करते हैं ऐसा समझना गैर-मुमकिन है। खेत-मजदूरों की मजबूरी से अनुचित लाभ उठाना इसे ही कहते हैं। मजदूरों के नाश्ते का सवाल भी इसी के भीतर है।

जहाँ फसल कटने के समय ही खेत या खलिहान में बोझों और बंडलों के ही हिसाब से मजदूरी दी जाती है, और यह बात बहुत से प्रान्तों में व्यापक रूप से पाई जाती है, वहाँ भी कुछ विचित्रता देखी जाती है। कहीं तो धान या रबी की फसल के बारह बंडलों (बोझों) में एक मजदूर का हिस्सा होता है तो कहीं सोलह या बीस में और कहीं-कहीं चौबीस में। बेशक यह चौबीस वाला हिसाब बहुत कम पाया जाता है और उससे ज्यादा बीस का मिलता है। मगर बारह और सोलह की बात तो ज्यादातर पाई जाती है। यह चीज समझ में नहीं आती। यह विषमता कब और कैसे चल पड़ी यह पता नहीं चलता। यह ठीक है कि यह एक प्रकार के ठीके की तरह की चीज है और जहाँ बहुत ज्यादा काटने ढोने वालों की जरूरत थी वहीं पहले पहल चालू हुई होगी। मगर अब तो व्यापक-सी हो गई है। हर हालत में एक तो ठीके वाली बात ही नाजायज है। तिस पर उसका एक तरह का न होना और भी खटकता है।

मजदूरी के बाद दूसरा प्रश्न है कर्ज का। यह तो निहायत ही पेचीदा बात है और इसने जगह-जगह में विभिन्न रूप धारण कर लिया है। इसे कहीं हलवाही, कहीं कमिऔती और कहीं दूसरे ही दूसरे नाम भी दिए गए हैं। जाने कब से यह चल पड़ी कोई ठीक-ठीक कह नहीं सकता। मगर है यह व्यापक। साथ ही, प्राचीन गुलामी प्रथा का ही रूपान्तर मालूम पड़ती है। क्योंकि इसके करते हलवाहा या खेत-मजदूर किसान का गुलाम बना रहता है। कहीं-कहीं तो बनिए साहूकार का ही गुलाम हो जाता है। सो भी बाल बच्चों के सहित पुश्त दर पुश्त के लिए। यह भी नहीं कि इस कर्ज की प्रणाली को खामख्वाह कानूनी रूप दिया जाता हो। बहुत जगहों में तो इसकी लिखा-पढ़ी भी नहीं रहती कि कितना कर्ज उसे दिया गया है। शायद

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

किसान के घर कहीं लिखा हो। मगर दस्तावेज या हैंड नोट वगैरह नहीं होते। केवल जबानी ही मामला रहता है। फिर भी उन गरीबों की छाती पर भारी चट्टान की तरह बैठा रहता है, जिससे वह उठ नहीं पाते। उसके लिए यह ऐसा बन्धन है कि भाग नहीं सकता जब तक चुकता न करे और चुकता करने की शक्ति उसमें होती ही नहीं। फलतः जिस किसी से रुपए लेकर चुकाएगा उसी का गुलाम बनेगा। यह ऐसा कर्ज है कि हजारों वर्ष में भी चुकता होता नहीं। किन्तु ज्यों का त्यों बना रहता है, चाहे मजदूर कर्जदार के लिए खून को पानी बहा के भी काम करता-करता मर मिटे। हाँ, इस पर सूद नहीं चढ़ता। यह उतने का उतना ही बना रहता है, यही इसकी खूबी है। सूद वाला कर्ज तो दूसरा ही होता है और वह तो जैसा औरों का वैसा ही खेत-मजदूरों का भी होता है।

किसी जमाने में मजदूर के बाप-दादों ने किसी किसान से किसी ब्याह-शादी वगैरह सख्त जरूरत में कुछ नगद रुपए या अन्न लेकर काम चलाया होगा। बस, वही हमेशा बना रहता है वंश परम्परा के लिए। जिस हलवाहे ने कभी इस प्रकार कुछ भी कर्ज अपने किसान से लिया कि वह इस कीचड़ में जा फँसा। यदि कोई दूसरा किसान चाहे कि उस हलवाहे को अपने यहाँ रख ले तो उसे खामख्वाह पहले किसान का वह कर्ज चुकाना होगा। और पहला भी उस मिले हुए रुपयों को किसी और को देके अपना खेत-मजदूर बनाएगा। जिस गरीब पर कोई आफत आई और कुछ खास खर्च की जरूरत हुई कि वह इस बला में फँसा। अब तो यह बात धीरे-धीरे खत्म होती जा रही है और इसका स्थान मामूली कर्ज लेने की प्रणाली ले रही है। मगर पहले तो खूब ही चालू थी और आज भी बहुत जगह है। विवाह-शादी या गमी में तो भाई बन्धुओं को भोज देना और कुछ ताड़ी शराब पिलाना अन्ध परम्परा के अनुसार कुछ खास जातियों के लिए जरूरी है और वही नए सिरे से इसमें आ फँसती हैं। यही बिहार कमिऔती या यू.पी. की हलवाही प्रथा का रहस्य है।

गुजरात वगैरह प्रान्तों में जो हाली और दुबला कहे जाते हैं वे भी खेत-मजदूर ही हैं, हालाँकि पहले जमाने में वहाँ के असली किसान वही लोग थे। हाली का मतलब ही है हल चलाने वाला—अर्थात् खेती करने वाला। सिन्ध में जिसे हारी कहते हैं वह तो पक्का किसान है। यह हारी उसी हाली का ही रूप है। गुजरात की तो हालत यह है कि साहूकार और शराब बेचने वाले पारसी लोग इन हालियों तथा दुबला लोगों को खामख्वाह चढ़ा-बढ़ा के विवाह आदि उनसे भोज और शराब में पैसे खर्चवाते हैं जिसे वही लोग देते हैं। इस प्रकार हालियों और दुबलों को अपने अधीन (गुलाम) बना लेते हैं। जब तक उनके पास जमीनें थीं तब तक तो रुपए दे के सस्ती जमीनें लिखवा लीं और इस प्रकार हालियों को बिना खेत का कर दिया। फिर पैसे दे के उन्हें स्त्री बच्चों के साथ गुलाम बना डाला। सो भी इन गरीबों की पीठ ठोंक के और 'बाप-दादों का नाम डूब जाएगा यदि विवाह में तुमने भाइयों को शराब न पिलाई'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आदि बातें बार-बार सुना के ही उन्हें फँसाया जाता है। स्वार्थी मनुष्य शैतान से भी खूँखार बन जाता है।

इस प्रकार उनसे पैसे ले के खर्चने का नतीजा यह होता है कि विवाह के बाद ही पति और पत्नी दोनों ही इन साहूकारों का क्रीतदास जीवन-भर के लिए बन जाते हैं। कुछ रात रहते ही उसके घर आ जाते, स्नान के लिए जल गर्म करना, नहलाना, कपड़ा साफ करना, सभी कामों के लिए जल भर देना, पशुओं को खिलाना, खेती का काम कर देना आदि सभी काम करके रात होने पर घर जाने की इन्हें फुर्सत मिलती है। यही प्रतिदिन की दिनचर्या है। यदि कभी जरा सी देर हुई तो गालियाँ मिलतीं और तमाचे लगते हैं। यदि ऊब कर भागना चाहें तो कहीं गुजर नहीं, कोई पूछनेवाला नहीं। जहीं जाते वही पूछता है कि तुम किसके यहाँ से भागे आ रहे हो। गोया हाली और दुबला नाम पड़ते ही गुलामी की छाप लग गई। वह तो आजाद होई नहीं सकता। कहीं न कहीं किसी की गुलामी करता ही होगा, ऐसा सभी मानते हैं। इतना ही नहीं। ये पारसी और साहूकार दो-एक मुस्तण्ड पठान नौकर रखते हैं जो बीसियों मीलों तक ढूँढ़ के इन्हें फिर पकड़ लाते हैं। मारना-पीटना तो मामूली सी बात है। खूबी तो यह कि जब और प्रान्तों से कमिया आदि प्रथाएँ स्वयं मिट रही हैं तब हाली प्रथा तेज हो रही है। हाँ, अब किसान आन्दोलन के चलते गुजरात प्रान्तीय किसान सभा ने इसकी बहुत कुछ जड़ खोद डाली है।

एक बार एक जवान दुबला ने अपनी कहानी मुझे हरिपुरा के इलाके में सुनाई। उसने कहा कि मैं एक पारसी के घर में गुलाम की तरह काम करता था। चार बजे सवेरे ही जाना पड़ता था। पानी गर्म करके गुसलखाने में पारसी को नहलाना पड़ता था। वह भी ऐसा था कि स्नान-घर में नंगधड़ंग जा बैठता और साबुन लगाके मुझे उसका शरीर मलना धोना पड़ता था। रूखड़े हाथ से देह रगड़ने में जरा सी उसे तकलीफ हुई कि चट तमाचे जड़ देता। मैं कराह के रह जाता और कुछ कर न सकता। मगर किसान सभा का उपदेश सुन के मुझे भी हिम्मत हुई और एक दिन जब पारसी ने मुझे तमाचा मारा, तो मैंने भी उलट के कई तमाचे कसके लगाए। फिर वहाँ से भाग निकला और अब स्वतन्त्र हूँ।

इन दुबला लोगों को गुलाम बनाने वालों की शरारत ऐसी है कि काम के बदले इन्हें मामूली जलपान और दिन का मोटा खाना देते हैं। रात के लिए कुछ अन्न या दो-चार पैसे दे दिया करते हैं। बीमारी की हालत में दवादारू या कपड़े लत्ते कुछ नहीं देते। इन चीजों के लिए इन बेचारों को उनसे नया कर्ज लेना पड़ता है और इस तरह ऐसे फँस जाते हैं कि कभी उद्धार की आशा रही नहीं जाती, सिवाय बगावत के। बाकी बन के ही तो वे लोग अब अपनी आजादी प्राप्त करने में लगे हैं।

तीसरा सवाल खेत-मजदूरों का यह है कि उन्हें बीमारी की हालत में भी, जब तक किसी प्रकार का हो सके, काम करना ही पड़ता है। नहीं तो खाएँगे क्या? इतना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ही नहीं। गर्भवती स्त्रियों की भी यही हालत होती है। यहाँ तक कि छोटे-छोटे बच्चे भी बचने नहीं पाते। हमेशा किसान के काम में या किसी और के ही सही, जोते जाते हैं। यदि पास में एकाध बकरी आदि पशु हुए तो उन्हीं की रखवाली और खिलाने-पिलाने का काम ये बच्चे करते हैं। नहीं तो चक्की के बैल की तरह किसी के यहाँ काम में पिसते रहते हैं। असल में उनके गुजर और खाने-पीने की कोई गारंटी तो रहती नहीं। काम न करें तो भूखों मरें। फिर और क्या करेंगे सिवाय इसके कि बुखार और तकलीफ की हालत में भी काम में जुटे रहें? यदि स्त्री, बच्चे, बूढ़े सभी न कमाएँ तो खाएँ-पिएँ क्या? रहें कैसे? दिन कैसे कटे?

इसीलिए देखा जाता है कि उनके दिलों में यह चाह बराबर बनी रहती है कि किसी प्रकार उन्हें कुछ खेत मिल जाए कि उसमें फसल उपजा के गुजर बसर का पक्का उपाय कर लें। यह ठीक है कि हर हलवाहे को किसान लोग प्रायः थोड़ी बहुत जमीनें देते ही हैं। बिहार और युक्तप्रान्त में तो यह बात आमतौर से पाई जाती है। किसान के ही हल बैल से प्रायः उसमें खेती भी हो जाती है। मगर उतने से ही काम चलता नहीं। वह जमीन तो थोड़ी होती है। अलावे इसके वह तो किसान की मर्जी की बात ठहरी। यह ठीक है कि यह एक प्रकार की रूढ़ि-सी हो गई है कि हलवाहों को जमीन जरूर दी जाए। फिर भी न देने पर कोई दंड तो होगा नहीं। इसीलिए कोई मजबूरी नहीं है कि खामख्वाह दी जाए। और जब खेत-मजदूरों की तादाद बहुत बढ़ रही है तो जैसे मजदूरों में कोई विचार नहीं रह गया है कि कितना देना उचित है। वह तो मनमानी दी जाने लगी है। ठीक उसी प्रकार जमीन का हो सकता है और उसे देना किसान बन्द कर दे सकते हैं। इसीलिए खेत-मजदूरों की यह लालसा बराबर ही रहती है कि उन्हें काम चलने-भर ऐसी जमीन मिले कि जिसे वे अपनी समझें और जो आसानी से छीनी जा न सके। मौका पाते ही ऐसी जमीन वे लोग कहीं-कहीं थोड़ी बहुत हासिल भी कर लेते हैं। मगर बड़ी फजीती के बाद। इस बात में आसानी हो यही उनका चौथा सवाल है। अपनी जमीन और उसमें अपना घर बार न होने के कारण ही जमींदार लोग या इसी प्रकार के चलते पुर्जे आदमी उनसे बेगार करवाने या न करने पर डाँट-डपट की हिम्मत भी रखते हैं। क्योंकि न करें तो मकान या झोंपड़ा छोड़ना पड़ जाए। इसीलिए कम से कम उनके रहने के लिए तो जमीन चाहिए ही और समाज के लिए यह मजबूरी हो कि इसका प्रबन्ध खामख्वाह करे।

सबसे आखिरी और जरूरी बात है सलूक और बर्ताव की। खेत-मजदूरों के भीतर कुछ जातियाँ तो ऐसी हैं कि उन्हें समाज खामख्वाह तुच्छ और नीच समझने की भारी भूल करता आया है। उन्हें अपने जैसा समझना तो हमने सीखा ही नहीं। इसीलिए आत्मसम्मान नाम की चीज उनके बारे में मानी ही नहीं जाती। यह क्या अन्धेर है कि समाज के लिए जो सबसे जरूरी हों और जिनके बिना उसका खाना-पीना या सारा आराम ही मिट्टी में मिल जाए, उन्हीं मनुष्यों को हम मनुष्य ही न समझें,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

या छोटा समझने की नादानी करें! यह तो पागलपन की पराकाष्ठा है। नतीजा यह होता है कि जो ही हलवाहा बना वही हलका बन गया। वही छोटा समझा जाने लगा। यहाँ तक कि हलवाहे का मतलब ही माना जाने लगा मूर्ख और निरक्षर, असभ्य और बेअक्ल। इसीलिए उनके बच्चों के पढ़ने-लिखने की जरूरत कौन समझे? ऐसी दशा में उनके लिए किसके दिल में आदर सम्मान का भाव पैदा हो सकता है? वे सभ्यता की रोशनी में आएँ यह कौन सोचेगा? कीड़े-मकोड़ों की तरह घुल-घुल के बिना मौत मरने से उन्हें बचाने की फिक्र किसे हो सकती है? इस बला में कौन पड़े? उनकी माँ-बहनों की इज्जत को कौन समझ सकता है? जब कुएँ में ही भांग पड़ी है तो फिर खैरियत कहाँ? इसीलिए तो उन्हें—स्त्री-पुरुषों को—मजबूर किया जाता है कि सर पर लाद के जमींदारों के पास घी, दूध, साग तरकारी वगैरह पहुँचाएँ। इसी तरह की और भी छोटी-मोटी बातें होती हैं जो इन्हीं के पूर्वोक्त पाँच बातों में ही आ जाती हैं।

इस प्रकार प्रधान रूप से पाँच समस्याएँ उनके तथा सभी जन-सेवकों के समझ मुँहबाए खड़ी हैं। जितनी ही जल्दी इनका समाधान हो जाए उतना ही अच्छा। इसी में सबका कल्याण है।

(4)
उनका समाधान

तो फिर उनका समाधान कैसे हो, उनका क्या उपाय किया जाए, यह विकट प्रश्न अब आ खड़ा होता है। चाहे पुराने दकियानूसी दिमाग वाले इस का महत्त्व, इसकी अहमियत समझें या न समझें। मगर जिन्हें आँखें हैं वह साफ देखते हैं, उन्हें देखना ही पड़ता है कि दुनिया में क्या हो रहा है। यह बात किसी भी दूरअंदेश आदमी से छिपी नहीं है कि जालिमों और शोषकों के वे दिन लद गए जब उनकी मनमानी को पीड़ित और मजलूम लोग—कमाने वाले—बिना जबान हिलाए ही और बगैर आह निकाले ही चुपचाप बर्दाश्त कर लेते थे। चाहे कुछ दिन और भी यह धींगामुश्ती चले। मगर यह बात नहीं हो सकती कि तूफान बरपा न हो, लोग तड़पें न, चिल्लाहट न मचाएँ। अन्याय के बल पर मौज करने वालों की जिन्दगी को नर्क और दोजख बना देने वालों का जमाना आ गया है यह पक्की बात है। यह शोषितों और पीड़ितों का युग है, उनके आगे बढ़ने का जमाना है। उनमें आत्मसम्मान आ गया है, आ रहा है। वे जग गए हैं, जग रहे हैं। उन्होंने हक और अधिकार समझ लिया है, वे इसे समझने में लगे हैं। ऐसी हालत में यह चोरी, यह सीना जोरी कब तक टिक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सकती है। यदि समय रहते हमने इसे बन्द न किया तो वे हमारी बोलती बन्द करके ही छोड़ेंगे और इन जुल्मों के साथ ही हमें भी, जुल्म करने और चुपचाप देखने वालों को भी उठा फेंकेंगे।

इसीलिए ठण्डे दिमाग से हमें उनकी सभी बातों पर विचार करना और उनकी तकलीफों को समझना होगा—समझने की कोशिश करनी होगी। यदि हमें या किसानों का यह उनके हमदर्दों को इस बात में झल्लाहट हो तो ठीक नहीं। न तो यहाँ शान की बात है और न सिर चढ़ाने की। यह भी नहीं कि जानबूझ के परेशानियाँ पैदा की जाती हों और उन्हीं में फँसाने की कोशिश इस रूप में की जा रही हो। आखिर असलियत को समझना ही होगा। नहीं, नहीं, इतना ही नहीं। किसानों को भी समझाना होगा हिम्मत और मुस्तैदी के साथ। यदि वे पहले पहल झिझकें और सुनने को तैयार न हों, या जली-कटी भी सुना दें तो भी घबराने की कोई बात नहीं है। वे नासमझी से ही ऐसा करेंगे और जब तक उनमें नासमझी है तभी तक उन्हें हमारी जरूरत भी है। क्योंकि जब इन बातों को वे समझने लगेंगे तब तो खुद वही लीडर बन जाएँगे। फिर हमें क्यों पूछेंगे? इसलिए मुस्तैदी और खुले दिमाग से ये बातें हम सोचें-विचारें और किसानों को भी बखूबी सोचने-विचारने का मौका दें। तभी सबका कल्याण है। तभी हम खेत-मजदूरों को विश्वास दिला सकेंगे कि हम जो कुछ कहते-करते हैं वह ईमानदारी से उनकी और दूसरों की भलाई के खयाल से ही। हमने सहानुभूति और हमदर्दी के साथ उनकी दुःख-दर्द वाली दास्तानें सुननी शुरू कीं, कि हवा ही पलट गई। हम उनके दिलों तक यदि अपनी इन हरकतों से पहुँचने की कोशिश करते ही परिस्थिति पर अपनी छाप लगा देंगे। आखिर खेत-मजदूर लोग अन्धे नहीं हैं और न बेगाने। वे भी किसान ही हैं, किसानों के महत्त्वपूर्ण अंग ही हैं। फिर उन्हीं से घबराहट, या उन्हीं को अपना शत्रु समझ लेना? उनकी दिक्कतें किसान समझें और किसानों की वे। बस, बेड़ा पार समझिए। हमारा-किसान सभा के कार्यकर्ताओं और नेताओं का—यही काम होना चाहिए कि दोनों को एक-दूसरे की स्थिति समझने में मदद करें और तटस्थ हो के काम करें।

अब आइए जरा उनकी समस्याओं के भीतर घुस के उन्हें समझें और उन्हें सुलझाने की कोशिश करें। कुछ समस्याएँ तो ऐसी हैं जिनके बारे में विशेष कहने या सुनने की गुंजाइश ही नहीं है। उन्हें तो साफ स्वीकार कर लेने और सारी शक्ति से शीघ्र सुलझाने में ही भलाई है। दृष्टान्त के लिए कमियाँ लोगों के कर्ज की बात (कमिऔती) या हाली की यही बात ले सकते हैं। खुशी की बात है कि यह चीज अब खुद ही मिटं रही है। समय अपना काम कर रहा है। मगर जहाँ कहीं यह चीज नाममात्र को भी पाई जाए, या छिप-लुक के भी कोई इसे अमल में लाते पाए जाए, तो वहाँ फौरन ही हमें इसका भंडाफोड़ करके ऐसे लोगों को विवश करना चाहिए कि फौरन अपनी भूल कबूल करें और इस चीज को सदा के लिए तिलाजंलि दे दें।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समझाने-बुझाने या प्रोपैगंडा और प्रचार के जरिए यह बात की जाए। इसके लिए खास मीटिंगें भी जरूरत देख के की जाएँ। तभी तो अनुकूल वायुमंडल पैदा होगा।

मगर एक बात याद रहे कि कहीं ऐसा होने से खेत-मजदूरों को सूदखोरों के हाथ में फँस जाना पड़े। तब तो और भी बुरा होगा। क्योंकि वे तो सूद दर सूद के जरिए पाँच रुपए के पचास बात की बात में बना डालते हैं। किसानों की कमिऔती में सूद तो नहीं लगता। इसलिए प्रबन्ध ऐसा हो कि अनिवार्य आवश्यकता के ही लिए किसान ही दो-चार रुपए दे दिया करें और बिना सूद के ही असल रुपयों को धीरे-धीरे दो-चार पैसे या आने के रूप में वसूल करते जाएँ। ज्यादा रुपए तो देंगे नहीं। ताड़ी-शराब के लिए तो देना हई नहीं। केवल अनिवार्य आवश्यकताओं के ही लिए देना होगा। जब सूद का रास्ता बन्द हो जाएगा तो सूदखोर लोग भी इन्हें न देंगे। फलतः शराब वगैरह का काम यों ही रुक जाए। तात्पर्य यह है कि उनका जरूरी काम रुके भी न और गैर-जरूरी में खर्च भी न हो यही करना है। साथ ही सूदखोरी और गुलाम बनाने का खयाल लोगों के दिल से मिटा देना है। नहीं तो केवल कमिऔती बन्द करके सन्तोष कर लेने से इन गरीबों की हानि हो जाएगी।

इसी प्रकार मनुष्यता के बर्ताव तथा सहृदयतापूर्ण सलूक की बात को भी ले सकते हैं। इसमें बहस या विवाद की गुंजाइश ही कहाँ है? यदि किसानों को बर्बाद नहीं होना है, अगर वे अपने पाँव में कुल्हाड़ी मारना नहीं चाहते, यदि वे नहीं चाहते कि उनके असली शत्रु उन्हीं के घर में लड़ाई लगा के उन्हें तबाह करें, तो खेत-मजदूरों से समानता और भाईचारा का सलूक बिना विलम्ब करना होगा। उनसे कोई यह नहीं कह सकता कि उनके संग खान-पान या ब्याह शादी की बिरादरी बना लें। यह तो बिलकुल ही जुदी बात है। इससे और भाईचारा या समानता के बर्ताव से कोई भी ताल्लुक नहीं। बर्ताव तो इनसानियत की चीज है। सहृदयता का व्यवहार तो पशु-पक्षियों तक के साथ भी किया जाता है। कुत्ते-बिल्लियों को पालने पर उनसे कितनी मुहब्बत होती है। लेकिन किसानों के हाथ-पाँव स्वरूप ये खेत-मजदूर प्रेम के पात्र न हों यह कम ताज्जुब की बात नहीं है। आखिर उनमें कमी क्या है जिससे उनसे नफरत या उनमें नीचता की भावना होती है? बाकी लोगों से वे किस बात में कम हैं? जिनके बिना न गेहूँ उपजे और न बासमती और जो अपने खून को पानी बना के फसल उपजाएँ, फिर भी अच्छी चीजें जिन्हें मयस्सर न हों, ऐसे तपस्वियों और त्यागियों के साथ हृदयहीनता का व्यवहार खुद किसान करें? तब तो आसमान फट जाना चाहिए। हमने देखा है कि इन फटे दिल खेत-मजदूरों को मिला लेने का मौका जमींदारों को अच्छा लगा है और उन्हें किसानों का विरोधी बना के उन्हीं के द्वारा किसानों को जमींदारों ने सर किया है, या करना चाहा है। आखिर जो आपके लिए मरें उन्हीं से पशु का-सा व्यवहार आप करें तो नतीजा क्या होगा? वह भी तो आदमी है। उनका दिल इसी से कट जाता है। फिर भी वे इतने भले हैं कि ज्यों ही किसान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उनसे प्रेम से मिले या आरजू-मिन्नत करने लगे कि फौरन पसीज गए। इसी से कहना पड़ता है कि इन मजदूरों के साथ मनुष्यता और प्रेम का व्यवहार न करके किसान अपना ही पाँव काटते हैं।

खेती के लिए किसान बैल वगैरह पशुओं को पालते हैं। उनके प्रति काफी मुहब्बत होती है। जब तक पशुओं को खिला-पिला न लें खुद खाते-पीते तक नहीं। सवेरे उठ के अपने जलपान की परवाह न करके पहले उन्हें खिलाते हैं। खुद भूखे रह जायँ तो रह जाएँ मगर उनके ये पशु भूखे रह नहीं सकते, भूखे रहने दिए जाते नहीं। यदि दैवात् पशु बीमार हो जाएँ या खाना छोड़ दें तो किसान की नींद हराम हो जाती है। उसकी बेकली का ठिकाना नहीं रहता। हजार उपाय करके जब तक पशुओं को निरोग नहीं कर लेता चैन नहीं लेता। जब वे खाने-पीने और जुगाली करने लगते हैं तब कहीं जा कर उसे होश आता है। तो क्या इन पशुओं जितना भी हक उसका हलवाहा या खेत-मजदूर नहीं रखता? क्या किसान के लिए डूब मरने की बात नहीं यदि खेत-मजदूरों की उतनी भी परवाह नहीं करता जितनी पशुओं की करता है? किसान खुद अपने दिल टटोल के देखें और अपने आपसे पूछें कि मजदूरों को दरअसल किस नजर से देखते हैं। और अगर कुछ भी कसर पाई जाए तो न सिर्फ उसे पूरी करें, प्रत्युत आज तक की इस कसर का प्रायश्चित्त कर डालें। तभी खैरियत है।

असल में तो खेत-मजदूरों और उनके बाल बच्चों को जब तक किसान अपने परिवार के व्यक्ति मान कर वैसा ही सलूक न करेंगे तब तक इस पुरानी कसर, इस पुराने पाप का असली और उचित प्रायश्चित्त नहीं हो सकता। मजदूर, उसके बच्चे, उसकी स्त्री या बूढ़ा बाप किसान की खेती के लिए ज्यादा जरूरी है बनिस्बत उसके अपने बाप, बच्चे और स्त्रियों के। हल चलाने, खेत की निकाई करने, धान के बीज को उखाड़ने और रोपने में बहुत से किसानों का अपना परिवार कतई काम नहीं आता। किन्तु खेत-मजदूरों का परिवार ही वह काम करता है। और बिना धान या दूसरे गल्ले की खेती के किसान कायम कैसे रहेगा? ऐसी दशा में उनके परिवार को अपने परिवार की अपेक्षा यदि ज्यादा न मान के अपने परिवार जैसा ही माने तो इसमें किसान कोई आश्चर्य या उपकार की बात तो करता नहीं। हाँ, सिर्फ दूरदर्शिता और अक्लमंदी से काम जरूर लेता है। उनकी माँ-बहनों की इज्जत उतनी ही करता है जितनी अपनी माँ-बहनों की। यदि उनकी बेइज्जती कोई करना चाहे तो बर्दाश्त नहीं कर सकता। अगर उनमें कोई बीमार या कष्टग्रस्त हो तो उसकी पूरी चिंता करता तथा उनके आराम न होने तक चैन नहीं लेता। बीमारी आदि की दशा में उनसे कोई काम नहीं करवाता। उन्हें भूखे देख नहीं सकता। जैसे खुद साग सत्तू खाता है तैसे उन्हें भी खिलाता है। बस, इतना करने से ही सब मामला ठीक हो जाएगा—ठीक रहेगा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस प्रकार जहाँ तक सामाजिक व्यवहार या आदर सत्कार का सवाल है वहाँ तक तो उनकी माँगों पर नाहीं या ननुनच करने की कोई गुंजाइश रही नहीं जाती। उन्हें तो फौरन से भी पेशतर पूरा कर देना ही उचित है। इसमें दो राय की जगह हई नहीं। अब रहीं असली और महत्त्वपूर्ण समस्याएँ—वे प्रश्न जिनका जमीन की चाह और मजदूरी से ताल्लुक है। यही तो असली सवाल हैं और इन्हीं को हल कर लेने से बाकी बातें आगे या पीछे खुद हल हो जाएँगी। मगर इनका हल होना आसान नहीं, कठिन है। इनमें भी मजदूरी की जड़ जमीन ही है। यदि जमीन का सवाल हल हो जाए तो मजदूरी का प्रश्न अपने आप खत्म हो जाएगा। अधिक कोशिश करने की जरूरत ही न होगी। हमने जो खेत-मजदूरों को किसान श्रेणी में ही माना है वह भी इस जमीन के सवाल को देख कर ही।

इस सवाल के उठते ही हमें आँखें मूँद के चट कुछ न कह के जरा इस पर गंभीरतापूर्वक गौर करना होगा। यह पेचीदा पहेली है। सबसे पहले तो हमें यही देखना है कि इस मुल्क में कुल जमीन है कितनी और कितनी जमीन खेती के काम आ रही है। भारत सरकार ने सन् 1936 ई. में इसका हिसाब लगा के बताया है कि करीब-करीब 66 करोड़ 74 लाख एकड़ जमीन कुल है। इसमें 8 करोड़ 95 लाख एकड़ तो जंगल है। 14 करोड़ 50 लाख एकड़ ऐसी मानी जाती है जो खेती के लिए मिली नहीं सकती। खेती के योग्य होने पर भी अब तक गैर आबाद 15 करोड़ 36 लाख एकड़ है। परती है 5 करोड़ 10 लाख एकड़। इस प्रकार कुल जमीन जिसमें खेती होती है सिर्फ 22 करोड़ 79 लाख एकड़ ही बच जाती है। यह भी बात है कि जमीन तो रबर की तरह फैलती नहीं। मगर जनसंख्या तो बराबर बढ़ रही है। आज भारत की 40 करोड़ जनता में यदि 80 प्रतिशत भी खेतिहर मान लें तो फी आदमी पौन एकड़ भी नहीं पड़ती है। क्योंकि 32 करोड़ के लिए सिर्फ 22 करोड़ 79 लाख एकड़ में ही बँटवारा करना है। मगर इसका तो सीधा अर्थ है सभी का भूखों मरना।

सर टामस होल्डरनेस नामक एक अंग्रेज सज्जन ने सन् 1911 ई. में अंग्रेजी में एक पुस्तक *पीपल्स एण्ड प्राब्लम्स ऑफ इंडिया* लिखी थी। उसके 139वें पृष्ठ में कुछ मजेदार बातें उनने लिखी हैं। याद रहे कि तब जनसंख्या आज की अपेक्षा बहुत कम थी। फिर भी उनकी बातें हृदयविदारक हैं। वे लिखते हैं कि देशी रजवाड़ों को मिलाकर कुल भारत की जनसंख्या साढ़े एकतीस करोड़ है। इसके तीन-चौथाई आदमियों की गुजर खेती से होती है। रजवाड़ों के आँकड़े ठीक-ठीक न मिलने के कारण यह ठीक कहा नहीं जा सकता कि कितनी जमीन में खेती होती है। लेकिन सीधे खेती पर निर्वाह करने वालों के सम्बन्ध में यदि हम कहें कि फी आदमी औसतन सवा एकड़ से भी कम जमीन पड़ती है, तो हम ज्यादा गलती न करेंगे...

'भारत की जमीन न सिर्फ इस बड़ी जनसंख्या को खाना देती है, प्रत्युत इस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जमीन के एक खासे हिस्से में केवल वही चीजें पैदा की जाती हैं। जो विदेशों को जाती हैं। ...सच बात तो यह है कि बाहर से आने वाले मालों का दाम और अन्तर्राष्ट्रीय ऋणों को यह देश इसी प्रकार चुकाता है। इस प्रकार की पैदावार के लिए जो जमीनें मुकर्रर हैं उन्हें अगर खेती वाली समूची जमीनों में से निकाल दें तो जितनी जमीन बचेगी सबके लिए खाना पैदा करने को, वह समस्त जनसमूह में प्रत्येक के हिस्से दो-तिहाई एकड़ से ज्यादा न होगी। इसलिए मानना पड़ेगा कि इसी दो-तिहाई एकड़ की पैदावार से भारत के प्रत्येक प्राणी का खाना और बहुत अंशों में कपड़ा चलता है। संसार में शायद एक भी ऐसा देश नहीं है जहाँ की जमीन से इतनी ज्यादा उम्मीद की जाती हो।'

यह तो फी आदमी करीब सवा एकड़ मानकर हिसाब दिया गया है। मगर हम तो बताई चुके हैं कि असल में अब तो पौन एकड़ का भी परता शायद ही पड़ता है। इसलिए अब तो किसानों या खेती पर गुजर करने वालों की दयनीय दशा का पता और भी आसानी से लग जाता है। मगर हमें यह भूलना न चाहिए कि व्यवहार में तो यह पौन एकड़ की औसत काम नहीं करती। आखिर हर व्यक्ति इसी औसत के हिसाब से तो खाता-पीता नहीं। ऐसे लोग तो लाखों हैं जो हजारों एकड़ की पैदावार खुद हजम कर जाते हैं, हड़प जाते हैं। फलतः करोड़ों के पास जमीन या उसकी पैदावार का एक अन्न भी नहीं पहुँचता। इसीलिए तो अधिकांश अत्यन्त निर्धन और गरीब हैं, तंग और तबाह हैं। फिर वे अपने खेत-मजदूरों को कहाँ से जमीन दें? यह तो 'खुदरा फजीहत दीगरे रा नसीहत' हो जाएगी। किस हिम्मत और समझ से उनसे जमीन का मुतालबा खेत-मजदूरों की ओर से किया जाएगा? आखिर कोई आधार भी तो इस मुतालबे का होना चाहिए। जब खुद किसान ही मरा जा रहा है और इसीलिए न सिर्फ अपनी इंच-इंच जमीन को दाँतों तले पकड़े हुए है, बल्कि और जमीन की चाह और खोज में बेहाल है, तो फिर वह मजदूरों को देने की बात सुनेगा भी कैसे? यह बात उसे सुनाई भी कैसे जाएगी? इसकी हिम्मत कौन पत्थर का कलेजा, संगदिल करेगा? जब उसकी पैदावार खुद किसान के लिए ही बहुत ही नाकाफी है तो उसमें दूसरा साझीदार बनके और क्या करेगा। सिवाय अपनी और उसकी भूख बढ़ाने के? हाँ, यदि पैदावार बढ़ जाए, आबापाशी आदि का पूरा प्रबन्ध हो जाए और खेती के लायक जमीन बढ़ जाए तो बात दूसरी है। मगर ऐसी दशा में हमारा ध्यान सबसे पहले इन्हीं बातों की ओर जाना चाहिए, न कि जमीन के मुतालबे की ओर।

अच्छा तो आइए जरा इस बात का भी अच्छी तरह विचार कर लें कि जमीन बढ़ सकती है या नहीं। उसकी पैदावार इतनी बढ़ सकती है या नहीं कि सभी लोगों को खिला-पिला सकें। हमने जो पहले समूची जमीन को लिख के उसका ब्योरा देते हुए 15 करोड़ 36 लाख एकड़ खेती-योग्य मगर अब तक गैर आबाद और 5 करोड़

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

10 लाख परती लिखा है उन दोनों को मिला देने से 20 करोड़ 46 लाख एकड़ हो जाता है। यानी आज जितनी जमीनों में खेती हो रही है करीब-करीब उतनी ही जमीनें और भी मिल जाती हैं। क्योंकि करीब साढ़े बीस करोड़ यह जमीन तो खेती के लायक हुई। सिर्फ कुछ दिक्कतें हैं और उन्हें दूर करने के लिए ज्यादा पूँजी चाहिए जो किसानों के पास नहीं है। मगर आखिर सरकार किस मर्ज की दवा है यदि यह भी नहीं करती? यदि सरकार पैसा लगा के इन जमीनों को आबाद करा दे तो बात की बात में खेती की जमीन प्रायः दूनी हो जाती है। यानी पूरे तैंतालीस करोड़ 25 लाख एकड़ हो जाएगी।

लेकिन इतना ही नहीं। भारतीय कृषि कमीशन ने अपनी रिपोर्ट के 605 पृष्ठ में एक बहुत ही मार्के की बात लिखी है। पूर्व लिखे जमीन के आँकड़ों से पता लगता है कि साढ़े चौदह करोड़ एकड़ जमीन ऐसी है जो खेती के लिए मिल ही नहीं सकती है। यह अजीब बात है कि कुल जमीन का एक-तिहाई से भी ज्यादा 22.5 प्रतिशत यों सदा के लिए खेती से वंचित रह जाए। कमीशन का कहना है कि 'इस बात पर विश्वास करना कठिन है कि 15 करोड़ एकड़ जमीन का यह लम्बा भाग जो कुल जमीन का साढ़े बाईस प्रतिशत है और जिसके बारे में कहा जाता है कि या तो खेती के लिए मिली नहीं सकता, या उसमें खेती होई नहीं सकती, सचमुच ही ऐसा है।'

इसका साफ अर्थ यही है कि अब तक खेती से अछूत, मगर खेती के लायक, जो करीब साढ़े बीस करोड़ एकड़ जमीन बताई गई है और जो कुल जमीन का 35.5 प्रतिशत है, वह और भी बढ़ जाएगी और जानकार लोगों का कहना है कि वह 40 प्रतिशत से कम नहीं हो सकती। यानी प्रायः तीन करोड़ एकड़ और भी मिल जाएगी। इसका मतलब यों समझें कि अब जितनी जमीन है उतनी ही नहीं, किन्तु उससे भी कुछ ज्यादा एकड़ और भी मिलेगी। इस प्रकार फी आदमी डेढ़ और दो एकड़ के बीच में पड़ेगी। करीब नौ करोड़ एकड़ जंगल की जमीन में से भी कुछ मिली सकती है। यदि ठीक-ठीक प्रबन्ध किया जाए। जंगलों के बीच में जगह-जगह खाली जमीन के बड़े-बड़े टुकड़े लाखों मिल जाएँगे और अगर रुपए-पैसे खूब खर्चे जाएँ तथा दिमाग भी लगाया जाए तो प्रति मनुष्य दो एकड़ तक जमीन मिल जाना कोई बड़ी बात नहीं है। बड़े-बड़े चौर और दलदली जमीनें खेती के योग्य बनाई जा सकती हैं। ऊसर जमीनें भी ऐसी हो सकती हैं। विज्ञान और पूँजी इन दोनों की मदद चाहिए जो सरकार ही कर सकती है।

और भी देखिए। श्री आर. के. दास नाम के भारतीय विज्ञ ने *भारत की उद्योग-धन्धे की योग्यता* नामक अंग्रेजी पुस्तक सन् 1930 ई. में प्रकाशित की थी। वे उसके 13वें पृष्ठ में लिखते हैं कि, 'कुल असल जमीनें, जिनमें फसलें बोई जाती हैं, 22 करोड़ 80 लाख एकड़ हैं, या यूँ कहिए कि खेती योग्य ज़मीनों की 53 प्रतिशत।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लेकिन यदि दो फसला जमीनों की दूसरी फसल पैदा करने की जमीन को जुदा मान लें (अर्थात् जमीन में एक ही फसल मानें) तो सब मिलाकर 26 करोड़ 20 लाख एकड़ हो जाएगी। मुल्क में बहुत जगह की जलवायु के प्रताप से बहुत सी जमीनों में एक से ज्यादा भी फसलें होती हैं। लेकिन इसी के साथ-साथ कुछ जमीनों में एक से ज्यादा भी नहीं होतीं और कुछ समय तक तो ऐसी जमीनों रहेंगी ही जिनमें एक भी फसल न होगी। फिर भी कुल मिलाकर इस नतीजे पर पहुँच सकते हैं कि सभी जमीनें औसतन दो फसला हैं। इस प्रकार खेती की योग्यता रखने वाली जमीनों का रकबा 86 करोड़ 40 लाख एकड़ हो जाता है। मगर इसमें केवल 26 करोड़ 20 लाख एकड़ में ही खेती होती है, यानी सिर्फ 30 फीसदी में ही और 60 करोड़ 20 लाख एकड़ यानी पूरे 70 प्रतिशत यों ही बेकार पड़ी रह जाती है।'

यह लेख कई दृष्टियों से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। मगर इसकी खूबियों को जानने के पहले इसका मतलब समझ लेना चाहिए। हमने जो पहले 22 करोड़ 79 लाख एकड़ लिखा है उसे ही यहाँ 22 करोड़ 80 लाख दिया गया है। इसी प्रकार सब जोड़ के जो हमने 43 करोड़ 25 लाख बताया है और कहा है कि इतनी जमीन खेती के लायक है उसे ही यहाँ दूना करके 86 करोड़ 40 लाख लिखा है। क्योंकि हर जमीन में आमतौर से औसतन दो फसल मान के दोनों की जमीनों को दो अलग-अलग करार दिया है। इस प्रकार असल जमीन दूनी हो जाती है। यह बात हिसाब समझने की आसानी के लिए की गई है। किसी जमीन में तीन फसलें भी होती हैं और किसी में एक ही। कुछ दिनों तक, काफी पूँजी और विज्ञान के बल से सारी योग्य जमीनों में खेती होने नहीं लगती तब तक, कुछ जमीनें खामख्वाह ऐसी रहेंगी ही जिनमें खेती होई न सकेगी। फिर भी सब मिलाकर औसतन दो फसलें हर जमीन में मान लेने में कोई हर्ज नहीं है।

हाँ, तो श्रीयुत दास ने एक तो यह दिखलाया है कि यदि सरकार पूर्णतया तत्पर हो जाए और सिंचाई वगैरह का पूरा इन्तजाम करने के साथ ही इंच-इंच खेती के लायक जमीनों में उसका प्रबन्ध कर दे तो आज के मुकाबले में तीन गुने से भी ज्यादा खेती हो सकती है। सौ प्रतिशत में सिर्फ 30 ही खेती होती है और 70 फीसदी बाकी ही है। इस प्रकार यदि बीघे में पैदवार न भी बढ़े तो भी तीन मन की जगह पूरे दस मन पैदावार हो जाए, और अगर पैदावार भी फी एकड़ बढ़ाई जाए तब तो कहना ही क्या? उन्होंने ही यह बात भी सुझाई है कि भारत की हर जमीन में दो फसलें प्रतिवर्ष हो सकती हैं, और अगर शायद कोई जमीन ऐसी न हो तो उसके बजाए तीन फसलों वाली भी जमीनें बहुत हैं। उनका मतलब इस कथन से यही है कि ज्यादा से ज्यादा फसलें जितनी भी साल में हो सकती हैं पैदा की जाएँ। इसके लिए केवल आबपाशी और मुस्तैदी चाहिए। कहाँ कब कौन फसल हो सकती है इसकी छानबीन भी होनी चाहिए। आज हमारी भूमि की उत्पादन शक्ति

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

का कितना अपव्यय हो रहा है यह बात भी उनके लेख से सिद्ध होती है। आमतौर से शायद ही कोई यह समझता हो कि इतनी जमीन बेकार-सी पड़ी है जितनी उनने सिद्ध की है। हम जो निराशा के अथाह समुद्र में गोते लगा रहे थे कि जमीन तो खेती के लिए काफी हुई नहीं उससे उनने बचा लिया है और आशा की सुनहली किरण झलका दी है।

यही बात श्री राधाकमल मुखर्जी ने अपनी हाल वाली किताब *चालीस करोड़ लोगों के लिए खुराक का प्रबन्ध* के 26 पृष्ठ में लिखी है। उसी का हवाला देते हुए श्री पामदत्त *इण्डिया टुडे* के 191 पृष्ठ में लिखते हैं कि 'ऐसा हिसाब लगाया गया है कि खेती का मौजूदा ही तरीका रहने पर भी यदि खेती के योग्य सारी जमीनें काम में लाई जाएँ और सिंचाई का समुचित प्रबन्ध हो तो इतनी ही जमीन से 44 करोड़ 70 लाख लोगों का काम बखूबी चल सकता है—यानी आज की अपेक्षा 7 करोड़ अधिक लोगों को खुराक मिल सकती है।'

लेकिन यदि खेती के आधुनिक वैज्ञानिक तरीके काम में भरपूर लाएँ, वैज्ञानिक खादों का काफी इस्तेमाल हो और सिंचाई का तरीका भी आधुनिक ढंग से किया जाए—संक्षेप में खेती सोलहों आने आधुनिक ढंग से की जाने लगे तो कहीं ज्यादा अन्नादि पैदा होंगे और सभी लोगों की जिन्दगी आनन्द से कटेगी। इतना ही नहीं। ऐसा होने पर तो एक खेत-मजदूर अनेक का काम कर लेगा और इस प्रकार पैदावार की तरक्की के साथ ही खेती का खर्च भी अपेक्षाकृत कम होगा। यह बात और मुल्कों में पाई जाती है। ज्यादे से ज्यादा कितनी उपज खास-खास मुल्कों में एक एकड़ में होती है यह बात राष्ट्रसंघ की सालाना रिपोर्ट में सन् 1932-33 में इस प्रकार दी गई है। हमें याद रखना होगा कि पैदावार पौंडों में दी गई है और 82 पौंड का एक मन पक्का होता है। वह यों है :

(1) भारत (धान 1357, गेहूँ 652), (2) जापान (धान 2267, गेहूँ 1508), (3) मिस्र (धान 2356, गेहूँ 1688), (4) संयुक्त राष्ट्र अमेरिका (धान 2112, गेहूँ 973), (5) इटली (धान 4601, गेहूँ 1241), (6) जर्मनी (गेहूँ 1740), (7) ब्रिटेन (गेहूँ 1812)

इन आँकड़ों से साफ हो जाता है कि सभी प्रकार से और मुल्कों की अपेक्षा बहुत ही उपजाऊ जमीन और अत्यन्त अनुकूल जलवायु तथा मौसम होने पर भी हमारे देश की खेती कितनी पिछड़ी है। कहाँ तो और देशों से हमारी पैदावार फी एकड़ बढ़ जानी चाहिए और कहाँ हम सबों से पीछे हैं, सो भी बुरी तरह। जापान और मिस्र भारत की अपेक्षा एक एकड़ में करीब पौने दो गुना धान पैदा करते हैं, अमेरिका ड्योढ़े से ज्यादा और इटली पूरे साढ़े तीन गुना। और जब गेहूँ की हालत देखते हैं तो जहाँ अमेरिका प्रायः डेढ़ गुना पैदा करता है, तहाँ जापान सवा दो गुने से ज्यादा और मिस्र ढाई गुना। इटली भी प्रायः दो गुना, जर्मनी करीब तीन गुना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और ब्रिटेन तीन गुना उपजाते हैं। क्या हमारी जमीन ऐसा नहीं कर सकती? कर तो सकती है इससे भी ज्यादा। मगर सामान तो है नहीं। पूँजी तो हमारे किसानों के पास हई नहीं और सरकार आँखें मूँदे बैठी है। उसके कान में तेल डाल रखा है। अगर सरकार ऐसा कर दे तो करीब-करीब आज से तीन गुनी पैदावार यहाँ होने लगे। यहाँ की खास गल्ले की तो दोई फसलें हैं, गेहूँ और धान। तब तो हालत यह हो जाएगी कि आज जितनी पैदावार हो रही है उसकी नौ-दस गुनी हो जाएगी। क्योंकि जैसा कि पहले कह चुके हैं तीन गुनी से ज्यादा तो मामूली पैदावार से ही होगी। फिर उसकी तीन गुनी आधुनिक ढंग से खेती से हो जाने पर 9-10 गुनी होने में कोई भी शक नहीं।

इस विषय में हम खुद भारत सरकार के अफसर की ही राय उचित समझते हैं जो भारतीय बैंकिंग जाँच कमेटी के सामने उसने पेश की थी और जिसे उस कमेटी की रिपोर्ट के 13वें परिशिष्ट के 700 पृष्ठ में हम देख सकते हैं। उस अफसर का नाम है मैक्डोगल। उसी सिलसिले में श्री पामदत्त ने अपनी पूर्वोक्त पुस्तक के 198 पृष्ठ में उस वक्तव्य को उद्धृत करते हुए उसके पूर्व खुद भी एक पैराग्राफ में यह दिखाया है कि भारत में परिश्रम किस प्रकार व्यर्थ जाता है। जिस काम को और देशों में एक मजदूर कर सकता है उसे ही यहाँ 7-8 करते हैं। वह वक्तव्य यों है : 'अगर खेत-मजदूरों की संख्या का खयाल किया जाए, तो और मुल्कों की बनिस्बत भारत की पिछड़ी हालत और भी साफ हो जाती है। जहाँ भारत में एक आदमी केवल 2.6 एकड़ की ही खेती कर सकता है वहाँ ग्रेट ब्रिटेन में एक ही मजदूर 17.3 एकड़ की और जर्मनी में 5.4 की कर सकता है।' (श्री पामदत्त)

'कहा जाता है कि भारत की जमीन स्वभावतः ही कम उपजाऊ है। मगर यह बात सही नहीं है। असल में यहाँ की जमीन कमजोर हो गई या बन गई है। बड़ी-बड़ी नदियों के कछार की जमीनें किसी समय संसार की सबसे ज्यादा पैदावार जमीनों में होंगी। डेनमार्क और जर्मनी में तो शुरू-शुरू में जमीनों का अधिकांश केवल रेतीला रेगिस्तान था जिसमें झौआ जैसी झाड़ियाँ थीं।'

'यदि यहाँ के खेतों की पैदावार फ्रांस जैसी होने लगें तो यहाँ की आमदनी 66 करोड़ 90 लाख पौंड बढ़ जाएगी और अगर इंग्लैंड जैसी हो जाए तो एक अरब पौंड बढ़ेगी। हालाँकि इंग्लैंड की खेती भी अभी उतने ऊँचे दर्जे की नहीं है। आमदनी बढ़ने के इस हिसाब से हमने दो फसला जमीनों का खयाल किया ही नहीं है—(सबों की एक ही फसल मानी है)। इसलिए इसी अनावृष्टि के करते फसल मारी भी जाए तो भी कम से कम एक अरब की वृद्धि तो होगी ही। यदि यहाँ की पैदावार डेनमार्क जैसी हो जाए तो डेढ़ अरब पौंड की आय बढ़ जाएगी। इसीलिए भारत के किसानों की गरीबी का कारण, यहाँ की जमीन की उर्वरा-शक्ति की कमी नहीं कहीं जा सकती।'

यहाँ जो पौंड लिखा है वह तेरह रुपए पाँच आने चार पाई के बराबर है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अब तक मोटा-मोटी खेती से सारे मुल्क की आमदनी करीब बारह अरब रुपए मानी जाती है जो एक अरब पौंड से भी कम है। मगर खेती में सुधारने से डेढ़ अरब पौंड और भी होगी—यानी आज की ढाई गुनी से भी ज्यादा होगी। मगर जैसा कि पहले कहा गया है, यदि सभी जमीनें दो फसला हो जाएँ और जमीन भी बढ़ के प्रायः दूनी हो जाए, तब तो आज से दस गुनी आय जरूर ही होगी। श्रीयुत आर. के. दास के वक्तव्य से भी यही बात सिद्ध की गई है। इस वक्तव्य में तो यह भी माना है कि यहाँ की जमीनें दुनिया की सबसे पैदाऊ जमीनों के टक्कर की हैं और अगर वे अनुर्वरा हो गई हैं तो इसीलिए कि किसान खाद दे सकता नहीं और सरकार को इसकी फिक्र ही नहीं है।

हमारे देश में बेकार ही ज्यादा खेत-मजदूर भी लगते हैं—इंग्लैंड के साढ़े सात गुने और जर्मनी के तीन गुने से अधिक। यह मानवशक्ति का नितान्त अपव्यय है। इधर पैदावार कम होती है उधर आदमी ज्यादा लगते हैं। फलतः किसानों पर दोहरी मार पड़ती है और वे खेती से फायदा कर नहीं पाते। यदि वैज्ञानिक ढंग से खेती की जाए तो थोड़े ही खेत-मजदूर ज्यादा पैदा करेंगे। लेकिन उसका यह नतीजा जरूर होगा कि जिन 7-8 आदमियों में एक ही की जरूरत खेती के लिए रह जाएगी उनमें वाकी बेंकार हो जाएँगे। लेकिन खेती तो काफी लाभदायक हो जाएगी इसमें कोई शक नहीं। रह गई इन मजदूरों की बेकारी। सो तो यों जाएगी कि जब आज से तीन गुनी से भी ज्यादा जमीनें खेती की हो जाएँगी तो बेकार मजदूरों में आधे तो उन जमीनों में जा लगेंगे। रह गए बेकारों के बचे-बचाए आधे। सो उनके लिए नए-नए कल-कारखानों में जगह होगी। क्योंकि वैज्ञानिक तरीके से पूरी-पूरी खेती होने का अर्थ है यहाँ आधुनिक कारखाने भरपूर खुल जाएँगे। नहीं तो वैज्ञानिक खेती के सभी सामान मिलेंगे कहाँ? विदेशों से लाके तो करना असंभव है। किसी भी मुल्क में ऐसा नहीं होता। जब तक मुल्क में उद्योग-व्यापार अत्याधुनिक ढंग से पूरा होने लगे नहीं, तब तक आधुनिक खेती पूर्ण रूपेण हो सकती नहीं, यह मानी हुई बात है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जब सारे मुल्क के लिए काफी पैदावार का प्रबन्ध होगा तभी किसानों की जमीन-सम्बन्धी भूख मिटेगी और तभी खेत-मजदूरों को भी जमीन मिल सकेगी। दूसरा रास्ता कोई नहीं। वर्तमान दशा में किसानों के साथ खेत-मजदूरों द्वारा की गई लड़ाई सिर्फ कफन खसोटी होगी। यही होगा कि दोनों दल भुक्खड़ों की तरह आपस में कफन के लिए, टुकड़ों के लिए लड़ेगा सही, मगर नतीना कुछ न होगा। इसलिए हमने इस दिक्कत की जड़ को ही पकड़ा है। इसके जरिए हमने किसानों को—जिनमें खेत-मजदूर भी आ जाते हैं—असलियत तक पहुँचा देने की कोशिश की है। हम चाहते हैं कि जड़ को पकड़ें ताकि काम चले। फूल-पत्तों से कुछ होने-जाने का नहीं।

मगर जमीन होने पर जो यह दिक्कत है कि लाखों जमींदारों के पास जिरात

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और बकाश्त या खुदकाश्त के नाम पर करोड़ों एकड़ जमीनें पड़ी हैं। वे या तो खुद खेती करते नहीं, और अगर करते भी हैं तो दौलत जमा करने के ही लिए, न कि खाने के लिए। उन्हें खाने की कमी तो है नहीं। ये लोग करोड़ों की जमीनें छीन के अपने पास रखते हैं और मनमाना लगान वसूलते रहते हैं। आज जरूरत इस बात की है कि सरकार उन जमींदारों की सारी जिरात और बकाश्त की जमीनें छीन ले जो खेती से गुजर नहीं करते। जमींदार से हमारा मतलब उन लोगों से हैं जो अपनी जमीनें भावली या नगदी लगान पर गैरों को देते हैं। उनकी ऐसी जमीनें लेकर उनमें से सबसे पहले उन लोगों को दी जाएँ तो खेत-मजदूर या इसी प्रकार के लोग हैं, जो खेती से भी गुजर करते आ रहे हैं और करना चाहते हैं। बचने पर ही वह जमीन और काम में आ सकती है। जिनके पास या तो जमीन है नहीं या नाममात्र को ही, ऐसे ही किसान और खेत-मजदूर इन जमीनों के हकदार हैं। कुछ लोग तो दौलत करें जमीनों से ही और करोड़ों भूखे मरें यह नाजायज बात बन्द हो जानी चाहिए। ऐसी जमीनें जब दी जाएँगी तो इन गरीब किसानों को, जिनमें खेत-मजदूर भी आ जाते हैं, पंचायती खेती का अच्छा मौका मिल जाएगा। सरकार और समाज का फर्ज है कि जमीनों को देने के साथ ही भरसक पंचायती खेती का भी इंतजाम कर दें। इसी शर्त के साथ जमीनें दें।

इस प्रकार जमीन का सवाल हल हो जाने पर मजदूरी का प्रश्न खुद-ब-खुद हल हो जाएगा। लेकिन जब तक ऐसा नहीं हो जाता तब तक तो वह सवाल उठता ही रहेगा। इसलिए उस पर भी थोड़ी रोशनी डाल देना जरूरी है। इतना ही नहीं। जमीनें मिलने पर भी वह समस्या बनी रहेगी। मजदूरी का प्रश्न सिर्फ पेट भरने का प्रश्न न होकर इससे कहीं बड़ा है। इसकी ठीक-ठीक व्यवस्था हो जाने पर ही खेती-बारी आदि सभी काम ठीक-ठीक चल सकते हैं। नहीं तो उनमें बराबर गड़बड़ी होती ही रहेगी। मजदूर का प्रश्न हक का प्रश्न है। इसलिए उस पर काफी ध्यान जाना चाहिए।

सबसे पहले हमें यह समझना होगा कि जो धनी किसान हैं उनके यहाँ तो खेत-मजदूर काम करते ही हैं। मगर गरीबों के यहाँ भी करते हैं, जैसा कि पहले कह चुके हैं। ऐसी हालत में अगर गरीबों को उचित मजदूरी देने में यदि दिक्कतें हों भी तो धनियों को तो होती हैं नहीं। वे तो काफी और पूरी मजदूरी देई सकते हैं। फिर भी गरीबों की देखा-देखी वह भी नहीं देते। मजदूरी की दर जो बँध गई वही वह भी देते हैं। ज्यादातर तो गरीब ही होते हैं। इसलिए वह जो देते हैं वही मजदूरी की दर मान ली जाती है। मगर यह गलत है और इसके खिलाफ लड़ना पड़ेगा। उनके साथ तो जरा भी मुरव्वत नहीं हो सकती। आखिर उनकी भी तो मजबूरी है। वे खुद तो खेती अपने हाथों कर सकते नहीं। एक तो शान और दूसरे ज्यादा खेतों में खेती अकेले कैसे करेंगे। इसीलिए ज्यादा मजदूरी की उन्हें जरूरत होती है। इसी से उन्हें विवश करना होगा कि पूरी मजदूरी दें।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मगर गरीब लोग तो जरूरत होने पर खुद भी खेती का सारा काम कर ले सकते हैं। उनके सामने शान का सवाल तो वैसा होता नहीं। खेत भी ज्यादा नहीं होते। सिर्फ पुरानी प्रथा और धर्म-वर्म के खयाल से ही नहीं करते हैं। लेकिन जब मजबूरी होगी तो खामख्वाह करेंगे। नतीजा यही होगा कि ज्यादा दबाव देने पर वे न मानेंगे और उनके खेत-मजदूर भूखों मरने लगेंगे। इसीलिए उनके साथ रिआयत की जा सकती है। क्योंकि दोनों की मजबूरी होने से समझौता हो सकता है—होना चाहिए। खासकर जब तक जमीनों का सवाल हल हो नहीं जाता। आखिर किसी प्रकार जिन्दा तो रहना ही है। दोनों की हालत दोनों देखें और बीच का रास्ता निकालें।

बात असल यह है कि जिस प्रकार ग्राह ने गज को करीब-करीब ग्रस ही लिया था ठीक उसी तरह गरीब किसान जो कुछ पैदा करते हैं उसे जमींदार, साहूकार वगैरह ग्रस लेते हैं। उनके पास बचने पाता है कहाँ? और जो बचता भी है वह तो कथमपि गुजर लायक होता ही नहीं। दूसरे उस पर ग्राहों की दृष्टि लगी ही रहती है कि कब कैसे उसे भी हड़पें। यही कारण है कि गरीब किसान अपने मजदूरों को भरपेट खिला सकता नहीं। कारण, खुद भी तो भूखा ही रहता है। इसलिए पहला काम तो यही है कि दोनों ही मिलके इन ग्राहों के पेट से उस पैदावार को बचाएँ। तभी पेट भरने की आशा है। मगर जब तक दोनों बराबर लड़ेंगे और एकमत होके ग्राहों से न भिड़ेंगे कुछ होने-जाने का नहीं। इसीलिए पारस्परिक समझौता होना जरूरी है। इसीलिए उसी दृष्टि से हमें उनकी मजदूरी का प्रश्न लेना होगा।

हमने खुद इसी खयाल से अनेक स्थानों में जाँच की है और परस्पर मेल भी कराया है। कहीं-कहीं तो ऐसा हुआ है कि सिर्फ मामूली जलपान की ही माँग रही है और किसानों ने उसे पूरा ही कर दिया है। कहीं पाव-आध सेर मजदूरी बढ़ाने की बात भी मान ली गई है। मगर समझा-बुझा के ही यह काम हुआ है। इसके लिए हड़ताल जैसी भारी भूल नहीं की गई है। उससे तो किसान संगठन के मूल में ही कुठाराघात हो जाता है। गरीब किसानों का, जो हमारे संगठन की रीढ़ हैं, हमसे विश्वास ही उठ जाने का उसमें खतरा है। इसलिए वहाँ तक बढ़ जाना भूल है, भारी भूल है।

कई जगह तो किसानों ने हमसे खुद प्रस्ताव किया कि नपी-तुली मजदूरी की क्या बात? खेत की पैदावार की प्रायः आधा तो जमींदार ही लेता है। बचे आधे में आधा मजदूर ले लें। हम सिर्फ चौथाई में ही गुजर करेंगे और खेती का सारा खर्च भी चलाएँगे। मगर मजदूर इस पर तैयार न हुए। यह प्रस्ताव अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और इससे किसानों की सद्भावना और नेकनीयती पर पूरा प्रकाश पड़ता है। इसी में झगड़ा मिट जाने और सुलह का बीज छिपा हुआ है। किसानों का भविष्य उज्ज्वल है इसकी आशा भी हमें इसी से है। इसमें सफलता का विश्वास भी है!

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(5)
यह हो कैसे

अब एकाएक सवाल उठता है कि खेत-मजदूरों की समस्याओं का जो समाधान बताया गया है, उनके सुलझाने में जो कुंजी सुझाई गई है वह है तो बहुत ही सुन्दर। उससे न सिर्फ खेत-मजदूरों का ही भला है, प्रत्युत किसानों का भी। मगर आखिर यह होगा कैसे? देखने में यह बात जितनी सीधी और आसान मालूम पड़ती है अमल में उतनी ही कठिन है, बीहड़ है। जमीन का प्रश्न यों देखने से तो सुन्दर जान पड़ता है। मगर उसे क्या जमींदार या सरकार पसन्द करेंगे? वे न सिर्फ नाक-भौं सिकोड़ेंगे, बल्कि सारी शक्ति से उसका विरोध करेंगे। सरकार तो हजार दिक्कतें और अड़चनें पेश करेगी, और जमींदार तो जल भुन के खाक ही हो जाएँगे। ऐसी हालत में उन्हें मजबूर करने का कोई रास्ता होना चाहिए। इसी प्रकार धनी किसानों को पूरी मजदूरी देने के लिए विवश करने का भी उपाय चाहिए। क्योंकि वे लाग भी आसानी से मानने वाले जीव हैं नहीं।

यह सवाल तो ठीक ही है कि इसका जवाब भी मौजूद ही है। वह है लोकमत एवं प्रचंड आन्दोलन का प्रभाव। असल बात है सरकार को मनवाने की, और वह तो बिना लोकमत के दवाव के दूसरी तरह सुन सकती नहीं। इसीलिए हमें तो अपने प्रस्ताव के अनुकूल जबर्दस्त लोकमत बनाना ही होगा। इसके सिवाय चारा नहीं। इसीलिए तो हमने पहले ही कह दिया है कि किसानों और खेत-मजदूरों की संगठित तथा सम्मिलित शक्ति से ही यह काम करना होगा। यही कारण है कि दोनों के समझौते की बात हमने कही है। आखिर दोनों के स्वार्थ जब एक ही हैं तो फिर मिल के काम क्यों न किया जाए? जमींदार तो चाहेंगे ही, साहूकार भी चाहेंगे और सरकार भी, कि ये दोनों आपस में ही लड़ें और पारी-पारी से दोनों के कान ऐंठे जाएँ। मगर इन दोनों को, और हमें भी, तो इस खतरे से सदा सजग रहना है।

अब प्रश्न हो सकता है कि आया इन दोनों के संगठन दो हों या एक ही रहे। इस प्रश्न का उत्तर तो पहले ही दिया जा चुका है। मगर शायद वह काफी नहीं है। एक महान संगठन के भीतर ही दोनों का रहना निहायत जरूरी है यह बात बताई जा चुकी है। यह मौलिक सिद्धान्त है। हम इससे हर्गिज विचलित हो नहीं सकते। मगर हम यह बात नहीं भूल सकते कि खेत-मजदूरों में प्रधानतः कुछ ऐसी जातियाँ हैं जो सदियों से दबी पड़ी हैं, जिनकी रीढ़ ही टूट चुकी है और इसलिए जो आसानी से उठ नहीं सकती हैं उनमें परस्पर भी ऊँच-नीच का भाव है। समाज ने उन्हें पशु से भी बदतर बना रखा है यद्यपि धीरे-धीरे यह बात मिट रही है। वर्तमान समाज का निर्माण ही ऐसा है, जब तक इसका—समाज का—आमूल परिवर्तन न हो जाए। जब तक इसका आधार बदल नहीं दिया जाता तब तक छोटे-बड़े सबों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में ही शोषण की भावना कमोबेश रहेगी ही। अब तक इसका आधार ही है व्यक्तिगत सम्पत्ति। इसलिए शोषण इसकी नस-नस में समाया है। इस आधार को मिटाके जब सम्मिलित सम्पत्ति को आधार बना दिया जाएगा तभी यह बात मिटेगी। मगर इसमें देर है।

तब तक शोषण चलता ही रहेगा। जैसे साँप के मुँह में पड़ा मेढक जब तक जिन्दा है, तब तक कीट-पतंगों को, यदि वे पास आ जाएँ, खुद भी खा जाने की कोशिश करता ही है। उसकी यह मजबूरी है। ठीक उसी प्रकार जमींदार, साहूकार के चंगुल में फँसा मजलूम किसान मजबूरन खेत-मजदूरों का थोड़ा शोषण करना चाहेगा ही। खूबी तो यह है कि इस बात का उसे अनुभव भी न होगा कि शोषण कर रहा है। यही तो वर्तमान समाज में प्रविष्ट जहर की खूबी है। खेत-मजदूरों में जो पिछड़ी जातियों के हैं वह भी एक-दूसरे को ऊँच-नीच, स्पृश्य-अस्पृश्य मानते ही हैं और इससे उन्हें कोई हिचक भी नहीं होती। क्या वे लोग अपने नाई, धोबी वगैरह को पूरी मजदूरी देते हैं? देना चाहते हैं? हर्गिज नहीं? तो क्या यह बात वे समझते हैं कि शोषण कर रहे हैं? कदापि नहीं । क्यों? इसीलिए न कि उनकी गरीबी, उनकी मजबूरी से ही वे ऐसा करते हैं? मगर समाज की मनोवृत्ति ही ऐसी है कि वे समझ पाते ही नहीं कि वे भी सचमुच शोषण करी रहे हैं। हालाँकि गैरों के द्वारा होने वाले अपने शोषण के विरुद्ध वे खुद चिल्लाते हैं। यही बात दूसरे किसानों की है जो गरीब हैं। जो धनी हैं उनका तो कहना ही नहीं।

इसीलिए जहाँ एक ओर हमें खेत-मजदूरों को किसानों के संगठन से, किसान सभा से हर्गिज बाहर जाने देना नहीं है और सारी शक्ति से एक ही साथ मिला के रखना है, तहाँ शोषण के इस खतरे से बचने का भी उपाय करना है, ताकि इसके विपरीत मौके-मौके पर वे जबर्दस्त आवाज उठा सकें। किसान सभा के भीतर से ही यह आवाज उठ सकती है। मगर शायद उतनी जबर्दस्त और प्रभावशाली न हो सके, शायद उनके ऐसी होने में अड़चनें आएँ। साथ ही समय की गति के करते इस बात का खतरा है कि उनके स्वतन्त्र संगठन बना के उन्हें किसानों से फोड़ने की कोशिश हो। कुछ लोग तो नासमझी से इस बात को करेंगे, ईमानदारी के साथ ही। मगर ज्यादातर स्वार्थी और स्थिर स्वार्थों के दलाल ही ऐसा कर सकते हैं। वे इस प्रकार इन मजदूरों की जागरण वाली मनोवृत्ति से अनुचित लाभ उठाना चाहेंगे। एक बात और भी होगी। जैसा कि पहले कह चुके हैं जब सरकार जिरात वगैरह जमीनें जमींदारों से ले लेगी, या अब तक बेकार पड़ी जमीनों को खेती योग्य बनाएगी तो चालाक लोग होहल्ला करके खुद ले लेंगे या लेने की कोशिश करेंगे। ऐसे मौके पर यदि खेत-मजदूरों की आवाज बुलन्द न हुई और वे मुस्तैदी से न बोले तो घाटे में रह सकते हैं। उन्हें या तो जमीन कतई न मिलेगी या बहुत ही थोड़ी। औरों और खासकर चलते पुर्जे किसानों की आवाज में उनकी आवाज विलीन हो सकती है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अभी तक डट के बोलने की न तो उनकी हिम्मत ही है और न आदत ही। इससे उन्हें घाटा हो सकता है।

तो क्या उनका अलग ही संगठन किया जाए? यह सवाल उठता है सही। मगर अलग ही संगठन का अर्थ है कि वे किसान संगठन से पृथक् हो जाएँ और यह सरासर गलत रास्ता होगा जैसा कि कह चुके हैं। और अगर कहा जाए कि उनका अलग भी संगठन हो तो यह बात विचारणीय है। क्योंकि किसी संगठन के भीतर रहना और स्वतन्त्र संगठन में रहना कुछ विचित्र बात है। ये दोनों विरोधी बातें हैं। क्योंकि दोनों संगठनों की तनातनी या विरोध होने पर वह किसी एक में ही रह सकता है, जब तक एक-दूसरे के अधीन न हों। मगर अधीन होने पर स्वतन्त्रता कैसी? तब तो यह बात केवल हवाई ही होगी। एक बात और भी है। जो लोग किसान संगठन से बाहर या उसके विरोधी हैं वह तो जुदा संगठन करके झगड़ा लगाना चाहेंगे ही। उसका उपाय क्या होगा? वह तो हमारी मर्जी की बात है नहीं।

यहाँ थोड़ा रुक के हमें इधर-उधर ढूँढ़ना है। जब हम दृष्टि फैलाते हैं तो लेनिन और उसकी पार्टी की कई बातें याद आती हैं। पहली बात तो यह कि उसने और पार्टी ने 'मजदूरों के एकतन्त्र शासन' का अर्थ बताया है 'सर्वहारा और अत्यन्त गरीब किसानों के हाथ में शासन सूत्र का आ जाना' जैसा कि पार्टी की छठी कांग्रेस के प्रस्ताव से जो सन् 1917 ई. की जुलाई में हुई थी, स्पष्ट है। खयाल रहे कि अत्यन्त गरीब किसान से मतलब साफ है कि मध्यम या धनी किसान नहीं लिये जाएँगे।

इसी प्रकार पेज आरनाट ने रूसी क्रान्ति के इतिहास में लिखा है कि 'मजदूरों का एकतन्त्र शासन अधिक गरीब किसानों के साथ मिल कर ही होता है, बोल्शेविक लोग देहातों में गरीब किसानों का संगठन करते थे।' यहाँ ज्यादा गरीब और गरीब किसानों का उल्लेख है। लेनिन के लेखों में ये तीनों शब्द सहस्रों बार आए हैं। उसने अपने प्रसिद्ध *अप्रैल के मन्तव्यों* के 5वें और 6ठें मन्तव्यों में रूस में पार्लियामेण्टरी प्रणाली की जगह 'सर्वहारा, खेत-मजदूरों और किसानों की पंचायतों के सम्मिलित गणतन्त्र शासन' कह के आगे लिखा है कि 'हमारे खेती सम्बन्धी प्रोग्राम का केन्द्र बिन्दु या प्रधान लक्ष्य होना चाहिए खेत-मजदूरों की पंचायत जिसका तात्पर्य है कि खेत-मजदूरों को प्रधानतया लक्ष्य करके हमारा वह प्रोग्राम बनना चाहिए। मगर उसके बाद ही फिर लिखता है कि सभी जमीनों को समाज के हाथ में करके उसका प्रबन्ध खेत-मजदूरों तथा किसानों की स्थानीय पंचायतों को सौंप देना चाहिए।' फिर इसी के साथ यह भी कहता है कि बड़ी-बड़ी जमींदारियों की जमीनों के आदर्श फार्म सौ से लेकर तीन सौ देसियातिन तक के बनाए जाकर वे खेत-मजदूरों की पंचायत को ही सुपुर्द किए जाएँ। वहीं उसने यह भी कहा है कि गरीब किसानों की पंचायतों (सभाओं) का अपना संगठन करना होगा। खूबी तो यह है कि खेत-मजदूरों की पंचायत

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

का जिक्र किसानों की पंचायत से जदा करके भी गरीब किसानों के ही संगठन की बात वह कहता है।

इन बातों के अलावे *लेनिनिज्म* में स्टालिन ने 313 पृष्ठ में लिखा है 'धनी किसान (कुलक) खामख्वाह खेत-मजदूरों या अर्द्ध-मजदूरों का साफ-साफ शोषण करते हैं। इसलिए यदि हमने उनके साथ होने वाले संघर्षों को नरम या धीमा किया तो यह अनुचित होगा। हमारा तो फर्ज यह है कि हम गरीबों किसानों को कुलक लोगों के विरुद्ध संगठित करके खुद उस लड़ाई का नेतृत्व करें।' एक बात और भी है। लेनिन ने अपने अप्रैल वाले मन्तव्यों में पहले में यह लिखा है कि जब तक किसानों और मजदूरों के हाथ में शासन की बागडोर नहीं आ जाती तब तक हम साम्राज्यवादी युद्ध में पड़ी नहीं सकते। यह बागडोर आने और दो और शर्तें पूरा होने पर यह लड़ाई क्रान्ति के रक्षार्थ मानी जाएगी और हम उसमें पड़ सकते हैं। लेकिन मजदूरों और किसानों के हाथ में शासनसूत्र देने की वात कहते हुए उसने लिखा है कि किसानों से हमारा मतलब उन गरीब किसानों से है जो करीब-करीब मजदूरों जैसे हैं। इन्हीं को विदेश से लिखे गए पत्रों में उसने भी लिखा है। इन बातों से स्पष्ट है कि लेनिन गरीब किसानों और खेत-मजदूरों की एक ही श्रेणी—किसान श्रेणी—मानता है।

इन सव उद्धरणों को एक साथ लिख देने से कई बातें साफ हो जाती हैं। एक तो यह कि धंनी और मध्य किसानों के सिवाय जो गरीब किसान हैं वह तीन तरह के हैं, (1) गरीब, (2) ज्यादा गरीब, (3) अत्यन्त गरीब। मगर व्यवहार में यह भेद नहीं मानकर गरीब किसानों के ही लिए समय-समय पर तीनों शब्द बोले जाते हैं। इन उद्धरणों को गौर से पढ़ के कोई भी यह कह सकता है। दूसरी यह कि गरीब किसान ही खेत-मजदूर या अर्द्ध खेत-मजदूर हैं। आखिरी उद्धरण में स्तालिन इन मजदूरों का ही शोषण लिखता है। मगर उसे मिटाने का जो रास्ता अन्त में लड़ाई के रूप में बताता है उसके लिए संगठन करना गरीब किसानों का ही बताता है। इससे स्पष्टता और क्या चाहिए? लेनिन के मन्तव्यों से जो उद्धरण दिए गए हैं उनसे भी यही बात स्पष्ट हो जाती है। किसान संगठन से जुदा गरीब किसानों का संगठन करने को पहले पहल उसने अप्रैल सन् 1917 ई. में कहा था। किसान संगठन में तो मध्यम और धनी किसान भी आ सकते हैं, खासकर मध्यम तो जरूर ही। उस समय के रूस में किसान संगठन में तो धनी भी थे ही। बल्कि उन्हीं की और मध्यम किसानों की तूती उस सभा में बोलती थी। इसलिए गरीबों की आवाज वहाँ सुनाई न पड़ती थी। फलतः उनका जुदा संगठन जरूरी था। मगर जहाँ एक ओर गरीबों का संगठन कर्तव्य माना गया है तहाँ यह भी वहीं लिखा है कि खेती या किसान सम्बन्धी प्रोग्राम प्रधानतया खेत-मजदूरों की ही दृष्टि से बनना चाहिए। इससे भी स्पष्ट है कि लेनिन गरीब किसानों और खेत-मजदूरों को एक ही समझता है। क्योंकि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यदि दो होते तो खेत-मजदूरों का संगठन न होने पर उनकी दृष्टि से प्रोग्राम क्यों कर बनता? पहले तो एक लम्बा उद्धरण दिया है। उससे भी लेनिन का यही अभिप्राय प्रकट होता है वह वहीं लिख चुके हैं। हाँ, यह सही है कि अकसर खेत-मजदूर कहने से बिना जमीन वाले ही किसान समझे जाते हैं। इसीलिए आदर्श फार्मों को उन्हीं की पंचायतों के हवाले करने की बात लेनिन ने लिखी है। उनके पास खेती के साधन तो होते नहीं। फलतः बड़े जमींदारों की जिरात और बकाश्त छीनकर उन्हीं के साधनों से उसी जमीन में सम्मिलित खेती खेत-मजदूर करें तो ठीक हो यही लेनिन का मतलब था। इससे साम्यवाद का रास्ता साफ हो जाने का था।

फरवरी की क्रान्ति के बाद लेनिन ने जो पत्र विदेश से अक्तूबर वाली क्रान्ति के पहले उसी की तैयारी की दृष्टि से लिखे थे उनमें भी खेत-मजदूरों के संगठन से जुदा, किसानों के संगठन की बात यद्यपि झलकती है। तथापि यदि गौर से पूरा प्रकरण पढ़ा जाए तो साफ हो जाता है कि वह धनी और मध्यम किसानों से गरीब किसानों को जुदा करने के ही लिए उसकी कोशिश है, न कि उन किसानों को खेत-मजदूरों से जुदा करने का उसका खयाल है।

जब धनी किसानों के शोषण के विरुद्ध खेत-मजदूरों को लड़ना ही है और उसका नेतृत्व हमें जरूर ही करना है तब तो उनका संगठन होई जाएगा। लड़ाई होगी आखिर कैसे? स्तालिन भी तो यही कहता है। इस प्रकार खेत-मजदूरों का संगठन इस लड़ाई के दौरान में ही हो सकता है, होना चाहिए। तभी वह पक्का और यथार्थ होगा। संघर्ष के मध्य जो संगठन शोषितों का होता है वही असली होता है। बिना संघर्ष के संगठन करने पर तो उसमें ऊलजलूल लोगों के भर जाने का खतरा रहता है। इसीलिए तो रूस में जो सोवियत बनी वह लड़ाई के ही दौरान में 1905 ई. में। उसके बाद लड़ाई खत्म हो जाने पर वह भी खत्म हुई। फिर 1917 की फरवरी क्रान्ति के समय बनी। अतएव यों उनका जुदा संगठन हम न करेंगे। गरीब किसानों से लड़ने के लिए तो कभी भी न करेंगे यह याद रहे।

यह ठीक है कि दूसरे लोग यों भी उनका संगठन करेंगे, करते हैं। उन्हें रोकना भी असम्भव है। हमारा यही काम होना चाहिए कि उसमें भी रहके उसे सीमा के बाहर न जाने देकर रास्ते पर चलने दें। ऐसा करें कि वह किसान सभा का विरोधी बनने न पाए। यदि उसमें जाने में ऐसी बाधाएँ हों कि जाने ही न पाएँ तो बाहर से ही उस पर नजर और निगरानी रखना जरूरी है। लेकिन हर हालत में ऐसे संगठनों पर हमारा जोर न होकर सिर्फ उनसे जिन खतरों की सम्भावना है उन्हें बचाना ही हमारा ध्येय होना चाहिए। मगर यह बात भी तभी होगी जब हम धनी किसानों के विरुद्ध उनके संघर्षों को मुस्तैदी के साथ संगठित रूप से चलाते रहें। यही असली और आवश्यक काम है। इसी प्रकार उनका निजी संगठन सुन्दर रूप में खड़ा हो जाएगा। इसमें साधारण किसानों को नाक-भौं सिकोड़ने का मौका भी न मिलेगा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बिना संघर्ष के यों ही खेत-मजदूरों की संस्था खड़ी कर देने पर स्वभावतः उनके कान खड़े हो सकते हैं, वे चौंक सकते हैं।

किसान सभा और खेत-मजदूरों के इस प्रकार के संगठन में परस्पर विरोध भी नहीं हो सकता। क्योंकि जब किसान सभा के नेता ही यह काम करेंगे, सो भी संघर्ष के जरिए ही, तो ऐसा मौका आने ही न देंगे। संघर्ष के करते बनने वाले संगठन में बनावटी और कलह कराने वाले नेताओं की तो गुंजाइश होगी ही नहीं। वे तो इससे दूर ही रहेंगे। फिर मतभेद करावेगा कौन? यह संगठन तो अत्यन्त शोषितों का ही होगा। किसान नेताओं के लिए तो गौरव की बात होगी कि किसान संसार में जो सबसे ज्यादा दुखिया हैं और सबके नीचे दबे हैं उन्हें वे मजबूती के साथ उठाएँ। वही तो असल किसान हैं। फलतः एक तो हमारी नीयत का पता दुनिया को लग जाएगा। दूसरी यही सभा, यही संगठन किसानों की वास्तविक चीज कुछ दिनों बाद हो जाएगी। जो किसान खुद शोषित हैं और जो दूसरों का शोषण खुद करना नहीं चाहते। प्रत्युत जो शोषण और जुल्म को संसार से मिटा देना चाहते हैं वह सभी इस नए संगठन में ही धीरे-धीरे शरीक हो जाएँगे। वर्तमान किसान सभा में जो लोग शोषण को किसी न किसी रूप में कायम करने के लिए शामिल हैं या रहेंगे वह धीरे-धीरे इससे कालान्तर में खिसकेंगे। फलतः दोनों सभाएँ एक ही प्रकार के लोगों की होने के कारण अन्त में एक हो जाएँगी। मगर अभी यह सम्भव नहीं है। अभी परिस्थिति ही कुछ ऐसी है कि यह बात हो नहीं सकती।

गरीब किसानों के साथ जब कभी इन मजदूरों का झमेला मजदूरी वगैरह को लेकर होगा तो वहाँ भी दोनों संगठन आपस में बातें करके आसानी से मामला तय करा देंगे। मध्यम किसानों के साथ भी निपटारा करा देंगे। क्योंकि अभी तो सभी किसान किसान सभा में शरीक हुईं। फिर उसके सामने अपनी बातें कह के अन्त में उसका फैसला तो उन्हें मानना ही होगा। जो लोग ऐसा रूस के इतिहास से ही समझते हैं कि खेत-मजदूरों का किसी भी प्रकार का अलग संगठन या उसका श्रीगणेश भी अभी नहीं किया जाना चाहिए, वह परिस्थिति को समझते ही नहीं। रूस के इतिहास से हमें फायदा जरूर है। मगर उसकी सभी बातें अक्षरशः ज्यों की त्यों यहाँ लागू की जा सकती हैं नहीं। 20-25 वर्षों में परिस्थिति बहुत बदल चुकी है। हमें इसी के अनुसार कुछ न कुछ रद्दोबदल करना ही होगा। स्मरण रहे कि यह साम्राज्यवाद का पेचीदा युग है। इसमें यदि हम मौके पर पीछे न हटें, इधर-उधर न घूमें तो मिट जाएँगे। इसे ही लेनिन ने कहा है। हर हालत में हमें तो परिस्थिति का सामना करना ही होगा।

इस प्रकार हमने जिन-जिन बातें का वर्णन किया है जो पहलू सुझाए हैं और जो रास्ते दिखाए हैं अगर उन सबों पर ठीक-ठीक गौर करके मौके-मौके से उन पर अमल किया जाए, और जरूरत समझ के उनमें थोड़ी-बहुत तरमीम (संशोधन) भी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कर लिया जाए तो न सिर्फ खेत-मजदूर की, बल्कि समूचे किसानों की समस्याएँ बखूबी हल हो जाएँगी। हमें कम से कम दिक्कतों का सामना करना पड़ेगा। इस प्रकार हम आसानी से इस बड़े देश की कायापलट का रास्ता साफ कर लेंगे और जब मौका आएगा तो उस कायापलट में पूरा भाग ले सकेंगे। संकुचित या पहले से बने-बनाए खयालों को छोड़ हमें मुस्तैदी और ईमानदारी से आगे बढ़ने की जरूरत है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

झारखंड के किसान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यह काम किसलिए?

बिहार प्रान्त को असल में 'बिहार और छोटानागपुर' के नाम से ही पुकारा जाता है। यों कभी-कभी संक्षेप में केवल 'बिहार' भी कह देते हैं। जब उड़ीसा का सम्बन्ध बिहार से था तब तो 'बिहार और उड़ीसा' अकसर कहा जाता था। मगर उड़ीसा के अलग हो जाने के बाद केवल 'बिहार' के बजाए 'बिहार और छोटानागपुर' कहना ही उचित प्रतीत होता है। यों तो उड़ीसा के मिले रहने पर भी कभी-कभी केवल 'बिहार' ही कहते थे। चाहे जो भी हो, छोटानागपुर का महत्त्व काफी है और जान या अनजान में इसकी याद हमेशा बनी रही है।

बात असल यह है कि इस प्रान्त के कुल सोलह जिलों में सिर्फ सारन, चम्पारन, दरभंगा, मुजफ्फरपुर और पूर्णियाँ यही पाँच ऐसे हैं जहाँ पहाड़ नहीं हैं। शेष ग्यारह में तो कमोबेश पहाड़ पाए ही जाते हैं। यह ठीक है कि छोटानागपुर के पाँच जिलों—पलामू, राँची, हजारीबाग, मानभूम और सिंहभूम—तथा संथाल परगना, इन छह जिलों की भूमि जिस प्रकार पार्वत्य या पहाड़मयी है वैसी गया, मुंगेर आदि की नहीं है। ये छह तो पहाड़ों और जंगलों से घिरे हैं। मगर गया वगैरह के कुछ ही हिस्से पहाड़ी हैं। फिर भी यह बात सही है कि ये जिले भी अपने भीतर कुछ न कुछ जंगल और पहाड़ रखते ही हैं। पटना जिले में ही सबसे कम पहाड़ और जंगल हैं। इस प्रकार जंगलों की प्रधानता का खयाल करके ही पलामू आदि छह जिलों को बहुत पहले से झारखंड कहते चले आते हैं। बाकी जो ग्यारह जिले बच जाते हैं उनमें या तो जंगल पहाड़ हई नहीं, या बहुत ज्यादा नहीं हैं। यह भी बात है कि उनमें बौद्धकाल में बौद्ध भिक्षुओं के रहने और पढ़ने आदि के लिए जगह-जगह मठ या मकान प्रायः बने रहते थे जिन्हें बौद्ध सम्प्रदाय में विहार कहते हैं। इसीलिए वे ग्यारह जिले विहार कहे जाने लगे। असल में तो इस लम्बे सूबे को दो भागों में बाँटकर जैसे जंगली भाग को झारखंड कहते थे वैसे ही दूसरे भाग को विहार खंड ही कहना उचित था। मगर जाने क्यों केवल 'विहार' ही कहा जाता था।

इस प्रकार बिहार या विहार खंड और झारखंड के नाम से दो भागों में बँटे इस सूबे में विहार खंड के किसानों की दशा सुधारने की कोशिशें तो इधर बहुत

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हुई हैं। मगर यह बात झारखंड के बारे में नहीं हुई है। बिहार प्रान्तीय किसान सभा ने भी उतना ध्यान इस ओर नहीं दिया है जितना विहार खंड की ओर। फलतः और तो और, बाहरी लोगों को यहाँ के किसानों की समस्याओं तथा मुसीबतों की जानकारी तक प्रायः हुई नहीं! थोड़ी बहुत टूटी-फूटी बातें ही लोग जानते हैं। कभी-कभी कोई उथल-पुथल हो जाने पर ही कुछ नई बातें मालूम हो पाती हैं। जिसे पक्की और ब्यौरे की जानकारी कहते हैं वह तो फिर भी नहीं होती। वहाँ के असली निवासी, जिन्हें आदिवासी भी कहते हैं, आमतौर से मूक जैसे हैं। पढ़ने-लिखने की तो बात ही जाने दीजिए। उनकी भाषा ऐसी है कि दूसरे लोग समझी नहीं सकते। उनके रस्मोरिवाज भी निराले ही हैं। वे सीधे भी हद से ज्यादा हैं।

यह प्रान्त तो बड़ा है नहीं। कुल सोलह जिले हैं। जनसंख्या भी प्रायः साढ़े तीन (36340000) करोड़ ही है। मगर जहाँ तक किसानों की बात है, यहाँ तीन तरह के काश्तकारी कानून लागू हैं। बिहार काश्तकारी कानून —Bihar Tenancy Act—सिर्फ विहार खंड के दस जिलों में ही लागू है। उसका ताल्लुक झारखंड से हई नहीं। झारखंड में भी दो कानून हैं। संथाल परगने को छोड़ बाकी पाँच जिलों में छोटानागपुर काश्तकारी कानून—Chotanagpur Tenancy Act—प्रचलित है और उसी के अनुसार वहाँ काम होता है। मगर संथाल परगने की तो निराली ही हालत—मुरारेस्तृतीयः पन्थाः है। इन दोनों में एक भी वहाँ लागू नहीं है। उस जिले के लिए एक तीसरी ही कानूनी व्यवस्था है जिसे संथाल परगना मैनुअल—Santhal Pargana Manual—कहते हैं। उसी के अनुसार वहाँ का इन्तजाम होता है। यह मैनुअल भी बना है ज्यादातर 1872 और 1886 के नियम कायदों (Regulations) के आधार पर ही। झारखंड की पेचीदगी इसीलिए और भी बढ़ जाती है।

बदकिस्मती की बात यह भी है कि वहाँ के मूल निवासियों का नेतृत्व दूसरों के ही हाथ में है। ईसाइयों के जाने कितने ही मिशन वहाँ बहुत दिनों से काम करते हैं। उनने ईसाइयत का प्रचार भी वहाँ काफी किया है। अतएव एक तो वही लोग वहाँ के किसानों का नेतृत्व करते आए हैं। उनके सिवाय समय-समय पर सूबे के उत्तरी भाग या विहार खंड से भी पढ़े-लिखे सूदखोर बनिए या व्यापारी लोग वहाँ समय-समय पर बसते गए हैं। वकील, मुख्तार या और तरह के पढ़े-लिखे लोग, या तो वही हैं या बंगाली। अबरक, कोयला, लोहा वगैरह के कारबार और लाह या लकड़ी के रोजगार के सिलसिले में भी सभी तरह के लोग भारत के कोने-कोने से ही नहीं, बल्कि दूसरे देशों से भी आके वहाँ बस गए हैं। इसलिए स्वभावतः ऐसे लोग उन गरीबों के अगुवा बनने की कोशिश करते हैं। कांग्रेस जैसी प्रभावशाली संस्था के जितने प्रमुख नेता झारखंड में हैं वे सभी बाहर वाले ही हैं।

आदिवासी आन्दोलन के रूप में आज एक संस्था वहाँ खड़ी हो गई है सही और उसका नेतृत्व भी आदिवासियों के हाथ में ही बताया जाता है। कई ऐसे लोग

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भी हैं जो आदिवासी ही हैं और किसान सभा के नाम पर उनने एक संस्था भी बना ली है। मगर उनका नेतृत्व निहायत लचर और अवसरवादी है। वे किसानों को उठाना नहीं चाहते। किन्तु अपना काम निकालना चाहते हैं। आदिवासी आन्दोलन की कमी यह है कि शुद्ध मध्यमवर्गीय ढंग से ही चालू हो रहा है। यदि वह किसानों के वर्ग स्वार्थों के ही आधार पर चालू होता तो उसमें अपार शक्ति आ जाती और वह सचमुच झारखंडवासियों का निस्तार ही कर देता।

यही कारण है कि असलियत का पता नहीं लग पाता और घपले बढ़ गए हैं। मैं शुद्ध किसान हित के खयाल से ही वहाँ की स्थिति पर प्रकाश डालना चाहता हूँ ताकि उस अन्धेरी गुफा की झाँकी हमें मिले। हमें और हमारे कार्यकर्ताओं को सबसे बड़ी दिक्कत यह है कि वहाँ के निवासियों के अभाव-अभियोगों को जानते ही नहीं। वहाँ के काश्तकारी कानून की खास बात क्या है और उसमें क्या कमी है यह बात हमें मालूम नहीं। फिर उसके सुधार का आन्दोलन भी किया जाए तो कैसे? बाहरी लोगों की दृष्टि से वहाँ के काश्तकारी कानून में पेचीदगियाँ हैं। कांग्रेसी मंत्रियों के समय वहाँ का कानून भी बहुत कुछ सुधारा गया ठीक बिहार के काश्तकारी कानून के ही ढंग पर। मगर कितने मेम्बरों ने असेम्बली में उसे समझा भी, यह एक सवाल है। सिर्फ रस्मअदाई के खयाल से या दो-चार लोगों के कहने से ही जो कानून बने उससे हम लोगों का फायदा कहाँ तक कर सकते हैं? बिहार के कितने कांग्रेसी नेता हैं जो उन कानूनों को समझते हैं।

जब तक हम वहाँ की असली परिस्थिति न जानें, लोगों की सबसे चुभने वाली माँगों की हमें पूरी जानकारी न हो, सरकारी महकमे वहाँ कैसे काम करते हैं, कचहरियाँ कहाँ तक किस तरह उन गरीबों के साथ मौजूदा कानून के अनुसार भी न्याय कर पाती हैं, इत्यादि बातें हम न समझें उनके लिए कुछ भी कर सकते हैं क्या और कैसे? आदिवासियों की भाषा न तो हाकिम समझते और न दूसरे ही लोग। बाहरी वकील, मुख्तार भी सिर्फ कामचलाऊ बातें ही जानते हैं। नतीजा यह होता है कि वे बेचारे बहुत बार नाहक लद जाते हैं। अंग्रेजी कानूनों की पेचीदगियाँ वे क्या जानने गए? यदि जानते तो बचाव का रास्ता भी निकालते। इधर तो उन्हें पता ही नहीं है उधर सख्त से सख्त सजाएँ उन पर लद जाती हैं। जेल में रहके उनसे बातें करने और उनके साथ बार-बार हिलने-मिलने पर पता चलता है कि वे किस बला में फँस गए हैं। अपने पक्ष का सबूत उनके पास मौजूद है सही। फिर भी ठीक समय पर या कायदे के मुताबिक वे हाकिम के सामने पेश न कर सके और लद गए! मगर वे इन कायदे-कानूनों को जानने क्या गए? उन्हें किसने ये बातें सिखाने की कोशिश कीं? कानून बनते हैं अंग्रेजी में और आदि जनता की तो बात ही नहीं, उनके जो खास सदस्य असेम्बली में चुने गए हैं उनमें शायद ही एकाध अंग्रेजी जानते हैं। बाकियों की तो हालत ज्यादातर 'लिख लोढ़ा पढ़ पत्थर' जैसी ही है। थोड़ी-बहुत हिन्दी जानने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

से भी काम तो नहीं चलता।

ऐसी दशा में आगे जो कुछ लिखा जाएगा वह सबों की जानकारी के ही लिए। किसी दल या पार्टी या सम्प्रदाय के खंडन-मंडन से हमारा मतलब नहीं है। हमें तो अपना काम करना है। यदि हम झारखंड की जनता की और खासकर वहाँ के किसानों की कुछ भी सच्ची सेवा करना चाहते हैं तो सबसे पहले उस क्षेत्र की, उस अन्धेरी गुफा—no man's land—की झाँकी लगाना और परिस्थिति समझ लेना जरूरी है। नहीं तो भटक जाने की पूरी सम्भावना है। वैसी हालत में केवल दो-चार ऊपरी बातों से ही हम सन्तोष कर के तह में घुसने की कोशिश करी नहीं सकते हैं। कहा नहीं जा सकता कि हमें इसमें सफलता कहाँ तक मिलेगी।

सेण्ट्रल जेल, हजारीबाग —स्वामी सहजानन्द सरस्वती

नवम्बर दिवस, शुक्रवार 7.11.41

नोट—स्वामी जी ने झारखण्ड की समस्या को उपराष्ट्रीय, नस्लीय या क्षेत्रीय रूप में न देखकर वर्गीय रूप में, झारखण्ड के किसान के रूप में और उन पर हो रहे हर तरह के शोषण के विभिन्न रूप में देखा है। यही दृष्टिकोण ही उनकी अपनी मौलिकता है। ट्रेड यूनियन के नेता के भी हथकण्डे से स्वामी जी अनदेखे नहीं रहे हैं।—सम्पादक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(1)
झारखंड की भूमि

24.11.41। बिहार और छोटानागपुर सूबे का दक्षिणी हिस्सा ही झारखंड कहा जाता है। यह पुराना नाम है। संस्कृत में वनखंड या वनषंड शब्द जंगली या पहाड़ी भूभाग के लिए बार-बार पुरानी पोथियों में आया है। आज भी चलती भाषा में झाड़ शब्द पेड़ों के ही मानी में आता है। 'झार' और 'झाड़' इन दोनों में कोई फर्क नहीं है। 'झाड़' की ही जगह पहले 'झार' बोलते थे। इस प्रकार संथाल परगना और छोटानागपुर के पाँच जिले इस प्रान्त के जंगल प्रधान भूभाग को लेकर ही बने हैं। शाहाबाद के सहसराम सब-डिविजन के कुछ हिस्से, गया का अधिकांश दक्षिणी हिस्सा, मुंगेर और भागलपुर के भी दक्षिणी भाग का बहुत कुछ अंश इसी झारखंड से मिलकर इसे और भी विस्तृत बनाता है। इसी झारखंड के सिंहभूम जिले के पश्चिमी हिस्से से एक ओर उत्कल के गांगपुर स्टेट का मेल हो जाता है और दूसरी ओर दक्षिणी भाग में उत्कल या उड़ीसा के सूबे के मयूरभंज, बोनाई, क्योंझर रियासतों का। पलामू के साथ युक्तप्रान्त के मिर्ज़ापुर का भी गंठजोड़ा है। और सरगुजा स्टेट का। राँची के साथ सरगुजा, जशपुर और गांगपुर राज्यों का सम्बद्ध हो जाता है। सिंहभूम तथा मानभूम के पूर्वी हिस्से बंगाल से जुट जाते हैं। संथाल परगना तो दक्षिण और पूर्व में बंगाल से जुटा हुआ हई। खूबी तो यह है कि बंगाल, उत्कल, मध्यप्रान्त या युक्तप्रान्त के जिन हिस्सों से इस झारखंड का सम्बन्ध जुटा है वे सभी इसी तरह पर्वत तथा जंगल मय हैं। फलतः चारों ओर अपने जैसे ही भूभागों से घिरे होने के कारण यह झारखंड अत्यन्त विस्तृत हो जाने के साथ ही दुष्प्रवेश और अगम—no man's land—बन जाता है।

यही कारण है कि यहाँ के निवासियों की अपनी निराली दुनिया मानी जाती थी। जैसे अथाह समुद्र के भीतर के जीव-जंतु अपने आपको सुरक्षित समझते हैं वैसे ही ये लोग अपने को कम सुरक्षित नहीं मानते थे। इनने ठेठ प्रकृति माता की गोद में ही बसेरा समुद्री मच्छ-कंच्छपों की तरह लिया था। इन भयंकर काँटों-कुशों से घिरे, निबिड़ और दुष्प्रवेश प्रदेश में उन्हें सताने के लिए जाने की हिम्मत किसे होती? अगर काँटे-कुशों की परवाह कोई न भी करता तो भी भयानक सिंह-व्याघ्रों और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भालू-भेड़ियों की याद से तो दुश्मनों के देवता ही कूच कर जाते। प्रकृति माता ने अपने इन पुत्रों की रक्षा के लिए अपने हाथों बनाए इस गढ़ के भीषण सन्तरी के रूप में इन खूँखार जानवरों को काफी तादाद में चारों ओर रख छोड़ा था, ताकि उसमें घुसने की हिम्मत करनेवालों से दूर से ही ये चिंघाड़ मार के कह दें, डाँट दें कि खबरदार कौन आ रहा है—who comes there ? इसीलिए तो दिन-रात इनका पहरा पड़ता रहता है।

मगर क्या इतने पर भी इनकी जान बच सकी है? क्या इस अभेद्य दुर्ग के भीतर भी शत्रु लोग घुस नहीं आए? उनने इनकी लूटपाट क्या खूब ही नहीं की? क्या अब भी नहीं कर रहे हैं? इसी का कुछ-कुछ पता तो आगे मिलेगा। इस वर्णन में और तो कुछ है नहीं सिवाय इस लूट के संक्षिप्त वर्णन के। जैसे अथाह और अतल सागर के गर्भ में क्रीड़ा करने वाले जीव-जंतुओं को फँसाने के लिए मनुष्य के दिमाग ने महाजाल तैयार किया है; जिस प्रकार गहरे पानी के बीच रहने वाली मछलियों को फँसाने के लिए बंशी तैयार की गई है, ठीक उसी प्रकार इन झारखंडवासियों को फँसाने और इनका रक्त-माँस वगैरह सभी कुछ चाट जाने के लिए सैकड़ों उपाय चतुर खिलाड़ियों और काइयाँ यारों ने ढूँढ़ निकाले हैं। ऐसे-ऐसे जाल बिछाए गए हैं कि यदि एक से बचे तो दूसरे, नहीं तो तीसरे, चौथे में तो खामख्वाह फँसेगे ही। ज्यादातर तो ऐसा होता है कि एके बाद दीगरे कई जालों में ये बेचारे सीधे-सादे लोग फँसके छट्ट-पट्ट करते और तिलमिला के मरते रहते हैं। खूबी तो यह है कि जितना ही दक्षिण बढ़ते जाइए उतना ही शोषण ज्यादा मिलेगा, हालाँकि उसी तरफ अपार धनराशि है—कोयला है, अबरक है, लोहा है और क्या-क्या नहीं है।

ऐसा क्यों होता है यह जानने के पूर्व इस झारखंड के दक्षिणी या यों कहिए कि दक्षिणी, पूर्वी और पश्चिमी हिस्सों की रचना पर थोड़ा ध्यान देना जरूरी है। इसके लिए नक्शे को देखना होगा। उड़ीसा की रियासतों का जिक्र तो पहले किया ही है। उन रियासतों ने समूचा दक्षिणी हिस्सा तो घेरी लिया है। वह पश्चिमी हिस्से का भी अधिकांश घेरे पड़ी है और मध्यप्रान्त के सरगुजा ने भी कुछ पश्चिमी हिस्से को छेंक लिया है। उत्कल की सरायकेला, करायकेला और खरसवाँ—इन तीनों—रियासतों की तो यहाँ तक हालत है कि सिंहभूम के पेट में घुस गई हैं। या यों कहिए कि इस जिले को ही काट के ये तीनों बनी हैं। सिंहभूम जिले के पूर्वी सब-डिविजन दलभूम (धल या ढलभूम भी कहते हैं) को पश्चिम के सदर या चाईबासा सब-डिविजन के बीच में ही सरायकेला है और उसी से मिली उससे छोटी रियासत खरसवाँ है जो उससे पश्चिम है। इस प्रकार जिले को दो हिस्सों में बेलाग बाँट देने (क्योंकि सिंहभूम में तो दोई सब-डिविजन हैं) के बाद भी सन्तोष नहीं हुआ और चाईबासा के उत्तरी हिस्से को काट के एक नन्ही सी रियासत करायकेला नाम की उसकी छाती पर बिठा दी गई है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इसके बाद दलभूम के दक्षिण पूर्व से बंगाल की सीमा शुरू होती है। जिसका पहला जिला मिदनापुर उसके दक्षिण-पूर्व और पूर्व में है। मानभूम के पूर्व में बांकुड़ा और बर्दवान का कुछ हिस्सा है। संथाल परगने के पूर्व-दक्षिण कुछ हिस्से में बर्दवान और उसके पूर्व वीरभूम, मुर्शिदाबाद और मालदा का कुछ भाग पड़ता है। इस प्रकार समस्त छोटानागपुर का पूर्वी हिस्सा बंगाल के अनेक जिलों से घिरा है। यही कारण है कि छोटानागपुर (झारखंड के पूर्वी) जिले या उनके पूर्वी हिस्से बंगालियों की भूमि जैसे बन गए हैं और उनमें या तो सीधे बंगाली लोग या बंगलाभाषी दूसरे लोग वसते हैं ये हिस्से बिहार की अपेक्षा बंगाल से ज्यादा मिलते और उसी के भाग मालूम पड़ते हैं। वहाँ जो आदिवासी लोग हैं उनकी भाषा भी खिचड़ी-सी हो गई है और उनकी अपनी तथा बंगला भाषा की खिदमत मिदमत के करते अजीब-सी मालूम पड़ती है। उसे अकसर खोरठा बोली भी कहा करते हैं।

अब जहाँ तक सरगुजा या उत्कल की रियासतों का ताल्लुक है, उनमें तो निरंकुश शासन टाँगें तोड़ के वैठ गया है। उनके लिए तो बीसवीं सदी मालूम होता है, आई ही नहीं है। मध्ययुग के अन्धकाराच्छन्न समय से ही वे रियासतें गुजरती हैं जहाँ तक जनता के अधिकारों और लोकशासन का ताल्लुक है। उनके राजे खुद तो मोटर, रेडियो वगैरह सभी अपटुडेट चीजें रखते हैं। मगर जनता को पशु की जिन्दगी बिताने पर ही विवश करते हैं। उत्कल राज्य-परिषद के मंत्री श्री शार्ङ्गधर दास ने जो जाँच कमिटी की रिपोर्ट छपवाई है उसे पढ़के तो पता लगता है कि वहाँ दूसरी ही दुनिया है। जहाँ विवाह-शादी, सभा-सोसाइटी, पंचायत और मृतक जलाने तक पर भी कर लगते हों या सरकारी आज्ञा की जरूरत हो और जहाँ पान वगैरह की बिक्री पर टैक्स लगे हों उन राज्यों की जनता का तो खुदा हाफिज। तीन-चार साल पूर्व उत्कल की कई रियासतों में जो गोली कांड हुआ था और सिंहभूम के पड़ोसी राज्य गांगपुर में ऐसी ही घटना हुई थी उसका चित्र तो हमारी आँखों के सामने ताजा ही है। और जब वही रियासतें न सिर्फ झारखंड को बहुत दूर तक घेरे हुए हैं, बल्कि उसके पेट तक में घुस गई हैं तब यहाँ के लोगों की दशा यदि अत्यन्त पिछड़ी न हो और इनका यदि कोई सच्चा पुर्साहाल न हो तो इसमें आश्चर्य होई क्या सकता है? पड़ोसी का असर तो होना ही चाहिए।

बंगाल से घिरे होने के कारण भी इनकी अजीब दशा इसलिए है कि यहाँ रोज खींच-तान बनी रहती है कि यह बंगाल में रहे या बिहार में। जमदेशदपुर, राँची, पुरूलिया आदि शहरों में तो इसकी धूम बराबर ही रहती है। बदकिस्मती से बिहार में बंगाली-बिहारी झमेला उठ खड़ा हुआ है। उसका सबसे बुरा नतीजा इस झारखंड को ही भोगना पड़ता है। यह साझे का खेत जो ठहरा। बिहार के बाकी जिले तो ऐसे हैं नहीं। मगर यहाँ कुछ ऐसी बात है कि कई लोग इन पर दावेदार हैं। नतीजा यह है कि प्रगति का असली काम हो पाता नहीं। साझे की जमीन तो हमेशा परती

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ही रहा करती है। उसमें उपज कोई हो कैसे? इधर एक तीसरे दावेदार हो गए हैं आदिवासी आन्दोलन वाले मध्यमवर्गीय लोग। जिस प्रकार बंगाली–बिहारी समस्या मध्यमवर्गीय बाबुओं और पढ़े-लिखों की है, ठीक वैसी ही यह भी है। इनने देखा कि हमीं क्यों चूकें जबकि हमारे दो प्रतिद्वन्द्वी आपस में लड़ते हैं तो हम उससे फायदा क्यों न उठा लें। क्योंकि 'जबकि दो मूजियों में हो खटपट। अपने बचने की फिक्र कर झटपट।' इस तरह इस तेहरी लड़ाई–triangular fight–के बीच यह झारखंड पिस रहा है।

25.11.41। झारखंड के संथाल परगना जिले की तो यह हालत है कि वह प्रायः सब ओर से सभ्य कहे जाने वाले लोगों से घिरा है। बंगाल के जिलों के सिवाय बिहार के भागलपुर और मुंगेर ने दूसरी ओर से घेर लिया है। यह ठीक है कि जो भाग भागलपुर और मुंगेर का संथाल परगना या हजारीबाग से मिलता है उसमें बहुत कुछ आदिवासी भी रहते हैं। मगर वे एक तो दूसरों से मिले-जुले हैं। दूसरे सभ्य लोग नजदीक ही तो हैं जो आसानी से सर्वत्र घुस जाते हैं। यही बात बाकी हिस्से की है जो गया, पटना और शाहाबाद आदि जिलों से सटे हुए हैं। उनसे मिला हुआ इन जिलों का हिस्सा पहाड़ी और जंगली जरूर है और उसमें कुछ असभ्य या अर्द्धअसभ्य कहे जाने वाले लोग बसते हैं। मगर सभ्य बाबू लोग भी वहाँ तथा नजदीक में ही पड़े होने के कारण भीतर घुस गए हैं, घुसते जाते और इन भोले-भाले लोगों को हर तरह लूटते हैं। इस प्रकार चारों ओर से उनकी जमीनें और कमाई लुट रही है और वे तबाह हो रहे हैं। इस बात की ज्यादा जानकारी आगे होगी कि लूट के तरीके कौन-कौन से हैं।

मगर इतना तो साफ है कि इन झारखंडवासियों के साथ दूसरे शोषक लोग महाजन, सूदखोर आदि के रूप में मिल के इन्हें तबाह करते आ रहे हैं। यदि इस तरह के सभ्य कहे जाने वाले इलाकों से इनका सम्बन्ध नहीं होता, तो यह दुर्दशा तो हर्गिज नहीं होती, और अगर होती भी तो थोड़ी-थोड़ी, सो भी बहुत धीरे-धीरे। यह विस्तार और तेजी उस तबाही की हर्गिज नहीं होती। पहले तो संथाल परगने के बारे में ही ऐसा खयाल किया जाता था कि सभ्य लोग उसके भीतर घुस के वहाँ के मूल निवासियों को तबाह करते हैं। सरकार का तो कम से कम ऐसा ही कहना है। इसीलिए उस जिले के लिए खासतौर की शासन व्यवस्था बनाई गई बताई जाती है। हो सकता है, हिन्दुओं का एक प्रधान तीर्थ स्थान होने के कारण यह बात वहाँ पहले ज्यादा रही हो और भक्ति के बहाने भगवान को ठगने वाले वहाँ ज्यादा संख्या में पहुँच के इन भोले-भाले लोगों को भी बहुत पहले ठगने लगे हों। मगर अब तो यह बात कमोबेश सभी जिलों में एक ही तरह की पाई जाती है। सर्वत्र जमीनों पर दूसरे लोग काबिज हो गए और होते जा रहे हैं धड़ाधड़। इसलिए कांग्रेसी मंत्रियों के जमाने की जाँच कमिटी की रिपोर्ट के चौथे पृष्ठ में जो बात इस सम्बन्ध में कही

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गई है वह सर्वत्र लागू है। वहाँ लिखा है कि, 'The system was designed and created to meet the needs of an area which contains a large proportion of somewhat primitive aboriginals and semi-aboriginals intermingled in varying proportions with a more advanced population. The problems arising out of this mixture of population are intensified by the fact that, unlike the other large aboriginal tracts in the province, the district is almost surrounded by areas inhabited by more advanced people and suffering from an excessive pressure of population on the soil. This has throughout the last century produced a steady tendency for the surrounding population to encroach upon the land of the aboriginals and to exploit that population.'

'खास ढंग जो की शासन प्रणाली यहाँ बनाई गई वह इस इलाके की जरूरतों को पूरा करने के ही लिए बनी। क्योंकि यहाँ एक खासी तादाद मूल आदिवासियों तथा अर्द्ध-आदिवासियों की है जिसके साथ कहीं कम, कहीं ज्यादा इस तरह प्रगतिशील लोग मिले हुए हैं। इस तरह की खिचड़ी जनसंख्या को लेकर जो समस्याएँ खड़ी हुई हैं वह और भी पेचीदा इसलिए हो गई हैं कि इस प्रान्त के और आदिवासियों के निवास स्थान स्वरूप बड़े हिस्सों के विपरीत यह जिला प्रायः चारों ओर ऐसे इलाकों से घिरा है जहाँ ज्यादा प्रगतिशील और सभ्य लोग बसते हैं और उनकी आबादी घनी होने के कारण जमीन जोतने पर ज्यादा जोर देते हैं। इसी का फल है कि गत समूची शताब्दी में इर्द-गिर्द के लोगों ने यहाँ के आदिवासियों की जमीनों को दबाया है और इनका शोषण करने पर वे ज्यादा झुके हैं।'

यह कहना कि यह बात केवल संथाल परगने के लिए है, बेबुनियाद है। हजारीबाग या मानभूम की जनसंख्या का विश्लेषण करने से पता लग जाता है कि वहाँ भी बहुसंख्य ऐसे लोग पाए जाते हैं जो आदिवासी नहीं हैं और किसी न किसी रूप में वहाँ के मूल निवासियों के शोषक के रूप में ही वहाँ जा बसे हैं। आज भी उनका शोषण अविच्छिन्न रूप से जारी है। अधिकांश जमीनें उनने हथिया ली हैं। पारसनाथ पहाड़ और उसके पास की जमीनों तथा जंगल-झाड़ियों की कहानी यदि आज सुनाई जाए तो सहृदय लोगों के खून के आँसू बह निकलें। जैसे वैद्यनाथ धाम हिन्दुओं का तीर्थस्थान है वैसे ही वह जैनियों का। मगर जीव हिंसा से भागने वाले तथा जीव दया के बड़े हामी कहे जाने वाले जैनी मालदारों ने वहाँ के संथालों तथा दूसरे निवासियों को जितना सताया है, आज भी वे उन्हें जितना सता रहे हैं वह वर्णनातीत है। उनने पहाड़ और पास के जंगल, झरने खरीद लिए हैं और सर्वे में सब पर अपना पूरा कब्जा लिखवा लिया है। भोले-भाले गरीब लोग सर्वे क्या जानने गए? मगर उसी के बल पर कानून की छत्रच्छाया में संथाल लोग पानी, घास, पात,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लकड़ी, जलावन, फल, फूल आदि वहाँ के सभी पदार्थों से बुरी तरह वंचित कर दिए गए हैं। उनकी दुर्दशा ऐसी है कि उनकी खबर लेने वाला कोई दीखता नहीं। यहाँ तक कांग्रेसी मंत्रिमंडल के जमाने में भी उनकी सुनवाई नहीं हो सकी! ऐसे बहुतेरे दृष्टान्त हैं। इसलिए अब संथाल परगने को छोटानागपुर के और जिलों से इस मामले में जुदा बताया जा सकता है नहीं। ऐसा कहना सरासर गलत है। ताता की लूट तो आगे बताएँगे।

एक बात जरूर हुई है कि बंगाली-बिहारी झमेले के चलते और बिहारखंड तथा झारखंड की सीमा पर सर्वत्र पहाड़ी इलाके दूर तक फैले रहने के कारण बिहार से भी आदिवासियों तथा झारखंड के किसानों एवं जनता की जागृति का काम ठीक-ठीक हो नहीं सका है। जब हम खुद गया, पटना, मुंगेर, भागलपुर आदि के दक्षिणी पहाड़ी हिस्सों में ही पूरा काम नहीं कर पाते जिससे और भागों की अपेक्षा वे पिछड़े हुए हैं तो और आगे बढ़ के झारखंडवासियों में जन-जागरण कैसे कर सकते हैं? मेरा तो निजी अनुभव है कि इन दक्षिणी भागों में ज्यादा जा नहीं सका हूँ। कुछ स्थान तो ऐसे हैं जहाँ एक बार भी जाना हो नहीं सका है, हालाँकि ऐसे स्थान इने-गिने ही हैं। इनके दक्षिण जाके आदिवासियों में विशेष काम मैं खुद नहीं कर सका हूँ। गोकि मेरे दौरे प्रायः सर्वत्र हुए हैं। मगर वे तो बहुत ही नाकाफी हैं। उनसे काम करने का रास्ता ही तैयार हो सका है, न कि ज्यादा कुछ। खैर, यह तो एक बात है।

झारखंड की भूमि, जैसा कि कही चुके हैं, जंगल और पर्वत की ही भूमि है। पलामू के कुछ हिस्सों में और हजारीबाग, मानभूम के भी कुछ भाग में समतल जमीन मिलती है। समतल के मानी सिर्फ इतना ही कि पहाड़ों की श्रेणियाँ नहीं मिलती हैं। सिर्फ कहीं-कहीं पहाड़ियाँ खड़ी मिलती हैं। संथाल परगने की भी कुछ ऐसी बात है। फिर भी बिहार की तरह उपजाऊ और समतल भूमि कहीं भी क्यों मिलने लगी? नदी-नाले तो सर्वत्र मिलते ही हैं जो न सिर्फ जमीन को ऊबड़-खाबड़ बना देते हैं, बल्कि उसे धोधा के साथ और प्रायः निर्जीव कर देते हैं। इसीलिए जमीन में पैदावार बहुत ही कम होती है। पलामू की तो यह दशा है कि जमीन बहुत ही रद्दी है। पहाड़ों के बीच की ही जमीनें कुछ अच्छी और पैदावार हैं। पहाड़ी इलाके तो पैदावार के लिहाज से बहुत ही चौपट हैं। फिर चाहे वह झारखंड में हैं, या दूसरी जगह। जिस प्रकार चीन की जमीनें धान की उपज के लिए बहुत ही अच्छी मानी जाती हैं वह बात यहाँ नहीं है। इसलिए यहाँ के किसान बहुत ही गरीब और भूखे हैं।

हजारीबाग और राँची जिले के कुछ हिस्से काफी ऊँचे और ठंडे भी हैं। इसीलिए गवर्नर वगैरह गर्मियों में राँची में रहने और नेतरहाट भी चले जाते हैं। नेतरहाट तो पलामू के महुवाडांड थाने के सिवाने पर ही है। इसीलिए पलामू का वह हिस्सा भी ठंडा है। बिहार की अपेक्षा छोटानागपुर तो ठंडा हई। क्योंकि यह समस्त भूखंड कछुवे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पीठ की तरह ऊँचा है। इसी ठंडक और यहाँ की पिछड़ी दशा ने शोषकों को मौका दिया कि वे इसके भीतर हजार बहानेबाजी से घुस के मूक जनता का वस्त्रमोच करें और उन्हें जिबह करें।

लेकिन यह भूमि देखने के लिए ऊपर से जितनी ही रूखी, नीरस और रद्दी प्रतीत होती है, भीतर से उतनी ही सरस, बहुमूल्य, सरस तथा वांछनीय है। यहीं कोयले का अपार भंडार है। जिसके बिना आज के कल-कारखाने, हमारी रेलें और सारा का सारा शासन यंत्र ही रुक जाए। इस कोयले को काला सोना (Black Gold) कहते हैं और यह अक्षरशः सही है। इस दुनिया का तो सारा कारबार ही आज बन्द हो जाए यदि यह अमूल्य पदार्थ न हो। वर्तमान पूँजीवाद की नींव इसी कोयले, पेट्रोल, लोहे और रबर आदि से ही बनी है। अबरक भी उनमें एक है। इसीलिए इस दृष्टि से इस भूभाग को अमूल्य कह सकते हैं। यह सारे सूबे का प्राण है यह कहना कोई अत्युक्ति नहीं है। संथाल परगना, मानभूम, हजारीबाग और राँची के कुछ भाग में यह बहुतायत से पाया जाता है। कतरास, झरिया की कोयले की खानें तो संसार में प्रसिद्ध हैं।

लोहा भी यहाँ काफी है। ताता का जो जमशेदपुर में बड़ा भारी लोहे का कारखाना है और उसी के साथ जो और भी दर्जनों कारखाने हैं वह आखिर इस झारखंड में ही तो हैं। सिंहभूम जिले के दलभूम सब-डिविजन का ही हेडक्वार्टर जमशेदपुर है। वहाँ लोहे के सिवाय दूसरी चीजें भी तैयार होती हैं। ताँबा और पीतल ये दो चीजें भी उसी सब-डिविजन के जमशेदपुर और घाटशिला के इलाके में तैयार होती हैं। लोहे का यह कारबार तो भारत में सबसे बड़ा है। ऐसा कारखाना और कहीं नहीं है।

अबरक भी यहाँ बहुत है। ज्यादातर हजारीबाग जिले के उत्तरी हिस्से में इसकी खानें जगह-जगह पाई जाती हैं। वह सारी की सारी भूमि अबरक को ही अपने गर्भ में रखे पड़ी है। कोडरमा अबरक का बड़ा सेण्टर माना जाता है। यहाँ से वह देश-विदेश भेजा जाता है। असल में हजारीबाग का गिरिडीह सब-डिविजन इस अबरक के लिए काफी प्रसिद्ध है। उसकी जमीन के भीतर यह अमूल्य पदार्थ बहुतायत से पाया जाता है। उस इलाके में हमने कदम-कदम पर इसकी खानें और कारखाने देखे हैं। अमेरिका आदि देशों के लोगों ने भी यहाँ खानें ले रखी हैं। गिरिडीह में तो कोयले की भी बड़ी भारी खान है।

यह तो हुई ज़मीन के भीतर की बात। मगर जमीन के ऊपर जो साखू वगैरह की लकड़ियों की अपार राशि है वह कम मूल्य की चीज नहीं है। सभी तरह के जंगल यहाँ हैं और तरह-तरह के काष्ठएँ उनमें पाए जाते हैं। आजकल बाँस से कागज बनता है और उन बाँसों की बहुतायत यहीं पर है। पत्थरों का तो पूछिए मत। तरह-तरह के पत्थर यहाँ भरे पड़े हैं। जिस लाख (लाह) की बड़ी कीमत है वह भी तो यहीं पैदा होती है। पलास, कुसुम और बेर इन तीन वृक्षों पर ही खासतौर से यह चीज

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पैदा होती है और ये वृक्ष मानभूम, पलामू, राँची, संथाल परगना आदि सभी जिलों में बहुतायत से पाए जाते हैं। यहाँ लाह की यह उपज काफी है। इसके करते किसानों की कम परेशानी नहीं होती। जमींदार लोग लाह के पेड़ों पर जबर्दस्ती अपना कब्जा किए बैठे हैं। खेत है किसान का। मगर उसी खेत में जो पलास है और जिस पर लाह के कीड़े लगते हैं वह जमींदार का माना जाता है! सिर्फ जबानी ही यह हिसाब नहीं है। सर्वे खतियान में भी दर्ज है! यह बात अक्ल में तो आने की नहीं। मगर कागज में तो आई गई है। फलतः हाकिमों के दिमाग में भी आसानी से आ जाती है। इस कागज के मुकाबले में सोचने की कोई कीमत वे नहीं करते और आँख मूँद के फैसला देते हैं! फिर तो किसान की खुदा ही खैर करे! उसे पूछता कौन है?

26.11.41। इस तरह हमने देखा कि झारखंड की भूमि तो सोना पैदा करती है, अपार सम्पत्ति देती है। इसका अबरक, इसका कोयला, इसका लोहा, इसकी लाह इसकी बहुमूल्य लकड़ियाँ और इसके रंग-बिरंगे पत्थरों के चलते देश-विदेश के लोग करोड़पति बन बैठे हैं, बनते चले जा रहे हैं। तमाम खानें दूसरों के हाथों में हैं। बम्बई से ताता ने असंख्य धन कमाया है—लूटा है। मगर पाँव तले अँधेरा है। खुद इसी इलाके के लोग दरिद्र के दरिद्र हैं। कहते हैं कि महादेव झारखंडी कहलाते हैं, झाड़ों और जंगलों में रहते जो हैं। वे स्वयं तो दरिद्र हैं। मगर सेवकों को कुबेर बनाते हैं। ठीक यही बात इन झारखंडियों की है। खुद दरिद्र हैं। मगर गैरों को मालामाल बना दिया है।

(2)
जनसंख्या, भाषा आदि

इस झारखंड का विस्तार करीब उतना ही है जितना बिहार खंड का। कोई भी नक्शा देख के ही यह बात बता दे सकता है। समूचे बिहार छोटानागपुर का क्षेत्रफल है 70181 वर्गमील, जिसमें बिहार खंड का है 37560 वर्गमील और झारखंड का 32621 वर्गमील। दोनों के विस्तार या क्षेत्रफल में पाँच हजार वर्गमील का भी तो अन्तर है नहीं। इसीलिए हमें यह कहने में क्यों संकोच हो कि दोनों का विस्तार प्रायः समान ही है। जाने क्यों संथाल परगना की जाँच कमिटी ने अपनी रिपोर्ट में कैसे लिख दिया है कि आदिवासियों का इलाका समूचे सूबे के एक-तिहाई से ज्यादा है। ऐसा कहने में तो भारी अन्याय हो जाता है जबकि दोनों ही इलाके करीब-करीब बराबर हैं।

जनसंख्या की हालत यह है कि जहाँ समूचे सूबे के लोगों की तादाद 1931 में 32371000 थी, तहाँ 1941 में बढ़कर 36340000 हो गई है। इसमें झारखंड की संख्या बहुत ही कम है। दोनों का विस्तार बराबर देख के खयाल हो सकता है कि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जनसंख्या भी कमोवेश वैसी ही होगी। मगर यहाँ तो उलटी गंगा बहती है। संथाल परगने को मिलाकर इन कुल छह जिलों की जनसंख्या सिर्फ 9750000 यानी पूरी एक करोड़ भी नहीं है। ढाई लाख की उसमें भी कमी रह जाती है। इसका सीधा मतलब यही है कि सारे सूबे की जनसंख्या की एक-चौथाई से कुछ ही ज्यादा तादाद यहाँ के कुल लोगों की है। इसी में आदिवासी और दूसरे सभी शामिल हैं! इससे स्पष्ट हो जाता है कि यहाँ का जीवन कष्टमय होने के कारण ही ज्यादा लोग यहाँ रह नहीं सके हैं। जहाँ की जमीन पैदावार हो वहाँ खामख्वाह जनसंख्या ज्यादा होती ही है।

बिहार प्रान्त के चार ही जिले ऐसे माने जाते हैं जिनकी जनसंख्या प्रति वर्गमील साढ़े सात सौ से ज्यादा मानी जाती है। ये हैं मुजफ्फरपुर, दरभंगा, सारन और पटना। अब अगर इनके क्षेत्रफल और जनसंख्या को देखें तो यहाँ यह बात यों भी साफ हो जाती है। मुजफ्फरपुर का विस्तार है 3444 वर्गमील और जनसंख्या 3244651; दरभंगा की संख्या 3457070 और क्षेत्रफल 3451 वर्गमील; सारन की संख्या 2860537 और क्षेत्रफल 2613 तथा पटना की संख्या 2162008 और 2079 है। इन जिलों की जमीनों की हालत यह है कि सबसे ज्यादा पैदावार दरभंगा और मुजफ्फरपुर हैं। दरभंगे में तो बागमती और कमला नदियों के चलते बहुत ज्यादा जमीन खराब हो जाती है। यह बात मुजफ्फरपुर में नहीं है। इसीलिए मुजफ्फरपुर की आबादी दरभंगे से भी घनी है जैसा कि संख्याएँ बताती हैं। इन दोनों की अपेक्षा सारन कम पैदावार है। यहाँ ज्यादा जमीन माट या दोरस है और उसकी उत्पादन शक्ति जाती रही है पटने की हालत सारन से शायद कुछ अच्छी है। यहाँ दाल और धान की जमीनें काफी पैदावार हैं और नहरों के करते भी इसमें बहुत कुछ मदद मिलती है। मगर एक बात यह है कि पटना शहर और दानापुर की जनसंख्या बहुत ज्यादा है और ढाई और तीन लाख के बीच है। यदि इसे निकाल दिया जाए तो साफ हो जाता है कि सारन से भी कम पैदावार पटना है। ठीक भी यही है। क्योंकि आमतौर से उत्तर बिहार, जो गंगा से उत्तर है, ज्यादा पैदावार माना जाता है। पटने में नहरें भी बहुत ही थोड़े हिस्से में हैं। चार सब-डिविजनों में केवल दानापुर में ही नहरें हैं। सो भी समूचे में वहाँ भी नहीं हैं।

मगर हमें तो सिर्फ झारखंड के ही जिलों पर अलग-अलग विचार करने से यही बात सिद्ध हो जाती है। इनमें संथाल परगने की आबादी कुल 2234497 और क्षेत्र 5512 वर्गमील है; मानभूम की 2032146 और 4204; हजारीबाग की 1751339 और 7059; राँची की 1675413 और 7099; सिंहभूम की 1144717 तथा 3879 और पलामू की 912734 तथा 4868 है। ये आँकड़े साफ बताते हैं कि कौन जिला कैसा है। पलामू की जमीन सबसे रद्दी है। सिवाय धान की थोड़ी सी जमीनों के बाकी टांड या बारी है और उपज उसमें बहुत ही कम होती है। सर्वे की रिपोर्टों ने यह बात कबूल की है। नतीजा यह है कि उसकी जनसंख्या सबसे कम है—प्रति

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वर्गमील 100 से 200 तक ही है। बाकी बचे पाँच जिले इनमें राँची, हजारीबाग और सिंहभूम इन तीनों की पैदावार प्रायः समान है और जनसंख्या भी 200 के ऊपर से 350 तक ही प्रति वर्गमील है। बाकी दो जिलों—मानभूम और संथाल परगने की हालत यह है कि इनकी जनसंख्या 351 से 500 तक प्रति वर्गमील है। संथाल परगने की जाँच कमिटी ने यही बात अपनी रिपोर्ट में स्वीकार की है। उसने हर जिले की धान और रबी वगैरह की सभी तरह की जमीनों की उपज का मुकाबला करके भी यही बात दिखाई है। यों तो जरा-मरा फर्क रहता ही है इसीलिए संथाल परगना और मानभूम बाकियों (तीनों) से आबादी में कुछ घने हैं।

बेशक बिहार खंड का एक ही जिला है जो इन मानभूम और संथाल परगना नामक दो जिलों जैसी ही आबादी वाला है और वह है शाहाबाद। यदि वहाँ गंगा के दियारे की जमीनें न होतीं तो शायद वह इनसे भी नीचे जा पड़ता और पलामू के ही टक्कर का या उससे बहुत कुछ हिलता-मिलता हो जाता। मगर दियारे की जमीनों के करते और बहुत से हिस्सों में नहरों के हो जाने से—क्योंकि एक भबुआ को छोड़ शेष तीन सब-डिविजनों में नहरें पाई जाती हैं—उसकी पैदावार कुछ अच्छी है। इसीलिए जनसंख्या प्रति वर्गमील 351 से लेकर 500 तक है। उसका कुल क्षेत्रफल 4372 वर्गमील और जनसंख्या 2328581 है।

रह गए बिहार के मुंगेर, भागलपुर, चम्पारन और गया—ये चार जिले। सो तो इनकी दशा प्रायः एक-सी ही हैं। इनकी आबादी समान रूप से प्रति वर्गमील 501 से लेकर 750 तक है। हाँ, पूर्णियाँ भी शाहाबाद जैसा ही है और उसकी जनसंख्या भी 351 से लेकर 500 तक ही वर्गमील के हिसाब से है। पूर्णियाँ में पैदावार है सही। मगर कोसी और दूसरी नदियों के करते उसकी तबाही ऐसी है कि पूरी तरह आबाद होई नहीं सकता। इसीलिए गंगा के दक्षिण सूबे का पश्चिमी जिला शाहाबाद और गंगा के उत्तर पूर्वी जिला—पूर्णियाँ ये दोनों ही जनसंख्या में भी मिल जाते हैं। पूर्णियाँ की आबादी भी 2390105 है। मगर क्षेत्रफल थोड़ा ज्यादा, यानी 5175 वर्गमील है। फिर भी इस मामूली अन्तर के करते प्रति वर्गमील जनसंख्या में कोई महत्त्वपूर्ण अन्तर नहीं आता। दोनों ही समान हैं।

भागलपुर की आबादी कुल 2408879 और क्षेत्रफल 4226 वर्गमील है। मुंगेर की संख्या 2564544 और क्षेत्रफल 4089; चम्पारन की 2397569 और 3422 तथा गया की 2775361 और 4689 है। यों देखने से कुछ-कुछ अन्तर मालूम होता है सही। फिर भी सभी बातें मिलाकर देखने से इनमें एक तरह की समानता है। सरकारी रिपोर्टों ने यही बात मानी है। इन चार जिलों को एक ही साथ जनसंख्या के लिहाज से रखा है। कहीं जमीनें अच्छी हो जाने से आबादी बहुत ज्यादा है तो कहीं बहुत ही कम। इसीलिए सब जगहों की औसत प्रायः मिल जाती है।

इस प्रकार बिहार के सभी जिलों की संक्षिप्त आबादी आदि का मुकाबला करने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

से पता चल जाता है कि गरीबी के पलड़े में झारखंड ही सबसे नीचे है। इसका एक जिला, पलामू तो सबसे ज्यादा गरीब है। और उसके बाद ही स्थान है इसी के हजारीबाग, राँची और सिंहभूम का। केवल इसके दो ही जिले—मानभूम और संथाल परगना ऐसे हैं जो बिहार खंड के सबसे निचले जिलों—शाहाबाद और पूर्णियाँ—से मिलते-जुलते हैं। फलतः बिहार तो इस छोटानागपुर की अपेक्षा हर तरह से सुखी सम्पन्न है। हालाँकि असली सम्पत्ति का केन्द्र स्थान छोटानागपुर ही है। यदि इसे बिहार से जुदा कर दिया तो उसकी मौत ही समझिए। यह ठीक है कि झारखंड की सम्पत्ति ज्यादातर दूसरे ही लूटते हैं। वह तो आज बिहारियों को बहुत ही नाममात्र को मिलती है। मगर समय आने वाला है जब यह बाहरी लूट रुकेगी—जब ताता और दूसरे यह धन लूट के बम्बई, पंजाब, गुजरात या देश के बाहर ले जा न सकेंगे। किन्तु उन्हें अपनी आय का तो बहुत कुछ अंश बिहार को ही देना ही पड़ेगा, या अपना बिस्तर यहाँ से बाँधना होगा। क्योंकि बिना ऐसा हुए बिहार की गरीबी दूर होगी ही नहीं। उस समय यदि कहीं यह झारखंड बिहार से अलग हो गया, जिसके लिए आज सख्त आन्दोलन चालू है, तब तो बिहार की मौत होई जाएगी। लेकिन यदि यह बात हो गई तो बिहार ने आज तक झारखंडियों के प्रति जो उपेक्षा अपने कर्तव्य की की है उसी के फलस्वरूप यह बात होगी। अभी भी समय है कि यह बात होने न पाए। मगर इसके लिए बहुत कुछ करना होगा।

यह तो हुआ यहाँ के जनसंख्या का साधारण दिग्दर्शन। मगर इतने से तो काम चलेगा नहीं, जब तक इसका कुछ विशेष ब्योरा मालूम न हो जाए। गोकि यहाँ की आबादी बिहार के शेष इलाके की आबादी की प्रायः तिहाई है। फिर भी यहाँ के लोग तो एक प्रकार से मूक हैं, गूंगे हैं। इन्हें जबान नहीं कि अपना दुःख-दर्द सुना सकें। आज के तरीके से अपने अभाव अभियोगों के सुनाने तथा अपने दावे पेश करने का माद्दा इनमें हई नहीं। नहीं तो कम होते हुए भी सारे सूबे को अपनी पुकारों तथा हलचलों से गुँजा देते, थर्रा देते। असल में ये इतने पिछड़े हैं, इतने अन्धकार में पड़े हैं कि नए ढंग के प्रदर्शन, नई तरह की मीटिंगें ये खुद कर नहीं सकते—करना जानते ही नहीं। इसीलिए जो मीटिंगें होती हैं, जो प्रदर्शन किए जाते भी हैं उन पर इनके असली अभाव-अभियोगों की दर्द की छाप नहीं होती। वे मीटिंगें किसानों या शोषित-पीड़ितों की चुभती हुई माँगों और बेधती हुई पुकारों को प्रकट कर सकती हैं नहीं, प्रतिबिम्बित कर नहीं सकती हैं। इसीलिए इनकी दृष्टि से उनमें कृत्रिमता ही कृत्रिमता नजर आती है। उनमें इनका दर्द, इनकी चीख पुकार सुनाई नहीं पड़ती है। वहाँ तो मध्यमवर्गीयों के झमेले ही दीखते हैं—वही नौकरियों की बात, वही अलग प्रतिनिधित्व की चर्चा, वही बोर्डो और असेम्बली की सीटों की हाय-तौबा और वही राजभक्ति की उफान!

यदि यहाँ के अधिवासियों में जागृति होगी, वर्गचेतना होगी, अपने अधिकारों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तथा हकों की जानकारी के साथ ही उन्हें निर्भयतापूर्वक सफाई के साथ पेश करने की योग्यता होती और अगर ये लोग अपनी माँगों को प्रभावशाली बनाना जानते तो यह बात नहीं होती। यद्यपि बिहार के भी किसानों की और दूसरे प्रान्त वालों की भी अभी कुछ ऐसी ही हालत है कि वे खुद अपने पाँवों बखूबी खड़े हो सकते नहीं। फिर भी वे बहुत कुछ कर सकते हैं। बहुत आगे बढ़ चुके हैं। मगर यहाँ वाले तो अवनति के गढ़े में ही पड़े हैं। इन्हें जानबूझ कर ऐसे ही रहने देने की कोशिश की गई है, गुटबन्दी हुई है ऐसा मालूम पड़ता है। नहीं तो इन्हें शिक्षित क्यों नहीं बनाया गया? जहाँ इसी झारखंड की रहने वाली प्रगतिशील जातियों की शिक्षा-वृद्धि की भरपूर कोशिश की गई है, तहाँ आदिवासियों के प्रति भयंकर उपेक्षा से काम लिया गया है। इस सम्बन्ध में ज्यादा बातें तो आगे कहेंगे। मगर संथाल परगना की सरकारी जाँच कमिटी की रिपोर्ट का ही एक अंश यहाँ लिख देना जरूरी है। उसके 44 वें पृष्ठ में लिखा है, 'There has been no development of aboriginal schools in recent years; in fact the position is now worse than it was 15 years ago. There is not a single school for the 60,000 Paharias in the Damin Hills. In fifteen years the number of Santal children attending school has risen only from 12020 to 13448. The number of Santal primary schools has actually decreased from 465 to 403. This was largely due to the financial straits of the District Committee during the period of economic depression which affcted all classes of schools. But the salient fact emerges that while between 1922 and 1937 the total number of schools have been reduced by 73,62 of these were Santal schools. In fact, the most of the education retrenchment of the District Committee has been at the cost of the Santals.'

27.11.41। 'इधर कुछ साल के भीतर आदिवासियों के स्कूलों में वृद्धि नहीं हुई है। दरअसल, 15 साल पूर्व की अपेक्षा आज की हालत खराब है। दामिन पहाड़ों के साठ हजार पहड़िया लोगों के लिए तो एक भी स्कूल है नहीं। पन्द्रह साल के भीतर स्कूल जाने वाले संताली लड़कों की तादाद सिर्फ 12020 से 13448 ही हुई है। संथालों के प्राइमरी स्कूलों की संख्या 465 से 403 हो गई है। अर्थसंकट के जमाने में जिला कमिटी—जो डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की जगह थी—की आर्थिक दशा खराब होने से ही अधिकांश यह बात हुई है, जिसका सभी तरह के स्कूलों पर असर हुआ। लेकिन एक बात साफ हो गई है कि 1922 और 1937 के दरम्यान जो कुल 73 स्कूल इस तरह बन्द हुए उनमें 62 तो केवल संतालों के ही थे। असलियत तो यह है कि जिला कमिटी ने जो शिक्षा में कमी की है उसका अधिक हिस्सा संतालों के ही माथे पड़ा है!'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यह कहने से तो काम चलने का नहीं कि अंग्रेजी सरकार और उसकी कमिटी ने ही ऐसा किया है। आखिर अंग्रेजी सरकार को हमेशा यहाँ रहना है नहीं। जल्द या देर से अब जो सरकार इस प्रान्त में बनेगी वह तो बिहारियों की—इसी सूबे वालों की—ही होगी। फलतः नतीजा उसे ही भुगतना होगा। अपने ही शरीर के किसी अंग को रोगी, कमजोर या लकवा-ग्रस्त रहने देने का नतीजा क्या किसी और को भोगना होता है? हमने इन पिछड़े भाइयों की जो खबर अब तक प्रायः नहीं ली है उसी का नतीजा यह है कि एक ओर छोटानागपुर को बंगाल में मिलाने के कोशिश होती है, तो दूसरी ओर अलग प्रान्त बनाने ही की। इन कोशिशों के लिए मसाला आखिर आया है कहाँ से ? अब तक की गई लापरवाही को ही तो सामने रखके भोले-भाले लोगों को समझाया जाता है कि जब तक बिहार के पुछल्ले बने रहोगे कोई न पूछेगा। क्या यह दलील पेश नहीं की जाती है कि सारा खजाना यहीं होने पर तथा विस्तार में बिहार के बराबर रहने पर भी आदिवासियों का एक भी आदमी कांग्रेसी जमाने में मंत्री नहीं बनाया गया? क्या बिहारी लोग बराबर इस बात का विरोध नहीं करते रहे कि बिहार सरकार राँची में कतई जाए ही नहीं? और क्या इसी बात को लेके उनके माथे दोष लगाया नहीं जाता? क्या कांग्रेसी मंत्रियों के समय में एक पार्लिमेंटरी सेक्रेटरी साहब ने, जो छोटानागपुर में ही रहते हैं, राँची में असेम्बली की बैठक का विरोध नहीं किया था?

हाँ, तो हम झारखंड के लोगों की बात कह रहे थे कि ये पिछड़े हैं। इसका एक जो बहुत पक्का सबूत है वह यही है कि यद्यपि ब्राह्मण, क्षत्रिय, बनिया, महाजन, कायस्थ वगैरह आगे बढ़ी जातियों के लोग भी यहाँ लाखों की तादाद में पाए जाते हैं। फिर भी एक करोड़ की जनसंख्या में ऐसे लोग बहुत ही कम हैं। कहें तो कह सकते हैं कि दाल में नमक की तरह हैं। हम इस झमेले में नहीं पड़ते कि आदिवासी कौन है, कौन नहीं। हमें बाल की खाल नहीं खींचनी है और नुक्ताचीनी के लिए बारीकियाँ ढूँढ़नी है। हम तो इतना ही जानते हैं कि जो लोग पिछड़े हुए हैं और अपनी आवाज बिहारियों या बंगालियों की तरह खुद उठा नहीं सकते उनकी संख्या अस्सी फीसदी से कम नहीं है। हमें तो असली किसानों से मतलब है जो छोटानागपुर में पाए जाते हैं। जो लोग आगे बढ़े हुए हैं वे तो बाहर से यहाँ लूटने आए हैं। यदि और लोगों से मिलके वे भी गुजर करते, तो हमें कुछ कहना नहीं था। तब तो इन्हीं जैसे वे भी खामख्वाह न जाते। तब शोषण की बात ही क्यों उठती? कहा जाता है, उराँव लोग रोहतासगढ़ से यहाँ पीछे आए। यह भी माना जाता है कि संथाल परगने में पहले तो पहड़िया लोग ही रहते थे। संथाल तो पहले-पहले 1810 में ही आए। मगर यह तो नहीं कहा जाता है कि ये लोग शोषक बनके आए। चाहे जब जैसे आए गुजर करने के ही लिए आए और हिल-मिल के एक हो गए।

भारत में शक, हूण आदि भी आए, मुसलमान भी पहुँचे और अंग्रेज भी। मगर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शक, हूण और मुसलमान वगैरह यहीं हिल-मिल के रह गए। उन्हें बाहरियों की तरह शोषण करना न था, किन्तु गुजर करना। लेकिन अंग्रेज तो शोषक बन के ही आए। इसीलिए कभी हिले-मिले नहीं। ठीक यही दशा उन सभ्य, शिक्षित और ऊँची कहे जाने वाली जातियों की है जो केवल शोषक बन के ही झारखंड में आईं और बसीं। भले ही अंग्रेजों की तरह उनका बाहर ताल्लुक अब न भी हो। फिर भी उनका शोषण तो अखंड रूप से जारी ही है। बाहर भी विवाह-शादी आदि के जरिए सम्बन्ध सभी का हई। मगर जिनने अपने को यहाँ के आदिवासियों जैसा बना लिया वे शोषक न होके इन्हीं जैसे पिछड़े हुए हैं। ऐसे लोगों में ग्वाले और कुर्मी आदि लोग यहाँ गाय-भैंसें पालने के लिए या खेती करने के ही लिए ये लोग यहाँ आए। मगर यहीं के हो गए। कुर्मी लोगों के बारे में तो और भी बातें कही जाती हैं कि वे बिहारी कुर्मियों से निराले ही हैं। मगर हमें इससे कोई मतलब नहीं। हम यह मानते भी नहीं। चाहे वे यहीं के हैं या बाहर से आए। मगर हर हालत में आदिवासियों से हिल-मिल गए। यही कारण है कि सब मिलाके पिछड़े लोगों की संख्या अस्सी से लेकर नब्बे फीसदी तक हो जाती है।

सरकार ने इस बारे में एक और ही रास्ता निकाला है और आदिवासियों की बात को लेके झगड़ने वाले दोनों दलों को खुश करते हुए अपना काम निकाल लिया है। साथ ही कुछ झमेला भी खड़ा कर दिया है। यहाँ की पिछड़ी जातियों की जमीनें दूसरी जाति के लोग इजारा ले या खरीद न सकें इसके लिए काश्तकारी कानून में कुछ धाराएँ जोड़ी गई हैं। छोटानागपुर काश्तकारी कानून (Chhotanagpur Tenancy Act) की 48, 208 तथा 240 और 242 धाराओं में यह बात पाई जाती है। ये जातियाँ कौन-कौन सी हैं इनकी एक सूची सरकार ने खुद तैयार की है। बिहार के काश्तकारी कानून में भी कुछ ऐसी धाराएँ हैं और कुछ जातियों की सूची वहाँ भी दी गई है। वह सूची आदिवासियों तथा पिछड़ी जातियों की ही कहके बनी है। इनमें आदिवासियों में ये जातियाँ लिखी गई हैं : (1) असुर, (2) बनजारा, (3) बठुड़ी, (4) बेंटकार, (5) विनझिया, (6) बिरहोर, (7) बियाजिया, (8) चेरो, (9) चिक बरैक, (10) गोड़ाबा, (11) घटवार, (12) गोंड, (13) गोड़ाइत, (14) हो, (15) जुआंग, (16) करमाली, (17) खरिया, (18) खरवार, (19) खेतौरी, (20) खोंड, (21) किसान, (22) कोली, (23) कोड़ा, (24) कोड़वा, (25) महली, (26) मलपहड़िया, (27) मुंडा (28) उराँव (29) पढ़िया, (30), संताल, (31) सौरिया पहड़िया, (32) शबर, (33) थारू।

पिछड़ी जातियों की जो तालिका दी गई है वह यों है : (1) चमार, (2) चौपाल, (3) धोबी, (4) दुसाध, (5) डोम, (6) हलालखोर, (7) हारी, (8) कंजर, (9) कुड़रियार, (10) लालबेगी, (11) मोची, (12) मुसहर, (13) नट, (14) पासी, (15) बौरी, (16) भोक्ता, (17) भुइयां, (18) भूमिज, (19) घासी, (20) पान, (21) रजवार, (22) तूड़ी।

बेशक कोइरी, ग्वाला, कुर्मी वगैरह को इसमें नहीं गिनाया है और शायद इन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जातियों के कुछ पढ़े-लिखे लोग इसमें अपनी शान समझते हों कि हम पिछड़ी जातियों के नहीं हैं। शायद उन्हें शर्म भी मालूम होती हो कि पासी, चमार आदि के साथ ही कैसे अपनी जातियों को गिनाएँ। मगर यह तो भूल है। असलियत को छिपाने से क्या लाभ? जब शिक्षा आदि का विचार किया जाए तो आँखें खुल जाती हैं। अगर असेम्बली और बोर्डों की सीटों का सवाल उठे या नौकरियों की बात आए तो वे लोग भी खामख्वाह रिआयतें चाहते और पिछड़ी जाति वाले कहके खास सलूक चाहते हैं। तब इस तरह की बात के लिए गुंजाइश है कहाँ?

इस जनसंख्या के साथ ही उनकी बोली और भाषा का भी प्रश्न आता है। यह तो ठीक ही है कि जो बंगाली और बिहारी यहाँ बस गए हैं उनकी भाषा बंगला और हिन्दी हई। यह ठीक है कि बिहार के विभिन्न जिलों से आकर बसने के कारण मगही और भोजपुरी भाषाएँ वे लोग बोलते और कैथी अक्षरों में चिट्ठी-पत्री वगैरह लिखते हैं। यहाँ की सर्वे खतियान तो कैथी अक्षरों में ही लिखी गई है। इसका साफ मतलब है कि बिहार की छाप झारखंड पर लगा दी गई है। हालाँकि ऐसा करने का हक किसी को भी न था। जो यहाँ के मूल निवासी हैं और जिनका बहुमत है वे कैथी क्या जानने गए? मगर जो मूक हैं, बोल नहीं सकते उनकी परवाह करने जाता है कौन? मुट्ठी-भर पढ़े-लिखों की ही तो परवाह सर्वत्र की जाती है। क्योंकि वे बोलना और तूफान मचाना जानते हैं। जब इसकी याद उन गरीबों को होती है तो उनके कलेजे पर साँप लोट जाता जरूर है। वे कोई बात समझ नहीं पाते और आह मार के रह जाते हैं। इन्हीं कैथी की खतियानों के आधार पर उनके जंगल के सभी हक छिन गए! ये खतियानें वेद, बाइबिल और कुरान से भी बढ़ के प्रामाणिक मानी जाती हैं जहाँ तक जमीन वगैरह के हक का सवाल है! क्या अन्धेर है!

लेकिन उनकी अपनी भाषा और बोली तो कुछ और ही है। संथाल, उराँव और मुंडा अपनी निजी भाषा रखते हैं। यों तो हो लोगों की भी अपनी जुदा भाषा है। फिर भी उराँव और हो की भाषा न जानके भी किसी कदर काम चलाया जा सकता है यदि संथाली और मुंडारी भाषा का ज्ञान हो। उराँव भाषा का या हो भाषा का भी ज्ञान होने पर भी उनसे किसी तरह का काम चल जाता है। ये दोनों भाषाएँ थोड़ी बहुत उनसे मिलती-जुलती है ऐसा कहा जाता है। मगर सच बात तो यह है कि संथाली, मुंडारी, उराँव की और हो लोगों की—ये चारों भाषाएँ अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखती हैं और जब इन भाषाओं के बोलने वाले किसान ठेठ अपनी भाषा में ही परस्पर बातचीत करते हैं तो एक भाषा वाले भी दूसरी वाले की बातें समझ नहीं पाते। यों तो एकाध शब्दों के मेलजोल से हिन्दी या बंगाली भाषा के जानकार भी दस-बीस बातों में शायद एकाध को अन्दाज से समझ लें। मगर किसी प्रकार काम चलाना और बात है और भाषा को समझना दूसरी। जब साधारण लोग एक-दूसरे की भाषा न समझ सकें तो मानना ही होगा कि उनकी भाषाएँ जुदी हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यद्यपि मुंडा और उराँव दोनों को ही कोल शब्द से पुकारा जाता है। तथापि ये दोनों दो जुदी जातियाँ हैं और इन दोनों का परस्पर कोई मेल नहीं है। इसी प्रकार संथाल इन दोनों से ही निराले और हो इन तीनों से जुदे हैं। उनकी भाषाएँ इतनी जुदी हैं और रस्मोरिवाज भी बहुत कुछ ऐसे भिन्न हैं कि ये लोग ज्यादातर जुदे-जुदे अंचलों में पाए जाते हैं। संथालों की ही तरह पहड़िया लोग भी निराले हैं। उनकी भाषा भी भिन्न ही है। वे तो ज्यादातर संथाल परगने के दामिने कोह या दामिन इलाके में, जो खासमहाल या सरकारी जमींदारी है, पाए जाते हैं। गोड्डा, राजमहाल, पाकौड़ और दुमका—इन चार—सब-डिविजनों के जो हिस्से एक-दूसरे से मिल जाते या बीच में पड़ जाते हैं उन्हीं को एक जगह मिला के यह दामिन की सरकारी इलाका है। यह बिलकुल ही पर्वतों की तराई में उन्हीं से घिरा हुआ इलाका है। कोह कहते हैं कि फारसी में पहाड़ को और दामन नाम है उसकी कोख या बगल या तरीका। इसी से दामिने या दामने कोह का मतलब है पहाड़ की तरी या तराई। दामन को ही दामिन कह देते हैं। दामन और कोह के बीच जो 'इ' या 'ए' है उसका अर्थ फारसी में होता है 'का'। इसी से कोह का दामन मतलब लगाते हैं। फारसी में उलटे ही 'का' का सम्बन्ध जुटता है—'दामन' के बजाए 'कोह' से ही 'का' जोड़ते हैं।

संथाल लोग संथाल परगने में तो हई। हजारीबाग के उत्तर-पूर्वी हिस्से में और उसी से मिलते-जुलते मानभूम के भागों में भी ज्यादातर पाए जाते हैं। यों तो प्रायः सारा का सारा हजारीबाग जिला भी संथालों का ही है। पार्श्वनाथ पहाड़ की तली में वही लोग हैं और धनबाद के इलाके में भी। दक्षिणी हजारीबाग के कुछ भाग में कहीं-कहीं और उससे मिले राँची के बहुत बड़े हिस्से में बीच से और पच्छिम में उराँव लोग ज्यादातर पाए जाते हैं। मुंडा लोग रांची के दक्षिण-पश्चिमी हिस्से में ज्यादा हैं और उससे मिले सिंहभूम के भागों में। बाकी सिंहभूम में और खास कर दलभूम सब-डिविजन में हो लोगों की बस्ती अधिक है। पहड़िया लोग तो ज्यादातर दामिन इलाके में ही हैं। पलामू और राँची की सरहदें जहाँ मिलती हैं वहाँ दोनों ही जिले में उराँव लोग ही ज्यादातर हैं और दूसरे भी पाए जाते हैं। पलामू का महुवाडांड़ थाना और राँची के लोहारदागा ये दोनों इलाके जहाँ मिलते हैं वहीं पर 'किसान' कहे जाने वाले भी कुछ लोग पाए जाते हैं। मैंने उनसे महुवाडांड़ में खुद बातें की हैं। पलामू के पश्चिमी, दक्षिणी, पूर्वी, दक्षिणपूर्वी, दक्षिण पश्चिमी भागों में और पूर्वोत्तर तथा पश्चिमोत्तर के भी कुछ अंशों में आदिवासियों की ही आबादी है। हजारीबाग से मिले मानभूम के बहुत हिस्सों में और हजारीबाग में भी कुर्मी लोग ज्यादातर मिलते हैं। यों तो जहाँ-तहाँ सभी जातियाँ एक-दूसरे के सगम स्थान पर हिल-मिल के भी रहती हैं।

एक बात जो सबसे ज्यादा जरूरी लिखने का है वह यह है कि यद्यपि झारखंड के आदिवासी लोग पिछड़े हुए हैं। तथापि इनकी दशा बिहार खंड या दूसरे स्थानों के पिछड़े हुए लोगों जैसी नहीं है। और जगह के ऐसे लोग निरे खेत-मजदूर जैसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ही हैं सिवाय उन जगहों के जहाँ उनकी संख्या ज्यादा है और जमीनें रखते हैं। मगर मुंडा, उरांव वगैरह सबके सब पक्के किसान हैं। ये लोग जन्म से ही पुश्त दर पुश्त से ऐसे ही हैं। इन्हें जमीन से बड़ी मुहब्बत है—वैसी ही जैसी जंगल से। इन दोनों के बिना ये रह नहीं सकते। इनके पास जो काश्तकारी जमीनें हैं उनकी अनेक किस्में इस बात का पक्का सबूत हैं। उनके बारे में आगे लिखा गया है।

इसीलिए 'किसान' नाम की एक जाति ही यहाँ पाई जाती है। झारखंड के सिवाय हमें एक ही जगह और भी 'किसान' जाति मिली है जो युक्त प्रान्त के फर्रुखाबाद में पाई जाती है। संथाल परगना में 'कृशानी' शब्द कुछ इसी अर्थ में बोला भी जाता है। वहाँ भावली या बँटाई की ही तरह की खेती को 'कृशानी' कहते हैं। इसका जिक्र वहाँ की जांच कमिटी की रिपोर्ट में आया है। यही कारण है कि हमने 'झारखंड के निवासी' की जगह इस पुस्तक का नाम भी 'झारखंड के किसान' लिखा है। यहाँ के निवासी तो दूसरे हई नहीं। कुर्मी या ग्वाले लोग भी पक्के किसान ही हैं। यहाँ के आदिवासियों की नाड़ियों में अभी गर्मी भी काफी है। वे हरिजनों की तरह कुचले जा सके हैं नहीं। इसीलिए यदि इनका वर्ग हित के आधार पर संगठन किया जाए तो एक अपूर्व शक्ति ये लोग बन जाएँगे जिसे कोई दबा नहीं सकता। इनकी आजादी भी अभी-अभी छिनी है। इसीलिए इनके खून में उसका अंश शेष है।

(3)
शिक्षा का सवाल

इन लोगों की शिक्षा की बात पहले कुछ कही गई है। मगर उस पर कुछ ज्यादा विचार करना निहायत जरूरी है। वस्तुस्थिति पर पूरा प्रकाश पड़ने के लिए यह आवश्यक है। इसी के साथ यह भी जरूरी है कि बिहार के दूसरे जिलों और बिहार खंड समूचे का भी मुकावला शिक्षा के बारे में इस झारखंड के साथ किया जाए। हम इस सम्बन्ध में और ज्यादा बातें नहीं कह के कांग्रेसी मंत्रियों के जमाने में 1938 में प्रकाशित आँकड़ों को ही पेश करेंगे और उन्हीं के आधार पर विचार करके अपना काम पूरा करेंगे। उन आँकड़ों के ऊपर कुछ कहना जरूरी होगा। नहीं तो असलियत पर पूरा प्रकाश पड़ नहीं सकता।

28.11.41। सबसे पहली बात जो इस सम्बन्ध में कहने की है वह यही कि जहाँ बिहार खंड में कुल मिला के 173 इंग्लिश हाईस्कूल, 630 मिडल स्कूल, 2502 अपर प्राइमरी और 13219 लोअर प्राइमरी स्कूल हैं तहाँ झारखंड में सब मिलाके सिर्फ 40 हाईस्कूल, 167 मिडल स्कूल, 690 अपर और 4344 लोअर प्राइमरी स्कूल है। वहाँ के मिडल स्कूलों और यहाँ के अपर प्राइमरी स्कूलों का तादाद प्रायः बराबर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है। 630 और 690 में कोई ज्यादा फर्क तो है नहीं। यह याद रखना चाहिए कि बिहार की अपेक्षा यहाँ की जनसंख्या आधी से कम और तिहाई से ज्यादा—आधी और तिहाई के बीच में है जैसा कि पहले कहा जा चुका है। मगर सिवा लोअर प्राइमरी स्कूलों के जिनकी संख्या यहाँ-वहाँ से प्रायः एक-तिहाई है, शेष सभी हाई, मिडल या अपर स्कूलों की तादाद यहाँ-वहाँ के मुकाबले में आमतौर से करीब-करीब चौथाई है। हाई स्कूल तो यहाँ चौथाई से भी कम हैं! वहाँ पूरे 173 और यहाँ सिर्फ 40 हैं! यह इतनी साफ बात है कि इस पर ज्यादा टीका टिप्पणी बेकार है।

अब अगर जिलेवार यह बात देखी जाए तो और भी मजेदार है। बिहार का सिर्फ एक ही जिला—चम्पारन ऐसा है जो यहाँ के शिक्षा में सबसे बड़े तीन जिलों—राँची, मानभूम और संथाल परगना—के साथ करीब-करीब टक्कर लेता है। फिर भी बहुत अंशों में कहीं बढ़ा-चढ़ा है। उसके बाद ही पूर्णियाँ का नाम आता है, जो चम्पारन से कहीं अधिक बढ़ा हुआ है। बिहार के ये दो अभागे जिले भी यहाँ के सर्वोन्नत जिलों से बहुत ज्यादा आगे हैं, यही सबसे बड़ी खूबी है। राँची में हाई स्कूल 10, मिडल 44, अपर 146 और लोअर 1094 है; मानभूम में ये क्रमशः 11, 41, 161 और 981 हैं; संथाल परगने में क्रमशः 10, 31, 168 और 947 हैं। खूबी तो यह है कि जहाँ लोअर स्कूल बढ़े हैं वहाँ बाकियों में उसी हिसाब से कमी आ गई है और जहाँ लोअर स्कूल नहीं बढ़े हैं वहाँ बाकी भी प्रायः सभी ज्यादा हैं। रांची के साथ बाकी दो के आँकड़ों को मिलाने से यह बात साफ हो जाती है। मगर जब क्षेत्रफल और जनसंख्या की मिलान करते हैं तब तो कुछ और ही बात दीखने लगती है। रांची की जनसंख्या इन दोनों से कम होने के कारण इनकी अपेक्षा वह प्रगतिशील प्रतीत होता है। क्योंकि विस्तार तो उसका इन दोनों से ज्यादा है। मगर आबादी कम है उसकी प्रगति की बात पर आगे विचार करेंगे।

लेकिन बिहार के उन दोनों जिलों को भी तो जरा देख लें। चम्पारन में हाई स्कूल 10, मिडल 49, अपर 220 और लोअर 866 हैं और पूर्णियाँ में इनकी संख्या क्रमशः 9, 43, 173 और 1136 है। यद्यपि जनसंख्या दोनों की ही बराबर ही है और वह है 23 लाख से कुछी ज्यादा। मगर क्षेत्रफल में बहुत ज्यादा फर्क है। इस दृष्टि से तो चम्पारन से भी गया-गुजरा प्रतीत होता है। क्योंकि चम्पारन से इसका विस्तार ड्योढ़ा होने पर भी यहाँ लोअर को छोड़ सभी तरह के स्कूलों में चम्पारन से कमी है। हाँ, लोअर स्कूल कुछ ज्यादा हैं।

यह तो हुई उन दो पिछड़े जिलों की बात जिन्हें गाँधीजी के अनुयायी होने का सबसे ज्यादा दावा और फख्र होते हुए भी यह नहीं सूझता कि आम लोगों को शिक्षित तो बनाएँ। केवल चर्खा चलाना यदि गाँधी-भक्ति की पहचान है तब तो खुदा हाफिज! अब हमें बिहार के शेष आठ जिलों की भी दशा का सिंहावलोकन कर लेना है। यहाँ दरभंगा जिला सबसे आगे है। उसके बाद गया वगैरह जिले आते हैं। मगर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यह बात केवल लोअर आदि स्कूलों की संख्या की ही दृष्टि से है। यों तो यदि क्षेत्रफल और आबादी का विचार करके स्कूलों की संख्या पर गौर करें तो पटना ही सबसे बढ़ा-चढ़ा है। जनसंख्या और क्षेत्रफल तो पहले ही बता चुके हैं। पटना में हाई स्कूल 26, मिडल 59, अपर 249 और लोअर 1400 हैं; गया में क्रमशः 15, 41, 162 और 1701; शाहाबाद में 17, 58, 249 और 1129; मुंगेर में 17, 77, 244 और 1437; भागलपुर में 18, 53, 270 और 1210; सारन में 25, 88, 238 और 1125; मुजफ्फरपुर में 19, 77, 306 और 1470, दरभंगा में 17, 85, 388 और 1745। यह याद रखना होगा कि चम्पारन में प्राइमरी शिक्षा मुफ्त दी जाती है।

हमें अब और पहलुओं से भी यह बात देखनी है। पहली बात तो यह है कि झारखंड में जो जर्मन, इंग्लिश और रोमन कैथलिक मिशनों के मुख्य अड्डे हैं और एकाध और भी हैं उनने अपने खयाल से बहुत ज्यादा खोल रखे हैं। जर्मन मिशन के प्रायः दो सौ, इंगलिश मिशन के प्रायः डेढ़ सौ और कैथलिक तथा औरों के मिलाके भी करीब सैकड़ों स्कूल यहाँ खुले हैं। इस तरह चार-पाँच सौ स्कूलों का श्रेय तो इन ईसाई मिशनों को ही है। हजारीबाग, राँची, संथाल परगना में इनके अधिक स्कूल हैं। कालिज भी तो जो जहाँ केवल हजारीबाग में एक है वह मिशन का ही है। यही कारण है कि राँची सबसे बढ़ा-चढ़ा है। खूबी तो यह है कि इनने तो इतने ज्यादा स्कूल खोले हैं। मगर जमशेदपुर से ताता और दूसरे पूँजीपति साल में आठ-दस करोड़ के लगभग रुपए ढो ले जाते हैं और उदारता की दम भी खूब ही भरते हैं। मगर उनने एक भी कालिज वहाँ नहीं खोला है। ये लोग आखिर हिन्दुस्तानी किस बात के हैं? उनसे तो ये पादरी, ये मिशन, ये चर्च अच्छे निकले जो यहाँ तब आए जब किसी भी हिन्दू पण्डित या मौलवी की हिम्मत भी न थी कि यहाँ आता। सैकड़ों साल पहले—1845 में—यहाँ आके इनने अपना काम शुरू किया। फलतः ये पादरी, ये मिशन ताता वगैरह से कहीं अच्छे हैं जो यहाँ से कमाते तो एक कौड़ी नहीं। लेकिन शिक्षा, औषधालय आदि में लाखों रुपए हर साल खर्चते हैं। यह ठीक है कि उनका उद्देश्य है ईसाइयों की संख्या बढ़ाना और इस प्रकार साम्राज्यवाद और विदेशी पूँजीवाद को मजबूत करना। मगर ताता और उनके दोस्त लोग भी क्यों नहीं उन्हीं देखा-देखी स्वदेशी पूँजीवाद को मजबूत करते हैं? ये पादरी और मिशन यहाँ के लोगों को ईसाई बनाते हैं सही। मगर उसी के साथ आदमी भी तो बनाते हैं ! हमने तो इन्हें पशु से भी बदतर बना रखा था और इन्हें रखा है। ईसाइयों और मिशनों से हमें इस बात में कोई झगड़ा नहीं है और अगर कोई झगड़ा है तो वह दूसरी ही बात में है जिसका जिक्र आगे करेंगे। यदि हिन्दुओं या औरों को यह बात बुरी लगती है तो अपने कामों के जरिए उन मिशनों से बाजी क्यों नहीं मार ले जाते? सिर्फ धर्म-धर्म चिल्लाने से कोई न सुनेगा। वह जमाना लद गया।

हाँ, यहाँ जो भी शिक्षा है उसका बहुत हिस्सा तो मिशनों के चलते है न कि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बिहारियों या विहार सरकार के चलते। सरकार का क्या यह काम न था कि जमशेदपुर, राँची और हजारीबाग में तो जरूर ही कालिज खोल देती। आज बीसियों साल से यहाँ सरकार के शिक्षा सचिव तो हिन्दुस्तानी ही होते आए हैं। मगर उनने यहाँ के मूक किसानों की आँखें खोलने के लिए क्या किया? कितनी कोशिश उनने की? कितने रुपए खर्चने के लिए सरकार को मजबूर किया। मेम्बर तो ज्यादातर विहारी ही रहे कौंसिलों के। उनने क्या इधर दृष्टि डाली? दृष्टि से मेरा मतलब है उचित और जैसी चाहिए वैसी दृष्टि से। कसम खाने के लिए कुछ कर देने से मेरा मतलब नहीं है।

दूसरी बात यह देखने की है कि जो भी स्कूल यहाँ हैं उनसे कितना लाभ यहाँ के पिछड़े लोगों का होता है—उनमें उनके कितने लड़के पढ़ते हैं, लड़कियों की तो बात ही दूर रहे। यदि झारखंड के मुख्य-मुख्य शहरों और बड़े-बड़े गाँवों का, जहाँ ज्यादातर बाहरी या प्रगतिशील लोग, शोषक लोग ही बसते हैं हिसाब लगाया जाए तो पता चलेगा कि जो भी स्कूल खुले हैं इनसे ज्यादा फायदा—बहुत अधिक लाभ वही लोग उठाते हैं। आदिवासी या दूसरे पिछड़े लोग तो बहुत ही कम पढ़ते हैं। इनमें से यदि ईसाइयों को निकाल दें तो और भी कमी हो जाए। क्योंकि के पढ़ाने का श्रेय तो हमें प्रायः हई नहीं। उन्हें तो मिशन वाले ही पढ़ाते हैं। हमने तो थाने के हिसाब से देखा है कि प्रधान शहरों में ही बहुत ज्यादा स्कूल हैं या बाजारों में। इससे साफ हो जाता है कि आदिवासियों और उनके साथियों के प्रति—यहाँ के असली किसानों के प्रति कितनी लापरवाही शिक्षा के मामले में की जाती है। संथाल परगने के बारे में जो जाँच कमिटी की बात पहले लिखी गई है उससे तो स्पष्ट हो जाता है कि पिछड़े लोगों की शिक्षा पर ही छुरी चला के बाकियों की शिक्षा का यहाँ प्रबन्ध किया जाता है।

सबसे ज्यादा खटकने वाली तो तीसरी बात है जिससे बखूबी पता लग जाता है कि यहाँ के सच्चे किसानों और मूक जनता की शिक्षा पर हम लोग कितना ध्यान देते हैं। हमें यह जानकर आश्चर्य हुआ कि आज तक संथाली, उराँव, मुंडा और हो की भाषाओं के एक भी स्कूल नहीं खोले गए हैं! हिन्दी भाषा जाननेवालों के लिए कलकत्ते और बम्बई में भी स्कूल होने ही चाहिए। नहीं तो तूफान होगा। मुसलमान लोग और नहीं, तो धर्म के नाम पर ही उर्दू के स्कूल खुलवा के ही छोड़ते हैं। बंगालियों का तो पूछिए मत। उनने तो अपना प्रबन्ध सर्वत्र किया ही है। झारखंड में जिन जिलों में उनकी संख्या ज्यादा है वहाँ बंगला पढ़ने-पढ़ाने का प्रबन्ध हई। मानभूम के डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की तरफ से तो बंगला पढ़ाने का ही प्रबन्ध है। अब धनबाद वगैरह में कुछ हिन्दी भाषा-भाषियों की बात ले के हिन्दी के लिए बावेला मचा है। इसी प्रकार हजारीबाग के रामगढ़, गोला, पेटरबार वगैरह इलाकों में भी बंगला पढ़ाई जाती है और जब हजारीबाग का बोर्ड उसकी जगह हिन्दी करना चाहता है तो भी बावेला

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

खड़ा होता है। ठीक ही है। बच्चे-बच्चियों को तो ख़ामख्वाह मातृभाषा में ही शिक्षा देना ठीक है। जो ऐसा नहीं करते वे घोर अन्याय ही नहीं करते, बल्कि चाहते नहीं कि दूसरे भाषा के बोलने वाले उठ सकें ही न। आखिर यहाँ अंग्रेजी के बजाए मातृभाषा को ही माध्यम बना के जो अंग्रेजी की तालीम देने का आन्दोलन बहुत दिनों से चालू है और उसे सफलता भी मिल रही है उसका भी तो यही मतलब है न?

आखिर जब प्रगतिशील और सभ्य कहे जाने वाले लोग अपनी मातृभाषा में बच्चों की शिक्षा के लिए और तो और इस झारखंड में ही कुश्तम कुश्ता कर रहे हैं, जैसा कि बंगाली और हिन्दी के सम्बन्ध के हाल के कोलाहलों और झमेलों से मालूम होता है, तो इन गरीब आदिवासियों ने ही क्या बिगाड़ा है कि इनके बच्चों की या तो शिक्षा का प्रबन्ध हई नहीं, या अगर थोड़ा बहुत है भी तो हिन्दी या बंगला में ही? एक तो ये यों ही पिछड़े हैं। फलतः इनके बच्चे कुछ भी जानते ही नहीं। दूसरे उन्हें वैसी भाषा में पढ़ाना जिससे उन्हें कोई भी संसर्ग जन्म से हुआ ही नहीं, कितनी अँधेर है ! ऐसी शिक्षा तो इनके लिए जहर का ही काम करती है। इसके फलस्वरूप एक तो इनका दिमाग कुन्द हो जाता है। बहुत ज्यादा महनत जो करनी पड़ती है। दूसरे वे अधकचरे बन के रह जाते हैं। वह शिक्षा इनके किसी भी काम की नहीं होती। व्यवहार में तो काम आती नहीं और ज्यादा दूर तक पढ़ने का इन्हें सौभाग्य नहीं कि आगे काम दे सके। इस तरह ये न तो घर के रह जाते और न घाट के।

सोवियत रूस में भारत की सरहद पर ही कई छोटे-छोटे प्रजातन्त्र हैं—बहुत ही नन्हे-नन्हे। उनमें ऐसी जातियाँ हैं जो ताजिक आदि के नाम से प्रसिद्ध हैं। उनके न तो अक्षर थे और न लिखी पुस्तकें उनके पास थीं। मगर आज सोवियत शासन के चलते उनके लिए नई वर्णमाला तैयार हो के उसी में सभी तरह कि किताबें उनकी अपनी भाषा में ही लिखी जा चुकी हैं। उनके स्कूल-कालिजों में वही किताबें पढ़ाई जाती हैं। उनका शासन भी अपनी भाषा में ही चलता है और कारबार भी। सोवियत ने देखा कि इनकी अपनी भाषा का प्रसार हुए बिना न तो ये जिन्दा रह सकते और न आगे बढ़ सकते हैं। इसलिए उसने सबसे पहले यही काम किया। आखिर वह सचमुच ही जनता की—किसानों और मजदूरों की—अपनी सरकार जो ठहरी। अतएव वैसा करती क्यों नहीं?

मगर यहाँ तो हम बेगाने ठहरे और ये झारखंडवासी दूसरे ही हैं। हम तो इन्हें जबर्दस्ती सभ्य बनाने पर तुले बैठे हैं—ठोंक-पीट के वैद्यराज बनाने पर कटिबद्ध हैं। फिर हमें परवाह क्या कि किस भाषा में इनकी पढ़ाई होती है? इनकी तो अपनी भाषा असभ्य है और हमें बनाना है इन्हें सभ्य। इसीलिए हिन्दी, बंगला, अंग्रेजी कोई भी सभ्य भाषा इन्हें पढ़ना ही पड़ेगा! यही है हमारी नीच मनोवृत्ति का गया गुजरा नमूना और इसी के बल पर हम बाबू जयपाल सिंह के आदिवासी आन्दोलन का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मुकाबला करना और छोटानागपुर को अपनी दुम से बाँध रखना चाहते हैं! निश्चय ही यदि बंगला की पढ़ाई न रहती तो न तो मानभूम वगैरह में ही उतने स्कूल होते और न बाकी जिलों में ही हिन्दी के रहने पर उतने मिलते, जितने पाए जाते हैं! तब तो बिहारियों और बंगालियों को यहाँ की शिक्षा में और भी कोई दिलचस्पी रही नहीं जाती! ये इतने भी स्कूल तो सिर्फ इसलिए पाए जाते हैं कि बंगला, हिन्दी और अंग्रेजी ही इनमें पढ़ाई जाती है। अतः हम तो निस्संकोच यही कह सकते हैं यहाँ के असली निवासी किसानों और मूक जनता को पढ़ाने का कोई भी यत्न नहीं किया गया है और जो कुछ किया गया है वह निरी धोखेबाजी है।

अकेले दामिने कोह में केवल पहड़िया हैं पूरे साठ हजार। मगर उनके बच्चों के लिए एक भी स्कूल नहीं है! हम नहीं कहते हैं। यह तो सरकारी कमिटी के सरकारी रिपोर्ट कहती है। खूबी तो यह कि दामिन का इलाका सरकारी जमींदारी है। दूसरा जमींदार वहाँ है नहीं और उसी की यह हालत है! चिराग तले अँधेरा और क्या हो सकता है? रिपोर्ट ने यों तो हिसाब दिखाने के लिए यहाँ तक कह डाला है कि सरकारी जमींदारी या खासमहाल की कुल आय का एक प्रतिशत और पूरे अठारह हजार रुपए सालाना शिक्षा में खर्च होते हैं! मगर किनके लिए? जो खुद भी पढ़ सकते हैं उन्हीं के लिए? यदि नहीं तो जब वही रिपोर्ट खुद कबूल करती है कि दामिन के बाशिन्दे तो 85 फीसदी कोरे आदि और अत्यन्त पिछड़े हैं—'In which is 85 percent aboriginal, which is very primitive.' (page 64). मगर यह हिसाब तो वही मुंशीजी वाला हिसाब है जिसके अनुसार, 'नापे जोखे थाहे। लड़के डूबे काहे?' जरा उसी रिपोर्ट की एक बात और सुनिये जो मजेदार है और जो कही गई है संथालों को ही लक्ष्य करके। मगर वह कमोवेश समस्त छोटानागपुर और संथाल परगने पर ही लागू है। वह यों है—'The first essential for the aboriginals is more education. Until they have advanced in this respect they cannot hope to compete with their Dikku neighbours or improve their own conditions. The percentage of literacy recorded in the district at the last census of 1931 is very low indeed, being only 2.90 against a provincial average of 5.2. The figures for aboriginals are even lower. While the percentage of literacy among Dikkus is 4.72 it was only 0.40 among the aboriginals. The wastage is also abnormal. For, although the educations returns show that an average of over 13,800 Santal children have attended school annually during the last 15 years the census figures show that there were in 1931 only 3490 literate Santals.' (page 44).

'आदिवासियों के लिए सबसे पहली जरूरी चीज है वह है अधिक शिक्षा। जब तक वे इसमें प्रगति नहीं कर लेते, न तो अपनी दशा सुधारने की ही आशा कर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सकते हैं और न अपने पड़ोसी दिक्कू (प्रगतिशील) लोगों से मुकाबला ही कर सकते हैं। 1931 की मर्दुमशुमारी में जिले में पठितों की संख्या बेशक बहुत ही कम यानी केवल 2.9 प्रतिशत बताई गई जबकि समूचे प्रान्त की 5.2 है। लेकिन आदिवासियों के आँकड़े तो और भी नीचे हैं। जहाँ दिक्कुओं में पढ़े-लिखों की संख्या प्रतिशत 4.72 है तहाँ आदिवासियों की सिर्फ .4 यानी ढाई सौ में एक है! बेकार खर्च भी असाधारण है। क्योंकि यद्यपि शिक्षा सम्बन्धी रिपोर्टों के आँकड़ों से पता चलता है. कि गत 15 साल के भीतर औसतन 13800 संताल लड़के हर साल स्कूल में जाते रहे हैं। तथापि 1931 की मनुष्यगणना के अंकों से पता चलता है कि उस साल सिर्फ 3490 संताल ही कमोवेश पढ़े-लिखे थे!'

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, संथाल परगना शिक्षा में झारखंड के और जिलों से पीछे नहीं है। किन्तु उनके मुकाबले का ही है। यदि राँची और मानभूम से कुछ पीछे है, तो सिंहभूम, हजारीबाग और पलामू से कहीं आगे है। इसलिए सब मिला के औसतन उनसे कुछ न कुछ आगे ही माना जा सकता है। उनके बराबर तो हर हालत में ही है। ऐसी दशा में यदि यहाँ आदिवासियों के अक्षर ज्ञान (literacy) की यह हालत है कि पूरे ढाई सौ में से केवल एक ही पढ़ा है—अक्षर कट्टू—अक्षरज्ञ—है तो छोटानागपुर की औसत तो इससे भी गिरी यानी प्रायः तीन सौ में एक ही अक्षर कट्टू मिलेगा! विपरीत इसके विहार की औसत करीब सवा पाँच प्रतिशत बताई गई है। यह तो जमीन आसमान का अन्तर हो जाता है! बिहार की अपेक्षा छोटानागपुर (झारखंड) पढ़ने-लिखने इस हिसाब से पन्द्रहवाँ हिस्सा है—झारखंड से बिहार पन्द्रह गुना बढ़ा है! यह है शिक्षा की असलियत!

पहले जो चौथाई वाला आँकड़ा दिखाया गया था उसकी असलियत का पता अब चल जाता है। हमने तो वहाँ भी कहा था कि प्रगतिशील जातियों को निकाल देने पर आदिवासी किसानों की दशा बहुत पीछे पड़ जाएगी। उसका रहस्य अब मालूम हो गया। हमने जो अभी बिहार को झारखंड से पन्द्रह गुना आगे बताया है वह सूमूचे प्रान्त की बात है। क्योंकि समूचे सूबे की, जिसमें झारखंड भी शामिल है, औसत 5.2 है। मगर अगर सिर्फ बिहार के दस जिलों से ही शेष इन छह का मुकाबला करें और इनमें से भी बढ़ी जातियों को उन दस जिलों में ही शामिल करके केवल आदिवासियों और पिछड़ी जातियों के ही साथ शेष सबों का मिलान करें तो बहुत ज्यादा फर्क हो जाएगा और शेष सबों की अपेक्षा ये लोग पच्चीसवाँ भाग ही पढ़े-लिखे या अक्षर कट्टू सिद्ध होंगे! यह है कठोर और अप्रिय सत्य।

देखने से चौथाई के करीब और असलियत में पच्चीसवाँ हिस्सा! ऐसा क्यों? इसका उत्तर कहा जा चुका है कि और जातियों के साथ मिला देने पर चौथाई प्रतीत होता है। मगर दरअसल इन्हें जो अपनी मातृभाषा में शिक्षा नहीं दी जाती है उसी का यह भयंकर नतीजा है कि स्कूल जा के भी इनके बच्चे कुछ पढ़-लिख नहीं सकते।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उनके माथे पर पहाड़ पड़ जाता है। एक तो अस्वाभाविक चीज में उनका मन नहीं लगता। दूसरे बहुत ज्यादा परिश्रम करने की जरूरत होती है। तीसरे ये खुद पिछड़े हैं और इनमें उसके लिए—पढ़ने के लिए लगन और रुचि पैदा करने की जगह विदेशी—बेगानी—भाषा पढ़ने के लिए इन्हें मजबूर किया जाता है। यही बात संथाल परगने की कमिटी की रिपोर्ट में बेकार खर्च या बरबादी (wastage) कहा है। यह न सिर्फ पैसे की ही बरबादी है, बल्कि उनके देह, दिमाग और सबों के परिश्रम की भी। सारी चीजें बेकार चली जाती हैं और नतीजा होता है निहायत ही हानिकारक। क्योंकि इसका बुरा असर उन बच्चों पर पड़ता है। अफसोस है कि इस मोटी सी बात को हमने आज तक नहीं समझा। रिपोर्ट के लेखकों ने भी, जिनमें बहुतेरे जबावदेह कांग्रेसी हैं, यह बात लिख के भी ठीक समझी नहीं। नतीजा सामने है।

(4)
किसान और जमींदार

मगर किसानों की असली हालत और उसने ताल्लुक रखने वाले काश्तकारी कानून (Tenancy act) को जानने के लिए उसमें क्या दोष-गुण हैं, हमें यहाँ की जमीन के बन्दोबस्त (Land tenure) का जान लेना जरूरी है। शिक्षा वगैरह की कमी तो उसी हालत को और भी बदतर कर देती है। बेशक, यदि किसानों के हक के लिए लड़ने और मर मिटने की माद्दा हो, भाव हो तो शिक्षा उन्हें ऐसा बना देती है कि आसानी से ही जल्द से जल्द अपना हक हासिल कर लेते हैं। और अगर यह माद्दा उनमें न हो तो भी शिक्षा के फलस्वरूप धीरे-धीरे उस ओर बढ़ते हैं। इसीलिए हर हालत में शिक्षा निहायत जरूरी है, उनकी प्रगति की जान (essential) है, जैसा कि कहा गया है। मगर झारखंडी किसान तो बड़े ही बहादुर और जमीन के सच्चे प्रेमी हैं यह बात पहले कही जा चुकी है।

इनके जमीन सम्बन्धी प्रेम और इनकी बहादुरी के बहुत से दृष्टांत पाए जाते हैं। कहा जाता है कि यहाँ के नागवंशी राजे, जिनके हाथ में पहले यहाँ का शासन था, इन्हीं के—यहाँ के मूल निवासियों के ही—वंश के थे। पुरानी पंचायती प्रथा के अनुसार ही इनने उन्हें अपना सरदार और मुखिया चुना, जो समय पाके इनके मालिक बन गए, जैसा कि सामन्तशाही का इतिहास सभी देशों में पाया जाता है और जमींदारी प्रथा की बुनियाद जिससे कायम हुई है। मुगल जमाने तक तो बात ठीक पाई गई बताई जाती है। मगर पीछे दिल्ली दरबार में जाने-आने का सिलसिला खतरनाक साबित हुआ। जब तक इन जंगलों में वे लोग रहे तब तक तो राजसी ठाट-बाट और व्यसन की वैसी बात थी नहीं। मगर वहाँ जाने पर साज-सामान और घोड़े-हाथी वगैरह का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शौक देखा-देखी जरूरी था। ऐयाशी भी सूझी। फिर तो इन सामानों और हाथी-घोड़ों को पहुँचाने वाले लोगों का प्रसार यहाँ होना जरूरी था। पश्चिमी प्रान्तों से सिख, पठान और दूसरे कारबारी पहुँचने लगे और दरबारी सामान वगैरह पहुँचा के माल लूटने लगे। जब सामान के बदले रुपए नहीं मिलते तो गाँव के गाँव ठेके पर दे दिए जाते। इस प्रकार बाहरी जमींदारों का यहाँ पदार्पण हो गया। दूसरे तरीकों से भी कुछ लोग पहुँचे ही थे। दोस्ती और लड़ाई के जरिए भी, जैसा कि पहले होता था, बहुतेरे लोग आ गए। मुगलों की खुशामद और अंग्रेजों की सेवा के बल पर भी 1765 के बाद कुछ लोगों का यहाँ पहुँच जाना जरूरी था। अब तो खरीद-बिक्री के जरिए भी कितने ही आ गए हैं। विवाह-शादी और नाते-रिश्ते के करते भी पहले ही बहुतेरे आए। दुर्भेद्य जंगलों में गढ़ बना के रहने के लिए भी कुछ लोग पहुँची गए।

इस प्रकार जब धीरे-धीरे बाहरी शोषक लोग यहाँ जम के किसानों का दोहन और शोषण करने लगे तो ये घबराए और इनकी आँखें खुलीं कि यह क्या? मारवाड़ी साहूकारों और दूसरे बनिए महाजनों ने भी इन्हें कम नहीं लूटा। इनके खेती से गाढ़ी कमाई जो भी मिलती सब की सब इन जमींदारों, मारवाड़ियों और सूदखोर बनियों के पेट में चली जाती। यहाँ तक कि इनकी इज्जत-आबरू तक पर आ बनती। नए अंग्रेजी कानूनों की शरण लेके इन भोले-भाले किसानों का रक्त चूसा जाता, जमीनें छीनी जातीं और ये गुलाम बना लिये जाते। जेलों में भी बन्द हो जाने की नौबत बार-बार आती थी। इससे ऊबकर छोटानागपुर के किसानों ने 1820 और 1831-32 में तथा उसके बाद भी जानें कितनी बार बगावतें कीं, लूटपाट कीं। 1855 की 30वीं जून से प्रस्थान करके पहले पहल 7वीं जुलाई को वीरभूम में तीस हजार संथालों के दल ने जो पुलिसवालों पर हमले किए और लूटपाट की वह इसी अत्याचार से ऊब जाने के बाद ही हुई। 1889-90 से लेकर फिर जो गड़बड़ी हुई और 1895 में जो वीरसा आन्दोलन राँची जिले में शुरू होके आग की तरह चारों ओर बात की बात में फैल गया उसके भीतर भी यही बात थी। सबसे आखिर में जो 'टानाभगत' आन्दोलन 1914 के यूरोपीय महासमर के शुरू होने पर जारी होके 1921 के असहयोग के समय तक काफी तेज था वह तो साफ ही किसान आन्दोलन था। टाना लोगों का एक जबर्दस्त दल जमींदारों को लगान देने से साफ इनकार करता, जेल जाता, तबाह होता और जमीनें नीलाम करवाता था।

जबकि भारत में रौलटएक्ट और पंजाब के मार्शल लॉ की बातें लेकर तथा खिलाफत के मसले पर भी राजनीतिक आन्दोलन बड़े-बड़े धुरन्धर नेता चालू कर रहे थे। उसी समय झारखंड की भोले-भाले, पर बहादुर किसान अपने ही ढंग से ऐसा जबर्दस्त किसान आन्दोलन और लगान बन्दी तथा कर बन्दी की जबर्दस्त लड़ाई चला रहे थे कि देखते ही बनता था। हमारी असली लड़ाई का रूप तो उनने ही

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

खड़ा किया और सारे मुल्क का प्रदर्शन वे लोग जबान से नहीं, अपने कामों से कर रहे थे। वे तो मूक ठहरे। शिक्षा तो उन्हें दी गई न थी। फिर बोलते क्या बोलने का काम तो देश के दूसरे कोने में नेता लोग करी रहे थे। बोलना ज्यादातर उनका काम था और काम करना इनका। असल में टानाभगतों की वह लगानबन्दी हर्गिज नहीं रुकती, यदि 1921 के आश्विन में गाँधी जी खुद रांची में आके उन्हें अपनी जबान से नहीं रोकते और पीछे कांग्रेस के कार्यकर्ता लोग घूम-घूम के प्रचार नहीं करते कि जमींदार का लगान जरूर दे दो! यह हमारी राजनीति का नमूना और यह है यहाँ के किसानों की लड़ाई का सच्चा रूप। ये सीधे और भोले किसान तो धर्म में साधु-महात्मा में विश्वास करते थे। ये लोग भगत तो कहे जाते ही थे। बस गाँधीजी को महात्मा समझ इनने उनकी आज्ञा मान कर बन्दी बन्द कर दी।

जब इनकी नाकों दम हो जाता है ये सीधे लोग तभी उभड़ते हैं। नहीं तो जहाँ तक हो सकता है जुल्मों को चुपचाप पशु की तरह बर्दाश्त करते जाते हैं। 1820 और 1831-32 के जमाने में ये कैसे सताए गए तब इनने क्या किया इसके बारे में कुछ पंक्तियाँ हम कैप्टन डालटन के शब्दों में लिखते हैं जो उस समय छोटानागपुर के प्रबन्धक थे। वे लिखते हैं कि 'The oppressions of these men (jagirdars) were however borne with courage, but a far worse class of men had obtained a footing in the country about the year 1820, when the late Maharaja Jagarnath Sahi Deo obtained his ancestral gadi on the death of his father in July of that year. These men were Musalmans, Sikhs and some others who came to the country as horse dealers, and shawl and brocade merchants, fetched enormous offers for their goods from the Nagvanshi Chiefs and obtained farms of villages instead of cash, of which latter the Chiefs were always in want. The foreign farmers having but a temporary interest in the villages squeezed as much as possible from the ryots in the shape of rents, abwabs and salami. But this was not all. They proved their yoke to be galling indeed and rendered true the very name thikadar in Chhotanagpur in farms.'

'The Pathans have taken our hoormat and the Sikhs our sisters, our lives are of no value, and being of one caste let us stand fast to each other and commence to plunder, murder and loot,' thus said they.

'जागीरदारों के जुल्मों को तो इन लोगों ने किसी प्रकार हिम्मत करके बर्दाश्त किया। मगर 1820 की जुलाई में अपने पिता के मरने पर भूतपूर्व महाराजा जगरनाथ शाही देव को जब गद्दी मिली उस समय एक दूसरे ही दल के लोगों को इस प्रदेश में जगह मिल गई। ये लोग थे मुसलमान, सिख और कुछ दूसरे जो घोड़ों कारचोबी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की चीजों और शाल-दुशालों के सौदागर थे। इन्हें अपने माल के लिए इन नागवंशी राजाओं से काफी पैसे मिलते थे। मगर पास में पैसे न होने से ये राजे अपने गाँव इन्हें ठीके में दे दिया करते थे। इन बाहरी ठीकेदारों का गाँवों से और क्या स्वार्थ था सिवाय इसके कि थोड़ी ही मुद्दत में ज्यादा से ज्यादा पैसे किसानों से लगान, अबवाब और सलामी के रूप में जबर्दस्ती चूसें? लेकिन इतना ही न था। सचमुच उनने किसानों को सता-सता के अपना ठीकेदार नाम छोटानागपुर में सार्थक कर दिया!' ऊब कर किसानों ने कहा कि 'पठानों ने हमारी इज्जत (हुर्मत) और सिखों ने हमारी बहनें ले लीं। हमारी जिन्दगी अब बेकार है। हम तो एक ही वर्ग (जाति) के हैं। इसीलिए आइए परस्पर एक-दूसरे से खूब मिल जाएँ और लूटमार, कत्ल और डाका शुरू कर दें।'

उनने जो कुछ भी ऊबकर किया यहाँ उसके खंडन-मंडन से हमारा मतलब नहीं है। उनने तो उसका नतीजा खुद भोगा। हमें तो सिर्फ यही दिखाना है कि जब कोई रास्ता यहाँ के किसानों को नहीं सूझता तो हथेली पर जान लेके खड़े हो जाते हैं और लूटमार शुरू करके स्वयं भी तबाह हो जाते हैं। और रास्ता तो अब तक उन्हें मालूम न था। इसीलिए उनने कहा कि हमारा जीना धिक्कार है। यहाँ पर जो उनका यह कहना लिखा है कि हम एक ही जाति या वर्ग के हैं, बड़े ही मार्के का है। इससे पता चलता है कि उनमें वर्गचेतना (class consciousness) बहुत पहले से ही है। यह ठीक है कि वह पुराने ढंग की है और उसे नए साँचे में ढालना होगा। वे संगठन भी बड़ा पक्का करते हैं और लाखों की तादाद में एक ही साथ इसीलिए उठ खड़े होते हैं। यही तो उनका असली बल है। मगर इसका प्रयोग ठीक रास्ते पर तथा उचित नेतृत्व में होना चाहिए। ऐसे समयोपयोगी नेतृत्व का उनमें एकदम अभाव है। इसे पैदा करना हमारा काम है।

इसी प्रकार हण्टर ने जो अपनी किताब *बंगाल की देहातों के इतिहास* (Annuals of Rural Bengal by W.W. Hunter) में संथालों के 1855 वाले विद्रोह के बारे में लिखा है उसकी भी कुछ पंक्तियाँ यहाँ जानकारी के लिए लिख देना जरूरी है। उनसे उन गरीबों की लूट और उन पर होने वाले अत्याचारों का पता चलता है। वहाँ लिखा है कि, 'They cheated the poor Santal in every transaction. The forestor brought his jars of clarified butter for sale, the Hindus measured in vessels for salt, oil, cloth and gunpowder; the Hindu used heavy weights in ascertaining the quantity of grain, light ones in weighing out the articles given in return. If the Santal remonstrated, he was told that salt, being and excisable commodity, had a set of weights and measures peculiar to itself. The fortunes made by trafic in produce were augmented by usury.

'The Hindu dealer gave them a few shillings worth of rice, and

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

seized the land as soon as they had cleared it and sown the crop. Another family, in a fit of hospitality, feasted away their whole harvest, and then opened an account at the grain dealers, who advanced enough to keep them above starvation during the rest of the year. From the moment the peasant touched the borrowed rice, he and his children were the serfs of the corn merchant. No matter what economy the family practised, no matter what effort they made to extricate themselves, stint as they might, toil as they might, the Hindu claimed this whole crop, and carried on a balance to be paid out of the next harvest.

'Year after year Santhals sweated for his oppressor. If the victim threatened to run off into the jungle, the userer instituted a suit in the courts, taking care that the Santhal should know nothing of it till the decree had been obtained and execution taken out. Without the slightest warning, the poor husbandsman's buffaloes, cows and little homestead were sold, not omiting the bronze household vessels which formed the sole heirloom of the family. Even the cheap iron ornaments, outward tokens of female respectability among the Santhals, were torn from the wife's wrists.'

ये बनिए हर बात में संथालों को ठगते थे। जंगली लोग घड़े भर के शुद्ध घी लाते थे और हिन्दू बनिए उसे नमक, तेल, कपड़ा और बारूद तौलने के बर्तनों से (क्योंकि पहले तराजू की जगह बर्तनों से ही तौल होती थी और आज भी संथाल वगैरह ऐसा ही करते हैं) ही तौलते थे। बनिए अपनी चीजों को हलके बाटों से और संथाल किसानों के गल्ले को वजनी बाटों से तोलते थे। यदि संथाल इस पर कुछ हो हल्ला करते तो चट उन्हें कह देते कि नमक पर तो टैक्स लगता है। इसीलिए उसके तौलने के बाट वगैरह और ही हैं। इस प्रकार चीजों की लेन-देन में जो नफा वे कमाते थे उसे सूदखोरी के जरिए और भी बढ़ाते थे।

'हिन्दू बनिए संथालों को कुछी रुपयों के चावल देकर उनकी सारी जमीनों को फौरन हथिया लेते जिन्हें साफ करके उनमें वे फसल बोते थे। कोई घर ऐसा होता कि खिलाने-पिलाने की उमंग में सारी पैदावार खर्च कर देता और उसके बाद गल्ला बेचने वालों से उधार अन्न खर्च के लिए लेता था। ये गल्ले वाले अन्न देकर साल के बाकी दिनों में उन्हें भूखों मरने से बचा लेते थे सही। मगर ज्योंही किसान ने उनसे चावल वगैरह उधार लिया कि वे और उनके बाल बच्चे बनियों के गुलाम बन गए! फिर चाहे कितनी ही किफायत से खर्च करें और बनिए से पिंड छुड़ाने के लिए हजार कोशिश करें, जितनी भी कंजूसी करें और कलेजा फाड़ के मेहनत

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करें। मगर बनिया उनकी सारी फसल का दावीदार बनने के साथ ही आगे के लिए कुछ न कुछ बकाया भी रख छोड़ता था।

'प्रति साल इन जालिमों के लिए संताल खून को पसीना बनाते रहते थे। यदि ऊबकर जंगल में भाग जाना चाहते तो सूदखोर उन पर अदालतों में केस करते थे। मगर यह काम इस चालाकी से किया जाता था कि जब तक डिक्री होके दखल दिहानी जारी न हो जाए तब तक बेचारे संथाल को इसका जरा भी पता चले ही न। फिर तो बिना कहे-सुने ही उस गरीब की भैंसें, गाएँ और घर-बार सभी चीजें नीलाम कर ली जाती थीं, यहाँ तक कि बाप-दादों के वक्त के जो काँसे के बर्तन होते वे भी न बच पाते। गरीब संथाल की औरत की इज्जत की निशानी के रूप में उसकी कलाइयों में लोहे के जेवर होते वे भी जबर्दस्ती छीन लिये जाते थे!''

इसी का नतीजा था वह 1855 के मध्य का संथाल-विद्रोह जिसका जिक्र पहले कर चुके हैं। हजारीबाग वगैरह के बारे में तो पहले ही कह चुके हैं। गत सर्वे की रिपोर्ट में भी उनके बारे में यही लिखा है कि उनने जो विद्रोह किया था वह इन सूदखोरों और जालिमों से ही बचने के लिए। जैसे 1855 में तीस हजार संथालों ने जमा होके यह काम किया। ठीक उसी तरह 1831 में छोटानागपुर वालों ने भी गिरोह बाँध के यही काम किया था। साफ लिखा है कि, 'They unnaturally became excited by the weakening of the authority and thought the occasion opportune for squaring with the oppressive money lenders and others. Several bands of Santals collected for marauding purposes.' 'जैसा कि आमतौर से नहीं होता वैसी गर्मी उनमें आ गई जबकि शासन सूत्र की कमजोरी का उन्हें अन्दाज लगा। उनने सोचा कि यही मौका है कि जालिम बनियों, सूदखोरों और दूसरों से बदला सधा लिया जाए। फलतः गिरोह के गिरोह संथाल लूटपाट वगैरह के लिए जमा हो गए!'

यहाँ तो सरकार की कमजोरी का जिक्र है। मगर संथाल परगने के संथालों के सम्बन्ध में तो लिखा गया है कि वे कलकत्ते जाके लाट साहब को अर्जी देना चाहते थे कि जुल्म होता है और आपकी अदालतें भी हमें सताती हैं। चाहे बात कुछ भी क्यों न हो। मगर जब उनने देखा कि न्याय के नाम पर अंग्रेज, कानून और अदालतें उनका खून कर रही हैं और शोषक मालदारों का ही साथ दे रही हैं तो सरकार के ऊपर उनका गुस्सा जरूरी हो गया। नतीजा यह हुआ कि सरकार को तमाचे लगे और उसने सोचा कि इनके साथ दूसरे ढंग से पेश आना चाहिए। इनकी अपनी रहन-सहन और रीति-रिवाज पर ध्यान देना उसने जरूरी समझा। चाहे वह उनकी यथार्थतः रक्षा भले ही न कर सकी, और उसके लिए यह संभव भी न था। फिर भी उसी तरह की कानूनी व्यवस्था का इन्तजाम उसने करना शुरू कर दिया। एक ओर सभ्यता के शिखर पर बैठी सरकार और दूसरी ओर अवनति के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अतल गर्त में गिरे ये किसान! फिर दोनों का मेल हो तो कैसे? चाहे वह हजार कहे कि हमें इन आदिवासियों की सामाजिक व्यवस्था के ही अनुसार चलना है। फिर भी वह भारत में जिस काम के लिए आई वह तो शोषण की बुनियाद पर चल सकता है। इसीलिए घुमा-फिरा के इनका भी शोषण होई जाता है। फिर भी 1897 के छोटानागपुर टेन्योर्स एक्ट, 1879 के छोटानागपुर लैंडलोर्ड टेनेन्ट प्रोसीजर एक्ट, 1879 के छोटानागपुर कम्यूटेशन एक्ट, 1903, 1905 और 1908 के छोटानागपुर टेनेन्सी एक्ट्स वगैरह के जरिए यहाँ का शासन कुछ दूसरे ही ढंग से चलाया जाने लगा ताकि वैसी लूट न हो सके। इसी तरह 1855, 1859, 1872, 1888 आदि के खास ढंग के नियमों और विधानों के ही अनुसार संथाल परगना का शासन होने लगा। संथाल परगना को सब तरह के साधारण विधानों से बाहर (non-regulation) और छोटानागपुर को पिछड़ा हुआ (backward) इलाका भी तभी से घोषित किया गया जो आज तक यह बात किसी न किसी रूप में मौजूद है। लेकिन किसानों के त्याग और बलिदान ने इतना कर तो दिया। इससे आगे का रास्ता भी साफ हो गया।

किसानों की समय-समय की बेचैनी और उत्तेजना को जानने के साथ ही यहाँ की जमीन की बन्दोबस्ती व्यवस्था कैसी है यह भी जानना जरूरी है। उसमें भी किसानों की काश्तकारी जमीनें कितनी तरह की हैं इसका तो आगे स्वतंत्र वर्णन करेंगे। क्योंकि यहाँ की खास बात है और इससे स्थिति का कुछ खास पता चलता है। यहाँ सिर्फ जमींदारी या जमीन की मलिकाई पर ही प्रकाश डालना है। किसानों की असली लड़ाई तो इसी जमींदारी प्रथा से है। अतएव उसके बारे में एवं तत्संबंधी कानूनों के बारे में जो कुछ आगे कहा जाएगा उसे समझने के लिए यहाँ यह जान लेना है कि यहाँ के प्रधान जमींदार कैसे और कौन-कौन से हैं।

झारखंड के कुल छह जिलों में तीन तरह के जमींदार पाए जाते हैं। बिहार की भी यही हालत है। मगर यहाँ जो कुछ विशेषता है वह यह है कि सरकार यहाँ सबसे बड़ा जमींदार है। दामिने कोह, संथाल परगना की बात तो पहले ही कही जा चुकी है। घने पर्वतों के बीच के बहुत बड़े भूभाग पर, जिसका क्षेत्र समूचे जिले के क्षेत्रफल का प्रायः एक-चौथाई है और करीब डेढ़ हजार वर्गमील में जो फैला है, सरकारी जमींदारी या खासमहाल है जिसे गवर्नमेंट इस्टेट भी कहते हैं। यह सबसे पिछड़ा इलाका है। इसी में साठ हजार पहड़िया लोग बसते हैं। जिनके एक बच्चे के भी पढ़ने का प्रबन्ध खासमहाल ने अब तक नहीं किया है। यह सरकार दूसरे जमींदारों को क्या कहेगी जब खुद जमींदार बन के कुछ नहीं करती। पहड़िया लोगों की खास तकलीफ तो आगे लिखी जाएगी।

सिंहभूम के दलभूम सब-डिविजन का एक बहुत बड़ा भाग भी, जिसे कोल्हान कहते हैं, खासमहाल ही है। उसी सब-डिविजन का प्रधान नगर जमशेदपुर या ताता नगर है। यह कोल्हान भी वैसा ही पिछड़ा हुआ है जैसा कि दामिन का इलाका।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यहाँ के किसान भी प्रधान रूप से वही आदिवासी लोग ही हैं जिन्हें जबान मिली ही नहीं है। और अंग्रेजों की तो हालत यह है कि इनने खुद तूफान खड़ा करके ही अपने लिए स्वराज्य हासिल किया है। इसीलिए ये तो वैसे ही आन्दोलन को समझते हैं और उसके सामने सिर झुकाते हैं। यों तो छोटे-मोटे और भी इलाके खासमहाल के हैं। इन्कम्बर्ड इस्टेट्स एक्ट के अनुसार जाने कितनी ही जमींदारियों का इन्तजाम भी खुद सरकार ही अपने कोर्ट ऑफ वाड्र्स नामक विभाग के जरिए करती है। सरकार की यह दूसरी चीज है।

सरकार की एक तीसरी चीज और है। यहाँ के बहुत से घने जंगल भी ठेठ सरकार के ही हाथ में हैं और उनका इन्तजाम वह खुद करती है। यों तो जमींदारों के भी अपने जंगल हैं जो सुरक्षित (reserved) हैं और जिनके भीतर कोई आदमी या पशु पाँव तक नहीं दे सकते। मगर सरकारी सुरक्षित जंगल (reserved forest) बहुत ज्यादा हैं। इन सुरक्षित जंगलों के करते और तकलीफें तो हईं जिन्हें आगे बताएँगे, मगर इनके पास के किसान और उनके पशु खासकर गर्मियों में पानी के बिना मर जाते हैं। असल में पानी के सोते ऐसे ही जंगलों में होते हैं जो घने, आबाद और सुरक्षित होते हैं। पहाड़ों में कुआँ खोदना भी किसानों के बिसात के बाहर की बात है। जमींदार या सरकार को तो इसकी परवाह होती ही नहीं। अब अगर वे या उनके पशु पानी पीने के लिए रक्षित जंगलों के झरनों पर जाएँ तो कानून के अनुसार फौरन उन पर केस चले। यह तो आम बात है और किसान इसके चलते खून के आँसू रोते रहते हैं। इस पर आगे ज्यादा कहेंगे।

अब रहे गैर-सरकारी जमींदार। वे भी दो तरह के हैं। एक तो घटवार और दूसरे साधारण जमींदार। ये साधारण या आमतौर के जमींदार तो वही हैं जो बिहार में पाए जाते हैं। उनमें और इनमें, जहाँ तक इनका किसानों से ताल्लुक है, कोई बुनियादी फर्क नहीं है। हाँ, इनके खास अधिकार हैं जो गवर्नमेंट से इन्हें प्राप्त हैं, जैसा कि कर्ज में डूबने पर खासतौर से उसकी जाँच वगैरह करके असल कर्ज का पता लगाना और उसके चुकाने के लिए सरकार के द्वारा जमींदारी का प्रबन्ध अपने हाथ में लिया जाना इत्यादि। इसी तरह की कुछ और भी बातें हैं। मगर यह कोई मौलिक या बुनियादी फर्क है नहीं। इस फर्क से किसानों का कोई मतलब भी नहीं है।

मगर घटवार या घटवाल तो निराले ढंग के जमींदार हैं। उन्हें यह जमींदारी तो खास तरह के काम या सेवा के लिए ही दी गई है। इसीलिए अंग्रेजी में 'सर्विस टेन्योर' या 'काम के लिए दी गई जागीर' कहते हैं। जिस प्रकार जमींदार या किसान चौकीदार, नाऊ, पुरोहित आदि को पहले कुछ जमीनें जागीर के रूप में दे देते थे। ठीक उसी तरह की यह चीज है, जागीर है। फर्क इतना ही है कि यह खुद सरकार के द्वारा दी गई है। इसीलिए उसी जागीर की तरह यह भी छिनी जा सकती है यदि घटवाल अपनी ड्यूटी समय पर अदा न करे। यहाँ के डिप्टी कमिश्नरों की जरा भी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नजर बिगड़ी और यह घटवाली गई! झारखंड में घटवार नाम की एक जाति भी है। शायद उस जाति के लोग पहले वही काम करते हों जो पीछे इन घटवारों को दे दिए गए। इसीलिए तो गोड़ाइत नामक एक और भी जाति यहाँ हो गई है। मगर ये जो जमींदार के रूप में घटवाल आज पाए जाते हैं वह दूसरे ही हैं। उनका घटवार जाति से कोई ताल्लुक नहीं है।

30.11.41। यह ठीक है कि वे लोग किसी खास जाति के नहीं हैं ठीक जैसे जमींदारों की कोई एक जाति नहीं है। किन्तु सभी जाति और धर्म के लोग जमींदार हैं। घटवाल भी सभी जाति के हैं।

घाटी का नाम तो अकसर पढ़ा सुना जाता है। पहाड़ों में जहाँ उतार-चढ़ाव ज्यादा होता है और इसीलिए पार करने में दिक्कत होती है उसे ही घाटी कहते हैं। घाट भी उसी का नाम है। पहाड़ी इलाकों में प्रवेश करने और जाने के रास्ते यों तो आमतौर से होते नहीं। जहाँ कहीं नदियों के गुजरने से पहाड़ कटे से मालूम पड़ते हैं वहीं से इधर-उधर आ-जा सकते हैं। आजकल तो डाइनामाइट नाम की बारूद को लगाके तथा और भी वैज्ञानिक ढंगों का प्रयोग करके बड़े से बड़े पहाड़ों को काट के, उड़ा के, फाड़ के उनके बीच से रास्ते बनाए जाते हैं, सुरंगें (tunnels) बनती हैं जिनसे होके रेलें पास करती हैं। मगर पहले तो नदियों के किनारों को पकड़ के ही, या दो पहाड़ों के बीच के भारी चढ़ाव-उतार वाले रास्ते के जरिए ही पहाड़ी प्रदेशों में आना-जाना संभव था। यदि ऐसा न किया जाता तो खूँखार जानवर खा जाते और पहाड़ों के ऊपर चढ़ना गैर-मुमकिन हो जाता। यों भी पहाड़ों पर चढ़ना असंभव ही होता है। इसलिए पहले के जमाने में घाटों या घाटियों के ही जरिए आ जा सकते थे।

इसीलिए राजे महाराजाओं और शासकों को इस बात की जरूरत बनी रहती थी कि इन घाटों की निगरानी की जाए, चौकसी और देखभाल बराबर की जाए, पहरेदारी हो। नहीं तो दुश्मनों या हमला करने वालों का गिरोह जाने किस रास्ते कब भीतर घुस जाए और दखल जमा ले। दिन-रात इन घाटों पर पहरा दिये बिना काम नहीं चल सकता था। दूसरा उपाय था भी नहीं। इसीलिए इस बात की जिम्मेवारी जिन लोगों पर रखी जाती थी वे घटवार या घटवाल कहे जाने लगे। पर्वतीय प्रदेश में घाटों की संख्या के ही हिसाब से कम या ज्यादा घटवाल तैनात किए जाते थे। भागलपुर, मुंगेर या गया जिले के भी दक्षिणी पहाड़ी इलाकों में जमींदार के बजाय घटवार ही रहते थे। आज भी कुछ न कुछ पाए जाते हैं। हालाँकि उनके वह काम अब कहीं भी शायद ही पाए जाते हैं। अब तो इस वैज्ञानिक युग में सभी बातें बदल चुकी हैं।

मगर घटवार लोग यह काम खुद तो करते न थे। वे इसी काम के लिए काफी तादाद में चौकीदार रखते थे। और जैसे आज चौकीदारों के ऊपर दफादार होते हैं उसी तरह पहले भी रखे जाते थे। ताकि चौकीदारों के काम की देखभाल ठिकाने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

से होती रहे। इन्हीं सब कामों और उनके खर्च के लिए जो जमीनें घटवारों को दी जाती थीं उन्हें घटवारी या घटवाली कहते हैं। उन्हें इन जमीनों के लिए सरकार को माल या मालगुजारी बहुत ही कम देनी होती थी। एक तो बंगाल और बिहार के जमींदारों की मालगुजारी यों ही कम ठहरी। तिस पर भी तुर्रा यह कि घटवाली जमीनों पर और भी कम लगती थी। यह मालगुजारी घटती-बढ़ती भी न थी। जहाँ कहीं इस्तमरारी बन्दोबस्त नहीं है वहाँ तो मालगुजारी घटती-बढ़ती है और इस सूबे में भी कहीं-कहीं ऐसा पाया जाता है। मगर जब यह इस्तमरारी बन्दोबस्त न था तब भी घटवाली जमीनें इस्तमरारी ही थीं। संथाल परगने की जाँच की रिपोर्ट में घटवालों के बारे में यों लिखा है–

'In consideration of their preforming certain duties in support of the police the ghatwals were granted a special status and protcetion. Their tenures were assessed to a low rent fixed in perpetuity and were declared inalienable and impartible. The ghatwals were precluded from granting any lease or creating any charge upon their estates beyond the term of their own life, except in case of leases for mining, irrigation or building, for which the commissioner's consent is required, and for reclamation. The net result is that when a ghatwal dies, his debts are simulataneously extinguished' (page 61).

'पुलिस की मदद के लिए कुछ खास ढंग के कामों के करने के कारण ही घटवालों को विशेष स्थान दिया गया है और उनकी रक्षा का भी खास प्रबन्ध है। उन्हें दी गई जमीनों पर बहुत ही कम लगान या माल देना पड़ता है जो घटता-बढ़ता नहीं। वे जमीनें न तो बिक सकती हैं और न उनका बँटवारा किया जा सकता है। जैसा कि मुश्तरका खानदान में जुदाई होने पर और जमीनों का होता है। घटवालों को अधिकार नहीं है कि अपनी जमीनें आमतौर से पट्टे पर दे दें। वे किसी तरह का ऐसा खर्च या कर्ज भी उन जमीनों पर ले नहीं सकते जो उनकी मौत के बाद कायम रह जाए। हाँ, खानों, सिंचाई के कामों और मकानों के ही लिए पट्टे पर जमीनें दे सकते हैं। मगर इसमें भी कमिश्नर की मंजूरी जरूरी होती है। जंगल, परती आदि गैर-आबाद जमीनों को आबाद करने के लिए पट्टा जरूर दे सकते हैं। इन सब बन्धनों का सम्मिलित परिणाम यह है कि ज्यों ही कोई घटवाल मरा कि उसका कर्ज भी अपने आप खत्म हो गया।'

आगे चलके 62वें पृष्ठ में यह भी लिखा है कि 'The ghatwals are charged with the maintenance of chaukidars in their estates and on failure to meet these obligations are liable to the dismissal.' 'घटवालों को अपनी जमींदारी में चौकीदारों को रखना और तनख्वाह देना पड़ता है और ऐसा न करने पर उनकी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

घटवाली छीन ली जा सकती है।' इसका सीधा अर्थ यही है कि अब पुराने ढंग से न तो उन्हें घाटों की रक्षा करनी पड़ती है और न चौकीदार वगैरह रखने पड़ते हैं। अब तो सिर्फ यही होता है कि जिस घटवाल की जमींदारी के मौजों में जितने चौकीदार हों उनके वेतन के लिए उन गाँव वालों से चौकीदारी टैक्स नहीं वसूला जाकर घटवालों को ही अपने पास से वह वेतन चुकाना पड़ता है। मगर एक बात जरूर हो गई है कि बिहार प्रान्त के सभी पहाड़ी इलाकों में घटवाल या जमींदार जगह-जगह रास्तों के नाकों पर अपने खास नौकर या चौकीदार रखते हैं। ये पुलिस वाले चौकीदार नहीं होके घटवालों और जमींदारों के निजी नौकर होते हैं। इनका काम यही होता है कि गरीब लोग जब पास के जंगलों में लकड़ी काटने जाते हैं तो उनसे पैसे वसूला करते हैं। इन्हीं पैसों या टैक्सों को अब घाट कहने लगे हैं। हमने यह दृश्य खुद देखा है। जंगली इलाकों के किसानों और गरीबों को अपने घरेलू काम के लिए और अकसर बेचकर जीविका करने के लिए भी जंगल से प्रतिदिन लकड़ी, पत्ता, घास, बाँस, फल, फूल वगैरह लेना जरूरी होता है। मगर जब तक घाटवाला टैक्स पहले ही चुकता न कर लें जंगलों में घुसने वे पाते ही नहीं। यह अत्याचार बहुत ही बढ़ा-चढ़ा है। छोटानागपुर के बाहर भी मुंगेर आदि जिलों के पहाड़ी इलाकों के किसान इससे तबाह हैं।

खासमहाल और घटवालों के अलावा तीसरे ढंग के जमींदार तो यहाँ वैसे ही हैं जैसे बिहार खंड में। इनमें कोई बुनियादी फर्क नहीं है जैसा कि कही चुके हैं। इन छहों जिलों में तो यों छोटे-मोटे जमींदार और घटवाल बहुतेरे हैं। मगर बड़े-बड़ों की संख्या बहुत ज्यादा नहीं है। हम जानकारी के लिए यहाँ कुछ प्रमुख लोगों को ही गिना देना चाहते हैं। मगर ऐसा करने के पूर्व हजारीबाग के 1917 के गजेटियर की एक बात लिखना जरूरी समझते हैं। उसके लेखक हैं ई. लिस्टर, सी.आई.ई., आई. सी.एस.। उसके 165 पृष्ठ में जमींदारों के बारे में जो कुछ लिखा गया है उससे साफ है कि उन्हें बहुत ही नाममात्र के लिए सरकार को माल देना पड़ता है। वे लोग खूब मजा मारते हैं। वहाँ लिखा है—'The demand of Rs. 47620 (due in respect of seventy permanently held estates) represents about seven rupees a square mile, and the cash rent alone which landlords receive are twelve lakhs, on which sum the government revenue is less than four percent over and above the cash rent. The landlords have extensive areas in their own cultivation and also collect a considerable produce rent.'

'इस्तमरारी बन्दोबस्त (परमानेण्ट सेटलमेण्ट) वाली सत्तर जमींदारियों से जो कुल 47620 रुपए सरकारी मालगुजारी में मिलते हैं वह प्रति वर्गमील सात रुपए के हिसाब से पड़ते हैं। मगर उनके बदले जमींदार लोग जो सिर्फ नगद लगान किसानों से वसूल करते हैं वह बारह लाख रुपया है। इसके मानी हैं यह कि नगद लगान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के 4 प्रतिशत से भी कम वे लोग सरकार को देते हैं! इसके सिवाय उनकी अपनी खेती की भी बहुत ज्यादा जमीनें हैं और बँटाई या भावली लगान भी काफी वसूल करते हैं।'

यह तो लूट है। घटवालों को कम माल देना पड़ता है सही। मगर झारखंडी जमींदारों की तो देखिए। यह कोई हजारीबाग जिले की खास बात थोड़े ही है। यही दशा सभी जिलों में है। किसानों से जो नगद वसूली करते हैं उसका चार सैकड़ा भी सरकार को नहीं देते! बँटाई, भावली, जंगल की आमदनी और कोयला, अबरक वगैरह की आय की तो बात ही जाने दीजिए। उसका तो हिसाब ही नहीं कि कितनी हैं। जिरात, कामत और बकाश्त के नाम पर भी बहुत ज्यादा जमीनें पड़ी हैं। सलामी और नजराना का कुछ कहना ही नहीं। अनेक अबवाब और सूद, तावान वगैरह जुदे ही ठहरे। यह लूट नहीं है, तो है क्या? फिर भी जब किसानों की ओर से कोई भी दावा पेश हो तो न सिर्फ जमींदार और घटवाल, बल्कि उनके दोस्त, दलाल और सरकारी आदमी भी हाय-तौबा मचाने लगते हैं, जिससे पता चलता है कि जमींदार मरे जा रहे हैं!

अच्छा तो अब कुछ प्रमुख जमींदारों को हर जिले के हिसाब से गिना के आगे बढ़ेंगे। संथाल परगने में ये हैं (1) पत्संडा इस्टेट (2) मनिहारी इस्टेट (3) बलबड्डा इस्टेट (4) महेशपुर इस्टेट (5) बभनगाँवा की घटवाली इस्टेट वगैरह। हजारीबाग में, (1) सतगांवा (चन्द्रधारी सिंह) इस्टेट (2) गरवां (नाबालिग) इस्टेट (3) दोरंडा इस्टेट (4) पालगंज इस्टेट (5) कुंदा इस्टेट (6) पद्मा इस्टेट (7) धनवार इस्टेट वगैरह। राँची में, (1) पालकोट (2) रातू (3) मसमानो ठाकुर गाँव (4) बिड़ला ब्रदर्स की चौरासी गाँव की जमींदारी (5) कैरोगढ़ वगैरह। मानभूम में (1) पंचकोट (2) बराह बाजार (3) ईचागढ़ (4) पाटकुम (5) बेगम कुदार (6) झालदा (7) मऊवाजर (8) कतरास (9) झरिया वगैरह। सिंहभूम में, (1) दलभूम इस्टेट (2) बन्दगाँव (3) सरंडा (4) आनंदपुर (5) चैनपुर (6) केवा (7) ताता (जमशेदपुर) वगैरह। पलामू में, (1) रांका (2) चैनपुर (3) लादी (4) पथरा (5) सोनपुरा (6) नावा (7) विश्रामपुर (8) टोरी (9) लटेहार (10) हामी (11) नवाडीह (12) पांकी (13) वालूमठ (14) कोसियारा (15) नगर उटारी (16) पाटन (17) हरिहरगंज वगैरह और भी अनेक बड़े जमींदार हैं।

(5)
किसानों की जमीनें और उनकी तकलीफें

हमें आगे बढ़ने के पहले यहाँ के किसानों की जमीनें कितनी तरह की हैं यह बात

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भी जान लेना जरूरी है। झारखंड के किसानों की यह खास बात है। यों तो बिहार के किसानों की जमीनें कई तरह की होती हैं और वे झारखंड में भी पाई जाती हैं। मगर उनके अलावा कुछ खास ढंग की भी काश्तकारी जमीनें हैं और यही हैं यहाँ के किसानों के प्राण स्वरूप। बेशक जमींदारों की जिरात जमीनों के बारे में भी बिहार की अपेक्षा यहाँ कुछ विशेषता है। इसलिए उसे भी जान लेना जरूरी है। मगर यह बात पीछे कही जाएगी। अभी तो काश्तकारी जमीनों की खास बातों पर ही पहले विचार कर लेना है।

बिहार तथा छोटानागपुर के काश्तकारी कानूनों की चौथी धारा में किसानों (tenants) की कई किस्में बताई गई हैं। दोनों कानूनों की चौथी ही धारा में यह बात लिखी है। कुछ किस्में तो दोनों में एक ही हैं। टेन्योर होल्डर या अन्डर टेन्योर होल्डर दोनों ही में आते हैं। टेन्योर होल्डर कहते हैं जमींदार के ठेकेदार को जो आमतौर से लगान की वसूली के लिए जमीन पर किसानों को आबाद करता है। साधारणतः वह खेती नहीं करता। किन्तु लगान किसानों से लेके जमींदार का हिस्से देता है और बाकी खुद लेता है। वह गैर-आबाद जमीन को भी वहाँ किसान बसा के आबाद करवाने का ठेका लेता है। उस ठेकेदार से जो फिर वैसा ही ठेका ले वही मातहत ठेकेदार या अण्डर टेन्योर होल्डर कहा जाता है। मगर जो आदमी किसी से भी जमीन लेता है आमतौर से सिर्फ खेती करने के लिए वही रैयत कहा जाता है। जो उसके मातहत होगा वह अण्डर रैयत या शिकमी कहा जाता है। इस तरह टेन्योर होल्डर और रैयत में अन्तर है। मगर टेनेन्ट (किसान) तो सभी हैं। इस तरह दोनों कानूनों में ये चार तरह के किसान बताए गए हैं।

इसी तरह दोनों ही में कायमी (occupancy) और गैर-कायमी (non-occupancy) किसान भी कहे गए हैं। कायमी किसान की जमीन अपनी मानी जाती है और उसे बिहार में अपनी जमीन पर पेड़, बाँस वगैरह लगाने, ईंट, खपड़ा बनाने और कुआँ, तालाब खोदने का हक प्राप्त है। उस पर वह अपने घर-गिरस्ती के लिए पक्के मकान भी बनवा सकता है। इसी प्रकार बिना काश्तकारी कानून की शर्तें तोड़े या बाकी लगान की डिक्री में नीलाम कराए वह जमीन से बेदखल भी नहीं किया जा सकता है। मगर गैर-कायमी किसान को ये कोई भी हक प्राप्त नहीं है। उसका लगान भी आसानी से बढ़ाया जा सकता है। मगर कायमी का लगान बढ़ाना कठिन है—दिक्कत से होता है। यह ठीक है कि झारखंड के कायमी किसान को मकान वगैरह बनाने का हक नहीं प्राप्त है और यह भारी अन्याय है। वह बाग भी लगा नहीं सकता और न ईंट, खपड़े बना सकता है। फिर भी ये दोनों ही किस्म के किसान भी दोनों जगह हैं।

इसके बाद फर्क चलता है। बिहार में पूर्वोक्त छह तरह के किसानों के अलावे एक सातवें प्रकार का किसान है जिसे 'फिक्स्ड रेट' (Fixed rate) या गुजश्तेदार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

किसान कहते हैं। उसका लगान इस्तमरारी होता है, जो न कभी बढ़ता है और न घटता है। मगर झारखंड के छोटानागपुर के पाँच जिलों में इस्तमरारी किसान की जगह कई और तरह के किसान पाए जाते हैं। वे तीन तरह के हैं (1) भुंइहर या भुंइहरी जमीन वाले (2) खुंटकट्टीदार या खुटकट्टी जमीन वाले, और (3) मुंडारी खुटकट्टीदार या मुंडारी खुटकट्टी जमीन वाले। इन तीनों का लगान आमतौर से घटता-बढ़ता नहीं है। मगर इनमें कुछ-कुछ खास बातें हैं। इसीलिए ये तीनों ही जुदा जुदा हैं। इसीलिए इनकी ये इस्तमरारी जमीनें भी भुंइहरी, खुटकट्टी और मुंडारी खुटकट्टी के नाम से क्रमशः विख्यात हैं। इस्तमरारी जमीनों में और खुटकट्टी में जो थोड़ा अन्तर है वह आगे मालूम हो जाएगा। झारखंड में एक तरह के और भी किसान होते हैं जो गाँव के मुखिया या जेठ रैयत की किस्म के होते हैं और जिन्हें प्रधान, मांझी और मानकी कहते हैं। कहीं-कहीं ठेकेदार और इजारदार के नाम से भी वे लोग पुकारे जाते हैं। प्रधान तो संथाल परगना, हजारीबाग, राँची में और मांझी हजारीबाग, मानभूम में तथा मानकी मानभूम और सिंहभूम में आमतौर से पाए जाते हैं। यों तो इधर-उधर भी मिल सकते हैं।

कहते हैं कि जंगलों में पहले पहल जो किसान आए उनने जगह-जगह खेती वगैरह के लिए जमीनें चुन लीं, ठीक कर लीं और आवाद कर लीं। वही भुंइहर कहाए। यह झारखंड का खास शब्द है। और जगह यह शब्द बोला नहीं जाता। यह भी कहा जाता है कि यहाँ पहले मुंडा लोग आए और उनके पीछे आए उराँव लोग। इसलिए मुंडा लोगों की पहले ठीक की हुई जमीनें जब उराँव लोगों ने हथिया लीं तो वे बेचारे दूसरी फिक्र में लगे और उनने अपने लिए पीछे जंगल काट के जो जमीनें तैयार कीं वह मुंडारी खुटकट्टी के नाम से विख्यात हुई और उनकी पहली जमीनें भुइंहरी कही गई। चाहे जो भी बात हो—या तो यहाँ मुंडा लोगों के साथ ही साथ रहने वाले उरांव लोगों ने जो जमीनें हथियाई वही भुंइहरी हुईं और मुंडावाली मुंडारी खुटकट्टी या मुंडा लोगों से ही छिनी जमीनें भुंइहरी हुईं और उनने पीछे अपने लिए मुंडारी खुटकट्टी तैयार की—हर हालत में ये दो तरह की जमीनें पहले बनी थीं। यह ठीक है कि भुंइहरी जमीनें आमतौर से उराँव लोगों के पास ही हैं।

एक तीसरी जमीन भी है जिसे खुटकट्टी कहते हैं। वह मुंडारी खुटकट्टी से जुदी है। यहाँ के काश्तकारी कानून के अनुसार जिस किसी गाँव के बसाने वालों ने खूंटी या जंगल कांट के जमीनें शुरू में आवाद कीं वही तो खुटकुट्टी के नाम से प्रसिद्ध हुईं। मगर चाहे गाँव बसाने वाले रहे हों या न रहे हों, फिर भी मुंडा लोगों ने जंगलों को काट के जिन्हें बसाया वही मुंडारी खुटकट्टी कही गई। इस तरह खुटकट्टी जमीनें भी आमतौर से सिर्फ उराँव लोगों के ही हाथ में हैं। यहाँ भुंइहरी जमीन को भुंइहरी पत्थरगड़ी खुटकट्टी को खुटकट्टी पत्थरगड़ी तथा मुंडारी को भी मुंडारी पत्थरगड़ी सिर्फ इसलिए कहते हैं कि जब पहले-पहले 1869 में या उसके आसपास

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यहाँ सर्वे हुआ तो इन जमीनों की चौहद्दी में पत्थर गाड़ के इन्हें जुदा-जुदा कर दिया गया। नहीं तो पीछे चल के झमेला और गड़बड़ी हो सकती थी।

पहले जमाने में किसानों की जमीनें और भी दो प्रकार की थीं, जो मालूम होता है, पीछे छिन गईं। ये थीं मझिहस और बेठखेता। मझिहस का अर्थ है माझी का अंश, भाग या हिस्सा और माझी कहते हैं मुखिया को। इस तरह यह नाम बताता है कि जैसे आज प्रधान, मानकी या माझी वगैरह की खास जमीनें हैं तैसे बहुत पहले भी थीं। मगर जमींदारों ने पीछे छीन के उन्हें अपनी जिरात जमीन बना लीं। इसी तरह बेठखेता का अर्थ है बेगार के लिए दिया गया खेत। बेठ कहते हैं, बेगार को। मालूम होता है, पहले जिन लोगों से खासतौर से जमींदार लोग बेगार करवाते थे, जैसा कि संथाल परगने के दामिन इलाके में अभी तक सड़क वगैरह बनाने में आमतौर से सभी ग्रामवासियों से बेगार कराई जाती है, उन्हें कुछ जमीनें इसलिए देते थे। दामिन में रोडसेस के बदले यह बेगार करवाई जाती है जिसे जाँच कमिटी ने बन्द करने को कहा है। वही जमीनें बेठखेता कही जाती हैं। मगर अब ये दोनों ही—मझिहस और बेठखेता—जमींदार की खास या जिरात जमीन में गिनी जाती हैं। यह बात छोटानागपुर के काश्तकारी कानून की 118(ब) धारा में लिखी है। उसी कानून की 124वीं धारा में यह भी लिखा है कि जिस मौजे में बेठखेता या मझिहस जमीन 1869 के सर्वे में दर्ज है वहाँ उसके अलावे दूसरी जमीन जमींदार की खास, जिरात या कामत मानी नहीं जा सकती है। फलतः मझिहस और बेठखेता का ताल्लुक तो अब किसानों से रहा नहीं।

किसानों की और भी जमीनें हैं और वे हैं सबसे महत्त्वपूर्ण। मगर उनका विचार करने के पहले इन पूर्वोक्त तीन खास तरह की जमीनों की कुछ जरूरी खूबियों को भी जान लेना चाहिए। सबसे पहले भुंइहरी को लीजिए। यह ठीक है कि ये जमीनें पहले बनी थीं। अब तो वे घटती-बढ़ती हैं नहीं। ज्यों की त्यों रहती हैं। इसीलिए भुंइहरी भी एक निश्चित परिमाण में ही है। उसका लगान भी बहुत कम होता है। हमें तो यह भी कहा गया है कि प्रायः चार आने बीघे से ज्यादा नहीं होता। लेकिन इस जमीन की जो सबसे बड़ी खूबी है वह यह है कि एक तो वह किसी भी हालत में किसी डिग्री में नीलाम नहीं हो सकती। दूसरे उस जमीन वाले किसान को किसी भी डिग्री में गिरफ्तार करके जेल में रखा नहीं जा सकता। तीसरे यदि वह भुंइहरी जमीन समूची या उसका एक भाग किसी को ठेके में दे दे तो ठेकेदार को उसमें कायमी (occupancy) हक हासिल हो नहीं सकता। चौथे जिस प्रकार पहली गिनाई हुई दोनों सूचियों वाली यहाँ की जातियों को यह हक नहीं है कि कोआपरेटिव सोसाइटी के हाथ में 15 साल से ज्यादा के लिए, सो भी सिवाय भोगबन्धक या भुगुतबन्ध (usufructary mortgage) के और किसी भी ढंग से, जमीन दे सकें, और न दूसरों के ही हाथ। इसी तरह सात साल से ज्यादा के लिए, या पाँच साल से ज्यादा के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लिए किसी भी हालत में ठेके पर किसी को नहीं दे सकते। ठीक यही हालत भुंइहरी जमीन की भी है। पाँचवीं बात यह है कि जैसे पूर्वोक्त आदिवासी या पिछड़ी जाति वाले अपनी जमीन अपनी ही बिरादरी (दल) वालों के हाथ उसी थाने के अन्दर ही अदला-बदली कर सकते या बेच सकते हैं, या डिप्टी कमिश्नर की राय से अपने सगे सम्बन्धी को दे सकते हैं, ठीक वही बात भुंइहरी जमीन वाले किसानों की उन जमीनों पर लागू है जो भुंइहरी वाले मौजे में भुंइहरी के अलावे भी होती हैं। छठीं बात यह है कि भुंइहरी जमीन के खिलाफ न तो कोई डिग्री ही हो सकती है और न उसमें वह नीलाम ही हो सकती है। सातवीं बात यह है कि यदि भुंइहरी जमीन के लगान के बाकी होने पर उसकी डिग्री हो तो सिर्फ उस जमीन की पैदावार से ही वह सधाई जाएगी, या उस किसान की किसी और भी चल सम्पत्ति से। छोटानागपुर के काश्तकारी कानून की 47, 48, 48(अ) तथा 184 (अ) धाराओं में यह बातें लिखी हैं।

खुटकुट्टी जमीन की खास बातें ये हैं कि एक बार उस जमीन का सर्वे हो जाने पर जितनी जमीन खुटकुट्टी लिखी जा चुकी है, उससे अधिक वह कभी हो नहीं सकती। वह घटती-बढ़ती नहीं है। यह पहली बात है। दूसरे यदि खुटकुट्टी जमीन कायम होने के ही समय लगान बढ़ाने की कोई शर्त तय न पाई हो तो जितनी खुटकुट्टी जमीनें 1908 से पहले के बीस साल के भीतर न बनके उसके पहले बनी थीं उनका लगान कभी बढ़ नहीं सकता। तीसरे, अगर ऐसा न होने पर उस जमीन का लगान बढ़ाया भी जाए—क्योंकि 1908 के पूर्व के बीस साल के भीतर ही वैसी जमीन कायम होने पर लगान बढ़ सकता है—तो हर हालत में उस जमीन का कुल लगान उस कायमी जमीन के लगान के आधे से ज्यादा हर्गिज नहीं हो सकता है जो उसी मौजे में उसी ढंग की हो और उसे उसी तरह की सभी सहूलियतें प्राप्त हों। उसी कानून की 37 और 134 धाराओं में यह बात लिखी है। आमतौर से जो बन्धन यहाँ के किसानों की जमीनों की खरीद-बिक्री पर है वह तो खुदकट्टी के भी लिए हई।

इसी प्रकार मुंडारी खुटकट्टी की भी कुछ विशेषताएँ हैं। पहली यह है कि जो जमीन एक बार सर्वे में मुंडारी खुटकट्टी लिखी जा चुकी तो उसके अलावे और जमीन उसमें आ नहीं सकती। दूसरी यह कि उस जमीन का इजारा भुगुतबन्ध के सिवाय और तरह का हो नहीं सकता। सो भी किसी भी तरह सात साल से ज्यादा के लिए हर्गिज नहीं। तीसरे उस जमीन का ठेका किसी को दिया जा सकता नहीं, सिवा मुंडा रैयत को खेती के लिए गैर आबाद जमीन के ठेके के, या वैसे ही रैयत को गैर-आबाद जमीन के मुकर्ररी ठेके के सिवा, जो इसलिए दिया जाए कि उसमें जितनी हो सके खेती के लिए आबाद करे। चौथे वह जमीन किसी डिग्री में बिक सकती नहीं। पाँचवें बिना डिप्टी कमिश्नर की आज्ञा के उस जमीन का लगान बढ़ाया जा सकता नहीं। उसमें भी यह बात सिद्ध करना होगा कि जब लगान बढ़ाने की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दरखास्त पड़ी उससे पूर्व बीस साल के अन्दर ही वह जमीन मुंडारी खुटकट्टी बनी है। और अगर लगान बढ़ा भी तो ठीक वैसे ही बढ़ेगा जैसा कि खुटकट्टी के बारे में कहा गया है—यानी वैसी ही जमीन के आधे से ज्यादा कुल मिलाके बढ़ा हुआ लगान नहीं हो सकता। छठे, उस जमीन का लगान सिर्फ सर्टिफिकेट या जब्ती-कुर्की के द्वारा वसूल होता है। मगर यह बात वहीं होती है जहाँ उस जमीन का सर्वे हो चुका हो। लेकिन सर्वे न होने पर बकाए की नालिश होती है। फिर भी उसकी डिग्री की वसूली या तो उसकी चल सम्पत्ति से होती है, या यदि उसे किसी और से लगान या कर्ज वसूल होने को हो तो उसे ही जब्त करके। अगर यह कोई भी न हो सके तो डिप्टी कमिश्नर उस जमीन को जब्त करके लगान वगैरह की वसूली का प्रवन्ध करता है। वसूली के वाद वह जमीन फिर वापस दे दी जाती है। यह बातें उस कानून की 240, 243, 246, 248 और 256 आदि धाराओं में लिखी हैं।

इस प्रकार मुख्य-मुख्य बातें इन तीनों जमीनों के सम्बन्ध की लिखी गई हैं। इनके अलावे और भी बातें हैं। मगर उन्हें जानने के लिए समूचा टेनेन्सी कानून ही पढ़ना उचित है।

अब जो सबसे महत्त्वपूर्ण बात झारखंडी किसानों की जमीन के बारे में है और जिस पर ही उनके आराम का दारमदार है उसका लिखा जाना जरूरी है। बात यह है कि इस पहाड़ी इलाके की यह हालत है कि जिस जमीन में खेती होती रहती है वह कुछी दिनों के वाद अकसर बेकार हो जाती है। या तो उसकी उत्पादन शक्ति ही नष्ट हो जाती है, या जंगली जानवरों का उत्पात बढ़ जाने से उसे छोड़ना ही पड़ता है, या आसपास में जो झरना, नदी आदि सिंचाई का सामान था वही खत्म हो जाता है, या पहाड़ी पानी की कभी-कभी बाढ़ आ जाने से वह जमीन बालू कंकड़ के नीचे दव जाती है। इसी प्रकार के अनेक कारणों से किसानों को जमीनें छोड़नी ही पड़ती हैं। यदि जमींदार या उसके अमलों का जुल्म बढ़ गया या जंगल से लकड़ी आदि मिलने का कष्ट हुआ तब भी छोड़ना ही पड़ता है और वे दूसरी जगह जाके नई जमीन आवाद करते हैं। यों भी जमीन की कमी हो जाने पर या उपज की कमी होने पर यदि नई जमीन आवाद न की जाए तो गुजर कैसे हो? जंगल में फिजूल की पैदावार जमीनें तो पड़ी रहती हैं नहीं। हमेशा नई जमीनें ही खोद-खाद और कोड़-काड़ के आबाद की जाती हैं।

कभी-कभी ऐसा होता है कि किसान की जमीन के तख्ते (holding) के अन्दर कुछ जमीन धनखर, धनखेत या धानी होती हैं, जिसे दोन भी कहते हैं और कुछ ऊँची, बारी या टांड़ होती है। फलतः मौका लगने पर ऊँची या टांड़ को ही खोदके और चारों ओर आड़ और बाँध लगाके दोन या धनखेत तैयार करते हैं। टांड़ में तो चाहे कुछ रबी या मूँग वगैरह पैदा होती रहती है, या कुछ भी पैदा नहीं होता। हर हालत में उसे दोन बना लेते हैं। जो जमीन पहले खेती में थी, मगर पीछे गैर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आबाद हो गई, उसे भी फिर से आड़-वाड़ देके दोन बनाते हैं। आमतौर से ऐसी जमीन धान के ही लिए बनाई जाती है। इस तरह जो जमीन तैयार की जाती है उसे कोड़कर, अरियट, बाहुबला और जलसासन कहते हैं। इन शब्दों का अर्थ स्पष्ट है। कोड़ कर ही तो वह तैयार की जाती है। बिना कोड़े-खोदे तो बन सकती नहीं। इसीलिए कोड़कर कही जाती है। उसकी चारों ओर आड़ या बाँध देके पानी रोकने के कारण उसे अरियट कहते हैं। अपने बाहु के बल से ही वह तैयार की जाती है। इसीलिए उसे बाहुबला भी कहते हैं। जल के भीतर, जल के कब्जे में रहती है। पानी का उस पर बराबर शासन रहता है। धान की जमीन ही तो ठहरी। इसीलिए उसका नाम जलशासन या जलसासन पड़ा होगा। उसे खंडवत भी कहते हैं। अकसर धान के खेतों में पानी जमा करते हैं और मौके से आड़ काट के बहा भी देते हैं। फिर भर भी लेते हैं। धान की खेती में ऐसा करना पड़ता है। बाँध या आड़ को पानी बहाने के लिए जहाँ काट देते हैं उसे खांड़ कहते हैं। धानी जमीन इसीलिए खंडवत भी कही जाने लगी होगी।

1.12.41 । ऐसी जमीन को पलामू और राँची जिले में उटकर जमीन भी कहते हैं। आमतौर से कोड़कर और उटकर में कोई खास अन्तर नहीं है। लेकिन व्यवहार में साधारणतया यही माना जाता है कि जो जमीन दोन के साथ मिली होती है, या जो किसान के तख्ते के भीतर ही टांड़ जमीन होती है जब उसे कोड़ करके दोन बनाते हैं तो उसे कोड़कर नाम दिया जाता है। मगर जब उसके तख्ते से बाहर या दोन के पास न हो, किन्तु जमींदार की खास गैर-मजरुआ जमीन को खोद-कोड़ के आबाद करें और खेती के लायक बनाएँ तो उसे उटकर कहते हैं। इसीलिए उटकर का ज्यादा प्रचार पलामू जिले में ही है। उटकर में ज्यादातर गोंदली, सावां, मडुवा, कुर्थी, मकई आदि फसलें ही होती हैं। पलामू की तो अधिकांश जमीन ऐसी ही है। यदि कहीं दोन के पास मौके से जमीन मिल गई तब तो उसे कोड़कर बनाएँगे ही। मगर ऐसा मौका मिलता ही कहाँ है।

इसी प्रकार संथाल परगने में एक खास ढंग की जमीन खेती के लिए तैयार की जाती है। इसे दामिन इलाके के पहड़िया लोग तैयार करते हैं। पहड़िया लोग वहाँ के सबसे पुराने निवासी माने जाते हैं। संथाल लोग तो संथाल परगने में, कहा जाता है, 1810 में ही पहले पहल पहुँचे। पहड़िया लोग इतने लड़ाकू माने जाते थे कि किसी को घुसने नहीं देते थे। जो ऐसी कोशिश करता था उसे बड़ी बेरहमी से मारते-काटते और भगा देते थे। वह निहायत ही भोली कौम है। उन्हें खेतीबारी का कोई भी दूसरा तरीका नहीं मालूम है। वह हल-बैलों वाली खेती जानते ही नहीं और न अब तक जीविका के लिए कोई दूसरा प्रचलित या सभ्य रास्ता उनने सीख पाया है। इसके लिए सरकार ने कोई खास उपाय किया भी नहीं है।

कहा जाता है कि सबसे पहले वारेन हेस्टिंग्स की नजर इन पहड़ियों की ओर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गई और उसे उन्हें सर करने की सूझी। कैप्टेन ब्राउन की मातहती में उसने एक फौजी टुकड़ी, वहाँ पहले पहल भेजी। फिर कुछ दिन बाद मिस्टर जेम्स और क्लीवलैंड नामक दो अंग्रेज भेजे गए कि उनकी हालत जानी जाए। क्योंकि फौज से उनका सर होना या सभ्य बनाया जाना कुछ कठिन जान पड़ा। क्लीवलैंड ने, कहा जाता है, तेरह सौ सरदारों को चुन के उनके भीतर काम करने और उन्हें सभ्य बनाने को भेजा जिन्हें मासिक दस रुपए दिए जाते थे। आज भी ये सीरदार या सरदार उन आदिवासियों के इलाके में पाए जाते हैं। क्लीवलैंड ने उनके सुधारने के कुछ रास्ते और भी सुझाए। मगर उन पर सरकार ने अमल किया ही नहीं।

पहड़िया लोगों की हालत यह है कि जंगलों में पहाड़ों पर ही ज्यादातर रहते हैं। इसीलिए पहड़िया बोले भी जाते हैं। जंगली फलों, मूलों और पत्तों के सिवाय वे एक तरह की खेती पुराने जमाने से करते आते हैं। यही दशा सभी मुल्कों में पहले, ऐतिहासिक युग के पूर्व, पाई जाती थी जब हल वगैरह का आविष्कार नहीं हुआ था। खेती के बाद जब कुछी दिनों में जमीनें उपजाऊ नहीं रह जाती थीं तो नए स्थान में जंगल वगैरह काट के नए खेत बनाए जाते थे। उनके पुराने पड़ जाने पर फिर दूसरी जमीन तैयार की जाती थी। जमीन में नोकीली लकड़ी से और पीछे औजार बनने पर उसी से छोटे-छोटे नन्हे-नन्हे—गढ़े, छिद्र या कुंड बना के उन्हीं में बीज डालते थे। आज भी दियारे की जमीनों या बालूदालियों पर खरबूज, तरबूज, ककड़ी, करेले आदि खेती ऐसी ही ढंग से की जाती है। वही बीज मिट्टी के नीचे पड़े-पड़े उगते और फलते-फूलते हैं।

पहड़िया लोग भी अब तक यही करते चले आ रहे हैं। उसी ढंग के छिद्र, सूराख या कुंड बना के उसमें मकई, ज्वार, अरहर और घघरा आदि अन्नों के बीज डाल देते हैं। जमीन के उन छिद्रों को संस्कृत के पुराने ग्रंथों में कुंड भी कहते हैं। उनमें खेती करने के कारण ही उसे कुंडचास या कुरांवचास कहने लगे। चास तो बंगला में खेती को कहते ही हैं और चासी कहते हैं किसान को। 'कुंड' का ही कुंडवा या कुडांव होके कुरांव हो गया और कुरांवचास कहने लग गए। संथाल परगने की जाँच कमिटी की रिपोर्ट में भी उसे कुरवा या कुंडवा (Kurwa) लिखा है। उसे ही झूमचास भी कहते हैं। बंगाल के जंगली इलाकों में झूम जमीन या झूमलैंड (Jhumland) के बारे में हमने पढ़ा है। जंगलों और झाड़ियों को काट या जला के साफ करते हैं। असल में जलाते ही हैं ज्यादातर। बिना जलाए झाड़ियों का साफ होना कठिन होता है। जलाने से जो जमीन पर राख पैदा होती है उससे खाद का काम हो जाता है। इसी तरह की तैयार जमीन को झूमचास या झूमलैंड कहते हैं। पहड़िया लोग भी पहाड़ों पर और उनकी ढाबू जमीनों पर इसी तरह जमीनें तैयार करके खेती करते आ रहे हैं।

अब इधर पाँच-सात साल से उसमें बाधा दी जाने लगी है। बात असल यह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है कि आज से प्रायः चालीस साल पहले उन सभी जंगलों को संरक्षित घोषित किया गया था। मगर संरक्षित (reserved) होने पर भी जाने किस खयाल से या डर से सरकार ने पहड़िया लोगों को छेड़ा नहीं। अब इधर कुछी साल से उस पर अमल होने लगा है। जमींदार या सरकार ने उन गरीबों के इस सनातन अधिकार पर प्रहार करना बड़ी बेमुरव्वती और बेरहमी से शुरू कर दिया है। जंगलों को रिजर्व कर लेना तो सरकार के हाथ की बात है। उसमें कोई फौजी लड़ाई या लाठी चलाने का सवाल तो है नहीं। मगर आखिर उन गरीब किसानों की जीवन यात्रा भी तो होना जरूरी है। जंगल रिजर्व (संरक्षित) किए जाते हैं लोगों की ही भलाई के नाम पर। मगर लोग ही मर जाए तो भलाई कैसी? तब जंगल से फायदा किसका होगा? क्या उसकी लकड़ी से उन अन्न बिना मरे हुए पहड़िया लोगों का शव दहन होगा? यह तो बंगाल के हिन्दुओं वाला 'हरिबोल' वाला ही किस्सा हुआ कि मरणासन्न मनुष्य को पहले ही हरि बोलने को विवश करते थे और उसकी जबान से ज्योंही 'हरि' निकला कि उसे गंगा या नदी में डाल दिया! समझते थे कि उसका उपकार हो गया और बैकुण्ठ चला गया! भूखों मार के रिजर्व फारेस्ट खड़ा करना तो कुछ अजीब चीज है। वे जिन्दा कैसे रहेंगे? इस तरह बलात् सभ्य बनना तो अजीब बात है! और जब उनके बच्चों में एक को भी सरकार ने अब तक पढ़ाया तक नहीं, तो फिर वे सभ्य कैसे बनाए जाएँगे? जंगलों के काटने से उन्हें रोकना घोर अन्याय और बेदर्दी है।

यह तो बेचारे मूक पहड़िया लोगों की बात हुई जिनमें एक भी पढ़ा-लिखा है नहीं। मगर मुंडा, उराँव, संथाल आदि तो पढ़ने-लिखने लगे हैं। उन्हें सभ्य बनाया जा भी रहा है। कम-से-कम मिशन वाले तो यह काम युगों से कर रहे हैं। मगर उनकी कोड़कर और उटकर जमीनों की भी कम फजीती नहीं है। यह हक उनसे प्रायः छीना जा चुका और बचा-बचाया कानूनी दाँवपेंच के जरिए बड़ी निर्दयता से छीना जा रहा है। कोड़कर वगैरह का जो वर्णन पहले किया गया है वह यहाँ के काश्तकारी कानून की 3 (13) धारा में लिखा गया है। लेकिन उसकी 64, 65, 66, 67 और 67 (अ) धाराओं में जो विशेष बातें और शर्तें लिखी गई हैं उनमें एक प्रकार से घुमा-फिरा के किसानों के कोड़कर और उटकर के हकों को, जो सनातन काल से चले आ रहे थे और जमींदारों तथा जमींदारी के जन्म से पहले से ही जिन्हें उनने प्राप्त किया था, छीन लिया है। कम से कम छीनने की कोशिश तो भरपूर की है और उसमें सफलता भी मिली है। कानूनी दाँवपेंच ही तो ठहरा। असल में कोड़कर या उटकर के बारे में जमींदार की मंजूरी की जो शर्त 64वीं धारा में लगा दी है उसी ने तो गजब कर दिया है।

यों कहने को तो उसमें कहा गया है कि (1) जो ऊँची या टांड़ जमीन किसान की कायमी जमीन की रैयती जमीन में शामिल हो, या (2) जहाँ जिस गाँव में पुराने रिवाज के अनुसार जमींदार की मंजूरी जरूरी नहीं हो उन जमीनों को कोड़कर बनाने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में किसान स्वतंत्र हैं और जमींदार की आज्ञा की उन्हें जरूरत नहीं। यह भी कहा गया है जिस मौजे में बेठखेता और मझिहस के सिवाय दूसरी जमीन 1867 वाले सर्वे के कागज में दर्ज है—यानी भुंइहरी जमीन है—वहाँ भुंइहरी वालों किसानों को, तथा जहाँ मुंडारी खुटकट्टी जमीन लिखी गई हो वहाँ यदि मुंडा लोग जमीन जोतते हों तो उन्हें भी, जमींदार से बिना पूछे ही कोड़कर बनाने की स्वतंत्रता है। (3) उस धारा में तीसरी बात यह भी लिखी गई है कि जहाँ जमींदार का हुक्म जरूरी भी हो वहाँ भी यदि किसान ने उटकर या कोड़कर बनाना शुरू कर दिया और उसके दो साल के भीतर उस जमीन से उसे बेदखल करने के लिए कलक्टर (डिप्टी कमिश्नर—क्योंकि झारखंड में कलक्टर को ही डिप्टी कमिश्नर कहते हैं) के पास जमींदार ने दरखास्त न दी तो माना जाएगा कि किसान को जमींदार से हुक्म मिल चुका था। फलतः वह पीछे उस जमीन से बेदखल नहीं किया जा सकता। क्योंकि जो किसी मौजे का रहने वाला (देही) किसान उसी मौजे में कोड़कर बनाए तो बिना डिप्टी कमिश्नर की आज्ञा के वह उस जमीन से बेदखल हो सकता नहीं और डिप्टी कमिश्नर तो बेदखली की आज्ञा दे सकता नहीं।

इसके बाद 65 और 66 धाराओं में लिखा गया है कि जब बेदखली की दरखास्त डिप्टी कमिश्नर के पास दी जाएगी तो वह जाँच करने के बाद यदि ठीक समझेगा तो बेदखली का हुक्म दे देगा। किसान से जमींदार को हर्जाना भी दिला सकता है। इस तरह वह न सिर्फ जमीन से ही हाथ धोएगा। बल्कि घर का आटा भी उसे गीला करना होगा। हाँ, यदि उसने बेदखली की आज्ञा न दी तब तो बात ही दूसरी है। मगर क्या यह मुमकिन है? यह भी लिखा है कि दूसरे की जोत जमीन, घर (बसौढ़ी) की जमीन या बाग-बगीचे की जमीन को कोड़कर बनाया जा सकता नहीं। भला यह कैसे होगा कि दूसरे के जोत पर कोई धावा बोल दे, या उसके बाग को काट के या मकान को गिरा के या जबर्दस्ती करके कोड़कर बना ले? मगर यह गोल-मोल बातें इसीलिए की गई हैं कि इन्हीं के बहाने पर किसान को कोड़कर से बेदखल किया जा सके। जमींदार को झूठी गवाही तो आसानी से मिल सकती है। यहाँ के किसान अदालत में लड़ना क्या जानें?

अब जरा इन तीन धाराओं में लिखी शर्तों पर विचार तो करें। आखिरी (67) वाली का तो विचार कर भी चुके कि उसके शब्दावली बड़ी ही गोल-मोल और पेचीदा है जिससे किसान धोखे में पड़ सकता है। मगर शेष दो की भी शर्तें कम खतरनाक नहीं हैं। असल में जमींदार से पूछने का सवाल ही गलत है। इसी में धोखा और चालबाजी है। यह कहना, कि जहाँ रस्म-रिवाज हो वहाँ पूछने की जरूरत तो हुई नहीं, भी गलत और धोखे का है। कोड़कर तो बनता है तब से जब यहाँ जमींदार थे भी नहीं और जब मुंडा, उराँव वगैरह यहाँ पहले पहल आए थे—जब से यहाँ आदमी बसे थे। फिर रिवाज की बात ही क्या है? वह तो समूचे झारखंड के लिए एक-सा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है। जब जमींदार थे ही नहीं तो पूछने की बात ही कहाँ उठ सकती थी? फलतः सर्वत्र रिवाज ही था। ऐसी हालत में रिवाज की बात उठाना खामख्वाह जमींदार को लाठी और रुपए के बल से 'दाल-भात में मूसरचन्द' बनने का मौका देना है। वह तो सभी जगह कह बैठेगा कि रिवाज नहीं है और बिना जमींदार के पूछे कोड़कर बनता नहीं। हाँ, केवल भुंइहरी और खुटकुट्टी वाले गाँवों में ही भुंइहार और मुंडारी खुटकट्टीदार के लिए साफ कहा गया है कि जमींदार से पूछना जरूरी नहीं है। सो भी तभी जब मुंडारी के पास कोई दूसरी जमीन हो। न होने के उसे भी पूछना ही होगा। ऐसे गाँवों में भुइंहर और मुंडारी लोगों के बारे में जमींदार को ही सिद्ध करना होगा कि उससे हुक्म लेना जरूरी है। खूबी तो यह है कि यदि जमींदार से आज्ञा लेना जरूरी भी हो तो यह बात जमींदार को ही सर्वत्र सिद्ध करनी होगी, ऐसी शर्त भी नहीं दी गई है। क्योंकि इससे किसानों को आसानी और जमींदार को दिक्कत होती। यहाँ तो ऐसी बेहूदा शर्त है जिससे यह बात सिद्ध होती है कि सर्वत्र जमींदार से पूछना ही होगा, और अगर कहीं न पूछना हो तो यह चीज किसान को ही साबित करनी होगी। इससे सारा भार किसान पर आ गया और यही इन शर्तों का असली जहर है।

यही बात जाँच-पड़ताल में भी है। क्योंकि डिप्टी कमिश्नर की जाँच के समय कचहरी की चालबाजियों और खर्चों में गरीब किसान क्या पार पा सकता है? उसे तो कानूनी पेचीदगी मालूम नहीं। इधर सारा मामला चौपट हो जाता है और वह न सिर्फ जमीन से हाथ धोता है—उस जमीन से जिसे बाहुबला कहते हैं और जिसे बनाने में उसने अपने खून को पानी कर दिया—किन्तु हर्जाना भी देने की नौबत आती है! हर्जाने की बात तो किसान को धमकाने के लिए है। ताकि इसी डर से पहले ही जमींदार का पाँव पूजे और उसकी मुट्ठी गर्म करे। जमींदार की रजामंदी का तो यही अर्थ ही है। वह तो हर्जाने की बात सुनते ही काँप उठेगा। नहीं तो यह बात रखी ही क्यों गई? जो जमीन बेकार थी, जिसे कुत्ता भी पूछता न था उसे ही किसान ने अपने परिवार का खून-पसीना बना के खेती के योग्य कर दी! उसके बेदखल होने पर जमींदार को क्या यही कम फायदा हुआ? अब तो इसी जमीन पर किसी से भी नजराना और लगान पा सकता है, जहाँ पहले कोई पूछता न था।

जो लोग कानूनी ज्ञान की बदहजमी मिटाते और नाहक वकालत करते फिरते हैं उन्हें पता नहीं कि 64वीं धारा में यह लिखने पर भी, कि कायमी किसान की रैयती जमीन के भीतर वाली टांड़ जमीन को उटकर या कोड़कर बनाने में जमींदार की मंजूरी का सवाल उठता ही नहीं, ज्यों ही किसान ने ऐसा किया कि उस कोड़कर पर अलग लगान लाद दिया जाता है। काश्तकार की रैयती जमीन को तो छोड़िए। ऐसी जमीन तो कई होल्डिंगों में हो सकती है। मगर जिस होल्डिंग का एक भाग दोन तथा दूसरा टांड़ है उसके उसी टांड़ को दोन बनाने पर भी जमींदार लोग जबर्दस्ती

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लगान बांध देते हैं और रैयत को देना ही पड़ता है। नहीं देने पर हजार ढंग से उसे तंग किया जाता है। आखिर 'जबर्दस्त की लाठी सर पर' का भी तो कुछ मतलब होता ही है और वह लाठी जितनी झारखंड में चलती है उतनी शायद ही कहीं। यहाँ के किसान निरे अनजान जो ठहरे। अतएव कोड़कर के बारे में लगाई गई सभी शर्तें जब तक हटा न ली जाए किसानों की खैरियत नहीं।

अब जरा उनके परेशान किए जाने की संक्षिप्त कहानी सुनिए। सबसे पहले तो जमींदार इसी बात पर जोर देता है कि कोड़कर बनाने के पहले ही उससे आज्ञा मानी जाए। और अगर किसान ऐसा करे तो मनमानी सलामी, मनचाहा नजराना उससे तलब किया जाता है—इतना ज्यादा कि सुनके तबीयत घबरा जाए। जितना बाहरी लोग सोच भी नहीं सकते उतना नजराना जमींदार माँग बैठता है।

यदि इस डर से किसान ने उससे पूछा नहीं, तो जमींदार के यमदूत ये अमले ढूँढ़-ढाँढ़ के पता लगा ही लेते हैं। उनका तो यही काम ही ठहरा। फिर तो पहले वे खुद सौदा करते हैं और कहते हैं कि हमारी पूजा ठीक-ठीक करो, नहीं तो न सिर्फ जमींदार को खबर देंगे, बल्कि तुम्हें यहीं दुरुस्त भी करेंगे। ऐसा प्रायः होता है कि कुछ या काफी घूस न पाने पर अमले मार-पीट बहुत करते और बाँध-बूँध कर या घसीट के जमींदार की कचहरी में किसान को ले जाते हैं। फिर तो वहाँ उसे सबकुछ भुगतना पड़ता है। हाँ, यदि अमलों की पूजा हो गई तो मारपीट से जान बचती है। मगर जमींदार तो काफी नजराना लेता ही है और लगान भी मनचाहे ढंग पर बाँध देता है। की-कराई मेहनत बेकार न जाए इसी खयाल से किसान जमींदार को जैसे हो खुश करता ही है। नहीं तो जमीन से ही हाथ धोना पड़ जाए। हाँ, यदि अमलों को खूब पैसे दिए तो कह-सुन के रिआयत करा देते हैं। मगर थोड़ी ही बहुत।

यदि किसान ने शायद हिम्मत से काम लिया और कह दिया कि कानून के अनुसार जमींदार को सचमुच ही बोलने का हक नहीं है, तो उसके लिए बला समझिए। कानून-वानून क्या करेगा? यहाँ तो जमींदार की मर्जी ही कानून है। जबर्दस्ती लाठी के बल कोड़कर या उटकर से बेदखल कर दिया जाएगा। यदि वह डँटा, तो सैकड़ों ढंग के जालफरेब और मुकदमे में फँसा के तंग तबाह कर दिया जाता है। इसलिए हर हालत में बिना जमींदार की शरण गए और उसे खुश किए किसान को पनाह नहीं—उसकी खैरियत नहीं।

कानून यह भी कहता है, जैसा कि 67वीं धारा से स्पष्ट है कि कोड़कर या उटकर जमीन ज्यों ही तैयार हुई उस पर किसान का कायमी हक हो जाता है। आमतौर से बारह साल लगातार जोतने की जरूरत जो और जमीनों पर कायमी हक होने के लिए होती है वह कोड़कर के लिए नहीं है। साथ ही, सेटल रैयत होने की भी शर्त इसमें नहीं है और न 18वीं धारा के अनुसार, जिसमें कि भुंइहर और मुंडारी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

खुटकट्टीदार को भुंइहर, मुंडारी खुटकट्टी या जमींदार की जिरात के अलावे उस गाँव की बाकी जमीनों के जोतते ही सेटल रैयत का हक मिल जाता है, कोड़कर वाले किसान को भुंइहर वगैरह होने की ही जरूरत है। यह इस जमीन की खूबी है। मगर क्या भरसक जमींदार ऐसा होने देते हैं। रैयत कुछ जानता नहीं और उसकी नादानी से अनुचित लाभ उठाते हैं जमींदार और उसके पापी अमले!

67(अ) धारा में कोड़कर या उटकर के लगान का नियम है। वहाँ लिखा है कि उस जमीन में पहली फसल कट जाने के बाद चार साल तक—यानी पूरे पाँच वर्ष तक फसल काटने के बाद ही कोड़कर जमीन पर लगान लग सकता है। उसके पहले हर्गिज नहीं। मगर जिस कानून से किसान को फायदा हो उसे कौन माने? जमींदार की बला उसे मानने जाए। वह क्यों उसकी परवाह करने लगा? वह तो जमीन तैयार होने के पहले से ही किसान का खून चूसने लगता है। तब उसी से पूरे पाँच वर्ष तक खामोशी की उम्मीद?

उसी धारा में यह भी लिखा है कि पाँच साल के बाद जब जमींदार उस जमीन पर लगान लगाए तो, आमतौर से उस गाँव में जो धान की तीसरे दर्जे की—(यानी सबसे खराब) जमीन हो उसके लगान से ज्यादा लगान उस कोड़कर पर लगा नहीं सकता। मगर अगर मौजे का रिवाज ऐसा हो कि कोड़कर का लगान उतना भी न हो के उसका आधा ही होता हो, तो ज़मींदार को भी ऐसा ही करना होगा। इसके बाद इसका सारा ब्योरा डिप्टी कमिश्नर के पास वह जमींदार बाकायदा भेजेगा और डिप्टी कमिश्नर जाँच-पड़ताल करके और किसान से भी भरसक पूछताछ करके उस लगान पर मुहर देगा। तभी वह लगान वसूल किया जाएगा। मगर यहाँ तो दूसरी ही गंगा बहती है। हमने तो जवाबदेह किसानों को रोते-चिल्लाते पाया है कि जमींदार मनमाना लगान वसूल करता है। डिप्टी कमिश्नर को कौन पूछे? कानून-फानून की धाराएँ कौन देखे?

अब जरा उटकर की विशेष वार्ता सुनिए। कही चुके हैं कि कोड़कर ही का यह भी एक रूप है। मगर इसमें ज्यादातर ऊँची या बारी जमीन ही होती है जिसमें मूँग वगैरह बोते हैं। ज्यादातर पलामू में और कहीं-कहीं रांची में भी यह जमीन पाई जाती है। कुछ उटकर में तो हर साल खेती होती है। बाकियों में दो-तीन साल का बीच देकर ही। मगर जमींदार शुरू से ही मनमाना लगान लेते हैं और रसीद देते ही नहीं। अगर देते हैं तो तभी जब और कायमी जमीन के साथ उटकर का लगान पाते हैं। मगर पूरा-पूरा नहीं। फलतः उटकर की तो रसीद देते हैं और कायमी की नहीं देते। जिससे आगे चलके उसे नीलाम करवा लेते हैं। किसान को पहले क्या मालूम? वह रसीद पढ़ने थोड़े ही जाता है।

लगान भी नगदी और भावली दोनों ही होती है। अच्छी जमीन की भावली और खराब की नगदी! जमींदार तो गुरू-घंटाल होते ही हैं। खूबी तो यह कि ऐसी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जमीनों पर लगे पलास या महुवा के पेड़ों का अलग बन्दोबस्त करते और लगान लेते हैं। महुवा खाते हैं और पलास पर लाह जो होती है। कभी-कभी अच्छी उटकर जमीनों से किसानों को इस्तीफा देने पर भी विवश किया जाता है। यह तो कही चुके हैं कि उटकर बनाने में शुरू में ही या बीच में भी सलामी माँगी जाती है। न देने पर मार-पीट के सिवाय जबर्दस्ती जुर्माना वसूल किया जाता है और झूठा केस चलाने की धमकी भी दी जाती है। कभी-कभी केस भी चल जाते हैं। लगान की दर तो गजब की होती है जिससे हार के किसान जमीन छोड़ के भाग जाते हैं। भावली में जमींदार के हिस्से का गल्ला कभी-कभी इतना ज्यादा ठहराया जाता है जितनी कि खेत की कुल पैदावार भी नहीं होती!

सबसे बड़ी दिक्कत ऐसी जमीनों को लेके यह होती है कि किसानों को कानून का पता तो रहता नहीं। एक बार हाल में ऐसा हुआ कि प्रायः पाँच सौ किसानों ने पलामू में डिप्टी कमिश्नर के पास लगान ठीक करने की दरखास्त दी थी। मगर सबकी सब रद्द कर दी गई। वे बेचारे मुँह ताकते रह गए।

(6)
जंगल की तकलीफें

यह ठीक है कि कुरांवचास, कोड़कर और उटकर से ताल्लुक रखने वाली तकलीफें किसानों को सबसे ज्यादा अखरती हैं और असह्य हैं। इनसे तो मौत को ही वे ज्यादा पसन्द करते हैं। इसीलिए इन पर सबसे ज्यादा उनका ध्यान जाता है। मगर इनके अलावा उनकी और भी तकलीफें हैं जो कम अखरती नहीं हैं। कोड़कर आदि जमीनों की तकलीफों के ही मुकाबले की दो तकलीफें उन पर और आ पड़ी हैं और इस तरह इन तीन विपदाओं की चट्टानें उन्हें पीस रही हैं। इन दो में एक तो है जंगल के फल, फूल, काठ, बाँस, घास, पत्ते, मूल, जल आदि की। इन्हें पहले भी चाहे और तकलीफें हजार रही हों। लेकिन उन जंगली पदार्थों की तो कोई कमी न थी। जब चाहे जितना लाते और इस्तेमाल करते रहे। कपड़ा तो इनके पास पूरा होता ही नहीं। ज्यादातर तो लँगोटी ही रखते हैं। शेष शरीर नंगा! औरतों की भी सारी देह तो कपड़े से ढँकती नहीं। इतने कपड़े इन्हें मिलें भी कहाँ से?

इसीलिए जाड़ों में आग जलाके और पुआल घास में घुसके गुजर करते थे। खेत की रखवाली के लिए काँटे और झाड़ियाँ काट लाते और किनारे-किनारे गाड़ के घेरा तैयार कर देते थे। घर के चारों ओर न घेरें तो जंगली जानवरों से कभी न बच सकें। उन्हीं घेरों पर सेम वगैरह की लताएँ भी फैलती और फूलती हैं। पानी खुद पीते, नहाते, पशुओं को पिलाते और खेत सींचने के काम में लाते थे। महुआ,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गेंठी, केना वगैरह फल-फूल खाते थे। इधर पलास, कुसुम आदि पेड़ों पर लगी लाह बेच के पैसे कुछ कमा लेते थे। गाड़ो, हल, घर की छाजन के लिए काफी काठ और बाँस उन्हें मिलता था। पत्तों के पत्तल बना के बाजारों में बेच लाते, बरसात में पत्तों के सुन्दर छाते बना के भीगने से बचते और लकड़ियाँ बेच के भी गुजर करते थे। मगर सब पर आफत आ गई! ये गरीब ताज्जुब में हैं कि यह क्या हो गया? वे समझी नहीं सकते कि यह हक क्यों छिन गया।

सर्वे में खतियान वनी और गुरू-घंटाल जमींदारों और उनके अमलों ने घूस दे के जंगलों पर अपना खास कब्जा लिखवा लिया! ऐसे ही जंगलों में नमूने के लिए पारसनाथ पहाड़ का भी जंगल है। सबकुछ जमींदार का ही लिखा है। सर्वे की खतियान दिखा के उसकी तराई के माझियों (संथालों) को लकड़ी, बाँस, फल, फूल, पत्ते और झरने के पानी लेने तक से रोका जाता है! वे बेचारे खतियान क्या जानने गए? उन्हें क्या मालूम कि यह खतियान कौन सी बला है? वे तो सीधे और अपढ़ ठहरे। खतियान बनने के समय उन्हें पता भी न था कि क्या बन रहा या बिगड़ रहा है। उन्हें सपने में भी खयाल न था कि ये गौरवर्ण, अहिंसाव्रतधारी, जैनी मालदार दिल के ऐसे काले हैं कि उनके जंगली हक भी छीन लेंगे और उन्हें तथा उनके पशुओं को पानी तक पीने न देंगे। यदि ये जानते कि ये दोपाए खूँखार पशु भीतर के काले हैं और ऐसा करने आए हैं तो उसी समय निपट लेते। नतीजा चाहे जो होता। इस अत्याचार से उनके खून में आग लगी है। पीरटांड और डुमरी में जब मैं इनकी मीटिंग में गया तो इनमें इसी अत्याचार की चर्चा थी कि कैसे इसे खत्म करें। सुना है कि उसके बाद पुलिस के लाख मना करने पर भी इनने जंगल पर धावा बोल ही तो दिया। उस कांग्रेसी मंत्रियों का आसन डिग गया। मगर उनसे इतना भी न हो सका कि इनके ये हक साफ-साफ इन्हें दे डालें! यही तो उनकी जन-सेवा और किसान-प्रेम का नमूना है!

रिजर्व जंगलों के करते भी यही आफत आती है। इसका जिक्र पहले किया जा चुका है। सर्वे के बाद भी समय-समय पर जंगल रिजर्व होते जाते हैं। इसीलिए पानी, फल, फूल वगैरह की तकलीफें इन किसानों को बढ़ती ही जाती हैं। उन्हें निश्चय ही नहीं कि कब कहाँ क्या बला आएगी और उनके ये अधिकार छिन जाएँगे। कहने के लिए तो बताया जाता है कि घर-गिरस्ती के काम के लिए सब चीजें जंगल से लेने का हक खतियान में है। मगर व्यवहार में क्या होता है। हमें इसी से काम है। न कि लिखे हुए से। हम तो—ये किसान तो—लिखना नहीं जानते। किन्तु करतं जानते हैं और उस करतं में गड़बड़ी है। खतियान में लकड़ी के नाम और लम्बाई, चौड़ाई, मौटाई वगैरह की ऐसी बाल की खाल खिंची होती है कि ये बेचारे पार नहीं सकते। पहले ये लोग इंजीनियरिंग पास करें और पास में स्केल, परकाल वगैरह रखें। तब शायद काम चले तो चले। मगर ये तो ठहरे पूरे 'काले अक्षर भैंस बराबर' और 'लिख

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लोढ़ा पढ़ पत्थर'। तब कैसे काम चलेगा?

और इतना ही तो नहीं है। अभी तो बड़ा घनचक्कर बाकी ही है। यदि ये किसान और गरीब लकड़ी वगैरह ले के चले ही जाए और अपना काम चलाई लें, तो जंगल विभाग के छोटे-बड़े नौकर क्या मक्खी मारेंगे? उनका मजा तो किरकिरा होई जाएगा। वे इन्हीं को सता के तो गुलछर्रे उड़ाते हैं। थोड़ी-थोड़ी तनख्वाह वाले रेंजर, फारेस्टर, पेट्रोल, अर्दली और जाने कौन-कौन से महारथी जंगलों में ताक लगाए खूँखार जानवरों की ही तरह शिकार की ताक में बैठे रहते हैं। यदि इनकी पूजा शुरू में ही, या बीच में ही सही, न कर दी जाए, तो हजार मीनमेख निकाल के गरीबों को तबाह कर छोड़ते हैं। मैंने यह तमाशा खुद देखा है। गावां थाना (हजारीबाग) के एक गाँव में, जो गावां से हजारीबाग आने के समय सकरी नदी पार करने के बाद पड़ता है और जिसका नाम मैं भूलता हूँ, मुझे किसानों ने जो-जो दर्दनाक दास्तानें सुनाईं उनसे मैं खून के आँसू रोया। ऐसी बातें जाने कितनी जगह हुईं। मेरा तो खून खौल उठा। मगर लाचार था। जंगल विभाग और उसके नियम-कायदे यहाँ के गरीबों को तिलतिल करके मारते हैं! दूसरों को क्या पता? जिनके सिर गुजरती है वही जानते हैं! मैं तो उनके दिलों में प्रवेश करने की भारी कोशिश करके ही थोड़ा समझ पाता हूँ। बाबू लोग असेम्बलियों और सेक्रेटेरियट की कुर्सियाँ तोड़ते रहें। वे हजार जन्म में भी इन दुखिया लोगों की वेदना—आह—शायद ही समझ पाएँ। इसके लिए तो दिल चाहिए। सो भी दूसरे ही ढंग का।

2.12.41। एक बात और भी है। दो तरह के जंगल होते हैं अलावे मामूली और उजड़े जंगलों के। एक तो सुरक्षित या प्रोटेक्टेड और दूसरे रक्षित या रिजर्व या यों कहिए कि जिन पर रोक लगी है। सुरक्षित (protected) जंगलों के भीतर तो कोई पाँव दे नहीं सकता और न एक तृण छू सकता है। हाँ, रक्षित या रिजर्व (reserved) जंगलों में से ही समय-समय पर घरेलू काम के लिए मामूली बल्ले वगैरह लिये जा सकते हैं जिनकी लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई वगैरह निश्चित रहती है। साथ ही यह भी तय रहता है कि किन-किन पेड़ों से ये लकड़ियाँ भी नहीं ली जा सकती हैं। यह तो एक तरह का जंगल-पुराण ही समझिये। पत्ते, घास वगैरह तो ले सकते ही नहीं। ये चीजें तो मामूली जंगलों से ही ली जा सकती हैं और रिजर्व से शायद ही बड़ी दिक्कत से। जंगल के हर गाँव की खतियान में लिखा रहता है कि कहाँ तक जंगल में जा सकते हैं। ऐसा फासला चौहद्दी के साथ लिखा रहता है। तिस पर भी तुर्रा यह है कि जमींदार लोग कर लेते हैं जिसे टंग कर या टांगी कर कहते हैं। पलामू पहुंवाडांड थाने के सिवाय सभी जगह यह टंग कर है। इसके लिए बड़ा तूफान हुआ। महुंवाडांड वाले बहुत ही बागी बने थे। तब भी उनका पिंड छूटा नहीं। झमेला चलता ही रहता है। हरेक घरवाले को साल में चार आना देना ही पड़ता है चाहे लकड़ी लें या न लें। मगर वे लोग कुछ लकड़ियाँ काट के बेच भी सकते

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हैं। दूसरे थाने वाले तो घर-गिरस्ती के ही लिए पा सकते हैं। बेचने के लिए हर्गिज नहीं। बेचने के लिए भी वही मामूली बल्ले, सो भी आदमी अपने सिर पर ही लाद के ला सकता है।

राँची वगैरह में सभी जगह जमींदार का यह टंग कर या वन कर बड़ी सख्ती से वसूल होता है। इन जिलों में और मानभूम, हजारीबाग वगैरह में भी टंग कर, वन कर, पत कर, लह कर, चुल्ह कर आदि नामों से ये टैक्स लिये जाते हैं। काटने की टांगी के हिसाब से, जलाने की चूल्हे के हिसाब से या यों ही वसूल होता है। पत्ता लेने पर पत कर, लकड़ी के लिए वन कर। राँची जिले में तो पता चला कि पहले फी घर साल में सिर्फ एक आना देना होता था। सर्वे के समय चार आना हो गया। अब तो सवा रुपया वसूल होता है। इसके सिवाय रसीद देने में चपरासी और मुहर्रिर चार आने लेते हैं। जंगल में जो चपरासी या बरकन्दाज रहते हैं वह भी कुछ न कुछ लेते ही हैं। नहीं तो तरह-तरह से परेशान करते हैं। और जगहों में भी व्यवहार में यह कर बढ़ गया है। चाहे कागज में कम ही क्यों न लिखा हो। किसान देना नहीं चाहते। इसीलिए झमेले होते रहते हैं। पलामू के रांका जमींदारी में पहले चुल कर के नाम से यह कर वसूलते थे जबर्दस्ती। मगर जब सर्वे के समय यही चार आना लिखवाने की कोशिश जमींदार ने बहुत ही छल-फरेब करके की। मगर सर्वे अफसर ने नहीं माना। महुवाडांड में तो जमींदारों ने धीरे से यह चार आना टंग कर सर्वे की खतियान में लिखवाई लिया। मगर बहुत दिनों तक चुप्पी साधे रहे और एक पैसा नहीं वसूला। किसानों को पहले शक हुआ था कि कुछ न कुछ टंग कर लगा है। वे बौखलाए भी थे, जैसा कि कह चुके हैं। मगर जब वसूली नहीं हुई तो उनने समझ लिया कि खत्म हो गया और निश्चिन्त रहे। जब वहाँ की कई जमींदारियाँ कोर्ट आफ वार्ड्स की मातहती में आ गई तब फिर वसूली जारी हुई और किसानों की आँखें खुलीं। हलचल भी उनमें काफी हुई। बवंडर शुरू भी हुआ। मगर फिर कुछ-कुछ ठंडे पड़े। आज भीतर ही भीतर असन्तोष की आग धक्धक् कर रही है। 1939 के दिसम्बर में मैं जब वहाँ गया था तो यह बात साफ मालूम हुई।

मगर यह चार या आठ आने का कोई नियम एक तरह का नहीं है। मैंने तो हजारीबाग में और दूसरी जगह किसानों के पास रसीदें देखी हैं जिनसे पता चलता है कि हर तरह की लकड़ियों के लिए, जो सिर्फ घर-गिरस्ती के ही काम आती हैं, जुदे-जुदे कर निर्धारित हैं और बिना दिए बेचारों की गुजर नहीं है। यह भी होता है कि रिजर्व जंगलों में कुछ खास-खास जगहें होती हैं और वहीं से लकड़ी ले सकते हैं। जैसे मन्दिर का फाटक बन्द हो और खुले वैसे ही ये जगहें भी समय-समय पर ही खुलती और बन्द होती हैं। खुलते ही दौड़ मचती है और पैसे देके लकड़ी काटना जरूरी होता है। फिर बन्द होने पर कुछ न हो सकेगा। एक बार खुलके तीन-तीन साल के लिए ये बन्द हो जाते हैं। इसीलिए जल्दी-जल्दी ईंधन लकड़ी वगैरह लेना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ही पड़ता है। नहीं तो तीन साल तक मरना ही पड़े। यह तो बर्फानी इलाकों और देशों की बात हुई कि अब सामान जमा कर लो, नहीं तो बर्फ के दिनों में मरना होगा। क्योंकि बाहर निकल नहीं सकते। कभी-कभी तो गाँवों से ये जगहें बहुत दूर होने के कारण किसानों को अपार कष्ट का सामना करना पड़ता है।

पलामू वगैरह में गाय-भैंसों आदि के रखने वालों से खरचरी के नाम नाजायज कर लिया जाता था, जो पीछे बड़ी दिक्कत से बन्द हुआ था। रांका वगैरह के जमींदार खासतौर से कई ऐसे कर वसूलते थे। मुझे उस नोटिस की बात बखूबी याद है जो मिस्टर गोडबोले ने, जो आज बिहार सरकार के चीफ सेक्रेटरी हैं, और उस समय पलामू के डिप्टी कमिश्नर थे, उसी हैसियत से चारों ओर बँटवाई थी। उसमें जमींदारों को उनने धमकाया था कि खरचरी वगैरह नाजायज वसूलियाँ बन्द कर दो। नहीं तो सजा होगी। जहाँ-जहाँ खरचरी वगैरह लेते थे तहाँ-तहाँ मवेशियाँ बिना यह कर दिए जंगलों में जाने पाती न थीं। रिजर्व जंगलों में और प्रोटेक्टेड फारेस्ट में भी आज भी यही दशा है। वहाँ की घास सूख जाती है। मगर मजाल क्या कि कोई पशु पाँव भी दे दे। ऐसा होने पर या तो फौरन ही काजीहाउस (मवेशीखाना, अड़गड़ा, पौंड) में डाल दिए जाते हैं। नहीं तो जंगल के गार्ड (रक्षक) और चपरासी फारेस्टर कसके जुर्माने के नाम पैसे वसूल लेते हैं। जमींदारों की यह हालत है कि अपने जंगलों को आमतौर से ठेकेदारों को दे देते हैं। फिर तो किसान मजबूर होता है। जमींदार कहता है कि क्या करे, वह तो ठेके पर दे दिया है। किसान बेचारा ठेकेदार से सौदा करता और पैसे दे के लकड़ी वगैरह लेता है। यों सीधे पैसा माँगने और लेने में दिक्कतें होती हैं और गैर-कानूनी बात भी हो जाने का डर है। क्योंकि खतियान में जहाँ ऐसा न हो वहाँ पैसे कैसे लेंगे। यही कारण है कि चालाकी से काम लिया जाता है।

जहाँ किसानों को लकड़ी वगैरह लेने का हक भी है वहाँ भी जमींदार लोग तरह-तरह से उन पर दबाव डालते हैं कि बिना खबर दिए लकड़ी नहीं काट सकते और न जंगल में घुस सकते हो। बेचारे भोले-भाले किसान क्या करें? वे जब जमींदार के पास कहने जाते हैं तो बिना रुपया-पैसा लिये हुक्म मिलता ही नहीं। यदि नहीं जाएँ तो जंगल के चपरासी वगैरह पकड़ के तरह-तरह से सताते हैं। हमने जेल में ऐसे कैदी पाए हैं जो अपने हक के ही अनुसार जंगल से लकड़ी काटने गए थे, फिर भी रोके गए और न मानने पर मारपीट हो जाने से खून तक हो गया। वे बेचारे बेकार फँसाए गए। अदालत ने उनका हक तो कबूल कर लिया। इसीलिए उन्हें फाँसी की सजा न हो सकी। मगर आत्मरक्षा (self defence) की मर्यादा से आगे बढ़ जाने के कारण उन्हें जेल की सजा हो गई और कई साल भुगतने पड़े! ऐसा क्यों हुआ? इसमें शैतानियत तो जमींदार के आदमियों की ही ठहरी। न वे रोकते, न मार-पीट होती और न खून होता। फिर सीमा या मर्यादा लाँघने की बात ही कैसे उठती?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जब कांग्रेसी मंत्रियों के जमाने में हजारीबाग के डुमरी और पीरटांड़ थानों के संथाल वगैरह किसानों ने पारसनाथ पहाड़ की तराई में जंगलों से जबर्दस्ती लकड़ी आदि काटना शुरू कर दिया था तो बड़ा तूफान मचा था। हथियारबन्द सिपाही वहाँ भेजे गए थे उन्हें रोकने, पकड़ने और सबक सिखाने के लिए। ऐसी सनसनी और हलचल थी कि कुछ कहिए मत। उसके पहले उन जगहों में किसानों की मीटिंगों में मैं गया था। मेरा दौरा जो हो रहा था। जब किसानों ने कुछ तो अपनी टूटी-फूटी जंगली जबानों से और ज्यादातर भावभंगी से अपने अपार कष्टों का वर्णन किया तो मुझे बड़ा दर्द हुआ। मुझे कहा गया कि और जमींदारों की ही तरह, जिस जैनी सेठ ने उस पहाड़ को खरीदा है वह भी कहता है कि सर्वे में साफ लिखा है कि सोते (झरने) के पानी, जंगल के फल-फूल और काठ-बाँस वगैरह पर किसानों का कोई हक नहीं है। फलतः बिना सेठ की मर्जी के और बिना हर चीज के लिए कर दिए वे लोग कोई चीज छू नहीं सकते! इस पर मैंने साफ सुना दिया कि सर्वे में अगर हवा और सूर्य की रोशनी पर भी जमींदार अपना कब्जा लिखा लें तो क्या गरीब लोग और किसान मर जाएँ और न साँस लें, न सूर्य की रोशनी शरीर पर लगने दें? किसानों को क्या पता कि खतियान में कब, किसने, क्या बला लिख लिखा दी? उन्हें किसने इस बात की नोटिस दी थी कि खतियान में ऐसा लिखा जा रहा है, तुम लोग चलके जो कुछ उज्र करना हो करो? उन्हें उस समय अगर ऐसा कहा गया होता उसी समय वे निपट लेते और चाहे जो भी होता, मगर खतियान को बदलवा के ही छोड़ते। मगर चोरी-चोरी ऐसा लिखवा लेने के बाद अब इन्हें मारना यह शैतानियत है, निहायत वेजा बात है। शरीर और घर-गिरस्ती के लिए काठ, बाँस, फल, फूल, घासपात, जल वगैरह तो इन्हें चाहे जैसे हो मिलना ही चाहिए। यदि इन्हें यों ही घुल के मरना नहीं है तो ये चीजें ये लोग लेके ही रहेंगे।

इस पर बड़ी कानाफूसी हुई थी कि मैंने भोले मांझियों को उकसा दिया और वे कानून तोड़ने पर तैयार हो गए! अजीब बात है। वे जिन्दा रहना चाहते थे और चाहते हैं और इसीलिए पानी, काठ, वगैरह चाहते हैं। उन्हें ये चीजें देना नहीं और जबर्दस्ती घुल के मरने देना, फिर भी कहना कि उभाड़ा जाता है! चाहे जहाँ से जैसे हो जरूरी चीजें उन्हें दीजिए, दिलाइए। फिर देखिए कि कानून तोड़ने या उभाड़ने-उभड़ने की बात कहाँ आती है। फिर भी जो लोग ऐसी बातें बोलते ही रहते हैं उन्हें संसार के एतत् सम्बन्धी इतिहास को पढ़के अपनी अक्ल की दवा कर लेना चाहिए। जंगल के इन्हीं हकों को लेके पहले के समय में संसार के किसानों ने क्या-क्या नहीं कर डाला? इस बात की थोड़ी सी झाँकी उन्हें कराने के लिए मैं श्री पॉल लाफार्ग (Paul Lafargue) की किताब *सम्पत्ति का विकास* (*Evolution of Property*) से एक उद्धरण देना उचित समझता हूँ। वह यों है—

'The forests were grabbed up more brutally : eschewing all legal

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

formalities, the landlords adjudged to themselves the ownership of the woods and underwood; they enclose the forests and forbade hunting and abolished the right of estovers; the right of taking wood for fuel and for the repairs of houses, fences, implements, etc. The encroachments of the nobles on the forest lands, which were the Common property of the village, gave rise to terrible revolts of the peasants. The Jac queries, which broke out in the middle of the fourteenth century (1357-58) in the provinces of the north and the centre of France, were in fact, occasioned by the pretentions of the nobles to forbid hunting and to interfere with the right of common in the forerts, and the enjoyment of the rivers. Similar conflicts arose in Germany, such as the famous revolt of the Saxons against the Emperor Henry II, and that of the Suabian peasants, who, in the time of Luther, took up arms against the lords, who debarred them from the enjoyment of the forests. These peasant insurections compelled the lord on several occasions to respect the ancient rights of Common, which consisted in the right—limited only by the peasents' wants—to take wood and brushwood for hedging, firing and repairing his implements (hedge-bote, fire-bote and plough-bote); and in the right of Common pasture, or the right to send his cows, horses, swine and in some cases his goats to graze on the commons throughout the year, the month of May alone excepted. So firmly were rooted these rights that Lapoix de Freminville declared, in 1760, that even in the event of their abuse by the peasants, they could not be taken away from them 'for the right of usage is perpetual, and being so, in is accorder alike to the actual inhabitants and to those who may come after them; one cannot strip of an acquired right even those who are as yet unborn. But the revolutionary bourgoisie of 1789 felt none of the fedual legists' respect for the peasant's rights, and abolished them for the benefit of the landed proprietors.'

'अधिक निर्दयता के साथ जंगलों को हथिया लिया गया। कानूनी बातों को ताक पर रखके जमींदारों ने जंगलों और झाड़ियों पर अपना अधिकार जमा लिया। उनने जंगलों को घेर दिया (रिजर्व और प्रोटेक्टेड बना लिया), उनमें औरों का शिकार खेलना रोक दिया और घर-गिरस्ती के लिए काठ-बाँस वगैरह लेना खत्म कर दिया, जिससे ईंधन तथा घर, घेरा, औजारों की मरम्मत वगैरह के लिए कुछ भी जंगल से लिया जा सकता न था। जो जंगल बराबर गाँवों की सार्वजनिक सम्पत्ति थे उन्हें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस तरह जमींदारों के द्वारा हथियाए जाने का नतीजा यह हुआ कि किसानों के भयंकर विद्रोह होने लगे। फ्रांस के मध्य एवं उत्तरी हिस्सों में जो चौदहवीं सदी के मध्य में (1357-58) जैकरी नाम के किसान-विद्रोह होते रहे वे दरअसल इसीलिए हुए कि जमींदारों ने जंगलों में आम लोगों के शिकारों और दूसरे हकों को छीनना शुरू कर दिया था और नाले-नदियों के सम्बन्ध में भी यही किया था। जर्मनी में भी इस तरह के विद्रोह हुए, जैसा कि शहंशाह द्वितीय हेनरी के विरुद्ध सैक्शनों (सैक्शनी प्रान्त के निवासियों) का विख्यात विद्रोह। स्वैव इलाके के किसानों ने भी लूथर के जमाने में इसी तरह उन जमींदारों के खिलाफ हथियार उठा लिया, जिनने उनके जंगल सम्बन्धी हकों को छीना था। किसानों की इन बगावतों और विद्रोहों का नतीजा यह हुआ कि जमींदार लोग बहुत मौकों पर आम लोगों के उन अधिकारों को कबूल करने के लिए मजबूर हुए जिनके फलस्वरूप लोग काठ-बाँस और काँटे-कुश, घास-पात वगैरह खेतों आदि के घेरने, जलाने और दूसरी जरूरतों के लिए, जैसा कि घेरने, आग जलाने और हल आदि के लिए, ले सकें। जमींदारों ने सार्वजनिक चरागाहों के हकों को भी माना जिससे किसान लोग अपनी गाएँ, घोड़े, सूअर और कभी भी बकरियाँ भी चरागाहों में साल-भर बराबर चरने को भेजा करें। जंगल के काठ-बाँस वगैरह कितना लिया जाए इसमें किसान की जरूरत ही निर्णायक थी। (न कि कोई शर्त थी कि इतना ही लिया जाए)। केवल मई मास में ही चराई पर रोक थी। ये अधिकार इतना ज्यादा सर्वजनप्रिय थे कि 1760 में फ्रांस में लापोआद फ्रेमिनविल नामक विद्वान ने घोषित किया था कि अगर किसान इन अधिकारों का दुरुपयोग भी करें, तो भी उनसे हक छीने जा सकते नहीं हैं। क्योंकि रस्मोरिवाज के अनुसार जो हक हासिल होते हैं वे सनातन हैं। इसीलिए ये हक न सिर्फ उन्हें प्राप्त होते हैं जो मौजूद हों, किन्तु जो पीछे आएँगे या पैदा होंगे उन्हें भी प्राप्त रहते हैं और जो लोग अभी पैदा हुए ही नहीं उनके हकों को कोई कैसे छीन सकता है? मगर 1789 के क्रान्तिकारी पूँजीवादियों के दिल में सामन्त युग के कानूनी हकों के जानकारों की तरह इन हकों के लिए जरा भी खयाल न था। इसलिए उनने जमीन के मालिकों के फायदे के लिए किसानों के इन हकों को मिटा दिया।'

इस उद्धरण पर टीका-टिप्पणी बेकार है। यह इतना साफ है कि सारी बातें आईने की तरह झलक रही हैं। ऐसा मालूम होता है कि इसका लेखक झारखंड में बैठ के सारी दास्तानें आँखों देखने के बाद ही ये पंक्तियाँ लिख रहा है! यहाँ की सारी बातें अक्षरशः इसमें चित्रित की गई हैं, सिवाय एक बात के। फ्रांस, जर्मनी आदि मुल्कों में किसानों ने लगातार विद्रोह करके और जमींदारों का सशस्त्र मुकाबला करके ही उन्हें मजबूर किया था कि अपनी शैतानियत से बाज आएँ और खुले आम किसानों के इन जंगल के हकों को कबूल करें। मगर यहाँ वह बात नहीं हुई। अगर कभी-कभी किसानों ने कुछ किया भी तो शान्ति से थोड़ा आगे बढ़के खुद दब गए,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दबा दिए गए। वे अपने बल से जमींदारों को विवश कर न सके, उनके मद को ध्वंस कर न सके। नदी-नालों पर रोक की बात तो पारसनाथ पहाड़ के झरनों और सोतों पर जैनियों के द्वारा डाले गए प्रतिबन्ध को ही याद दिलाती है। रिजर्व जंगल में भी जो यह रोक लगी है वह भी एकाएक याद हो आती है। जिस प्रकार 1789 में फ्रांस के धनियों ने किसानों के ये हक जबर्दस्ती छीन के बेरहमी से जमींदार को दे दिए ठीक वैसे ही यहाँ भी काम किया गया है। सनातन हक कलम की एक नोक से पूँजीपतियों की सरकार ने खत्म कर दिया और जमींदारों की पाँचों घी में कर दी।

यहाँ एक कमी और भी है। फ्रांस में तो एक ऐसा विद्वान कानूनदाँ हो गया जो सामन्त-युग के कानूनी हकों को खूब जानता था। इसलिए उसने 1760 में ही यह घोषित कर दिया था कि 'चाहे किसान इन अधिकारों का दुरुपयोग भी करें। फिर भी उनके ये हक कथापि छिन नहीं सकते। ये हक इतने सर्वजन प्रिय माने जाते हैं और लोगों के दिलों में ये इतने जमे हैं कि जो आगे पैदा होंगे उन्हें भी ये प्राप्त हैं। क्योंकि पुरानी रीति-रिवाजों के ही अनुसार ये हासिल हुए हैं, न कि कानून के जरिए। इसीलिए सदा रहने वाले हैं और इसीलिए जो अभी तक जनमे ही नहीं या आए ही नहीं, किन्तु भविष्य में आने वाले हैं उनके ये हक कैसे छिन सकते हैं? यह बात हो नहीं सकती, आदि।' मगर यहाँ ऐसे कहने-सुनने वाले विद्वान और ईमानदार लोगों का पता नहीं चलता। उनकी लिखी ऐसी बातें यहाँ पाई जाती ही नहीं।

कितनी सुन्दर और स्वाभाविक बात है कि जंगल के अधिकार कानून के जरिए न तो मिलते हैं और इसीलिए न छीने जा सकते हैं। ये तो परम्परा प्राप्त है। वंश परम्परा और रीति-रिवाजों के अनुसार ही हासिल हैं। इसलिए कानून का सिर्फ एक काम है और वह यह कि इन पर अमिट मुहर लगा दे और ताम्रपत्र में लिखके घोषणा कर दे कि ये हक आदि औलाद के लिए हमेशा कायम रहेंगे। ये कभी छीने जा सकते नहीं। यदि इसका दुरुपयोग भी किसान करें तो भी उनसे इन्हें कोई छीनने की हिम्मत कभी न करे, खबरदार। आजकल के दिमागदार और देश सेवक कहे जाने वाले कहते हैं कि किसान लोग अधिकारों का दुरुपयोग करते हैं। इसीलिए इनका छिना जाना या सीमित किया जाना जरूरी है। ऊपर के वाक्यों में आज से प्रायः दो साल पहले ही एक विद्वान ने इसका मुँहतोड़ उत्तर दे दिया है कि हर्गिज ऐसा नहीं हो सकता, नहीं होना चाहिए। यह तो सरासर जुल्म होगा। छीनना तो छीनना, वह तो कहता है कि इन्हें संकुचित भी नहीं कर सकते। किसान जितनी लकड़ी, जितनी घास, जितने बाँस वगैरह चाहे खुशी से ले सकता है। जब सभ्यता का इतना विकास नहीं हुआ था तब यह बात कही गई ठेठ सामन्त युग में। अब तो पूँजीवादी युग माना जाता है जहाँ सभ्यता अपनी टाँगें तोड़के बैठी है और अधिकारों की बड़ी छानबीन होती देखी जाती है। मगर फिर भी यह अन्धेर! देखें, कब यहाँ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के किसान अपने इस सनातन परम्परा प्राप्त अधिकारों को फिर पहले की ही तरह पूर्णरूप से प्राप्त करते हैं।

जंगल के अधिकारों के मुतल्लिक एक जरूरी बात कहके हम आगे बढ़ेंगे। जैसा कि पहले कहा गया है, लाह की बात लेके पलास वगैरह के पेड़ों पर किसानों का हक प्रायः छिन गया है। झारखंड के प्रायः सभी जिलों में कमोबेश लाह पैदा होती है। पलास, कुसुम (वनवृक्ष) और बेर के ही पेड़ों में यह होती है। इन्हीं पर लाह के कीड़े लगते हैं, लगाए जाते हैं और उन्हीं से लाह पैदा होती है। हमने पलामू में यह चीज आँखों देखी है। किसानों के दुखड़े भी हमारे सामने वहाँ खासतौर से पेश हुए थे। रांका की जमींदारी की बात थी। हम सुन के ताज्जुब में आ गए! मगर बात तो सही थी, सही है। जमींदारी के चलते जो न पाप हो जाए!

ऐसा होता है कि खेतों में पलास वगैरह के पेड़ लगे हैं और सर्वे की खतियान में वे खेत किसानों के कब्जे में ही उनके कायमी लिखे गए हैं। मगर ज्यादातर ऐसा किया गया है कि उन्हीं खेतों के भीतर के पलास वगैरह के पेड़ों पर कब्जा लिखा गया है जमींदार का। यह गजब की बात है। चारों ओर किसानों के ही खेत हैं। जमींदार की खास कब्जे की, जिरात या गैर मजरुआ जमीन कहीं एक इंच भी नहीं है। किसान बेचारे बराबर ही उन खेतों में खेती करते और फसल उपजाते हैं, रखवाली करते, सोते-बैठते और मरते-मिटते हैं! जमींदार का या उसके यमदूतों का पाँव भी वहाँ कभी नहीं पड़ता! फिर भी उन्हीं खेतों के बीच खड़े पलास के पेड़ों पर जमींदार का अधिकार और किसान का नहीं! यह तो महान अन्धेर है! यह भी नहीं कि उन पेड़ों को कभी जमींदारों ने ही लगाया लगवाया हो। वे तो जंगली हैं। यों ही पैदा हुए हैं। अब भी पैदा होते रहते हैं ! फिर भी जमींदारों के! गजब है! एक बार सर्वे खतियान में किसी अक्ल के अन्धे ने लिख दिया! फिर तो जो नए भी पेड़ पैदा होंगे वह जमींदार के ही होंगे! यह तो गजब की अन्धेरपुर नगरी है। कहते हैं, सर्वे के अफसर लोग बड़ी जाँच-पड़ताल करके असलियत का पता लगाते थे! तो क्या यही असलियत है? या कि उस समय संयोगवश शराब पीके वे मतवाले हो गए थे? या कि किसी और तरह की शराब के नशे ने अपना काम कर दिया?

यही हालत महुवा के पेड़ों की भी है। पलास वगैरह से तो लाह पैदा होती है और उससे मिलते हैं पैसे, काफी पैसे। मगर महुवा? उससे तो यह बात है नहीं। महुवा के फूल से तो शायद ही चार-आठ आने कभी मिल सकें। हाँ पहाड़ी इलाके के गरीबों का वह प्रधान खाद्य है। बेचारों को चीनी-गुड़ तो पहले मिलते न थे और न दूसरा खाद्य ही। इसलिए मीठे-मीठे महुवा के सूखे फूलों को जमा करके और सुखा के रखते थे, ताकि साल-भर आवश्यकतानुसार काम चलाते रहें। वे मीठे बहुत होते थे। गर्म भी इतने कि कुछ कहिए मत। मगर वे तो उन गरीबों के आधार ठहरे। हंड़िया नाम की उनकी अपनी शराब में भी शायद महुवों से मदद मिलती थी। चावल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के भात से ही यह शराब पहड़ी लोग तैयार करते और उसे ही पीते हैं। हमने कलेजे पर पत्थर रख के पहली बार एक किसान को देखा कि गमछे के किनारे एक मुट्ठी महुवा बाँधे बहुत सवेरे जंगल की ओर टांगी लिए चला जा रहा है। रोक के पूछा कि कहाँ जा रहा है? उत्तर मिला कि लकड़ी काटने जंगल में। कब लौटेगा, यह पूछने पर उत्तर मिला कि शाम के अँधेरे तक। अगले दिन बाजार में बेचने और उसी पैसे से गुजर करने की बात थी। पास में दिन-भर का खाना? मैंने यह सवाल किया। उसने वही मुट्ठी-भर महुवा दिखा दिया। चार पैसे भी थे। मैंने पूछा, 'और ये पैसे?' उसने कहा कि यह तो घाट पर जमींदार के चौकीदार को देंगे! रोज-रोज यही करते हैं। मुश्किल से दो आने की लकड़ी लाते हैं! उसमें एक आना तो जमींदार का ही हुआ। लकड़ी लाने और बेचने में दो दिन लग जाते हैं। क्योंकि पहला दिन तो लाने में ही जाता है। बाजार दूर है। जाने-आने में दूसरा दिन खत्म! एक आना रोज की कमाई! इतनी मेहनत! फिर भी खाने को सिर्फ मुट्ठी-भर महुवा! एक आने में ही तो दो दिन गुजर करना था। फिर बच्चे और कपड़ा-लत्ता चाहिए। ऐसी दशा में मुट्ठी-भर महुवा से ज्यादा कैसे मिलता? हाँ, जमींदार को तो पूरे एक आने मुफ्त ही मिले! उसकी हड्डियाँ साफ दीखती थीं। गिन सकते थे कि कितनी हैं। मेरी हिम्मत टूट गई। बोल न सका! दिल में आया कि यदि अभी धरती फटे तो शर्म से समा जाऊँ। नहीं तो जमींदारी को और वर्तमान समाज को मिटा के ही छोड़ूँ!

यह है संक्षेप में महुवा की दर्दनाक दास्तान! खूबी तो यह है कि महुवा के पेड़ों पर भी जो खेतों में भी होते हैं और बाहर भी, जमींदार का ही कब्जा लिखा रहता है। मगर ये होते हैं काफी फैले। इसलिए एकाध कट्ठे में फसल होने ही नहीं देते। पलास तो ऐसे होते नहीं। मगर महुवा महाराज तो बड़े ही खतरनाक होते हैं। यह कोई नहीं पूछता कि यदि वे जमींदार के हैं तो खेत की फसल मारने का हर्जाना जमींदार क्यों नहीं देता? नहीं तो कम से कम उतनी जमीन का लगान तो छोड़ दे जितनी की फसल मारी जाती है। मगर यह पूछे कौन? यहाँ तो कुएँ में ही भाँग पड़ी है! म्याऊँ का ठौर कौन पकड़े? सबके सब तो जमींदार के दोस्त-दलाल ही ठहरे। और किसान सभा वालों की सुने कौन? वे तो सरकार तथा जमींदार दोनों के ही बागी ठहरे।

सबसे दर्द की बात तो यह है कि उन महुवा, पलास आदि पेड़ों का बन्दोबस्त उस किसान के साथ न करके हमेशा गैरों के साथ ही ये जमींदार भलेमानुस करते हैं? क्यों? इसीलिए कि अपने खेतों में दूसरों को जाने देना किसान चाहेगा नहीं। फलतः मजबूरन औरों से भी ज्यादा पैसे देके खुद बन्दोबस्त लेगा। इसे ही रक्त चूसना कहते हैं। जमींदार किसानों से खून निकालने की बेदर्द कोशिश उसी तरह करते हैं जिस तरह सूखी हड्डी से खून निकालने की कुत्ते करते हैं! किसान हजार चिल्लाए। मगर सुने कौन? सरकार बहरी, उसकी कचहरियाँ बहरी, हाकिम बहरे, पुलिस बहरी,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नेता बहरे, साधु-महात्मा बहरे, देवी-देवता बहरे और भगवान भी बहरा!

मेरे सामने जब यह दुखड़ा पेश हुआ तो मैंने मीटिंगों में साफ ही कह दिया कि 'यदि ऐसी अन्धेर है और जमींदार नहीं मानते हैं तो उन्हें गैरों के साथ इन पेड़ों का बन्दोबस्त करने दो और चुपचाप रहो। मगर डंके की चोट सुना दो कि बन्दोबस्त लेने वालों को हमारे खेतों से कोई ताल्लुक नहीं। हमारे खेतों में पाँव देने का उन्हें कोई कानूनी या नैतिक हक नहीं, जब तक हम आज्ञा न दें। और हम तो साफ कहते हैं कि किसी दूसरे का पाँव खेतों में धरने हर्गिज न देंगे। पहले से ही सुना देते हैं। लोग सजग हो जाएँ, बन्दोबस्त और ठेका लेने वाले सँभल जाएँ। हवाई जहाजों से, जादू मंतर से या जैसे हो, ऊपर ही ऊपर उड़ के पेड़ों पर आएँ और बिना जमीन छुए ही ऊपर से ही लाह या महुवे के फूल लेके चले जाएँ। तभी खैरियत है। तब हम कुछ न बोलेंगे। मगर अगर उनने हमारे खेतों में अपने पाँव दिए तो जान लें कि हम उन पाँवों को तोड़ देंगे और इसमें अपराधी वही होंगे। हमारा इसमें कुछ भी दोष न होगा। यह बात तो वे लोग कभी भूलें मत आदि-आदि। बस, तुम्हारी जीत होके ही रहेगी। यही तो सीधी दवा है। मगर है यह अचूक। आज भी मैं यही उपाय उन किसानों को बता सकता हूँ। दूसरा उपाय मेरे पास है नहीं। जालिम लोग आरजू-मिन्नत से या गिड़गिड़ाने से कभी नहीं मानते। बल्कि और ज्यादा हिम्मत से जुल्म करने लग जाते हैं। किसानों में स्वावलम्बन आए और वे अपने पाँवों पर खड़े हों, तो उनका बेड़ा पार हो। वे हक के लिए मरना मिटना सीखें, निर्भय बनें और संगठित हों। क्योंकि एक-दो-चार के ऐसा कहने से भी जमींदार न मानेंगे जब तक सामूहिक रूप से उन्हें इन पेड़ों के बारे में डट के ललकारा न जाए। ज्योंही किसानों ने व्यापक और सामूहिक रूप से मीटिंगें करके और नोटिसें बाँट के ऐसी ललकार शुरू की कि जमींदार और उनके ठेकेदार दोनों ही पस्त हो जाएँगे।

3.12.41 । महुवा के सम्बन्ध से हमें एक महत्त्वपूर्ण घटना याद आ गई। जब पलामू के दौरे के सिलसिले में 1939 के दिसम्बर में हम महुवाडांड़ गए थे तो वहाँ जो कुछ देखा कभी भूलने का नहीं। कई मील से ही वहाँ के आदिवासी किसानों ने बड़े-बड़े झंडों के साथ गाँव से जुलूस में निकल-निकल के हमारा स्वागत किया। हमने तरह-तरह के झंडे पहले-पहले वहीं देखे। किसान स्त्री, पुरुष, बच्चे ऐसे सीधे और भोले कि कुछ पूछिए मत।

फिर जब हम मीटिंग में गए तो देखा कि डाकबँगले के लम्बे मैदान में ही सोलहों आने स्वदेशी ढंग का मंच बना है। जंगली डाल पात से ही उसे सजाया था। ऊँचा काफी था। चारों ओर दल के दल स्त्री-पुरुष बैठे थे। बहुत बड़ी जमात थी। जाड़े के असली दिन और सबसे ठंडी वह जगह। नेतरहाट का पहाड़ जो सबसे ठंडा माना जाता है, महुवाडांड़ का पड़ोसी है। सभा से ही नजर आता था। फिर भी किसान स्त्री-पुरुषों के पास कपड़े कहाँ? मामूली ही कपड़े थे। वे तो यों भी अधनंगे होते

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ही हैं। मगर हृष्ट-पुष्ट, काले-काले और देखने में बड़े ही सुन्दर थे। मैं सदा इन लोगों की सुन्दरता और गठीले बदन को देख के मुग्ध हो जाता हूँ। यदि इन्हें घी, दूध और सुन्दर खाना मिलता, तब ये कैसे होते, यही तो बात सोचने की है।

उस अपार भीड़ के बीच मंच पर जाते ही मैंने जंगली पत्तों की बड़ी-बड़ी पुड़ियों में तीस-पैंतीस ढंग के फल-फूल वगैरह देखे। पूछने से पता लगा कि इन गरीबों की यही खुराक है। मगर जमींदारों के करते यह भी मिलने नहीं पाती! इस पर भी कर है! उफ! जंगली जड़ें, फूल, फल, पत्ते और उन पर भी आफत! कई तो चीजें इनमें ऐसी भी थीं जो बहुत कड़वी और एक तरह से जहरीली होती हैं। उन्हें बार-बार उबालने और पानी में देर तक डुबो रखने पर ही गले के नीचे जैसे-तैसे वे लोग भी उतार सकते हैं! आखिर भूख तो मानती ही नहीं। दृष्टान्त के लिए (1) गेंठी को लीजिए। यह एक जड़ है। इसे लगातार चार बार उबालने के बाद सारी रात पानी में डाल रखते हैं। तब कहीं खा सकते हैं। इसी तरह (2) सरई को लीजिए। यह बड़ी ही कड़वी होती है। यह है साखू के पेड़ों का फल। इसे छह बार पानी में उबालना जरूरी होता है। इन दो के सिवाय कुछ के नाम ये हैं, (3) तेंद, (4) डिंठोरा, (5) जंगली बेर, (6) गूलर, (7) पीपल, (8) बड़, (9) गूलर के फल, (10) पाकड़ के फल, (11) महुवा, (12) चकौंढ़ की पत्ती, (13) क्योनार की पत्ती वगैरह। ये चीजें वे पैदा नहीं करते। पैदा की गई चीजें हैं—(14) गोंदली, (15) सुरगुजा, (16) कोदो, (17) मड़वा, (18) सावाँ (19) कुर्थी, (20) बटरा, (21) जटंगी (एक प्रकार का तेलहन), कहीं-कहीं (22) रहर, (23) उड़द भी पैदा होती है। मगर बहुत ही कम। (24) जंगली बेल तो उनकी खुराक ही है। इसी तरह की दस-बारह चीजें और हैं। मैं उन्हें देख के ही मन में खूब रोया और सोचने लगा कि यदि संसार में कोई न्यायकारी सर्वशक्तिमान और दीनबन्धु भगवान होता उसका सिंहासन कभी हिलाया होता। इनसे बढ़ के दीन और निर्दोष भक्त कौन हो सकता है?

सभा में तो मैंने अपना हृदय निकाल के ही रख दिया। वे लोग मंत्रमुग्ध की तरह सुनते रहे। मैं तो ऐसी सीधी भाषा बोलने का आदी हूँ कि जंगल के किसान भी उसे समझ सकते हैं। गुजरात वगैरह में भी मुझे जंगली लोगों से काम पड़ा है। बातें सुनके उनका चेहरा खिल उठा। जब मुझे सभा में ही पता चला कि पास के पुराने रोमन कैथलिक मिशन वालों ने जिन्हें ईसाई बनाया है वे सभा में नहीं आए हैं। वे रोके जाते हैं आदि-आदि, तो मुझे बड़ा गुस्सा हुआ। मैंने साफ सुना दिया कि धर्म-मजहब से मुझे कोई मतलब नहीं है। मैं तो आदमियों से मिलना और बातें करना चाहता हूँ। मुझे तो उन्हें समझाना है। फिर चाहे वह किसी धर्म के हों। इसीलिए मुझे ईसाई धर्म से कोई भी लड़ाई नहीं। मगर जब उनकी यह हरकतें सुनता हूँ तो गुस्सा आता है। क्या वे प्रभु ईसू मसीह की भेड़ें तैयार करना चाहते हैं? यह तो गलत है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मैं समझता था कि ईसाई लोग आदिवासियों को भले ही ईसाई बनाते होंगे। मगर उसी के साथ उन्हें हकों के लिए लड़ना सिखाते होंगे। ऐसा देखा भी गया था कि चमार वगैरह ईसाई होते ही हिन्दू जमींदारों से कहीं-कहीं भिड़ गए थे। मैं यह भी सोचता था कि जब तक ये आदिवासी हिन्दू थे तब तक बेशक इनमें तीन गुण पाए जाते थे और वो थे सच बोलना, व्यभिचार से बचना और निर्भीकता। मगर उनका जीवन पशुवत् था। कम से कम हिन्दुओं ने उन्हें ऐसा ही बना दिया था। इसलिए ईसाई होते ही यद्यपि वे तीनों महान् गुण जाते रहे और यह पक्की बात है कि सभ्यता पिशाची जरूर ही उन तीनों को खा जाती है। उन्हीं की कब्र पर वह फलती-फूलती है। तथापि वे पशु से आदमी जरूर बनते होंगे और मर्द की तरह हक के लिए लड़ते होंगे। मेरा यह भी खयाल था जिन यूरोपीय देशों से ये पादरी यहाँ आए हैं वहाँ के किसानों ने तो क्रान्तियाँ की हैं और शहंशाहों के तख्त उलट दिए हैं। जंगल के हकों के लिए तो जैसा कि पहले कहा है उनने क्या-क्या नहीं कर डाला था। इसीलिए उन्हें यह शिक्षा भी दी जाती होगी।

मगर जब मैंने देखा और पास के गाँवों में जाके पूछताछ करके पता भी लगाया कि ईसाइयों को वे लोग मसीह के मेमने के रूप में ही रखते हैं और बाकी किसानों से उनकी निराली ही दुनिया बना छोड़ते हैं तो मुझे बहुत दर्द हुआ। इस बात की आशा न थी। पास-पड़ोस के ही अपने भाइयों से ही धर्म बदलते ही, वे लोग बिलकुल ही नाता तोड़ के गूलर के कीड़ों जैसी अपनी अलग दुनिया बना लें यह बात असह्य थी। तब तो मानना होगा कि ये मिशन भारी अनर्थ कर रहे हैं! केवल धर्म के नाम पर ही हिन्दुओं से लड़ा देना कोई अच्छी बात नहीं! यह तो संसार की पुरानी बीमारी है और हमारे अभागे देश में बुरी तरह फैली है। हम तो इससे बचना चाहते हैं और हमें आशा थी कि पश्चिमी देशों वाले ये मिशन इस बात की रोशनी वहाँ से जरूर ही अपने साथ लेके ही पहुँचे होंगे। फलतः रोटी, जमीन और हक के लिए ही ईसाई किसान भी लड़ना सीख गए होंगे। मगर यह न पाके हमें बड़ी निराशा हुई। यह हमारे लिए पहला ही मौका था। और जब हम पास के गाँवों में पूछताछ करने गए और यह देखने कि किसानों की दशा कैसी है तो हमें एक दो अजीब बातें मालूम हुईं।

पहली तो यह कि रास्ते में शाम को तीन-चार बच्चियाँ-बच्चे मिशन की तरफ जाते मिले। हमने कौतूहल से जानना चाहा कि इस समय ये कहाँ जा रहे हैं। जब हमारे 'किसान' जाति वाले एक साथी ने उनकी ही भाषा में उनसे पूछा तो उत्तर मिला कि 'पाप स्वीकार करने' के लिए फादर (पादरी गुरु) के पास जा रहे हैं। एक बच्ची ने यह उत्तर दिया और हमने सुना। हम समझी न सके कि यह माजरा क्या है। मरने के समय तो ईसाई पादरी पाप स्वीकार (confession) करवाते हैं ऐसा जाना-सुना था। यह क्या बात है? पीछे जाँच से पता चला कि प्रतिदिन दो-चार दिनों बाद फादर के पास जाके पाप स्वीकार करने का इनमें नियम है और जब घर वाले

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रायः काम के कारण छुट्टी नहीं पाते तो, बच्चे-बच्चियों को ही सब की ओर से कनफेशन करने को भेज देते हैं! यह खूब रहा! प्रतिदिन सारे कुकर्मों के धोने का यह अच्छा साबुन मिला! जैसे हिन्दू संध्या गायत्री के जरिए और मुसलिम नमाज के जरिए रोज-रोज पाप धोते हैं वैसे ही ईसाई कनफेशन के जरिए! इतिहास की ठीक ही पुनरावृत्ति हो रही है!

दूसरी बात यह मालूम हुई कि हिन्दू गुरुओं और मुसलिम पीरों की ही तरह पादरी गुरु साल में एक बार गाँवों में चेलों के पास जरूर जाते और खा-पी के तथा 'पूजा' के रूप में रुपया, कपड़ा वगैरह लेके लौट आते हैं। हो सका तो कुछ नए चेले भी जरूर बना लेते हैं! यह भी वही गुरुओं की 'रामत' हो गई! सिवाय धर्म के नाम पर पाखंड फैलाने के और कुछ भी सामयिक उपदेश गृहस्थों को वे भी नहीं देते! खुदा खैर करे!

अब महुवाडांड़ की सभा की एक ही बात रह जाती है और है वह दिलचस्प। सभा के बाद सभी किसान, जो दूर से चावल, लकड़ी और हांडी साथ लेते आए थे वहीं ठहर के जत्थे-जत्थे खाना पकाने लगे। उनके खाने के पूर्व ही मैं सो गया। मगर अचानक आधी रात में नींद टूटी तो मृदंग वगैरह बाजे की ध्वनि के साथ गाने की मधुर तान सुनी। बाहर निकल के देखा तो जगह-जगह स्त्री-पुरुष गिरोह के गिरोह नाच गान कर रहे हैं! कितने ही गिरोहों में एक दल स्त्रियों का और दूसरा पुरुषों का आमने-सामने खड़ा चक्कर देता और नाचता गाता है। ऐसी सुन्दर चीज कि क्या कहा जाए? नाच गाने के साथ व्यायाम और परिश्रम भी कितना सुन्दर! नजदीक से देखा! स्त्री-पुरुषों की होड़ भी खूब थी! सारी रात यह बात चलती रही! जरा भी विराम नहीं! ठेठ सुबह उजाले में कहीं जाके खत्म हुई! किसी ने पलक भी न मारी! पहले सोचता था कि कपड़े बिना कड़ाके के जाड़े में यहाँ मैदान में इनकी रात कैसे कटेगी। मगर उत्तर मिल गया! व्यायाम भी हुआ, मनोरंजन भी, कला भी कायम रही और जाड़ा भी कट गया! वाह रे दिमाग जिसने एक ही साथ चार सुन्दर काम करने का रास्ता साफ किया! रात-भर आग भी जगह-जगह जलती जरूर रही। मगर उसके नजदीक ज्यादा देर तक तो कोई बैठ न सका! यह स्वर्गीय दृश्य मैं भूल नहीं सकता। गुजरात के जंगली प्रदेशों में भी मैंने ऐसा ही देखा है। दूसरी जगह भी ऐसा ही होता है!

अब जंगल के कष्टों से ही ताल्लुक रखने वाली खास बात एक ही रह जाती है और है वह बड़ी ही सख्त। मैंने उसके करते गरीब किसानों को छाती पीटते और हाथ मारके रोते देखा है। उसके चलते वे लुट जाते हैं, तंग तबाह हो जाते हैं, सर्वस्व गँवा देते हैं। वे तो सचमुच लुट जाते हैं और उनकी कमर सीधी हो नहीं पाती। बात असल यह है कि काजीहाउस या अड़गड़े जंगली प्रदेशों में अकसर होते हैं जिनमें पशु घुसा दिए जाते हैं। यों तो अड़गड़े सर्वत्र ही कसाई खाने का काम करते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उनमें जाने वाले पशु घास और पानी बिना मर जाते हैं। देखने के लिए शायद ही नाममात्र को जरा मरा चारा उनके सामने फेंक दिया जाता हो। मगर दरअसल पशुओं को वहाँ मार ही डालते हैं! मैंने इसका खूब अनुभव किया है। ये सभ्य कसाई खाने क्यों बने, यह समझने में मैं तो असमर्थ हूँ।

मगर जंगलों के अड़गड़े तो गजब के होते हैं! जरा भी जंगल के चपरासी किसानों से रंज हुए या जमींदार के अमले रंज हुए कि ढूँढ़-ढाँढ़ के उनके सभी पशुओं को जबर्दस्ती काजीहाउस में घुसा देते हैं! एक-एक बार पचास-पचास सौ-सौ या उनसे भी ज्यादा! और उन्हें वापस लाने में जुर्माना देना होता है उसके करते किसान का घर-बार और जमीन बिक जाती है। कानून ऐसा है कि रोक सकते नहीं। नहीं तो फौजदारी में जा फँसें! दिन-रात साबका पड़ने के कारण दूध, दही, घी, घूस वगैरह न देने पर अमले और चपरासी खामख्वाह रंज होते ही हैं! किसानों ने हजारों बार खून के आँसू बहाके कहा है कि किसी प्रकार ये काजीहाउस तो यहाँ से मिटें! तब तो उन्हें साँस आ जाएगी।

(7)
कमिया के कष्ट और सूदखोरी की लूट

झारखंड के खेतों के मजदूरों की, जिन्हें कमिया भी कहते हैं, भी बड़ी दुर्दशा है। पलामू जिले में इन्हें बहुत जगह सेवकिया कहते हैं। सेवकिया शब्द 'सेवक' से बना है और सेवक का अर्थ है आमतौर से गुलाम। कमिया भी 'काम' से बना है। काम के मानी हैं वही सेवा या सेवकाई। बिहार में तो आमतौर से कमिया शब्द ही प्रचलित है। मानभूम और हजारीबाग में अकसर कमिया की जगह मूनिस और घरभतुआ भी कहा जाता है। मगर मूनिस और घरभतुआ में थोड़ा फर्क है। दोनों सोलह आना एक-से नहीं हैं। जो लोग थोड़े ही समय के लिए (temporary) रखे जाते हैं उन्हें आमतौर से मूनिस कहते हैं। लेकिन जो ज्यादा दिनों के लिए रखे जाते हैं उन्हें आमतौर से घरभतुआ कहा जाता है। मुनिस शब्द कैसे बना पता नहीं चलता है। मगर घरभतुआ तो साफ है। उन्हें अपने यहाँ रखनेवाले घर पर ही भात खिलाते होंगे। इसी से घरभतुआ कहाए। क्योंकि रात में चाहे सोने के समय घर भले ही चले जाते हों। मगर दिन-भर तो मालिक के यहीं रहना जरूरी था। इसलिए वहीं भात खाते थे। अब चाहे यह बात न भी हो। मगर शुरू में यही रही होगी। दूसरे-दूसरे नाम भी प्रचलित होंगे। सबों की जानकारी हमें है नहीं। उसकी जरूरत भी नहीं है। हमें तो नमूने के तौर पर कुछ नाम कह देने हैं। चीज तो सर्वत्र एक-सी है। क्योंकि कमिया की प्रथा, जिसे कमिऔती कहते हैं, बिहार में और दूसरे नामों से अन्य प्रान्तों में भी है। इसका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ज्यादा विचार हमने 'खेत-मजदूर' में किया है।

अब जरा सेवकिया की बात पहले सुनिए। यह ठीक है कि झारखंड में जो जमींदार, बनिए या दूसरे सभ्य कहे जाने वाले बाहरी लोग हैं उन्हीं के यहाँ सेवकिया, कमिया, मूनिस, घरभतुआ वगैरह पाए जाते हैं। यहाँ के असली किसानों या आदिवासियों के यहाँ एक भी कमिया न मिलेगा। हाँ, जो अब सभ्य हो रहे हैं और जमींदार या भारी खेतिहर बने हों उनकी बात हम नहीं कहते। वे हैं तो कहीं-कहीं एकाध ही। वे लोग ऐसा पाप कर सकते हैं। आखिर सभ्य जो हो गए हैं!

हालत यह है कि विवाह शादी या किसी भोज वगैरह के मौके पर किसी गरीब को जमींदार, बनिया या ऐसे ही लोगों ने कुछ थोड़े से रुपए कर्ज दिए जो भोजभात में खर्च हो गए! मगर उन्हीं रुपयों के लिए वे जन्म-भर के लिए गुलाम बन गए। खाना कपड़ा पाते हैं और जीवन-भर गुलामी करते हैं। कभी-कभी तो ऐसा होता है कि बाप के मरने पर बेटा भी गुलाम बना लिया जाता है। जिन्दगी-भर कमाते रहने पर भी यह दस-बीस रुपए का मामूली कर्ज चुकता नहीं होता! यदि कहीं पचास साठ हुआ, तब तो आफत ही समझिए! यह तो खामख्वाह बेटे-पोते के सर पर भी चढ़ता ही है। हाँ, पाँच, दस-बीस हो तो शायद जिन्दगी-भर में फारखती हो जाए! सो भी कर्जदाता की नजरे इनायत पर ही यह बात निर्भर है। उसका सूद वह नहीं लेता यही गनीमत है! जिन्दगी-भर में फारखती हो गई तो उसे धन्यवाद दीजिए! बड़ा ही उदार आदमी ठहरा! अगर न हुई तो मरिए! कमिया को रद्दी खाना-कपड़ा ही देते हैं। यह ठीक है कि घोर देहातों में और जंगलों में ही सेवकिया या कमिया पाए जाते हैं। क्योंकि वहाँ आवाजाही का साधन न होने के कारण कोई छेड़छाड़ जो नहीं करेगा और सेवकिया पशु की तरह चुपचाप पड़ा रहेगा।

मूनिस तो मामूली मजदूर की तरह रहता है और काम न रहने पर चला जाता है—उसे टरका देते और जवाब दे देते हैं। उसकी मजदूरी क्या है एक सेर कच्चा चावल और तीन सेर धान या दूसरा अन्न! बस! बड़ी तकलीफ से उसका और बाल-बच्चों का काम चलता है। चावल की जगह कभी चिउड़ा भी देते हैं। यह है तो नाश्ता के लिए और धान या दूसरा अन्न होता है भोजनार्थ। एक के ही भोजन से दूसरों की भी गुजर कैसे हो?

हाँ, घरभतुआ को रोज खाना-कपड़ा के अलावा दस से चौदह मन तक धान भी साल में देते हैं। आषाढ़ से माघ तक ही ज्यादातर उसे रहना पड़ता है। बीच में जब कहीं कोई काम नहीं रहता तो उसे भी कभी-कभी छुट्टी मिल जाती है। असल में ये घरभतुआ और मूनिस तो खेती के ही मजदूर और गुलाम हैं जिन्हें पहले सर्फ (serf) कहते थे। ये लोग तो मामूली गुलाम या बिहार के खवास हैं नहीं। इसीलिए खेती का काम न रहने पर इन्हें छुट्टी मिल जाती है और शुरू होते ही घरभतुआ फिर आ जाता है। उसके साथ ऐसा ही तय रहता है। मगर मूनिस तो खामख्वाह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आएगा नहीं। दिल चाहा तो आया और काम मिला तो रह भी गया। यदि और जगह मिला तो वहीं चला गया। जहाँ जरा भी ज्यादा आराम मिलता है वहीं चला जाता है। इसीलिए मूनिस और घरभतुवा को आमतौर से कोई कर्ज नहीं रहता है। मगर सेवकिया और कमिया तो कर्ज में ही फँसा रहता है। वही तो पक्का गुलाम है। बेशक कमिया सर्फ है। मगर सेवकिया तो पक्का स्लेव (slave) है। इन सबों की भारी दुर्दशा है—इनका जीवन नारकीय है।

अब जरा सूदखोरी की बला तो देखिए। सीधे-सादे किसानों से काइयाँ सूदखोर शुरू में ही पूछते हैं कि 'कै सूद देवहीं?' कितने सूद साल में देगा? दो या तीन? वह कहता है कि "कतै लेबहू सरकार।' आप कितना लेंगे? यदि बड़ी दया हो गई तो दो, नहीं तो तीन तो खामख्वाह और हो सका तो ज्यादा भी। हर तीसरे-चौथे महीने सूद जोड़ के उसे मूल में मिला देना और इस मिले हुए पर सूद चालू करना यही दो सूद के मानी हैं। यदि तीन हुआ तो हर तीसरे-चौथे महीने सूद को मूल में मिलाते जाएँगे। जब तक साल के भीतर ही दो बार मिलाके उस पर तीसरी बार सूद चढ़ाने न लगें। चार होने पर साल के भीतर ही चौथी बार चढ़ने लगता है! यह है चक्रवृद्धि या सूद दर सूद का यह कितना भयंकर तरीका और प्रचार है! क्या ऐसी लूट झारखंड के सिवाय कहीं और भी आज सम्भव है? ऐसे भी नमूने देखने को पलामू वगैरह में मिले हैं, जहाँ नन्हे-नन्हे बच्चे बाप के मरने पर कर्ज देने वाले के यहाँ दिन-रात काम करने और डाँट-डपट सहने या मारपीट तक करवाने को मजबूर किए जाते हैं। एक बार तो ऐसा हुआ कि एक बिना जमीन वाले किसान को एक ने पाँच पसेरी मकई और आठ पसेरी जटंगी दी। दोनों की कीमत कुल तीन रुपए होती थी। उसके लिए उसने लगातार तीन साल उस पापी सूदखोर के यहाँ काम किया। मगर कर्ज चुकता होने के बजाए बढ़के पूरा सोलह रुपया हो गया ! जोड़ने वाले जोड़े कि साल में कितने सूद उसने लिये और दर क्या थी? शायद महीने-महीने ही सूद जोड़ा गया और दर थी कई सौ फीसदी! तभी तो काम करवाने पर भी तीन के सोलह हो गए? उसने तो काबुली सूद की भी नाक काट ली! खैर, पता लगने पर हमारे साथी ने डाँट-डपट के उस पिशाच से किसान का पिंड किसी तरह छुड़वाया।

ये सूदखोर होते हैं यों तो गाँवों और शहरों के बनिए। मगर शोषक गृहस्थ और टुटपुँजिए जमींदार भी यही पेशा करते हैं। इनके अलावा काबुली, गोसाईं, मुसलमान, पंजाबी, कान्यकुब्ज, भूमिहार, मारवाड़ी और अग्रवाल बनिए भी यह काम झारखंड के विभिन्न जिलों में यही कारबार करते हैं। राँची जिले में तो बिहार से गोसाईं और ब्राह्मण भैंसा (काड़ा) बेचने आते हैं। क्योंकि भैंसे हल में जोते जाते हैं। वही लोग उन्हीं रुपयों को सूद पर लगा के चले जाते और फिर समय पर आके सूद दर सूद के साथ वसूलते हैं। ये लोग घर-घर घूम के दो-चार रुपए ही कर्ज देते हैं। ज्यादा देने में वसूली में खतरा रहता है। सूद भी कस के नहीं मिल सकता।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दो-चार रुपयों का तो जितना भी सूद चाहे वसूल कर सकते हैं। आदिवासी किसान ज्यादा रुपए लेते भी नहीं। बीज आदि के लिए समय-समय पर दोई चार से इनका काम निकलता है। गोसाईं और ब्राह्मण लोग उन्हीं के यहाँ खाते-पीते भी हैं और रुपए लेके भिखमंगे के रूप में माँगते-खाते वापस जाते हैं। धरना देके और डरवा धमका के भी जल्दी ही वसूल कर लेते हैं। भोले-भाले किसान इनसे डरते भी हैं। वे ईमानदार भी पूरे होते हैं और वचन के भी पक्के। इसलिए वसूली में देर तो यों भी नहीं होती।

हाँ, गोसाईं, काबुली और पंजाबी तो बड़ी सख्ती और बेमुरव्वती से वसूली करते हैं। ये पापी ताक में रहते हैं। ज्योंही मजदूरों को वेतन मिला, मजदूरी मिली, या किसान के गल्ले वगैरह बिके कि इनने छापा मारा और बेरहमी से छीन ही के छोड़ा। छप्परों पर लाठियाँ पीटते भी हैं। मार-पीट भी कर डालते हैं। इनकी वसूली तो निरी लाठियों के ही बल से होती है। पंजाबी कपड़े बेचने आते और काबुली हींग वगैरह भी बेचते हैं। उधार बेच के एक के तीन कुछी महीनों में बना लेते हैं! बेचारे किसान को क्या मालूम कि ऐसा होगा। इसीलिए जब वसूली में देर होती तो मार-पीट, लट्ठबाजी, छप्पर पीटना जारी होता है।

सूद की दर आमतौर से महीने में एक से दो आना होती है। यह बात सभी जिलों में पाई जाती है। यों तो चार, छह और आठ आने तक भी हो जाया करता है। किसान की गरीबी और गर्ज के मुताबिक ही सूद की दर तय पाती है और वसूलने वालों की ताकत भी इस दर का फैसला करने में काफी मदद करती है। क्योंकि लिखा-पढ़ी तो कुछ होती नहीं। जितना वसूल कर सके उतना ही समझिए। कानून और कचहरी की बात तो है नहीं। हाँ, राँची और पलामू में ज्यादातर गल्ले के बारे में और रुपए के बारे में भी बढ़ी या बाढ़ी और डेढ़ी का तरीका है। बढ़ी का अर्थ है मूल का दूना और डेढ़ी की मानी है उसका ड्योढ़ा। ज्यादा से ज्यादा छह महीने में, नहीं तो उससे कम—तीन चार—में सूदखोर एक का डेढ़ जब वसूलते हैं तो उसे डेढ़ी कहते हैं। और अगर उनने एक का दो वसूल कर लिया तो बढ़ी या बाढ़ी समझिए। डेढ़ी मालूम होता है, आम चीज है। इसीलिए उससे बढ़ जाने के कारण ही दूने को बढ़ी या बाढ़ी कहते हैं।

हजारीबाग, मानभूम वगैरह में मारवाड़ी, दुकानदार, अग्रवाल बनिए और पंजाबी तीनों ही चीजें बेचते और पैसे कर्ज पर लगाते हैं। सौ में पंजाबी—10, अग्रवाल 60 और मारवाड़ी 30 हैं। पंजाबी, गोसाईं और काबुली का अनुपात 40:40:20 है। मारवाड़ी और अग्रवाल खेती भी करने लगे हैं। बाकी तीन खेती नहीं करते। यही आम बात है। मगर मारवाड़ी वगैरह छोटे-छोटे खेतिहर। बड़े-बड़े खेतिहर कान्यकुब्ज और भूमिहार हैं। ये दुकानदारी नहीं करते। गल्ला और रुपया सूद पर देते हैं। ज्यादातर गया जिले के मुसलमान सौदागर के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये खेती तो शायद ही करते हैं। कपड़ा बेचते

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और रुपया सूद पर देते हैं। कहीं-कहीं यजुर्वेदी या और लोग भी यह काम करते हैं। यही है संक्षेप में यहाँ के सूदखोर। अब जरा इनकी करतूतों का संक्षिप्त ब्योरा सुनिए।

जो लोग कपड़े या अन्न आदि की दुकानें करते हैं और उनके पास संथाल वगैरह खरीदने जाते हैं तो बिना पैसा चीजें देते हैं और दो या तीन सूद की बात तय करके बही में असली दाम का ड्योढ़ा लिख लेते हैं। मूल और सूद वसूली के लिए कहते हैं कि अन्न ही देना। डेढ़ रुपए में आठ आने के तीन अन्न तय कर देते हैं कि जनेरा (मकई), मड़ुवा और कोदो बीस-बीस सेर देना। यह बीस सेर मनमाना ही होता है, न कि कोई बाजार दर के अनुसार। संथाल बेचारा क्या समझे? आषाढ़ में यह बात तय पाई तो पहली वसूली अश्विन में, दूसरी पूस-माघ में और तीसरे फागुन-चैत में होती है। जिन वसूली के समय कुछ न मिला उसी में सूद और मूल को मिलाके मिले हुए पर आगे सूद चलेगा। अश्विन में न मिलने पर मूल डेढ़ और सूद डेढ़, कुल तीन रुपए हो गए। इसी तरह माघ में तीन के छह और चैत में बारह बने। सूद बढ़ाने के लिए ही किसान के देने पर भी नहीं लेते! फागुन-चैत के बाद जो सूद लेते हैं उसे धुरिकारी कहते हैं। हाँ, जो लोग कर्ज पर रुपए देते हैं वे हर महीने मारपीट से, छप्पर पीट के या जैसे हो सूद वसूल करी लेते हैं। क्योंकि यह तो गैर-कानूनी है। अदालतें तो ऐसा सूद दिलाएँगी नहीं।

कान्यकुब्ज और भूमिहार वगैरह की यह हालत होती है कि कर्ज देने के बाद दो-चार साल चुप रहते हैं। छोड़ देते हैं। पीछे दस-बीस गुना हो जाने पर सारी जमीन लिखवा के किसान को कमिया या मूनिस बना लेते हैं। एक ही जमा को बही पर भी सूदखोर लोग लिखते हैं और हैंडनोट भी बनवाते हैं। फलतः एक ही जमा दो हो जाती है। जिसका खेत नीलाम करवाया उसी के हल बैलों से उसी के हाथों जोतवाते बुवाते हैं। अपने पास तो दोई चार हल रखते हैं। यदि बेगार में काम करवाते एक वक्त सिर्फ खाना दे देते हैं हल बैल सभी के बदले में, और अगर कमिया बना के करवाते तो कही चुके हैं कि एक सेर चावल और दो सेर धान बहुत है। कमिया को यदि बीच में एक मन धान फिर कर्ज दिया तो वही धान दस वर्ष में पचास-साठ बन जाता है! यों भी मैंने किसानों के मुँह से डुमरी (हजारीबाग) में सुना कि एक मन का पूरा अस्सी मन बन गया! यदि उसे थोड़ी सी बँटाई जमीन दी, तो जमीन वाले का आधे से लेकर दस आने तक उपज में हिस्सा हो गया और किसान का छह आना! यों भी जमींदार लोग धान की खेती जगह-जगह खूब करते हैं। मौजों पर उनकी कचहरियाँ होती हैं जिन्हें भंडार कहते हैं। किसानों के हल बैलों से पहले जमींदार की खेती हो लेती है। पीछे किसान की होती है या यों कहिए कि चौपट होती है। पटाने का जल भी पहले जमींदार ही लेते हैं। पीछे बचने पर ही किसान पाते है! दृष्टान्त के लिए कतरास के पास नवागढ़ के जमींदार राजा नीलकंठ नारायण सिंह का भंडार लालूडीह में है। वहाँ किसानों की खेती पहले हो पाती नहीं। ऐसा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ही सर्वत्र होता है।

सूदखोर लोग किसानों को कैसे उजाड़ते हैं इसके दो-चार प्रसिद्ध दृष्टान्त हजारीबाग और मानभूम के सरहदी इलाकों से दे के यह दुःख गाथा खत्म करेंगे।

(1) पीरटांड (हजारीबाग) थाने के खुखरा मौजे के दुलारचन्द साहू ने उसी थाने के गम्हरा मौजे के खांड़ेमाझी को कुछी रुपए कर्ज दिए। पीछे गम्हरा और जितपुर गाँवों की तीन सौ मन सालाना धान उपजाने वाली सारी जमीन साहू ने नीलाम करवा लीं। खांड़े के मरने पर उसकी स्त्री से झूठ-मूठ कह के जमीनें नीलाम कराई। अब स्त्री और तीन बच्चे मारे-मारे फिरते हैं।

(2) दुलारचंद ने ही गम्हरा के जीतू मांझी की ढाई सौ मन धान वाली जमीन भी नीलाम करवा ली यों ही मामूली रुपयों के लिए। वह जीतू तीस साल का है। मारा फिरता है।

(3) दुलारचंद ने ही गम्हरा के मंगर महतो से 60 रुपए लेके एक जमीन जोतने को दी। कुछ दिनों बाद जमीन ले ली और रुपए भी वापस नहीं देता। वहीं की दो मुसमातों के साथ भी उसने ऐसा ही किया है।

(4) मानभूम जिले के तोपचांची में कपड़े और चावल की दुकान करने वाले श्री त्रिलोक सिंह पंजाबी उसी तोपचांची थाने के गनेसपुर के मंगरामांझी की डेढ़ सौ मन धान की जमीन नीलाम करवा ली। मांझी तो भाग के पीरटांड के केंहुवारी मौजे में ससुराल में चला गया। बूढ़ी माँ मारी फिरती है।

(5) गनेसपुर के ही चूनुमांझी, झरीमांझी और दरबनमांझी की 84 एकड़ लाखिराज जमीन थी। गोविंदपुर थाने के खरनी मौजे के बाबू मनभरन सिंह ने तीन-चार साल हुए सभी जमीन केवल सौ रुपए मूल में ही नीलाम करवा ली। पहले तो इजारा लिखाया। पीछे नालिश और डिग्री कराके नीलाम करवा ली। सिर्फ डेढ़ रुपया शेष उस सारी जमीन का देना होता है। हजार कहने पर भी किश्त करके लेने को राजी न हुए।

यह भी होता है कि यदि माझी किसी से मजदूरी करवाते हैं तो उसे कुछ जमीन भी दे देते हैं और वही एक सेर चावल तथा तीन सेर धान मजदूरी देते हैं। दूसरे लोग तो जमीन देते ही नहीं। सिर्फ दो सेर धान और एक वक्त का खाना देते हैं!

7

(8)
काश्तकारी कानून की दिक्कतें

संथाल परगने की तो बात ही निराली है। वहाँ तो कोई बाकायदा काश्तकारी कानून अभी तक हुई नहीं। कुछ नियम-कायदे और रेगुलेशन पुरानी या फरमान हैं और उन्हीं के आधार पर जो बातें तय पाई हैं उन्हीं के अनुसार वहाँ की जमीनों का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इन्तजाम होता है। यह कितनी अन्धेर है कि अब तक वहाँ कोई निश्चित काश्तकारी कानून बना ही नहीं। इस कमी को जाँच कमिटी ने भी महसूस किया है और छोटानागपुर के ही ढंग का वहाँ के लिए भी काश्तकारी कानून बनाने की सिफारिश उसने की है।

रह गई छोटानागपुर काश्तकारी कानून की बात। उसकी एक ही चीज हमें पसन्द आई। जहाँ बिहार के कानून में खड़ी फसल की जब्ती कुर्की की घृणित धाराएँ मौजूद ही नहीं हैं। किन्तु कांग्रेसी मंत्रियों ने उनकी धार ऐसी पैनी कर दी और उनका प्रयोग इतना आसान बना दिया कि जमींदार लोग किसानों का गला आसानी से साफ कर दें। तहाँ छोटानागपुर में उनने ऐसी दया नहीं की। पहले से भी ऐसी धाराएँ नहीं थीं और उनने भी नये सिरे न जोड़ीं। एतदर्थ उन्हें अनेक धन्यवाद!

मगर इसी के साथ यहाँ के कानून में जो सर्टिफिकेट या जब्ती कुर्की की खतरनाक धाराएँ पड़ी हैं वह नहीं निकाली गईं! बिहार के कानून से तो वे धाराएँ मंत्रियों को मजबूरन निकाल फेंकनी पड़ी। किसान सभा ने उनकी नाकों दम जो कर दी थी। पर हमें उस समय पता न था कि छोटानागपुर से वे निकाली ही नहीं गईं। असल में यहाँ के जो आदिवासी मेम्बर असेम्बली में हैं वे तो कुछ अजीब-से हैं। वे कांग्रेसी होने के नाते चुप्पी मारे रहे। हमें भी नहीं बताया! या कि, वे यह बात समझी न सके कि यह सर्टिफिकेट कौन सी बला है? इसी घपले में यह जहर का प्याला रही गया! ये धाराएँ किसानों की छाती पर बैठी कोदों दल रही हैं। शायद खड़ी फसल की जब्ती-कुर्की की ही जगह सर्टिफिकेट या जब्ती कुर्की को रख के प्रायश्चित्त किया गया है! जमींदारों को भी तो आखिर खुश करना था!

मगर इनसे भी बुरी जो चीज हमारी समझ में आई न सकी वह है उस कानून का एक लम्बा 13वाँ परिच्छेद ही, जिसे जमीन सम्बन्धी शर्तों का अध्याय कहते हैं और जिसमें कुल सत्रह धाराएँ हैं। इसे अंग्रेजी में चैप्टर ऑफ प्रीडियल कंडीशंस (Chapter of Praedial Conditons) कहते हैं। इस कानून में जगह-जगह इन शर्तों का जो जिक्र है और इस लम्बे प्रकरण में जो उनका पूरा विवरण दिया और गोत्रोच्चार किया गया है उससे स्पष्ट है कि हरी, बेगारी वगैरह गैर-कानूनी काम कह के जिन्हें और जगह पुकारा जाता है और जिनके मिटाने के लिए बड़ा तूफान मचाया गया है वही सब चीजें झारखंड में 'जमीन सम्बन्धी शर्तों' या 'प्रीडियल कंडीशंस' के नाम से कानूनी करार दे दी गई हैं। अजीब बात है। जिन बातों को अब अबवाब और गैरकानूनी काम कहके और जगह रोका गया है वही यहाँ कानूनी ठहराए गए हैं और उन पर कांग्रेसी मंत्रियों ने मुहर लगा दी है! जैसे भावली लगान को कानून के जरिए नगद बनाया जा सकता है। ठीक उसी तरह इन शर्तों के बदले जमींदार को नगद रुपए दे सकते हैं और ऐसा करने के लिए डिप्टी कमिश्नर के यहाँ भावली की ही तरह दरख्वास्त देनी पड़ती है। ये बातें उन्हीं धाराओं में लिखी हैं और नगद बनाने का लम्बा-चौड़ा तरीका तथा अदालती कार्यवाही विस्तार से वहीं लिखी गई है!

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जैसे संथाल परगने में अभी तक दामिन इलाके में रोड सेस के बदले सड़कों वगैरह की मरम्मत के लिए किसानों से बेगारी करवाने का तरीका था, मालूम होता है यहाँ भी जमींदार लोग पहले किसानों को कुछ खासतौर से ऐसी जमीनें दे देते थे जिनके बदले आहर, पैन, नहर आदि खोद खुदवाने का काम किसानों को ही करना पड़ता था। ताकि उनकी और जमींदारों की भी खेती के लिए पानी वगैरह का पूरा-पूरा इन्तजाम हो सके। जैसा कि बेठखेता की बात पहले कही चुके हैं, उसी तरह और भी जमीनें किसानों को इसीलिए दी जाती होंगी कि जमींदार की खेती में वे लोग मदद कर दें। लगान के बदले उनसे इसी तरह का काम लिया जाता होगा। इसी तरह ये जमीन देने के लिए कुछ खास शर्तें तय होंगी, जिन्हें पूरा करने वाले जमीन पाते होंगे। धारा 101(अ) से भी ऐसा ही प्रतीत होता है। सभी जगह पहले ऐसा ही होता था। सामन्त युग की तो यही रीति ही थी मगर आज तो नगद या गल्ले का लगान ठीक करके इस तरह के काम खत्म कर दिए गए हैं। जहाँ जमींदार लोग फिर भी करवाते थे वहाँ कानून के जरिए ये रोक दिए गए हैं। मगर छोटानागपुर में लगान के अलावा ये अभी तक पड़े हैं। हाँ, यदि किसान चाहे तो इनकी जगह नगद रुपए देने की बात तय करके इनसे पिंड छुड़ा ले! खूब है! छोटानागपुर में पुरानी सामन्त युग वाली बेगार (feudal levies) अभी जारी है! यहाँ के एम.एल.ए. लोगों को क्या यह भी नहीं सूझा कि इसे तो खत्म करवा दें? याकि उन पर कोई दबाव था?

इसी सिलसिले में मुझे एक बात याद आ गई! इस बार जेल में दो झारखंडी एम.एल.ए. लोगों से मेरी बात होते-होते प्रसंग छिड़ा कि यहाँ भावली में अठारह और बाईस के हिस्से की बात कैसी मानी गई! उनने उत्तर दिया—दोनों ने ही—कि इस बात का कानून बिहार के ही लिए बना था। छोटानागपुर में तो बना नहीं! मैं भौचक में आ गया! पर विश्वास न कर सका और छोटानागपुर के काश्तकारी कानून के पन्ने उलटने लगा! बहुत हैरानी के बाद मेरी नजर 79(अ) और 79(ब) धाराओं पर पड़ी। उनमें तो साफ-साफ वही बातें मिलीं जो बिहार के काश्तकारी कानून में हैं। मैंने उन्हें दिखाया और कहा कि कायमी जमीनों में दानाबंदी का हक अब जमींदार को है नहीं। वह तो पैदावार में से एक मन में 18 सेर से ज्यादा ले सकता नहीं! ऐसा करने पर उस पर केस चल सकता है! वे बेचारे ठक्क से रह गए और कुछ बोल न सके! बोलते भी क्या? जब उन्हीं को यह मालूम नहीं, तो फिर जमींदार क्यों इसके मुताबिक काम करने लगा? फलतः जैसा कि मुझसे कहा गया, छोटानागपुर में कहीं भी जमींदारों ने 18 और 22 का हिस्सा नहीं लिया! उनकी तो 'वही रफ्तार बेढंगी, जो पहले थी से अब भी है।' इसे ही कहते हैं अंग्रेजी कानून का इनसाफ और इसी का दमामा बजाया जाता है।

इससे किसानों की कितनी हकतलफी हुई इसका एक नमूना सुनिए। ताजे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आँकड़े तो मेरे पास नहीं हैं। मगर मैं 1917 वाला हजारीबाग का गजेटियर देखता था तो उसके 127वें पृष्ठ में उस जिले की उन जमीनों का ब्योरा मिला जिनका लगान नकद नहीं वसूल होके गल्ले के रूप में मिलता है। वह ब्योरा एकड़ों में यों है :—(1) खुटकट्टीदार (धानी) 29.15 और (भीठ या बारी) 25.86, (2) सेट्ल रैयत (धानी) 9331.90 और (बारी) 7934.30, (3) कायमी 452.89 और 694.94, (4) गैरकायमी 815.97 और 1278.60, (5) शिकमी 2084.51 और 3233.37। इस तरह देखा कि धानी और बारी जमीनें कुल मिला के करीब बीस हजार एकड़ निकलीं जिनकी दानाबंदी बन्द हो जानी चाहिए। अब तो बहुत ज्यादा बढ़ी होगी। सिर्फ सात ही हजार एकड़ के करीब गैरकायमी या शिकमी थीं जिन पर 18 और 22 लागू नहीं होता। हो सकता है, वह भी बढ़ी हों। इस तरह किसानों की कितनी हानि और जमींदारों की धाँधली होती है कानून की ठीक जानकारी नहीं होने के कारण!

जमींदार की जिरात या प्राइवेट जमीन के बारे में भी जो 118 धारा है वह ठीक नहीं है। जिस तरह बिहार वाले कानून में यह धारा दी गई है उसी तरह की यहाँ भी क्यों नहीं दी गई? एक तो इस धारा की उपधारा 1(ब) में जो मझिहस और बेठखेता को भी जिरात जमीन करार दिया है, वह ठीक नहीं है। वह तो ज्यादे से ज्यादा बकाश्त हो सकती थी। या नहीं तो किसान की रैयती। उसे जिरात करार देने का कोई उचित कारण नहीं दीखता। इस ढंग की जमीनें बिहार में भी 'जागीर' वगैरह के रूप में मिल सकती हैं जैसा कि पहले कहा है। और अगर वहाँ इन्हें जिरात का कामत नहीं लिखा, तो यहाँ भी लिखा जाना उचित नहीं है।

दूसरी बात है उपधारा 1(अ) की और यह तो खतरनाक है। उसमें भी पहले वही था जो बिहार के कानून में है। मगर 1920 में जो सुधार किया गया वही खतरनाक है। बिहार के कानून में लिखा है कि वह जमीन पट्टे पर चाहे एक या कई साल के लिए भी दी जाए, फिर भी जमींदार की जिरात ही रहेगी ज्योंही पट्टे की मीयाद पूरी हो जाए। और पट्टे के मानी ही हैं, रजिस्टरी के जरिए लिखा गया पट्टा। जबानी या बिना रजिस्टरी किए कोई भी पट्टेदार कहा जा सकता नहीं। मगर इस कानून में जो 1920 में संशोधन किया गया है कि 'या जो लिखा या जबानी पट्टा एक साल से कम के लिए दिया जाए।' इसमें सबसे बड़ा धोखा यही है कि जबानी या बिना रजिस्टरी के भी पट्टेदार हो सकते हैं और इससे सारा मामला खटाई में पड़ सकता है। उपधारा (2) में जो यह कहा गया है कि सरकार एक तारीख मुकर्रर कर देगी, जिसके बाद एक से ज्यादा साल का पट्टा जबानी नहीं हो सकता, उससे यह बात और पक्की हो जाती है कि जबानी भी पट्टा हो सकता है। इस तरह एक से ज्यादा साल तक जो लोग जमींदार की जिरात को बिना रजिस्टरी पट्टे के ही सिर्फ जबानी ही लेके जोतते रहे हैं उन्हें इस जमीन में इसी कानून की 19वीं धारा के अनुसार कायमी हक नहीं मिल सकता, जबकि शुरू में बनी 118वीं धारा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के अनुसार मिल सकता था। दूसरी दिक्कत यह हो गई कि एक साल या कम के लिए जब जबानी या बिना रजिस्टरी का ही पट्टा हो सकता है तो जमींदार किसी को ज्यादा दिन के लिए क्यों रजिस्टरी से देने जाए? ज्यादा से ज्यादा एक-एक साल के लिए देता जाएगा और उसका जिराती हक बना रहेगा। जब रजिस्टरी की शर्त थी तब वह ऐसा कर नहीं सकता था। ऐसा करने पर उसी 19वीं धारा के अनुसार किसान को कायमी हक जो मिल जाता है। इससे साफ है कि जमींदारों के ही फायदे के लिए यह संशोधन किया गया है, जो अनुचित है और कम से कम कांग्रेसी युग में तो यह कलंक मिट जाना चाहता था।

यह बात जरा पेचीदा है। इसलिए इसका कुछ स्पष्टीकरण जरूरी है। बिहार कानून की 20वीं और छोटानागपुर की 17वीं धारा के अनुसार मोटा-मोटी यह बात मानी गई है कि किसी मौजे में जो किसान लगातार बारह साल तक खेती करता रहे वह उस मौजे का सेट्ल्ड रैयत या देही किसान माना जाता है। यह जरूरी नहीं है कि वह एक ही जमीन में बारह साल करता रहे, या कायमी में करे। किसी तरह बँटाई वगैरह के जरिए भी किसान के परिवार में बारह साल तक लगातार खेती होती रहना जरूरी है। चाहे एक ही पीढ़ी ने 12 साल किया या दो-तीन ने भी। इससे कोई फर्क नहीं होता। उस परिवार की खेती से ही मतलब है।

इसके बाद बिहार की 21वीं और यहाँ की 19वीं धारा के अनुसार उस देही रैयत के जोत में जोई जमीन आ जाएगी, चाहे वह जिरात हो या बकाश्त, उस पर उसका कायमी हक हो जाएगा और जमींदार अपनी मर्जी से उसे बेदखल नहीं कर सकता। केवल उचित लगान ले सकता है। जमींदार लोग इसी धारा से बचने के लिए हजार उपाय करते हैं और जालफरेब, धोखाधड़ी सब कुछ कर डालते हैं। उससे बचने का कानूनी उपाय किसी हद तक जिरात जमीन में होता है और यही बात बिहार की 120वीं तथा यहाँ के कानून की 118वीं धारा में की गई है।

यह भी जान लेना चाहिए कि जमींदार की जिरात जमीन तो तय है। वह बढ़ नहीं सकती। काश्तकारी कानून पहले पहल बनने के बाद जो पहला सर्वे हुआ था उसमें जाँचने पर जब पता चला कि लगातार बारह साल से जमींदार अपने ही हल बैल से अपनी ही जमीन में खेती करता आ रहा है तभी वह जमीन जिरात लिखी गई। मगर जिसमें जरा भी गड़बड़ी मालूम हुई वह बकाश्त या खुदकाश्त लिखी गई। उसके बाद जो भी जमीन किसी तरह जमींदार के कब्जे में आई है या आती है वह जिरात न हो के बकाश्त ही बनती है।

अब 19वीं धारा (बिहार की 21वीं) के अनुसार बकाश्त जमीन पर तो देही किसान का हल गया और वह उसकी कायमी हुई। यह ठीक है कि चोरी या बिना पूछे जमीन पर हल नहीं जाना चाहिए और कोई किसान ऐसा करने की हिम्मत भी कैसे कर सकता है। जमींदार मजबूरी से या किसी और कारण से जब किसान को

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

या तो हुक्म देता है, या कम से कम इतना ही करता है कि नीलाम करवाने पर भी किसान के ही कब्जे में छोड़ देता है तभी तो किसान जोतता है। इसलिए उसका कायमी हक हो जाता है।

लेकिन जिरात जमीन में जरा सी गड़बड़ी है। देही किसान उसे भी जोतते ही कायमी बना लेता है। मगर अगर जमींदार ने रजिस्टरी पट्टे के जरिए किसान के साथ जिरात का बन्दोबस्त कर दिया तो उस पर कायमी हक न होगा और पट्टे की मीयाद के पूरा होते ही जमींदार का उस पर फिर जिरात के रूप में ही कब्जा हो जाएगा। और आमतौर से होता यही रहा है कि बिना रजिस्टरी के ही यों ही जमींदार ऐसी जमीन दे देते रहे हैं। पूछने कौन जाता था? मगर ऐसा करने पर तो खतरा यही है कि किसान की रैयती हो जाएगी। इसी खतरे को बचाने के लिए छोटानागपुर के कानून में ऐसी तरमीम (संशोधन) कर दी गई कि बिना रजिस्टरी वाला या जबानी भी पट्टा माना जाए। नहीं तो कायदा यही है कि पट्टा उसे ही कहते हैं जिसकी रजिस्टरी की जाए। दूसरे ढंग की चीज को पट्टा कह नहीं सकते। हम चाहते हैं कि यह चीज न रहे और यहाँ के तथा बिहार के कानून जिरात के बारे में समान ही रहें।

हमें यह देखके ताज्जुब हुआ कि जहाँ बिहार के कानून में किसानों को अपनी कायमी जमीन में पेड़, बाँस वगैरह लगाने और इसे काटने का तथा मकान, ईंट, खपड़ा, कुआँ, तालाब घरगिरस्ती के कामों के लिए बनाने का पूरा हक दिया गया है तहाँ यहाँ के कानून में यह बात है नहीं। और संथाल परगने में तो और भी गड़बड़ है। क्योंकि वहाँ तो कोई काश्तकारी कानून है नहीं। यही कारण है कि बाग वगैरह के लगाने पर जमींदार यहाँ के किसानों को बहुत परेशान करते हैं और न सिर्फ जमीन छीन लेते हैं, किन्तु हर्जाना भी वसूलना चाहते हैं। संथाल परगने के गोड्डा इलाके में तो कांग्रेसी मंत्रियों के समय में भी ऐसी दिक्कत हुई थी और आखिर पीछे लड़ते-लड़ते हाईकोर्ट से किसान हार भी गए।

इन चीजों के हकों के लिए बिहार में हमें बड़ी लड़ाइयाँ लड़नी पड़ी हैं। यह तो बहुत ही प्रसिद्ध बात है। तब कहीं जाके यह हक हासिल हो सका है। बिहार प्रान्तीय किसान सभा का जन्म ही इसी बात को लेकर हुआ था। मगर अफसोस कि सूबे के एक हिस्से के किसानों को जहाँ यह हक मिला है तहाँ उसके दूसरे पूरे आधे हिस्से को अब तक इस हक से महरूम रखा गया है। यह तो निहायत ही अनुचित है। हमने इस कानून को अच्छी तरह पढ़ा न था। इसी से हमें इसका पता ही न था। यह नहीं कि छोटानागपुर वालों को या संथाल परगने को इसकी जरूरत ही नहीं है। जरूरत तो ऐसी है कि कुछ पूछिए मत।

मनीआर्डर से लगान भेजने की बात में भी यहाँ दिक्कत है। बिहार के और यहाँ के भी कानून में पहले भी यह बात मानी गई थी कि किसान मनीऑर्डर से

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भी जमींदार के पास लगान भेज सकता है। कभी-कभी जमींदार लगान लेते ही नहीं और किसान को दिक करना या चुपके से बाकी लगान की नालिश और डिग्री कराके जमीन ही छीनना चाहते हैं। लेते भी तो रसीद नहीं देते। इसीलिए मनीऑर्डर से भेजने का हक किसान को दिया गया था।

मगर फिर गड़बड़ी चली। ऐसा होता कि वे मनीऑर्डर लौटा देते और नालिश ठोक देते। यदि किसान मनीऑर्डर का कूपन पेश करता तो उसे जाली ठहराते। फलतः डाकिए या पोस्टमैन की गवाही की जरूरत होती और यह काम किसान के लिए असम्भव सा हो जाता। पोस्टमैन कौन है, कहाँ है, आए न आए, उस पर जमींदार दबाव डाले, कहीं दूर बदल के चला गया, वगैरह दिक्कतें थीं। इसीलिए आन्दोलन हुआ। जिसके फलस्वरूप बिहारी कानून में तो 54वीं धारा में उपधारा (3) जोड़ दी गई। मगर यहाँ की 53वीं धारा में, जिसमें मनीऑर्डर की बात है, कुछ नहीं जोड़ा गया! यह अजीब बात है! उसके जोड़ने से यह हो गया कि कूपन पेश करने से ही काम चल जाता है! पोस्टमैन की गवाही साखी की जरूरत नहीं होती।

बकाया लगान की तमादी के लिए जो 231वीं धारा में एक साल की ही मीयाद रखी गई है वह तो अच्छी है। बिहार में भी भावली के लिए ऐसा ही है। मगर नगदी के लिए जो वहाँ तीन साल की मीयाद है वह ठीक नहीं है। संथाल परगने की जाँच कमिटी ने जो दलीलें, वहाँ के प्रधानों और उन्हीं के द्वारा किसानों की तबाही बचाने के लिए, एक ही साल के बाद तमादी होने बारे में 56वें पृष्ठ के 150वें लम्बे पैराग्राफ में दी हैं वही सर्वत्र लागू हैं और हम सरकार तथा जमींदारों से कहेंगे कि फिर से सोचें और हमारी बातें ठीक गुजरेंगी। इसलिए इस मामले में यहाँ का कानून अच्छा है। मगर अफसोस यह कि कुछ दूर बाद 234वीं धारा में मुंडारी खुटकट्टीदार के लिए न जाने क्यों तीन साल की मुद्दत कर दी गई है। हमारे जानते यह बात गलत है और मिट जानी चाहिए।

यहाँ के कानून की 60वीं धारा में लिखा गया है कि किसान के खेत की पैदावार में सबसे पहले (first charge) लगान ही का हक होता है। यही बात बिहार के कानून की 64वीं धारा में भी है। मगर इससे क्या? हम इस चीज के सख्त दुश्मन हैं। यह तो सिद्धान्त ही गलत है। मुनासिब तो यह है कि पैदावार में सबसे पहले खर्च कटे और उसके बाद किसान परिवार के खाने-पीने वगैरह की बात आए। लगान का सवाल तो उसके बाद ही उठना चाहिए। कोई भूखे-नंगे रहके लगान चुकाएगा नहीं और न सरकार या जमींदार ही यह बात साफ-साफ स्वीकार करने की हिम्मत कर सकते हैं। मगर खेती का खर्च तो उससे भी पहले आता है। वह तो अनिवार्य है। वह तो पैदावार के पहले से ही शुरू हो जाता है। ऐसी दशा में जो वस्तुस्थिति है उसी को कानून में भी कबूल क्यों नहीं किया जाता? और अगर नहीं, तो साफ-साफ वहीं लिख क्यों नहीं दिया जाता कि भूखे, नंगे और दवा के बिना मरके भी लगान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चुकाना ही होगा? बात बोलना दूसरी। मगर मतलब उसका यही हो। यह बात—यह तरीका—धोखे का है। इसी से छोड़ना पड़ेगा।

यह ठीक है कि झारखंड के असली किसानों आदिवासियों तथा पिछड़े लोगों के बारे में काश्तकारी कानून में शर्तें दी गई हैं जिनके करते दूसरे लोग आमतौर से इनकी जमीनें खरीद नहीं सकते और न इजारा या रेहन वगैरह में ही ले सकते हैं। इनकी अपनी बिरादरी और दल के ही लोग, सो भी उसी थाने के ही ले सकते हैं और वह भी पाँच, सात या ऐसे ही सीमित समय के ही लिए। उसके बाद ज्यादातर जमीनें पुनरपि किसानों के पास लौट जाने का भी नियम है। यह बात तो ठीक ही है। मगर क्या इन शर्तों का जो लक्ष्य है वह पूरा होता है? उद्देश्य तो यही है कि जमीनें किसानों के हाथ से बनियों या धनियों के पास या बाहरियों के पास जाने न पाएँ। मगर क्या ऐसा होता है? इस समय मेरे कागजात नहीं हैं कि आँकड़े पेश करके बताऊँ कि यह लक्ष्य पूरा नहीं हुआ है, नहीं हो रहा है।

बीसवीं सदी के शुरू में ही इसी खयाल से पंजाब में किसानों की जमीनें बेचने का कानून (Land Alienation Act) बना। उसमें भी कुछ ऐसी ही शर्तें लगाई गईं ताकि किसानों की जमीनें गैर-किसान खरीद न सकें। मगर नतीजा क्या हुआ? क्या मकसद पूरा हुआ? हर्गिज नहीं। जाल फरेब और बेनामी तरीकों से एक तो गैर-किसानों ने फिर भी जमीनें हड़प ली हीं। दूसरे किसान ही दूसरों की जमीनें खरीद-खरीद करके बनिए-महाजनों से भी खतरनाक बन गए। आखिर बनिए-महाजनों के सींग-पूँछें तो होती नहीं। वे भी तो यही करते हैं और ऐसा करते ही करते पीछे चलके खतरनाक बने, बनिए-महाजन बने। शुरू में तो कोई भी बनिया-महाजन था नहीं। फिर किसान भी क्यों न वैसे ही बन जाय? इसीलिए तो अब इधर फिर चार-चार कानून पंजाब में हाल में बनाए गए हैं जिससे जाल फरेब रुके। मगर उनसे भी कुछ होगा क्या?

असल में जड़ को तो पकड़ा जाता नहीं। किसान जमीनें बेचता है क्या शौक से? जो ऐसा समझते हैं वह भूलते हैं? जिन जमीनों पर उसकी पुश्तें मरखप गईं, जिनके खून को उनने पानी बना डाला, क्या उनसे ही उन्हें मुहब्बत नहीं होती? होती तो है ऐसी कि एक इंच के जाने पर उनका कलेजा कट जाता है। मगर करें क्या? मजबूरी जो ठहरी। माली हालत उन्हें मजबूर करती है। आखिर पेट और तकलीफ से मजबूर हो के कलेजे के टुकड़े निजी बच्चों को भी तो लोग बेचते ही या मार डालते ही हैं। बस यही बात यहाँ भी समझिए। उनकी माली हालत सुधार दीजिए, उसे सुधारने की मुनासिब तरकीब कर दीजिए। फिर देखिए कि जमीनें बिकती हैं या रुकती हैं। उसके बाद जरूरत देख के बेचने वगैरह पर पख लगाइए तो ठीक होगा। इसे ही जड़ को पकड़ना कहते हैं।

लेकिन इधर तो फिक्र है कि जमींदार को खामख्वाह लगान मिले चाहे फसल मारा ही क्यों न पड़े, किसान परिवार भूखा नंगा ही क्यों न मरे (लगान तो फर्स्ट

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चार्ज होगा)। तब तो हजार करने पर भी जमीनें चली ही जाएँगी। जब जमींदार को फिक्र होगी कि पैदावार बढ़े तभी लगान पाएगा तो वह खुद अच्छे बीज, सुन्दर खाद और काफी पानी वगैरह का प्रबन्ध करेगा। उसे और सर को भी तभी चिन्ता होगी कि किसान के लिए खेती के सिवाय दूसरी आय का भी प्रबन्ध हो, ताकि उसकी माली हालत सुधरे और लगान चुकता करे। यही है जड़ को पकड़ना। क्या सरकार ने, जमींदारों ने या नेताओं ने ईमानदारी से यह बात कभी सोची है? क्या उनने इसकी कोशिश तहे दिल से की है? जमीन तो नीलाम न हो। मगर सारी की सारी खड़ी फसल जब्त हो जाए, नीलाम हो जाए यह तो और भी बुरा है। इसीलिए न तो पंजाब में सफलता मिली और न दूसरी जगह। फसल का खाने-पीने भर का हिस्सा तो कभी नीलाम या जब्त होना ही नहीं चाहिए। इस ओर थोड़ा सा ध्यान यू.पी. में गया है और जब्ती के कानून कुछ ऐसी पख लगी है। मगर वह भी अधूरी है। देखते हैं झारखंड में भी पैदावार से ही लगान चुकता करने की बात बार-बार कही गई है। यह नहीं सोचा गया है कि किसान परिवार खाएगा क्या? असल में जिन चीजों से परिवार की गुजर हो उन्हें तो खुदा भी ले नहीं सकता, यही नियम-कानून बने तभी काम चल सकता है। दूसरा उपाय है नहीं।

यहाँ के कानून की 58वीं धारा में एक सुन्दर बात है। मगर उनमें जो थोड़ी सी कमी है वह यदि पूरी कर दी जाए तो वह बहुत ही अच्छी चीज हो जाए। उसमें लिखा है कि यों तो बकाया लगान पर आमतौर से रुपए में एक आना सूद साल में देना होता है। मगर अगर साल खत्म होने के पहले ही किसान लगान चुका दे तो किस्त बीतने के बाद जो सूद उससे लिया जाएगा वह रुपए में दोई पैसा सालाना की दर से होगा। बिहारी कानून में यह दो पैसे वाली बात नहीं है। इसी से यह उससे अच्छा है। मगर असल में होना यह चाहिए कि साल के भीतर चुका देने पर सूद एक पैसा भी नहीं लगेगा। सूद लगेगा साल के बाद ही। हमारा मतलब साफ है। साल-भर तक किसान को मौका दिया जाना चाहिए कि लगान चुकता कर दे। उसके बाद केस से या जैसे हो वसूली का यत्न होना चाहिए। कम में तो करना ही नहीं चाहिए। देर भी नहीं होने दी जाए। क्योंकि दो-तीन साल के बकाया में वह तबाह हो जाता है। क्योंकि रकम बहुत बड़ी हो जाती है जिसे वह आसानी से चुकता कर नहीं सकता।

हमने जो कुछ छोटानागपुर के काश्तकारी कानून के बारे में या यों कहिए कि समूचे झारखंड के ही कानून के सम्बन्ध में लिखा है वह खास-खास बातों को ही लेकर है। ये बातें ज्यादा मोटी हैं और आमतौर से सबों को खटकती हैं। यों तो बहुत सी बातें हैं जिन पर लिखने और जिन्हें सुधारने की जरूरत है। मगर हमारा काम उस कानून की पूर्ण समालोचना नहीं है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(9)
किसानों की दूसरी तकलीफें

जितनी दिक्कतें और तकलीफें अब तक दिखाई गई हैं उन्हीं से इस दुःखगाथा की समाप्ति हो नहीं जाती। किन्तु बहुत सी और भी दिक्कतें और मुसीबतें हैं जिन पर ध्यान देना जरूरी है। उनसे किसानों की परेशानी और तबाही भी काफी होती है और सबों का सम्मिलित परिणाम उसके लिए बड़ा ही भयंकर होता है, हो रहा है। इसलिए यदि सबों का नहीं तो उनमें कुछ अहम मसलों और चुनी चुनाई विपदाओं की जानकारी जरूरी है।

जब इस दृष्टि से हम देखते हैं तो सबसे पहले जो मसला हमारे सामने आता है वह है सिंचाई या आबपाशी का। पहाड़ों और पहाड़ी नदी-नालों की तो कमी यहाँ है नहीं। यों भी वर्षा में पहाड़ का पानी बह के नीचे जाता ही है। इसलिए जगह-जगह बड़े-बड़े आहर होने उनमें बरसात में इतना पानी जमा हो सकता है कि धान और रबी—दोनों ही—फसलों के लिए काफी हो। यदि आहरों की संख्या काफी हो और मुनासिब स्थान देख-देख के ही वे बनाए जाएँ तो यह मतलब जरूर पूरा हो सकता है। मगर नये तो क्या बनेंगे। पहले के भी बने बनाए खत्म हो गए और हो रहे हैं। न सरकार को इसकी परवाह है और न जमींदारों को। क्योंकि इनके बिना भी तो लगान वसूल होई जाता है।

जहाँ आहर न हों या उनसे काम चलने वाला न हो वहाँ नदी-नालों और झरनों को बाँध के और उनसे नाली या पैन निकाल के सिंचाई का काम बखूबी हो सकता है। हमने कई जगह ऐसा खुद देखा है। मगर इसमें भी दिक्कत है पैसे और खर्च की। किसान तो तबाह है। वह कहाँ से खर्च लाए? और जमींदार को गर्ज ही नहीं है। आमतौर से झारखंड की जमीन पैदावार नहीं है। सिर्फ पहाड़ों की तली की जमीनें ही ऐसी हैं जिनकी पैदावार अच्छी होती है। मगर ये जमीनें ज्यादा हैं नहीं। ज्यादातर जमीनें मामूली दर्जे की हैं और जब तक सिंचाई का इन्तजाम पूरा न हो पैदावार अच्छी हो नहीं सकती। हजारीबाग के उक्त गजेटियर के 72-73 पृष्ठों में इस सम्बन्ध में ऐसा लिखा गया है, 'It is, however, certain that the soil is for the most part inherently unfertile. Extensive irrigation works of a character beyond the means and equipment of local agriculturists might render some of the waste land cultivable. But the poverty of the soil and the irregularity of the surface make the chances of profit very doubtful.'

'यह बात पक्की है कि यहाँ की ज्यादातर जमीन स्वभावतः ही उपजाऊ नहीं है। हाँ, बहुत विस्तृत रूप में सिंचाई का इन्तजाम हो तो मुमकिन है कि कुछ उजड़ जमीनें आबाद हो जाए। मगर यह बात तो किसानों की ताकत के बाहर की चीज

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है। लेकिन जमीनों की अनुर्वरता और बेढंगी ऊँचाई-निचाई के करते खेती से नफा करने का शायद ही अवसर हो।'

इसमें कई बातें महत्त्वपूर्ण हैं। एक तो अधिकांश जमीन अनुर्वर और रद्दी मानी गई है, ऊसर जैसी है। तिस पर तुर्रा यह कि समतल नहीं है। हाँ, सिंचाई का खूब अच्छा इन्तजाम हो तो कुछ ज्यादा जमीनों में खेती हो सकती है। लेकिन किसान के बूते से बाहर की यह चीज है। इसीलिए यहाँ की खेती में उसका खर्च ही सध जाए तो गनीमत! फिर भी जमींदारों के मुनाफे की बात पहले ही कही जा चुकी है। तब उन्हें गर्ज क्यों हो कि आहर और नहर बनाएँ? यह काम है तो यहाँ के किसानों की भूख मिटाने के लिए निहायत जरूरी—सबसे जरूरी। गर्मियों और जाड़ों में उनके मवेशियों के लिए पीने का पानी भी तभी रह सकता है—मिल सकता है और किसानों को मिल सकता है। क्योंकि वे खुद कुएँ बना सकते हैं नहीं।

पानी के ही सिलसिले में एक दूसरी बात आ जाती है। हर हालत में जगह-जगह कुएँ काफी संख्या में बनाए जाएँ यदि इनकी प्यास बुझानी हो और इन्हें बीमारी से बचाना हो। हमने देखा है कि पहाड़ी जमीन के खेतों में जो पसेई होती है, पसीज के पानी थोड़ा-थोड़ा निकलता है बहुतेरे किसान मजबूरन उसे ही पीते हैं। उसे राँची में पझरा भी बोलते हैं और वहाँ तथा और जगह दूसरे-दूसरे नाम भी उसके हैं। कहीं-कहीं दोन का पानी भी कहते हैं, जो ज्यादातर बरसात में ही निकलता है। मगर उसमें बीमारी का खतरा तो हजार रहता है। लेकिन किसान गरीब क्या करें? पहाड़ों में कुआँ तो हजारों रुपए लगने पर ही बन सकता है। पत्थर काटे बिना कैसे बनेगा? इसीलिए कहीं-कहीं खेतों में कच्चा कुआँ और बालुकामय भूमि में बालू हटा के भी पानी निकालते और प्यास बुझाते हैं।

तीसरी भारी दिक्कत है कानूनी मदद की। हमें जेलों में हजारों ऐसे झारखंडी कैदी मिले हैं जिन्हें ठीक-ठीक कानूनी मदद मिलने पर वे जेल नहीं आते और उनकी जमीन-जायदाद बच जाती। हमें वकील, मुख्तारों को अपमानित नहीं करना है और न उसे पेशे को खामख्वाह गाली देना हमारा मतलब है। मगर जो अनुभव हमें हुआ है उसके बल पर हम यह कह सकते हैं कि बहुत अंशों में वकीलों की गड़बड़ी से ही यह काम बिगड़ता है। धीरे-धीरे यह पेशा ऐसा होता जा रहा है कि लोग इसमें भरते जा रहे हैं। मगर सबों का काम तो चलना ही चाहिए। इसलिए तरह-तरह के तरीके निकलते हैं, निकाले जाते हैं। बेईमानी, शैतानी और जालसाजी भी होती है। दलाल भी रखे जाते हैं जो चालाकी से सीधे-सादे मुवक्किलों को फँसाते हैं। कई केस हमें ऐसे भी मिले हैं जिनके देखने से पता चला है कि वकील ने ही गरीब किसान को धोखा दिया। कठिनाई यह होती है कि यहाँ के किसान वकीलों की भाषा ठीक समझ पाते नहीं और न वकील ही इनकी समझते हैं। इसलिए भी धोखा होता है। कभी तो ऐसा हुआ कि मुवक्किल का सबूत लेके भी वकील ने पेश ही न किया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इसी तरह की और भी बातें हुई हैं। संथाल परगने की जाँच कमिटी ने यह बातें कबूल की हैं और रिपोर्ट के 55वें पैराग्राफ में लिखा गया है कि 'Unrestricted recruitment would probably lead to touting, the fostering of litigation and other malpractices.' 'वकील, मुख्तारों की संख्या पर रोक न होने पर सम्भवतः दलाली, मुकदमेबाजी बढ़ाना और दूसरी बुरी बातें पैदा होंगी।'

और जिलों में भी ऐसी बातें कभी-कभी हो जाती हैं। मगर यहाँ के किसान तो निरे सीधे हैं। वे कुछ समझते ही नहीं। सबों पर विश्वास करते हैं। शिक्षा का विस्तार यहाँ है नहीं। इसीलिए यहाँ वे बुराइयाँ बहुत ज्यादा पाई जाती हैं। मेरे जानते तो बहुत बड़ी देश की सेवा इस एक बात से हो जाए, अगर सभी कचहरियों के स्थानों पर एक-एक, दो-दो भी ऐसे वकील मुख्तार रखे जाएँ जो खासकर यही काम करें। उन्हें फीस की उतनी फिक्र न हो, दरअसल भीतर से त्यागी हों, केवल गुजर कर लें और गरीबों की सहायता करें। बेशक, यहाँ के किसानों में बहुतेरे फीस न दे सकने के कारण भी हारते और कष्ट भोगते हैं।

चौथी बात है देशी या पहाड़ी शराब की जिसे हंड़िया कहते हैं। यहाँ के लोगों का परम्परागत स्वभाव है हंड़िया तैयार करना और पीना। यह चीज इनके जीवन का एक अभिन्न अंग हो गई है और इसके बिना ये लोग अपनी मौत समझते हैं। मगर एक तो कानूनी अड़ंगे के चलते उस पर बाधा खड़ी हुई है। दूसरे देहात-देहात में सरकारी शराब की दुकानें खुल जाने से उसी का प्रचार बहुत ज्यादा होता है। जैसे सस्ती और अपने हाथों बन सकने वाली भी खादी मिल के कपड़ों के सामने खत्म हो गई थी और आज भी हजार यत्न करने पर भी उसका सँभलना असम्भव है। ठीक यही बात हंड़िया के बारे में भी है। देशी शराब या सरकारी शराब ने भी उस पर हमला किया है। फलतः वह खत्म होने चली है। जब तक उस पर आजादी नहीं हो जाती और शराब की सरकारी दुकानें देहातों से हटा दी नहीं जाती हैं तब तक इनका यह दुःख दूर नहीं होगा। केवल शहरों में भी अंग्रेजी शराब और शराब की सरकारी दुकानें रहें तो रहें। मगर जहाँ भी रहें, पीने वालों की गणना (census) करके उन्हीं को सर्टिफिकेट रहे। तभी खरीद सकें। दूसरे खरीदने न पाएँ। आदिवासियों और पिछड़े लोगों को इसकी सर्टिफिकेट हर्गिज न दी जाए। तभी काम चलेगा।

इससे हमारा मतलब यह नहीं है शराबबन्दी का प्रचार न हो। हो और जरूर हो। मगर गला दबा के नहीं जैसा कि सरकार कहती है कि वह शराब रोकना चाहती है। शराब की रोक रुपया पैदा करने का साधन न बने। रोक के बहाने रुपया न कमाया जाए। दूसरी बात यह है कि पहले उन्हें इसका निर्बाध अधिकार हो जिनके जीवन का यह अभिन्न अंग है। यह से हमारा मतलब हंड़िया जैसी ही चीजों से। जो आसानी से चावल वगैरह से बनती हैं या तैयार हो जाती हैं। हंड़िया या ताड़ी का हक उन्हें दीजिए और समझा-बुझा के रोकिए। लाठी के बल से या तलवार के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बल से हर्गिज नहीं। तभी तो चोरी से और हजार कुकर्म से भी लोग पीते ही हैं। नैतिक बल और समझाने-बुझाने की बात दूसरी है। दृष्टान्त के लिए टाना आन्दोलन को लीजिए। यह इसी झारखंड का है। मगर धार्मिक ढंग से या प्रचार से ही होने के कारण टाना लोग शराब, मांस आदि सभी चीजों से अलग हो गए और इनकी संख्या यहाँ काफी है। मांस भी यहाँ के लोगों का प्रधान खाद्य है। मगर टाना लोगों ने कतई छोड़ दिया। कानून के जरिए ऐसा कभी नहीं हो सकता था। इसलिए इस बारे में हम कानून बनाने के विरोधी हैं।

जो भी कानून किसानों के फायदे के बनते हैं उनका प्रचार व्यापक रूप से नहीं होता। केवल रस्म अदाई कर दी जाती है। एक ओर तो सरकार झारखंड को पिछड़ा हुआ प्रदेश मानती है। दूसरी ओर इस बात की भरपूर कोशिश नहीं करती कि गाँव-गाँव, घर-घर में उन कानूनी बातों का प्रचार हो जाए जिनसे किसानों का लाभ हो। दृष्टान्त के लिए पहले बताया गया 18 और 22 वाले कानून को ही लीजिए। इसका कहाँ प्रचार हुआ? जब एम.एल.ए. तक नहीं जानते कि कानून बना है तो औरों का क्या कहना?

(10)
सहयोग समितियों का रवैया

झारखंड में सहयोग समितियों (Cooperative credit societies) के बारे में भी कुछ कहे बिना काम नहीं चलता। हमने देखा है कि यहाँ के काश्तकारी कानून में उन समितियों के लिए खास रिआयतें रखी गई हैं। दृष्टान्त के लिए हमें पहले बताई गई काश्तकारी कानून की 46(2अ) धारा को ही लेंगे। जहाँ औरों के साथ सिर्फ सात ही साल के भुगुतबन्ध लिखने का हक आदिवासी किसानों को है तहाँ इन समितियों के लिए वे पन्द्रह साल तक के लिए लिख सकते हैं। इसी तरह के और भी अनेक दृष्टान्त दिए जा सकते हैं, जिनसे सिद्ध हो जाता है कि सरकार और कानून बनाने वालों की नजर में ये समितियाँ बहुत ज्यादा महत्त्व रखती हैं। सो भी न केवल सिद्धान्त की दृष्टि से। किन्तु व्यावहारिक और अमली दृष्टि से। क्योंकि सहयोग समितियों का सिद्धान्त तो बहुत ही उत्तम और ऊँचा है। मगर मतभेद है केवल इस बात में व्यवहार में वे आया किसानों को लाभ पहुँचाती हैं या नहीं।

हमें तो बिहार खंड के दरभंगा, मुंगेर पटना आदि जिलों का कड़वा अनुभव इनके बारे में है। ये जिले तो झारखंड की तरह पिछड़े नहीं हैं। मगर वहाँ के किसानों पर इन समितियों और सोसाइटियों के करते जो गुजरी है उसे याद करके भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं। बिहार प्रान्तीय किसान सभा ने अपने अनुभव के ही आधार इन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समितियों की कड़ी समालोचना भी कई बार की है, जिसके चलते इन सोसाइटियों के कर्णधार न सिर्फ रंज हुए हैं। बल्कि प्रतिवाद भी किया है कि इल्जाम सरासर गलत हैं। मगर हम तो कच्चे धागा ठहरे नहीं कि टूट जाते, या उनकी बन्दर घुड़की से दबक जाते। इसलिए अपनी जगह हमारी सभा डँटी रही।

हमारे साथियों को इन समितियों के अत्याचारों से जमुई वगैरह में बचाने में जो करारे अनुभव हुए हैं और जिस धाँधली का पता वकील वगैरह की हैसियत से उन्हें हुआ है उसका हृदय विदारक वर्णन उनने किया है। यही बात पटना तथा दूसरे जिलों के सम्बन्ध में भी समय-समय पर हमें मालूम होती रही है। दरभंगे की आपबीती सुनाता हूँ। गिरिजा स्थान—धनुषा—की मीटिंग करके हम लौट रहे थे। जहाँ तक याद है, कुछ किसान ही हमें एक गाँव में, जो मोटर के रास्ते पर ही सड़क पर है और जिसका नाम भूलता हूँ, हमें अपने घर लिवा ले गए। और बातों के सिवाय उनने एक मुश्तण्ड आदमी को दिखाया जो डण्डा लिये खड़ा था। मालूम हुआ, यह सोसाइटी का आदमी है और बकाया वसूलने आया है। जब तक वसूल न होगा रोज आएगा और खाएगा! सिर्फ एक रुपए के बकाए में यह बात थी। ज्यादा रुपए के बकाए में, पता लगा, पाँच आदमी आते हैं और छह आने के हिसाब से उनकी खुराक चार्ज होती है! यह तो कानूनी चीज कही जाती है। मगर वे मुश्तण्ड जबर्दस्ती कुछ खा-पी भी लेते हैं। किसान गरीब क्या करे? यह गजब का छह आना तलबाना की तरह उनकी छाती पर चढ़ता जाता था!

चौपट भी आखिर ये समितियाँ क्यों हुईं? कुछ यार और पढ़े-लिखे वकील या दूसरे घुस आए और उनका अपना काम चल गया, उनका पेशा जम गया! एक-एक आदमी आठ-आठ समितियों तक का ग्रुप सेक्रेटरी बना दिया गया! किसानों और जनता को तो पता ही न चला कि यह कोआपरेटिव सोसाइटी (देहात में तो सुसाइटी कहते हैं) क्या बला है। उनने समझा कि कर्ज देने वाले नए महाजन या एक नई संस्था खुली! बस! और इसी से वे लुट गए। सोसाइटियाँ भी चौपट हुईं! जनता को इनका महत्त्व बताया न गया, समझाया ही नहीं गया। यह बात समझाने की दरअसल कोशिश हुई नहीं। रस्मअदाई को कोशिश नहीं कहते। अपढ़ देहाती जनता को समझाने के लिए आकाश-पाताल एक करना होता है। यही नहीं किया गया! गर्ज किसे थी? देहातों की आर्थिक दशा सुधारने की खूब व्यवस्था हो रही है ऐसी लम्बी-लम्बी रिपोर्टें निकाल के दुनिया को धोखे में रखा गया! यारों ने समझा, चलो अच्छा मौका है। कुछ बन जाओ। और नहीं तो चुनाव में वोट ही मिलेगा! फिर तो दिवाला जरूरी था!

जब प्रगतिशील लोगों में ऐसा हुआ तो झारखंड के पिछड़े और असभ्य कहे जाने वाले प्रदेश में क्या हुआ होगा यह बात आसानी से समझी जा सकती है। यहाँ तो 'अन्धे की गैया, राम रखवैया' वाली बात ठहरी। फलतः जो न हुआ हो उसी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में आश्चर्य है। यहाँ जब किसानों के लिए दी गई कानूनी सुविधाएँ तक हजम हो जाती हैं और पता ही नहीं चलता, तो फिर दूसरी बातों का क्या कहना? और तो और खुद सरकारी जाँच कमिटी ने ही इस ओर काफी इशारा किया है। संथाल परगने की जाँच कमिटी ने इसके बारे में जो कुछ लिखा है वह सारे झारखंड के लिए ही है।

5.12.41। उस कमिटी की रिपोर्ट के 36-37 पृष्ठों में (93 पैराग्राफ में) यह बात यों लिखी गई है, 'Cooperative societies do not exist in many parts of the district, and even where they do, they do not seem to have helped very much. We were struck by the amount of criticism of the cooperative societies that we received. It was not possibe for us to investigate the working of these societies and the evidence that we have heard came mainly from those who have complaints to make, but many people feel that the rates of interest are too high and that they are nearly as oppressive in realising their debts as the mahajans themselves. This is largely inevitable, since land is inalienable and the only method of recovering debts is by attachment of crops. The Santal law does not allow attachment of standing crops for mahajan's debts. Even in the case of rent decrees attachment of standing crops is restricted to the amount sufficient to cover one year's rent, but under section 35 of the Cooperative Societies Act there is no limit to the extent to which standing crops can be attached to recover a society's debts. Since the cooperative societies must recover their loans if they are to function at all, and since they have had to resort increasingly to this procedure, borrowers feel that they are being as harshly treated by the cooperative societies as they would have been by the mahajans. There is also much complaint that in the Rajmahal subdivision where the right of transfer exists too little care and discrimination is used when putting property to sale for the recovery of cooperative dues, and that excessive areas are sold. The movement is distrusted. If it is to make further progress in the district, it will require remodelling. At present it is identified with all the oppressions of the mahajan and there is no constructive side to its work. If it is to succeed it will be necessary to reduce the rates of interest, to insure that much more care is taken in the granting of loans and to develop the constructive side of cooperation.'

'जिले के बहुत हिस्सों में तो सहयोग समितियाँ हुई नहीं। जहाँ हैं भी वहाँ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भी उनने कुछ ज्यादा मदद नहीं की है ऐसा मालूम होता है। इन समितियों के सम्बन्ध में हमें इतनी ज्यादा शिकायतें मिलीं कि अवाक् हो जाना पड़ा! इनके कामों की जाँच करने की बात मुमकिन न हो सकी और हमें जो गवाही (सबूत) मिले हैं वह प्रधानतः उन्हीं से जिन्हें इन समितियों के खिलाफ शिकायतें थीं। लेकिन बहुत लोग ऐसा मानते हैं कि इनकी सूद की दर बहुत ही ज्यादा है और कर्ज की वसूली ये समितियाँ प्रायः वैसा ही जुल्म करती हैं जैसा कि खुद महाजन करते हैं। अधिकांश में ऐसा होना अनिवार्य है। क्योंकि जमीन तो बिक सकती नहीं। इसलिए कर्ज की वसूली का सिर्फ एक ही तरीका है कि फसलें जब्त की जाएँ। संथाली कानून के अनुसार महाजनों के कर्ज में खड़ी फसल भी जब्त की जा सकती नहीं। बाकी लगान की डिग्री में भी सिर्फ एक ही साल के लगान की वसूली भर खड़ी फसल जब्त हो सकती है। लेकिन सहयोग समितियों के कानून की 35वीं धारा के मुताबिक तो किसी भी सहयोग समिति के कर्ज की वसूली के लिए चाहे जितनी भी खड़ी फसल जब्त कर ली जा सकती है! यदि इन समितियों को कायम रहना है तो इन्हें अपनी देन (कर्ज) को वसूल करना ही होगा। इसीलिए तो ज्यादातर फसल जब्ती पर ही अधिकाधिक ये जोर देती हैं। यही कारण है कि कर्ज लेने वाले महसूस करते हैं कि हम लोगों के साथ तो उतनी ही बेरहमी से सहयोग समितियाँ भी पेश आती हैं जितनी महाजन कर सकते थे। यह शिकायत भी बहुत ज्यादा है कि राजमहल सबडिविजन में जमीन बेचने का हक होने पर भी जब सोसाइटी के कर्ज में किसी जायदाद को नीलाम करवाने का मौका आता है तो जरा भी परवाह और विचार से काम नहीं लिया जाता और बहुत ज्यादा जमीनें नीलाम करवा ली जाती हैं! सहयोग आन्दोलन पर ही अविश्वास हो गया है। यदि इसे इस जिले में कुछ भी तरक्की करनी है तो इसे नए सिरे से ढालना होगा। फिर तो महाजनों के सभी जुल्मों के साथ इसका नाता जुट गया है और इसका कोई रचनात्मक काम हुई नहीं। यदि इसे सफल बनाना है तो सूद की दर घटाना जरूरी है। पक्का इन्तजाम करना होगा कि कर्ज देने के समय खूब देखभाल के दिया जाए और रचनात्मक कामों को भी प्रगति देनी होगी।'

हमें इस पर कुछ भी टीका टिप्पणी करना है नहीं। जितनी जानकारी हमारी किसान सभा को थी और जिसका जिक्र हमने शुरू में ही इशारे से किया है वह सब की सब इसमें आ गई है। आखिर बात दूसरी हो तब न आए? सर्वत्र तो एक ही बेढंगी रफ्तार है—एक-सा जुल्म है। मामूली-सी रकमों के लिए इतनी ज्यादा जमीनें बेदर्दी से नीलाम करवा ली गई हैं कि किसान का कलेजा फट गया है! तब उनकी आँखें खुली हैं कि यह कौन सी बला है। रचनात्मक काम तो है इन समितियों की असलियत और इनके असली कामों की जानकारी लोगों में कराना और बताना कि ये कैसे चलाई जाएँ तभी सफलता होगी और तभी चल सकती है। नहीं तो बर्बादी अनिवार्य है। मगर ऐसा करने की गर्ज किसे थी? प्रत्युत यारों की तो इसमें हानि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

थी। कर्ज देने में भी आँख मूँद के काम होता था। मगर जवाबदेही समूह की थी जिसे अंग्रेजी में कलेक्टिव लायबिलिटी (collective liability) कहते हैं। नतीजा यह हुआ कि काइयाँ लोगों ने कर्ज लिया और बिक गए सीधे लोग। यह भी नहीं कि ज्यादा से ज्यादा सूद की दर रखने और सख्ती से अन्धाधुन्ध वसूली और नीलामी के करते ये समितियाँ बच सकीं। अन्त में तो इनका दिवाला निकल ही गया और यह बात सर्वजन प्रसिद्ध है।

यह भी याद रखना चाहिए कि संथाल परगना जाँच कमिटी को जो सबूत और गवाहियाँ मिलीं उनमें एक भी किसान सभा की न थी। उसने लिखा ही है कि 230 लिखित उत्तर और 111 गवाहों में सभी सरकारी अफसर, वकील, जमींदार, घटवाल, इनकी सभाएँ, एम.एल.ए., प्रधान, सिरदार, परगनैत आदि ही थे।

(11)
झारखंड की अनुकरणीय बातें

यहाँ पर झारखंड की दो-चार ऐसी बातें भी लिखनी हैं जो दरअसल अनुकरणीय हैं। सबसे सुन्दर बात तो यह है कि संथाल परगने में गाँव की जमीन किसी एक की या व्यक्तियों की जुदा-जुदा नहीं मानी जाती है। वह तो गाँव के समूचे समाज की सम्पत्ति समझी जाती है। यही बात पहले बाकी जिलों में भी होगी। मगर शेष पाँच में लापता हो रही है और केवल एक ही जिले में है। इसीलिए जो आदमी लावारिस मरता या कहीं चला जाता है उसकी जमीन समूचे गाँव के समाज की हो जाती है और जिसके पास जमीन न हो या कम हो उसके ही साथ उसका बन्दोबस्त होता है। बन्दोबस्त होने और लावारिस पड़ जाने के बीच में उस गाँव के मुखिया को ही, जिसे प्रधान कहते हैं, उस पर अधिकार मिलता है। तब तक वही उसे जोतता-बोता है।

सहयोग समितियों के सिलसिले में अभी-अभी कहा गया है कि वहाँ जमीन बेचने का हक नहीं है। फलतः यदि किसी ने चुपके अपनी जमीन किसी महाजन के हाथ बेची, तो पता लगते ही कानूनन महाजन तो बेदखल होता ही है साथ ही बेचने वाला भी बेदखल हो जाता है और वह जमीन भी सारे समाज की हो जाती है। इसी तरह गाँव के किसी किसान का लगान बाकी पड़ने पर सिर्फ उसी पर नालिश नहीं होती, किन्तु सभी किसानों पर और सभी के ऊपर जवाबदेही आती है। यों तो लगान का जवाबदेह होता है सिर्फ प्रधान और जमींदार उसी पर नालिश करता है। मगर प्रधान सब किसानों पर ही नालिश करता है। इस प्रकार देखते हैं कि संसारव्यापी पुरानी पंचायतों या कम्यूनों (communes) की प्रथा यहाँ अब भी है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हाँ, धीरे-धीरे दूषित हो रही है।

दूसरी चीज है यहाँ की प्रधानी प्रथा। प्रधान के तीन काम माने गए हैं। जाँच कमिटी के ही शब्दों में उसके तीन कर्तव्य हैं। एक तो वह स्वायत्तशासन प्राप्त गाँव के समाज का मुखिया या प्रधान माना जाता है। गो कि वह पुरानी स्वतंत्रता प्रायः खत्म हो चुकी है। वही पंचायत का सभापति होने के नाते सामाजिक और धार्मिक कामों को पूरा करता है और छोटे-मोटे झगड़ों को निपटाता है। दूसरी बात यह है कि समूचे गाँव की ओर से केवल प्रधान ही जमींदार के साथ व्यवहार करता है, लगान देता है। जमींदारों का कोई ताल्लुक किसानों से सीधे न होने के नाते उसका न तो रोब-दाब होता है और न वे या उनके अमले ही हरी, बेगारी, अबवाब वगैरह का नाम ले सकते हैं। अमले तो होते ही नहीं। गैरमरुवा या लावारिस वगैरह जमीनों पर उसी का कब्जा रहता है और एस.डी.ओ. की देख-रेख में वही उन्हें पीछे बन्दोबस्त करता है। प्रधान का तीसरा काम है मजिस्ट्रेट के साथ गाँव की बातों के बारे में सरोकार रखना। सेस, चौकीदारी आदि वही वसूल करता है। मारपीट या चोरी आदि की खबर देना और फरारों को पकड़वाना उसी का काम है। गाँव के जंगल वगैरह की देख-रेख वही करता है और सबके हकों की निगरानी करता है। सड़क, नहर आदि की देखभाल भी वही करता और मरम्मत करवाता है।

इसके लिए उसे एक तो लगान की वसूली में उसे एक आना फी रुपया जमींदार देता है और एक ही आना किसान। वसूल न होने पर यह कमीशन कट जाता है। साथ ही उसके पास दो तरह के जोत होते हैं। एक तो प्रधान की हैसियत से खास जोत की जमीन होती है जिस पर लगान नहीं देना पड़ता है। वह इसीलिए होती है कि यदि किसान बाकी रखें तो उसी की पैदावार से चुकता करके पीछे वसूल करे। कमिटी ने गाँव के कुल लगान के बारहवें हिस्से के लिए जितनी जमीन जरूरी हो उतनी ही यह खास जमीन प्रधान को दी जाने की सिफारिश की है। क्योंकि कम हो गई है। और जब तक उतनी पूरी न हो जाए तब तक उसी हिसाब से उसके किसानी जोत में लगान की माफी हो। किसान जोत पर उसे औरों की तरह ही लगान देना होता है। किसानी जोत तो उसका अपना है। मगर अगर वह प्रधानी से किसी कारण से हट जाए, हटाया जाए तो प्रधानी जोत चला जाएगा और जोई प्रधान होगा वही उसे पाएगा। यह प्रधानी प्रथा संथालों और दूसरे मूलवासियों में ही है। अब इसकी वह बात नहीं रही।

प्रधानों के सिवाय संथालों के मुखिया एक प्रकार के और हैं जो केवल दामिल इलाके में ही हैं। इन्हें परगनैत कहते हैं, मालूम होता है कि गाँव के लिए प्रधान और परगने के लिए पहले परगनैत थे। अब भी वे लोग वहाँ हैं। दामिन के प्रबन्ध के लिए वह अनेक टुकड़ों में बाँटा गया है, जैसे तहसीलदारी या थाने होते हैं। एक इलाके में एक सरकारी ऑफिस या बँगला (bungalow) होता है और बँगले के ही

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इलाके का एक परगनैत होता है। वह भी माल की वसूली के सिवाय पुलिस के कामों में भी मदद करता है। माली और फौजी मुकदमों का भी फैसला वही करता था। अब मजिस्ट्रेट और पुलिस का सिर्फ मददगार है। मजिस्ट्रेट को हाकिम कहते हैं। उसके साथ ही उसका नाता रहता है। उसी के द्वारा गाँव में सरकारी खबरें पहुँचती हैं। ये परगनैत जमींदारियों में नहीं होते हैं। प्रधान और परगनैत खानदानी होते हैं। मगर यह जरूरी नहीं है और बदले भी जा सकते हैं यदि योग्य आदमी न मिलें। असल में खानदानी होने से ही इनका पतन हो गया है। प्रधानों की तरह परगनैतों को सरकार माल की वसूली पर पहले दो रुपया सैकड़ा देती थी। मगर पीछे कुछ बढ़ा है और कम या वेश वसूली पर उसकी दर घटती-बढ़ती है। इसके सिवाय हर गाँव से साल में उसे एक रुपया दस आना मिलता है। प्रधान की तरह उसे परगनैती जमीन नहीं होती। पुलिस के दारोगा की ही जगह वह परगनैत समझे जाते हैं। वहाँ बाकायदा पुलिस के थाने वगैरह नहीं हैं।

दुमका और जामतारा में तथा गोड्डा में भी सिरदार पाए जाते हैं। यह भी पुलिस का ही काम करते हैं। गोड्डा में तो चौकीदारी सरपंच का भी काम यही करते हैं। महीने में बारह रुपया वेतन इन्हें दिया जाता है। ये भी आदिवासियों के ही लिए होते हैं। अब तो बात बदल रही है। फिर भी आदिवासियों और संथाल वगैरह के साथ जब काम पड़ता है तो सिरदारों के बिना नहीं चलता। पहड़िया लोगों में भी सिरदार होते हैं। असल में पहले तो परगनैत, प्रधान और सिरदार उन्हीं में से चुने जाते थे। मगर अब तो दूसरे लोगों में से भी सिरदार चुने जाते हैं। हालाँकि परगनैत अभी वही हैं। प्रधान भी वही हैं। असल में दूसरे लोगों की आबादी बढ़ने और मेल-हेल या मिश्रित जनसंख्या हो जाने से ही यह बात होती है। संथाल वगैरह आदिवासियों के सिवाय जो प्रगतिशील या सभ्य लोग वहाँ हैं उन्हें संथाली भाषा में दिक्कू कहते हैं। यदि प्रधान वगैरह की प्रथा का ठीक-ठीक उपयोग और प्रबन्ध हो तो यह बड़े काम की चीज हो जाए।

यों तो प्रधान, मानकी वगैरह शेष पाँच जिलों में भी हैं। मगर वे लोग बिहार के जेठरैयत या चौकीदारी सरपंच से ज्यादा महत्त्व अब नहीं रखते। अब तो चौकीदारी पंच चुने भी जाते हैं। इसी प्रकार छोटानागपुर में जो पाहन और देवकली होते हैं उनका भी कोई आधुनिक उपयोग नहीं है। पाहन तो पुरोहित की तरह के होते हैं जो मंतर-तंतर भी जानते हैं और भूत-प्रेत भी झाड़ते हैं। मगर देवकली तो ओझा को ही कहते हैं। वह तो खास-खास भूत-प्रेतों को ही हटाता और बुलाता है। इनके लिए गाँव वाले ही खान-पान वगैरह का प्रबन्ध करते हैं। हाँ, प्रधानों के कुछ खास कानूनी हक जमीन वगैरह के हैं।

प्रधान युग के लिहाज से यहाँ की नई और सब से काम की परिस्थिति यह है कि प्रायः सभी जिलों में लोहे, अबरक, कोयले आदि की खानें और कारखानें हैं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और सीमेंट वगैरह की भी फैक्टरियाँ हैं। पलामू में तो जपला की सीमेंट फैक्टरी प्रसिद्ध ही है। फलतः लाखों मजूदर काम करते हैं। सो भी गिरोह के गिरोह। उनका ताल्लुक यहाँ के गाँवों से काफी रहता है। गाँव वाले भी बहुत से काम करते हैं। ऐसी दशा में यहीं पर तो किसानों और मजदूरों के संगठन एक-दूसरे के साथ पूरा-पूरा सहयोग कर सकते हैं और एक-दूसरे की लड़ाई में काफी मदद पहुँचा सकते हैं। दोनों का पूर्ण सहयोग, जिसकी नितान्त आवश्यकता आज के युग को है और जो इस युग की खास चीज है, यहीं तो सम्भव है और वह हो सकता है न केवल कागजी, किन्तु क्रियात्मक। जहाँ खानें हैं वहाँ भी ऊपर की जमीन में किसानों को कष्ट है। दूसरी जगह तो हई। मजदूरों के कष्ट तो सभी को विदित हईं।

(12)
ताता और होमी

झारखंड की बात अधूरी ही रह जाएगी यदि ताता का विशेष वर्णन न किया जाए। पारसनाथ पहाड़ के सिलसिले में जैनी सेठों की करतूतों का जिक्र तो होई चुका है। मगर ताता का महत्त्व उनसे कहीं ज्यादा है। ताता का यहाँ जमींदार और पूँजीपति दोनों ही हैसियत से प्रभाव है। लाखों मजदूरों पर उसकी हुकूमत चलती है। जाने कितने नेताओं और कार्यकर्ताओं को ताता ने अपने पाकेट में रख लिया है। ऐसा जादू चलता है कि सबों की बोलती ही बन्द हो जाती है और छोटे-बड़े सभी नेता वहीं—जमशेदपुर में ही—हजम हो जाते हैं। ताता की ही कृपा का फल है कि अब तक जाने कितने नेता जमशेदपुर के मजदूरों का संगठन करने गए और नाकामयाब रहे। नेताओं के प्रति जितना अविश्वास वहाँ के मजदूरों में है उतना और कहीं शायद ही है। फलतः वहाँ जोई जाता है उसी पर अविश्वास किया जाता है। 'धरी न काबू धीर सबके मन मन सिज हरे' वहीं चरितार्थ होता है। यह ताता की चातुरी और व्यवहार कुशलता का ज्वलन्त प्रमाण है।

मगर मुझे तो किसान सभा के कार्यकर्ता की हैसियत से सिर्फ ताता की वही बातें लिखनी हैं जिसका ताल्लुक किसानों और सर्व साधारण से है। कारखाने और मजदूरों की दशा के बारे में लिखना इस पुस्तक का लक्ष्य भी नहीं है जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है। मैं उस विषय की विशेष जानकारी भी नहीं रखता। कांग्रेस की स्वराज्य पार्टी जब केन्द्रीय असेम्बली में थी तो ताता को सरकारी सहायता देने का प्रश्न उठा था। उसने इसका समर्थन किया। जब वहाँ के मजदूरों के हक में यह शर्त पेश की गई कि ताता कम्पनी उन्हें आराम पहुँचाने की गारंटी करे तभी सहायता दी जाए, तो इसका विरोध स्वराज्य पार्टी ने किया था और बिना शर्त ही

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सहायता का समर्थन किया। जब मजदूरों के सम्बन्ध में बड़े-बड़ों और ऐसी संस्थाओं की कार्यवाहियाँ पहेली की तरह खड़ी हो जाती हैं तो हमारे जैसा आदमी घबराता है और उस झमेले से अलग रहके किसानों का ही सवाल हल करने की कोशिश करता है। इसीलिए यहाँ भी वही सवाल है। जमशेदपुर के पुराने मजदूर लीडर कहे जाने वाले मिस्टर होमी को भी हम किसानों के ही सिलसिले में याद रखना चाहते हैं। इसीलिए उनका भी थोड़ा उल्लेख होगा। मगर इस सम्बन्ध में सिंहभूम जिला किसान कान्फ्रेंस, घाटशिला में 3, 4 जुलाई 1939 को हमने जो भाषण दिया था उसे ही यहाँ उद्धृत करके सन्तोष कर लेना चाहते हैं। ज्यादा कहने की जरूरत नहीं प्रतीत होती है। वह इस तरह है–

'बाहरी दुनिया की नजरों में तो आमतौर से ताता का काम है जमशेदपुर में केवल इस्पात वगैरह तैयार करना और इस तरह ताता कम्पनी सबसे बड़ी पूँजीवादी है। ताता से ताल्लुक रखने वाले और किसानों के लिए दिल रखने दूसरे लोगों में भी चन्द लोग ही ऐसे हैं जो यह जानते हैं कि ताता कम्पनी जमींदार भी है और प्रायः बीस छोटे-बड़े गाँवों से, जो जमशेदपुर में और इर्द-गिर्द शामिल हैं, बीस-पच्चीस लाख लगान वसूलती है। इन गाँवों के नाम हैं उलियान, भाटिया, गोभरोगोड़ा, सोनाड़ी, खुटाड़ी, बेलड़ी, जोजाबेरा, साकची, बारा, बारीडीह, महरड़ा, मुड़कटी, निलदी, कालीमाटी, सुसनिगड़िया, गोलमुड़ी, सिद्धगोड़ा वगैरह। इनके कष्ट वर्णनातीत हैं। ताता के लिए सरकार ने इन मौजों को 1919-20 में ले लिया। आगे इन गाँवों के कुछ भयंकर कष्टों का वर्णन वहीं के लोगों के शब्दों में किया जाता है। उनने मेरी जमशेदपुर की अप्रैल वाली उसी साल की यात्रा के समय मुझे जो कुछ लिख के दिया था वही यहाँ लिख दिया जाता है। उनका कहना है कि 'जमशेदपुर और आसपास के जो गाँव पहले दलभूम के राजा के मातहत थे हम उन्हीं के शुरू के ही बाशिन्दे हैं। कम्पनी के लिए सरकार ने इन्हें तथा और गाँवों को 1919-20 में ही राजा से हासिल किया था। कम्पनी ने हमें कहा कि आप लोग पूर्ववत् पड़े रहें। क्योंकि हमें अपने ही लिए आपकी सेवाओं की मजदूर, गाड़ीवान, साग-तरकारी उपजाने वाले आदि के रूप में जरूरत है। इसलिए गाँवों का राजा से लिया जाना तो केवल कागजी लिखा-पढ़ी है। स्थिति में अन्तर न होगा।

1906-09 के सर्वे में जो लगान ठीक था उसे इस कम्पनी ने इन गाँवों को बाकायदा दखल करने के बाद, धीरे-धीरे बढ़ाना और हमारी जमीनों से भारी लगान वसूलना शुरू कर दिया। उस समय तो हमने यह चीज किसी तरह बर्दाश्त की। क्योंकि उस समय चावल, साग, तरकारी वगैरह की कीमत काफी ऊँची थीं।

'चन्द साल के बाद, जब कि बिना हमारी मदद के भी कम्पनी का कारबार चलने लगा, उसने हमें अपने झोंपड़ों और घरों वगैरह से निकाल के अपने काम के लिए सबकुछ कब्जाना चाहा। फलतः तरह-तरह से हमें परेशान किया जाने लगा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

1932 में लगान न देने के बहाने हमारी बेदखली के केस किए गए। मगर हम लोग सभी केस जीत गए। तब बल प्रयोग शुरू हुआ और इसके चलते कम्पनी का जो प्रधान रूप से इस शहर का प्रबन्धक है। वही नोटिफाइड एरिया कमिटी का चेयरमैन भी है। वह कुछ औरों के साथ नाजायज दूसरे के घर आदि में घुसने के लिए फौजदारी में भी फँसा था और हाईकोर्ट तक सजा बहाल रही। उसके बाद हम लोगों के विरुद्ध 145 धारा के अनुसार फौजदारी के बहुत ज्यादा मुकदमे चलवाए गए। मगर उनमें भी हम जीते।

'अब जमशेदपुर एरिया कमिटी की ही मदद से हमें तंग करने लगे हैं। कहा जाता है कि इस कमिटी के इलाके के भीतर हैं। मगर इस म्यूनिसिपलिटी का कोई भी फायदा तो पहुँचता नहीं। हाँ, इससे हमारी दिक्कतें जरूर बढ़ गई हैं।

'अपने छप्परों को फिर से छाने में भी हमें प्लान बनवाने और कमिटी से मंजूरी लेने को कहा जा रहा है। हमें साफ पीने का पानी तो मिलता नहीं। गंदा पानी हममें बीमारियाँ फैला रहा है। मगर कुआँ खोदने की हमें इजाजत नहीं! हमारे न तो सड़कें हैं, न रोशनी और न मेहतरों का प्रबन्ध। हमारे गाँवों में पढ़ाने के प्रबन्ध की तो बातें ही मत पूछें।

'हमारे यहाँ जो पड़ती जमीनें चरागाह के काम आती थीं वे गत साल से जोत-जात के ईंटों के बनाने के लिए कम्पनी के द्वारा ठेके पर दी जाने लगी हैं। इसका तो सीधा अर्थ है कि हम खेती के जानवरों को खत्म कर दें। क्योंकि अड़गड़े में डाले जाने के डर से उन्हें बाहर तो निकाल सकते नहीं। कम्पनी की इस करतूत ने हमें सबसे ज्यादा परेशान किया है। क्योंकि पशुओं के बिना तो खेती हो नहीं सकती। फलतः हमें गाँव छोड़ के भागना पड़ेगा। इन कारणों से और लगान की कड़ाई के करते भी हम उसे चुकता कर पाते नहीं। फलतः हमारी बहुत सी जमीन नीलाम हो रही है। आज जो लगान है वह दलभूम के मौजूदा लगान से चौगुना और सर्वे के लगान से पूरा दस गुना है। यह बात नीचे की तालिका से साफ हो जाती है। धानी (धान की जमीनों) और बारी या भीठे (गोड़ा) जमीनों के लगान की दर अलग-अलग दी गई है।

दलभूम का लगान फी बीघा	कम्पनी का लगान फी बीघा
धानी अव्वल नम्बर एक रुपया	चार रुपया, तीन रुपया, दो रुपया और
धानी दोयम नम्बर आठ आना	तीन रुपया क्रमशः इन्हीं चारों जमीनों का।
धानी सोयम नम्बर छह आना	साग तरकारी वाली का तो आठ रुपया है।
गोड़ा जमीन दो आना	सभी गाँवों में कम्पनी की दर एक-सी नहीं है।

"साकची तो जमशेदपुर शहर का ही हिस्सा है। इसीलिए वहाँ के लोगों को बाजार, आबपाशी और सड़क वगैरह की आसानी भी है जो अन्य गाँवों को नहीं है। मगर वहाँ का लगान कम है और कम्पनी के ही एक अफसर ने कबूल किया

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है कि दूसरे गाँवों के किसानों को सभी दिक्कतें बढ़ी-चढ़ी हैं। देखिए न–

साकची की धानी अव्वल का	उल्यान, मांटिया, गोभरागोड़ा का
लगान तीन रुपया	चार रुपया।
साकची की धानी दोयम का	उल्यान, मांटिया, गोभरागोड़ा का
लगान करीब सवा दो।	तीन रुपया।
साकची की धानी सोयम	उल्यान, मांटिया, गोभरागोड़ा का दो रुपया
साकची गोड़ा अव्वल डेढ़ रुपया	इन तीन गाँवों की सभी तरह की गोड़ा
साकची गोड़ा दोयम सात आना	जमीनों का लगान तीन रुपया फी बीघा।
साकची गोड़ा सोयम सवा दो आना	साग तरकारी का आठ रुपया फी बीघा

'ताता कम्पनी के मिल का निकला हुआ पानी नदी को गन्दा करता है। मगर क्या मजाल कि किसान उससे अपना खेत पटा लें? गाड़ी पर टैक्स है और जानवरों के मरने पर उन्हें हटाने के लिए जो पाँच रुपया टैक्स है वह तो हमें तबाह कर रहा है।

'सिंचाई की सुविधा पहले थी। मगर अब नहीं रही। लगान की बाकायदा रसीद नहीं मिलती। छह मास हुए हम बिहार के अर्थमंत्री से और बाद में प्रधानमंत्री के पास भी लिखित प्रार्थना ले के पहुँचे थे। मगर नतीजा अब तक कुछ मालूम नहीं हुआ!' इस लम्बी दास्तान पर टीका-टिप्पणी बेकार है।

अब जरा मिस्टर होमी की बात सुनिए। अब तक तो यही सुना जाता था कि मिस्टर होमी यहाँ के मजदूरों की लीडरी का दावा करते हैं और दूसरे लोग इसका विरोध करते हैं। यह तो उन्हीं का काम है जो मजदूर हैं कि फैसला करें कि किसे वे अपना लीडर मानते हैं। हमें तो उनके बारे में पड़ोस के ही मानभूम जिले के पोटम्बा थाने के गाँवं माँगों के जमींदार या मुकर्ररीदार के रूप में ही यहाँ सामने लाना और कुछ सुनाना है। माँगों गाँव सुवर्ण रेखा नदी के उस पार ही यहीं है। पिछली बार जो मैं वहाँ गया था और पता लगाया तो मालूम पड़ा कि उस गाँव पर जो उनने मुकर्ररीदार का दावा ठोंक दिया है उसके चलते वहाँ के किसानों और कमिया लोगों को बड़ा कष्ट है। श्री मानिक होमी के भाड़े वाले आदमी किस तरह वहाँ के लोगों को सताते और जलील करते हैं इसकी दर्दनाक कहानी वहाँ के स्त्री-पुरुषों और श्री क्रिस्टो गौड़ प्रधान ने रो-रो के कह सुनाई। उस जुल्म के बारे में अपनी ओर से कुछ न कह के न्यायालय के दो फैसलों के कुछ अंश उद्धृत कर देता हूँ और मामला साफ हो जाएगा। यह गाँव मानभूम जिले के किनारे पर थाने से सोलह मील पर पड़ता है। इसलिए चालाक और चलते पुर्जे यार लोग यहाँ के हो और भूमिज आदि निवासियों को खूब ही सताते हैं। पहला फैसला–पुरुलिया के एस.डी.ओ. मिस्टर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एस.के.अहसान का लिखा हुआ अंग्रेजी में है। दूसरा फैसला मिस्टर बी. के. गोखले, डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट मानभूम का 5.9.27 का है। दोनों का हिन्दी अनुवाद ही दिया जाता है। पहला यों है–

'पुलिस की रिपोर्ट में होमी और उसके आदमियों के विरुद्ध यह शिकायत थी कि होमी, उसके आदमी और उसी के साथी कुछ और लोग भी किसानों को अनेक ढंग से सताते हैं और धमका के, मारपीट के और जबर्दस्ती रुपया वसूल के दिक करते हैं।

'अपनी पार्टी की तरफ से उसने साफ-साफ यह शर्त कबूल की है कि बिना अदालती कार्यवाही के दूसरे ढंग से हम लोग अपना अधिकार जबर्दस्ती न चलाएँगे और न किसी को सताएँगे ही, जैसा कि इलजाम है। इसलिए इस समय तो मैं उनके खिलाफ कोई कार्यवाही न करता। मगर इसी के साथ मिस्टर होमी और उनके आदमियों को साफ-साफ चेतावनी देता हूँ कि किसानों को, फिर चाहे वह कोई भी हों, वे लोग किसी भी तरह दिक या परेशान हर्गिज न करें। इस हुक्म की एक नकल पोटम्बा के थानेदार के पास भेजी जाए। ताकि यदि वे लोग अपना वादा तोड़ें तो वह उनके खिलाफ रिपोर्ट करे।'

दूसरा केस का, जो 1936 के स्फुट केसों में 309 का है, फैसला यों है–

'जो कुछ सबूत है उससे मुझे पता चलता है कि मिस्टर होमी जंगल और पेड़ों को अपनी निजी जायदाद मानता है जिन्हें जब जैसे चाहे काट सकता है और गाँव वालों के जो परम्परा प्राप्त अधिकार जंगल पेड़ों में हैं उन्हें उनका उपभोग रोकना चाहता है। इसी तरह गैर आबाद जमीन के बारे में भी वह किसानों को रोकना चाहता है कि आबाद न करें। हालाँकि प्रधानी प्रथा के अनुसार उन्हें यह अधिकार है कि आबाद करें और उसके लिए उचित लगान दें। मिस्टर होमी का अपना बयान है कि मुझे पता नहीं कि किसान लोग आबाद की गई जमीनों का मुनासिब लगान देना चाहते हैं।' इससे पता चलता है कि पुश्त दर पुश्त से वहाँ रहने वाले किसानों से कोई वास्ता न रख के वह अपने मन के ही लोगों को वहाँ बसाना चाहता है। इसलिए समस्त ग्रामवासी इसे खामख्वाह नापसन्द करते हैं। पुलिस सुपरिंटेंडेंट को जो पत्र मिस्टर होमी ने 26.1.27 को लिखा था उसके पाँचवें पैराग्राफ में लिखा है कि 'हमने जो पहले पहल दो हजार एकड़ जमीन हासिल की थी उस समूची को एक आदर्श फार्म बनाके उसे नए ढंग से चलाने का हमारा पक्का इरादा है।' मुझे अफसोस है कि यहाँ की हालातों के सम्बन्ध की अपनी नादानी के करते उसने नया ढंग के आदर्श फार्म के लिए एक प्रधानी (प्रधानवाला) गाँव चुन लिया, जिसमें कि गाँव के समूचे बाशिन्दों के अपने खास हक होते हैं और वे बखूबी माने जाते हैं।

'पुश्त दर पुश्त से गाँवों में प्रचलित रीति-रिवाजों के विरुद्ध काम करने के अपने इस विचार को मिस्टर होमी जितनी जल्दी छोड़ दें उतना ही खुद उनके लिए

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अच्छा है और मैं वहाँ जिस अमन और शान्ति के लिए फिक्रमन्द हूँ उसके लिए भी उतना ही अच्छा है।'

इस पर भी और कुछ लिखना बेकार है। इसने मिस्टर मानिक होमी की जन सेवा का सुन्दर चित्र खींचा है। मजदूरों का नेता तो बना जाता है उन जैसों की सेवा के ही लिए। मगर उनका अमली तरीका तो बड़ा ही खतरनाक है। उसी माँगों गाँव में उनने अपने कहने के लिए एक बँगला अलग बनवाया है। गाँव वालों ने पहले समझा होगा कि ये गरीबों के सेवक आ रहे हैं। इनसे हमारा कल्याण होगा। मगर पीछे उन्हें पता चला कि 'मुनि न होय यह निशिचर घोरा।' मगर अब तो देर हो गई और उनका पाँव वहाँ जम चुका है। अब तो रह-रह के उन गरीबों को अनेक ढंग से उनके फौलादी पंजे का मजा चखना ही होगा जब तक कि गरीबों में अपने हकों की रक्षा करने की पूरी ताकत आ नहीं जाती। वह ताकत तो आएगी जरूर। सवाल यही है कि जल्द आए।

(13)
किसानों की मुख्य माँगें

हमें जो कुछ कहना था कह चुके। अब कोई भी नई बात कहनी है नहीं। जो बातें पहले विस्तार के साथ कहीं गई हैं और उनके ही सिलसिले में झारखंड के किसानों के अभाव अभियोग भी आ गए हैं उन्हीं में से कुछ प्रमुख बातों को, या यों कहिए कि किसानों की खास-खास और चुनी-चुनाई माँगों को, मुतालबों को यहाँ अन्त में हम इसीलिए लिख देना चाहते हैं कि जिन्हें उनमें काम करना हो वह आसानी से उनकी जरूरतों को संक्षेप में समझ जाएँ। यों तो पूर्व लिखी सारी बातें पढ़ें और जाने बिना हम यहाँ की दशा समझ सकते नहीं। इसलिए सभी को पढ़ना और मनन करना निहायत जरूरी है। सबको पढ़ने और गाँवों में घूम के पता लगाने पर और भी कितनी ही जरूरी बातें मालूम हो सकती हैं जिनका जिक्र हम कर न सके हैं। मगर जो हैं वह हैं बहुत ही अहम। इसलिए भी सबका अध्ययन जरूरी है। ताकि पूरी जानकारी हो सके और कमी की पूर्ति की जा सके। हर हालत में कुछ सवाल तो ऐसे रहते ही हैं जो सबसे आगे आते हैं और सबसे ज्यादा चुभते हैं। उन्हीं को लेके आगे बढ़ने में आसानी भी होती है। शुरू में ही कम चुभने वाले प्रश्नों को उठाना ठीक नहीं होता है। इसीलिए चुनी-चुनाई माँगें यहाँ लिख दी जाती हैं।

(1) झारखंडी किसानों के लिए सबसे पहली और जरूरी बात यह है कि कोड़कर और उटकर आदि नामों से भी जो जमीनें आबाद की जाती हैं, की जा सकती हैं उनके बारे में जमींदार की हर तरह की रोक सख्ती के साथ कानून और इन्तजाम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के जरिए अविलम्ब बन्द कर दी जाए। जिससे स्वच्छन्दता के साथ किसान ये जमीनें तैयार करें। अब तक जो भी कानूनी अड़चनें हैं वह फौरन हटा ली जाएँ। ऐसी जमीनों का लगान उनके तैयार हो जाने और फसल उपजाना शुरू करने के कम से कम पाँच साल बाद ही तय किया जाए। मगर जहाँ ऐसी जमीनें बनें वहाँ की सबसे कमजोर और खराब जोत जमीनों के लगान से ज्यादा तो वह हर हालत में न हो। आमतौर से उसका आधा ही हो।

(2) घर-गिरस्ती के कामों और जीविका चलाने के लिए जंगल से पत्थर, बालू, काठ, बाँस, घास, पात, काँट, कुश, फल, फूल, मूल, शहद वगैरह लेने में कोई रुकावट या बन्धन न रहे। महुवा के फूल चुनने का उन्हें पूरा हक हो और उस पर कोई कर न लगे, चाहे महुवा के पेड़ खेतों में हों या जंगल में। किसानों के खेतों में लगे पलास, कुसुग और बेर के पेड़ों पर लाह लगाने और लगी हुई को उतारने, बेचने आदि का उन्हें पूरा हक हो और कोई भी कर देना न पड़े। अब तक जो भी बन्धन या रोक हो वह कानून या और इन्तजाम के जरिए फौरन सख्ती से हटा दिया जाए। टंग कर, पत कर, वन कर, चुल्ह कर या खरचरी आदि के नामों से प्रसिद्ध कर गैर-कानूनी करार दिए जाएँ।

(3) किसानों और उनके पशुओं के पीने वगैरह के लिए शुद्ध जल का जरूरत के मुताबिक फौरन इन्तजाम किया जाए और जगह-जगह कुएँ वगैरह तैयार कराए जाएँ। जहाँ कहीं भी सोते, झरने आदि हों वहाँ उन्हें और उनके पशुओं के जाने-आने पर कोई रोक रहने न पाए। यदि ऐसे झरने आदि रिजर्व या प्रोटेक्टेड फारेस्ट में हों तो वहाँ तक जाने का रास्ता बना दिया जाए और रास्ते के दोनों तरफ और झरनों के भी इर्द-गिर्द ऐसा जबर्दस्त ऊँचा और मजबूत घेरा बना दिया जाए कि कोई भी उसे आसानी से पार कर न सके और मवेशी उसे फाँद न सकें।

(4) झारखंड से एक-एक करके सभी काजीहाउस, अड़गड़े या कैटल पाउंड फौरन हटा लिए, और तोड़ दिए जाएँ।

(5) यहाँ का लगान सरकारी माल की अपेक्षा बहुत ही ज्यादा और प्रायः तीस-चालीस गुना होने के कारण बर्दाश्त के बाहर है। इसलिए वह इतना ही कर दिया जाए कि सरकारी माल और वसूली का खर्च बाद देने पर जमींदारों के पास ज्यादा से ज्यादा माल के बराबर ही बचे।

(6) दामिन इलाके के पहड़िया लोगों की कुरांव या झूमचास की आजादी पूरी तरह कायम रखी जाए और उसमें जो भी रुकावटें हों वह फौरन हटा ली जाएँ।

(7) झारखंड के जो आदिवासी या पिछड़े हुए किसान और दल हैं उनके पढ़ने के लिए उन्हीं की भाषा में जल्द से जल्द प्रबन्ध किया जाए और उनकी अपनी ही भाषा में प्रारम्भिक पढ़ाई अनिवार्य कर दी जाए। साथ ही उन्हें हर तरह की ऊँची से ऊँची शिक्षा मुफ्त ही देने का पर्याप्त प्रबन्ध शीघ्र से शीघ्र किया जाए।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(8) आबपाशी का पूरा-पूरा प्रबन्ध किया जाए और इस ओर मुस्तैदी के साथ फौरन काम शुरू किया जाए। हर तरह की आबपाशी के लिए पूरा प्रबन्ध करने की सोलह आना जिम्मेदारी जमींदारों पर ही हो और जब तक वे ऐसा नहीं करते, उन्हें एक पैसा भी लगान लेने का हक न हो। सरकार का फर्ज है कि उनके इस काम की जाँच और देख-रेख सख्ती के साथ बराबर की और उनके चूकने पर लगान रोक के खुद आबपाशी का प्रबन्ध करे और लगान वसूले। यदि उन्हें फिर वसूली का हक मिले तो दंड के साथ। यह दंड बढ़ता जाए, यदि वे बार-बार चूकते रहें।

(9) किसान परिवार के साल-भर के गुजर के लिए खड़ी फसल या गल्ला वगैरह छोड़ के ही बाकी लगान में बचा बचाया ही जब्त हो या बिके या नीलाम हो।

(10) बकाया लगान की नालिश न तो एक साल से कम की हो और न ज्यादा की। यदि किसान साल खत्म होने के पहले लगान चुकता कर दे तो उसे सूद एक पाई न लगे।

(11) झारखंड के सभी जिलों के लिए एक ही तरह का काश्तकारी कानून बने और वह हो बिहार के काश्तकारी कानून जैसा ही। फलतः समूचे सूबे के लिए एक ही कानून हो। बेशक आदिवासियों या पिछड़े किसानों के फायदे की धाराएँ जरूर रहें, खड़ी फसल की जब्ती, कुर्की या सर्टिफिकेट का अधिकार जमींदार को कहीं न रहे और जमीन सम्बन्धी शर्तें (Predial Condition) कतई खत्म कर दिए जाएँ।

(12) सरकार की ओर से अधिक से अधिक तीन रुपया सैकड़ा सालाना सूद की दर पर किसानों को कर्ज देने का इन्तजाम किया जाए, सूद दर सूद किसी भी सूरत में जायज न हो। इससे ज्यादा सूद की दर गैरकानूनी हो और किसी भी हालत में मूलधन से दूने की डिक्री न हो ऐसा कानून हो। सूदखोरी पर सख्त से सख्त कानूनी और इन्तजामी नियंत्रण किया जाए।

(13) सेवकाई, कमिऔती आदि किसी भी नाम से प्रचलित गुलामी और कमिया प्रथा गैर-कानूनी करार दी जाए और सख्ती के साथ ऐसा इन्तजाम किया जाए कि इस चीज का नामोनिशान रहने न पाए।

(14) इस बात का मुस्तैदी के साथ इन्तजाम किया जाए कि आदिवासी और पिछड़े किसानों की भाषाओं और रस्मोरिवाजों को बखूबी जानने-समझने वाले ही हाकिम इनके मुकदमों पर विचार करें। एतदर्थ ऐसे लोग जल्द से जल्द तैयार किए जाएँ। यदि इन्हें ये मिल सकें तो और भी अच्छा।

(15) इनके केसों में जो वकील, मुख्तार आदि कानूनी सलाहकार और मददगार हों उनके लिए खासतौर से कुछ नियम बनाए जाएँ जिससे इन लोगों को धोखा और परेशानी न रहे। इसलिए ऐसे कानूनदां लोगों पर नियन्त्रण और निगरानी रहे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(16) जो भी कानून बने, कानूनी या इन्तजामी व्यवस्था हो या कोई ऐसी नई बात हो जिससे किसानों का ताल्लुक हो, तो उसके घर-घर और गाँव-गाँव में पूर्ण प्रचार का पक्का इन्तजाम सख्ती के साथ किया जाए।

(17) अबरक को जहाँ-तहाँ से चुन और निकाल के जो किसान या गरीब गुजर करते हैं चोरी के बहाने उन्हें सताने का जो कानून है वह रद्द हो और कोयले की खानों की ऊपरी जमीन पर किसानों की खेतीबारी वगैरह में जो बाधा पड़ती है वह हटा दी जाए।

(18) एक ही जुडिशल कमिश्नर के कई जिलों के लिए होने के कारण सेसन्स के केसों में बहुत ज्यादा समय लग जाता है। तब कहीं फैसला होता है। यह बात दूर हो जांनी चाहिए।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

किसानों को फँसाने की तैयारियाँ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रवेशिका

हाल में ही कलकत्ते से प्रकाशित होने वाले मासिक पत्र 'भूमिहार ब्राह्मण' ने मुझसे लेख माँगा। पहले तो मैं हिचकिचाया और इनकार करना चाहा। कारण उसके प्रबन्धकों ने जब शुरू में ही मुझसे प्रकाशन की सम्मति माँगी थी तो मैंने उन्हीं बातों को कहके उसके प्रकाशन का विरोध किया था जो आगे पढ़ने को मिलेगी। लेकिन फिर मित्रों की राय से यह तय पाया कि वह बातें उसी पत्र के द्वारा लोगों तक क्यों न पहुँचाई जाएँ। बस, लेख माला शुरू हो गई जो उसके सात अंकों में समाप्त हुई। वही आज इस पुस्तिका के रूप में, उसका शीर्षक बदलकर पाठकों के समक्ष उपस्थित है। यह काम भी मित्रों और सहयोगियों के आग्रह से ही किया जा रहा है। आगे पाठकों को कई जगह भूमिहार ब्राह्मण महासभा आदि शब्द पढ़ने को मिलेंगे। यह केवल दृष्टान्त के रूप में ही समझे जाने चाहिए जो प्रसंगवश आ गए हैं।

असल में आज जातीय सभाओं का बहुत जोर है। कायस्थ सभा, राजपूत सभा, कुर्मी (कूर्मक्षत्रिय) सभा, ग्वाला (यादव) सभा, मैथिल सभा, भूमिहार ब्राह्मण सभा आदि के रूप में ये सभाएँ पहले से तो थीं ही। खूबी तो यह है कि हमारे बड़े से बड़े राष्ट्रवादी भी उनका विरोध नहीं करते, किन्तु उन्हें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से पनपने देकर उनके शिकार अनजान से ही सही, कभी-कभी बन जाते हैं। इस तरह ये सभाएँ अपना जहर फैलाकर राष्ट्रीयता का गला अबाध रूप से घोटे रही हैं। खूबी तो यह है कि उनके इस मारक (कातिल) नश्तर का किसी को पता ही नहीं लगता और वे अपना काम कर जाती हैं। इनके करते गरीबों की किसानों और मजदूरों की ही बहुत बड़ी और असली हानि हो रही है। यही बात इस पुस्तिका में दिखाई गई है और किसानों को चेतावनी दी गई है कि वे चेत जाएँ। सभी लोगों का यह कर्तव्य भी बताया गया है कि किसानों की सेवा ही असली सेवा है समाज और जाति का वास्तविक हित है और यदि खास-खास जातीय सभाएँ करनी ही हैं तो उनमें किसानों के ही हिताहित का विचार होना चाहिए। गरीबों के लिए तो रोटी का सवाल ही सबसे गहरा और प्रधान है। जाति और धर्म का प्रण तो धनियों के ही स्वार्थ से सम्बन्ध रखता है (यह बात उस पुस्तिका में दर्शाई गई है) आशा है, इससे श्रमजीवियों तथा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उनके सेवक कहने वालों की आँखें खुलेंगी और वे इन जातीय सभाओं के जाल को तोड़ने तथा किसानों का संगठन करने की ओर मुस्तैदी के साथ अग्रसर होंगे।

श्री सीतारामाश्रम,
बिहटा, पटना
अक्षय नवमी
(1946)

—स्वामी सहजानन्द सरस्वती

(नोट : 'प्रथम बार भूमिहार ब्राह्मण' पत्रिका कलकत्ता में 6 किश्तों में प्रकाशित—1935 ई.—सम्पादक)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

किसानों को फँसाने की तैयारियाँ

जब तक वर्ण व्यवस्था और जाति-पाँति का विभेद रहेगा तब तक हजार न चाहने पर भी जातीय सभाएँ और पत्रिकाएँ रहेंगी ही। यह दूसरी बात है कि वह जाति विभेद (विभाग) हिन्दुओं की शैली का हो जिसका मूलाधार जन्म क्रिया (कर्म) तथा खानपान के सहित विवाह सम्बन्ध हो या अन्य देशों की तरह जन्म से न होकर आर्थिक स्थिति और बँटवारे के आधार पर हो। मालूम होता है जाति विभाग मानव समाज के रूप और धमनियों में निहित हो परम्परा प्राप्त है। यह दूसरी बात है कि कभी वह प्रकट रहता है और कभी अन्तर्हित। पहले भी और आज भी ये आर्थिक, राजनीतिक तथा सामाजिक प्रश्नों के आधार पर नई विचारधाराएँ काम करती थीं और कर रही हैं वह इसी स्वाभाविक जातिवाद की गुत्थियों के सुलझाने की विभिन्न चेष्टाएँ हैं। चाहे धनी और गरीब ये दो ही जातियाँ मानकर या कमाने वालों तथा खाने वालों का ही जातिद्वय स्वीकार कर कोई विचारधारा बहती हो या पूँजीपति तथा मजूरों की श्रेणियों के विचार से कोई आन्दोलन खड़ा हो या ऐसा ही कोई दूसरा विभाग हमारी विचार और प्रचार शैली का मूलाधार हो। लेकिन जातिवाद हमारा पिण्ड नहीं छोड़ता। कम से कम अब तक के इतिहास में तो इसके पिण्ड छोड़ने का पता नहीं चलता। यदि बीच में कभी किसी ने इसे मिटाने का प्रबल उद्योग किया भी तो वह थोड़े ही काल में विलीन हो गया, या ठीक उसी तरह जैसे स्वाभाविक पदार्थ के सामने कृत्रिम नहीं टिकता और फिर पूर्ववत्, जातिवाद की तूती बोलने लगी। बुद्ध, ईसा, मुहम्मद आदि ने जरूर इस जातिभेद को मिटाकर मनुष्य मात्र में समता एवं भ्रातृभाव का प्रचार करना चाहा। लेकिन उन्हीं के नाम पर चलने वाले धर्म सम्प्रदायों में जाने कितनी जातियाँ एवं उपजातियाँ पाई जाती हैं। ऐसी दशा में आगे हम सम्भवतः इस जातिवाद को मिटाकर संगठन (एकता) लाने में सफल होंगे। इस दिमागी दुनिया में दौड़ लगाने की अपेक्षा बुद्धिमत्ता इसी में है कि वास्तविक स्थिति का सामना हिम्मत के साथ किया जाए और जातिवाद के चलते होने वाली हानियों से देश और समाज की रक्षा की जाए। क्योंकि यह तो कहा नहीं जा सकता कि एक प्रकार से स्वाभाविक होने पर भी यह जातिवाद एकमात्र बुराइयों का ही जन्मदाता है, न कि उससे कभी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भलाई हुई है या आगे होगी। यदि बुद्धिपूर्वक हठ छोड़कर काम किया जाए तो इससे लाभ बहुत ज्यादा हो सकते हैं। पहले भी हुए हैं।

जाति का सही उपयोग

फलतः सभी ईमानदार पत्रों और जातीय सभाओं का कर्तव्य है कि वे सर्वप्रथम राजनीति से असहयोग कर लें। वह अपना यह मुख्य ध्येय और नियम बना लें कि वे राजनीतिक चक्र में, फिर वह चाहे सीधे हो या टेढ़े कदापि पड़ने को तैयार न हो। राजनीति से मेरा मतलब सरकारी चुनावों से लेकर कांग्रेस या उग्रतम दल की उग्रतम राजनीति से है। मैं जानता हूँ कि इस राजनीति के प्रेम ने हमें धोखा दिया है, हालाँकि आवेश में आकर उग्र राजनीति वाले भी अपनी राजनीति में जातीय सभाओं और उनके नेताओं को, सफलता की क्षणिक अधीरता में प्रायः घसीट लिया करते हैं। ऐसी सभाओं में भाग लेने वाले लोग उन्हीं के नाम पर न कि जातीय सभाओं के नाम पर अच्छी तरह काम कर सकते हैं। हालाँकि मेरा विश्वास-सा होता जा रहा है कि जातीय सभाओं के लीडर, कार्यकर्ता एवं स्तम्भ, इतने मलिन हो जाते हैं कि राष्ट्रीय या उस काम से लाभ के बजाए हानि ही अधिक होती है गो कि आरम्भ में उस हानि का ज्ञान हमें नहीं होता। किसी स्वतंत्र रूप से तो उन्हें राजनीति से अलग ही रहना चाहिए। उन्हें न राजभक्ति से मतलब होना चाहिए न राजद्रोह से न डिस्ट्रिक्ट बोर्डों और कौंसिलों आदि से और न उनके बायकाट से। इन सबों को वे भूल जाएँ तभी वे ठीक रास्ते पर चलके समाज की, जाति की, सेवा कर सकते हैं। मैं मानता हूँ कि आज के विषाक्त वायुमण्डल में भूल जाना तो असम्भव ही है। ऐसी हालत में उन्हें यह प्रस्ताव या निश्चय करके उसे बराबर दोहराते रहना चाहिए कि जो लोग जाति के नाम पर वोट माँगें या इस ढंग की कोई बात करें उनका बहिष्कार होना चाहिए और हर जाति सेवी का पवित्र कर्तव्य होना चाहिए कि उन्हें इस काम में निराश करें। यदि जातीय सभाएँ और पत्र-पत्रिकाएँ अपनी कार्यवाही का श्रीगणेश ईमानदारी एवं मुस्तैदी के साथ इस निश्चय के साथ करें तो समाज के अधिकांश झगड़े मिट जाएँ और वे कामचलाऊ और निर्दोष सिद्ध हो जाएँ।

धर्म का जाति द्वारा सही उपयोग

राजनीति के सिवाय धर्मनीति की ठेकेदारी भी इन संस्थाओं के लिए ठीक नहीं। ठेकेदारी कहने से ही मेरा मतलब साफ हो जाता है। अच्छा तो होता कि ऐसी संस्थाएँ धर्म से सोलहों आने मुख मोड़ लेतीं और उसे व्यक्तियों की आजादी पर व्यक्तिगत वस्तु समझकर छोड़ देतीं। क्योंकि धर्म असल में यदि उपयोगी सिद्ध हो सकता है तो व्यक्तिगत वस्तु बनकर ही, न कि सार्वजनिक पदार्थ बनकर। उसके व्यक्तिगत वस्तु बने ही धर्म के नाम पर होने वाले सभी झगड़ों का अन्त हो जाएगा, जिससे समाज की रक्षा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के साथ ही धर्म की भी रक्षा हो जाएगी) लेकिन यदि यहाँ तक जाना उनके लिए सम्भव न हो और वर्तमान दशा में सम्भव होगा नहीं यह मैं मानता हूँ तो अच्छा और सर्वोत्तम उपाय यही है कि वे संस्थाएँ सार्वभौम या साधारण धर्मों पर ही जोर दें और उसी में लोगों की प्रवृत्ति करावें। ये साधारण धर्म, दया, सत्य, सदाचार, निर्भीकता आदि है जिनका उपदेश मन्त्रादि आचार्यों ने 'क्षमा दमन' आदि-आदि के रूप में किया है। ये धर्म ऐसे हैं कि इनमें किसी धर्म या सम्प्रदाय वाले को विवाद नहीं हो सकता—नहीं होना चाहिए। यह तो मानना ही होगा कि एक जाति के भीतर भी कितने ही धर्म सम्प्रदायों के मानने वाले लोग होते ही हैं। ऐसी दशा में जातीय संस्थाएँ किसी भी साम्प्रदायिक बात में कैसे पड़ सकती हैं और साथ ही अपने को जाति मात्र की हितचिन्तक होना सिद्ध कर सकती हैं।

वर्तमान जाति आधारित राजनीति

बहुत ही अदब पर स्पष्टता के साथ मैं कह देना चाहता हूँ कि चाहे पहले कुछ भी स्थिति रही हो, और मेरे जानते पहले भी यही थी, लेकिन आज तो जातीय संस्थाएँ एकमात्र कुछ इने-गिने; प्रतिष्ठि, चलते पुर्जे तथा धनिकों के राजनीतिक स्वार्थ साधन की सामग्री बन गई है और खूबी यह है कि खुल्लम-खुल्ला वहाँ समाज सुधार की बातें की जाती हैं, लेकिन चुपके-चुपके राजनीतिक स्वार्थ साधन का षड्यन्त्र किया जाता है। जहाँ पहले किसी उच्च पदस्थ अफसर की दरबारदारी और स्वागत कर देने एवं राजभक्ति बाहरी स्वाँग भरने से समाजों के ये चतुर खिलाड़ी अपने नजदीकियों तथा पिछुओं के लिए नौकरियाँ, ऊँचे पद और दूसरी रिआयतें हासिल कर लेते थे वहाँ उनके साथ ही अब चुनावों के युद्ध में भी सफलता पाते और पाना चाहते हैं। इस बात को मैं दृष्टान्त देकर स्पष्ट कर देता पर इसकी आवश्यकता नहीं समझता। यदि ये जातीय नेता और लीडर हिम्मत रखते तो यही बातें साथ-साथ करते और करते। लेकिन राजनीति का तो अर्थ ही है कूटनीति। फलतः ऐसे मामलों में 'भीतर कुछ बाहर कुछ' या 'अन्तः शाक्ताः बहिः शैवाः' होना शोभास्पद माना जाता है। राजनीति के चतुर खिलाड़ी नट शुद्ध राजनीतिक संस्थाओं में भी अपनी धाक बनाए रखते हैं और भोली-भाली जनता की आँखों में इस प्रकार धूल झोंकने में सफल होते हैं। खूबी तो यह है कि अपनी जातीय सभाओं में ये भले मानस चुनाव में सहायता के प्रस्ताव भी नहीं करते और अपना उल्लू भी सीधा कर लेते हैं। समाज के लोगों में समाज के ही नाम पर ऐसी मनोवृत्ति इन सभाओं और उनके पोषण पत्रों के द्वारा लोगों में भर देते हैं कि अपने समाज का कैसा भी आदमी हो दूसरे समाज वाले से लाख दर्जे अच्छा है, हम और वह एक ही अमुक समाज के हैं, बस इतना ही इसके लिए काफी है कि हम उसे ही मदद करें, वोट दें, जितावें आदि-आदि। कोई भी विचारशील सोच सकता है कि राष्ट्र के उत्थान के लिए यह मनोवृत्ति कितनी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जहरीली है। इस प्रकार ये सभाएँ प्रवेचना तथा देशद्रोह—राष्ट्रविद्यात—का साधन बन जाती हैं। इससे तो कहीं अच्छा होता कि इन संस्थाओं में इस विषय के स्पष्ट प्रस्ताव ही पास या पेश किए जाते। क्योंकि ऐसा होने से कम से कम शुद्ध राष्ट्रवादी तो इनके चक्र में और जाल में नहीं फँसते, जो अन्यथा फँस जाते हैं। यही नहीं यदि ऐसे प्रस्ताव आवें तो शायद बहुमत उनके पक्ष में हो भी नहीं। कारण कुछ लोग तो नक्कू बनने के डर से और कुछ राष्ट्रीयता के विचार से ही ऐसे प्रस्तावों का समर्थन न करेंगे। फलतः इन संस्थाओं की चालाकी इसी में है कि स्पष्ट न बोलकर केवल प्रचार मनोवृत्ति और इशारे के बल से ही यारों के मतलबों को पूरा कर देती हैं।

अवसरवादी सही उपयोग

लोग कहेंगे कि मैं इन संस्थाओं के साथ और खासकर उनके स्वयंभू नेताओं के साथ घोर अन्याय इस तरह कर रहा हूँ। मगर बात यह नहीं है। जो जातियों, उपजातियाँ आज सभ्य या ऊँची नहीं हैं वह भले ही अपनी सभाओं के द्वारा समाज हित की बातें करती हैं और समाज की बुराइयों को दूर करती हैं, सामाजिक बन्धन को दृढ़ कर के अनाचार और अत्याचार को समाज से हटाती हैं। इसके दृष्टान्त चमार, दुसाध, धोबी आदि की पंचायतों में पाए जाते हैं। मगर यह सामान्यता उच्च कही जाने वाली जातियों की सभाओं के बारे में भी क्या ऐसी बात पाई जाती है। ज्यों ही कौंसिलों और बोर्डों के चुनाव का समय आया कि जाति हित की दोहाई दी जाने लगी और यादों के मेढक की तरह जातीय सभाएँ पैदा होने लगीं। जो पहले से ही हैं वे पनपती हैं ऐसे ही समय में। बेशक बहुत से काम हैं जो इनके द्वारा अच्छी तरह किए जा सकते हैं। दृष्टान्त के लिए यदि समाज से निरक्षरता दूर कर उसे शिक्षित बनाने का ही काम ये सभाएँ और उनके पत्र तोलें और एतदर्थ पर्याप्त धन संग्रह कर योग्य एवं धुनी लोगों के हाथ में यह काम सौंप दें तो कितना बड़ा काम हो। असली बात तो यह है कि यही वास्तविक काम होगा। मगर इसके लिए केवल प्रस्ताव पास कर देना या बहुत हुआ तो दो-चार दस-बीस छात्रों को कुछ सहायता दे देना ही पर्याप्त समझा जाता है। जब तक निरक्षरता हटाने और शिक्षित बनाने की स्कीम बनाकर तदुनसार काम न हो तब तक क्या 'उड़ा सत्तू पितरों को' वाली कहावत इस प्रकार चरितार्थ करने से काम चलने का। लेकिन यह तो मानी हुई बात है कि यदि समाज शिक्षित हो जाएगा तो फिर वह एक-एक करके राजनीतिक पदों और नौकरियों को पहले इन चतुर नटों से छीनने की तैयारी करेगा और इस बात को वे बर्दाश्त नहीं कर सकते। समाज में शक्ति और बल आ जाने पर, सुबुद्धि और विवेक आ जाने पर इन स्वयंभू नेताओं की लीडरी और धाक जो छिन जाएगी। इस दुनिया में ऐसा कौन बेवकूफ है जो अपने पाँवों में स्वयं कुल्हाड़ी मारे। अतएव सामाजिक लीडर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लोग शिक्षित बनाने की बातें और प्रस्ताव तो करते हैं ताकि अपढ़ जनता जिसके हाथ में वास्तविक राजनीतिक शक्ति है और उसका प्रयोग करना नहीं जानती, इनकी ओर आकृष्ट हो जाए और ये उपकारी बनके अपना काम निकाल लें लेकिन उस प्रस्ताव को असली जामा पहनाने में तो इनकी हस्ती स्वयं खतरे में है। नहीं तो फिर पचासों वर्षों तक लगातार प्रस्ताव करने पर भी न सभाओं के पास समाज को शिक्षित बनाने की स्कीम और जरूरी कोष (फंड) क्यों नहीं हुआ? क्या समाज में दिमाग की कमी है या धन की? मेरे जानते तो कमी एक की भी नहीं और अगर किसी को है तो ईमानदारी, नीयत और सच्ची लगन की।

शिक्षा प्रसार

जरा इस शिक्षा वाले प्रश्न के और भी भीतर प्रवेश करके देखना चाहिए। दृष्टान्त के लिए भूमिहार ब्राह्मण सभा को ही ले सकते हैं। महासभा के महारथियों का कहना है कि इसका जन्म कांग्रेस का समकालीन है। लेकिन इसने क्या किया इसे भी तो देखना चाहिए। और बातों को अभी छोड़ देता हूँ और केवल शिक्षा प्रचार की बात ही लेता हूँ। प्रस्ताव तो बराबर होते रहे। लेकिन काम? यदि इस सम्बन्ध का महासभा का कार्य देखा जाए तो बुरी तरह हताश होना पड़ेगा। न तो कभी कोई समुचित प्रयत्न करके पर्याप्त कोष हमें संगृहीत हुआ और न कोई स्कीम ही दिमाग लगाकर तैयार की गई। हाँ, कुत्ते के टुकड़े की तरह कभी-कभी बहुत दरबारदारी करने पर, कुछ पढ़ने वालों को चन्द रुपए मासिक या एक मालिक दे दिए गए और बस? यह समाज तो धनियों और जमींदारों का माना जाता है। फलतः रुपए की कमी तो इसमें है नहीं। दिमाग की भी कमी नहीं कही जा सकती। जो लोग स्वायत्त शासन विभाग में सरकार का और डिस्ट्रिक्ट तथा लोकल बोर्डों का संचालन कर सकते हैं संचालन करने का दावा रखते हैं, उनके बारे में कैसे कहा जाए कि दिमागदार नहीं हैं और निरक्षरता को समाज से निर्मूल करने की कोई स्कीम वे सोच ही नहीं सकते? जो कौंसिलों की कुर्सियाँ बराबर तोड़ते रहे और आगे भी तोड़ने को अधीर हो रहे हैं, क्या उनके दिमाग का दिवाला निकला माना जाए। कम से कम वे स्वयं कैसे यह स्वीकार करेंगे? तो फिर समाज को शिक्षित बनाने के लिए कोई स्कीम क्यों नहीं उन्होंने तैयार की? इसका जवाब उनके पास क्या है? क्या वे ईमानदारी के साथ कह सकते हैं कि समाज को शिक्षित बनाने में उनकी सहायता कोई नाम लायक स्थान रखती है? भूमिहार ब्राह्मण कालिज, महासभा का विद्याकोष जो कि दोषग्रस्त रोगी की तरह कभी-कभी सिर उठाया करता है। कदम कुआँ (पटना) तथा अन्यान्य स्थानों के छात्रावास जो जन्म के मर गए, इस बात के जन्मजात प्रमाण हैं कि महासभा के नामधारी नेताओं ने समाज में शिक्षा विस्तार के लिए क्या किया? मैं जानता हूँ कि महासभा के पुनर्जन्म के लिए आज फिर सिर तोड़ परिश्रम वर्षों से होने लगा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है और शायद एकाध वर्ष तक होता रहेगा भी। हो सकता है उसका पुनर्जन्म भी हो यह भी मानता हूँ कि कुछ सीधे-सादे और भोले-भाले लोग हृदय से ईमानदारी के साथ उसको जिलाना चाहते हैं कि उसके द्वारा समाज की सेवा—वास्तविक सेवा की जाए। मुझे उनकी सिधाई और भोलेपन पर दया आती है। वे भावुक तथा निर्दोष लोग अभी तक यह समझ ही नहीं सके हैं कि महासभा ने समाज की कोई सेवा नहीं की है प्रत्युत उसे रसातल की ओर ले जाने में उसका काफी हाथ रहा है। इसके स्वयंभू नेताओं ने तिलक-दहेज आदि सामाजिक कुरीतियों के हटाने के सम्बन्ध में जिस 'खुदा मियाँ से चोरी करने, या 'डूबकर पानी पीने' की नीति का अवलम्बन किया है। उससे समाज को महान आघात पहुँचा है। मगर इन बातों पर कभी पीछे प्रकाश डाला जाएगा। इसीलिए कहता हूँ कि महासभा के बारे में भोले-भाले लोगों की जो धारणा है उनके लिए तो उन पर दया आती ही है। लेकिन उन्हें छोड़कर एक दूसरा छोटा, परन्तु चलता पुर्जा, जबर्दस्त दल है जिसके लिए महासभा चुनावों में सफलता का साधन मात्र है। वह आज उसके बिना 'डाल से गिरा बानर' हो रहा है और उसे पुनर्जन्म देने में आकाश-पाताल एक कर रहा है। यह उसी की बात नहीं। हर समाज को ऐसे अमलों में कठपुतली की तरह नचाने वाले कुछ रहते ही हैं और इसी प्रकार अपनी-अपनी सामाजिक सभाओं के लिए बेहाल रहते हैं और हो रहे हैं भी। परन्तु जहाँ तक समाज को शिक्षित बनाने से सम्बन्ध है। इन कलाबाज नटों का पता भी नहीं है। आखिर समाज के सीधे-सादे लोगों को शिक्षित बनाकर ये लोग अपने लिए बला क्यों पैदा करें?

अंग्रेजी सरकार ने भारत को जो थोड़ी बहुत पाश्चात्य शिक्षा दी उसका नतीजा आँखों के सामने है। लोगों की आँखें खुलीं और वे अब उस सरकार से ही भिड़ने लगे यहाँ तक कि उसे उखाड़ फेंकने की हिम्मतें बाँधते हैं। क्या इससे हमारे जातीय नेता शिक्षा नहीं ग्रहण करते? आखिर नौकरियों और कौंसिल, असेम्बली, बोर्ड आदि की सीटें तो अपरिमित हैं नहीं और हो भी नहीं सकती हैं। ऐसी हालत में जब हर समाज में ज्यादा लोग शिक्षित हो जाएँगे तो फिर जाति के नाम क्यों कुछ गिने गुथे ही लोग इन जगहों पर जाएँगे और नए लोग दावेदार क्यों न होंगे? आखिर जाति तो इन स्वयंभू नेताओं की ही अकेली है नहीं, प्रत्युत इन नए पढ़े-लिखे लोगों की भी है—गरीबों की भी है। बल्कि गरीबों की ही ज्यादा है। ऐसी हालत में नए पढ़े-लिखे लोग, जो आमतौर से साधारण और गरीब श्रेणी के ही होंगे—जाति के 95 फीसदी लोग जनता—में से ही होंगे मजबूरन इन लीडरों के विरोध में केवल दावेदार ही नहीं होंगे, प्रत्युत सफल भी होंगे यह मानी हुई बात है। समाज की आँखें खोलने और उसे शिक्षित बनाने का यही असली खतरा है और जातीय नेता लोग इसे खूब समझते हैं। यही कारण है कि शिक्षा विस्तार की कारगर स्कीम बना और तदर्थ पर्याप्त धन संग्रह करके वे अपने ही पाँवों में कुल्हाड़ी मार नहीं सकते। साथ ही, भोली जनता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में अपनी प्रतिष्ठा कायम रखने एवं अपने लिए कुछ भाड़े के टट्टू, जो टुकड़े के लोभ से सर्वत्र उनके गुणगान से गगन को गुंजायमान कर दें, भी तैयार करने की आवश्यकता वे समझते हैं। इसीलिए समाज में शिक्षा प्रचार की बात जातीय सभाओं में करते रहते और चन्द लोगों को कभी-कभी कुवृत्तियाँ भी देते रहते हैं। समय-समय पर सिर उठाने तथा बड़-बड़ाने वाले शिक्षा कोषों का भी यही रहस्य है। भूमिहारों द्वारा भूमिहारों का शोषण आखिर इस दुनिया में स्वार्थों का परस्पर संघर्ष तो चलता ही रहता है और यह तो कही नहीं सकते कि एक समाज के सभी लोगों का स्वार्थ एक ही है। ऐसा समाज चाहे आगे चलकर भले ही पैदा हो जाए। परन्तु आज तो समाज भीतर भी स्वार्थों का जबर्दस्त संघर्ष है। धनी, गरीब, मजूर, पूँजीपति और रैयत, जमींदार के परस्पर विरोधी स्वार्थ रोज टकराते रहते हैं। क्या जमींदार अपने रैयतों पर केवल इसलिए कि वे उसी की जाति के हैं और उन्हीं के वोटों से उसे चुनावों में जीतना है जोर-जुल्म और नादिरशाही करने से बाज आ जाता है? बाज आ जाएगा? और समाजों की बात छोड़ कर केवल भूमिहार ब्राह्मण समाज की ही बात लेने पर कम से कम बिहार प्रान्त में तो मैं कह सकता हूँ कि आज कई लाख भूमिहार ब्राह्मण किसान उँगलियों पर ही गिन लिये जानेवाले कुछ ही भूमिहार ब्राह्मण जमींदारों के द्वारा बेरहमी के साथ बुरी तरह अत्याचार की चक्की में पीसे जा रहे हैं। खूबी तो यह है कि उन्हीं गरीबों के बल पर ये महानुभाव लोग कौंसिलों और बोर्डों के मंचों तथा कुर्सियों पर विराज चुके और विराजते ही नहीं, आगे भी विराजने की हिम्मत बाँधे हुए हैं। यहाँ पर एक स्पष्ट प्रश्न किया जा सकता है। यदि इन गरीब किसानों को हमारे ये पढ़े-लिखे धनी जमींदार, भूमिहार ब्राह्मण महासभा के द्वारा छात्रावास और शिक्षा कोष खोलकर शिक्षित बना देते और उनकी आँखें इस प्रकार खोल देते कि अपने हकों को पहचान सकें तथा अपने कर्तव्य जान सकें, तो उनके वोट क्या इन जमींदारों को मिले होते या आगे भी मिल सकते? यह साफ बात है कि बैल तो तेली का अपना ही होता है और तेली उससे काफी मुहब्बत भी रखता है, उसे खिलाता-पिलाता भी खूब है। लेकिन यदि उसकी आँखें मूँद कर न रखे तो क्या उसकी मर्जी बेमुताबिक छोटे दायरे के भीतर बराबर तेली के कोल्हू में वह चलता रहेगा और मस्ती न करेगा—भड़केगा नहीं? जरूर भड़केगा और तेली के कोल्हू के जुए को उतार फेंकेगा। इसीलिए तेली के प्रेम की भी सीमा है और उसी सीमा के भीतर वह अपने बैल से प्यार करेगा। उसकी आँखें खोलने में खतरा होने से यह काम वह कर नहीं सकता। ठीक इसी प्रकार जातीय प्रेम की भी सीमा है और जातीय नेता लोग भी उसे अतिक्रम करने में साफ खतरा देखते हैं। फलतः समाज की आँखें ये खोल नहीं सकते। बलि के बकरे के साथ भी तो मुहब्बत की ही जाती है और उसे खिला-पिला कर मोटा किया जाता है—उसमें स्वार्थ है। लेकिन उस बकरे को बाघ बनाने की बेवकूफी कौन करेगा सिवाय उस भोले हितोपदेश के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ऋषि के जिसने चूहे को बाघ बनाकर अपनी जान खतरे में डाली? यही है जातीय प्रेम और जातीय संस्थाओं की लीडरी का वास्तविक रहस्य। एक ही स्वार्थ के धनी या गरीब, किसान या जमींदार यदि अपनी-अपनी सभाएँ करें तो यह बात समझ में आ सकती। लेकिन धनी, गरीब किसान, जमींदार की खिचड़ी सभा का मतलब समझना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है।

यद्यपि कहा जा सकता है कि कांग्रेस या इस ढंग की सभाएँ ऐसी हैं जिनमें एक ही स्वार्थ के लोग नहीं रहते। हिन्दू-मुसलमान वगैरह ऐसे सम्प्रदाय वाले हैं जिनके धर्म और जिनकी सभ्यता का परस्पर मेल नहीं खाता और जहाँ तक इन बातों का ताल्लुक है उनके स्वार्थ परस्पर भिन्न है। फिर भी उनकी सभाएँ किसी एक विशेष लक्ष्य को लेकर होती हैं। इसी प्रकार धनी, गरीब और जमींदार किसान के स्वार्थ भिन्न होने पर भी किसी खास मतलब को सामने रखकर इनकी सभा का होना असम्भव था। कठिन क्यों होगा? यों तो व्यक्तियों के भी स्वार्थ परस्पर भिन्न होते ही हैं—उनका आपस में मेल नहीं होता। तो क्या धनी या गरीब अथवा जमींदार या किसान किसी भी एक दल के लोगों की भी कोई सभा नहीं होनी चाहिए? यह तो अनुभव के विरुद्ध है और रोज ही देखते हैं कि जमींदार या किसानों की सभाएँ होती ही हैं। ऐसी हालत में सभाओं के सम्बन्ध में एक स्वार्थ का सवाल उठाना धोखे से खाली नहीं है और ऐसे सवाल करने वाले सभी प्रकार की सभाओं में शत्रु अपने ही बयान से सिद्ध हो जाएँगे। असल में स्वार्थ तो विचार और दिमाग की चीज है। बाहरी पदार्थों में कहीं भी स्वार्थ का लेबुल नहीं लगा है। मानव समाज अपने ही विचारों से हर पदार्थ में स्वार्थ और अस्वार्थ का दर्शन करता और इस प्रकार के स्वार्थ की झाँकी के ही बल पर किसी दल विशेष का एकीकरण होता है न कि वह स्वार्थ कोई स्थायी और निर्दिष्ट पदार्थ है। फलतः हर एक जाति समाज या दल के लोग, फिर चाहे धनी हों या गरीब, जमींदार हों या किसान, शिक्षा प्रचार कुरीति संहार आदि बातों में एक स्वार्थ की कल्पना करके एक सूत्र में आ वह सकते हैं—एक सभा कर सकते हैं और इसमें कोई भी विरोध नहीं हो सकता।

मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकताएँ

लेकिन यदि इन दलीलों की तरह में प्रवेश करके देखा जाए तो अन्त में हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि एक स्वार्थ वाली बात बहुत ही ठीक है। स्वार्थ से हमारा मतलब धर्म, रक्षा, स्वर्ग, बैकुण्ठ, नैतिकबल, कुरीति संहार सभ्यता की रक्षा आदि से नहीं है। वे सब चीजें जो आदमी को तभी सूझती हैं, याद आती हैं जब पेट भरा होता है, तन ढँका होता है और अपमान की ज्वाला से वह प्रतिक्षण दग्ध होता नहीं रहता। पेट की ज्वाला शान्त करने के लिए, जमीन-जायदाद के लिए, रोटी के लिए क्या हम नहीं देखते कि धर्म, सभ्यता, बैकुण्ठ, स्वर्ग आदि सभी बातों को लोग आए

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दिन तिलांजलि देते रहते हैं। न्यायालयों में प्रतिदिन झूठी गवाहियों और बनावटी बयान आखिर किस बात के सुबूत हैं? जब गंगा, तुलसी, शालिग्राम, नर्मदेश्वर, वेद, कुरान, पुराण की कसमें खाके भी सरासर झूठे और जाली बयान दिए दिलाए जाते ही हैं और ये कोई इनकी उनकी घटनाएँ नहीं हैं, किन्तु जीवन का अपरिहार्य अंग हैं, साथ ही इनसे बचे भी कोई ही माई के लाल हैं तो फिर इसमें भी क्या सन्देह करने की जगह है कि असली और खरा स्वार्थ जनसाधारण की नजरों में क्या है? किसी बात का निश्चय तत्सम्बन्धी प्राकृतिक या दैनिक नियम देखकर ही किया जा सकता है न कि अपवादों से कोई महत्त्वपूर्ण बात सिद्ध होती है? भूख की हालत में यदि लाखों-करोड़ों में कोई सन्त-महात्मा, औलिया, फकीर, अवतार, पैगम्बर भगवान में लीन हों और दूसरे की परवाह न करते हों या जमीन-जायदाद की परवाह न करके कोई बिरला बहादुर सत्य से डिगने को तैयार न हो तो इतने से ही यह नहीं माना जा सकता कि मानव समाज या जनसाधारण का पक्का स्वार्थ रोटी, कपड़ा, जमीन-जायदाद, आदि को छोड़कर और ही है। यदि ऐसी कोई चीज हो भी तो वह व्यावहारिक नहीं है, रोजाना जिन्दगी के काम में आने की चीज नहीं है और व्यावहारिक पदार्थों को ही देखना होगा। अव्यावहारिक पदार्थों की तरफ नजर दौड़ाना पहले दर्जे की बेवकूफी होगी और ऐसे पदार्थ कभी सिद्ध भी नहीं हो सकते। हमें तो सन्त-महात्माओं और औलिया फकीरों का एकीकरण या संगठन नहीं करना है, जिनकी अन्तर्दृष्टि है जो पहुँचे हुए हैं! हम तो मांस चमड़े से चिपटने वाले पामर मनुष्यों का संगठन करने और उनकी सभा कायम करने वाले हैं। अतएव हमें इन्हीं मनुष्यों की मनोवृत्ति पर ध्यान देना होगा। इन्हीं की मनोवृत्ति का सबसे पहले अध्ययन करना होगा, यदि हम उनके संगठन को वास्तविक और सच्चा रूप देना चाहते हैं, उसे पक्का बनाना चाहते हैं। असल में रुपया, पैसा, रोटी, कपड़ा, जमीन-जायदाद ये ठोस और भौतिक पदार्थ हैं। इनके विपरीत धर्म, परलोक आदि दिमागी और आध्यात्मिक वस्तुएँ हैं। फलतः ठोस भौतिक पदार्थों के विरोध में ये टिक नहीं सकते हैं। यही प्रतिदिन का अनुभव है। हमारी दृष्टि भौतिक है। अतएव भौतिक पदार्थों को ही हम ठीक-ठीक देखते हैं। आध्यात्मिक दृष्टि तो इस संसार का नियम नहीं, अपवाद है। फलतः व्यावहारिक बनने के लिए व्यावहारिक दृष्टि ही रखनी होगी। हाँ, जब पेट भर जाएगा और जीवन आराम से कटेगा तो अध्यात्म चिन्तन में भी जनसाधारण जा सकते हैं। इसीलिए उसे कठोपनिषद् में तलवार या छुरे की धार बताया है और कहा है कि जानकारों का कहना है कि वह मार्ग दुर्गम है—'क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्ग पथस्तत् कवयो वदन्ति?' और यह मानी हुई बात है कि तलवार की धार पर तो कोई सुचतुर नट या कलाबाज ही पार कर सकता है, न कि जनसाधारण अतएव उदयनाचार्य के शब्दों में शाक-भाजी और हल्दी-अदरक बेचने वाले महाजन। साधारण को जवाहरात ढोने वाले जहाज की क्यों फिक्र करनी चाहिए? 'कि मार्द्रक वणिजी वहिन्न चिन्तया?'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जाति सभा जाति विरोधी, धनपतियों की पोषिका

अब रही व्यक्तिगत स्वार्थ के परस्पर विरोध की बात। यह भी कुछ नहीं है। रोटी, कपड़ा, जमीन, जायदाद का प्रश्न ऐसा है कि सभी मिल जाते हैं। केवल कुछ धनियों और जमींदारों का मेल नहीं खाता। कारण, उनका स्वार्थ तभी सिद्ध होगा जब बाकी लोग दरिद्र, भूखे या बिना जमीन के बन जाएँ। क्योंकि उन्हें बहुत ज्यादा चाहिए। लेकिन हम तो ज्यादा का भी प्रश्न नहीं उठाते, बहुत ज्यादा की तो बात ही दूर। आखिर मानव जीवन की कुछ आवश्यकताएँ ऐसी हैं, जिनमें विवाद नहीं और जिनकी पूर्ति अधिकांश चाहते हैं। फलतः उन अनिवार्य आवश्यकताओं का (Bare Necessities) के आधार पर अधिकांश लोगों का एक संगठन हो सकता है और उसमें व्यक्तिगत स्वार्थ का प्रश्न ही नहीं उठ सकता। वह तो सभी का स्वार्थ है। हमें उसी से मतलब है वह ऐसा है जिसमें धनी या जमींदार मिल नहीं सकते। अधिकांश लोग ऐसे ही हैं जो उन अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति कर ही नहीं सकते। फलतः रोज तड़पते रहते और कोई रास्ता चाहते हैं। यदि उनके लिए कोई रास्ता या उपाय निकल आवे तो वे सारी शक्ति से उसमें लग जाएँ। बस हम ऐसी ही सभा या ऐसा ही संगठन सम्भव समझते हैं, जिसमें सभी का ठोस या भौतिक स्वार्थ एक हो और किसी का मतभेद न हो। उसकी सिद्धि के बाद ही व्यक्तिगत स्वार्थ का झगड़ा खड़ा हो सकता है। क्योंकि वह तो ज्यादा या बहुत ज्यादा के आधार पर होता है। और जब जरूरत भर ही अभी नहीं है तो ज्यादा का प्रश्न ही कहाँ? अगर कुछ हो सकता है तो इतना ही कि आज भी कुछ गरीब कहाने वाले शायद अभी से 'ज्यादा' का खयाल करें और धनिकों के बहकाने में पड़कर न मिलें। तो इससे क्या? अधिकांश तो फिर भी मिलकर ही काम करेंगे और कुछ बहकें भी तो यह उनके संगठन का ही अप्रत्यक्ष फल होगा और इस प्रकार उसकी जरूरत को सिद्ध करेगा। कांग्रेस की मजबूती और दृढ़ता इसी में है कि वह ठोस स्वार्थ को ही आगे रखती है। वही उसका लक्ष्य है। जातीय सभाएँ इस ज्वलन्त सत्य को देखती ही नहीं। क्योंकि देखने पर उनका अस्तित्व कायम ही नहीं रह सकता। उनका अन्त कोई नहीं रोक सकता। यही कारण है कि वे कुछ चलता पुर्जा लोगों के हाथ के खिलौने बनकर उनका मतलब साधा करती हैं—और इस प्रकार उसी जाति के अधिकांश लोगों के पाँव में कुल्हाड़ी मारती हैं उनके ठोस स्वार्थ का गला घोंटती हैं—सो भी उन्हीं की सहायता से।

जीवन संघर्ष

यहाँ कुछ जातीय सुधार और समाज सेवा का दम भरने वाले ऐसा कहने का साहस करते हैं कि अमीरों और पूँजीपतियों के विपरीत मजदूरों का संगठन और आन्दोलन समूचे देश में कलह की अग्नि प्रज्वलित करनेवाला है और इस प्रकार समाज की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उन्नति के मार्ग का काँटा है तथा किसानों और जमींदारों का झगड़ा समाज के बीच में और लम्बी दीवार खड़ा करने वाला है। जो लोग ऐसा विचार रखते हैं वह समझते हैं कि देश केवल कुछ धनियों और पूँजीपतियों से ही बना है और समाज का अर्थ है उँगलियों पर गिने जाने वाले कुछ जमींदार। ऐसी भावना रखने वाले महानुभाव यह भूल जाते हैं कि संसार में सामान्यतः और हमारे देश में विशेषतः अमीरों की संख्या मुश्किल से पाँच ही फीसदी है। बाकी 95 फीसदी गरीब और मजूरी करने वाले ही हैं। फलतः 95 फीसदी को देश न मानकर केवल 5 फीसदी की ही भावना वस्तुस्थिति से आँखें मोड़ना है और अगर 95 फीसदी को हम मानते हैं तो फिर उनकी भलाई और बहबूदी को भूल कैसे जाएँ? उनका संगठन न करना और उनकी ओर से घोर उपेक्षा—दोनों के एक ही मानी हैं। संगठन को छोड़ उन्नति का सीधा सरल और सच्चा मार्ग दूसरा नहीं। यह दूसरी बात है कि इससे धनियों के साथ संघर्ष अनिवार्य है। लेकिन किया क्या जाए? कोई दूसरा रास्ता भी तो नहीं है। जीवन का नाम ही संघर्ष है और पुराने लोगों ने 'जीवो जीवस्य जीवनम्' कह के इस संघर्ष की अनिवार्यता को स्वीकार कर लिया है। फलतः जो इस संघर्ष से भागना चाहता है उसे जीने का कोई हक नहीं है, वह जी सकता नहीं। संघर्ष तो बहुत ही सुन्दर पदार्थ है और वीर आत्माएँ इसका स्वागत करने को सदा तैयार रहती हैं जरा उस कवि की मनोवृत्ति का विचार तो कीजिए कि कैसी उदात्त एवं वीर रसमयी है। जो कहता है कि 'आओ विपत्तियाँ तुम दुःखों के साथ खोओ। पीटूँगा मैं तुम्हीं को तुम से ही या पिटुँगा।' वही तो पक्का लड़वैया और सच्चा योद्धा है जो हरदम संघर्ष के लिए तैयार रहे। एक बात और। चाहे हम हजार भागें, लेकिन यह संघर्ष हमारा पिण्ड छोड़नेवाला थोड़े ही है। वह तो हमें खदेड़ता ही जाएगा तब तक जब तक कि हम या तो मिट न जाएँ या उलट कर उसका अभिनन्दन न करें। जीवन संग्राम (Struggle for existence) का यही अर्थ है। लेकिन जिन्हें फिर भी इस संघर्ष का भूत भयभीत कर रहा हो वह क्यों नहीं अमीरों-धनियों तथा पूँजीपतियों से कह देते, उन्हें समझा देते कि वे अपना संगठन न करें उसे तोड़ दें? बस, संघर्ष अपने आप मिट जाएगा। कारण, दो विरोधी दलों के बलवान एवं संगठित होने से ही—जबर्दस्त होने से ही संघर्ष होता है और मजूरों तथा गरीबों के संगठित होने पर भी यदि अमीर तथा पूँजीपति संगठित न हों तो भिड़न्त-संघर्ष का ही अवसर ही कहाँ रहा? वह होगा ही कैसे? लेकिन हम जानते हैं कि संघर्ष की दोहाई देने वालों में ऐसी हिम्मत कहाँ? म्याऊँ की ठौर पकड़ने की हिम्मत कैसे हो सकती है? और अगर कोई हिम्मत करके ऐसा करे भी तो क्या धनी और पूँजीवाले उसकी बात सुन सकते हैं? वे तो उसे पहले दर्जे की हिमाकत और बेवकूफी करके इस पर घृणा की हँसी हँस देंगे। हँसें भी क्यों नहीं? आखिर वे ऐसे उल्लू नहीं हैं कि अपनी हस्ती ही मिटाने को तैयार हो जाएँ। हमें यह न भूलना चाहिए कि संगठित लूट के बिना धन-सम्पत्ति

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

का संचय हो नहीं सकता, एतदर्थ और कोई रास्ता है नहीं। सम्पत्तियाँ एकमात्र इसी लूट से जमा होती हैं। ऐसी हालत में कौन अकल का अंधा अमीर होगा, जो अपने को दरिद्र बनाना चाहेगा। यह संघर्ष का भूत और हौवा इन्हीं अमीरों का खड़ा किया हुआ है और सीधे-सादे लोगों को इसी संघर्ष का भय दिखाकर वे गरीबों का संगठन रोकना चाहते हैं, ताकि उनकी लूट निरन्तर जारी रहे। फलतः संघर्ष की बात उठाकर गरीबों के संगठन को रोकने का उपदेश देने वाले अमीरों के दूत हैं ऐसा हम निस्संकोच कह सकते हैं। यह भी नहीं कि देश या समाज एक होने से ही अमीरों और गरीबों के स्वार्थों में विरोध नहीं होता—वे एक हो जाते हैं। यह तो बिल्कुल गलत बात है। असल में अमीरों का समाज निराला ही होता है और धर्म, सम्प्रदाय या जाति-पाँति का भेद उनके उस समाज का बाधक नहीं हो सकता नहीं होता है। सभी धर्मों और जातियों के अमीरों का एक ही समाज होता है और वे एक जगह बैठकर एक ही दृष्टिकोण से सोचते हैं। हमारी मिलों का माल महँगा हो हमें मजूरों को कम मजूरी देनी पड़े, हमें सूद भरपूर मिले, हमारी जमींदारी की आमदनी खूब बढ़े, समूची जमीन हमारी बकाश्त और जिरात हो जाए और कोई भी रैयत हमारे सामने सिर न उठा सके, फलतः हम और हमारे अमले उसे जिस घाट पानी पिलावें पिए इत्यादि बातें सभी धर्म और जाति के अमीर और धनी और जमींदार चाहते हैं। चाहते ही नहीं, किन्तु संगठित होकर इनके लिए उपाय भी करते हैं। धर्म, सम्प्रदाय और जाति समाज की ओट तो केवल इसीलिए लेते हैं कि इसके द्वारा उनके स्वार्थ साधना में आसान होता है। क्योंकि धार्मिक संस्थाओं और जातीय सभाओं एवं पत्रों का तो यह काम ही है कि धनियों के पैसे से अपनी आत्मा को यदि उनकी कोई आत्मा हो तो, बेचकर उनका गुणगान करें और उन्हें आसमान पर चढ़ा दें। ऐसी संस्थाओं तथा पत्र-पत्रिकाओं को तो कुछ अमीर ही अपने इशारे पर नचाते रहते हैं जैसा कि अब तक का उनका इतिहास इस बात का साक्षी है। जाति सुधार की दोहाई भी वे लोग इसीलिए देते हैं कि अपने उत्सुकों को करने में उन्हें आसानी होती है। लेकिन अगर उन्हें पता लग जाए कि ये जातीय संस्थाएँ तथा पत्र-पत्रिकाएँ इस प्रकार उनका स्वार्थ साधन नहीं कर सकेंगी तो इनके विपरीत सबसे पहले बगावत का झण्डा वे अमीर ही खड़ा कर देंगे यह ध्रुव सत्य है।

धन संग्रह का रहस्य

इससे स्पष्ट है कि अमीरों का समाज निराला ही है और जाति या धर्म का भेद उस समाज का बाधक न होकर साधक ही है। उसी प्रकार गरीबों का एक समाज होना उचित है और उसमें धर्म या जाति को बाधक नहीं होना चाहिए। अब गरीबों को चूसने के लिए अमीरों का एक संगठन हो सकता है, होता है और सदा से होता आया है तो फिर गरीबों का भी एक संगठन अपनी रक्षा के लिए क्यों नहीं होना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चाहिए लेकिन बात ऐसी है नहीं। गरीबों में तो संगठन है ही नहीं और अगर कोई उसके लिए यत्न करे तो वही संघर्ष और श्रेणी युद्ध का होना खड़ा किया जाता है और राग-द्वेष, घृणा फैलाने की चेष्टा की दोहाई दी जाती है। कहा जाता है कि खबरदार, ऐसा मत करो, नहीं तो धर्म खतरे में पड़ जाएगा और राष्ट्रीयता भंग हो जाएगी। जब अमीर लोग सुसंगठित होकर सैकड़ों प्रकार से गरीबों का और गृहस्थों का शोषण करें तो यह धर्म समझा जाए और हमारे धर्मभीरुओं के कानों पर जूँ भरेंगे। लेकिन उसी एक शोषण और लूट को बन्द करने के लिए—अपने घर की रखवाली के लिए जब गरीबों को संगठित करने की बात हो तो धर्म के खतरे की घंटी जाए। यही है इस निराली दुनिया का निराला तमाशा। 5 फीसदी की होली के बहाने 95 फीसदी के घरों में आग लगावे तो आनन्द मनाया जाए और 95 फीसदी जब उसे रोकने को करवटें बदलना चाहें तो खतरे की घंटी बजे। बिना लाखों और करोड़ों के मुख का टुकड़ा छीने, उन्हें चिथड़ा पहनाए उनकी टूटी झोंपड़ी भी उन्हें बेदखल किए और उनकी बैलगाड़ी हड़पे एक आदमी करोड़पति बन नहीं सकता, मालपुआ, घी, मलाई खाकर बदहजमी पैदा कर नहीं सकता। मखमली गद्दे पर नहीं सो सकता, मोटरें दौड़ा नहीं सकता और बहुमंजिले महलों में मौज कर नहीं सकता। भगवान या प्रकृति ने जरूरत से ज्यादा चीजें पैदा नहीं की हैं, ऐसा करने की उसे फुर्सत ही कहाँ? माता के स्तन में बच्चे की जरूरत से ज्यादा दूध नहीं पैदा होता। ऐसी हालत में करोड़ों की जिन्दगी के लिए जरूरी सामग्री को हथियाए बिना एक आदमी व्यसन की सामग्री सम्पन्न कर नहीं सकता। इसीलिए मानना ही पड़ता है कि अमीरों और गरीबों के स्वार्थ परस्पर विरोधी हैं और दोनों के स्वार्थों का एक करने की आशा दुराशा मात्र है। मजूरों को जितनी कम मजूरी और सहूलियतें दी जाएँगी और किसानों का लगान जितना ही अधिक होगा पूँजीपति और जमींदार उतने ही ज्यादा खुश होंगे तथा किसान और मजूर उतने ही अधिक खीझेंगे, मरेंगे।

यह तो हुई सामान्य रूप से इस विषय की विवेचना। लेकिन किसान, जमींदार आन्दोलन समाज में दीवार खड़ा करनेवाला है इस बात का जरा विशेष रूप से विचार कर लेना चाहिए। इस आन्दोलन से दीवार खड़ी होने की बात को अभी मानकर ही हम ऐसा कहने वालों से प्रश्न करना चाहते हैं। यदि किसान जमींदार आन्दोलन से समाज में दीवार खड़ी होने की बात है तो इसके लिए दोषी कौन है? अगर यह काम बुरा है तो सबसे बड़ा दोषी तो वही होना चाहिए जिसने इसका पहले-पहल दिखाया है। एक भूमिहार ब्राह्मण समाज को ही ले लीजिए और भीतर प्रवेश करके विचार कीजिए। अन्य प्रान्तों को जाने दीजिए, केवल बिहार को ही लीजिए। यहाँ पर बड़े-बड़े जमींदारों की सभा प्रायः पचासों वर्ष से कायम है जिसका अंग्रेजी में नाम है 'बिहार लैण्ड होल्डर्स एसोसिएशन' यानी बिहार के जमींदारों की सभा।' जातीय पत्र-पत्रिकाओं और सभाओं में भूमिहार ब्राह्मण समाज के जिन बड़े-बड़े उपकारियों,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हितचिन्तकों, सुधारकों और कर्णधारों के गीत गाए जाते हैं क्या वे लोग बहुत पहले से ही उस जमींदार सभा के सदस्य, मंत्री, सहायक मंत्री आदि नहीं रहे हैं और क्या आज भी नहीं हैं? यदि जरूरत होगी तो नाम गिनाकर बताया जा सकता है कब कौन से महानुभाव उसके किस पद पर आरूढ़ रह चुके हैं और आज भी कौन हैं उसके सदस्य तो सभी जमींदार कहाने वाले हैं। मेरा मतलब उन जमींदारों से है जिनकी आमदनी कुछ अच्छी से लेकर ज्यादा है। इन जमींदारों को इस बात का गर्व है, फख्र है, अभिमान है कि वे जमींदार सभा के सदस्य, मंत्री आदि हैं। आजकल बिहार-उड़ीसा की कौंसिल में जमींदारों के खास प्रतिनिधि पाँच भेजे जाते हैं और इनके लिए जो चुनाव क्षेत्र बने हैं उनके वोटर वही होते हैं जो बिहार की जमींदार सभा के सदस्य होते हैं या सदस्यता की योग्यता रखते हैं।

भूमिहारों द्वारा भूमिहारों का शोषण

अब जरा इस जमींदार सभा के कारनामों का विचार कीजिए। इसका हमेशा से यही काम रहा है कि किसानों के मार्ग में रोड़ा अटकावे जब कभी किसानों ने कहा कि हमें अपनी मौरूसी जमीन में मकान बनाने का हक होना चाहिए, तो इस सभा ने कहा कि नहीं, हर्गिज नहीं। यदि घुमा-फिरा के किसी तरह कुछ हक इस बारे में काश्तकारी कानून ने दिया भी है तो इस सभा की सदा यही कोशिश रही है कि मुकदमेबाजी के दाँव-पेंच में डालकर वह भी छीना जाए। यदि इतनी ही बात होती तो एक बात थी। यह छीना-झपटी और धींगा-मुश्ती हर बात में जारी है। किसान कहता है कि अपनी जमीन में पेड़ घास लगाएँ और काटेंगे उन्हें काम में लाएँगे, आप लगान लीजिए तो जमींदार और उनकी सभा कहती है कि नहीं, हर्गिज नहीं। वह कहता है कि मौरूमी जमीन में ईंट, खपड़ा बनाने और तालाब, कुआँ खोदने में बाधा मत दें, इनके बिना हमारा काम चल नहीं सकता, तो जमींदार सभा की ओट में जमींदार कहता है कि काम नहीं चला तो बला से मगर ये काम कदापि होने न देंगे। यदि जरूरत के समय विवश होकर गरीब किसान अपनी जमीन बेचकर काम चलाना चाहता है तो जमींदार सभा के बल पर जमींदार उसे धर-दबोचता है। यदि मुर्दे के जलाने के लिए अपने सूखे पेड़ की लकड़ी वह काटता है तो जमींदार उसके सिर पर सवार हो जाता है और बेचारे किसान का मुर्दा जलेगा या नहीं उसकी जरा भी परवाह वह नहीं करता। यह सोलहों आने सच्ची बात है और अब तक बराबर होती आई है। यह भी नहीं कि बिहार में भूमिहार ब्राह्मण बसते ही नहीं। जिन धनीमानी भूमिहार ब्राह्मणों को समाज के भूषण तथा प्रजावत्सल के नाम से पुकारा जाता है, जिनके चित्र छपते हैं, आगे भी जिनके नाम और चित्र गुणगान के साथ प्रकाशित होंगे उनमें एक-एक की जमींदारी में हजारों की तो बात ही क्या कई-कई लाख भूमिहार ब्राह्मण बसते हैं और उन्हीं के रैयत हैं। ऐसी दशा में यह प्रश्न स्वभाव

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

से ही उठता है कि बिहार में उच्च जमींदार सभा को जन्म देकर और आज तक उसे दृढ़ बनाकर इन जमींदारों ने क्या समाज में बहुत बड़ी दीवार—चीन की प्रसिद्ध दीवार खड़ी नहीं की है? जिस दीवार के करते भूमिहार ब्राह्मण किसानों को मनुष्य तक भी नहीं माना गया है और वे अनवांचित साधारण अधिकारों से ऊपर लिखे तरीके से, वांचित किए गए हैं। किसी भी सहृदय मनुष्य के लिए इसी दीवार की कहानी बहुत ही दर्दनाक है। जिस जमींदारी के करते बेचारे किसान न तो रहने का मकान ही बना सकते और न पानी पीने के कुएँ-तालाब ही खुदवा सकते हैं उस जमींदारी और जमींदार के लिए भी क्या उनके दिल में दर्द हो सकता है? फिर भी इन जमींदारों की धृष्टता देखिए कि उसी भूमिहार ब्राह्मण समाज के नेता, भूषण, उपकारी आदि बनने का दावा बराबर करते आए हैं और किसी ने चूँ तक नहीं की है, उसी समाज के जिसमें 95 फीसदी किसान और मुश्किल से 5 फीसदी ज़मींदार हैं। और यदि आज कोई चूँ करने की हिम्मत करता है और उनके दावे गलत ठहराता है, तो उलटे उसी पर समाज में दीवार खड़ी करने का अपराध लगाया जाता है। असल में तो जमींदार सभा कायम करके और उसके द्वारा जमींदारों को सुसंगठित एवं शक्तिशाली बताते हुए किसानों पर जुल्म करने का रास्ता साफ करने में पहली बार जमींदारों ने दीवार खड़ी की। इसके बाद लगातार एक के बाद एक दीवार किसानों के हकों को छीनते रहने में दूसरी, तीसरी और सैकड़ों बार आज तक उन्होंने या तो वह दीवार खड़ी की है या उसको मजबूत बनाया है। मगर उनकी ओर उँगली उठाने की भी किसी ने हिम्मत नहीं की है। क्योंकि बिहारी के शब्दों में 'को कहि सकें बड़ेन की लखी बड़ीओ भूल। दीन्हें दई गुलाब के इन डारनवै फूल।' वे धनी तथा मालदार जो ठहरे, लेकिन आज जब उनके द्वारा पीड़ित गरीब जनता एवं किसानों की ओर से उस अस्वाभाविक एवं अनुचित दीवार के तोड़ने का प्रयत्न होता है, उन्हें मनुष्योचित अधिकार दिलाने की कोशिश होती है जबर्दस्ती हड़पे गए उनके अधिकार उन्हें फिर वापस दिलाने का यत्न होता है ये भर अच्छा पेट अन्न खाएँ और कपड़ा पहनें, इसके लिए तदबीर की जाती है तो चट यह इलजाम थोपा जाता है कि समाज में दीवार खड़ी की जा रही है। जिस दिन समाज के 95 फीसदी किसानों और गरीबों का परित्याग करके 5 फीसदी जमींदारों ने अन्याय जातियों, धर्मों और समाजों के जमींदारों के साथ गाँठ जोड़ा किया और इस प्रकार भूमिहार ब्राह्मण समाज के 95 प्रतिशत लोगों के स्वार्थ से अपना स्वार्थ अलग बनाया सो भी बेमुरव्वती और बेरहमी के साथ, उस दिन ये हमारे समालोचक लोग कहाँ थे, और आज भी कहाँ हैं? क्या दुर्बल की बेरी सबकी जलन होती है, इसी कहावत को तो वे चरितार्थ नहीं कर रहे हैं?

इससे भी आगे बढ़िए, अभी हाल में जमींदारों ने बिहार काश्तकारी कानून में कुछ संशोधन (तरमीम) करवाया। उसका इतिहास सभी जानते हैं। उसके लिए जो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चालबाजियाँ की गईं और कुछ शिखंडियों को खड़ा करके किसानों का गला घोटने का जो षड्यंत्र किया गया उसमें भूमिहार ब्राह्मण समाज के कई 'अवतंस' लोग भी शरीक थे। किसानों की जमीन में से दस फीसदी छीन कर जमींदार अपनी जिरात बना ले इत्यादि बातों की जो बन्दिश की गई क्या उससे समाज के 95 फीसदी किसान और गरीब उन अपने कुलभूषणों को भर पेट नहीं कोसते जो संहारक होकर भी उद्धारक होने का दावा करते हैं? तो क्या इसके लिए—इस छीना-झपटी के लिए—ये गरीब किसान उनसे प्रेम करते और उन्हें आशीर्वाद देते? अपनी जमीन छीनने वाले के प्रति लोगों का क्या अब होता है यह छिपा नहीं है। और 'क्षेमदारापहार्ताच सडेते अततायिन'—'जमीन और स्त्री के हरने वाले भी आततायी कहाते हैं' स्मृति के अनुसार इन शब्दों में जिन्हें आततायी का स्थान दिया जाना चाहिए। क्या वह उलटे समाज के प्रेम भाजन हो सकते हैं? और यदि अपनी इस हरकत के द्वारा वह समाज में जबर्दस्त दीवार खड़ी नहीं कर लेते तो और करते क्या हैं? दीवार खड़ी करने की बात करने वाले या तो भावुक लोग होते हैं या जमींदारों के पिट्ठू। भावुकों के प्रति तो हमें कुछ कहना है नहीं। वे तो सीधे और अनजान होते हैं तथा सच्चे दिल से बातें करते हैं। अतएव दया के पात्र हैं। लेकिन पिट्ठुओं से यही कहना है कि वे दिन लद गए जब समाज और समाज के हित के नाम पर गोलमाल बातें करके अमीरों का मतलब निकाला जाता था; जब अमीर और जमींदार लोग सब कुछ अनर्थ करके भी समाज के नेतृत्व का दम भरते थे और कोई होंठ भी न हिलाता था। अब तो छानबीन का युग आ गया है। चाहे कुछ भी हो, लेकिन लोग खासखास छानबीन और उधेड़बुन करेंगे ही और समाज उसी गोलमोल बातों के भुलावे में न पड़कर विवेक से काम लेंगे। वे खोद-विनोद करके समाज के असली अर्थ का निश्चय करेंगे।

इसीलिए समाज की दोहाई देकर अपने उल्लू सीधे करने वालों को भी समझ लेना चाहिए कि जब वे समाज की बात करते हैं तो सभी प्रकार के सुधारों से उन्हें हाथ खींच लेना होगा। क्योंकि सामाजिक सुधार की कोई भी बात लेने पर कुछ लोग तो विरोधी होंगे ही। यहाँ तक कि चोरी और दुराचार, व्यभिचार के रोकने में भी कुछ लोग सहमत न होंगे। आखिर चोर बदमाश भी तो समाजों में ही होते हैं; कहीं आसमान से तो टपक पड़ते नहीं। और यदि उनके इन कामों पर रोक हो तो उसका बुरा मानना स्वाभाविक ही है। तिलक दहेज और फिजूलखर्ची के विरोधी बहुत ज्यादा हैं। मुकदमेबाजी रोकने के प्रयत्न और पंचायत के विरोधी तो वकील, मुख्तार, सोरवतार, क्लर्क आदि बहुत लोग हैं। क्योंकि उनकी जीविका मारी जाती है। चाहे उन्हें विरोध में बोलने की हिम्मत भले ही न हो। लेकिन इनका मूल विरोध तो रहता ही है और दिल से वे लोग नहीं चाहते कि मुकदमेबाजी बन्द हो। गिनाना बेकार है। सभी सुधारकों की यही बात है। तो क्या इन सुधारों की बात उठाने वालों और सुधारकों से यही कहा जाए कि 'खबरदार आप ऐसा न करें, नहीं तो समाज में दीवार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

खड़ी हो जाएगी' और ऐसी हालत में फिर जातीय सभाओं और पत्र-पत्रिकाओं का काम ही क्या रह जाएगा? क्या चुनाव? असल में किसी संस्था, समाज या दल की बात की जाती है तो मतलब होता है कि उस संस्था, समाज या जाति के अधिकांश या बहुसंख्यक लोगों से। क्योंकि किसी भी बात में एक मत तो होई नहीं सकता। फलतः अधिकांश लोग (Majority) जिधर हो वही बात मानी जाती है। इसलिए समाज की वात के मानी होते हैं उसके अधिकांश लोगों की बात। वे जिससे सहमत हों या जिसमें अपनी भलाई समझते हों वही समाज को या समाज हित की बात होगी। प्रान्त में समाज के 95 फीसदी किसान और 5 फीसदी जमींदार हैं। ऐसी हालत में समाज कहने से वही 95 फीसदी ही माने जाएँगे, माने जाने चाहिए, न कि केवल 5 फीसदी। 95 के सामने 5 की गिनती क्या? और जब इन 95 प्रतिशत लोगों की भलाई के ही लिए किसान आन्दोलन हो रहा है तो फिर उससे समाज में दीवार खड़ी होने का प्रश्न ही कहाँ उठता है? समाज तो 95 फीसदी ही है।

एक बात इस सम्बन्ध में और है। असंगठित देखकर सभी को जुल्म करने की चाह होती है। जब तक किसान संगठित नहीं हैं तब तक हजार मीठी बातें बनाने पर भी जमींदार और उनके अमले किसानों पर जुल्म करेंगे ही और वे बेबसी की हालत में आह मार के रह जाएँगे। बोल तो सकेंगे नहीं, पर भीतर ही भीतर जमींदारों को कोसेंगे। इस प्रकार समाज में जमींदारों तथा किसानों के बीच बनी हुई खाई दिन प्रतिदिन चौड़ी होती जाएगी क्योंकि असली मेल तो दिलों का होता है और किसानों के जख्मी दिल कभी भी जमींदार से मिल सकते नहीं, खासकर ऐसी हालत में जब कि आए दिन जुल्म का नमक उन पर छिड़का जाता है। लेकिन किसान आन्दोलन के करते अगर किसान संगठित एवं बलशाली हो जाएँ तो उन पर जुल्म करने की हिम्मत किसे हो नतीजा यह होगा कि वे अपने नैतिक एवं मानवीय अधिकारों को प्राप्त कर लेंगे। इस प्रकार कलह का बीज ही जाता रहेगा और दोनों के बीच की खाई या दीवार जो जमींदारों के जुल्म के करते हुई थी अपने आप मिट जाएगी। इस प्रकार किसान आन्दोलन समाज में दीवार खड़ी करने के बजाए पूर्व से खड़ी दीवार को गिराने वाला कहा जाना चाहिए।

हमने बताया है कि जातीय पत्रों और सभाओं का आजकल यही कर्तव्य-सा हो गया कि कुछ चलते पुर्जे पढ़े-लिखे तथा धनियों और मालदारों की वकालत करना और उनके लिए चुनाव आदि के सम्बन्ध में मैदान साफ करना, अनुकूल वातावरण तैयार करना और उनके असली रूप को छिपाना। हमसे बढ़कर किसी को भी प्रसन्नता न होगी यदि कोई पत्र या सभा इसका अपवाद निकाले। हम उसके सबसे पहले सिर झुकावेंगे। लेकिन हम जानते हैं कि ऐसा होना करीब-करीब असम्भव है हालाँकि असम्भव जैसी चीज इस दुनिया में है नहीं। यही कारण है कि हम ऐसी सभाओं तथा पत्र-पत्रिकाओं के विरोधी हैं। इनसे भोली-भाली जनता को धोखा होता है। एक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बड़ा जमींदार, मालदार या कारखानेवाला अपने ही समाज के हजारों, लाखों, किसानों, मजूरों और गरीबों का रूप शोषण निर्दयता के साथ बराबर करता रहता है, उन्हें मनुष्य भी नहीं समझता। उनके बच्चे अन्न-वस्त्र के बिना तड़पते रहते हैं उसकी आँखों के सामने ही। फिर भी उसे दया नहीं आती और अपनी विलास सामग्री जुटाने के लिए उनके मुँह का टुकड़ा और तन का वस्त्र बलात् छीनकर अपनी लगान, नजराना, तावान आदि वसूल करता है और इस वसूली में कानूनी, गैर-कानूनी सभी तरह के तरीके काम में लाता है। कानूनी उपायों का तो वह हकदार ही ठहरा। मगर गैर कानूनी काम भी वह करता ही है सिर्फ इसीलिए कि कानून के दायरे में घुसने पर उसे हैरानी और बहुत खर्च का सामना करना पड़ता है। साथ ही, बार-बार ऐसा करने पर किसान धृष्ट भी तो हो जाएँगे जब वह समझेंगे कि अदालत में हम और हमारे जमींदार बराबर ही समझे जाते हैं। उन पर रोबदाब रखना जमींदारी प्रथा का एक बहुत बड़ा अंग है उसके बिना वह चल सकती ही नहीं। इतने होते हुए भी जातीय सभाएँ तथा पत्र उसे समाज भूषण आदि विशेषणों से विभूषित करके ही छोड़ते हैं और प्रजावत्सल आदि कहने में जरा भी नहीं हिचकते। वह किस समाज का भूषण? उसी का जिसके 95 प्रतिशत का वह रक्त शोषण करने में जरा भी आनाकानी नहीं करता? या कि उसका कोई और समाज है? केवल उसके धन और जमींदारी के करते जातीय सभाएँ उसे सभापति और कर्णधार बना डालती हैं तथा उसे उन समाज पर चढ़ाने वाली विज्ञप्तियाँ निकालकर या तो भोली-भाली जनता को धोखा देती हैं या गरीबों के जले पर बराबर नमक छिड़कती है। क्या यह कथमपि उचित है? यदि उसकी जमींदारी के किसान उसकी जाति के न होकर दूसरे के हों तो फिर ऐसे को जो जाति अपना कर्णधार बताती है, भूषण करार देती है। वह सताए गए लोगों की नजरों में कितना तुच्छ होगा इसे सभी समझ सकते हैं। इस गुनाह बेलज्जत की क्या जरूरत लेकिन जातीय पत्रों को पैसे की जरूरत होती है, कारण इनका प्रचार जाति के बाहर होता ही नहीं और ये पैसे अमीरों से ही ज्यादा मिल सकते हैं। फलतः इनका काम हो जाता है उन अमीरों की चापलूसी करना और उनका ढिंढोरा पीटना। आखिर पैसे लेना है तो कुछ करना ही होगा। जातीय सभाओं में कुछ पढ़े-लिखे लोगों की ही चलती है और उनका तथा अमीरों का पैक्ट रहता है कि हम दोनों मिलकर समाज या जाति के नाम पर अपना उल्लू सीधा करें और इसके लिए परस्पर एक-दूसरे की तारीफों का पुल बाँधकर आसमान पर चढ़ा दें। यही होता है और मूक जनता इस चालबाजी के चलते ठगी जाती है।

असामी समाजहित

जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि समाज या जाति का अर्थ है उसकी अधिसंख्य जनता। यह भी कही चुके हैं कि अधिकांश जनता प्रत्येक समाज में गरीब और दुखिया

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है, किसान मजदूर हैं। यही सिद्ध ही कर चुके हैं कि स्वार्थ का असली अर्थ है कि आर्थिक स्वार्थ रोटी वस्त्र आदि। ऐसी हालत में यदि किसी समाज के स्वार्थ के नाम पर कोई भी संगठन या आन्दोलन चलाया जा सकता है तो वह यही कि उस जाति या समाज के अधिकांश लोगों की रोटी और कपड़े की बात कैसे हल होगी और वे लोग मनुष्य का जीवन सम्मानपूर्वक कैसे व्यतीत कर सकेंगे। यही है। यही है असली और खाँटी जाति हित और यह सभी की समझ में आसानी से आ जाता है। धर्म और परलोक की बात ऐसी है कि उसे भूखे और नंगे लोग समझ नहीं सकते। नैतिक बल सदाचार की बात करना उनकी दृष्टि में हृदयहीनता का प्रदर्शन मात्र है। स्वर्ग, बैकुण्ठ और बहिश्त को वे लोग समझना नहीं चाहते कि यह कौन सी बला है। उन्हें तो पहले रोटी चाहिए, कपड़ा चाहिए, मकान चाहिए, जमीन चाहिए, बीमारी की हालत में दवा चाहिए, पढ़ने-लिखने का सामान चाहिए, दैनिक जीवन के लिए जरूरी नमक, तेल, दियासलाई, कार्ड-लिफाफा, लोहा-लक्कड़ सस्ता और सुलभ चाहिए और उनकी पैदा की हुई चीजों का दाम उन्हें इतना जरूर मिलना चाहिए जिससे उनकी सर्वसाधारण आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। यही उनकी असल समस्याएँ और पहेलियाँ हैं उनका असली हित एवं स्वार्थ है। फलतः सबसे पहले इन्हीं समस्याओं को हल करना और इसी स्वार्थ को पूरा करना हर जातीय पत्र तथा जातीय सभा का कर्तव्य होना चाहिए। इस काम में सभी जातियों के पत्रों एवं सभाओं का सच्चा सुन्दर सहयोग भी हो सकता है। क्योंकि उसमें किसी का विरोध नहीं, सभी कमाते क्या हैं। यह तो ठोस भौतिक चीजें हैं जिनके बिना कोई जी ही नहीं सकता। यह ईश्वर, धर्म, स्वर्ग, बहिश्त जैसी खाली चीजें थोड़े ही हैं कि पंडितों और मौलवियों की चाल चल जाए और मन्दिरों में जाने तथा घड़ियाल घंटे से खुदा नाखुश हो और अजान देने तथा मस्जिद में जाने से ईश्वर कुपित हो? गोकशी से यदि नरक मिलता हो तो मस्जिद के सामने बाजे से गहरा दोजख, यदि सन्ध्योपासन तथा वेदपाठ से बहिश्त में प्रवेश ही न हो सके तो नमाज और कुरान पाठ से स्वर्ग का सुख भी न देख सके। ये धर्म और सदाचार की चीजें तो अन्धों के हाथी जैसी है किसी अन्धे ने पूँछ को ही हाथी कहा तो दूसरे ने सूंड को, तीसरे ने पाँव को और चौथे ने दाँत को ही और इस प्रकार वे आपस में ही तथा एक-दूसरे को बेवकूफ बनाने लगे। लेकिन यहाँ फिजूल अन्धा बनने की किसे जरूरत है? हाँ, जब असली स्वार्थ और ठोस चीजें रोटी कपड़े आदि के रूप में मिल जाती हैं और चैन होता है तो बहुतों को मस्ती तथा दिल बहलाव सूझता है और वे धर्म, दर्शन तथा फिलासफी की बातें करते हैं। ठीक भी है, आखिर विकार और चैन की हालत में कोई शगल भी तो चाहिए। लेकिन जनसाधारण को ऐसा कभी न देखा और न सुना कि वे भूखे और नंगे हों, फिर भी रोटी कपड़े की बात छोड़कर मन्दिर, मस्जिद, सन्ध्या-नमाज और धर्म-मजहब को गलकुच्चन करें। उस हालत में उनका असली और पक्का धर्म, मजहब तो यही रोटी-कपड़ा आदि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ही है। वे इन्हीं की उपासना सर्वोपरि समझते हैं। यह तो प्रतिदिन का अनुभूत ठोस सत्य है। इसमें दलील की गुंजाइश ही नहीं। यदि कहा जाए कि धर्म और दर्शन तो हरेक आत्मा की भूख है तो हमें इतना कहना है कि जिस प्रकार बीमारी की दशा में भूख मारी जाती है और उसका पता नहीं रहता ठीक उसी प्रकार अन्न-वस्त्र के अभाव की दशा में आत्मा की वह भूख भी मारी जाती है, लापता रहती है। पूर्ण स्वस्थता की दशा में जिस प्रकार खुल के भूख लगती है ठीक उसी प्रकार पेट भरने और तन ढँकने के बाद ही चैन की दशा में धर्म और दर्शन की भूख लगती है। ऐसी दशा में धर्म के प्रेमियों का भी यही कर्तव्य हो जाता है कि पहले आत्मा का स्वास्थ्य प्राप्त करने की ही कोशिश करें। अर्थात् जब तक जनता की रोटी और कपड़े का प्रश्न हल नहीं हो जाता तब तक इसी बात का आन्दोलन करें जिससे जनता की आत्मा में धर्म की भूख जगे।

आन्दोलन का स्वरूप

इसीलिए मेरी पक्की धारणा है कि वर्तमान परिस्थिति में जबकि हरेक जाति, धर्म और समाज के अधिकांश लोग यथार्थतः भूखे और नंगे हैं, और आत्मसम्मान रहित जीवन व्यतीत करने को बाध्य किए जा रहे हैं, हर जातीय प्रेमी, धर्म सेवक, समाज सुधारक नेता का, हर सभा का और सभी जातीय एवं धार्मिक पत्र-पत्रिकाओं का यह पवित्र कर्तव्य है कि ईमानदारी के साथ इस रोटी, वस्त्र और आत्मसम्मान की समस्या को सबसे पहले हल करने के लिए पूरी शक्ति के साथ जुट जाएँ और इसे हल करके ही छोड़ें। नहीं तो आज इस प्रश्न को उठाकर धर्म, सदाचार, सुधार, नैतिकता आदि की बातें करना इस बात का सबूत देना है कि उनमें वस्तुस्थिति का सामना करने की हिम्मत नहीं है। इतना ही नहीं है। इस समय इन प्रश्नों को उठाना जनता को गुमराह करने की कोशिश करना है। क्योंकि इन प्रश्नों और बातों को सुनकर भोली जनता धोखे में आ जाती है और रोटी तथा कपड़े के असली प्रश्न की ओर से उसका ध्यान फिर जाता है और वह नाहक ही यह समझने लगती है कि धर्म और सदाचार आदि का प्रश्न ही वास्तविक प्रश्न है और रोटी का सवाल गौण है। बहुत दिनों से धर्म के प्रति जो मूक जनता में अत्यधिक सम्मान है उसका अनुचित लाभ उठा कर धर्म और जाति के पेशवा लोग जो इस प्रकार उसे पथभ्रष्ट और गुमराह कर रहे हैं यह उनका अक्षम्य अपराध है, अतः समय रहते उन्हें सजग हो जाना चाहिए।

(*भूमिहार ब्राह्मण पत्रिका* कलकत्ता, 1935 में प्रकाशित)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

किसानों के दोस्त और दुश्मन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

किसानों के दोस्त और दुश्मन

किसान बन्धुओ!

मैं नहीं चाहता कि शिष्टाचार के आडम्बर में पड़कर आपका अमूल्य समय एक क्षण भी गँवाऊँ। इसीलिए काम की बातें करने में लग जाता हूँ। ज्यों-ज्यों किसान आन्दोलन मजबूत हो रहा है और किसान सभा लोकप्रिय होती जा रही है त्यों-त्यों इस पर आक्रमण भी मुस्तैदी के साथ होने लगे हैं। कल तक जो हमारे परममित्र थे, समर्थक थे वे भी सशंक हो रहे हैं और फूँक-फूँक कर पाँव देने लगे हैं। वे लोग ऐसी बातें बोलने लगे हैं जिससे पता चलता है कि इस आन्दोलन को वे बढ़ने देना नहीं चाहते, इसमें उन्हें खतरा नजर आने लगा है। चाहे और लोग इसे जो समझें, मगर मुझे तो उनके ऐसे कामों को देखकर खुशी होती है। क्योंकि यह हमारी बढ़ती हुई ताकत का सबूत है। हमारे अधकचरे मित्रों का धीरे-धीरे पर्दाफाश हो रहा है और हम आज कहाँ हैं इसका पता हमें चलने लगा है यह भी अच्छा ही हो रहा है किसी भी आन्दोलन के शुरू में ही असली शत्रु-मित्रों की पहचान हो जाने से उसमें मजबूती आती है और आगे चलकर धोखे की गुंजाइश कम रह जाती है। आज की इस स्थिति का हमें दिल से स्वागत करना चाहिए।

इस सम्बन्ध में खुशी की एक और बात है। आमतौर से नौजवान और विद्यार्थीगण किसान आन्दोलन में खास दिलचस्पी रखने लगे हैं और इधर जेलों से रिहा होने वाले प्रायः सभी राजनीतिक बन्दी इस काम में दिलोजान से पड़ गए और पड़ रहे हैं। जिन लोगों ने ब्रिटिश साम्राज्यशाही को हिलाया और थर्राया है, मेरा विश्वास है, उनके सहयोग से किसान आन्दोलन शीघ्र ही साम्राज्यशाही, जमींदारशाही, महाजनशाही और पूँजीशाही का अन्त करने में सफल होगा। मैं चाहता हूँ कि किसान और किसान सेवक अपने सच्चे दोस्तों और दुश्मनों की ठीक-ठाक पहचान करें और इस महान आन्दोलन को उन खतरों से बचाएँ जो आगे बढ़ने पर सभी प्रगतिशील आन्दोलनों के रास्ते में आया करते हैं। कारण प्रारम्भ के दोस्त ही दुश्मन का काम करने लग जाते हैं और उनकी पहचान देर और दिक्कत से होती है। हमें सबसे प्रथम अपने असली स्वार्थ को देखना चाहिए और उसकी सिद्धि के लिए अपने ही त्याग तथा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बलिदान का भरोसा करना चाहिए। गैरों के त्याग और बलिदान पर लट्टू बनके अपने हिताहित का विचार न करना और आँख मूँदकर उनकी या किसी की बातें मानना, आत्मघात के बराबर है। अन्ध परम्परा को छोड़ हमें नेताओं और उपदेशकों की हर बात को अपने (किसान-मजदूरों के) सामूहिक स्वार्थ की कसौटी पर कसकर उसकी कड़ी जाँच करना चाहिए। इतना ही नहीं कभी-कभी नेताओं को जो लम्बी दलीलें दिया करते हैं, हक्का-बक्का भी करना चाहिए, जैसा कि रूस या अन्य देशों की जनता ने समय-समय पर किया है—Reasonable leaders of the Soviet were paralysed by the masses. और जैसा कि अभी हाल में ही कानपुर के मजदूरों ने किया है। इसका नतीजा यह होता है कि जनता को भेड़ों की तरह मूँड़ने की हिम्मत छोड़कर नेता लोग सँभल जाते हैं। हमें नेताओं के उपदेशों को ही सुनना न चाहिए, वरन् उनके कामों पर भी कड़ी निगाह रखनी चाहिए और देखना चाहिए कि कहीं हमारे शत्रुओं से भीतर ही भीतर वे लोग घुल-घुल कर बातें तो नहीं करते। यह निहायत जरूरी है। उनके कामों पर कड़ी नजर रखे बिना हमेशा धोखा हुआ है और आगे भी होगा।

जमींदारी का खात्मा क्यों?

यद्यपि जब तक किसान-मजदूर राज्य या कमाने वालों का राज्य सारे देश में कायम नहीं हो जाता और शासन की बागडोर कमाने वालों के हाथ में नहीं आ जाती तब तक हमारे कष्टों का अन्त नहीं हो सकता, अतएव वही राज्य हमारा परम लक्ष्य है और वही असली स्वराज्य है। तथापि उसकी प्राप्ति में साम्राज्यशाही की ही तरह या उससे भी शायद बढ़कर जमींदारी और साहूकारी बाधक है। अतएव इन दोनों का अन्त जल्द से जल्द करना किसान सभा का तात्कालिक लक्ष्य है। साम्राज्यशाही तो भले-बुरे कानूनों के बल पर टिकी है लेकिन यह जमींदारी तो केवल जोर-जुल्मों के सहारे कानूनों का गला घोंट-घोंट कर या उनकी आँखों में धूल झोंक-झोंक कर ही खड़ी है। एक तो साम्राज्यशाही या अंग्रेजी शासन के कानून यों ही मालदारों के ही अधिक लाभ के लिए बने हैं। दूसरे उन्हें भी यह जमींदारी पाँव तले दिन दहाड़े रौंदती है। तिस पर तुर्रा यह कि रुपए के बल से जमींदारों का बालबाँका हो नहीं सकता, वे निर्भय विचरते हैं। सन् 1793 ई. के 22 मार्च को लार्ड कार्नवालिस के एक फतवे (Regulation) के अनुसार इस जमींदारी रूपी पूतना का जन्म हुआ और इतिहास के जानकारों ने लिखा है कि उसके बाद जो पाँचवें, सातवें, ग्यारहवें, आदि फतवे निकाले गए और जिन्हें जस्टिस फील्ड जैसे अंग्रेज सज्जन तक ने 'काला 7वें आदि फतवे' कहा है, उन्हीं के आधार पर किसानों की जानमाल और उनकी बहू-बेटियों की इज्जत पर आक्रमण करके इस जमींदारी की रक्षा की गई है, उसे पाला-पोसा गया है। वे सभी फतवे इसीलिए निकाले गए थे कि बिना अदालत की शरण लिये

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ही जमींदार का मामूली नौकर किसानों के जनानखाने तक में बेधड़क घुसकर तलाशी ले सकता और बकाया लगान में चीज-वस्तु जब्त कर सकता था। यहाँ तक कि पड़ोसी के द्वार पर पड़े हुए गल्ले, जानवर आदि को भी इस शक में जब्त कर सकता था कि यह चीजें उसी किसान की हैं जिसके जिम्मे लगान बाकी है। ऐसी नादिरशाही के बीच यह जमींदारी प्रथा सयानी और तगड़ी होकर अब बूढ़ी हो चली है मरणासन्न है। क्योंकि उसकी उम्र का 145वाँ वर्ष गुजर रहा है। कसके एक धक्का लगा कि खत्म हुई। आज जो जमींदारों के जुल्मों की कहानियाँ छपा करती हैं, उनकी जड़ तो इस जमींदारी की ही जड़ में है। ये जुल्म शुरू से ही चले आ रहे हैं और आज कानून के बदल जाने पर भी वे बन्द नहीं हुए। क्योंकि पुरानी आदत आसानी से छूटती नहीं, छूट सकती नहीं।

एक बात और है। यदि जुल्म और अत्याचार बन्द हो जाए तो जमींदारी एक मिनट भी टिक नहीं सकती। तब तो किसान निर्भय और हिम्मतवर बनके जमींदार का मुकाबला जब न तब कर बैठेंगे और वह उनसे पार न पा सकेगा। अदालतों में दावे करके यदि सबों से लगान वसूल करना हो तो कुछ ही साल में जमींदारी खत्म हो जाए। इसीलिए हजार जोर-जुल्म और गैर-कानूनी तरीके से किसानों को पस्त और तीन तेरह कर दिया गया है। यदि जमींदार अपने अमलों को काफी वेतन देता है और आबपाशी आदि का पूरा प्रबन्ध करता है तो मोटर दौड़ाने और महल सजाने के लिए उसे बचेगा ही क्या? इसीलिए भूखे शिकारी कुत्तों की तरह दो-दो चार-चार रुपए के नौकर रखता है, जिनका काम होता है कदम-कदम पर सैकड़ों प्रकार से किसानों को नोचते रहना। जमींदार के खर्च भी समयानुसार बढ़ते जाते हैं और शहरों में रहने, सैर-सपाटे करने, बड़ी-बड़ी पार्टियाँ देने, चुनावों में पड़ने और फैशन करने से खर्च तो बढ़ते ही जाते हैं। मगर जमींदारी की आमदनी तो बढ़ती नहीं इसीलिए बीसियों प्रकार की गैर-कानूनी वसूलियाँ जारी की गई हैं। गंगा के किनारे तो गंगशिकस्त और गंग बरार के करते महाराजा डुमराँव तथा दूसरे जमींदारों की पाँचों घी में हैं। जो जमीन गंगा की धार में जाने के बाद फिर बाहर आई उसका नए सिरे से बन्दोबस्त किया जाता है और इसमें खूब चढ़ा ऊपरी कराई जाती है। कभी-कभी तो एक से ज्यादा लोगों के साथ बन्दोबस्त करके किसानों को ही आपस में गुत्थमगुत्था करने का मौका दिया जाता है। यदि जमींदार को यह सब करने न दिया जाए तो उसकी आमदनी ही जाती रहे, उसका मजा किरकिरा हो जाए और अन्त में किसानों की संगठित शक्ति और मुकाबले के सामने जमींदारी की अन्त्येष्टि ही हो जाएगी। जमींदारी प्रथा का यह भीतरी विरोध (Internal contradiction) है। इसीलिए शीघ्र से शीघ्र उसका अन्त होने में ही कल्याण है।

जमींदारी पैदा करने में अंग्रेजी सरकार का स्वार्थ कई प्रकार से सिद्ध हुआ एक तो हमारे देश की सम्पत्ति वाणिज्य-व्यापार में न लगकर जमीन के खरीदने में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लगी और इस प्रकार विदेशी व्यापार के लिए यहाँ काफी गुंजाइश रही। दूसरे सरकार और जनता के बीच में एक ऊँची दीवार खड़ी हो गई, जिसके पीछे रहके सरकार अपना सारा काम चलाती रही और जनता जल्दी उसे देख न सकी, इसीलिए उस आक्रमण भी न कर सकी। जोर-जुल्म और दमन कार्य तो जमींदारों के द्वारा हो ही जाता था। सरकार के लिए कानून के खिलाफ खुल के काम करना आसान नहीं था। मगर उसके दोस्त और एजेण्ट ये जमींदार सबकुछ कर सकते थे, कर सकते हैं। इस प्रकार देश के भीतर दो परस्पर विरोधी स्वार्थ पैदा हो गए। साथ ही, जमींदारी मशीनरी के जरिए आसानी से 80 से लेकर 90 फीसदी किसान नामर्द और पस्त हिम्मत बना दिए गए। फिर सल्तनत का मुकाबला कौन करे? जमींदार और उनके अमले किसानों की छाती पर बचपन से लेकर मरने तक किस प्रकार सवार रहते और रह-रह के कोदो दलते रहते हैं इसका कटु अनुभव धारा सभाओं के बहस मुबाहसों, अखबारों की लीपापोती और किसानों के पढ़ने से नहीं हो सकता। इसे तो किसानों के जले दिल, उनकी भीगी आँखें, उनकी पस्ती और बेबसी ही बता सकती है, सो भी उन्हें जो सहृदय हैं, जो आहों और मूक वेदनाओं को जान सकते हैं, जानने की योग्यता रखते हैं।

इस प्रथा में एक बड़ा दोष यह है कि इसने निठल्ले लोगों का एक खासा दाल पैदा कर दिया है जो रईस और भलेमानस कहाते हैं। जो लोग रोजगार व्यापार में पैसे लगाते हैं उन्हें फिक्र बनी रहती है कि किस वस्तु का व्यापार कहाँ है और वहाँ औरों के साथ मुकाबला कैसा है। इसलिए बड़ी मुस्तैदी और तत्परता से चीजें तैयार कराते और बाजार में पहुँचाते हैं। कच्चे माल की भी चिन्ता उन्हें रहती है। उधर अपनी साख (प्रतिष्ठा) भी बनाए रखना पड़ता है। इतने पर भी घाटे का डर बराबर बना रहता है। कभी-कभी घाटा होता है और पूँजी भी डूब जाती है। विपरीत इसके जमींदारों को न तो कोई फिक्र है, न चिन्ता, न कुछ सोचना है, न विचारना, मगर चिन्ता है तो केवल मौज करने की। घाटा तो कभी होता नहीं। यदि लगान न मिला तो सरकारी न्यायालय वसूल करवा देने के लिए तैयार रहते ही हैं। और इसके लिए उन्हें मेहनताना भी जमींदारों को देना नहीं पड़ता, वह तो किसान से ही वसूल कर लिया जाता है। कितना सुन्दर सौदा है। फिर जमींदारी में रुपया न लगाकर व्यापार में कौन लगाए? अपनी चैन में खलल कौन डाले? परिणाम यह हुआ कि देश के धन और दिमाग में एक प्रकार का जंग लग गया, वह कुन्द पड़ गया। इस प्रकार हमारे देश की व्यापारिक और मानसिक समुन्नति के लिए यह जमींदारी अभिशाप हो गई।

जो लोग अंग्रेजी सरकार से लड़ते और लड़ना चाहते हैं उन्हें जमींदारी के खिलाफ लड़ने में जो आनाकानी होती है वह हमारी समझ में नहीं आती। आमतौर से देहातों में अंग्रेजी सरकार का तो कहीं पता नहीं रहता। मगर जमींदार सरकार तो हर गाँव

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में विराजती है और किसानों तथा गरीबों का शोषण और उत्पीड़न सैकड़ों प्रकार से करती रहती है। फलतः इस शत्रु का अनुभव किसान बराबर करता रहता है। जब हम निरन्तर छाती पर सवार रहने वाले शत्रु से लड़ाई की बात नहीं करके मेल की बात करते हैं और उस शत्रु से लड़ना चाहते हैं, जिसका अनुभव दैनिक जीवन में सर्वसाधारण किसान मजदूरों को बराबर नहीं होता, तो वह लोग हमारी बात समझ नहीं सकते और आश्चर्य में पड़ जाते हैं, मौत सदा सिर पर सवार है और उसका दुःख सबसे ज्यादा होता भी है। मगर उससे बचने की कोशिश कौन करता है? हाँ जब बीमारी होती है तभी यत्न किया जाता है। लेकिन जूते की काँटी बराबर चुभती है तो जी जान से उसे दूर करने की कोशिश की जाती है। जमींदारी जूते की काँटी और विदेशी शासन मौत का दुःख है यह हमें भूलना न चाहिए।

एक बात और बिहार में अंग्रेजी सरकार को हम करीब पाँच करोड़ देते हैं जिनका एक बड़ा हिस्सा या अधिकांश किसानों से ही लिया जाता है। इस रकम में एक अच्छा हिस्सा बड़ी-बड़ी तनख्वाहों में खर्च होता है बेशक और उसे हम रोक भी नहीं सकते। फिर भी बहुत बड़ा हिस्सा स्कूल, कालिज, अस्पताल, दवाखाना औषधालय, सफाई, सड़क, कुएँ, नहर आदि में खर्च होता है जिससे जनता की भलाई है। पुलिस, कचहरियों का खर्च भी बहुत अंश में जनता के हित में है। मगर जमींदार लोग तो 20 करोड़ से कम वसूल नहीं करते और इसमें से भरसक एक पैसा भी जनता के काम में खर्च करना नहीं चाहते, खर्च नहीं करते। हाँ टायटिल और उपाधि के लिए या अधिकारियों को खुश करने के खयाल से भले ही कुछ दे दिया करते हैं या स्कूल और अस्पताल बनवा दिया करते हैं। कितने जमींदार हैं जिन्होंने देहातों के बीच केवल किसानों के ही लाभ के लिए औषधालय या स्कूल खोले हैं? अपने और अपने नौकरों-चाकरों के लिए स्कूल और अस्पताल बनवा दिए और उससे यदि कुछ गरीबों का भी लाभ हो गया तो इससे क्या? यह तो मजबूरी की बात हो गई। यहाँ तक देखा जाता है कि यदि डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की ओर से दवाखाने या अस्पताल खुलते हैं तो वह भी जमींदारों के घरों और महलों के ही पास खुलें ऐसी कोशिश होती है। स्कूलों और सड़कों के बारे में भी यही होता है। यह भी देखा जाता है कि स्कूल और अस्पताल खुलवाते हैं जमींदार अपने नाम से और उनका खर्च वसूल होता है किसानों से। यदि गाँव में चोरी-डकैती हो तो अंग्रेजी सरकार की पुलिस खबर पाते ही दौड़ पड़ती है। मगर हजार खबर देने पर भी जमींदार अपना यह फर्ज ही नहीं समझता कि उस जगह पर जाएँ। ऐसी दशा में यदि सरकार से युद्ध करते हैं तो उससे कई गुना भीषण युद्ध इस 'मुफ्तखोरी की संस्था' जमींदारी के खिलाफ छेड़ना चाहिए। सरकार तो 5 करोड़ का हिसाब पेश करती और उसकी मंजूरी लेती है। मगर ये 20 करोड़ हजम करनेवाले जमींदार? इन्हें हिसाब-किताब से क्या काम?

कुछ लोग मुंशी जी वाला हिसाब लगाकर बताते हैं कि जमींदारों की कुल आमदनी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

11 करोड़ है और उसमें माल (रेवेन्यू) और वसूली का खर्च मिलाकर 3 करोड़ से कम नहीं है। ऐसी हालत में 6 करोड़ से कुछ ही ज्यादा उन्हें बचता है और यदि जमींदारी मिट जाए तो बिहार की साढ़े तीन करोड़ जनता में उस आमदनी को बाँटने से औसतन फी आदमी साल में दो रुपए आय होगी। लेकिन इससे गरीबी दूर हो नहीं सकती। अतः जमींदारी मिटाने का प्रश्न छोड़कर देश की समृद्धि बढ़ाने का दूसरा उपाय सोचना चाहिए। इस प्रश्न से घरेलू झगड़ा भी पैदा होता है और इस प्रकार स्वराज्य की लड़ाई में बाधा होती है। ऐसे लोग पूर्व में बताई गई मौलिक बातों का कतई खयाल नहीं करते। हमारा तो खयाल है कि जमींदारी सड़ा हुआ मुर्दा है और जब तक इसे जला या दफना न देंगे इससे बराबर दुर्गन्ध आती और बीमारी फैलती रहेगी। और अगर फी आदमी साल में दो रुपया भी बच जाता है तो गरीबों के लिए यही क्या कम है? मुफ्तखोर यह दो रुपया भी हमारा क्यों ले जाएँ? क्या हम मुफ्त में एक कौड़ी भी बर्दाश्त करते हैं? और फिर ऐसे लोग हमारे ही रुपए से मौज करें हमें ही पस्त और पामाल बनाएँ। क्या पैसे देकर ऐसे लोगों की जरूरत तैयार होने देना ठीक है जो सदा से देशद्रोही तथा कांग्रेसद्रोही रहे हैं और आगे भी रहेंगे। अगर आज ये कांग्रेस में आए हैं या आ रहे हैं तो सिर्फ इसीलिए कि भीतर से ही हमला करें और कमजोर बनाएँ। पं. जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में, 'कांग्रेस में आकर न तो स्वराज्य लेने को ही उत्सुक हैं और न स्वतंत्रता संग्राम में भाग ही लेने को। इन्हें तो अपना मतलब साधना है Who were not eager to achieve Swaraj or join fight but were saveving personal gains.'

और इनके साथ घरेलू झगड़े का क्या सवाल ? ये तो सदा किसानों, गरीबों और कांग्रेस पर हमला करते ही रहे हैं। ये तो हमारे पुराने दुश्मन हैं। बिहार में तो इन्होंने गत चुनाव में केवल संगठित रूप से विरोध ही नहीं किया किन्तु जहाँ तक जमींदारों के वोट से चुने जाने की बात थी, एक भी कांग्रेसी उम्मीदवार को असेम्बली या कौंसिल में चुने जाने नहीं दिया। फिर इनके साथ रिआयत कैसी? इनका हमला तो आज भी किसानों पर पूर्ववत् जारी है। तो क्या हम लोग हमले के जबाव न दें। इससे अपनी (सान करें) यह तो गैरमुमकिन है। ऐसा उपदेश देने वालों पर आज यदि कोई आक्रमण करे तो क्या वे चुपचाप बर्दाश्त कर लेंगे? उनका घर या धन कोई लूटे तो क्या लुटेरे का मुकाबला न करेंगे? यदि किसान का भाई या पड़ोसी लूटने आए तो किसान रोके नहीं? क्या स्वराज्य और उसकी लड़ाई का यही अर्थ है कि हमारे घर और देश के आदमी हमें लूटते और अपमानित करते रहें और हम चूँ न करें? ऐसे स्वराज्य से तो हम बहुत डरते हैं और उसे दूर से प्रणाम करते हैं। जो लोग ऐसा उपदेश देते हैं असल में वे जमींदारी जुल्म के शिकार हैं नहीं, या यदि हैं तो मुर्दे और आत्मसम्मान हीन हैं। हम जानते हैं कि 'जिनके पाँव न फटे बिवाई सो क्या जाने पीर पराई' के किसानों की तकलीफों को समझने की कोशिश भी नहीं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करते, यह और भी दर्दनाक बात है।

जो लोग 'एकै साधे सब सधै' का गीत गाकर कहा करते हैं कि स्वराज्य मिलने पर ये सभी झगड़े अपने आप मिट जाएँगे वे हमारी आँखों में धूल झोंकना चाहते हैं। दुनिया के सभी देशों में स्वराज्य हो गया सो भी सैकड़ों वर्षों से मगर रूस को छोड़ ये सभी झगड़े सभी देशों में मिटने के बजाए दिनोदिन भयंकर होते चले जाते हैं। यदि जमींदार, पूँजीवाले और साहूकार स्वराज्य आने पर भी रहे तो वह स्वराज्य गरीबों के लिए एक कौड़ी का भी न होगा। किसान, मजदूर, और पीड़ित लोग साधु फकीरों के कहने से स्वर्ग या बैकुण्ठ को इसीलिए अच्छा और अपने रहने लायक समझते हैं कि वहाँ जमींदार, सूदखोर और पूँजीपति नहीं रहते ऐसी उनकी धारणा है। यदि उन्हें पता लग जाए कि ये जमींदार वगैरह मरकर वहाँ भी जाएँगे और अपना काम करेंगे तो गरीब लोग स्वर्ग बैकुण्ठ का नाम भी न लें। बल्कि नरक को ही अच्छा समझें यदि वहाँ जमींदारों की गुंजाइश न हो।

जो लोग उन भूखे किसानों से जिनकी जमीनें धड़ाधड़ जमींदारों, साहूकारों और बैंकों के द्वारा नीलाम हो रही हों और जिनके बाल बच्चे अन्न, वस्त्र, दवा के बिना तड़पते हों, आजादी की लड़ाई लड़ पाने की आशा करते हैं, उनकी समझ की बलिहारी है। जिस सिपाही की ऐसी दशा हो वह मैदान छोड़ कर भाग आता है और जब तक यह हालत रहे जाता नहीं। सत्याग्रह करने जा रहे हैं, मगर बीच में ही पेट में दर्द हो जाए या बुखार आ जाए तो हम सत्याग्रह की बात भूल कर पेट की दवा करतें और ज्वर का उपचार करते हैं और हमारे दूसरे साथी भी इसी काम में फँस जाते हैं। सख्त भूख लगने पर भगवान और सत्याग्रह भूल जाता है सिर्फ यह याद आता है यह अप्रिय सत्य है। किसान आन्दोलन इसी भूख और बीमारी की दवा का उपाय है। हम इसके जरिए जमींदारी और साहूकारी जुल्म हटाकर किसान को थोड़ा आराम पहुँचाना चाहते हैं और इस प्रकार अपने नेतृत्व में अमली तौर से उसका विश्वास पैदा करके उसे आजादी की लड़ाई के लिए कमर बाँधकर तैयार करना चाहते हैं।

रह गई हिसाब की बात सो तो गलत है। अगर हम भूलते नहीं तो सरकारी रेवेन्यू (माल) 135 लाख है। 1931-32 वाली बिहार, उड़ीसा की शासन रिपोर्ट में लिखा है कि सरकार जमीन के मुनाफे का प्रायः 90 फीसदी जमींदारों के लिए छोड़ देती है, 'Today the state relinquished nearly ninety perent of the profits to the land owners.' ऐसी दशा में सरकारी बयान के ही अनुसार साढ़े तेरह करोड़ की आमदनी जमींदारों को होती है। मगर अवली में जो लूट किसानों की होती है उसका हिसाब सरकार के पास क्या है? दक्षिण बिहार में तो अवली बहुत ज्यादा है सो भी अधिकांश दलबन्दी, जिसमें जमींदार का हिस्सा 16 सेर से 9 सेर है। तिस पर भी बढ़ई वगैरह कई अबवाब (सलामी, तवान) सूद, जुर्माना के रूप में अपार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

धन जमींदारों के पास चला जाता है। (अन्ती तौजी, घाट, चरसा, महाल आदि) पचासों वसूलियाँ अलग हैं। जल कर, फल कर, वगैरह भी हैं। जंगल के कर जुदा हैं। लकड़ियों और बाँसों की बिक्री से खासी आमदनी जंगलों के जरिए होती है। अबरक और कोयला तो बिहार की खास चीज है। पत्थर की बिक्री भी होती है। लोहा भी यहीं निकलता है। यदि यह सब आमदनी मिला दी जाए तो क्या लगान की आधी भी न होगी? हमने कई जगह हिसाब लगा के देखा है तो सिर्फ गैर-कानूनी वसूलियाँ लगान के पाँचवें हिस्से के बराबर हो जाती हैं। बेगारी या कम मजदूरी देकर काम करवाना यह तो आम बात है। इसके सिवाय जमींदारों के दर्जनों नौकर हर गाँव में रहते और साग तरकारी, घी, दूध, दही, रस, ऊख, चना, मटर, बकरा-बकरी, मुर्गी, अण्डा, जूता, कम्बल, तेल, बर्तन वगैरह चीजें बराबर लेते रहते हैं। यदि साल-भर की इनकी लूट भी उसमें जोड़ दी जाए तो यह रकम बीस करोड़ से कहीं ज्यादा हो जाएगी। जमींदारी प्रथा का खात्मा होने पर 135 लाख के सिवाय बाकी तो किसानों के पास ही रहेगा जो प्रायः ढाई करोड़ किसानों में बाँटने पर फी आदमी करीब आठ रुपए और पाँच जनों के परिवार के लिए चालीस रुपया सालाना होगा। यह गरीबों के लिए बैठे बैठाए बहुत ज्यादा है। चरखे की आमदनी किसी भी परिवार को, जिसमें पाँच मनुष्य हों, इतनी शायद ही हो और होगी भी तो उसके लिए अलग परिश्रम होगा। उसमें यदि यह चालीस रुपए मिल जाएँ तो कितना सुन्दर हो। जोर, जुल्म आतंक का जो अन्त हो जाएगा जमींदारी के साथ ही सो तो अलग ही है।

इतने पर भी जो लोग दलीलें दिया करते हैं कि जमींदारी मिट जाने पर भी खासमहाल में किसानों की तकलीफें ज्यों की त्यों हैं और बम्बई या मद्रास के इलाके में जमींदारी प्रथा के न रहने पर भी किसानों के दुःख दूर न हुए उनसे हमारा निवेदन है कि वे जमींदारी मिटाने का अर्थ समझने की कोशिश करें। वे भारी भूल करते हैं यदि खासमहाल की जमींदारी ही है और आमतौर से खासमहाल का जमींदार कलेक्टर समझा जाता है, फर्क इतना ही है कि अन्य जमींदार जहाँ और जमीनों के मालिक हैं तहाँ खासमहाल का मालिक सरकार ही है। इसीलिए उसे खास कहे हैं। तो भी खासहाल और जमींदारियों से अच्छा इसलिए है कि वहाँ बेगारी या अववाब नहीं चलते और गैरकानूनी जुल्म नहीं होते। रह गई बम्बई आदि में प्रचलित रैयतवारी की बात। यह ठीक है कि वहाँ जमींदारी नहीं है लेकिन इसी के बहाने खेती प्रथा, इनामदारी, जागीरदारी जन्मी प्रथा, और साहूकार जमींदार प्रणाली प्रचलित है, सारांश यह कि सरकार और किसानों के बीच कोई न कोई शोषक दल सर्वत्र है। अन्ततोगत्वा कहीं-कहीं किसान ही हज़ारों एकड़ जमीन रखते हैं और दूसरों के साथ शिकमी बन्दोबस्त करते हैं और जमींदारी प्रथा के खत्म करने का अर्थ है कि खेती करने वाले (किसान) और सरकार के बीच में कोई न रहें जो किसान से लगान लेकर कुछ स्वयं हजम करे और कुछ सरकार को दे। हर किसान के पास उसके परिवार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के गुजारे के लायक काफी जमीन हो और उसे सरकार को नाममात्र का माल या कर देना पड़े। असल में किसान ही अपनी जोत जमीन का मालिक हो और इन्कम टैक्स की तरह उसे अपनी एक निश्चित आमदनी से अधिक आमद पर सिर्फ टैक्स लगे, लेकिन इतने से ही उसकी तकलीफें दूर न हो जाएँगी। इसके लिए तो उसे किसान मजदूर राज्य स्थापित करना होगा जैसा कि पहले कह चुके हैं। जैसे अनेक बीमारियाँ होती हैं और एक के दूर हो जाने पर भी दूसरी रह सकती है और उससे कष्ट भी हो सकता है, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि दूसरी से कष्ट है इसीलिए पहली का हटाना बेकार है। किसानों के कष्टों के कई कारणों में एक प्रधान कारण जमींदारी प्रथा है और इसे दूर करना है, बस यही अर्थ है। इसके बाद कष्ट के और कारणों का पता लगाकर उन्हें भी दूर किया जाएगा।

जो लोग जमींदारी के सुधारने की बात कहते हैं और उसके मिटाने का विरोध करते हैं या यों कहते हैं कि उसके सुधार की कोशिश की जाए और यदि न सुधरेगी तो स्वयं मिट जाएगी उनसे हम पूछते हैं कि साम्राज्यशाही के मिटाने की बात भी वे क्यों नहीं छोड़ देते? उसे भी सिर्फ सुधारने में ही लग जाएँ। यदि वह न सुधरेगी तो समय पाकर स्वयं मिट जाएगी। जिस प्रकार जमींदारी एक निन्दित प्रथा है उसी प्रकार साम्राज्यशाही भी पूँजीवाद रूपी प्रथा का अत्यन्त विकसित और भयंकर रूप है। यदि साम्राज्यशाही सुधर नहीं सकती तो जमींदारी कैसे सुधरेगी जिसका जन्म ही पापमय है? जमींदारी के सुधारने की आशा करना कोयले को साबुन से धोकर सफेद करने या बालू से तेल निकालने की आशा के समान ही है। यह कहना कि खेती करने वाले की ही तरह उसमें रुपया और सामग्री (Money and materiat) जुटाने वाले को भी साझीदार समझना चाहिए और जमींदार रुपया तथा सामग्री लगाते हैं बिलकुल गलत बात है। यदि हल, बैल, बीज या पूँजी देकर और आबपाशी आदि का प्रबन्ध करके जमींदार साझीदार बनना चाहते तो यह बात समझ में आती भी। मगर वह तो ऐसा कुछ करता नहीं। वह तो मुफ्त ही किसान की कमाई को हड़प लेना चाहता है, हड़प लेता है। चाहे फसल मारी जाए, मगर वह तो पाई-पाई लगान सूद के साथ वसूलता ही है। यही साझीदारी है? यह साझीदारी का सिद्धान्त गलत भी है। किसान के पास तो इतनी पूँजी चाहिए ही कि वह खेती में लगे, यदि दूसरा कोई पूँजी लगाना चाहता है तो वह स्वयं खेत लेकर उसमें लगाए और खेती करे। पैसे के बल से दूसरे की कमाई खाने का सिद्धान्त ठीक नहीं है। यह तो सिर्फ सरकार का ही काम है कि किसान के लिए जमीन और पूँजी की व्यवस्था कर दे और उससे थोड़ा सा टैक्स सिर्फ इसलिए ले कि फिर उसी की भलाई में उसे खर्च करे।

यदि जमींदारी, साहूकारी और पूँजी के द्वारा होने वाला शोषण बन्द न होगा और स्वराज्य के समय भी ये चीजें रहेंगी तो किसानों की गरीबी भी रहेगी ही। क्योंकि स्वराज्य होने पर जमीन में घी, दूध या गेहूँ, चावल की न तो वर्षा ही होगी और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

न पनाले ही फूटेंगे। ऐसी हालत में जो पैदावार होगी वह तो जमींदारों और साहूकारों आदि के हाथ में आज की ही तरह जाएगी। फिर किसान क्या खाएगा? कल कारखाने खोलकर, गरीबी दूर करने की बात मनोमोदक मात्र है। चीनी के पचासों कारखाने बिहार में खुल गए मगर क्या किसानों की गरीबी और तकलीफ घटी? या कि उलटे बढ़ी? ये कारखाने तो बेकारी को बढ़ाने और किसानों को सताते हैं। हाँ, पूँजीवाद न हो और सभी कारखाने, किसान मजदूरों और उनमें काम करनेवालों के हो जाएँ तो बात ही दूसरी है। मगर पूँजीवाद का अन्त करने से पूर्व जमींदारी का अन्त करना ही जरूरी होगा।

मुआवजा और कीमत देकर

बहुत लोगों का कहना है कि जमींदारी प्रथा का अन्त तो जरूर हो, मगर जमींदारों को उसकी कीमत (मुआवजा) दी जाए। लेकिन हमारी समझ में यह बात नहीं आती। उन्हें कीमत किस बात की मिलेगी? क्या 1793 में उन्होंने किसानों से जमींदारी कीमत देकर खरीदी थी? इतिहास का कोई भी पन्ना क्या इसका साक्षी है? कलम की एक नोंक से किसानों की सारी जमीन छीनकर जमींदारों को सौंप दी गई—उन्हीं लोगों को जो पहले मुगल सरकार के जमाने में सरकारी मालगुजारी की वसूली में कमीशन एजेण्ट थे और जिन्हें आज भी नेपाल राज्य में जिम्मेदार कहते हैं, जिम्मेदार का अर्थ है कि सरकार ने अपनी वसूली के लिए उनको कुछ मौजों का जिम्मेदार बना दिया था और वसूली के मुताबिक फी सैकड़ा पाँच से दस रुपए तक कमीशन उन्हें देती थी। यही बात हाल में युक्त प्रान्तीय असेम्बली में वहाँ के माल मन्त्री ने भी कही थी। इस प्रकार यह जमींदारी तो एक प्रकार से चोरी या लूट का माल ठहरा और यदि आज हमें उसका पता लग गया तो पुराने मालिकों को वह वापस तो मिल जाना ही चाहिए। कीमत की बात कैसी? जिन लोगों ने दाम देकर पीछे औरों से जमींदारी खरीदी है उन्हें भी कीमत का दावा करने का हक नहीं। आखिर चोरी या लूट का माल जो खरीदता है वह भी गुनहगार ही है। हाँ, यदि जमींदारी की पैदाइश जोर जुल्म या छीना-झपटी से न हुई रहती और खरीद-बिक्री के द्वारा ही इसकी उत्पत्ति हुई रहती तो बात दूसरी थी। मगर यह तो जबर्दस्ती छीनी गई है। और इसका साक्षी इतिहास है। इतने पर भी यदि जमींदार कीमत माँगते हैं तो किसान गुजश्ता 145 वर्षों का वासिलात क्यों न माँगें? और अगर ऐसा हो तो उन्हें तो लेने के देने पड़ जाएँगे। ऐसी हालत में अपनी परवरिश के लिए जमीन, रोजगार तथा रुपया-पैसा अगर जमींदार चाहे तो यह चीज समझ में अच्छी तरह आ जाती है और उनकी यह माँग पूरी की जा सकती है बशर्ते कि शान्ति के साथ वे लोग इस जमींदारी का नामोनिशान मटियामेट करने दें।

लेकिन कीमत की तह में कई गम्भीर और पेचीदा बातें भी हैं जिनका विचार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

निहायत जरूरी है। आखिर जमींदारों को यह कीमत देगा कौन और कहाँ से? बिहार की समूची जमींदारी की कीमत कम से कम एक अरब रुपया बताई जाती है। यह एक अरब कौन देगा? बड़े-बड़े पूँजी वाले और बैंक हो तो देंगे। परिणाम यह होगा कि हम जो जनता के हाथ में शासन सूत्र लाना चाहते हैं वह न होगा और स्वराज्य के पहले ही यहाँ की सरकार पूँजी वालों के हाथ में बंधक हो जाएगी; उनके शिकंजे में कर्जदार की तरह जकड़ जाएगी। दूसरी ओर उस रुपए से आज के जमींदार कल-कारखाने खोलकर मालोमाल बनेंगे और जमींदारी के स्थान पर देश का सारा कारबार उन्हीं के हाथ में चला जाएगा। फलतः मालदारों को दोनों तरफ से लाभ ही होगा। एक ओर बैंक और धनियों का दबाव, दूसरी ओर कल-कारखानेदारों का जोर इन दोनों के बीच स्वराज्य सरकार की कचूमर निकल जाएगी। साथ ही, जो जमींदार अपनी जमींदारी के जरिए किसानों पर जुल्म करते थे वही अब एक और कच्चा माल खरीदने में और दूसरी ओर मिलों में काम करनेवालों के साथ व्यवहार करने में वही अत्याचार करेंगे, बल्कि वह और भी शोषण हो जाएगा। सुसंगठित बन जाएगा। इस प्रकार रोजा को गए, नमाज गले पड़ी, वाली कहावत चरितार्थ हो जाएगी।

जो लोग राय देते हैं कि जमींदारों को केवल साढ़े तीन या चार रुपया सैकड़ा, सालाना सूद ही उनकी कीमत पर दिया जाए वह तो सोचते नहीं कि सालाना यह चार करोड़ कहाँ से आएगा। बिहार सरकार तो स्वयमेव अर्थ संकट से तबाह रहती है। ऐसी हालत में बराबर कर्ज लेकर देते रहने का भी वही अर्थ हुआ। बल्कि अन्ततोगत्वा इसका असर एक बार देने की अपेक्षा और भी बुरा होगा। यदि सरकार ही जमींदारियों को लेकर इन्तजाम करे तो यह जमींदारी का मिटना कैसे हुआ? आखिर खासमहाल का मजा भी किसान चख ही चुके हैं। अतएव बिना कीमत या मुआवजा के ही जमींदारी का अन्त करना होगा और किसान सभा का यही लक्ष्य है।

ऋण और बकाया लगान का अन्त

इसी प्रकार किसानों और गरीबों की छाती पर चक्की की तरह लदे ऋण की भी इतिश्री किए बिना गुजर नहीं। एक तो किसान इस ऋण को दे नहीं सकता। उसकी तो कमर और रीढ़ टूट चुकी है। अब इस बोझ को वह बर्दाश्त नहीं कर सकता। अतएव सदा के लिए उसका पिंड इससे जल्द से जल्द छूट जाए इसी में कल्याण है और इसका एक ही तरीका है कि सरकारी कलम की नोंक से ही किसानों के सभी ऋण खत्म कर दिए जाएँ। यदि देखा जाए तो पता चले कि महाजनों ने सौ की जगह हजार और इससे भी ज्यादा वसूल कर लिया है। फिर उनकी बही में बाकी दर्ज है। एक तो सूद की दर बहुत ज्यादा है खासकर गल्ले की। दूसरे दर सूद के चलते वह और भी खतरनाक हो जाती है। एक पैसे और एक आने से लेकर चार आने फी रुपए तक सूद लिया जाता है। तिस पर भी दर सूद। सौ रुपए का ऋण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लिया तो डेढ़ और दो सौ का दस्तावेज लिखाया जाता है। अतएव इस अन्धेर खाते का खात्मा एक ही धक्के में कर डालना ठीक है। महाजनों और बैंकों ने गरीबों को काफी लूटा है। पटना जिले में हमने देखा कि एक जगह बहुत बढ़िया खेत 25-30 रुपए बीघे में ही कोआपरेटिव बैंक ने नीलाम करवा लिया है जिसकी कीमत आज भी पाँच सौ रुपए बीघे से कम नहीं हो सकती। महाजन लोग ऐसा ही करते हैं और किसान की बेबसी से अनुचित लाभ उठाते हैं। फलतः किसानों को उनके आज तक के कर्ज से बरी कर देना ही ठीक है। हाँ, यदि किसी का कर्ज ऐसा हो जो चुकता न हुआ हो तो उसको चुकता करने की जिम्मेदारी सरकार अपने ऊपर ले सकती है। जबकि इंग्लैण्ड और फ्रांस आदि की सरकारों ने नर संहार के लिए लिया हुआ जर्मन युद्ध का महत्त्व देने से इनकार कर दिया तो किसान की क्या बात? उसने तो जमींदारों को देने के ही लिए या बीज और बैल आदि के ही लिए अधिकांश कर्ज लिया है।

एक बात और। बिहार की कुल जमीन, जंगल, पहाड़, नदी वगैरह मिलाकर इस समय 44324173 एकड़ है, जिसमें खेती वाली 20301900 एकड़ है। यहाँ की जनसंख्या करीब साढ़े तीन करोड़ है जिनमें करीब ढाई करोड़ किसान हैं। इस प्रकार हिसाब लगाकर देखने से फी किसान औसतन पौन एकड़ से भी कुछ ही ज्यादा पड़ती है। इधर सरकारी रिपोर्ट देखने से पता चलता है कि एक एकड़ की औसतन कीमत सवा सौ और डेढ़ सौ के बीच में है। 1929 में वह 128 रुपया, 1930 में वह 122 रुपया और 1932 में 134 रुपया थी। इसका सीधा अर्थ यह है कि प्रत्येक किसान के हिस्से में जो जमीन पड़ती है यदि उसे बेच डाले तो 100 रुपया भी मुश्किल से ही उसे मिलेंगे। इधर कर्ज की हालत यह है कि बिहार के गाँवों का कुल ऋण जो 1929-30 में 155 करोड़ का उसमें किसानों का हिस्सा 129 करोड़ माना गया है। यह सरकारी कमिटी या हिसाब है। हमारे हिसाब से तो इससे कहीं ज्यादा है। जानकारों का यह भी कहना है कि बैंकिंग कमिटी ने भारत के गाँवों का कुल ऋण जो करीब 9 अरब 1929-30 में कूता था। वह 1936-37 में प्रायः 15 अरब और 1938 में 17-18 अरब से कम नहीं है अर्थात् गत 9 वर्षों में करीब दूना हो गया है। इस हिस्सा से बिहार के किसानों का ऋण भी 129 करोड़ से बढ़कर प्रायः ढाई अरब जरूर हो गया है। जो प्रति किसान औसतन 100 रुपया पड़ता है। नतीजा यह होगा कि यदि सारी जमीन बेचकर सिर्फ कर्ज चुकाना चाहें तो भी किसान कठिनाई से पार पा सकते हैं।

इसीलिए जहाँ तक एक ओर इस भयंकर कर्ज को रद्द कर देने के अलावा और कोई भी चारा ही नहीं वहाँ दूसरी ओर सरकार की ओर से अधिक से अधिक 5 या 6 रुपए सैकड़ा सालाना की दर से किसानों को कर्ज मिलने की व्यवस्था होनी चाहिए। केवल सूद की दर कानून के जरिए घटा देने से काम न चलेगा। चालाक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सूदखोर पहले भी ऐसा करते थे और अब तो और भी सौ रुपए देकर दो-तीन सौ के कागज लिखाया करेंगे। हाँ, जिस प्रकार बनियों के लिए दिवालिया कानून है वैसा ही पर बहुत आसान दिवालिया कानून किसानों के भी लिए हो तो उससे कुछ सहायता मिल सकती है।

इसी प्रकार किसानों के ऊपर जो बकाया लगान है, चाहे उसकी डिक्री हुई है या नहीं उसको भी कलम की एक नोंक से रद्द किए बिना गुजर नहीं है। चाहे हजार कोशिश की जाए मगर किसान दे नहीं सकता, उतने पर भी यदि उसे बार-बार दबाया और दिक किया जाएगा तो वह निश्चय ही अधीर (Desperate) हो जाएगा और उसका परिणाम किसी के भी लिए अच्छा न होगा। यदि जमींदारों के साथ कदम-कदम पर संघर्ष होने न देना है तो पिछली गन्दगी का खात्मा होना चाहिए और बकाए को रद्द करके नये सिरे से देने पावने का सिलसिला जारी करना चाहिए बकाए में थोड़ी या ज्यादा कमी करने से अब काम चलने का नहीं। गत नौ वर्षों की सस्ती के समय में जमींदारों ने किसानों को इस कदर बेरहमी से कानून की छत्रच्छाया में चूसा और पस्त किया है कि अब उनके पास कुछ रह ही नहीं गया है। खूबी तो यह कि आज भी किसानों के लगान की कमी को वे बर्दाश्त नहीं कर सकते और सारी शक्ति लगाकर उसे रोकना चाहते हैं।

लगान और नहर रेट में काफी कमी की जाए

इस प्रकार कर्ज और बकाया लगान को रद्द करने के बाद भी जब तक आगे के लिए लगान में काफी कमी न होगी किसान पनप नहीं सकते, लगान चुका नहीं सकते। सरकारी रिपोर्ट के अनुसार गल्ले की कीमत 60 फीसदी से घट गई है यानी जितना गल्ला बेचने पर पहले ढाई रुपया मिलता था उसी का अब एक रुपया मिलता है। फलतः आमतौर से यदि ढाई की जगह एक हो तो दो की जगह एक तो होना ही चाहिए और जहाँ ज्यादा लगान हो वहाँ तिहाई या चौथाई मात्र रख के बाकी अंश सदा के लिए खत्म किया जाना चाहिए दृष्टान्त के लिए 15 रुपया हो तो 4 रुपया या 5 रुपया से ज्यादा लगान नहीं रहना चाहिए और इसके घटाने का तरीका क्या हो? क्या बारह आने के स्टाम्प पर फी किता दरखास्त दी जाए और वकील रखे जाएँ। हर्गिज हर्गिज नहीं। यह बात किसान के सामर्थ्य के बाहर की है और ऐसा करने में जमींदार डराते-धमकाते तथा फुसलाते हैं। तरीका यही है कि सरकार घोषणा कर दे कि किस हिसाब से लगान घटेगा और हाकिम मुकर्रर कर दे जो एक ओर से खतियान या रिकार्ड उठाकर आँख मूँद के घटाते चले जाएँ। उसमें किसी के बोलने या आगे चीं-चपड़ की गुंजाइश न हो। आज तो एक विचित्र लीला है। एक ओर लगान घटाया जाता है और दूसरी ओर काश्तकारी कानून की 104 धारा को दर्जनों उपधाराओं के अन्दर अपील के जरिए किसान को तंग करने और घटाए लगान को

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

फिर बढ़ाने की कोशिश जमींदार करते हैं। आखिर उस मुकदमेबाजी की घुड़दौड़ में गरीब किसान कहाँ तक टिक सकता है। क्या कांग्रेसी मंत्रिमंडल ने इसे विचारा है? किसानं को जो भी मिले वह सीधे और साफ हो। यह नहीं कि एक ओर तो देखने और कहने के लिए मिले और दूसरी ओर छिन जाए और किसान को सिर्फ खर्च, परेशानी और निराशा हाथ लगे।

नहर रेट की बात भी कुछ ऐसी ही है। बड़ी चिल्लपों और परेशानी के बाद फी रुपए करीब एक आने की छूट मिली है। पहाड़ खोदकर चुहिया निकली। ओस चाटने से प्यास नहीं बुझती। एक ओर तो सरकार कहती और कानून बनाती है कि जिस दर से गल्ले का दाम गिरा है उसी दर से लगान में कमी होनी चाहिए। ठीक ही है। किसान दे कैसे सकता है? लेकिन जब नहर रेट की कमी का प्रश्न आया तो यह दलील भूल गई और प्रायः 30 लाख की वसूली में दो लाख की छूट दे दी गई। क्या मतलब? किसान कहाँ से देगा? यह दोमुँही चाल कैसी। यह भी नहीं कि नहर में घाटा हो। अब तो काफी बचत है। उड़ीसा में तो घाटा सहकर भी नहर रेट में कमी की गई थी। तो यहाँ क्यों न की जाए? उड़ीसा जब साथ था तो घाटा देकर भी 4 सैकड़ा बचत थी। अब तो वह अलग हो गया तो काफी बचत है। यह दलील कि 'घाटे के जमाने में और मदों से इसकी पूर्ति होती थी अतः अब इस मद से उठाकर पूर्ति की जानी चाहिए' ठीक नहीं। किसान सबों की रीढ़ है और वह टूट चुका है। अतः उस पर भार देना खतरे को खामख्वाह बुलाना है और दूसरे मदों में भी तो घूम-घुमाकर किसान का ही पैसा आता है। आखिर जमींदार, साहूकार या पूँजीवाले जो कुछ सरकार को देते हैं वह किसान से ही लेकर और स्टाम्प वगैरह में भी घुमा-फिराकर यही पैसे देता है। असल में यह दलील कोई चीज नहीं है कांग्रेसी मंत्रिमंडल ऋण के मामले में और इस नहर रेट के मामले में मालूम होता है, फैजपुर के प्रस्ताव की 'काफी कमी' (Substantical reduction) को भूल गया है। हमें इस बारे में ऐसा जबर्दस्त आन्दोलन करना चाहिए कि उसे मजबूर होकर याद करना पड़े। क्योंकि रुपए में एक आने की कमी को कोई भी 'काफी कमी' कहने की हिम्मत नहीं कर सकता। साथ ही, नहर विभाग के सनातन अत्याचार ज्यों के त्यों बने हैं उन्हें भी बन्द करने के लिए किसानों की कमर कसना ही होगा। दूसरा रास्ता नहीं।

बकाश्त जमीन और सर्टिफिकेट

किसानों के सामने दो और विकट समस्याएँ हैं, बकाश्त जमीन की वापसी और जमींदारों को सर्टिफिकेट का अधिकार कतई नहीं मिलना। सर्टिफिकेट का अधिकार किसानों को किस प्रकार तबाह कर सकता है इसका ताजा उदाहरण महाराजा डुमराँव का वह जुल्म है जिसके शिकार इसी सर्टिफिकेट की ओर में, भोजपुर कदीम सिमरी और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ढकाइच के और खासकर सिमरी के किसान हाल में ही हो चुके हैं। पं. यमुना कार्यी ने जो असेम्बली में सवाल इस सम्बन्ध में किए थे उनके उत्तरों से इस जुल्म पर काफी प्रकाश पड़ता है, यों तो हम लोग अच्छी तरह जानते ही हैं। निस्सन्देह इन्हीं सब जुल्मों के भंडाफोड़ और बिहार प्रान्तीय किसान सभा के निरन्तर आन्दोलन ने सरकार को विवश किया है कि वह जमींदारों को भविष्य में यह अधिकार न देने की घोषणा करे और जिन्हें यह अधिकार दिया गया है उनसे भी छीन ले। लेकिन आसानी से लगान की वसूली के नाम पर प्रकारान्तर से इस सर्टिफिकेट का असली जहरीला अंश सभी जमींदारों को देने की कोशिश हो रही है और कानून बनने जा रहा है। यह जानकर किस किसान और किसान हितैषी को मर्मान्तक वेदना न होगी? हम इस चीज को बर्दाश्त नहीं कर सकते। हम साफ पूछना चाहते हैं कि लगान की आसानी से वसूली (Spedy realization) के नाम पर जो कुछ संशोधन किया जाता है वह सर्टिफिकेट का असली खतरनाक हिस्सा नहीं है तो और क्या? खास मुंसिफ रहेगा। सर्टिफिकेट आफिस की जगह। एक महीने की नोटिस ठीक वैसी ही देगा। नोटिस की तामील का तरीका वही पुराना होगा और किसान को पता लगाया न लगा क्योंकि मुंसिफ के केसों में अकसर नहीं लगता और डिक्री तथा तीन महीने के भीतर वारा-न्यारा हो जाएगा। किसी भी हालत में 6 महीने से ज्यादा समय नहीं लग सकता। बिना पूरी रकम जमा किए नोटिस न मिलने का उज्र सुना न जाएगा। ये सब बातें आए कानून में डाल दी गई तो फिर सर्टिफिकेट का क्या बचा रहेगा? यदि ऐसा हुआ तो किसानों को इसके विरोध में प्राणपण से कोशिश करनी होगी। हमें तो अभी सजग हो जाना चाहिए कि ऐसा होने ही न पाए। नहीं तो किसान खत्म हो जाएँगे। बकाश्त जमीन का प्रश्न भी टेढ़ा है। असल में इसके बारे में जमींदारों ने हमेशा बेईमानी और धोखेबाजी से काम लिया है और आज भी उससे बाज आना नहीं चाहते। बिहार काश्तकारी कानून की 20, 21 धाराओं के पढ़ने से, जो पहले से ही बनी हैं, साफ मालूम होता है कि किसी भी मौजे में लगातार 12 वर्ष तक जिसके परिवार में खेती होती रहे और वह खेती चाहे एक ही खेत में होती हो या अनेक खेतों में और चाहे हर साल वह खेत बदलते ही क्यों न रहते हों, वह किसान सेटल्ड (Settled) रैयत कहा जाता है और जो बकाश्त उसे जोतने को दी गई वह फौरन उसकी हो गई जिससे वह बेदखल किया नहीं जा सकता जब तक उसका लगान देता रहे। 99 फीसदी बकाश्त जमीनें ऐसी ही हैं और उन पर किसानों का मौसमी हक हो गया है। मगर जमींदार इस बात का कोई कागजी सबूत किसान के पास रहने नहीं देता और मौके पर इनकार कर देता है कि हमने वह जमीन किसान को नहीं दी है, हम स्वयं जोतते हैं ऐसा झूठा दावा करता है और जाल फरेब से उस जगह सफल भी हो जाता है। जब तक किसानों का पूरा संगठन न हो और अपने हक पर वे मरने-मिटने को तैयार न हो जाएँ यह बात बराबर होती ही रहेगी,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इसका दूसरा उपाय नहीं है। कानून कुछ नहीं कर सकता। वह भी तो धन और शक्ति का ही साथी है, उसी का मददगार है।

आज बकाश्त जमीन लौटाने के नाम पर जो समझौता कांग्रेस के नाम पर हुआ बताया जाता है उसका मतलब यदि पूर्वोक्त बकाश्त जमीनों के लौटाने से है तो उसमें सरासर धोखा है। क्योंकि वह जमीनें तो कानूनन किसानों की ही हैं। फिर उन्हें किसानों को लौटाने की क्या बात? और उन्हीं के लिए पुरानी डिक्री का आधा रुपया किसान क्यों देने लगे? यदि यह समझौता दूसरी बकाश्त जमीनों के बारे में है जो 1929 और 1936 के बीच नीलाम हुई हैं जो आठ या दस हजार या ज्यादा सालाना आमदनी वाले जमींदारों के पास हैं और जिन्हें उन्होंने ता. 22.3.38 तक किसी के साथ पक्का बन्दोबस्त नहीं किया है सो भी सिर्फ वही जमीनें जिन पर इज़ाफा हुआ था या जिनका अवली से नगदी हुई थी तो हमारा फिर भी यही कहना है कि इसमें भी वही धोखा है। एक तो थोड़े से ही बड़े जमींदारों की थोड़ी सी ऐसी जमीनें हैं जो भी उन्होंने प्रायः सभी को दूसरों के हाथ पहले ही बन्दोबस्त कर दिया है। फिर कानून बताने की जरूरत क्यों की ? इस दि-दोरे से क्या लाभ कि बकाश्त जमीन लौटाई जाएगी ? यदि कानून ही बनाना है तो ऐसा बनाइए कि सर्वे के बाद से लेकर आज तक छोटे-बड़े सभी जमींदारों ने बकाया लगान में जो जमीनें नीलाम इस्तीफा वैनामे के जरिए बकाश्त बना ली हैं सभी वापस मिल आएँ। नहीं तो रहने दीजिए।

चार काम करने होंगे

यही तो संक्षेप में किसानों के मुख्य-मुख्य तात्कालिक प्रश्न हैं और इन्हीं के साथ किसान मजदूर राज्य या असली राज्य का प्रश्न लगा हुआ है। यदि हम इनका हल करने में मुस्तैदी से लग जाएँ तो हमारी मुसीबतें भाग जाएँ और किसान सुखी हो जाएँ। मगर मुस्तैदी से लगने का अर्थ क्या है यह समझ लेना चाहिए। हमें इसके लिए किसान सभा का जबर्दस्त संगठन करना होगा। और गाँव से लेकर प्रान्त तक जोरदार किसान सभाओं का ताँता बना देना होगा। जो सोता है वह लुट जाता है और जगने वाले को लूटना आसान काम नहीं है। हमें अपने जागरण का सबूत देना होगा। मुर्दे को या तो जलाते या गाड़ देते हैं। हमारी भी हालत अब तक यही रही है। हमारे शत्रु हमें सदा जलाने और गाड़ने की कोशिश वंश-परम्परा से करते आए हैं—नहीं, नहीं उन्होंने हमें जलाया और गाड़ दिया है। फिर भी आश्चर्य है कि हम न जाने कैसे अब तक बचे हैं। असल में उन्हें हमारी जरूरत है। बिना हमारे उनका काम चल नहीं सकता। हमीं तो बासमती, गेहूँ, घी, दूध, मलाई उपजाते हैं और वे खाते हैं। हमीं तो उनकी शारीरिक सेवा, नौकर-चाकर के रूप में करते हैं यदि हम न रहें तो वे बिना मौत मर जाएँ। इसीलिए मरैं न मीताय के अनुसार हमें किसी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रकार उन्होंने जिन्दा रखा है।

लेकिन आखिर हमारा क्या फर्ज है क्या यों ही नारकीय जीवन बिताते रहें और मुर्दा बने रहें? नहीं हमें जिन्दा होने का सबूत देकर इस नारकीय जीवन को मिटाकर इसे सुखमय जीवन बनाना चाहिए। मगर इसके लिए रास्ता क्या है। जिनका स्वार्थ हमारे स्वार्थ से विपरीत है वे हमें कदापि करने न देंगे। वे पहले से ही काफी चतुर और संगठित हैं। अतएव सफलतापूर्वक उनका मुकाबला करने के लिए हमें चतुर और संगठित बनना पड़ेगा। दूसरा मार्ग है ही नहीं। यही है किसान सभा का रहस्य बिना इसके जमींदारों का मुकाबला कर नहीं सकते। हमें गोल-मोल बातों में न पड़ श्रेणीगत स्वार्थ (Class interest) के आधार पर अपना सुदृढ़ संगठन बनाना होगा। हमें मोर्चेबन्दी करनी होगी। इसके विपरीत जो बोले वह तो हमारा शत्रु होगा या शत्रुओं का दोस्त और मददगार। उसकी बात में भूलकर भी न पड़ना होगा। हमें व्रत लेना होगा कि किसान संगठन को सुदृढ़ बनाकर ही हम दम लेंगे। फिर सारी बाधाएँ विलीन हो जाएँगी। दृढ़ संकल्प और अध्यवसाय के सामने बाधाएँ टिक नहीं सकती हैं; पहाड़ भी पिघल जाते हैं, यही कर्मयोगियों का सनातन अनुभव है।

इस संगठन के दौरान हमें चार काम उठकर करने होंगे।

(1) किसान सभा के लाखों मेम्बर हर जिले में बनाने होंगे। कोशिश यह होगी कि हर बालिग मर्द और औरत किसान सभा के मेम्बर बन जाएँ। कम से कम हर थाने में 20-25 मेम्बर बनें और इस प्रकार किसान सभा का मेम्बरी का रजिस्टर पहाड़ा की तरह शत्रुओं का डरावना प्रतीत हो और वे ठंडे पड़ जाए। जो मेम्बर होंगे और एक आना पैसा साल में देंगे उन्हें समाज से ममता होगी, घनिष्ठता होगी जिससे सभा की ताकत बढ़ेगी।

(2) किसान सेवक दल कायम करना होगा। हर आने में ढाई सौ सुशिक्षित किसान सेवकों का दल बनना चाहिए जिनका काम हो कि गाँवों में चक्कर लगाते रहें और पहरा दें। उन्हें देखकर किसानों में हिम्मत होगी और दुश्मन दहल जाएँगे। सेवक दल के बिन किसान सभा का जोरदार काम बाकायदे चल नहीं सकता।

(3) किसान कोष का संग्रह करना होगा। आखिर इन किसान सेवकों को खिलाना-पिलाना और कपड़ा-लत्ता देना ही होगा। उनके रहने का प्रबन्ध भी करना होगा। घर में खाकर यह काम भाड़े पर कब तक चलेगा? किसान सभा का ऑफिस भी चलाना होगा ठिकाने से और यह बिना धन के हो नहीं सकता। इसलिए हर किसान का फर्ज है विवाह, श्राद्ध, उपनयन, खेत, खलिहान हर मौके पर इस कोष के लिए कुछ न कुछ निकाले और किसान सभा में दे।

(4) 'जनता' का घर-घर और गाँव-गाँव प्रचार करना होगा। बहुत सी पत्र-पत्रिकाएँ हैं और उनमें किसानों की बातें भी पाई जाती हैं। मगर 'जनता' किसानों की अपनी है। यह बेमुरव्वत होकर बेलाग किसानों की बातें लिखती और उनके लिए पग-पग

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पर युद्ध करती है इसीलिए इसका जन्म हुआ है। इसमें किसानों का दर्द है, उनकी आह है, उनकी चीख है, और सभी से ऋण पाने का मन्त्र और उपाय भी इसके पन्ने-पन्ने में है। अतएव हमें प्रण लेना चाहिए कि इसके लाखों ग्राहक बनाकर ही दम लेंगे और आप तथा दुनिया साश्चर्य नेत्रों से देखेगी कि आप कहाँ से कहाँ जा बढ़े आपकी मुसीबतें न जाने कहाँ भाग गईं।

श्रेणी युद्ध और खयाली खतरे

लेकिन यहाँ पर हमारे अनेक दोस्त चौंक पड़ते हैं और कहते हैं कि यह तो श्रेणी युद्ध की तैयारी हो रही है। जिसमें हिंसा ही हिंसा है। साथ ही किसान सभा में कांग्रेस का समानान्तर या मुकाबले की संस्था बन रही है या बन जाएगी और इस प्रकार आजादी की लड़ाई में बाधा होगी। लेकिन उन्हें समझ लेना चाहिए कि आजादी की सबसे ज्यादा जरूरत किसानों को ही है क्योंकि उनके लिए इस आजादी के साथ रोटी और कपड़े का—जीवन-मरण का प्रश्न लगा हुआ है। यह बात जमींदार और मालदार के साथ नहीं है। उनके लिए आजादी का प्रश्न या तो कौतूहल की चीज है या अपने शोषण को और भी पक्का और वैज्ञानिक बनाने का साधन है। फिर कोई भी किसान या उसका सच्चा हितैषी उस आजादी के संग्राम में बाधा पहुँचाने की बात सोचकर या काम करके अपने पाँव में कुल्हाड़ी क्यों मारेगा? यदि किसान सभा के कार्यकर्ता सच्चे किसान हितैषी नहीं हैं तो जो ऐसे हों वही यह काम क्यों नहीं चलाते? न तो स्वयं करना न दूसरे को करने देना यह तो बेजा बात है। रह गई श्रेणीयुद्ध की बात। हमें उसकी तैयारी क्या? वह तो सदा से जारी है। अन्तर यही है कि धनिक श्रेणी अब तक असहाय असंख्य कमाने वाली है पर निष्ठुर आक्रमण करती रही है और किसी ने चूँ तक नहीं की। पर ज्यों ही ये कमाने वाले उस आक्रमण को रोकने की तैयारी करने लगे कि श्रेणी युद्ध का बावेला मच गया। यह तो बेईमानी और पक्षपात है, ठीक ही है कि **'हम आह भी भरते हैं तो हो जाते हैं बदनाम। वह कत्ल भी करते हैं तो चर्चा नहीं होती।'** आखिर जमींदारों और पूँजीपतियों की संगठित लूट श्रेणीयुद्ध नहीं है तो है क्या? क्या यह गरीबों की पूजा प्रतिष्ठा है? श्रेणियों और उनके स्वार्थों को सुनकर भी श्रेणीयुद्ध से आँख मूँदना 'गुड़ खाकर गुलगुले से परहेज, करना है। हमारे देश या दुनिया में जमींदार किसान आदि श्रेणियों से कौन इनकार कर सकता है और उनके स्वार्थ परस्पर विरोधी हैं यह ठोस सत्य है। इजीफा हटे, लगान घटे, बाकी रद्द हो, बेगार जार जुल्म हटे तो किसान का हित है। मगर जमींदार छाती पीटता है और उसका स्वार्थ ही उलटा है। फिर तो विरोधी स्वार्थों का संघर्ष होगा ही और यही श्रेणी युद्ध या वर्ग युद्ध।

जमींदार और पूँजी मिटा दीजिए और यह युद्ध स्वयं खत्म हो जाएगा। लेकिन इन चीजों को रखके वर्ग युद्ध मिटाने की बात मनोराज्य मात्र है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हिंसा का भूत सर्वत्र देखनेवालों की बुद्धि पर हमें तरस आता है। जो लोग अहिंसा के बड़े पुजारी बने हैं क्या वे आत्मरक्षा के कानूनी और नैतिक हक को छोड़कर अपनी और अपनी जान-माल की रक्षा कर सकते हैं? यदि उनका पड़ोसी हमला करे और लूटपाट मचा दे तो क्या आत्मरक्षा में वे बल प्रयोग न करेंगे, कहना आसान है, करना असम्भव है। तो आखिर किसानों का संगठन क्या है? सिवाय दुश्मनों की संगठित हिंसा के विपरीत अपनी रक्षा की तैयारी के?

समानान्तर या मुकाबले की संस्था होने का भूत बराबर देखने से काम न चलेगा। किसने 1885 में सोचा था कि कांग्रेस साम्राज्यशाही से सफलतापूर्वक मिलेगी और इसका अन्त करने पर तुल जाएगी? भविष्यवक्ता बनना बड़ा खतरनाक काम है खासकर राजनीति में किसी बात का बार-बार याद दिलाना और उसी के आधार पर तानाजनी करना भी बुरा है। इसी तानाजनी ने रूस के किसानों और मजदूरों को बोल्शेविक बनाया, जबकि वे जानते तक न थे कि बोल्शेविक या बोल्शेविज़्म कौन चिड़िया है। समानान्तर होने के खतरे को रोकने का उपाय किसान सभा का विरोध नहीं है, किन्तु एक ओर कांग्रेस के तपे-तपाए सिपाही किसान सभा की बागडोर अपने हाथ में लें और दूसरी ओर किसानों की माँगों का बेखटके और बेमुरव्वत होके कांग्रेस समर्थन करे सक्रिय रूप से। यदि इतने पर भी मुकाबले का डर हो तब तो मानना ही पड़ेगा कि कुछ और कसर है। यदि सामूहिक रूप से कांग्रेस पके-पकाए कार्यकर्ता, किसान सभा में रह के भी यह बात रोक नहीं सकते तब तो मानना पड़ेगा कि यह अवश्यम्भावी और जरूरी चीज है और इसकी कोई दवा नहीं। बल्कि विरोध करने पर ही इसका ज्यादा खतरा है।

असल बात है कि इधर हम तो किसानों की पीड़ाओं को दूर तक पहुँचाने और सुनाने की कोशिश करते हैं और उधर राजनीतिक गुत्थियों की ओट में हमारी पुकार बन्द करने की कोशिश की जाती है और खतरे की यह बनावटी घंटी बताई जाती है। उधर राजनीति सूझती है, इधर प्राणों पर आ बनी है। 'इधर अठखेलियाँ सूझीं, हम बेजार बैठे हैं' मालूम होता है। हमारी किसानों की वेदनाओं की भनक उन तक नहीं है। नहीं तो ये दलीलें कभी न उठतीं। कालिक पेन (भीषण दर्द) जिसके पेट में हो वह तर्क दलीलें नहीं सुनता, किन्तु चीखता जाता है जब तक दर्द बन्द न हो। उसके लिए तो एक ही दलील है कि वह दर्द खत्म किया जाए। यदि उसकी आहोजारी से, चीख से आपके काम में बाधा पड़ती है, तो बला से, उसके प्राणों की भी तो बाजी उधर लगी है। वह तो अपने वश में भी नहीं, उस दर्द का बन्दी है। फिर आपकी क्यों सुनने लगा? आपका यह सुनाना भी किस अक्ल की बात है? खेद है कि आप उसकी स्थिति में नहीं? अतएव उसी की व्यथा को समझ नहीं सकते, अनुभव कर नहीं सकते। नहीं तो इस चीख पुकार की यों निन्दा भर्त्सना नहीं करते। यह तो वही बात हुई कि—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हम सुनाते हैं दर्दे दिल अपना
वे समझते हैं दिल्लगी दिल की

हमें इन बातों और तर्क दलीलों की परवाह न करके आगे बढ़ने के लिए कमर कस के विश्वास के साथ अग्रसर होना चाहिए। जिस सिपाही को अपने लक्ष्य की प्राप्ति में अटल विश्वास नहीं वह कदापि विजयी नहीं हो सकता। इस विश्वास में अपार शक्ति है। हम इस शक्ति के बल पर सीना खोल के डटे तो विजयी होंगे जरूर। शर्त यही है कि हम भी कवि के शब्दों में जपते रहें कि–

कह दे कोई धनवानों से
हम भी दुनिया में रहते हैं।
वे मौज करें हम घुल-घुल के
दिन-रात मुसीबत सहते हैं।।

इन्कलाब जिन्दाबाद

(1938)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

राजनीति और गाँधीवाद

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

राजनीति और गाँधीवाद

इतिहास इस बात का साक्षी है कि जनता का, कमानेवालों का, श्रमजीवियों का—किसानों और मजदूरों का शोषण और उत्पीड़न बहुत पुराने जमाने से चला आ रहा है। चाहे रामराज्य की बात लें या रावणराज्य की, धर्मराज्य या कंसराज्य की, यह बात कभी बन्द नहीं हुई। मुसलमानी राजत्वकाल को देखें या उससे पहले नजर डालें, यह चीज हमें बराबर मिलेगी।

भारत में ही नहीं, इसके बाहर भी सर्वत्र यही हाल रहा है। यह बात दूसरी है कि वह उत्पीड़न कभी बहुत प्रचंड और वीभत्स रहा हो और कभी जरा दबा-सा। यह तो शोषकों और शासकों की मनोवृत्तिमात्र का परिचायक है कि वे चतुर या काइयाँ थे या सीधे प्रहार करने वाले तथा लट्ठ मारनेवाले। लेकिन इतने से शोषण और उत्पीड़न के मूल रूप में कोई परिवर्तन नहीं हो गया। जब तक दूसरों की कमाई का उपभोग गैर लोग किसी भी प्रकार करते रहें, ऐसा करने की उन्हें न केवल स्वतन्त्रता ही हो, वरन् यह उनका अधिकार माना जाता हो और जब तक इसी सिद्धांत के आधार पर देश की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं धार्मिक व्यवस्था का निर्माण हो तब तक शोषण के खात्मे की बात भी कैसे उठ सकती है? राजा, महाराजा, सरदार, शासक, व्यवस्थापक, धर्माचार्य, पंडित, पुजारी, साधु, फकीर, औलिया, मौलवी, देवता, ईश्वर बनकर दूसरों की कमाई की हिस्सेदारी कुछ लोग भी करेंगे, तब तक शोषण रहेगा ही। यदि ये सब न भी दीख पड़े तो भी एतन्मूलक सामाजिक व्यवस्था के चलते यह बात जारी रहेगी ही। हमारी कमाई बिना हमारी स्वच्छन्द और विस्पष्ट सम्मति के कोई भी ले ले और उसे खर्च भी बिना हमारी वैसी राय के ही करे और इतने पर भी कहा जाए कि यह उत्पीड़न नहीं, शोषण नहीं, जुल्म नहीं तो यह सरासर अनर्गल बात होगी। कारण, शोषण की दूसरी परिभाषा है नहीं।

वास्तव में इसकी भ्रामक परिभाषा करके ही लोग स्वयं धोखे में पड़ते और दूसरों को भी डालते हैं। किसकी कमाई कितनी है और एक रोगी मनुष्य जब कतई काम न करके या बहुत थोड़ा करके औरों की अपेक्षा अधिक पदार्थ लेता है तो औरों की कमाई का अपहरण करता है या नहीं, इत्यादि प्रश्नों का निर्णय असाधारण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रूप से किया जाएगा। यह माना जाएगा कि स्वस्थावस्था में ही काम करके रुग्णावस्था में हर आदमी आवश्यक पदार्थों का अधिकारी है, और इससे वह दूसरों के श्रम का अपहारक नहीं। कारण, यह बात तो समाज में आगे-पीछे सभी पर लागू होती ही है। यह भी ठीक है कि काम की तौल सामर्थ्य के तराजू पर होती है। यही कारण है कि महाभारत वाले चार दिन के भूखे ब्राह्मण का पाव-भर सत्तू का, जो उसका सर्वस्व था, दान कर्ण के लाखों मन सोने के दान से कहीं बढ़ गया। अतएव स्थूल रीति से तो यही मानना होगा कि जितना हम कर सकते हों उतना ही ईमानदारी से करें और जितनी हमारी वास्तविक आवश्यकता हो उसकी पूर्ति नेकनीयती से करें तो हम शोषण और उत्पीड़न के अपराधी न होंगे।

ऐसी हालत में यह निर्विवाद है कि जनता का उत्पीड़न आज तक कभी बंद न हुआ, खत्म न हुआ। प्रत्युत अधिकांश श्रमजीवियों का अपहरण भीषण रूप से सदा होता रहा है। ऊँच-नीच, छोटे-बड़े आदि की परंपरागत व्यवस्था के प्रचलित रहने पर दूसरी बात हो भी नहीं सकती थी। 'ऊँच' का व्यावहारिक अर्थ ही है सबसे बड़ा हृदयहीन शोषक और 'नीच' का सबसे बड़ा शोषित। और यह भी निर्विवाद है कि इस शोषण का खात्मा ही राजनीति का निचोड़ और असली अर्थ जनता के लिए है।

अब प्रश्न यह है कि यह शोषण मिटा क्यों नहीं? इसको मिटा डालने की कोशिश अब तक क्यों न की गई? और अगर की गई तो उसमें सफलता क्यों न मिली? लोगों ने इस भयंकर शोषण को अब तक बर्दाश्त क्यों किया? कहने के लिए सत्युग और त्रेता की बातें की जाती हैं लेकिन आज कलयुग में इसे खत्म करने का जो भगीरथ प्रयत्न संसारव्यापी रूप में हो रहा है, वह उन युगों में क्यों न हुआ? इन प्रश्नों के उत्तर सभी लोग अपनी-अपनी अभिरुचि और योग्यता के अनुसार विभिन्न रूपों में देंगे, परन्तु उत्तर देने की चेष्टा करने के पूर्व देखना चाहिए कि किसी पदार्थ को मिटा देने के लिए जरूरी चीज क्या है? मिटा देने की शक्ति तो जनता में है; लेकिन उस प्रसुप्त एवं कार्याक्षम शक्ति को जाग्रत तथा कार्यशील बनाने के लिए कौन-सी बात नितान्त अपेक्षित है? असल में किसी चीज के मिटाने के दो अर्थ माने जाते हैं, एक तो उसे रूपान्तरित कर देना, दूसरे उसे उच्छिन्न या निर्मूल कर देना। दोनों के ही लिए विरोध में प्रचंड आन्दोलन और भारी संघर्ष अपेक्षित है। इसी से वह शक्ति जाग्रत और कार्यशील होती है। रूपान्तरित करने में यही संघर्ष कभी-कभी क्रान्ति का रूप धारण कर लेता है; लेकिन वह क्रान्ति या उसकी मनोवृत्ति चिरस्थायी और दृढ़ नहीं होती। वह अमिट प्रभाव के रूप में निरंतर कायम नहीं रहती, कुछ समय बाद विलीन हो जाती है।

लेकिन मटियामेट या उच्छिन्न करने के लिए तो एकमात्र क्रान्ति ही उपाय है—वह क्रान्ति जो अमर होकर बनी रहे और जब तक उच्छेद न हो जाए, उसका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रवाह जारी रहे। अमिट क्रान्ति की यह प्रचंड ज्वाला उसे मिटाकर छोड़ती है। फ्रांस आदि देशों में पहले प्रकार की क्रान्ति हुई। फलतः शोषण का पूर्वरूप बदल कर नया बन गया। परन्तु रूस में दूसरे प्रकार की अमर क्रान्ति ने उस शोषण के मिटाने का बीड़ा उठा लिया है। और जब तक अपना काम न कर ले वह मिटने वाली नहीं। बस, इसी प्रकार की अमर क्रान्ति उत्पीड़न का उच्छेद करती है और इसे लाने के लिए शोषण या इसे जन्म देने वाली व्यवस्था के प्रति हमें तीव्र रोष और ज्वलन्त असन्तोष होना नितान्त आवश्यक है—ऐसा असन्तोष, जो काम किए बिना मिट न सके और जो बराबर धक्-धक् प्रज्वलित रहे। यदि आज हम ब्रिटिश राज्य को भारत से मिटा देने पर तुले हैं तो केवल इसलिए कि हमें उसके प्रति भयंकर और अमिट असन्तोष है। इसी में संघर्ष के जरिए इनमें वह शक्ति जाग्रत की है, या नहीं ऐसा कर रहा है जिससे क्रान्ति हो और वर्तमान व्यवस्था टूटे। यदि हमारा यही प्रचंड असन्तोष शोषण के प्रति न रहा, तो विदेशी शोषण और शासन मिटाकर उसका स्थान स्वदेशी शोषण और शासन ले लेगा और व्यवहारतः श्रमजीवी जनता जहाँ की तहाँ ही रह जाएगी, जैसी की तैसी ही रह जाएगी। इसी प्रकार यदि यही असन्तोष आज से पूर्व इस सनातन शोषण और उत्पीड़न के प्रति जनता में उत्पन्न हुआ होता तो यह शोषण कभी का मिट गया होता।

खेद तो यही है कि आज भी सामूहिक रूप से हमारा—जनता का—घोर असन्तोष इस विदेशी शासन के प्रति जितना है उतना शोषण के प्रति नहीं है। हम यह समझते ही नहीं कि यदि यह शासन बुरा है तो इसीलिए कि वह हमारा भयंकर शोषण करता है। फलतः वास्तव में यह शोषण ही बुरा है, फिर चाहे स्वदेशी हो या विदेशी। जब इस समय यह दशा है तो पूर्व का कहना ही क्या? हमने इस असन्तोष को वैसा नहीं बनाया तो विदेशी शासन के हटने पर भी अमेरिका आदि की तरह जनता का शोषण जारी ही रहेगा। खेद तो यह है कि यदि असन्तोष की यह भावना जनता में भरने की कोशिश की जाती है तो हिंसावाद की दोहाई देकर बड़ा बावेला मचाया जाता है। हमें पता ही नहीं चलता कि हमारा लक्ष्य अहिंसा है या शोषण का खात्मा। हम यह भी समझने में असमर्थ हैं कि शोषण विदेशी ही हुआ करता है, स्वदेशी नहीं। और अगर दूसरों की कमाई पर मौज मारने वाले ही शोषण करते हैं तो फिर इसी श्रेणी में आनेवाले स्वदेशी सेठ-साहूकारों, पूँजीपतियों तथा जमींदारों से शोषितों की मैत्री कैसी? मेल कैसा? इसकी बात या चर्चा भी कैसी? यदि इनका शोषण इस मेल से ही मिट सकता है तो फिर अंग्रेजों का क्यों न मिटेगा कि उनके साथ हम लड़ाई करें? शोषण की प्रणाली तो जैसी उनकी, वैसी इनकी—जैसी स्वदेशी, वैसी विदेशी।

अब देखना यह है कि जनता में क्रान्ति का भाव पैदा करनेवाला यह ज्वलंत असन्तोष शोषण के प्रति पहले क्यों न हुआ? आज भी उसके होने में क्या बाधाएँ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हैं और रूस में वह क्यों हुआ ? हमारे विचार से तो इसका एक ही कारण है, और वह है धर्म का प्रभाव। यों तो कहा जाता है कि धर्म की खोज और उसकी उत्पत्ति आत्मा की भूख की शान्ति के लिए ही हुई। प्रारंभ में जब इसका इतना विस्तार न था तब चाहे यह बात रही भी हो, और आज भी अपवाद स्वरूप कुछ गिने-चुने लोगों के लिए वह सच हो सकती हैं। फिर भी सामूहिक रूप से जो उसका विस्तृत प्रचार आज हो गया है, या पहले भी हुआ था और जो उसका व्यावहारिक रूप तथा प्रयोग हमें देखने को मिला और मिल रहा है, वह तो यही बताता है कि जनसाधारण के असन्तोष को, जिसका सनातन शोषण के प्रति समय-समय पर होना स्वाभाविक है, कुंठित और ठंडा करने के ही लिए सार्वजनिक रूप में उसकी सृष्टि हुई है। इसका तो काम ही है शोषण को पूर्ववत् जारी ही नहीं रखना, प्रत्युत उसका प्रसार करना।

'मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद् यतति सिद्धये, यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः'—गीता के इस वचन से तो सिद्ध हो जाता है कि धर्म की बात जो अध्यात्मवाद या आत्मा की बुभुक्षा की शान्ति के लिए मानी गई है वह लाखों में एकाध के लिए, यानी अपवाद-स्वरूप है, नियम रूप नहीं है। धर्म का नियमित रूप से प्रसार के लिए है इसीलिए उसने असन्तोष को मिट्टी में मिलाने की भरपूर कोशिश की है। आखिर जिसे आत्मा के लिए इतना आवश्यक माना गया, वह अनायास सार्वजनिक क्यों हो गया? क्यों ऐसा बना दिया गया? सर्वसाधारण तो आत्मा को समझते ही नहीं, फिर उसकी भूख को वे क्या समझें? मोती, हीरे जैसा अमूल्य एवं जनसाधारण की पहुँच के बाहर की वस्तु जो यह अध्यात्मवाद या ईश्वर है वह कुंजड़े या पंसारी की दुकान पर क्यों बिकने लगा और जनसाधारण उसके ग्राहक क्यों बनाए गए?

धर्म की तो यह प्रवृत्ति है कि वह झट सार्वजनिक और व्यापक बन जाता है, उससे तो उसकी 'भेड़ी-मुंडन' वाली प्रवृत्ति का पता लगता है। जनसाधारण को धर्म के नाम पर जो ही सिखाया जाता है, वह उसे ही मानने लगते हैं। लौकिक या व्यावहारिक बातों के जरिए उन्हें इस प्रकार मूँडा नहीं जा सकता। यम-नियम धर्म के स्तम्भ माने जाते हैं और इनमें सन्तोष का स्थान प्रमुख है और सत्य और अहिंसा का भी। होता यह है कि बार-बार सन्तोष की बूटी पिलाकर जनता के बढ़ते हुए असन्तोष को खत्म कर दिया जाता है। पूर्वजन्म की कमाई, ईश्वर की मर्जी, प्रारब्ध और तकदीर की बात—ये सभी चीजें बाल्यावस्था से ही और वेश, परम्परा से भी जनता की नाड़ियों में, दिल-दिमाग में भर दी जाती हैं। फिर असन्तोष की अग्नि भड़के तो कैसे? वह शोषण को मिटा देने को बेचैन और बावली हो तो कैसे? तकदीर में लिखा होगा तो हो ही जाएगा, नहीं तो लाख करो कुछ न होगा—यह मंत्र सारी आशाओं पर पानी फेर देता है और संघर्ष का मौका आने ही नहीं देता।

---

*गीता-7/4—सम्पादक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देवताओं तथा सन्तजनों के आशीर्वाद से ही सबकुछ होगा—यह मनोवृत्ति बगावत का माद्दा पैदा होने ही नहीं देती। जब हम मानते हैं कि शोषक वर्ग अपने कर्मों का फल भोग रहा है और हम भी वही भोग रहे हैं तो फिर उसके प्रति असन्तोष कैसे हो? कहाँ से हो? जनता को बताया जाता है कि यह वर्तमान सामाजिक व्यवस्था कर्मों के अनुसार ही है, अतएव सच्ची है, इसके विपरीत चलना या इसे मिटाना पाप है, हिंसा है, असत्य है तो फिर वह क्या करे? और शोषक लोग तो दिन-रात सत्य एवं अहिंसा का गला घोंटते ही रहते हैं। उसकी इस हरकत के लिए एक ढाल धर्म ने ही निकाली है और बतलाया है कि राजनीति में यह बातें पाप नहीं, बुरी नहीं। हुआ तो पीछे से कुछ दान-पुण्य करवा दिया! बस, चलो छुट्टी। गरीब के लिए एक तो राजनीति है ही नहीं, दूसरे पैसा उसके पास कहाँ कि दान-पुण्य करे? चाहे और बातों में भले ही मतभेद हो, लेकिन इन सभी पूर्वोक्त बातों में सभी धर्म एकमत हैं, यह महान आश्चर्य है और इससे एकमात्र निष्पत्ति यह निकलती है कि धर्म का काम ही है जनता की क्रान्ति को रोक देना, सांसारिक बातों में भाग्य या ईश्वर जैसे पदार्थों को ला देना और परिस्थिति को और भी जटिल बना देना। दृश्य वस्तुओं को अदृश्य क्रोड़ में डालना न केवल रहस्यमय है, किन्तु बुद्धिभेद उत्पन्न करके जनता को जानबूझ कर किंकर्तव्यविमूढ़ बना देने का अपराधी बनना है।

(2)

राजनीति में गाँधीवाद का आधार वही धर्म है। इसीलिए हम इसके विरोधी हैं। अध्यात्म या पारलौकिक प्रश्नों में यदि उस बात को स्थान मिले तो हमें कुछ कहना नहीं है लेकिन राजनीति में उससे खतरा है। गाँधीवाद के मुख्य स्तम्भ तो यम-नियम ही हैं और यह पहले ही बताया जा चुका है कि यम-नियम, सन्तोष आदि ऐसे पदार्थ हैं जो क्रान्ति की अग्नि को सुलगने नहीं दे सकते। उनमें अपरिग्रह भी एक चीज है जिसके मानने का सीधा अर्थ है कि हम सम्पत्ति से अपने को विमुख कर लें और उसे नाचीज समझें। यदि हमें अपनी दशा से सन्तोष हो और सम्पत्ति रखना पाप हो तो फिर शोषण से मुक्ति पाने का क्या प्रश्न है? इसकी जरूरत क्या? इन संतोष, अपरिग्रह आदि को धार्मिक बुद्धि से मानने का तो मतलब यही होता है कि हम इन्हें छोड़ नहीं सकते, चाहे जो हो। कारण, व्यासजी कहते हैं कि 'न जातु कामान्न भयान्न लोभाद् धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः'—धर्म को किसी पदार्थ के लिए, यहाँ तक कि प्राणों के लिए भी न छोड़ो। ये बातें यदि नीति के लिए होतीं तो और बात थी क्योंकि नीति का तो त्याग हो सकता है, लेकिन गाँधीवाद तो इन्हें सिद्धान्त के रूप में मानता है। फलतः इनका त्याग असम्भव है और इस त्याग के बिना ज्वलन्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

असन्तोष होगा कहाँ जिससे शोषण के विरुद्ध जेहाद बोला जा सके? यही नहीं, गाँधी जी तो स्पष्ट कहते हैं कि हिंसा और असत्य द्वारा स्वराज्य मिलने पर वे उसे त्याग देंगे—ऐसा स्वराज्य वे नहीं चाहते। इसका तो सीधा अर्थ है कि उनका मुख्य ध्येय अहिंसा और सत्य है, स्वराज्य तो उसके बाद की चीज है। लेकिन जनता के लिए तो स्वराज्य ही वास्तविक ध्येय है, वह अहिंसा और सत्य की फिक्र नहीं करते। फलस्वरूप जनता और गाँधीजी स्वराज्य के मामले में भी हो विपरीत मार्गावलम्बी हैं। ऐसी हालत में गाँधीवाद को राजनीति में प्रश्रय देने का सीधा अर्थ होगा कि जनता भी सत्य और अहिंसा को ही अपना चरम लक्ष्य बनाए परन्तु यह तो असम्भव है। राष्ट्रीय महासभा ने भी इन दोनों को केवल नीति के स्वरूप में ही स्वीकार किया है। गाँधीवाद के द्वारा इस बात को बदलने की कोशिश असम्भव को सम्भव करने की ही कोशिश मानी जाएगी। यदि हम किसी भी प्रकार अपने लक्ष्य तक पहुँच जाएँ तो केवल इसलिए वहाँ से लौटने का यत्न न करेंगे कि जाने का सस्ता अमुक के स्थान पर अमुक था। यह तो साधन को साध्य और साध्य को साधन मान लेने की भारी भूल होगी। मार्ग तो आखिर साधन ही है न! भूख में भात मिला तो खाएँगे, न कि कहाँ से, कैसे मिला, यह देखने को रुकेंगे।

एक और भी आपत्ति गाँधीवाद के राजनीतिक प्रयोग में है। यह वाद तो आदर्शवाद है, Idealistic है, इसमें व्यावहारिकता पर मुख्य दृष्टि नहीं। आदर्शवाद का तो मतलब ही है कि व्यावहारिक दृष्टि से दिक्कतों का खयाल करके हम किसी ध्येय से हट न जाएँ प्रत्युत उसके लिए सदा बद्धपरिकर रहें। इस पक्ष में तो सर्वथा अव्यावहारिक वस्तु को ही लक्ष्य मानकर प्रयत्न किया जाता है क्योंकि जो पदार्थ जनता के लिए व्यावहारिक हो जाए वह आदर्श हो नहीं सकता। आदर्श तो ध्रुवतारा है जो पथ-प्रदर्शन भले ही करे, परन्तु उस तक जनसाधारण के लिए पहुँचना असम्भव हो। तर्क और युक्ति से हमने उसे जाँच लिया, बस इतना ही काफी है। व्यावहारिकता की कसौटी पर उसका कसा जाना जरूरी नहीं। लेकिन यह आदर्शवाद राजनीति में ठीक नहीं। राजनीति में तो व्यावहारिक बातों के ही बल से हम चल सकते और कायम रह सकते हैं, न कि आदर्शों के बल से। राजनीति का निचोड़ है शोषण का सर्वात्मना अन्त हो जाना, जिसका मोटा अर्थ है अन्न और वस्त्रादि का प्राचुर्य, जिससे किसी को भी जीवनोपयोगी पदार्थों की कमी न हो। यह नितान्त व्यावहारिक चीज है। भूखे को यदि भात मिल जाए या नंगे को वस्त्र तो वह यह न देखेगा कि वह सत्य और अहिंसा के द्वारा मिला या अन्य प्रकार से। वह तो आँखें मूँद कर उस पदार्थ का उपयोग करेगा। हाँ, यदि धार्मिक संसार में यह आदर्शवाद चले तो बात ही दूसरी है। वह तो संसार ही आदर्शवाद का है। वहाँ तो कोई बाहरी या व्यावहारिक दुनिया है नहीं कि दिक्कतें हों। वहाँ यदि आदर्श के पीछे चले जा रहे हैं और देर भी होती है तो कोई चिन्ता नहीं, कभी तो लक्ष्य-प्राप्ति होगी ही। लेकिन भूखे या

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बीमार के साथ यह प्रश्न नहीं, उसे तो भोजन और औषधि फौरन से पेशतर चाहिए। देर हो जाने पर तो मौत ही हो जाएगी। अतः विलम्ब बर्दाश्त नहीं किया जा सकता। धार्मिक दृष्टि से गाय या मस्जिद को खामख्वाह बचा लेना जरूरी नहीं। यदि बचाने में हम मर गए तो यही पर्याप्त है, भले ही वे दोनों बचें या खत्म हों। यही आदर्शवाद की महिमा है। इसीलिए तात्कालिक सफलता वहाँ जरूरी नहीं है। लेकिन राजनीति में तो ठीक उलटी बात है। वहाँ तो शीघ्र से शीघ्र सफलता मिल जाना ही जरूरी है—स्थूल सफलता की ही प्राप्ति अपेक्षित है। रोटी के लिए तो शुद्ध मन से यत्न करना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि उसे प्राप्त कर लेना भी; परन्तु धार्मिक बातों में शुद्ध विचार से काम कर लेना ही अलम् माना जाता है। इसीलिए राजनीति में आदर्शवाद की गुंजाइश नहीं; प्रत्युत इसकी खिचड़ी से उसकी हानि होती है, वह चौपट हो जाती है। चाहे जैसे हो, लक्ष्य-सिद्धि के लिए दृढ़ संकल्प तथा तन्मूलक अध्यवसाय इस आदर्शवाद में नहीं रह जाता जो राजनीतिक सफलता के लिए नितान्त अपेक्षित है।

एक और भी आपत्ति की जा सकती है। राजनीतिक युद्ध राष्ट्र के जीवन-मरण का युद्ध है। यह कोई निश्चिन्तता की बात नहीं कि आज नहीं तो कल सफलता होगी, इसमें हानि नहीं। धर्म के बारे में तो गीता कहती है कि न तो इसमें अपूर्णता की बात है और न बाधा की गुंजाइश है। इस धर्म का थोड़ा भी आचरण महान भय से मुक्ति दिलाता है—'नेहाभिक्रम नाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते, स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्' (गीता 2/40)। और यही गीता का धर्म गाँधीवाद की मूल भित्ति है। परन्तु राजनीति में तो अवस्था ठीक इसके विपरीत है। यहाँ तो अपूर्णता है, सहस्रों बाधाएँ हैं, और थोड़े से काम तो चलता नहीं, प्रत्युत हानि हो जाती है। ऐसी दशा में इस युद्ध को अत्यन्त सतर्कता के साथ चलाना चाहिए और अपूर्णता बाधाओं तथा छिटपुट कामों का जितना ही कम अवसर मिलता हो उतना ही ठीक समझ वैसा ही उद्योग, वैसा ही समारम्भ करना चाहिए। इसका निष्कर्ष यह है कि इस स्वतन्त्रता-संग्राम में ज्यादा से ज्यादा सैनिक सम्मिलित हों। वे अधिक से अधिक कुशल और तत्पर हों और अपने अस्त्र-शस्त्र के प्रयोग की उन्हें पूरी जानकारी हो। परन्तु यह बात गाँधीवाद के अनुसार असम्भव है क्योंकि इस मत में तो प्रत्येक युद्ध में हमारा असली अस्त्र सत्य और अहिंसा है। क्षण-क्षण में और तिल-तिल पर जिस प्रकार अस्त्र-शस्त्र की आवश्यकता और मुद्दों में होती है, ठीक उसी प्रकार गाँधीवाद में सत्य और अहिंसा की जरूरत है। इन दोनों में गड़बड़ी हुई कि जीती-जिताई लड़ाई में भी हम हारे। लेकिन भारी कठिनाई तो इसमें यही है कि सैन्य-संचाल के सिवाय कोई भी इस अस्त्र-शस्त्र का पक्का जानकार नहीं, इसका प्रयोग अत्यर्थ रूप में करना जानता नहीं, तो फिर इन अस्त्र-शस्त्रों के पूर्ण ज्ञाता प्रचुर सैनिक मिलेंगे कहाँ से? वे तैयार किए जाएँगे कैसे? कितनी चिन्ता की बात है कि सैनिक तो तैयार हैं, लेकिन अस्त्र-शस्त्र तो चलाना जानते नहीं हैं, जिससे या तो पग-पग पर सेनानायक के पास

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जाकर उन्हें पूछना पड़ता है और इतने पर भी चलने की भूल करते हैं और फटकार सुनते हैं, या फिर किंकर्तव्यविमूढ़ होकर उन्हें बैठ जाना पड़ता है और हार होती है। दूसरी ओर शत्रु इतना प्रबल और कुशल है कि वह तो असत्य और हिंसा को अपना प्रधान अस्त्र बनाता है और अपना काम सँभालता है। यदि कहनेवाले कहें कि आज तक तो हम बराबर जीत ही रहे हैं, फिर अस्त्र-शस्त्र की अनभिज्ञता की चर्चा कैसी? तो हमारा यही निवेदन है कि अब तक का युद्ध गाँधीवाद के आधार पर नहीं चला है, अब तक हमने सत्य और अहिंसा को नीति मात्र मानकर काम किया है, न कि ध्येय मानकर। कारण, गाँधीवाद को कांग्रेस या हमारी राजनीति ने अभी तक अपनाया नहीं है। फिर रह-रहकर कठिनाइयाँ आती गई हैं, लेकिन जब हम इसे अपनी राजनीति का मूलाधार मान लेंगे, जिसकी कोशिश बराबर हो रही है तो परिणाम यही होगा कि हमको स्वतन्त्रता-संग्राम के सैनिक के रूप में इस सत्य और अहिंसा को मूल ध्येय मान लेना पड़ेगा, और हमारे लिए मन, वचन तथा कर्म इन तीनों के द्वारा इन दोनों का पालन करना बाध्यतामूलक होगा जो सर्वथा असम्भव है। जब इस बात का दावा अभी तक इसके आचार्य गाँधीजी भी नहीं करते तो औरों का तो कहना ही क्या?

दुःख की बात है कि जब हम राजनीतिक मामलों में गाँधीवाद के प्रसार की बातें और चेष्टाएँ करते हैं तो यह बात भूल जाते हैं कि यह चीजें सार्वजनिक रूप से अव्यावहारिक है और ऐसी बातों के लिए आदर्शवादमूलक धार्मिक संसार में ही स्थान होना चाहिए। नीति और ध्येय में जमीन-आसमान का अन्तर होता है। मौके पर नीति को हम छोड़ सकते हैं, परन्तु ध्येय को नहीं छोड़ सकते। ऐसी दशा में गाँधीवाद की ओट में हमारी राजनीति में सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, सन्तोष आदि को ध्येय की तरह प्रविष्ट करना न केवल अवांछनीय है, प्रत्युत हानिकर भी है और हमारे इस युद्ध को कुंठित तथा बन्द कर देने वाला है। केवल आवेश में न आकर हमें इस खतरे की ओर ध्यान रखते हुए कोई भी प्रयास इस दिशा में करना चाहिए।

(*विशाल भारत*, गाँधी अंक, अक्तूबर 1938)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परिशिष्ट

- **The Other Side of the Shield**
- **The Rent Reduction in Bihar : How it Works**
  (An exposure of the Govt. Claim

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

Note : On account of active initiative taken by Sardar Patel and Dr. Rajendra Prasad at the behest of Gandhi with his full backing Rahul, Karyananda and Yadunandan Sharma were put in prison. On Nehru Intervention Rahul was freed. Rajendra Prasad of kisan benefit. This pamphelet is an exposure of his claim.

Editor
6.11.2002

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

FOREWORD

Some months ago there appeared some articles in a paper from the pen of a gentleman intimately connected with the beadqua a series of editorials in the Bihar Provincial Congress Committee. Then came a series of editorial in the English organ of the Provincial Congress . Both these claimed that the Ministry had substantially fulfilled the agrarian programme adopted at Faizpur and thus redeemed the Congress pledge to the Kisans at the time of the last assembly elections. As it was done after the repeated exposure in their naked forms by the Bihar Provincial Kisan Sabha of the reforms introduced by the Ministry in the Tenancy Law of the province, it astonished us no doubt but we could not guess then that it was a serious preparation of the ground to put forward authoritvely and definitely this very claim on behalf of the Congress Ministry in Bihar, as no serious person could even think of it and as there was advanced, time and again the plea that owing to the inherent defect of the Government of India Act the hands of the Ministry were practically tied up so far as any serios effective refors were concemod. Hence, they were awfully handicapped at every step. But now this eleborate statement of Babu Rajendra Prasad advancing that very claim and extolling the Ministry for their marvellous gans for the Kisans has set the matter at rest and forced me to analyee and scrutinise very minutely the ministerial measures for the Kisans and the statement of Rajendra Babu in the light of the hard facts and the Faizpur resolution.

I offer my sincere apology to the public for the unusual delay in preparing this analysis. When Rajendra Babu issued his statement I was busy with my tour programme far away in the U.P. and was also indisposed for some days. Even after that my preoccupation with other work has stood in my way to complete it. But even now its utility remains the same. With these lines I introduce it to the reader.

The Faizpur Agrarian Programme is also appended at the end.

Bihta (Patna)
8/12/38

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

It is my painful duty to examine critically and minutely the lengthy statement issued by Babu Rajendra Prasad in connection with what the Bihar Ministry has done for the Kisans. Some of my friends have already examined this statement in their own way and brought the true picture before the public thus, making my work somewhat lighter and easier. There are yet certain things in it which require close scrutiny if we are to ascertain the real state of affairs and I shall confine myself to these alone.

At the very outset I am constrained to admit that there are a number of so-called achievements of the Ministry counted in the statement which are far from the facts and how they have been inserted in such a responsible statement I am at a loss to understand. I summarise some of them below.

While discussing the 11th item of the Faizpur programme he says," (2) Nor can his (tenant's) movable property be sold without his consent." But the law as amended by the Ministry runs, "158AA. "A decree for arrear of rent may be executed by the attachment and sale of the property of the judgement debtor, both movable and immovable. Provided that the movable property of the judgement debtor shall not, without his consent in writing, be so attached or *sold unless the decree can not be satisfied by the attachment and sale of the holding for the arrears of the rent of which the decree was passed."* The italicised portion clearly shows that his claim is fallacious.

Then futher it is claimed, "The house of tenant and other buildings with sites and materials and land immediately appurtenant thereto have now also been made exempt from sale in the execution of a decree for arrlears of rent." But now the section (177 A) inserted in the Act in this connection has a proviso to the contrary which runs thus: "Provided that any such house and other buildings with the materials and sites thereof and and the lands immediately appurtenant thereto and necessary for their enjoyment may be sold in executioin of a decree for arrears of rent due in respect of the site of such houses or buildings," and knocks down the claim.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

While trying to defend the utterly indefensible cases of the Ministry regarding the most obnoxious and fatal provisions for destraint he just like a shrewd lawyer quietly argues. "Lastly it is open to landlord, as has been the case always at least since 1885 when the first Tenancy Act was passed. To destrain his tenants crop under certain conditons. The only difference between the law relating to deestraint as it has existed and as now amended is, that a civil court instead of destraining the crop through its own agency after passing orders, *may refer it to a revenue court to carry out the destraint."* I will say more about this so called "only difference in the law". Later on while exposing its fatal character. But here I want the reader to mark the italicised porhon" may refer it" and compare it with the relevent part of the Law enacted by the Ministry regarding it. It is "124 (1). If an application is admitted under the last forgoing section and an order for destraining any produce is made, the court shall send a copy of the order containing the prescribed particulars to the Collector for execution." Thus it is clear that it to binding on the civil court to send the destraint order to the revenece court and herein lies the danger which will be explained here. It does not depend up on the sweet will of the court to send it or not as Rajendra Babu apparently want the poblic to believe by saving may refer it."

Just after the sentences cited above the statement proceeds. "It will thus appear that a landlord his been given less rights for realising rent than any other creditors for realising his dues from a debtor. If it is so, how is it that the Advocate General on behalf of the Ministry openly declared in the last meeting of the B.P.C.C. that the right of destraint was the only concession that the Ministry granted to the Zamindars for a lot of them the Zamindars were made to grant to the Kisans? And if they have been given less rights in this connection even after this terrible right of destraint why not grant this very right to creditors also? Will the Mininstry dare do it? Creditors will remain ever grateful to the Congress Government only if they get this right instead of others. And even if we admit that they have been given less rights, the real question is whether they have or have not been given more rights in this connection that they formerly possessed. If the former, then certainly the Ministry is to blame, and if the litter, why when did they amend the destraint clauses and not allowed the old ones to remain intact?

Now again while discussing the case of a habitual defaulter under this very 11th item the statement goes on thus, "In case how, ever

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

a man is proved to be a habitual defaulter, that is to say, a person, who without any excuse has failed to pay his rent for four consecutive years, and the landlord obtains a declaration from the court in a subsequent suit for subsequent arrears that he is a habitual defaulter, then such portion of his holding as may be still in his possession, or his whole holding may be sold in execution of the decree." From this the people may be inclined naturally to infer that the entire holding of only such Kisans may be sold in rent decrees who do not pay rent at least for more than four consecutive years, while only a portion of others may be sold, who are not such wilful or habitual defaulters. But in doing so has actually, I won't say wilfully, passed silenly over. The real sting in the legislation to be found in the sub-clause (2) of the section 148 AA whose sub-clause (1) alone he has touched. The sub-clause (2) runs as follows. "If in any suit for the recovery of arrears of rent of a holding it is proved that previous to the institution of such suit, the landlord had obtained one or more than one decree for arrears of rent in respect of the said holding against the rayat for four years, whether consective or not....the court may, not-with-standing any thing to the contary contained in subsection (1) hold the rayat to be habitual defaulter." From this it is evident that in the long run no Kisans will be exempt from being declared habitual defaulters on one pretext or the other and their entire holdings are bound to be snatched away by the Zamindars even in nominal decrees in rent suits and thus they will be ruined.

Then comes the 12th item in the statement. It says, "The bving wage to agricultural labourers should be assured. Enquiry is being made to ascertain the prevailing rate of wages in different distincts with a view to prescribe a minimum standard wage and report is awaited." First of all, this item in the Faizpur resolution does not relate to the wage alone. It also refers to the "suitable working conditions for agricultural labourers." Thus according to Rajendra Babu himself half of this item has not even been taken note of by the Ministry. Then about the enquiry. Will Babu Rajendra Prasad enlighten us by refering to the rosolution either of the legislature on the Ministry in accordance with which this enquiry is being conducted? Will he further let us know the personal of the committee for this enquiry and its terms of reference? Question is that some Congress members of the assembly moved two resolutions realting to the Khet Mazdoors or agricultural labourers. But one of them was withdrawn while the other was amended in such a way as to eliminate entirely even the mention of these laboures

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

from it. It was moved on 3/9/37 and runs thus, "This assembly recomends to government that with a view to fixing a living minimum wage for all manual labourers in the province, whether working in industrial concerns, factories, or agricultural pursuits a committee be formed.....to investigate into the question and report thereon, suggesting such legislative measures as will be necessary for implementing this resolution." But it was amended in fact by and was accepted on behalf of, the government, crippling it awfully and rendering thus. "This assembly recommends to the government that a committee of the members of this House and outside experts be appointed by the Premier to investigate into the conditions of the industrial labour in Bihar and make recommendations on the same within six months." It is clear from the amended resolution and especially from the entire debate on it that there is no question of minimum wages even for the industrial labourers, let along the agricultural, and there is no enquiry going on in connection with the agricultural workers. No mention of it has been made in the press uptil now and certainly it is not strictly a private houses in the sense that it does not require it is not strictly a publicity.

Let me refer now to the 2nd and the 10th items. As regards the former the statement admits. "Nothing has been done in this connection". So far so good. But when it proceeds further and says. "It requires detailed investigation regarding the size of holdings, costs of cultivation, etc, the difficulty of such investigation can be well gauged when it is remembered that the number of holdings exceeds lacs in each district," it creates an impression on the mind of the reader that although the government are enquiring into the matter in order to take action the result is bound to be delayed owing to the vastness of it. But this really is not the case. The Ministry is not only making or even proposes to make any enquiry into it, but it rather thinks that the question of investigating uneconomic holdings and common pastures is a totally impossible task, and I say this with my personal knowledge of it. But the pleading of Rajendra Babu reminds me forcibly of a similar instance. Formerly whenever the question of rent reduction under section 112 B.T.Act was raised in the then council or outside this same bogey of lacs of holdings was raised. The fact of the matter is that they think that the strangement of the Zamindars is invariably involved in this apparently innocent question of exempting uneconomic holdings from rent, as most of the present holdings in Bihar are bound to prove ultimately uneconomic, and as they are not prepared to incur

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

the mighty wrath of the Zamindars, hence this elaborate plea of the countless holdings. The Congress Zamindar pact stands insurmountably in their way to boot.

The question of common pasture land, etc, too, refferred to in the 10th item hits ultimately the Zamindars. Hence the avoidence of it. I make bold to say, there is no district in Bihar where, "There is hardly any land of which the tenants may not got tenancy rights," and where in thousands of villages at least there are ample lands either fallow, or in Khas possession of the Zamindars and these can easily be used for common pastures. Why not take them for the purpose to begin with? The additonal trouble in this connetion is being created by the Zamindars who are fast appropriating even these fallow and Gharmazarua Am (Common fallow) lands including tanks, paths and burning grounds for dead bodies, and setting them with tenants of their choice for cultivation. Even the pucca Congressmen have not lagged behind in the matter. They are even barring and blocking the passages for cattle from and to the villages and even in the jungle areas the Kisans are being put to great hardships in this respect. What has the Ministry done to relieve their hardships? Moreover, there are lacs of landless people in each district and their only source of livelihood besides occasional employment per chance, is the keeping of goats and milch and other cattle. But in the circumstances narrated above they are becoming helpless and being gradually driven to starvation. Is the saving of these lacs and lacs from clutches of untimely death by providing for common pastures more necessary and valuable, or the occasional exemption of the extremely limited few from imprisonment in the execution of rent-decrees for which so much fuss is made in the statement and elsewhere? They will be better within the prison walls is their present circumstances of penury and the Zamindars shall feed them. Thus the density of population mentioned in the statement urgently calls for it. The 10th item clearly lays down, "The rights of the people in tanks, wells, ponds, forests and like should be recognised and no encroachment upon these rights should be permitted." Will Babu Rajendra Prasad say if the Ministry has done either of these two? Has it checked the ever-increasing encroachment upon these? Old and silted up ponds. Ahars and tanks are being converted into fields by the Zamindars and the Ministry does not deem its duty to raise even its little finger over it, with the result that not only there becomes gradual dearth of water supply for men and cattle, but also for irrigation.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

Let us now turn to the 4th item reducing substantially the canal rates. The Faizpur resolution lays down clearly that the canal and other irrigation rates should be substantially lowered.But Rajendra Babu after omitting. I dare not say wilfully, the adjective "substantially" goes on merrily. "A reduction of two lacs has been given this year." From this one may be apt to infer that a great concession has been granted to the Kisans, because he has been kept in dark, even after going through that statement, as to out of how many lacs these two lacs have been remitted. But no sooner one learns that out of about 31 lacs this niggardly sum has been reduced then ones eyes come face to face with stem realities and he may now realise the hard fact that even a reduction of one anns in a rupee may be termed, or rather explained away as a substantial reduction. No doubt the Kisan will rub his eyes in utter bewilderment which will increase further when he realises that out of these 31 lacs only 11 lacs go towards the establishment charges of the canal department. If notwithstanding the deficit in the Orissa canals their rates can be reduced by the bureaucratic government, why should not more reduction in Bihar-canals be effected by the Congress Ministry when there is yet a net saving of about 9 lacs even after the payment of interest charges on original investment? And why should not a deficit be allowed here also like Orissa?

But here Rajendra Babu argues. "It would be obviously unfair to charge the cost of maintenance and interest on revenues derived from other sources and paid by persons not benefitted by the canals." But is he prepared to allow this argument unchecked to its logical consequence? If so he cannot justifiably allow more police and military in towns and cities easily available to the citizens when necessity arises for their safety. And why are medical colleges and schools various hospitals, courts, excellent metalled roads and the like maintained there for which mainly the rural population pays, but at the same time it has no easy recourse to these? Relying on this argument he must keep ear-marked at least three fourths of the Provicial revenue for rural India.

Coming to the 5th item for abolishing all feudal dues and levies and forced labour, even after going carefully through his statement, we are at a loss to understand what the "Ministry has done fulfil it. It admits that, "These have been illegal for a long time in Bihar." What has been done by the Ministry according to it is that, "The law has been made stiff in this respect". But the real issue is not either

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

to make these simply illegal or the law more stiff. What is really aimed at and expressly mentioned in the item is their aboliton and that can only be achieved by a special, competent and efficient exective machinery created for the purpose which the Ministry has certainly not done. If inspite of the law these things have not only existed, but have also prospered, the mere stiffening of it can not serve. Had these things been put in the category of the crimes like theft, robbery, arson, rape, etc, there would certainly have been expected some good result out of this stiffening of law. Buy as the law even amended by the Ministry has not treated those acts as crimes, and as these offences are bailable and even compoundable under this amended law, the perpetrators of these have not fear as a rule they are bound to go scotfree as in such cases the justice is quite beyond the reach of the poor and oppressed. For some forced labour or illegal exaction of some milk, curd, ghee, vegetable, etc., no kisan dares go to the law court which on the very first visit costs him five to ten rupees at least. The original bill aimed at making these as cognisable with a view to serve to extent the purpose of their abolition. But the pact entered into later on with the Zamindars finished it by removing all the stings and thus rendering it almost innocent. And if the claim is still made that the law has been stiffened to fulfil the election pledge who can check it? But to any unbiassed observer the former law entitling the kisans to recover the sum so realized together with a maximum penalty of two hundred rupees was far betten and valuable from the purely kisan point of view in existing conditions.

The portion of the statement relating to the taxation of agricultural incomes like others is simply bewildering. Read together with the preamble to that very resolution of Faizpur this item means to us that instead of the rent and revenue systems as presently prevalent, the system of income-tax on a progressive scale should be introduced, because this item and the entire resolution was framed to meet the situation created by, "The appalling poverty, unemployment and indebtedness of the peasantry," and also because, "The deepenning crisis has made the burden on the peasantry an intolerable one, and immediate relief is urgently called for." What relation this taxation of Zamindarrs and even some Kisans income has got with this I am caused by prohibition and undoubtedly it is not going to be utilized to lighten the existing burden of the peasantry. Therefore from the actual point of view of the fulfulment of this item nothing may honestly be claimed by the Bihar Ministry.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

Much has been claimed towards the fulfilment of the first item. "The rent revenue should be readjusted having regard to the government conditions and there should be substantial reduction in both." After much vakalat the statement adimit, "It is belived that on an average the reduction in cash rent will come to about 25%." Although this is not the fact and this reduction will surely not come, it is feared, even to 10 percent of the entire rent, yet even after assuming it, is it in accoradance with the present conditions as mentioned in the item itself? If it is so, pray, what are these conditions? Are they any other than the phenomenal fall in the prices of the agricultural products and appalling indebtedness of the kisans? And what are those in their concrete forms? The Government have themselves admitted in their reports that in Bihar these prices have gone down by 59.9 or roughly speaking 60 percent and as far back as 1929-30 this tiny province had according to the Banking Enquiry Committee, a heavy debt of 155 crores of rupees which is the heaviest when compared with other provinces! That being so, has the Ministry any justification to claim that the much-talked-of 25 percent reduction in rent is the readjustment of it, "Having regard to the present conditions?"

But one's bewilderment knows no bounds when one comes to the 9th item: "The arrears of rent for previous years should be wiped out." All that Babu Rajendra Prasad claims and may claim in this connection is that only 25% of these arrears too may be remitted, just like current dues and the Kisans must pay the rest. It is crystal clear from the 14th section of the Bihar Restoration of Bakasht lands and Reduction of Arrears of Rent Act passed by the legilature. And if this reduction of utmost 25% which even Rajendra Babu admits in the last paragraph of his statement touching 9th item, is. "Generally wiping out of the arrears of rent of previous years." the less said about it the better. I may add only this much that this claim is apt simply to take one's breath away.

In this connection the statement refers to the restoration of Bakasht lands and thus simply adds insult to the imjury. First of all more than 99% of these lands are already in the pssession of the Kisans and they have acquired occupancy rights over them under the 21st section of the Bihar Tenancy Act, old and new. Now, after uninterrupted possession for years and decades the Kisans are sought to be compelled by the Ministry to pay for these very lands half of the decretal amounts which are, in most cases either actually false, the rent decrees having been obtained by various devices, or already paid-up. This is a novel

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

piece of justice meted out to them. And as regards the lands which are not in the possession of the Kisans, it is certain that these are never going to be restored to them even after the payment of the amount prescribed in the law. Firstly, to avoid the agricultural income tax almost all the big Zamindars are resorting to different devices to prove themselves as petty landlords, who are beyond, the pale of agricultural income tax and Bakasht land laws. Secondly, there is the provision of these lands already bonafide settled with others in which case the original Kisans have no claim over them, and we in Bihar, as elsewhere, know only too well these bonafides of the Zamindars. The law enacted by the Ministry lays down that such land may be restored to the original tenants provided, "It is not in possession of a third person under a settlement which was made in good faith," I wish only that God save the Kisans from this terrible "good faith" of the Zamindars.

But the most glaring fact in this connection has been left over by Rajendra Babu. There are more than a lakh of Zamindars in Bihar, of whom scarcely 300 to 400 are big ones expected to pay agricultural income tax and the Ministry has been gracious enough as is claimed, proudly to take care of the Kisans of these big barons. But what about those full one lakh of petty Zamindars whom this reform of the Ministry does not touch even?

By the way, if scarcely 25% reduction in the arrears of rent means the wiping out of these in terms of the Faizpur resolution why have the Madras and U.P. Ministries ordered total remission of these under same conditions? Have they not understood properly the resolution adopted at Faizpur, or have they gone one step further just as, according to Rajendra Babu himself, this resolution has gone further" than the election manifesto?

Then comes the 18th item relating to the agrarian debts. To remove the heaviest burden of these debts four steps have been mentioned in it (1) appointments of special tribunals to enquire into all debts; (2) liquidation of all debts which are either unconscionable beyond the capacity of peasant to pay; (3) declaration of a moratorium in the meanwhile; and (4) to take steps to provide cheap credit facilities. Now the question arises, have the Ministry fulfulled either any or all of these four? Have they appointed special tribunals? Have they liquidated unconscionable and unpayable debts? Have they declared a moratoriom? The only reply to all these is an emphatic "no". They have not even touched these things. Then again have they provided facilities for cheap credit? Here again comes the same emphatic "no"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

in reply. A mere reduction of the rate of interest and declaring it to be 9 & 12 percent does not do it. Rather, it has practically rendered this credit even dearer, as now average money lender has either totally stopped to advance money, or taken recourse to various devices to entrap very badly the Kisans and the poor and they are now being forced to execute bonds etc., for double or treble the amount actually advanced and there is no way out. The only true meaning therefore of providing cheap credit facilites is to facilitate the cheap state credit and this has not certainly been done by the Ministry. Nay, even the money Lenders Act, which according to their own confession is not primirily meant to redeem the pledge by the Kisans has exempted all the Banks, Cooperative Credit Societies and all Governmental bodies advancing loans, from the operation of this Act.

Referring to 13th and the last item about the recognition of the Peasants Unions and the Kisans Sabhas the statement confidently says, "No question has arisen." One is simply shocked to road it. In Bihar it is nothing but a lie pure and simple to say that the question has not arisen and it is an open secret. The Bihar Provincial Kisan Sabha has repeatedly demanded it. But instead of recognising the Sabha the Provincial high command have of late tried their best to cursh it. Our meeting have been banned and Congressmen have been debarred from taking part in them under the severest threat of expulsion from the Congress and those still possessing the courage not to mind these threats have been actually expelled from it. Districts of Rajendra Babu himself (Saran), Mahatma Gandhi (Champaran) and the Premier (Monghyr) have vied with each other in this reckless attack on the Sabha and they have strained every nerve to further this nefarious game. The Monghyr D.C.C. has ordered the workers of the Congress not to take any part whatso ever in the Kisan Sabha activities. This has been done not only with the knowledge of the Working Committee of the B.P.C.C. whose president is Rajendra Babu himself but with the fullest approval of it. The matter reached last year even the Working Committee of A.L.C.C. Some of the best workers of the Congress and the Kisan Sabha including Pt. Karyanand Sharma, the President of the Provincial Kisan Conference at Waini this year, have recently been asked to explain why they should not be expelled from the Congress as they have taken, and are still taking parts in the Kisan Sabha, the ban notwithstanding. And yet to say that the question has not arisen is simply revolting and adding insult to the injury.

While discussing the 11th item, Rajendra Babu has asserted that

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

nowt withstanding the right of destraint having been granted to them the landlords have been given lesser rights for the realisation of there dues than the average creditors. I have already discussed it at length and exposed the fallacy underlying this argument and claim. The only things to be discussed in this regard are the distraint clauses themselves. To Rajendra Babu there is very little difference between the existing law since 1885 and the amended one and he holds, it appears, this difference as the change for the better so far as the Kisans are concerned, as is evident from the last paragraph of his statement about this item. But the fact is quite the reverse. According to the law of 1885 the entire distraint proceedings rested solely with the Civil Court and its process being naturally slow and tardy and its machinery thoroughly inadequate for a thing like distraint which in the very nature of it requires urgently a swift and most prompt machinery and procedure, if it is to serve its purpose at all, this could not serve the end. Practically speaking there was the machinery for the purpose and the Zamindars had been feeling sore over it. For the success of the distraint it must be prompt or the tenant will remove the produce of the land to some unknown place if there happens to be even the slightest delay and the Civil Court machinery can not but result in this delay. This is why there have been almost no cases of distraint throughout Bihar during this long period of more than 50 years and we had nearly forgotten it. Then again there was a serious defect in the law so far as it concerned the co-sharer landlords. Without the joint position by all of them no destraint order could be issued and this joint action is not an easy matter and the effort for it causes very often the secret to leak out and cautions the Kisan concerned. Both these serious defects have now been done away with by the amendments. Now the order for distraint shall be sent to the revenue court which has got its machinery from the District Magistrate down to the village Chaukidar and it will move as swiftly as required for the purpose. By amending the sections 122 and 123 of the law dealing with distraint and by adding a proviso to section 121 the second hitch has also been removed. Thus the most efficient and prompt machinery has been supplied by the Ministry for the distraint to succeed invariably.

One's agony becomes immeasurable and acute when one learns that in the Congress provinces of Madras and United Provices it has been decided not to allow this distraint to the Zamindars and remove it from the law and in Bengal it was done as far back is in 1928 on the ground that it was a relic of barbarism and oppressed the Kisans.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

But here in Bihar instead of doing that, or even allowing it in its original form the Congress Ministry have rendered it most fatal and terrifying.

I quote below at some length from the judgement of the Patna High Court just to show the terrible character of the distraint even in its original from and to prove to the hilt how destructive it is. There were some distraint notices issued in a village Manjhiawan (Gaya) and there was an appeal in the High Court against the order of the Lower Court issuing these notices in 1934. This appeal was heard by a bench of the High Court consisting of the Chief Justice and Justice Dhavle. The relevant portion of their judgement runs thus, "Thus second and the last point caused by the learned advocate is that the lower court had no jurisdiction without satisfying itself that the rent was infact due not for more than a year. The learned Munsit was of opinion that the Act did not require him to and determine whether rent was so due. He had prima facie evidence before him under section 123 to the elfect that the rent for 1340 (Fasli) was due and he acted upon it. The learned advocate suggests that sec. 143 of the Act is applicable to the case and required the learned Munsit to satisfy himself that rent was in fact due not for more than year, before he issued distraint. Sec. 143 of the Act applies to suits between landlords and tenants and the learned advocate has not been able to show why proceedings for distraint should be regarded as suits. One has only to refer to chapter XXII, which deals with distraint to see the non-judicial chapter of the proceedings, no-judicial in the sense that the court proceeds in the absence of the tenant landlord comes and gives his evidence exparte and upon that all that the court is required to do is to carry the destraint out. If the landlord absuses sec. 121 the remedy is expressly provided by section 141."

Much has been said in the statement under observation while discussing the 9th item and it has been sought to prove that in connection with restoration of Bakasht lands the Zamindars will get in fact nothing. But those, who are in the know of the real state of affairs here as well as elsewhere, are fully aware that not less than 80% of the Zamindars grant no rent receipts even for cash rents and those for the rents in kind are seldom issued. The Zamindars disown even the geunine ones granted to the Kisans by their agents, if and when necessity arises, simply either by not recognising the agents, under whose signatures and thus alleging those receipts to be forged and it becomes almost impossible for the Kisans to prove their case as there is no

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

registration of the agents and the Kisans have no means to call experts for signatures and engage competent lawyers for the purpose. Thus it is clear that the majority of the rent suits are false and forged and their decrees really not justifiable in any way. Any yet in such cases the law as amended by the Ministry forces the tenantry to pay to the landlords concerned half of the decreral amount. Not only this under section 21 of the B.T. Act old and new, in all lands held by the settled raiyats, Zamindars are entitled only to rent from them. Such lands are more than 99010. But the aforesaid, amendment has emboldened the land-lords to demand half the decretal amount even for such lands and this in fact is the root cause of all the Bakasht land troubles in their most forms in Bihar.

While discussing the 1st item much capital is sought to be thus out of the 18 and 22 shares in a maund assigned to the Zamindars and the Kisan respectively through the new amendments of the law by the Ministry and also out of the wholesole abolition of the appraisement (Danabandi) system. The statement has attempted to establish that nothing short of a boon has thus been offered to the tenantry. But the experience has proved quite otherwise. First of all because of this new change in the law the Zamindars in general refuse now to pay the wages, etc., to the crop-cutters and others from the joint produce as there is no express mention of these in the new law inspite of the persistent demand by the Kisan Sabha and its representatives to this persistent demand by the Kisan Sabha and its representatives to this effect. Prior to it between 4 to 8 seers in it maund had to be paid from the common produce towards the wages etc., and thus the Zamindars generally used to get not more than 16 seers. But now they take full 18 seers. Moreover there is it widespread and general complaint that the Żamindars now insist upon the Kisans to fetch the reaped crops and gather them on the threshing floors very often miles away from fields, simply to suit the convenience of the Zamindars as regards the watch and safety of the gathered and heaped crops. This difficulty experienced by the Kisans may better be imagined than described. This trouble did not and in fact could not arise while Danababdi was prevalent in that system the Kisans even got the produce underestimated very often by tipping the Zamindar's agents. That too is gone now.

And the third system of rent in kind called chauraha Hunda or Mani and most oppressive of all, has not been even touched by the Ministry and the Kisans subjected to its grinding effects are quite out

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

of the pale of this boasted of relief. Their number is not.so low as Rajender Babu wants us to believe. This system is in force in almost all the district of North Bihar and some of South Bihar also. Nay, the non-occupancy and under-raiyats too have not been benefited by these amendments, as they relate to the occupancy raiyats alone. Even after the so-called grants of occupancy rights to the undertenants by the ministerial amendments for all practical purposes they remain where they had been already. Twelve years uninterrupted possession of lands by them laid down by the law as the condition to achieve the occupancy right is almost impossible to prove and thus they will get actually no such right as a rule.

In continuation of the discussion of this item the statement says, "There may be cases where rent may not be reduced under this provision (for cancelling enhancement)." But the entire districts of Saran and Champaran are beyond the reach of this provision and the Ministers know it full well. Kosi Diara lands too of Bhagalpur and Purnea, districts can not be brought within the purview of this law. The Kisan Sabha made it clear long long ago. But nobody cares for it. So it is not the cases but districts which are to remain mmune from the effect of this provision. And the ordinary rentreduction clauses too of the law wont't benefit two former unfortunate districts or do it nominally, if at all as the price in 1918-19. When rents were settled there, were almost the same as today.

If one goes through the statement carefully he will find parts of it confusing, I again won't say wilfully, the rights already acheived by the Kisans with those now sought to be conferred by the new amendments. In particular the part of it relating to the 6th item is a masterpiece of this art of careful confusion. Perhaps it is sought to give more credit to the Ministry than it is actually entitled to. But one is extremely pained to find it in the statement of such a high and responsible personality.

In the last but one paragraph of the statement the credit is given to Ministry for regulating the sugar and cane prices. No doubt it is a fact to some extent. The thing is that sugar mills have been benefited to the utmost by the action of the Ministry while the canegrowers have been the least. These mills after purchasing cane at a very low price have been, and are still selling the sugar at high price and thus practically robbing the consumers, majority of whom are the Kisans, of their poor purse. Honestly speaking they ought to have paid these Kisans the higher prices of canes proportionately as the sugar prices

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

have gone up. Have they done it? .It must also not be forgotten that to help the poor after fully serving the rich is not the same things as to help him even at cost of and inspite of the rich and the latter was naturally expected of the Congress Ministry and not the former. One thing more. The Sugar mills have to all intents and purpose starved and are still starving the Mazdurs working in them.

But if Rajendra Babu talks loudly of this additonal gain to the Kisan which is not mentioned in the Faizpur programme, he must also not forget the great loss the poor, including the Kisans have been made to suffer through the amendments of the Stamp Act by the Ministry. All sorts of stamp duties have thus been generlaly raised by more than 50% and the pinch of it is felt very acutely by the poorer strata of society who are dragged to the courts and the registration offices invariably by the Zamindars. Sahukars and the circumstances they are forced to live in and all the stamp fees paid even by the Zamindars and Sahukars are ultimately realised from the Kisans and the poor. Therefore that gain has been more than counter-balanced by this loss.

Before concluding this somewhat lenghty analysis may I put some questions to Rajendra Babu and his colleages and advisers of the Congress Ministry? The same resolution of Faizpur says inter alia that. "The Congress at its last session called upon the Provincial Congress Committee to draw up an All India Agraian Programme. Many P.C.C's have not yet submitted their recommendations for such a programme. It trusts that such P.C.C.'s as have not reported so far will take early steps to send in their recommendations". Now, has their B.P.C.C. acted up to the trust reposed in it by the Annual Session of National Congress or betrayed it by not preparing its recommendations and sending in its report to the A.I.C.C.? Is it not still among "such P.C.C's as have not reported so far? Has it not thus continously and wilfully defied the mandate of two successive annual sessions of the Congress? And pray what is the reason for doing so? Did it not appoint an agrarian enquiry committee after Faizpur which toured throughout the length and breadth of the Province for years and spent thousands of rupees of the poor on it? Were not almost all Ministers, prominent parliamentary secretaries the Speaker etc, on it? Did it not actually prepare even its report? Why was it not then publised? Was there any fear behind this withholding of it's publication? Did they want to adopt a non-committal attitude so far as the Agarian Programme of the Ministry was concerned and hence this non-publicaton of the report? Had the

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

preconceived item of Congress Zamindars pact, which stood in their way to publish it? Did they withhold publication and sabotaged everything purposely because after committing themselves one way or the other the proposed and prearranged pact with the Zamindars would have been impossible? Had the report been acceptable to the Kisans, it would have certainly blocked the way for that pact and had it not been so it along with its authors, would have undoubtedly been condemend by the Kisans beforehand thus making that alliance again impossible.

Thus if the agrarian programme adopted at Faizpur together with the statement of Babu Rajendra Prasad is read in the light ot above scrutiny and analysis it undoubtedly remains as yet unfulfilled. Out of its 13 items not even one has been completed fully. The 13th regarding Peasant Unions has definitely been flouted and acted against and so has been the eleventh. The second sixth, seventh, eightth, tenth and twelfth have not been touched even and nothing has been done so far to act up to the fifth. The Ministry has only partly touched the first, third, fourth and ninth. But here too the real spirit has been left out and the natural and logical expectations have been belied.

I have done. I now leave it to the intelligent and unbiased observer to judge and conclude for himself how far the assertion of Rajendra Babu that. "It is claimed that the law as now amended by the Bihar Bills is a substantial fulfilment of the Congress Election Manifesto and the Faizpur resolution," is justified by the facts.

Agrarian Programme (Faizpur)

The Congress at its last session, being fully conscious of the fact that the most important urgent problem of the country is the appalling poverty. Unemployment and indebtendness of the peasantry called upon the Provincial Congress Committees to make recommendations to enable the All India Congress Committee to draw up an All India Agraian Programme. Many P.C.Cs have not yet submitted their recommendations for such a programme. The Congress regrets this delay but realises that the subject is a vast and intricate one, requiring close study and investigation. It trusts that such P.C.Cs as have not resported so far will take early steps to send in their recommendatons.

The Congress is convinced that the final solution of this problem involves the removal of British Imperialistic exploitation and a radical change in the antiquated and repressive land tenure and revenue system.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

It feels, however, that the deepening crisis has made the burden on the peasantry an intolerable one and immediate relief is urgently called for pending the framing of an All India Agrarian Programme, therefore the following steps are necessary:-

1. Rent and revenue should be readjusted having regard to present conditions and there should be substantial reduction in both.

2. Uneconomic holding should be exempted from rent or land tax.

3. Agricultural incomes should be assessed to income tax like all other incomes on a progressive scale, subject to a prescribed minimum.

4. Canal and other irrigation rates should be substantially lowered.

5. All feudal dues and levies and forced labour should be abolished and demands others than rent should be made illegal.

6. Fixity of tenure with heritable rights along with the right to build houses and plant trees should be provided for all tenants.

7. An effort should be made to introduce cooperative farming.

8. The crushing burden of rural debt should be removed. Special tribunals should be appointed to inquire into this and all debts which are unconscionable or beyond the capacity of peasants to pay, should be liquidated. Meanwhile a moratorium should be declared and steps should be taken to provide cheap credit facilities.

9. Arrears of rent for previous years should generally be wiped out.

10. Common pasture lands should be provided and the rights of the people in tanks, wells, ponds, forests and the like recognised and no encroachment on these rights should be permitted.

11. Arrears of rents should be recoverable in the same manner as civil debts and not by exctment.

12. There should be statutory provision for securing a living wage and suitable working conditions for agricultural labourers.

13. Peasant Unions should be recognised.

Editos's Note—Every shield has otherside. Swami Jee was an anti imperialist fighter and pesant revolutionary of the first rank. He won the general election for the congress in 1937 and demanded nothing more than the fulfil ment of the Congress Agrarian Programme of 1938 approval by president Subhash. But Rajendra babu vetoed it anfavoured Zamindars. This pamphalet is an exposure of the fallacy of tall claim of Dr. Rajendra Prasad who himself

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

was a Zamindar and anti peasant. Rajendra Babu has not concealed hsi zamindar's love on his autobiography and has revealed in detail how the peasants were befooled by the new act. Jai Prakash Narayan was under training in 1938 under peasant leader Ashram in Nawada in those days, has also expressed his displeasure in his resoinder to Rajendra Babu. In those days "Zamindari Pratha nash no, Kisan Raj Kayam ho" slogans were reverbarating in Bihar Province. This pamphalet is a befitting reply to Babu Rajendra Prasad's claim of steps taken for peasant's benefit as a resuebal after Zamindar Kisan agreement and act eacted as conseruence. Zanindars were puzzled over the un precedented new awakening amongs of Kisans due to activities of Swami Jee and Kisan Sabhaites. Zamindars had started their offensives by deputing the mounted govt. military force but where repulsed by militant Kisan Sabhaites. This pamphalet is critical anualytical frank and imphatical.

Very soon Zamindars congratulated leaders of Congress and govt. in Bihar for concessions provided to them at their Lucknow in April 1939. So, it is evidently clear that Swami Jee was justified in exposing the Zamindar dominated congress party and its leads for their apathy towards peasants.

Editor

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

The Rent Reduction in Bihar : How it Works
(An exposure of the govt. claim)

WHY AND WHEREFORE?

When in October last Dr. Rajendra Prasad issued a lengthy statement extolling in an unusual manner inter-alia the achievements of the Bihar Ministry regarding the rent-reduction affairs. I objected to it respectfully and elaborated my reasons in the booklet, *"The other side of the Shield."* But some people were still under the impression that I had exaggeratingly under valued and minimised the ministerial gains in this respect and had sought to wilfully nullify them. But unfortunately for them there was held an All India landholders' Conference at Lucknow in April last under the presidentship of Maharajadhiraj of Darbhanga where almost all the chosen landed magnates of Bihar actively participated, and which amply corroborated my contetion. The conference after heated debates and discussions passed a resoution in favour a talk and negotiation with the Congress High Command on behalf of the Zamindars of India with a view to arrive at an All India Congress Zamindar Agreement on the lines of one already arrived at in Bihar. Speaking on that resolution Babus Chandreshwar Prasad Narayan Singh and Shyam Nandan Sahay, two big Zamindars of Bihar, admitted as follows:-

"The Government in Bihar too were very reasonable and some concessions were secured by the Zamindars in Bihar which no other Government would have allowed" (C.P.N. Singh).

"The Zamindars had not lost much by agreeing to reduction of rents enhanced after 1911, as such enhancements were really very small" (S.N.Sahay).

I naturally took this to be an excellent commentary on the ministerial policy between the Zamindars and the Kisans, coming as it did from the Zamindars themselves and consequently I thought the Government would keep quiet and not try to justify their high sounding policy regarding rent reduction by issuing press notes and communiques ad nauseom and by inflicting on the public at large a press-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

note in the end which puts forth claims that are totally untenable. In the pages that follow I have attempted to show vividly the hollowness of those claims.

The rent reduction section of the B.T. Act bearing on the subject is appended in the end.

BIHTA (PATNA)] Swami Sahajanand Saraswati
1-9-39
(A.I.K.Day)

On All India Kisan Sabha Day

नोट–इस पुस्तिका का नाम 'दी रेन्ट रीडक्शन इन विहार, हाउ इट वर्क्स' है। 1937 ई. के चुनाव में स्वामी जी ने पूरा परिश्रम कर चुनाव में किसानों का वोट कांग्रेस को दिलाया था। कांग्रेस की जीत हुई, सरकार बनी, डॉ. श्रीकृष्ण सिंह बिहार मंत्रिमण्डल के प्रधानमंत्री बने। परन्तु, सरदार पटेल एवं डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के किसान विरोधी रवैये के कारण अमवारी संघर्ष के नायक राहुल सांकृत्यायन एवं बड़हिया संघर्ष के नायक कार्यानन्द शर्मा भीषण दमन के शिकार बने। यदुनन्दन शर्मा जो रेवरा के नायक थे उन पर साम्वे स्टेट के जमींदार रामेश्वर बाबू और गया के कलक्टर ह्वीटेकर साहब पूरी ताकत से पिल पड़े। जमींदार-अंग्रेज संश्रय ने किसानों की आँखें खोल दी और सामंत विरोधी संघर्ष ने ही साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष को अग्रगति प्रदान किया है। 'दी अदर साइड आफ दी शील्ड' की भी पृष्ठभूमि जमींदारों के प्रवक्ता राजेन्द्र प्रसाद से स्वामीजी की वैचारिक झड़प है।"–सम्पादक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

Once more I am forced to examine closely and analyse ruthlessly, albeit reluctantly, the high claims advanced by the Bihar Ministry through a press-note issued from Ranchi on the 30th of July last, that "the essence and effect of tenancy legislations passed by the present Government have been to get a fair square deal for the tenants." I have previously scrutinized a bit mercilessly this general claim in a booklet, *"The other side of the shield"*, written some eight months back, and have not come across even an attempted answer to the unassailable points raised therin. Al the aspects of the "tenancy legislations passed by the present Givernment" have been thorouhgly dealt with in that brochure and their true colours brought to light, and I respectfully still invite the Government to challenge a single fact related in it. The reader by going through it carefully will find how terribly exaggertaed and baseless this claim of the Government is and how the tenants have been absolutely denied "a fair square deal" so often claimed by the present regime.

But the burden of the aforsaid press-note is not simply the tall claim put forth at the fag end of it. or there would have been no necessity for me to revert and reply to it afresh. The fact of the matter is that it deals wholly and solely with the rent-reluction affairs in the province, and attampts feebly to answer some of the criticisms levelled against the proceedure adopted from time to time by the Government in connection therewith and the net results thereof. Let me for canvenience's sake reproduce here that note in extenso. It runs as under:-

"The attention of the Government has been drawn to an article published in a section of the press in which it is stated that the rent-reduction law is being administered to the disadvantage of the Kisans, and that Government have, in a recent circular, directed the rent-reduction officers that in-granting reduction on the ground of submersion of the land under water, remission shall be allowed for such lands only as have recently gone under water, that no claim shalll be entertained for the reduction of commuted rent to the level of the low rent of the adjoining land if the high rental had been fixed when the

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

rent of the adjoining land was low, and that the power of the rent on the ground of the land having become unfit for cultivation has been curtailed."

"No such circular or instructions have been issued by Government and all these statements are based on misinformation and misconception of the correct position. Relief under clause of section 112A of the B T. Act is being freely given in such cases where it is established that there has been a temporary of permanent deterioration of the soil since the existing rent first became payable and according to the extent of deterioration either the whole of estimated rent of the holding is remitted, or in part."

"Secondly, as to the statement that no claim shall be entertained for the reduction of commuted rent to the level of the low rent of the adjoining land if the high rental had been fixed when the rent of the adjoining land was low, no such direction has been issued to the rent-reduction officers."

."Thirdly, as to the statement that the power of the rent-reduction officers to grant entire remission of rent on account of the land having become unfit for cultivation has been curtailed, this is wholly incorrect. The rent-reduction officers have full discretion in the matter. They can grant (a) complete, or (b) partial remission in proportion to the loss in productivity according to the facts proved, and it is wrong to say that this statutory power has been curtailed in any way by executive instructions."

"The essence and effect of tenancy legislations passed by the present Government have been to get a fair square deal for the tenants."

I need not mention at the very outset that I am no apologist of the article and the statement referrred to repeatedly in the above press-note. In fact, I have not even seen them. What I am really concerned to deal with are certain facts stated in the note, and in so doing I shall have to examine critically and minutely the entire rent-reduction affair in the light of the whole of the section 112A of the B T. Act. Really speaking I am not aware of what are the bases of the statement in question and the subject matter of Government note. All the same, I find some stero facts in it which can easily be proved and I shall do it justly.

But before proceeding further I must say that the contention of the writer of the article under criticism by the press-note that "no claim shall be entertained for the reduction of commuted rent to the level of the low rent of the adjoining land if the high rental had been fixed

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

when the rent of the adjoining land was low", is thoroughly justified and at cannot be assailed. Even the note passes over it by simply saying that, "no such instruction has been issued to the rent reduction officers." There is no mention of such instructions in the contention as reproduced in the note itself, and one is taken a back by reading such a reply which is entirely besides the point. First of all the law itself on the point seems to be faulty as it does not take inot account the rentals of the adjoining lands and relies instead solely on the prices of the stapple food crops, as is clear from the sub-sections (b) and (d) of the section 112 A (1) of the Bihar T. Act. So really there is no prima facie question of bringing the commuted rents to the level of the rental of the adjoining land.

But certainly there were some hopes of achieving the same, had the rent-reduction officers been left free hand and unlimited scope in the matter, of course, within the four corners of the law. It is but natural that the rent reduction officers should have full freedom in applying one or more sub-sections of the section 113A (I) of the Act. when reducing rent, and it was admitted by the government also, although by implication, when they issued instructions to these officers in the initial stages, as is clear from the paragraph 48 of the same, which runs:-

"In some cases it may happen that the application of the one or more of the clauses (a) to (d) leaves the rent still at an exorbitantly high figure. In all such cases it is open to the officer to report the case for action under clause (e)."

Then again paragraph 49 lays down further that, "certain cases may be of a mixed nature, e.g. where a rent fixed for a new settlement has subsequently been enhanced. In such cases the officer should cancel the enhancement and then deal with the case under the appropriate clause."

From the careful perusal of these two instructioins issued by the Government it is clear there may be ample scope for the application of all the sub-clauses of the section 112A (I) of the Bihar Tenancy Act, and that it might be necessary, with a view to do justice to the tenants, to apply sub-section (d) even after the application of (a) which cancels enhancements, It was probably sometime in 1938 when these instructions were issued. But when later on greater wisdom dawned upon the Government in early 1939, they passed circular No. 39 prohibiting the application of sub-section (d) in such cases. It runs:-

"Government have now decided that in any case in which a rent

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

has been reduced under clause (a) or under clause (b) of the section 112A (I) no further reduction should be allowed under clause (d). Rent-reduction officers should act accordingly" (12-3-1239). Mark here the word 'now'. And as though it is not enough clause (e) has not been applied at all by the Government up to the present. Not only this, instructions numbers 23 to 28 after enumerating the defects of the commutation and crop-cutting system therefor tell twice very clearly the rent reduction officers to report the case for notification and action under clause (e). But for the last two years the Government have slept snugly over the matter and have not thought it their worthwhile to move in the matter. And yet they make specious claims that the relief is freely given to the tenants and no instructions curtailing the discretionary powers of the rent-reduction officers have been issued.

One more point in this respect and I shall proceed further. It is now the common experience of the rent-reduction officers that they could give formerly some tangible relief to the Kisans, as in accordance with the circular No. 17 the prices of only one stapple food crop, rice, were taken into consideration, though even then not much could be done and the Kisans could not really get a fair square deal. But of late a change for the worse has taken place and generally speaking this relief has ceased for all practical purposes. In this respect they point out to the circular No. 47 which speaks for itself and which is as follows:-

"The attention of the rent-reduction officers is invited to the paragraph 2 of the circular No. 17 Bihar in which it was directed that in applying clause (b) and (d) of section 112A (I) of the B.T. *Act the price of only one stapple food crop, namely common rice, should be taken into account."

"Government have now considered the matter, and the previous direction is cancelled, Government have specified two crops as the stapple food crops of each local area. In applying the formula prescribed in clause (b) and (d) of section 112A (I) the prices of both the specified stapple food crops should be taken into consideration in the manner shown below." Mark again the word "now".

In the subsequent paragraph of the circular rice and barely have been exemplified and it has been shown by calculation that if the price of rice results in reducing the rent by, say, 25 percent, the mean of the prices of barley and rice comes to only $18\frac{3}{4}$ percent, meaning

*B.T. Act means Bihar Tenancy Act

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

clearly one anna less. But it is a mere suppositon. In actual practice nearly two annas per rupee have been lessened, making this clause practically dead. Still the Government go on repeating that they are serving the Kisans and not the Zamindars, that the rent-reduction officers enjoy the uncurtailed power within the law to reduce rents and their statutory powers have not been restricted in any way by any executive direction. But the deplomatic and the most cautions use of the language in their press-note will deceive none and it won's be able to falsify and challenge the hard facts staring in their face.

Now I turn to other points raised in the said note. One of the charges levelled against the Government is that "the rent-reduction law is being administered to the disavantage of the Kisans and the Government have, in a recent circular, directed the rent-reduction officers that in granting reduction on the ground of submersion of the land under water, remission shall be allowed for such lands only as have recently gone under water." It is curious-indeed that instead of refuting straight away the accusation the press-note has sought to befool and hoodwink the uncanny public through a most shrewdly prepared phraseology, and thus, by implication, has pleaded guilty to the charge. I shall show it presently. The meaning of the charge in short is that the act provides, in clear terms, for the reduction of rents of all the lands whether permanently or temporarily under water or sand deposit or deteriorated by any other cause, sudden or gradual, as is evident from the clause C (i) appened in the end of this booklet. From the careful perusal of the same it is clear that for the application of this sub-clause C (i) it is not necessary that the land should become such either from before, or at the time when or after, the existing rent became first payable. It is enough for the officer simply to find at the time of the application of that sub-clause that it is such. And if it is under water or sand-deposit even from before the time the existing rent became first payable it becomes all the more necessary to reduce its rent, because it is quite probable and within commonsense that at the time of rent-settlement the deterioration had not been so complete and pronounced and that the rental had thus been fixed in the view of its productivity, though somewhat limited and also in the hope that the land might be redeemed fully in the near future.

But the circular No. 42 issued lately curtails awfully the scope of this cluase by laying down that, "the Government desire that relief under clause C (i) of the section 112 A (I) should be given only where it is established that there has been a temporary or permanent de-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

terioration of the soil since the existing rent became first payable."

"It is possible that some lands were habitually flooded for long periods and that in others there was a deposit of sand even at the time the existing rent first became payable. If this fact is satisfactorily established the existing rent should be assumed to have taken into account the habitual or occasional submersion of the land and the deposit of sand as the case many be and no remission should be given under clause C (i)."

As already stated above, why should not the assumption be quite contrary to what is mentioned above in the circular and why should thus the Kisans be deprived of their rights by restricting arbitrarily the scope of the clause C (i) if and when the assumption in the Circular does not tally with the hard facts? And why this assumption at all? Simply to limit the scope of the clause in the interest of the Zamindars? If not, what is the meaning and necessity of this assumption if in reality "the essence and effect of the tenancy legislation passed by the present Government have been to get a fair square deal for the tenants?" Most unpleasant truth is that the case of Government on this score is utterly untenable. Hence the press-note silently admits in other words the charge by saying, "relief under clause C (i) of section 112 A of B.T. Act is being freely given in such cases where it is established that there has been a temporay or permanent deterioration of the soil *since the existing rent first became payable.*" Being freely given forsooth! Mark please this and the other italicised part "since etc."

One thing more. From the clause C (i) it is crystal clear that in addition to the submersion under water or sand deposit there may be "other specific causes, sudden or gradual," for deterioration and reduction should be granted on the basis thereof too. In fact some rent-reduction officers wanted to use their discretion in this respect. But they were indirectly stopped by the inspection remarks of Mr. R.A.E. Williams, the rent officer, which is to this effect. "The rent reduction officer is now considering the plea that some of the land has deteriorated because of the shade caste by some trees. I doubt whether clause C (i) covers such a case," (24-5-39). Is the proudly and loudly advanced claim in the said note that "the rent-reduction officers have full discretion in the matter," justified yet?

Next comes the clause C (ii) which has been for all intents and purposes nullified by the sheer executive fiat and I shall prove it upto the hilt. It is, "If the landlord of such holding has failed to carry out

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

the arrangemts in respect of irrigation which he is bound to maintain." Its chief aim is to reduce rent if the Zamindar has neglected irrigation. It has got a history of its own. During the last 12 long years the Kisan Sabha and the Kisans have had the bitterest experience of the Zamindars wilfully neglecting irrigation in its entirety, there being no legal means to compel them, the Private Irrigation Act having been invoked but failed miserably for the purpose. The continued failures to maintain irrigation and its consequent desrepair beyond all proprtions can not be remedied under that law. Hence the persistent cry on behalf of the Kisan Sabha from thousand of platforms to redress this standing wrong clause C (ii) in the tenancy legislation of the present Government. This was therefore naturally expected that the Kisans will be compensated for this long and studied neglect on the part of the Zamindars to maintain irrigation by reduction of rent at least for the equal period with a view to cure the wound imflicted thus upon them by the Zamindars. This hope was strengthened by the earlier directions issued by the Government to the rent-reduction officers. The 44 and 45 paragraphs of this are to the effect, "In deciding for what period the remission should be allowed the officer should take into consideration the evidence before him, if any, as to the past conduct of the landlord. If failure to maintain the system is proved to be general and habitual, a period of ten years would be reasonable."

"Officer should ignore specious promises on the part of the landlords to repair their irrigation systems. The landlords remedy is to put works into proper condition and then to apply for revision of the order under the proviso to this clause."

This was to a great extent in keeping with the spirit of the said clause But all this has been undone simply by one curel stroke of the exective pen and the Kisans and their well-wishers stand aghast, finding no way out. The latest fiat of the Government, namely the circular No. 43 has verily acted like the butcher's knife in cutting the throats of the Kisans who had reposed their blind faith in the Ministry. It reads:-

"Before passing any order under section C (i) the rent-reduction officer should direct the landlord to make good the specific defects which are found in the irrigation arrangement and if within a reasonable time to be specified in the order, the landlord fails to comply with the directions the order allowing remission of rent should be made final, and it should take effect from such date after the filling of the tennant's application as the officer considers to be reasonable. Orders

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

passed under clause (c) should not be given retrospective effect for a period prior to the date on which the application was filed."

This circular is signficant from more than one point. It betrays clearly the change the Government outlook has undergone of late, as also the growing pro-zamindar tendency on their part. Oterwise what is the justification in allowing the Zamindars "a reasonable time" to make good the defects in irrigation when they must suffer and can be made to face the consequences of their terribly deliberate neglect in the irrigation works for decades together? Why should they be given at all such a facility and thus the innocent kisans be condemned to groan under the piled up tyrannies and caprices of the landlords for no fault of theirs? And why this sudden departure, pray, from the original stand taken by the Government themselves? then again what is the "reasonable time" to be given to the landlords and who will decide it? The rent-reduction officer? certainly not. Here once more his hands are sought to be tied up, though indirectly, by the executive action. Below are imspection notes by Mr. R.A.E. Williams, the rent officer, which need no comment. He writes:-

Village Saguna (Dinapore P.S.)-These fertile lands but the landlords neglected the irrigation arrangements which they are bound to maintain. The rent-reduction officer gave the landlords about 30 days to repair the Ahars and Pynes. I do not think that this period was sufficient or reasnable....The attention of the rent reduction officer and the charge officer is drawn to the circular No. 43."

So, it is evident from this note that even 30 days are not enough for the sleepy landlords who are accustomed to pay no heed to their irrigational duties for decades and who sat tight over the matter even after this clause had been passed some two years back! Poor rent-reduction officers! They have been tied hand and foot and delivered in a way to the landlords! Really I pity their miserable plight! They are again and again reminded, in this aforesaid inspection note, of the notorious circular No. 43 quoted above, and yet we are told in all seriousness to believe that "they have full discretion in the matter."

An additional thing of importance in the above inspection note are the words "sufficient or reasonable time," and it has been sought to replace or explain away the original word 'reasonable' by deliberately using the word 'sufficient' to connote its real meaning. And who will decide about this sufficiency? Zamindars in the long run of course ! So the letters, which appeared time and again in the controlled press condemning the so-called tyrannies of the poor, rent reduction

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

officers by not allowing they asked for time to the Zamindars, have told at last and achieved desired results. Verify, the Government have invented a novel method for doing things by backdoors and these circulars and inspection notes are unique illustration of the same. And lest the rent reduction officers forget even after the repeated reminders in the paragraph 14 and 21 of the inspection note, the rent officer deems it neet and proper to devote the entire paragraph 18 of the note for the purpose, which runs:-

"Under the latest circular (No. 43) the defects in the irrigation system should be clearly specified and the landlords given an opportunity to remove them."

This is perhaps to save the Zamindars from the Zulums of the rent reduction officers! And again, is it a fact that atleast some rent-reduction officers have very recently been ordered to extend the period already allowed to 4, 5, 6 or more months? I pause here for an authoritative denial.

There is yet another sting in the tail of the above cited circular No. 43 which probhits the retrospective effect of the remission order. It is merely to safeguard the interest of the Zamindars clearly at the cost of the Kisans and hence it seems a deliberate device. I shall make it a bit clear. In the first place there seems a plan to let no occasion arise for remission under this cluase C (II) by allowing the landlords more and time and latitude to repair irrigational systems. But if even then they unfortunately fall to prepare a show of repair, as no actual, solid and working system of irrigation can possibly be established and brought into being without a huge expenditure required for a carefully prepared plan of the same by the experts, and these in their turn need ample time and test, the next move seems to be to allow the remission side by side with a hope and provision for the Zamindars to file a revision petition as soon after this remission as they can, and this is bound to be anulled without any delay and loss to them. It is with this view that the circular No. 48 has recently been issued which reads:-

"The rent-reduction officers should note that they are competent to exercise the powers of the Collectior mentioned in the proviso to clause (c) of the section 112A (I) of the B.T. Act. They may revise any order *passed under sub-clause* (II) of the clause (c), if they are satified that the landlord has restored the condition of the irrigation which he is bound to maintain." mark the italicised words and you will easily understand the meaning and the plan.

But this purpose can be achieved only if the order for reduction

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

does not take a retrospective effect. In case of such an effect even after the revision by the same officer the Zamindar is destined to suffer some pecuniary loss, as a certain portion of arrears is then sure to be written off which cannot justifiably be realised after the revision even by the same agency, in as much as even after the repair of the irrigational systems by no stretch of imagination it can possibly be proved that the Kisans did not sustain a considerable loss of produce for want of irrigation. The restored systems of Ahars and pynes etc. cannot be so done for the past years too when they were actually in a most delapidated state or had completely disappeared. Hence this safe course of not granting a retrospective effect to these remissions.

I am forcibly reminded of one more glaring fact at this stage. In the initial stages of this rent-reduction business a certain instruction No. 50 was brought out by the present Government directing the rent-reduction officers to pass orders for remissions to take effect from the following year. But, due to the threatening growth of the Kisan-movement perhaps, the Government, with a view to take the wind out of the sails of the Kisan-Sabha, issued later on the circular No. 19 in December last which goes on to say:-

"In instruction No. 50 it is laid down that normally the date from which reduction is to take effect should be from the beginning of the following agricultural year. The Government have since decided that in case of Raiyats in arrears, the order with effect to the reduced rent should date from the year in which the arrears commenced."

The most welcome effect of this, so far as the Kisans were concerned, was that they had not now to apply separately for the reductions in arrears of rents according to the newly passed law for the purpose. They got the desired relief in this matter too through the rent reduction applications alone and were thus saved from much botherations and heavy expenditures. But this was too much for the Zamindars to tolerate and they raised a regular hue and cry and brought pressure to bear upon the Government with the result that circular No. 44 was brought into being in the early April 1939 which speaks for itself and I cannot do more but to reproduce it verbatim. It is:-

"The rent-reduction officers are informed that the circular No. 19 of Bihar is cancelled, and that in future reduction of rent allowed under sec. 112A (I) of the B.T. Act should take effect from the beginning of the agricultural year in which the order is passed."

As if by way of adding insult to the injury the Zamindars have all along been filing rent suits for arrears even while the Kisans had

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

already applied for the reduction. The irony if that the Civil Courts concerned went of uninterruptedly with their business of considering and decreeing these suits, notwithstanding the Kisans having informed them in the prescribed way of their application for reducing the very same arrears. Perhaps the court took the technical view of all these things and "our Government" had done nothing to force the courts to take notice of such applications for reducing the arrears of rents and stay the proceedings, although for the Zamindars they were as though in a hurry to issue circulars to safeguard their interests, as I have already shown and will show hereafter. And yet much ado had been and is still made of this very reduction in the arrears of rents. Need I enquire as to who is to benefit by this policy and by this circular No. 44 in particular? Is it in the interests of the Zamindars or the Kisans? Is this the way to get a "fair square deal for the tenants?"

The matter does not end here. As if by way of making up deficiencies and giving still moere protection to the Zamindars the circular No. 20 had been issued restricting further more the scope of the rent-reduction law and curtailting further the powers of the rent-reduction officers in this respect. Here the law does make no differene between the fixed rate rents and others, and why should it do so? In fact it did not and could not occur to anyone at the time of the enactment of this section or for the matter of that the entire tenancy law amendments. The fact is, this distinction between the fixed rates rents and the others the Kisans who have to pay exorbitantly high rents at fixed rates just as there are lacs of others. The stapple crops sored high. Therefore, it simply passed one's comprehension how and why these fixed rate Kisans should be debarred, I shall not tell deliberately, from this concession of rent-reduction. But this is actually what the Government have done, in the supreme height of their wisdom, through the circular No. 20 which says:-

"It has been *decided* by the Government that rents of the holdings, whose rents or rates of rents have been fixed in perpetuity, cannot be altered. There should, therfore, be no reduction of rent of this class during the rent-reduction operations under section 112A (I) of the B.T. Act."

So it is not a mere interpretation of the law, but the "decision" of the Government-"It has been decided by the Government." A fair square deal for the Kisans forsooth!

I have previously referred to the circular No. 39 and have dilated upon it at some length. In this respect there is one more burning point

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

which throws considerable light on the change in the policy of the Government, and proves beyond even a shadow of doubt that this change is deliberate and is meant to the benefit the Zamindars. There is the paragraph 49 of the instructions issued at the very outset by the Government which has been quoted previously. According to that there might be ample justification to apply clause (d) even after the operation of the clause (a) or (b), with a view simply to mete out bare justice to the Kisans. This atleast is the admission of the Government themselves, though not in so many words. There can possibly be no other interpretation of that paragraph (4) and it is evident to anyone who goes a bit minutely through it. But the same has been stopped by the Governmental order in the form of the circular No. 39!

Below I adduce additional facts to illustrate how the Government feel simply nervous when there is the slightest apprehension of the interest of the Zamindars being touched in favour of the Kisans. The circular No. 38 lays down that the evidence tendered by the Zamindars must be considered and the order passed giving reasons for the acceptance or rejection of the same. It throws a burden on the rent reduction officers, as it is a common experince that to give reason in writing, especially for rejection, is not an easy task. But the greatest harm that this order to the officers has done is a volume of fabricated and forged evidences and proofs produced by the Zamindars, who were encouraged by this order. It is an open secret and the Government have at least been forced to warn the rent reduction officers against these through perhaps circular No. 58 and otherwise. Then there is the circular No. 46 which betrays the aforsaid nervousness of the Government as nothing else does. It runs:-

"Under the existing rules a general notice is issued on the landlords and tenants of a village informing them that certain applications for the reduction of rent are to be considered on a certain date, and requesting their attendance. Sometimes the parties attend without further notice, and *where the landlords fail to attend* an individual notice has to be issued before any order reducing the rent can be passed. (And what, if the Kisans fail to attend?)

"Under this proceedure it frequently happens that a landlord is not aware precisely of the particular holdings to which the applications refer.

"It is essential that the landlords should have precise information about the nature of the applicatiions filed and the holdings and tenants

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

to which they refer. Rent officers should, therefore, see that copies of the applications for reduction are sent to each landlord before the date of hearing. If the application is amended by the tenant at a later stage the landlords should be given time to consider the changes made".

Why this special care for the landlords only and not the Kisans? Why should not the special notice be issued to the Kisan also if he any how fails to attend? Of course when this open partiality was some how or the other brought to the notice of the Government, they, by way of mere face-saving, attempted to explain away this circular after about full two months by the circular No. 52 of June 7, which after referring to the said circular says, "Obviously the direction applies with equal force to the treatment of the tenants." But one is at a loss to understand how it is possible when there is no mention of tenants in that circular in this connection. This omission is impossible of being explained away as an act of oversight. It is but intentional, one is constrained to admit. Hence this explaining away to save force.

But no body for a moment should think that these charges against the present Government are based on mere arguments and abstract ideas and guesses and not on hard facts. To tell the truth it is the solid facts which have compelled us to find out the source and the real cause of this gradual whittling down of the relief through rent-reduction and setting it almost at naught in the long run. When deterioration set in first in this rent-reduction relief the Kisans were bewildered and they were prone to blame merely the officers entrusted with this work who, according to them, spoiled everything of their own accord, being considered susceptible to all sorts of pressures and influences, as the Government could not easily be believed to do wire-pulling from behind the scenes. Consequently all sorts of wild charges were levelled against these officers in general. But to the piercing and discerning eyes the matter could not possibly rest there and investgations having been started these dirty things were unearthed as the actual cause for redering this rent reduction affair a veriable farce to all intents and purposes. Nay, these officers themselves have narrated time and again, in private, how their hands have been tied down.

The Zamindars are accustomed to drag the Kisans in the intricate and ruinous course of litigation. By such devices alone, in addition of course to hundreds of illegal oppressions, they have so far been able to render these Kisans as so many galley slaves. Along with these Kisans we had been so long hoping that at least in this rent-reduction business they would be saved from this course to the maximum extent.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

But ours has been the hoping against hope. The Zamindars here too have marvellously succeeded in pursuading the Govenment to do as they desired. This in a nutshel, is the resultant sum total of these instructions and circulars issued by the Government from time to time during these two long years. This is the experience of the Kisans even in regard to their hard won partial success in remission. The protracted proceedings in this connection, first before the rent-reduction officers and then before the appeallate courts, have generally cost them ten to twenty years' savings by way of these remissions and they are consequently most annoyed.

But the Zamindars too are not happy despite all these, and how could they possibly be so during these *abornaldays* of tremendous mass consciousness! Moreover, until and unless their rent-realisation continues unhampered seriously their glee and merry making are bound to vanish in the thin air. They wre calculating, of course childishly, that after having frustrated the Kisans thus in a round about way they would be able to realise the full and undiminished quota of their dues from them, surely with the help of the present Government. But here they were reckoning without their host. During past ten years of terrible depression accompanied by the unprecedented earthquake, repeatedly devastating floods and unceasing blood sucking policy of the Zamindars money lenders and their allies, the Kisans have completely been ruined and thoruoghly bled white. Hence no amount of coercion can succeed in squezing out of them even half the amount formerly realised by the Zamindars and others. Instead of realising this fact the Zamindars in their folly got angry at the Kisan Sabha, levelled all sorts of wild charges against it accused it right and left and petitioned for the Governmental help in realisation. This is the secret of the so-called public mass petitions by the Zamindars to the Premier which appeared sometime back in the press. But the Govt. too could not help them, realising as they did the acute distress among the peasantry, with the result that the Zamindars are now enraged at the Govt. also, though they cannot express this feeling of theirs publicly for various reasons. This is the secret of the confession by Dr. Rajendra Prasad before the B.P.C.C. and Mahatma Gandhi at Brindaban last summer that "the Zamindars are against us." But who are at fault for it? Certainly neither the Kisans nor the Kisan sabha. Let he himself, his colleagues and the ministers thank themselves for creating such a situation fraught with dangerous possibiliteis inspite of ourselves-inspite of the Kisan Sabha.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

. Therefore it is not a mere academic discussion, but a propagation and narration of hard facts which defy challenge and which are publicly by the Kisan, admitted in private by the rent reduction officers, corroborated by the Zamindars and borne out by the anassailable proofs in forms of circulars and instructions of the present Government. Here, now, leave the matter to the intelligent readers and impartial observers to judge and pronounce their judgement on the claim of the present Government that "The essence and effect of the tenancey legislations pased by the present Government have been to get a fair square deal for the tenants." that "This (rent reduction officer's) statutory power has not been curtailed in any way by any executive instructions," that "Rent-reduction officers have full discrtion in the matter," and that "The relief under rent-reduction law is freely given."

Rent Reduction Section

112A (1). The Collector may, on the application of an occupancy raiyat or a landlord made in the prescribed form, or, if the Governor by notification directs that a settlement of the rents of the occupancy holdings situated in any area or of any class or classes of occupancy holdings situated in any area shall be made under this section, on an application made as aforesaid or on his own motion;

(a) cancell all enhancements of the rents of occupancy holdings made under section 29 or under clauses (a), (b) or (d) of section 30 between the first day of January, 1911 and the thirty-first day of December, 1936.

(b) reduce the rent of an occupancy holding, the rent of which was commuted whether under section 40 or by agreement between the tenant and the landlord of such holding between the first day of January 1911, and the thirty-first day of December, 1936, to such an extent that the reduced rent shall bear to the previous rent the same proportion as the current prices bear to the average prices during the decennial period immediately preceeding the time when the rent was commuted;

(c) order the partial or entire remission, for such period as he considers reasonable in the circumstances, of the rent of an occupancy holding-

(i) if the soil of a portion or the whole of such holding has without the fault of the raiyat become temporarily or permanently deteriorated by a deposit of sand, by submersion under water or by any other specific cause, sudden or gradual;

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(ii) if the landlord of such holding has failed to carry out rhe arrangements in respect of irrigation which hf is bound to maintain;

Provided that the Collector may revise any order passed under sub clause (i) at any time before the expiry of the period fixed for such order if he is satisfied that the soil of the holding has become fit for cultivation, and may at any time revise any order passed under sub-clause (ii), if he is satisfied that rhe landlord has restored the arrangements in respect of irrigation which he is bound to maintain;

(d) reduce the rent of any occupancy holding, if there has been a fall not due to a temporary cause in the average local prices of staple food crop during that the reduced rent shall bear to the previous rent the prices prevailing-

(i) at the time when the previous rent first be came payable or

(ii) if the previous rent first became payable before the preparation of a record-of-rights under Chapter X and the landlord is unable to prove to the satisfaction of the Collector when the previous rent first became payable, at the time when a record-of-rights was first prepared in respect of the holding;

(e) settle a fair rent in such cases, or class of cases as may be specified in a notification issued for other sufficient reasons by the Governor in this behalf.

(2) No application shall be entertained under clause (a) or (b) of sub-section (1) unless it is filed within a period of one year from the date of which the Bihar Tenancy (*Amendment*) Act, 1937, comes into force.

(3) If the Governor by notification directs that there shall be commutation of rents of the occupancy holdings or any class of occupancy holdings situated in any area, the rent of which is paid in kind or in any of the other ways mentioned in sub-section (1) of section 40, the Collector may, on the application of the raiyat or landlord of any such holding, or on his own motion, determine the sum to be paid as money rent for such holding, and may order that the raiyat shall in lieu of paying his rent in kind or otherwise as aforsaid, pay the sum so determined.

(4) An order of the Collector under this section shall take effect from such date as may be specified in the order.

(5) The powers conferred on the Collector by this section shall be exercised in accordance with the prescribed procedure.

●●●

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

राघव शरण शर्मा

जन्म 1942–सोनडीहा–गया। पेशे से खोज
घुमक्कड़, बहुप्रतिष्ठित इंजीनियर हैं। इन्हें बिह
के दहकते खेत–खलिहानों के किसान संघर्षों
सक्रिय शिरकत के दरम्यान समाज की पाठशाल
में व्यावहारिक और विश्लेषणात्मक अध्ययन क
दृष्टि प्राप्त हुई। गंडक योजना के पायलट प्रोजेक
तैयार करने पर प्रशस्ति प्रदान किया गया। इन्होंने
किसान आन्दोलन का विकास, भारत–चीन
प्रतिद्वंद्विता–हिमालय के पार, भारत की जल
सम्पदा–समस्या और समाधान, कादम्बरी नाट्य
रूपांतरण, सहजानन्द और चारू की वसीयत
ब्रह्मर्षि वंश अनुशीलन, अयोध्याकांड का शास्त्रीय
अनुशीलन इत्यादि पुस्तकों की रचना की है
साप्ताहिक हिन्दुस्तान, सामयिक वार्ता, जनमत
जैसी पत्रिकाओं में लिखते रहे हैं। कई स्मारिकाओं
का सम्पादन किया है। सम्प्रति वाराणसी मे स्वामी
सहजानन्द अध्ययन एवं शोध संस्थान के अध्यक्ष हैं
और रईन खेत (रणक्षेत्र) पत्रिका का सम्पादन कर
रहे हैं। किसान साहित्य और किसान हलचल से
गहरा लगाव है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.